मरौ हे जोगी मरौ
(संत गोरखनाथ की वाणी पर ओशो के 20 प्रवचन)

प्रवचन-क्रम

1. हसिबा खेलिबा धरिबा ध्यानं...2
2. अज्ञात की पुकार...24
3. सहजै रहिबा...48
4. अदेखि देखिबा..71
5. मन मैं रहिणा..96
6. साधनाः समझ का प्रतिफल..118
7. एकांत में रमो...140
8. आओ चांदनी को बिछाएं, ओढ़ें..164
9. सुधि-बुधि का विचार..189 10...ध्यान का सुगमतम उपायः संगीत
.... 214
11..खोल मन के नयन देखो
.... 238
12..इहि पस्सिको
.... 262
13...मारिलै रे मन द्रोही
.... 285
14...एक नया आकाश चाहिए
.... 306
15...सिधां माखण खाया
.... 328
16...नयन मधुकर आज मेरे
.... 350
17...सबद भया उजियाला
.... 373
18...उमड़ कर आ गए बादल
.... 396
19..उनमनि रहिबा
.... 420
20...सरल, तुम अनजान आए
.... 443

मरौ हे जोगी मरौ
पहला प्रवचन

हसिबा खेलिबा धरिबा ध्यानं

बसती न सुन्यं सुन्यं न बसती अगम अगोचर ऐसा।
गगन सिषर महिं बालक बोले ताका नांव धरहुगे कैसा।।
हसिबा खेलिबा धरिबा ध्यानं। अहनिसि कथिबा ब्रह्मगियानं।
हंसै शेलै न करै मन भंग। ते निहचल सदा नाथ के संग।।
अहनिसि मन लै उनमन रहै, गम की छांड़ि अग की कहै।
छांड़ै आसा रहे निरास, कहै ब्रह्मा हूं ताका दास।।
अरधै जाता उरधै धरै, काम दग्ध जे जोगी करै।
तजै अल्यंगन काटै माया, ताका बिसनु पषालै पाया।।
मरौ वे जोगी मरौ, मरौ मरन है मीठा।
तिस मरणी मरौ, जिस मरणी गोरष मरि दीठा।।

महाकवि सुमित्रानंदन पंत ने मुझसे एक बार पूछा कि भारत के धर्माकाश में वे कौन बारह लोग हैं--मेरी दृष्टि में--जो सबसे चमकते हुए सितारे हैं? मैंने उन्हें यह सूची दीः कृष्ण, पतंजलि, बुद्ध, महावीर, नागार्जुन, शंकर, गोरख, कबीर, नानक, मीरा, रामकृष्ण, कृष्णमूर्ति। सुमित्रानंदन पंत ने आंखें बंद कर लीं, सोच में पड़ गये... ।
सूची बनानी आसान भी नहीं है, क्योंकि भारत का आकाश बड़े नक्षत्रों से भरा है! किसे छोड़ो, किसे गिनो? ... वे प्यारे व्यक्ति थे--अति कोमल, अति माधुर्यपूर्ण, स्त्रैण... । वृद्धावस्था तक भी उनके चेहरे पर वैसी ही ताजगी बनी रही जैसी बनी रहनी चाहिए। वे सुंदर से सुंदरतर होते गये थे... । मैं उनके चेहरे पर आते-जाते भाव पढ़ने लगा। उन्हें अड़चन भी हुई थी। कुछ नाम, जो स्वभावतः होने चाहिए थे, नहीं थे। राम का नाम नहीं था! उन्होंने आंख खोली और मुझसे कहाः राम का नाम छोड़ दिया है आपने! मैंने कहाः मुझे बारह की ही सुविधा हो चुनने की, तो बहुत नाम छोड़ने पड़े। फिर मैंने बारह नाम ऐसे चुने हैं जिनकी कुछ मौलिक देन है। राम की कोई मौलिक देन नहीं है, कृष्ण की मौलिक देन है। इसलिये हिंदुओं ने भी उन्हें पूर्णावतार नहीं कहा। उन्होंने फिर मुझसे पूछाः तो फिर ऐसा करें, सात नाम मुझे दें। अब बात
और कठिन हो गयी थी। मैंने उन्हें सात नाम दियेः कृष्ण, पतंजलि, बुद्ध, महावीर, शंकर, गोरख, कबीर। उन्होंने कहाः आपने जो पांच छोड़े, अब किस आधार पर छोड़े हैं? मैंने कहाः नागार्जुन बुद्ध में समाहित हैं। जो बुद्ध में बीज-रूप था, उसी को नागार्जुन ने प्रगट किया है। नागार्जुन छोड़े जा सकते हैं। और जब बचाने की बात हो तो वृक्ष छोड़े जा सकते हैं, बीज नहीं छोड़े जा सकते। क्योंकि बीजों से फिर वृक्ष हो जायेंगे, नये वृक्ष हो जायेंगे। जहां बुद्ध पैदा होंगे वहां सैकड़ों नागार्जुन पैदा हो जायेंगे, लेकिन कोई नागार्जुन बुद्ध को पैदा नहीं कर सकता। बुद्ध तो गंगोत्री हैं, नागार्जुन तो फिर गंगा के रास्ते पर आये हुए एक तीर्थस्थल हैं--प्यारे! मगर अगर छोड़ना हो तो तीर्थस्थल छोड़े जा सकते हैं, गंगोत्री नहीं छोड़ी जा सकती।
ऐसे ही कृष्णमूर्ति भी बुद्ध में समा जाते हैं। कृष्णमूर्ति बुद्ध का नवीनतम संस्करण हैं--नूतनतम; आज की भाषा में। पर भाषा का ही भेद है। बुद्ध का जो परम सूत्र था--अप्प दीपो भव--कृष्णमूर्ति बस उसकी ही व्याख्या हैं। एक सूत्र की व्याख्या--गहन, गंभीर, अति विस्तीर्ण, अति महत्वपूर्ण! पर अपने दीपक स्वयं बनो, अप्प दीपो भव--इसकी ही व्याख्या हैं। यह बुद्ध का अंतिम वचन था इस पृथ्वी पर। शरीर छोड़ने के पहले यह उन्होंने सार-सूत्र कहा था। जैसे सारे जीवन की संपदा को, सारे जीवन के अनुभव को इस एक छोटे-से सूत्र में समाहित कर दिया था।
रामकृष्ण, कृष्ण में सरलता से लीन हो जाते हैं। मीरा, नानक, कबीर में लीन हो जाते हैं; जैसे कबीर की ही शाखायें हैं। जैसे कबीर में जो इकट्ठा था, वह आधा नानक में प्रगट हुआ है और आधा मीरा में। नानक में कबीर का पुरुष-रूप प्रगट हुआ है। इसलिए सिक्ख धर्म अगर क्षत्रिय का धर्म हो गया, योद्धा

का, तो आश्चर्य नहीं है। मीरा में कबीर का स्त्रैण रूप प्रगट हुआ है--इसलिए सारा माधुर्य, सारी सुगंध, सारा सुवास, सारा संगीत, मीरा के पैरों में घुंघरू बनकर बजा है। मीरा के इकतारे पर कबीर की नारी गाई है; नानक में कबीर का पुरुष बोला है। दोनों कबीर में समाहित हो जाते हैं।
इस तरह, मैंने कहाः मैंने यह सात की सूची बनाई। अब उनकी उत्सुकता बहुत
बढ़ गयी थी। उन्होंने कहाः और अगर पांच की सूची बनानी पड़े? तो मैंने कहाः काम मेरे लिये कठिन होता जायेगा।
मैंने यह सूची उन्हें दीः कृष्ण, पतंजलि, बुद्ध, महावीर, गोरख।... क्योंकि कबीर को गोरख में लीन किया जा सकता है। गोरख मूल हैं। गोरख को नहीं छोड़ा जा सकता। और शंकर तो कृष्ण में सरलता से लीन हो जाते हैं। कृष्ण के ही एक अंग की व्याख्या हैं, कृष्ण के ही एक अंग का दार्शनिक विवेचन हैं। तब तो वे बोलेः बस, एक बार और... । अगर चार ही रखने हों?
तो मैंने उन्हें सूची दीः कृष्ण, पतंजलि, बुद्ध, गोरख।... क्योंकि महावीर बुद्ध से बहुत भिन्न नहीं हैं, थोड़े ही भिन्न हैं। जरा-सा ही भेद है; वह भी अभिव्यक्ति का भेद है। बुद्ध की महिमा में महावीर की महिमा लीन हो सकती है।
वे कहने लगेः बस एक बार और... । आप तीन व्यक्ति चुनें।
मैंने कहाः अब असंभव है। अब इन चार में से मैं किसी को भी छोड़ न सकूंगा। फिर मैंने उन्हें कहाः जैसे चार दिशाएं हैं, ऐसे ये चार व्यक्तित्व हैं। जैसे काल और क्षेत्र के चार आयाम हैं, ऐसे ये चार आयाम हैं। जैसे परमात्मा की हमने चार भुजाएं सोची हैं, ऐसी ये चार भुजाएं हैं। ऐसे तो एक ही है, लेकिन उस एक की चार भुजाएं हैं। अब इनमें से कुछ छोड़ना तो हाथ काटने जैसा होगा। यह मैं न कर सकूंगा। अभी तक मैं आपकी बात मानकर चलता रहा, संख्या कम करता चला गया। क्योंकि अभी तक जो अलग करना पड़ा, वह वस्त्र था; अब अंग तोड़ने पड़ेंगे। अंग-भंग मैं न कर सकूंगा। ऐसी हिंसा आप न करवायें।
वे कहने लगेः कुछ प्रश्न उठ गये; एक तो यह, कि आप महावीर को छोड़ सके, गोरख को नहीं?
गोरख को नहीं छोड़ सकता हूं क्योंकि गोरख से इस देश में एक नया ही सूत्रपात हुआ, महावीर से कोई नया सूत्रपात नहीं हुआ। वे अपूर्व पुरुष हैं; मगर जो सदियों से कहा गया था, उनके पहले जो तेईस जैन तीर्थंकर कह चुके थे, उसकी ही पुनरुक्ति हैं। वे किसी यात्रा का प्रारंभ नहीं हैं। वे किसी नयी शृंखला की पहली कड़ी नहीं हैं, बल्कि अंतिम कड़ी हैं।
गोरख एक शृंखला की पहली कड़ी हैं। उनसे एक नये प्रकार के धर्म का जन्म हुआ, आविर्भाव हुआ। गोरख के बिना न तो कबीर हो सकते हैं, न नानक हो सकते हैं, न दादू, न वाजिद, न फरीद, न मीरा--गोरख के बिना ये कोई भी न हो सकेंगे। इन सब के मौलिक आधार गोरख में हैं। फिर मंदिर बहुत ऊंचा उठा। मंदिर पर बड़े स्वर्ण-कलश चढ़े... । लेकिन नींव का पत्थर नींव का पत्थर है। और स्वर्ण-कलश दूर से दिखाई पड़ते हैं, लेकिन नींव के पत्थर से ज्यादा मूल्यवान नहीं हो सकते। और नींव के पत्थर किसी को दिखाई भी नहीं पड़ते, मगर उन्हीं पत्थरों पर टिकी होती है सारी व्यवस्था, सारी भित्तियां, सारे शिखर... । शिखरों की पूजा होती है, बुनियाद के पत्थरों को तो लोग भूल ही जाते हैं। ऐसे ही गोरख भी भूल गये हैं।
लेकिन भारत की सारी संत-परंपरा गोरख की ऋणी है। जैसे पतंजलि के बिना भारत में योग की कोई संभावना न रह जायेगी; जैसे बुद्ध के बिना ध्यान की आधारशिला उखड़ जायेगी; जैसे कृष्ण के बिना प्रेम की अभिव्यक्ति को मार्ग न मिलेगा--ऐसे गोरख के बिना उस परम सत्य को पाने के लिये विधियों की जो तलाश शुरू हुई, साधना की जो व्यवस्था बनी, वह न बन सकेगी। गोरख ने जितना आविष्कार किया मनुष्य के भीतर अंतर-खोज के लिये, उतना शायद किसी ने भी नहीं किया है। उन्होंने इतनी विधियां दीं कि अगर विधियों के हिसाब से सोचा जाये तो गोरख सबसे बड़े आविष्कारक हैं। इतने द्वार तोड़े मनुष्य के अंतरतम में जाने के लिये, इतने द्वार तोड़े कि लोग द्वारों में उलझ गये। इसलिए हमारे पास एक शब्द चल पड़ा है--गोरख को तो लोग भूल गये--गोरखधंधा शब्द चल पड़ा है। उन्होंने इतनी विधियां दीं कि लोग उलझ गये कि कौन-सी ठीक,

कौन-सी गलत, कौन-सी करें, कौन-सी छोड़ें... ? उन्होंने इतने मार्ग दिये कि लोग किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये, इसलिए गोरखधंधा शब्द बन गया। अब कोई किसी चीज में उलझा हो तो हम कहते हैं, क्या गोरखधंधे में उलझे हो!
गोरख के पास अपूर्व व्यक्तित्व था, जैसे आइंस्टीन के पास व्यक्तित्व था। जगत के सत्य को खोजने के लिये जो पैने से पैने उपाय अलबर्ट आइंस्टीन दे गया, उसके पहले किसी ने भी नहीं दिये थे। हां, अब उनका विकास हो सकेगा, अब उन पर और धार रखी जा सकेगी। मगर जो प्रथम काम था वह आइंस्टीन ने किया है। जो पीछे आयेंगे वे नंबर दो होंगे। वे अब प्रथम नहीं हो सकते। राह पहली तो आइंस्टीन ने तोड़ी, अब इस राह को पक्का करनेवाले, मजबूत करनेवाले, मील के पत्थर लगानेवाले, सुंदर बनानेवाले, सुगम बनानेवाले बहुत लोग आयेंगे। मगर आइंस्टीन की जगह अब कोई भी नहीं ले सकता। ऐसी ही घटना अंतरजगत में गोरख के साथ घटी।
लेकिन गोरख को लोग भूल क्यों गये? मील के पत्थर याद रह जाते हैं, राह तोड़नेवाले भूल जाते हैं। राह को सजानेवाले याद रह जाते हैं, राह को पहली बार तोड़नेवाले भूल जाते हैं। भूल जाते हैं इसलिए कि जो पीछे आते हैं उनको सुविधा होती है संवारने की। जो पहले आता है, वह तो अनगढ़ होता है, कच्चा होता है। गोरख जैसे खदान से निकले हीरे हैं। अगर गोरख और कबीर बैठे हों तो तुम कबीर से प्रभावित होओगे, गोरख से नहीं। क्योंकि गोरख तो खदान से निकले हीरे हैं; और कबीर--जिन पर जौहरियों ने खूब मेहनत की, जिन पर खूब छेनी चली है, जिनको खूब निखार दिया गया है!
यह तो तुम्हें पता है न कि कोहिनूर हीरा जब पहली दफा मिला तो जिस आदमी
को मिला था उसे पता भी नहीं था कि कोहिनूर है। उसने बच्चों को खेलने के लिये दे दिया था, समझकर कि कोई रंगीन पत्थर है। गरीब आदमी था। उसके खेत से बहती हुई एक छोटी-सी नदी की धार में कोहिनूर मिला था। महीनों उसके घर पड़ा रहा, कोहिनूर बच्चे खेलते रहे, फेंकते रहे इस कोने से उस कोने, आंगन में पड़ा रहा... ।
तुम पहचान न पाते कोहिनूर को। कोहिनूर का मूल वजन तीन गुना था आज के कोहिनूर से। फिर उस पर धार रखी गई, निखार किये गये, काटे गये, उसके पहलू उभारे गये। आज सिर्फ एक तिहाई वजन बचा है, लेकिन दाम करोड़ों गुना ज्यादा हो गये। वजन कम होता गया, दाम बढ़ते गये, क्योंकि निखार आता गया--और, और निखार... । कबीर और गोरख साथ बैठे हों, तुम गोरख को शायद पहचानो ही न; क्योंकि गोरख तो अभी गोलकोंडा की खदान से निकले कोहिनूर हीरे हैं। कबीर पर बड़ी धार रखी जा चुकी, जौहरी मेहनत कर चुके।... कबीर तुम्हें पहचान में आ जायेंगे।
इसलिये गोरख का नाम भूल गया है। बुनियाद के पत्थर भूल जाते हैं!
गोरख के वचन सुनकर तुम चौंकोगे। थोड़ी धार रखनी पड़ेगी; अनगढ़ हैं। वही धार रखने का काम मैं यहां कर रहा हूं। जरा तुम्हें पहचान आने लगेगी, तुम चमत्कृत होओगे। जो भी सार्थक है, गोरख ने कह दिया है। जो भी मूल्यवान है, कह दिया है।
तो मैंने सुमित्रानंदन पंत को कहा कि गोरख को न छोड़ सकूंगा। और इसलिए चार से और अब संख्या कम नहीं की जा सकती। उन्होंने सोचा होगा स्वभावतः कि मैं गोरख को छोडूंगा, महावीर को बचाऊंगा। महावीर कोहिनूर हैं, अभी कच्चे हीरे नहीं हैं खदान से निकले। एक पूरी परंपरा है तेईस तीर्थंकरों की, हजारों साल की, जिसमें धार रखी गई है, पैने किये गये हैं--खूब समुज्ज्वल हो गये हैं! तुम देखते हो, चौबीसवें तीर्थंकर हैं महावीर; बाकी तेईस के नाम लोगों को भूल गये! जो जैन नहीं हैं वे तो तेईस के नाम गिना ही न सकेंगे। और जो जैन हैं वे भी तेईस का नाम क्रमबद्ध रूप से न गिना सकेंगे, उनसे भी भूल-चूक हो जायेगी। महावीर तो अंतिम हैं--मंदिर का कलश! मंदिर के कलश याद रह जाते हैं। फिर उनकी चर्चा होती रहती है। बुनियाद के पत्थरों की कौन चर्चा करता है!
आज हम बुनियाद के एक पत्थर की बात शुरू करते हैं। इस पर पूरा भवन खड़ा
है भारत के संत-साहित्य का! इस एक व्यक्ति पर सब दारोमदार है। इसने सब कह दिया है जो धीरे-धीरे बड़ा रंगीन हो जायेगा, बड़ा सुंदर हो जायेगा; जिस पर

लोग सदियों तक साधना करेंगे, ध्यान करेंगे; जिसके द्वारा न मालूम कितने सिद्धपुरुष पैदा होंगे!
मरौ वे जोगी मरौ!
ऐसा अदभुत वचन है! कहते हैंः मर जाओ, मिट जाओ, बिल्कुल मिट जाओ!
मरौ वे जोगी मरौ, मरौ मरन है मीठा।
क्योंकि मृत्यु से ज्यादा मीठी और कोई चीज इस जगत में नहीं है।
तिस मरणी मरौ... ।
और ऐसी मृत्यु मरो,
जिस मरणी गोरष मरि दीठा।
जिस तरह से मरकर गोरख को दर्शन उपलब्ध हुआ, ऐसे ही तुम भी मर जाओ और दर्शन को उपलब्ध हो जाओ।
एक मृत्यु है जिससे हम परिचित हैं; जिसमें देह मरती है, मगर हमारा अहंकार और हमारा मन जीवित रह जाता है। वही अहंकार नये गर्भ लेता है। वही अहंकार नयी वासनाओं से पीड़ित हुआ फिर यात्रा पर निकल जाता है। एक देह से छूटा नहीं कि दूसरी देह के लिये आतुर हो जाता है। तो यह मृत्यु तो वास्तविक मृत्यु नहीं है।
मैंने सुना है, एक आदमी ने गोरख से कहा कि मैं आत्महत्या करने की सोच रहा हूं। गोरख ने कहाः जाओ और करो, मैं तुमसे कहता हूं तुम करके बहुत चौंकोगे।
उस आदमी ने कहाः मतलब? मैं आया था कि आप समझायेंगे कि मत करो। मैं और साधुओं के पास भी गया। सभी ने समझाया कि भाई, ऐसा मत करो, आत्महत्या बड़ा पाप है।
गोरख ने कहाः पागल हुए हो, आत्महत्या कोई कर ही नहीं सकता। कोई मर ही नहीं सकता। मरना संभव नहीं है। मैं तुमसे कहे देता हूं, करो, करके बहुत चौंकोगे। करके पाओगे कि अरे, देह तो छूट गयी, मैं तो वैसा का वैसा हूं! और अगर असली आत्महत्या करनी हो तो फिर मेरे पास रुक जाओ। छोटा-मोटा खेल करना हो तो तुम्हारी मर्जी--कूद जाओ किसी पहाड़ी से, लगा लो गर्दन में फांसी। असली मरना हो तो रुक जाओ मेरे पास। मैं तुम्हें वह कला दूंगा जिससे महामृत्यु घटती है, फिर दुबारा आना न हो सकेगा। लेकिन वह महामृत्यु भी सिर्फ हमें महामृत्यु मालूम होती है, इसलिए उसको मीठा कह रहे हैं।
मरौ वे जोगी मरौ, मरौ मरन है मीठा।
तिस मरणी मरौ, जिस मरणी गोरष मरि दीठा।।
ऐसी मृत्यु तुम्हें सिखाता हूं, गोरख कहते हैं, जिस मृत्यु से गुजर कर मैं जागा। सोने की मृत्यु हुई है, मेरी नहीं। अहंकार मरा, मैं नहीं। द्वैत मरा, मैं नहीं। द्वैत मरा तो अद्वैत का जन्म हुआ। समय मरा तो शाश्वतता मिली। वह जो क्षुद्र-सीमित जीवन था, टूटा, तो बूंद सागर हो गयी। हां, निश्चित ही जब बूंद सागर में गिरती है तो एक अर्थ में मर जाती है, बूंद की तरह मर जाती है। और एक अर्थ में पहली बार महाजीवन उपलब्ध होता है--सागर की भांति जीती है!
रहीम का वचन हैः
बिंदु भी सिंधु समान, को अचरज कासों कहें,
हेरनहार हैरान, रहिमन अपने आपने!
रहीम कहते हैंः बिंदु भी सिंधु के समान है। को अचरज कासों कहें! किससे कहें, कौन मानेगा! बात इतनी विस्मयकारी है, कौन स्वीकार करेगा कि बिंदु और सिंधु के समान है! कि बूंद सागर है! कि अणु में परमात्मा विराजमान है! कि क्षुद्र यहां कुछ भी नहीं है! कि सभी में विराट समाविष्ट है!
बिंदु भी सिंधु समान, को अचरज कासों कहें।
ऐसे अचरज की बात है, किसी से कहो, कोई मानता नहीं। अचरज की बात ऐसी है,
जब पहली दफा खुद भी जाना था तो मानने का मन न हुआ था!
हेरनहार हैरान... !
जब पहली दफा खुद देखा था तो मैं खुद ही हैरान रह गया था।
हेरनहार हैरान, रहिमन अपने आपने।

देखता था खुद को और हैरान होता था। क्योंकि मैंने तो सदा यही जाना था
कि क्षुद्र हूं। लेकिन स्वयं का विराट तभी अनुभव में आता है जब क्षुद्र की सीमाएं कोई तोड़ देता है; क्षुद्र का अतिक्रमण करता है जब कोई।
अहंकार होकर तुमने कुछ कमाया नहीं, गंवाया है। अहंकार निर्मित करके तुमने कुछ पाया नहीं, सब खोया है। बूंद रह गये हो, बड़ी छोटी बूंद रह गये हो। जितने अकड़ते हो उतने छोटे होते जाते हो। अकड़ना और-और अहंकार को मजबूत करता है। जितने गलोगे उतने बड़े हो जाओगे, जितने पिघलोगे उतने बड़े हो जाओगे। अगर बिल्कुल पिघल जाओ, वाष्पीभूत हो जाओ तो सारा आकाश तुम्हारा है। गिरो सागर में तो तुम सागर हो जाओ। उठो आकाश में वाष्पीभूत होकर, तो तुम आकाश हो जाओ। तुम्हारा होना और परमात्मा का होना एक ही है।
बिंदु भी सिंधु समान, को अचरज कासों कहें।
लेकिन जब पहली दफे तुम्हें भी अनुभव होगा, तुम भी एकदम गूंगे हो जाओगे... गूंगे केरी सरकरा... अनुभव तो होने लगेगा, स्वाद तो आने लगेगा, अमृत तो भीतर झरने लगेगा कंठ में, मगर कहने के लिये शब्द न मिलेंगे। को अचरज कासों कहें! कैसे कहें बात इतने अचरज की है? जिन्होंने हिम्मत करके कहा अहं ब्रह्मास्मि, सोचते हो कोई मानता है?
मंसूर ने कहाः अनलहक, कि मैं परमात्मा हूं। सूली पर चढ़ा दिया लोगों ने। जीसस को मार डाला, क्योंकि जीसस ने यह कहा कि वह जो आकाश में है मेरा पिता और मैं, हम दोनों एक ही हैं। पिता और बेटा दो नहीं हैं। यहूदी क्षमा न कर सके। जब भी किसी ने घोषणा की है भगवत्ता की, तभी लोग क्षमा नहीं कर सके। बात ही ऐसी है। को अचरज कासों कहें! किससे कहने जाओ? जिससे कहोगे वही इनकार करने लगेगा।
कल गुरुकुल कांगड़ी के भूतपूर्व उपकुलपति सत्यव्रत का आश्रम में आना हुआ। दर्शन उन्हें आश्रम दिखाने ले गयी। सत्यव्रत ने उपनिषद पर किताबें लिखी हैं। वेदों के ज्ञाता हैं। इस देश में कुछ थोड़े ही लोग वेद को इतनी गहराई से जानते होंगे जैसा सत्यव्रत जानते हैं। उनके वक्तव्य, उनके विचार मैंने पढ़े हैं। मगर उनका भी प्रश्न दर्शन से यही था कि आप अपने गुरु को भगवान क्यों कहती हैं? उनका भी... ! ऐसे हमारे पंडित में और अज्ञानी में जरा भी भेद नहीं है। दर्शन ने ठीक उत्तर दिया उन्हें। दर्शन ने कहाः भगवान तो आप भी हैं, मगर आपको इसका स्मरण नहीं है और उन्हें स्मरण आ गया है। मुंहतोड़ जवाब था, दो टूक जवाब था! और पंडित जब कोई इस आश्रम में आये तो ध्यान रखना, ऐसा ही ठीक-ठीक जवाब देना। उपनिषद पर किताबें लिखी हैं सत्यव्रत ने, जरूर "अहं ब्रह्मास्मि" शब्द के करीब आये होंगे; ऐसा कौन है जो नहीं आया है! जरूर यह महावाक्य सोचा होगा, विचारा होगाः तत्वमसि श्वेतकेतु! हे श्वेतकेतु, तू वही है। और इस पर विवेचन भी किया होगा। इस पर व्याख्यान भी दिये होंगे। लेकिन यह बात ऊपर-ऊपर गुजर गयी। इससे तो सीधी-साधी दर्शन में ज्यादा गहरी उतर गयी! यह पांडित्य ही रहा, थोथा, कचरे जैसा। इसका कोई मूल्य नहीं; दो कौड़ी इसका मूल्य नहीं।
उपनिषद कहते हैं कि तुम वही हो। और उपनिषद कहते हैंः मैं ब्रह्म हूं। फिर भी तुम पूछे चले जा रहे हो कि क्यों किसी को भगवान कहें? मैं तुमसे पूछता हूं, ऐसा कौन है जिसको भगवान न कहें?
रामकृष्ण से किसी ने पूछाः भगवान कहां है? तो रामकृष्ण ने कहाः यह मत पूछो, यह पूछो कि कहां नहीं है?
नानक को काबा के पुरोहितों ने कहाः पैर हटा लो काबा की तरफ से। शर्म नहीं आती, साधु होकर पवित्र मंदिर की तरफ पैर किये हो?
नानक ने कहाः मेरे तुम पैर उस तरफ हटा दो जिस तरफ पवित्र परमात्मा न हो! मैं क्या करूं, कहां पैर रखूं? किसी तरफ तो पैर रखूंगा, लेकिन वह तो सब तरफ मौजूद है। सभी दिशाओं को उसी ने घेरा है। लेकिन मुझे चिंता नहीं होती, नानक ने कहा, क्योंकि वही बाहर है, वही भीतर है। उसका ही पत्थर है, उसके ही पैर हैं। मैं भी क्या करूं? मैं बीच में कौन हूं?
दर्शन ने ठीक कहा कि जाग जायेंगे तो आपको भी पता चलेगा कि भगवान ही विराजमान है। इससे ही मैं चकित होता हूं कि जिनको हम तथाकथित ज्ञानी कहते हैं... और यही ज्ञानी लोगों को चलाते हैं! अंधा अंधा ठेलिया, दोनों कूप

पड़ंत। बड़ी-बड़ी उपाधियां हैं--सत्यव्रत सिद्धांतालंकार! सिद्धांत के जाननेवाले!
सिद्धि के बिना कोई सिद्धांत को नहीं जानता। शास्त्र पढ़कर कोई सिद्धांत नहीं जाने जाते--स्वयं में उतरकर जाने जाते हैं।
बिंदु भी सिंधु समान, को अचरज कासों कहें,
हेरनहार हैरान, रहिमन अपने आपने।
रहीम कहते हैंः अपने भीतर देखा तो मैं खुद ही हैरान रह गया हूं, चकित, अवाक! खुद ही भरोसा नहीं आ रहा है कि मैं और परमात्मा! यह जो उठ रही है वाणी भीतर से, अनलहक का नाद उठ रहा है, यह जो अहं ब्रह्मास्मि की गूंज आ रही है, यह जो ओंकार जग रहा है--मुझे ही भरोसा नहीं आता कि मैं, रहीम मैं, मेरे जैसा क्षुद्र, साधारण आदमी... मैं और भगवान! बिंदु भी सिंधु समान! अब मैं किससे कहूं, खुद ही भरोसा नहीं आता तो किससे कहूं?
इसका ही तुम्हें भरोसा दिलाने को यहां मैं बैठा हूं। यह भरोसा आ जाए
जो समझना सत्संग हुआ। मेरे पास बैठ-बैठ कर सिद्धांत-अलंकार मत बन जाना! सिद्ध बनो, इससे कम में कुछ भी न होगा। इससे कम का कोई मूल्य नहीं है। मरने की कला सीखो। मरो हे जोगी मरो! बूंद की तरह मरो तो समुंदर की तरह हो जाओ।
मृत्यु की कला ही महाजीवन को पाने की कला है।
बसती न सुन्यं सुन्यं न बसती अगम अगोचर ऐसा।
गगन सिषर महिं बालक बोले ताका नांव धरहुगे कैसा।।
बसती न सुन्यं... ।
न तो हम कह सकते हैं परमात्मा है और न कह सकते हैं नहीं है। सोचना, विचारना। परमात्मा नहीं और है, दोनों का जोड़ है, इसलिये दोनों के पार है। न तो आस्तिक जानता है उसे, न नास्तिक जानता है उसे। न तो आस्तिक धार्मिक है, न नास्तिक। स्वभावतः, नास्तिक तो धार्मिक है ही नहीं; तुम जिसे आस्तिक कहते हो वह भी धार्मिक नहीं है। तुम्हारे आस्तिक और नास्तिक एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। आस्तिक कहता है--है; नास्तिक कहता है--नहीं है। दोनों ने आधा-आधा चुना है। परमात्मा है और नहीं है, दोनों साथ-साथ, एक साथ, युगपत। उसके होने का ढंग नहीं होने का ढंग है। उसकी पूर्णता शून्य की पूर्णता है। उसकी उपस्थिति अनुपस्थिति जैसी है। परमात्मा में सारे विरोध, सारे विरोधाभास समाहित होते हैं। और यह सबसे बुनियादी विरोध हैः है, या नहीं? अगर कहो है, तो आधा ही रह जायेगा। फिर जब चीजें नहीं हो जाती हैं तो कहां जाती हैं? नहीं होकर भी तो कहीं होती होंगी। नहीं होकर भी तो कहीं बनी रहती होंगी।
एक वृक्ष है, बड़ा वृक्ष है! उस पर एक बीज लगा है। वृक्ष मर जायेगा, अब तुम बीज को बो दो, फिर वृक्ष हो जायेगा। बीज क्या था? वृक्ष का नहीं होना था, वृक्ष का नहीं रूप था। अगर तुम बीज को तोड़ते और खोजते तो वृक्ष तुम्हें मिलनेवाला नहीं था। तुम कितनी ही खोज करो, बीज में वृक्ष नहीं मिलेगा, वृक्ष कहां गया? लेकिन किसी न किसी अर्थ में बीज में वृक्ष छिपा है। अब अनुपस्थित होकर छिपा है। तब उपस्थित होकर प्रगट हुआ था, अब अनुपस्थित होकर छिपा है। बीज को फिर बो दो जमीन में, फिर सम्यक सुविधा जुटा दो, फिर वृक्ष हो जायेगा। और ध्यान रखना, जब वृक्ष होगा तो बीज खो जायेगा; दोनों साथ नहीं होंगे। वृक्ष खोता है, बीज हो जाता है; बीज खोता है, वृक्ष हो जाता है। ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। तुम दोनों पहलू एक साथ नहीं देख सकते, या कि देख सकते हो?
तुम कोशिश करना, सिक्का तो छोटी-सी चीज है, हाथ में रखा जा सकता है। दोनों पहलू पूरे-पूरे एक साथ देखने की कोशिश करना। तुम मुश्किल में पड़ जाओगे। जब एक पहलू देखोगे, दूसरा नहीं दिखाई पड़ेगा; जब दूसरा देखोगे, पहला खो जायेगा। लेकिन पहले के खो जाने से क्या तुम कहोगे कि नहीं है?
सृष्टि भी परमात्मा का रूप है, प्रलय भी। उसका एक रूप है अभिव्यक्ति
और एक रूप है अनभिव्यक्ति। जब तुम तार छेड़ देते हो वीणा के, संगीत जगता है। अभी-अभी कहां था, क्षण-भर पहले कहां था? शून्य में था। था तो जरूर; न होता तो पैदा नहीं हो सकता था। छिपा पड़ा था, किसी गहन गुफा में। तुमने तार क्या छेड़े, पुकार दे दी। तुमने तार छेड़कर प्रेरणा दे दी। गीत तो सोया पड़ा था,

जाग उठा। संगीतज्ञ स्वर पैदा नहीं करता, सिर्फ जगाता है--सोये को जगाता है। कौन स्वर पैदा करेगा? स्वर पैदा करने का कोई उपाय नहीं है।
इस जगत में न तो कोई चीज बनाई जा सकती है और न मिटाई जा सकती है। अब तो विज्ञान भी इस बात से सहमत है। तुम रेत के एक छोटे से कण को भी मिटा नहीं सकते और न बना सकते हो। न तो कुछ बनाया जा सकता है, न कुछ घटाया जा सकता है। जगत उतना ही है जितना है, लेकिन फिर भी चीजें बनती और मिटती हैं। तो इसका अर्थ हुआ, जैसे पर्दे के पीछे चले जाते हैं रामलीला के खेल करनेवाले लोग, फिर पर्दे के बाहर आ जाते हैं। पर्दा उठा और पर्दा गिरा। वृक्ष विदा हो गया, पर्दा गिर गया। वृक्ष पर्दे की ओट चला गया, बीज हो गया। पर्दा उठा, बीज फिर वृक्ष हुआ।
जब तुम एक व्यक्ति को मरते देखते हो तो तुम क्या देख रहे हो? परमात्मा
का "नहीं" रूप; अभी था, अब नहीं है। तो जो था वही नहीं हो जाता है, और जो "नहीं" है वह फिर "है" हो जायेगा। आस्तिक भी आधे को चुनता है, नास्तिक भी आधे को चुनता है। दोनों में कुछ फर्क नहीं। तराजू के एक-एक पलड़े को चुन लिया है दोनों ने। दोनों ने तराजू तोड़ डाला है। तराजू के दोनों पलड़े चाहिए। तराजू दोनों पलड़ों का जोड़ है और जोड़ से कुछ ज्यादा भी है। परमात्मा है और नहीं का जोड़ है और दोनों से कुछ ज्यादा भी है।
आस्तिक भी भयभीत है, नास्तिक भी भयभीत है। तुम आस्तिक और नास्तिक के
भय को अगर समझोगे तो तुम्हें एक बड़ी हैरानी की बात पता चलेगी कि दोनों में जरा भी भेद नहीं है; दोनों की बुनियादी आधारशिला भय है। आस्तिक भयभीत है कि पता नहीं मरने के बाद क्या हो; पता नहीं जन्म के पहले क्या था! पता नहीं, अकेला रह जाऊंगा, पत्नी छूट जायेगी, मित्र छूट जायेंगे, पिता छूट जायेंगे, मां छूट जायेगी, परिवार छूट जायेगा। सब बसाया था, सब छूट जायेगा! अकेला रह जाऊंगा निर्जन की यात्रा पर! कौन मेरा संगी, कौन मेरा साथी! परमात्मा को मान लो, उसका भरोसा साथ देगा। वह तो साथ होगा!
आस्तिक भी डर के कारण परमात्मा को मान रहा है। मंदिर-मस्जिदों में जो लोग झुके हैं घुटनों के बल और प्रार्थना कर रहे हैं, उनकी प्रार्थनाएं भय से निकल रही हैं। और जब भी प्रार्थना भय से निकलती है, गंदी हो जाती है। तुम्हारी प्रार्थना के कारण मंदिर भी गंदे हो गये हैं। तुम्हारी प्रार्थनाओं की गंदगी के कारण मंदिर भी राजनीति के अड्डे हो गये हैं। वहां भी लड़ाई-झगड़ा है, हिंसा-वैमनस्य है, प्रति-स्पर्धा है। मंदिर और मस्जिद सिवाय लड़ाने के और कोई काम करते ही नहीं हैं।
आस्तिक भयभीत है। नास्तिक भी, मैं कहता हूं, भयभीत है, तो तुम थोड़ा चौंकोगे। क्योंकि आमतौर से लोग सोचते हैं कि नास्तिक भयभीत होता तो परमात्मा को मान लेता। लोग कोशिश करके हार चुके हैं उसे डरा-डरा कर, उसको डरवाते हैं नर्क से। वहां के बड़े दृश्य खींचते हैं--बड़े विहंगम दृश्य! बिल्कुल तस्वीर खड़ी कर देते हैं नरक की--आग की लपटें, जलते हुए कड़ाहे, वीभत्स शैतान! सतायेंगे बुरी तरह, मारेंगे बुरी तरह, आग में जलायेंगे बुरी तरह। इतना डरवाते हैं, फिर भी नास्तिक मानता नहीं है ईश्वर को, तो लोग सोचते हैं शायद नास्तिक बहुत निर्भय है। बात गलत है।
जो मनस की खोज में गहरे जायेंगे वे पायेंगे कि नास्तिक भी ईश्वर को इसलिए इनकार कर रहा है कि वह भयभीत है। उसका इनकार भय से ही निकल रहा है। अगर ईश्वर है तो वह डरता है। तो फिर नर्क भी होगा। तो फिर स्वर्ग भी होगा। तो फिर पाप भी होगा, पुण्य भी होगा। अगर ईश्वर है तो फिर किसी दिन जवाब भी देना होगा। अगर ईश्वर है तो फिर कोई आंख हमें देख रही है; कोई हमें परख रहा है; कहीं हमारे जीवन का लेखा-जोखा रखा जा रहा है और हम किसी के सामने उत्तरदायी हैं और हम ऐसे ही बच न निकलेंगे। अगर ईश्वर है तो फिर हमें अपने को बदलना पड़ेगा। फिर हमें इस ढंग से जीना होगा कि हम उसके सामने सिर उठाकर खड़े हो सकें।
और अगर ईश्वर है तो एक और घबराहट पकड़ती है, नास्तिक को। अगर ईश्वर है
तो मुझे उसे खोजना भी होगा, जीवन दांव पर लगाना होगा। यह सस्ता सौदा नहीं है। अच्छा यही हो कि ईश्वर न हो, तो छुटकारा हुआ। ईश्वर के साथ ही छुटकारा हो गया--स्वर्ग से भी, नर्क से भी। न नर्क का डर रहा, न स्वर्ग खोने का डर रहा। न यह भय रहा कि जो मंदिर में पूजा कर रहे हैं ये स्वर्ग चले जायेंगे।

है ही नहीं; कौन स्वर्ग गया है, कौन जायेगा, कहां जायेगा! आदमी बचता ही नहीं मरने के बाद; इसलिए कैसा पुण्य, कैसा पाप!
चार्वाकों ने, जो कि नास्तिक परंपरा के मूलस्रोत हैं, उन्होंने कहाः फिक्र मत करो, ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत। पियो, अगर ऋण लेकर भी घी पीना पड़े तो पीयो, बेफिक्री से पीयो। चुकाने की चिंता ही मत करो। कौन लेना, कौन देना! मर गये, सब पड़ा रह जायेगा--तुम्हारा भी और उसका भी। और पीछे कुछ बचता ही नहीं है। जब कोई बचता ही नहीं है तो भय क्या? फिर पाप करना है पाप करो, बुरा करना है बुरा करो, जैसे जीना हो मौज से जीयो। दो दिन की जिंदगी है, ठाठ से जीयो, फिक्र छोड़ो। दूसरे को चोट भी पहुंचती हो, दूसरे की हिंसा भी होती हो तो चिंता न लो। कैसी हिंसा, कैसी चोट! सब पुरोहितों का जाल है तुम्हें डरवाने के लिये।
मगर, अगर हम चार्वाक-चित्त के भीतर भी प्रवेश करें तो वही डर है। वह परमात्मा को इनकार कर रहा है डर के कारण।
तुमने ख्याल किया, अनेक लोग हैं, जो भूत-प्रेत को इनकार करते हैं, सिर्फ डर के कारण! तुम्हारा उनसे परिचय होगा... कि नहीं-नहीं, कोई भूत-प्रेत नहीं। लेकिन जब वे कहते हैं, नहीं-नहीं कोई भूत-प्रेत नहीं, जरा उनके चेहरे पर गौर करो।
एक महिला एक बार मेरे घर मेहमान हुई। उसे ईश्वर में भरोसा नहीं; वह कहे, ईश्वर है ही नहीं। मैंने कहाः छोड़ ईश्वर को, भूत-प्रेत को मानती है? उसने कहाः बिल्कुल नहीं! सब बकवास है।
मैंने कहाः तू ठीक से सोच ले। क्योंकि आज मैं हूं, तू है, और यह घर है। भगवान को तो मैं नहीं कह सकता कि तुझे प्रत्यक्ष करवा सकता हूं, लेकिन भूत-प्रेत का करवा सकता हूं।
उसने कहाः आप भी कहां की बातें कर रहे हैं, भूत-प्रेत होते ही नहीं! लेकिन मैं देखने लगा, वह घबड़ाने लगी। वह इधर-उधर देखने लगी। रात गहराने लगी।
मैंने कहाः फिर ठीक है। मैं तुझे बताये देता हूं।
उसने कहाः मैं मानती ही नहीं, आप क्या मुझे बतायेंगे? मैं बिल्कुल नहीं मानती।
मैंने कहाः मानने न मानने का सवाल नहीं है। यह घर जिस जगह बना है, यहां कभी एक धोबी रहता था। पहले महायुद्ध के समय। उसकी नई-नई शादी हुई। बड़ी प्यारी दुल्हन घर आयी। और सब तो सुंदर था दुल्हन का, एक ही खराबी थी कि कानी थी। गोरी थी बहुत, सब अंग सुडौल थे, बस एक आंख नहीं थी।
उसका चित्र मैंने खींचा।... धोबी को युद्ध पर जाना पड़ा। पहले ही महायुद्ध में भरती कर लिया गया। चिट्ठियां आती रहीं--अब आता हूं, तब आता हूं। और धोबिन प्रतीक्षा करती रही, करती रही, करती रही; वह कभी आया नहीं। वह मारा गया युद्ध में। धोबिन उसकी प्रतीक्षा करते-करते मर गयी और प्रेत हो गयी। और अभी भी इसी मकान में रहती है और प्रतीक्षा करती है कि शायद धोबी लौट आये। एक ही उसकी आंख है, गोरी-चिट्टी औरत है, काले लंबे बाल हैं। लाल रंग की साड़ी पहनती है।
वह मुझसे कहेः मैं मानती ही नहीं। मगर मैं देखने लगा कि वह घबड़ाकर इधर-उधर देखने लगी। मैंने कहाः मैं तुझे इसलिये कह रहा हूं कि तू पहली दफे नई इस घर में रुक रही है आज रात। इस घर में जब भी कोई नया आदमी रुकता है तो वह धोबिन रात आकर उसकी चादर उघाड़कर देखती है कि कहीं धोबी लौट तो नहीं आया?
तो उसके चेहरे पर पीलापन आने लगा। उसने कहाः आप क्या बातें कह रहे हैं? आप जैसा बुद्धिमान आदमी भूत-प्रेत में मानता है।
मैंने कहाः मानने का सवाल ही नहीं है, लेकिन तुझे चेताना भी जरूरी है, नहीं तो डर जायेगी ज्यादा। अब तेरे को मैंने बता दिया है, अगर कोई कानी औरत, गोरी-चिट्टी, लाल साड़ी में तेरी चादर हटा दे तो तू घबड़ाना मत, वह नुकसान किसी का कभी नहीं करती, चादर पटक कर पैर पटकती हुई वापस चली जाती है। और एक लक्षण और उसका मैं बता दूं।
जिनके घर में उन दिनों मेहमान था, उनको रात दांत पीसने की आदत है। रात में वे कोई दस-पांच दफा दांत पीसने लगते हैं। तो मैंने कहा, उस औरत की एक

आदत और तुझे बात दूं, जब वह आयेगी कमरे में तो दांत पीसती हुई आती है। स्वभावतः, कितनी प्रतीक्षा करे? जमाने बीत गये। उस औरत का प्रेम है, क्रोध से भरी आती है। धोबी धोखा दे गया, अब तक नहीं आया। तो वह दांत पीसती है, तुझे दांत पीसने की आवाज सुनाई पड़ेगी पहले।
उसने कहाः आप क्या बातें कर रहे हैं? मैं मानती ही नहीं। आप बंद करें
यह बातचीत। आप व्यर्थ मुझे डरा रहे हैं।
मैंने कहाः तू अगर मानती ही नहीं तो डरने का कोई सवाल ही नहीं। ऐसी बात चलती रही और रात बारह बज गये। तब मैंने उसको कहाः अब तू जा, कमरे में सो जा। वह कमरे में गयी। संयोग की बात वह कमरे में लेटी कि उन सज्जन ने दांत पीसे। वह बगल के कमरे में सो रहे थे। मुझे पक्का भरोसा ही था, उन पर आश्वासन किया जा सकता है। दस दफे तो वे पीसते ही हैं रात में कम-से-कम। वे पीसेंगे कभी न कभी। वह जाकर बिस्तर पर बैठी, प्रकाश बुझाया और उन्होंने दांत पीसे। चीख मार दी उसने। मैं भागा पहुंचा, प्रकाश जलाया, वह तो बेहोश पड़ी है और कोने की तरफ मुझे बता रही है--वह खड़ी है! उसको मैंने लाख समझाया कि कोई भूत-प्रेत नहीं होता। उसने कहाः अब मैं मान ही नहीं सकती, होते कैसे नहीं? वह सामने खड़ी है... । और जो आपने कहा था--एक आंख, गोरा-चिट्टा रूप, काले बाल, लाल साड़ी और दांत पीस रही है... ।
रात-भर परेशान होना पड़ा मुझे, क्योंकि वह न सोये न सोने दे। वह कहेः अब मैं सो ही नहीं सकती। अब मैं सोऊंगी, वह फिर आयेगी। और आप कहते हैं चादर उठायेगी, इतने पास आ जायेगी? मैं उसको कहूं कि कहीं भूत-प्रेत होते हैं? सब कल्पना में, मैं तो कहानी कह रहा था तेरे से। तुझे सिर्फ... ।
उसको तो रात बुखार आ गया! रात को डॉक्टर बुलाना पड़ा। और जिनके घर मैं मेहमान था वे कहने लगे कि आप भी फिजूल के उपद्रव खड़े कर लेते हैं। वह महिला दूसरे दिन सुबह चली गयी। फिर कभी नहीं आयी। उसको मैंने कई दफे खबर भिजवाई कि भई, कभी तो आओ। वह कहे कि उस घर में पैर नहीं रख सकती हूं। मैं उसको समझाऊं, कहीं भूत-प्रेत होते हैं? वह कहेः आप छोड़ो यह बात, किसको समझा रहे हैं? मुझे खुद ही अनुभव हो गया।
ख्याल करना, अक्सर ऐसा हो जाता है कि तुम जिस चीज से डरते हो उसको इनकार करते हो। इनकार इसीलिये करते हो, ताकि तुम्हें यह भी याद न रहे कि मैं डरता हूं। है नहीं तो डरना क्या है?
आस्तिक और नास्तिक में जरा भी भेद नहीं है। एक विधायक रूप से भयभीत है, एक नकारात्मक रूप से भयभीत है, बस। ऋण और धन का फर्क है, मगर भय दोनों का है। नास्तिक डर के कारण कह रहा है ईश्वर नहीं है। क्योंकि ईश्वर को मानना तो फिर उसके पीछे और बहुत कुछ मानना पड़ता है, जो उसे कंपाता है। आस्तिक कह रहा है ईश्वर है; विधायक रूप से भयभीत है। वह कह रहा है, ईश्वर है; अगर मैं उसको न मानूं, उसकी स्तुति न करूं, प्रार्थना-पूजा न करूं, उसको मनाऊं न, तो सताया जाऊंगा।
धार्मिक व्यक्ति कहता हैः ईश्वर के दोनों रूप हैं। ईश्वर आस्तिक और नास्तिक दोनों की धारणाओं और विश्वासों के पार है... ।
बसती न सुन्यं... ।
न तो वह है ऐसा कह सकते; न कह सकते कि नहीं है।
सुन्यं न बसती... ।
न कह सकते कि शून्य है, न कह सकते कि पूर्ण है।
... अगम अगोचर ऐसा।
ऐसा अगम्य है। हमारा कोई शब्द उसको माप नहीं सकता। हमारे शब्द छोटी- छोटी चाय की चम्मचों जैसे हैं, वह सागर जैसा है! इन चाय की चम्मचों में सागर को नहीं भरा जा सकता और न सागर को नापा जा सकता है। हमारे सब माप बड़े छोटे हैं। हमारे हाथ बड़े छोटे हैं। हमारी सामर्थ्य बड़ी छोटी है। उसका विस्तार अनंत है। वह असीम है।
अगम अगोचर ऐसा... ।
रहिमन बात अगम्य की, कहनि सुननि की नाहिं
जे जानति ते कहति नहिं, कहत ते जानति नाहिं।
रहिमन बात अगम्य की...

वह इतना अगम्य है! अगम्य शब्द का अर्थ समझना। अगम्य का अर्थ होता हैः जिसकी हम थाह न पा सकें, अथाह। लाख करें उपाय और थाह न पा सकें। क्योंकि उसकी थाह है ही नहीं। और जो उसकी थाह लेने गये हैं, वे धीरे-धीरे उसी में लीन हो गये हैं।
कहते हैं, दो नमक के पुतले एक बार सागर की थाह लेने गये थे। छलांग लगा
दी सागर में। भीड़ इकट्ठी हो गयी थी। मेला भरा था सागर के तट पर, सारे लोग आ गये थे। फिर दिनों तक प्रतीक्षा होती रही; फिर मेला धीरे-धीरे उजड़ भी गया, वे नमक के पुतले न लौटे सो न लौटे। नमक के पुतलों को थाह भी न मिली और खुद भी मिट गये।
हेरत हेरत हे सखी, रहा कबीर हिराइ।
गये थे खोजने, खो गये! नमक के पुतले सागर की खोज में जायेंगे, कब तक बचेंगे? गल गये होंगे। सागर के ही हिस्से थे, इसलिये नमक के पुतले का ख्याल है। हम भी नमक के पुतले हैं, वह सागर है; उसे खोजने जायेंगे, खो जायेंगे।
अगम्य का अर्थ होता हैः सिर्फ अज्ञात नहीं, क्योंकि अज्ञात वह है जो कभी ज्ञात हो जाएगा। आज जो ज्ञात हो गया है, कभी अज्ञात था। चांद पर आदमी नहीं चला था, अब आदमी चल लिया। अभी तक चांद अज्ञात था, अब ज्ञात हो गया। हमें अणु का रहस्य पता नहीं था, अब पता हो गया।
परमात्मा अज्ञात नहीं है, यही धर्म और विज्ञान का भेद है। धर्म कहता हैः जगत में तीन तरह की बातें हैं--ज्ञात, जो जान लिया गया; अज्ञात, जो जान लिया जाएगा; और अज्ञेय, जो न जाना गया है और न जाना जायेगा। विज्ञान कहता हैः जगत में सिर्फ दो ही चीजें हैं--ज्ञात और अज्ञात। विज्ञान दो हिस्सों में बांटता है जगत को--जो जान लिया गया और जो जान लिया जाएगा। बस उस एक अज्ञेय शब्द में ही धर्म का सारा सार छुपा है। कुछ ऐसा भी है जो न जाना गया और न जाना जाएगा। क्योंकि उसका राज यह है कि उसे खोजनेवाला खो जाता है उसमें।
रहिमन बात अगम्य की, कहनि सुननि की नाहिं
और जब खोजनेवाला ही खो गया तो कौन कहे, क्या कहे, कैसे कहे? सब शब्द बड़े छोटे हैं, बड़े ओछे हैं। तुम जीवन में भी अनुभव करते हो तो पाओगेः उठे सुबह-सुबह, बगीचे में सूरज उगने लगा, वृक्ष जगने लगे। धरती की सौंधी-सौंधी सुगंध उठने लगी। अभी-अभी वर्षा हुई होगी। घास के पत्तों पर ओस की बूंदें मोतियों जैसी चमकने लगीं। पक्षी गीत गाने लगे। कोई मोर नाचा, कोई कोयल कूकी। फूल खिले, कमलों ने अपनी पंखुड़ियां खोल दीं। यह सब तुम देख रहे हो। यह अगोचर भी नहीं है, गोचर है। यह अज्ञात भी नहीं है तुम्हें, ज्ञात है। यह सारा सौंदर्य तुम अनुभव कर रहे हो। तुमसे कोई पूछे, कह डालो एक शब्द में। क्या कहोगे? इतना ही कहोगे--सुंदर था, बहुत सुंदर था! मगर यह भी कोई कहना है? इस "बहुत सुंदर" में न तो सूरज की कोई किरण है, न माटी की सौंधी सुगंध है, न कमल की खिलती हुई पंखुड़ियां हैं, न पक्षियों के गीत हैं, न शबनम के मोती हैं, न वृक्षों की हरियाली है, न मुक्त आकाश है। कुछ भी तो नहीं। बहुत सुंदर में क्या है? कुछ भी तो नहीं। वर्णमाला के थोड़े-से अक्षर हैं।
ऐसे ही समझो, जैसे दीया शब्द लिखकर और दीवाल पर टांग दो तो रात कोई प्रकाश थोड़े ही हो जायेगा; अंधेरी रात है सो अंधेरी रहेगी। दीये की बातों से रोशनी तो नहीं होती।
पिकासो से एक महिला ने कहा कि कल आपके द्वारा बनाई गई आपकी ही तस्वीर, सेल्फपोर्ट्रेट, मैंने एक मित्र के घर में देखा। इतना सुंदर, इतना प्यारा कि मैं अपने को रोक न पायी; मैंने उसे चूम लिया। पिकासो ने कहाः फिर क्या हुआ? उस तस्वीर ने तुम्हें चूमा या नहीं?
उस स्त्री ने कहाः आप भी क्या बात करते हैं! नहीं चूमा।
तो पिकासो ने कहाः फिर वह मेरी तस्वीर न रही होगी।
मुल्ला नसरुद्दीन को उसके पड़ोसी ने कहा कि आपके साहबजादे को सम्हालो, अभी से लुच्चा है। कल मेरी पत्नी को पत्थर मारा।
मुल्ला ने पूछा, लगा? उसने कहा कि नहीं। तो उसने कहाः वे किसी और के साहबजादे होंगे। मेरे साहबजादे का निशाना तो लगता ही है। वे किसी और के होंगे। तुम गलती समझे। ऐसा ही पिकासो ने कहा कि फिर वह मेरी तस्वीर न रही

होगी। मैं तो नहीं था वह। चुंबन का उत्तर ही न आया तो क्या खाक बात बनी।
प्रत्युत्तर आना चाहिए।
तस्वीरों से प्रत्युत्तर नहीं आते। इसलिये तस्वीरें भी छोटी पड़ जाती हैं। हमारे गीत भी छोटे पड़ जाते हैं, हमारे शब्द भी, शास्त्र भी छोटे पड़ जाते हैं। इस जगत में जो हम जानते हैं, वह भी कहा नहीं जा सकता... ।
किसी मां ने अपने बेटे को प्रेम किया। कैसे कहो, प्रेम शब्द में क्या है? कोई भी दोहराता है। कहो कि मुझे अपने बेटे से बहुत प्रेम है, या अपनी पत्नी से बहुत प्रेम है। क्या मतलब? यहां तो लोग हैं जो कहते हैं, आइस्क्रीम से प्रेम है। कोई कहता है, मुझे मेरी कार से बहुत प्रेम है। जहां आइस्क्रीम और कारों से प्रेम चल रहा है; प्रेम शब्द का अर्थ क्या रह गया? जब तुम कहते हो मुझे अपनी पत्नी से बहुत प्रेम है, तुम्हारी पत्नी है या आइस्क्रीम? प्रेम का अर्थ क्या रहा? हमारे शब्द छोटे हैं, उन्हीं छोटे शब्दों का हम सब तरह से उपयोग करते हैं। सीमा है उनकी। जगत में जो अनुभव में आता है, वह भी उनमें नहीं समाता, तो वह जो परम अनुभव है, आत्यंतिक अनुभव है--जहां सब विचार शून्य हो जाते हैं, शांत हो जाते हैं, जहां व्यक्ति भाषा के पार निकल जाता है, जहां तर्कजाल पीछे छूट जाते हैं, जहां निर्विचार होता है--उसमें जिसकी प्रतीति होती है, उसे कह न सकोगे।
जे जानति ते कहति नहिं...
इसलिये जिन्होंने जाना है, वे नहीं कह पाये। आज तक कोई भी नहीं कह पाया। तुम सोचते हो मैं तुमसे रोज कहता हूं, कह पाता हूं? नहीं, और सब कह लेता हूं, मगर वह अगम्य अगम्य ही रह जाता है। उसके आस-पास बहुत कुछ कह लेता हूं, लेकिन कोई तीर शब्द का उस निशान पर नहीं लगता। और सब कहा जा सकता है, लेकिन सब कहना इशारों से ज्यादा नहीं है।
जो मैं कहता हूं, उसको मत पकड़ लेना। जो कहता हूं वह तो ऐसा ही है जैसे मील का पत्थर। और उस पर तीर का निशान लगा है कि दिल्ली सौ मील दूर है। उसी को पकड़कर मत बैठ जाना कि आ गए दिल्ली। मैं जो कहता हूं वह तो ऐसे ही है जैसे कोई अंगुली से चांद दिखाये। अंगुली को मत पूजने लगना। सारे शास्त्र चांद को बताई गयी अंगुलियां हैं। चांद को कोई अंगुली प्रगट नहीं करती। लेकिन जो समझदार हैं, वे इशारे को पकड़ लेते हैं। समझदार को इशारा काफी।
बुद्ध के पास एक आदमी आया। उसने कहाः जो नहीं कहा जा सकता, वही सुनने आया हूं। बुद्ध ने आंखें बंद कर लीं। बुद्ध को आंखें बंद किये देख वह आदमी भी आंख बंद करके बैठ गया। आनंद पास ही बैठा था--बुद्ध का अनुचर, सदा का सेवक--सजग हो गया कि मामला क्या है? झपकी खा रहा होगा, बैठा-बैठा करेगा क्या। जम्हाई ले रहा होगा। देखा कि मामला क्या है? इस आदमी ने कहा, जो नहीं कहा जा सकता वही सुनने आया हूं। और बुद्ध आंख बंद करके चुप भी हो गये और यह भी आंख बंद करके बैठ गया। दोनों किसी मस्ती में खो गये। कहीं दूर... शून्य में दोनों का जैसे मिलन होने लगा। आनंद देख रहा है, कुछ हो जरूर रहा है; मगर शब्द नहीं कहे जा रहे हैं--न इधर से न उधर से। न ओंठ से बन रहे हैं शब्द, न कान तक जा रहे हैं शब्द; मगर कुछ हो जरूर रहा है! कुछ अदृश्य उपस्थिति उसे अनुभव हुई। जैसे किसी एक ही आभामंडल में दोनों डूब गये। और वह आदमी आधी घड़ी बाद उठा। उसकी आंखों से आनंद के आंसू बह रहे थे। झुका बुद्ध के चरणों में, प्रणाम किये और कहाः धन्यभाग मेरे! बस ऐसे ही आदमी की तलाश में था जो बिना कहे कह दे। और आपने खूब सुंदरता से कह दिया! मैं तृप्त होकर जा रहा हूं।
वह आदमी रोता आनंदमग्न, बुद्ध से विदा हुआ। उसके विदा होते ही आनंद ने पूछा कि मामला क्या है? हुआ क्या? न आप कुछ बोले न उसने कुछ सुना। और जब वह जाने लगा और उसने आपके पैर छुए तो आपने इतनी गहनता से उसे आशीष दिया, उसके सिर पर हाथ रखा, जैसा आप शायद ही कभी किसी के सिर पर हाथ रखते हों! बात क्या है, इसकी गुणवत्ता क्या थी?
बुद्ध ने कहाः आनंद! तू जानता है, जब तू जवान था, हम सब जवान थे--सगे भाई थे, चचेरे भाई थे बुद्ध और आनंद, एक ही राजघर में पले थे, एक ही साथ बड़े हुए थे--तो तुझे घोड़ों से बहुत प्रेम था। तू जानता है न, कुछ घोड़े होते हैं कि उनको मारो तो भी ठिठक जाते हैं, मारते जाओ तो भी नहीं हटते। बड़े जिद्दी होते हैं! फिर कुछ घोड़े होते हैं, उनको जरा चोट करो कि चल पड़ते हैं। फिर कुछ

घोड़े होते हैं, उनको चोट नहीं करनी पड़ती, सिर्फ कोड़ा फटकारो, आवाज कर दो, मारो मत और चल पड़ते हैं। और भी कुछ घोड़े होते हैं, तू जानता है भलीभांति, जिनको कोड़े की आवाज करना भी अपमानजनक मालूम होगा, जो सिर्फ कोड़े की छाया देखकर चलते हैं। यह उन्हीं घोड़ों में से एक था। कोड़े की छाया। मैंने इससे कुछ कहा नहीं, मैं सिर्फ अपनी शून्यता में लीन हो गया। इसे बस मेरी छाया दिख गयी, सत्संग हो गया। इसका नाम सत्संग।
और ऐसा नहीं है कि बुद्ध बोलते नहीं हैं। जो बोलना ही समझ सकते हैं, उनसे बोलते हैं। जो धीरे-धीरे न बोलने को समझने लगते हैं, उनसे नहीं भी बोलते हैं। बोलना "नहीं-बोलने" की तैयारी है।
सत्संग के दो रूप हैं। एक--जब गुरु बोलता है, क्योंकि अभी तुम बोलना ही समझ सकोगे, बोलना भी समझ जाओ तो बहुत। फिर दूसरी घड़ी आती है--परम घड़ी--जब बोलने का कोई सवाल नहीं रह जाता; जब गुरु बैठता है, तुम पास बैठे होते हो। इस घड़ी को पुराने दिनों में उपनिषद कहते थे--गुरु के पास बैठना! इसी पास बैठने में हमारे उपनिषद पैदा हुए हैं; उनका नाम भी उपनिषद पड़ गया! गुरु के पास बैठ-बैठकर शून्य में जो संगीत सुना गया था, उसको ही संग्रहीत किया गया है, उन्हीं से उपनिषद बने। उपनिषद का मतलब होता हैः पास बैठना, सत्संग! नहीं; जे जानति ते कहति नहिं, कहत ते जानति नाहिं। इसलिये जो कहता हो
कि मैं तुम्हें ईश्वर जना दूंगा, सावधान हो जाना। तुम्हें धोखा दिया जायेगा। तुम्हें शब्द पकड़ा दिये जायेंगे। जो कहता हो कि मैंने जान लिया है उसे, उसका दावा घातक सिद्ध होगा। उसे जाना नहीं जाता। जो उसे जानता है वही हो जाता है। जो उसे जानता है उसमें और जो जाना जाता है उसमें, भेद नहीं रह जाता। वहां ज्ञान, ज्ञाता और ज्ञेय ऐसे खंड नहीं होते। वहां ज्ञाता ज्ञेय में लीन हो जाता है। वहां ज्ञेय ज्ञाता में लीन हो जाता है। इसलिये उसे अगम्य कहते हैं। उसकी फिर थाह नहीं मिलती, थाह लेनेवाला ही खो गया। हेरत हेरत हे सखी, रहा कबीर हिराइ!
बसती न सुन्यं सुन्यं न बसती अगम अगोचर ऐसा।
गगन सिषर महिं बालक बोले ताका नांव धरहुगे कैसा।।
और जब कोई इस अगम्य को झेलने को राजी हो जाए, जब कोई इस अगम्य में उतरने का साहस जुटा लेता है, वही साहस का नाम हैः
मरौ वे जोगी मरौ, मरौ मरण है मीठा।
तिस मरणी मरौ, जिस मरणी गोरख मरि दीठा।।
मिट जाओ, मर जाओ, तो दिखाई पड़े, तो मिलन हो। खो जाओ तो खोज पूरी हो जाये। तो उसके भीतर मस्तिष्क की एक नयी अभिव्यंजना होती है।
गगन सिषर महिं बालक बोले... ।
उसके सहस्रार में, उसके मस्तिष्क में शून्य पैदा हो जाता है। जब सब विचार विदा हो जाते हैं; जब अहंकार विदा हो जाता है; जब मैं हूं ऐसा भाव ही नहीं रह जाता; जब वहां सिर्फ होता है--मौन, शांत, शून्य--इसको समाधि कहते हैं। जब समाधि फल जाती है! जब तुम जागरूक होते हो; मगर कोई चित्त में विचार की धारा नहीं बहती। विचार का मार्ग शून्य हो गया, शांत हो गया, कोई यात्री नहीं चलते--निर्विचार, निर्विषय चित्त हो गया। तुम सिर्फ शुद्ध दर्पण रह गये, जिसमें अब कोई छाया नहीं बनती, कोई प्रतिबिंब नहीं बनता। इस अवस्था में तुम्हारे भीतर का कमल खिलता है, तुम्हारे मस्तिष्क में शून्य का जन्म होता है। वहां कोई चीज भरनेवाली नहीं रह जाती। तुम सिर्फ एक खाली, पवित्र रिक्तता मात्र रह जाते हो।
गगन सिषर महिं बालक बोले... ।
और तब उसकी निर्दोष आवाज, जैसे छोटे बच्चे की किलकारी! जैसे अभी-अभी पैदा हुए बच्चे की आवाज! नई-नई, ताजी-ताजी, सद्यःस्नात, नहाई-नहाई कुंवारी आवाज सुनाई पड़ती है। उसका नाद अनुभव होता है।
ऐसी ही अवस्था में मुहम्मद ने कुरान को सुना। ऐसी ही अवस्था में ऋषियों ने वेद सुने। ऐसी ही अवस्था में जगत के सारे महत्वपूर्ण शास्त्रों का जन्म हुआ है। वे सभी अपौरुषेय हैं--पुरुष ने उनका निर्माण नहीं किया है; आदमी के हाथ उनमें नहीं लगे हैं। परमात्मा बहा है; आदमी तो सिर्फ मार्ग बना है।
गगन सिषर महिं बालक बोले, ताका नांव धरहुगे कैसा।

और वह निर्दोष स्वर जब भीतर उठता है तो उसे कोई नाम नहीं दिया जा सकता। वह अनाम है। उसे कोई विशेषण भी नहीं दिया जा सकता, क्योंकि सब विशेषण सीमा बांध देंगे; और वह असीम है, वह अनंत है। बिंदु सिंधु हो गया। बूंद उड़ गयी, आकाश हो गयी; अब कौन बोले, क्या बोले? वहां से जब कोई लौटता है तो गूंगा, बिल्कुल गूंगा हो जाता है। बोलता है बहुत, और-और बातें बोलता है। कैसे वहां तक पहुंचो, यह बोलता है; किस मार्ग से पहुंचो, यह बोलता है; किस विधि-विधान से पहुंचोगे, यह बोलता है। लेकिन वहां क्या हुआ, इस संबंध में बिल्कुल चुप रह जाता है। कहता हैः तुम्हीं चलो, तुम्हीं देखो। झरोखा कैसे खोलोगे, यह विधि बता देता हूं। ताली कौन-सी चलाओगे जिससे ताला खुल जाये, यह बता देता हूं। मगर जो दर्शन होगा, वह तो तुम जाओगे तभी होगा! उस दर्शन को उधार कोई किसी को दे नहीं सकता।
हसिबा खेलिबा धरिबा ध्यानं!
लेकिन जिसको यह अनुभव हो गया है, उसके जीवन में तुम्हें कुछ चीजें दिखाई पड़ने लगेंगी। बड़े प्यारे वचन हैं, बड़े गहरे वचन हैं!
हसिबा खेलिबा धरिबा ध्यानं... ।
उसे तुम देखोगे हंसते हुए, खेलते हुए। जीवन उसके लिये लीला हो गया। उसे तुम गंभीर नहीं पाओगे। यह कसौटी है सदगुरु की। उसे तुम गंभीर और उदास नहीं पाओगे। तुम उसे हंसता हुआ पाओगे।
हसिबा खेलिबा धरिबा ध्यानं... ।
उसके लिये सब हंसी-खेल है, सब लीला है। इसलिये हमने कृष्ण को पूर्णावतार कहा। राम गंभीर हैं, छोटी-छोटी बात का हिसाब रखते हैं, नियम-मर्यादा से चलते हैं--मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। कृष्ण अमर्याद हैं--न कोई नियम है, न कोई मर्यादा है। कृष्ण के लिये जीवन लीला है।
जीवन एक खेल है। इसको खेल से ज्यादा मत लेना, खेल से ज्यादा लिया कि बस उलझे। नाटक समझो, अभिनय समझो। अभिनय में कोई परेशान थोड़े ही होता है। जो अभिनय मिल गया है उसी को मस्ती से कर देता है। रावण भी बनना पड़ता है रामलीला में किसी को तो कुछ परेशान थोड़े ही होता है; कोई दिल ही दिल में रोता थोड़े ही है कि हाय, मैं कैसा अभागा कि मुझे रावण बनना पड़ा! पर्दा हटते ही राम और रावण सब बराबर हो जाते हैं। यहां एक-दूसरे की जान लेने को उतारू थे, पर्दे के पीछे जाकर देखना बैठे चाय पी रहे हैं, गपशप कर रहे हैं। सीताजी दोनों के बीच में बैठी हैं। न कोई चुराने का सवाल है, न कोई बचाने का सवाल है।
जीवन एक अभिनय है; लेकिन उसी के लिये पूर्ण अभिनय हो पाता है जो शून्य
को उपलब्ध हो जाता है।
हसिबा खेलिबा धरिबा ध्यानं... ।
फिर तो ध्यान भी खेल ही है, हंसी ही है। मुझसे लोग पूछते हैं कि यह आपका आश्रम कैसा! यहां लोग हंसते हैं, नाचते हैं, खेलते हैं, कूदते हैं। और कैसा आश्रम हो सकता है?
हसिबा खेलिबा धरिबा ध्यानं, अहनिसि कथिबा ब्रह्मगियानं।
और फिर तो वह जो भी बोलता है वही ब्रह्मज्ञान है। अहनिसि। जैसे उठता है, जैसे बोलता है... । चुप रह जाये तो चुप रहने में ब्रह्मज्ञान है, बोले तो बोलने में ब्रह्मज्ञान है, नाचे तो नाचने में ब्रह्मज्ञान है, और शांत बैठ जाये तो शांत बैठ जाने में ब्रह्मज्ञान है। उसका सारा व्यक्तित्व ब्रह्म को समर्पित हो गया, समग्र को समर्पित हो गया। अब वह व्यक्ति अलग नहीं है। इसीलिये तो हंसता है, खेलता है। अब परमात्मा की लीला का अंग हो गया है। हंसै शेलै न करै मन भंग।
इसलिये हंसो, और खेलो, और मन को व्यर्थ गंभीर करके दुखी और परेशान न हो जाओ। मन-भंग न करो।
लेकिन तुम देखते हो, कुछ लोग सांसारिक अर्थों में बड़े परेशान हैं; और कुछ लोग धार्मिक अर्थों में बड़े परेशान हैं। दोनों का मन भंग हो रहा है। एक धन के पीछे दौड़ा जा रहा है, उसका मन भंग हुआ; एक धन से घबड़ाकर भागा जा रहा है, उसका मन भंग हुआ। एक कहता है कि जितनी ज्यादा स्त्रियां मुझे मिल जायें उतना अच्छा। और एक कहता है कहीं स्त्री न दिख जाये, नहीं तो सब गड़बड़ हो जायेगा। मगर ये दोनों के मन भंग हैं, इन दोनों को हंसी-खेल नहीं आया है।

इन्हें जिंदगी में लीला की कला नहीं आयी। ये बड़े गंभीर हैं। ये बड़े ही अति गंभीर हैं। इनकी गंभीरता इनकी बीमारी है।
हसिबा खेलिबा धरिबा ध्यानं, अहनिसि कथिबा ब्रह्मगियानं।
हंसै शेलै न करै मन भंग... ।
इसलिए कहते हैं हंसो, खेलो, मन को भंग न करो।
ते निहचल सदा नाथ के संग।
तो इसी हंसी-खेल में डूबे-डूबे, इसी मौज, इसी लीला में पगे-पगे नाथ के सदा संग हो जाओगे। ते निहचल सदानाथ के संग। प्रतिपल फिर परमात्मा और तुम्हारा साथ रहेगा। साथ कहना भी शायद ठीक नहीं है, तुम एक ही हो गये। वही अर्थ हैः निहचल सदा नाथ के संग। एक क्षण को भी साथ नहीं छूटता। साथ सातत्य बन गया।
अहनिसि मन लै उनमन रहै... ।
प्रतिपल, उठते-बैठते, जागते-सोते एक ही ख्याल रहेः मन लै उनमन रहै। मन
को अमन बनाना है। जिसको झेन फकीर कहते हैं--नो माइंड, उनमन। चित्त को शून्य कर देना है।
मन क्या है? अतीत के विचार, भविष्य की योजनाएं--यही मन है। जो हो चुका, उसका शोरगुल; जो होना चाहिए, उसकी अपेक्षाएं--यही मन है। न अतीत रह जाये, न भविष्य रह जाये। फिर क्या है? वर्तमान है।
हसिबा खेलिबा धरिबा ध्यानं... ।
फिर तो यह शुद्ध वर्तमान रह जाता है, जिसमें विचार की कोई छाया भी नहीं पड़ती। और अतीत है नहीं, उसी में तुम उलझे हो। और भविष्य अभी हुआ नहीं, उसमें तुम उलझे हो। कुछ लोग अतीत-उन्मुख हैं, उनकी आंखें पीछे गड़ी हैं। और कुछ लोग भविष्य-उन्मुख हैं, उनकी आंखें आगे गड़ी हैं। और दोनों वंचित रह जाते हैं उससे--"जो है"। और "जो है" अभी, इस क्षण, वही परमात्मा का रूप है। इसी क्षण जीयो, क्षण-क्षण जीयो! फिर कैसी उदासी?
तुमने कभी एक बात पर ख्याल किया है, वर्तमान में सदा रस है और वर्तमान में सदा आनंद है। जब तुम कभी दुखी होओ तो थोड़ा सोचना, दुख या तो अतीत के संबंध में होता है या भविष्य के संबंध में। या तो जैसा तुम करना चाहते थे नहीं कर पाये अतीत में, उसका दुख होता है; या भविष्य में जैसा तुम करना चाहते हो, वैसा कर पाओगे या नहीं कर पाओगे, उसके संबंध में चिंता और पीड़ा होती है।
कभी तुमने इस पर ख्याल किया, इस छोटे-से सत्य को कभी देखा है कि वर्तमान में कोई दुख नहीं है, कोई चिंता नहीं है? इसलिये वर्तमान मन को भंग नहीं करता, चिंता मन को भंग करती है। वर्तमान में दुख होता ही नहीं। वर्तमान दुख को जानता ही नहीं। वर्तमान का इतना छोटा क्षण है कि उसमें दुख समा ही नहीं सकता। वर्तमान में स्वर्ग ही समा सकता है, नर्क नहीं समा सकता। नर्क का बड़ा विस्तार है। वर्तमान में तो सिर्फ शांति हो सकती है, सुख हो सकता है, समाधि हो सकती है।
अहनिसि मन लै उनमन रहै... ।
तो मन को उनमन कर दो, मन को पोंछ डालो। मतलब हुआः अतीत और भविष्य को सोचो मत। यह क्षण जो आया है, अभी ही थोड़ा इसका स्वाद लो।
यह जो क्षण है... यह दूर ट्रेन के गुजरने की आवाज, सन्नाटे में बैठे हुए लोग, प्रेम-पगे, मेरी बात को सुनते हुए, मेरी तरफ अपलक देखते हुए तुम, वृक्षों पर पड़ती हुई धूप, हवा के झोंके--अभी कहां दुख, कैसा दुख? इस क्षण में सब सुख है। इस सुख को गहराओ। इस सुख को पीयो। यही मदिरा है, जो ढालनी है। यही मधुशाला है, जिसके अंग हो जाना है। एक क्षण से ज्यादा तो कभी कुछ मिलता नहीं, दो क्षण एक साथ तो मिलते नहीं। बस एक क्षण को जीयो।
जीसस ने अपने शिष्यों को कहा हैः देखते हो, खेत में उगे हुए लिली के फूलों को, इनका सौंदर्य क्या, इनके सौंदर्य का राज क्या? गरीब लिली के फूल... इनके सौंदर्य का रहस्य क्या है, इनकी सुगंध कहां से उठती है? और मैं तुमसे कहता हूं--जीसस ने कहा--कि सम्राट सोलोमन भी अपने परम वैभव में इतना सुंदर नहीं था, जितने ये लिली के फूल! राज क्या है इनके सौंदर्य का? इनके सौंदर्य का राज एक हैः जो गया गया, जो आया नहीं आया नहीं। इन्हें न बीते कल की चिंता है, न आनेवाले कल की चिंता है। ये बस यहीं हैं... ।

इसलिये, जीसस ने अपने शिष्यों को कहाः कल की मत सोचो। सब सोच कल का है।
इस क्षण में कोई सोच नहीं होता। और जहां सोच नहीं है, जहां विचार नहीं है, जहां चिंता नहीं है, वहां मन नहीं है। और जहां मन नहीं है, वहां परमात्मा है। मन मर जाये तो परमात्मा का अनुभव हो जाये। मरौ हे जोगी मरौ!
छांड़ै आसा रहै निरास... ।
आशा करते हो, उससे ही मन पैदा होता है। मन है और की मांग। मन कहता हैः और, और... । जो भी दे दो, वही कम है, और चाहिए। यह और की बीमारी ऐसी पुरानी बीमारी है कि कितना ही देते चले जाओ, मन अपनी आदत से पुराना है, मांगता चला जायेगा। दस हजार हैं, दस लाख मांगेगा; दस लाख दो, दस करोड़ मांगेगा। मांगता ही रहेगा। ऐसी कोई घड़ी न आने देगा, ऐसा कोई पल न आने देगा, जहां मन तुमसे कह दे कि बस... । बस आता ही नहीं, पूर्ण विराम लगता ही नहीं।
इसलिये मन दौड़ाये रखता है। सिकंदरों को भी दौड़ाये रखता है। सब भागते चले जाते हैं, सब दौड़ते चले जाते हैं--दौड़ते-दौड़ते ही मर जाते हैं। झूले से लेकर कब्र तक सिवाय इस महत्वाकांक्षा की दौड़ के और तुम क्या हो? इस दौड़ से हासिल क्या, इससे कब किसको क्या मिला है?
छांड़ै आसा रहै निरास... ।
फर्क समझ लेना, निराश शब्द का वह अर्थ नहीं है जो तुम करने लगे हो अब। निराश कहते हैं उस आदमी को जो बैठा है उदास, उसको हम निराश कहने लगे हैं। शब्द को हमने विकृत कर दिया है। निराश का सिर्फ इतना ही अर्थ होता हैः जिसने सब आशाएं छोड़ दीं। और जिसने सब आशाएं छोड़ दीं, वह हमारे आधुनिक अर्थ में निराश हो ही नहीं सकता। निराश तो वही होता है, जिसकी आशा होती है, और आशा पूरी नहीं होती। तब निराशा होती है।
जो आधुनिक अर्थ है निराशा का, वह समझ लो ठीक से। आधुनिक अर्थ हैः तुमने आशा की और पूरी नहीं हुई--तो निराशा। बैठे हो उदास... । चाहा था कि मिल जाये लाटरी और फिर नहीं मिली।
मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन उदास बैठा था। पड़ोसी ने पूछा कि बड़े उदास मालूम हो रहे हो, तुम्हें तो खुश होना चाहिए। मैंने सुना है कि तुम्हारे चाचा पिछले सप्ताह मर गये और पचास हजार रुपये तुम्हारे नाम छोड़ गये, तुम्हें तो खुश होना चिहए।
नसरुद्दीन ने कहाः हां, खुश हुए थे, मगर अब नहीं हैं खुश। पिछले सप्ताह चाचा जी मर गये थे, पचास हजार छोड़ गये थे; उससे पिछले सप्ताह मामा जी मर गये थे, वे एक लाख रुपये छोड़ गये थे। और अब एक सप्ताह पूरा होने आया, अभी तक कोई नहीं मरा... क्या खाक... चित्त बड़ा निराश हो रहा है। सप्ताह पूरा होने आया, यह शनिवार आ गया, यह रविवार आया जाता है, अभी तक कोई भी नहीं मरा। हंसो मत, मन की यही प्रक्रिया है। जितना दो उतना ही भिखमंगा होता चला जाता है। जितना मिले उतना दीन-दरिद्र हो जाता है। बड़े-बड़े सम्राट भी हाथ फैलाये खड़े हैं--और मिल जाये... ।
पुराना जो अर्थ है "निराश" का, बड़ा गंभीर है, बड़ा गहन है, और बड़ा अर्थपूर्ण है। उसका अर्थ हैः आशा गयी, उसकी तो निराशा भी गयी। न आशा बची न निराशा बची, उस अवस्था को निराश कहते थे। निर धन आस। आशा नहीं। उसी के साथ तो निराशा भी गयी। जिसको सफलता की आकांक्षा नहीं उसको विफल कैसे करोगे? और जिसकी कोई आशा नहीं है उसको निराश कैसे करोगे?
लाओत्सु ने कहा हैः मुझे कोई हरा नहीं सकता, क्योंकि मेरे मन में जीतने की कोई आकांक्षा नहीं है। आओ, कोई मुझे हराओ। कोई मुझे हरा नहीं सकता, क्योंकि मैं जीतना ही नहीं चाहता।
अगर तुम लाओत्सु पर हमला करोगे, वह चारों खाने चित लेट जायेगा और कहेगाः भाई, बैठो, ऊपर बैठ जाओ। थोड़ा मजा ले लो, लंगोटा घुमाओ, अपने घर जाओ। मुझे कोई इच्छा ही नहीं जीतने की, इसलिए मुझे हराओगे कैसे? उसी को हरा सकते हो जो विजय का आकांक्षी हो।
और वही निराशा को उत्पन्न होता है, जो आशा से भरा था। पुराना निराश का अर्थ बड़ा बहुमूल्य है। आशा-निराशा दोनों की शून्यता जहां है, उसको निराश कहते हैं। और यह होना ही चाहिए। अगर तुम्हारा अर्थ निराशा का होता तो फिर हसिबा खेलिबा धरिबा ध्यानं, हंसै शेलै न करै मन भंग... फिर इसका कोई अर्थ नहीं रह जायेगा।

नहीं; निराश का अर्थ हैः हमने सब आशाएं छोड़ दीं। अब हम मांगते ही नहीं,
हम भिखमंगे न रहे। अब भविष्य से हमारी कोई अपेक्षा नहीं है; जो होगा होगा; जो नहीं होगा नहीं होगा। जो होगा हम उसमें मस्त हैं। हसिबा खेलिबा धरिबा ध्यानं। जो है, हम उसमें आनंदित हैं। जैसा है, उससे हमें रत्ती-भर भिन्न की कोई आकांक्षा नहीं है। उसने अब तक दिया है, देता रहेगा; हर घड़ी हम आनंद से जीये हैं।
और एक बड़े मजे की बात है कि जो जितना आनंद से जीता है, उतना ज्यादा आनंद उसे मिलता है। जो जितना ज्यादा दुखी जीता है, उतना ज्यादा दुख उसे मिलता है। क्योंकि हम जो अपने प्राणों में पैदा करते हैं, वही आकर्षित होने लगता है हमारी तरफ। हम चुंबक बन जाते हैं।
जीसस का प्रसिद्ध वचन है कि जिनके पास है, उन्हें और दिया जायेगा, और जिनके पास नहीं है, उनसे वह भी छीन लिया जायेगा जो उनके पास है। बड़ा कठोर वचन है! लगता है बड़ी अन्यायपूर्ण बात हो गयी यह तो, कि जिनके पास है उन्हें और दिया जायेगा और जिनके पास नहीं है उनसे वह भी छीन लिया जायेगा जो है। नहीं; लेकिन जीसस के वचन में जरा भी अन्याय नहीं है। यह जीवन का सीधा-सीधा नियम है। यही घट रहा है। अगर तुम आनंदित हो, तुम और भी आनंदित हो जाओगे। तुम अगर हंस सकते हो, तुम्हारी हंसी में और चार चांद जुड़ते जायेंगे। तुम अगर नाच सकते हो, तुम्हारे नाच में और छंदबद्धता आ जायेगी। तुम अगर गा सकते हो, आकाश तुम्हारे साथ गायेगा, पर्वत-शृंखलाएं तुम्हारे साथ गायेंगी, चांद, तारे तुम्हारे साथ गायेंगे। और तुम अगर रोने लगे, और तुम अगर बेचैन होने लगे तो चारों तरफ से बेचैनियां तुम्हारी तरफ चलने लगेंगी। तुम जो हो, उसी को तुम आकर्षित करते हो। यह जीवन का परम नियम है। तुम जैसे हो वही तुम्हारे पास आता है। इसलिये सुखी आदमी और सुखी होता जाता है। शांत आदमी और शांत होता जाता है। अशांत आदमी और अशांत होता जाता है। दुखी आदमी और दुखी होता जाता है। तुम्हारा अभ्यास बढ़ता जाता है। दुखी आदमी दुख का अभ्यास कर रहा है।
मुल्ला नसरुद्दीन अपने डाक्टर के पास गया, सुबह-सुबह खांसता- खंखारता... । डाक्टर ने कहा कि नसरुद्दीन क्या हालत है, खांसी कुछ अच्छी मालूम होती है? उसने कहाः अच्छी क्यों नहीं होगी, तीन सप्ताह से अभ्यास कर रहा हूं। अच्छी क्यों नहीं होगी! रात-भर अभ्यास किया है, लयबद्धता आयी जा रही है। साज बैठा जा रहा है। अच्छी क्यों नहीं होगी?
लोग दुख में भी कुशल हो जाते हैं, ख्याल रखना। मैं जानता हूं हजारों लोगों को, दुख में कुशल हो गये हैं। दुख के कलाकार हैं वे! जहां दुख न भी हो वहां दुख पैदा कर लेते हैं। उनकी कुशलता ऐसी है, उनकी प्रवीणता ऐसी है, कि जहां न भी हो कांटा वहां भी कांटा गड़ा लेते हैं। उन्हें फूल भी कांटे हो जाते हैं। अब यहां तो मस्ती का आलम है, यहां आकर लोग दुखी हो जाते हैं। यह देखकर दुखी हो जाते हैं कि दूसरे इतने मस्त क्यों हैं? बात क्या है? यह कैसा धर्म? धर्म से उनका प्रयोजन है--बैठे हैं अपनी-अपनी कब्र पर... एक पांव कब्र में डाले, माला हाथ में लिये, मुर्दे, ठूंठ, सब पत्ते झड़ गये... ! न कोई फूल लगता है, न कोई पक्षी बोलते हैं, तब वे कहते हैंः अहा! यह है धर्म। महात्मा बहुत पहुंचे हुए हैं!
तुम दुखी हो गये हो, तुम दुख की ही भाषा समझ पाते हो अब। तुम दुख को ही पहचान पाते हो। तुम्हारी दुख के संबंध में इतनी कुशलता हो गयी है कि दुखी से ही तुम्हारा संबंध जुड़ जाता है। तो जितना कोई महात्मा अपने को सताये, गलाये, परेशान करे, उतनी भीड़ उसके पास इकट्ठी होने लगती है।
मुझसे लोग पूछते हैं कि आपके पास भारतीय लोग कम क्यों आ रहे हैं? उसका कारण हैः भारत दुख में निष्णात हो गया है। हजारों साल में इसने स्वयं को कष्ट देने की कला में खूब कुशलता पा ली है। कांटे बिछाते हैं लोग, उन पर सोते हैं; जैसे कि बिना कांटों के उन्हें नींद न आयेगी! वैसे ही आग बरस रही है, वे और धूनी लगाकर बैठे हैं। शरीर वैसे ही मिट्टी हुआ जा रहा है, उस पर और राख पोतते हैं। इस देश ने बहुत दुख का अभ्यास कर लिया है। मेरा संदेश सुख का है। हसिबा खेलिबा धरिबा ध्यानं... ।
इसलिये उन्हें बात रुचती नहीं है, उन्हें बड़ी अड़चन होती है। उन्हें
यह स्वीकार ही नहीं हो पाता कि नृत्य का और ध्यान से कोई संबंध हो सकता है,

कि संगीत का और ध्यान से कोई संबंध हो सकता है। उन्हें यह बात समझ में नहीं आती। और निश्चित ही तब वे मेरे प्रति क्रोध से भर जाते हैं। इस अपूर्व स्थल के प्रति उनके मन में सिवाय द्वेष के और दुश्मनी के कुछ भी पैदा नहीं होता। उन्होंने अपने दुख को खूब मजबूती से पकड़ा है। वे दुख को छोड़ने को राजी नहीं हैं। और जब तक इस देश से दुख की यह आदत न टूटेगी, तब तक इस देश के सौभाग्य का उदय होनेवाला नहीं।
और मैं तुमसे कहता हूं कि धर्म का यह आदेश नहीं है कि तुम दुखी हो जाओ। धर्म आनंद की खोज है। तभी तो हमने परमात्मा को सच्चिदानंद कहा है। धर्म परम आनंद की खोज है। और इस जगत के आनंद, छोटे-छोटे आनंद, उस मंदिर की सीढ़ी बना लेने हैं। इस जगत के सुखों को छोड़कर सच्चिदानंद मिलेगा, यह बात गलत है। क्योंकि जो इस जगत के आनंद लेने को भी राजी नहीं है वह परमात्मा को झेलने का साहस कब जुटा पायेगा? जो छोटे-छोटे सुख नहीं ले पाता, वह उस बड़े सुख को कैसे झेल पायेगा? जो चुल्लू-भर पानी नहीं पी पाता, जब सागर उसके कंठ में उतरेगा तो कैसे पी पायेगा? नहीं; वह डूब जायेगा, मर जायेगा।
मेरे हिसाब में यह संसार पाठशाला है। यहां हमें छोटे-छोटे पाठ पढ़ाये
जा रहे हैं... । देखो फूलों को, खिलो फूलों जैसे। देखो इंद्रधुनषों को, रंगो अपने जीवन को इंद्रधनुषों जैसा। सुनो संगीत, बनो संगीत। उठने दो गीत तुम्हारा भी।
पक्षियों में तुमने कोई महात्मा देखा है? कि बैठे हों धूनी लगाये, रेत पोते... रो रहे हैं, त्रिशूल गड़ाये हैं, उपवास कर रहे हैं। तुमने कोई वृक्ष देखा है जिसको तुम महात्मा कह सको? वृक्ष ने फैलाई हैं अपनी जड़ें भूमि में, पी रहा है रस; खिलाये हैं फूल, कर रहा है गुफ्तगू चांद-तारों से। मनुष्य को छोड़कर तुम्हें कहीं महात्मा मिलते हैं? मनुष्य को छोड़कर तुम्हें कहीं दुख मिलता है?
जरा सोचो तो, प्रकृति जो कि मनुष्य से पीछे है, पशु-पक्षी और पौधे भी तुमसे ज्यादा सुखी हैं! तुम्हें क्या हो गया है? तुम्हें कौन-सी प्लेग लग गयी? तुम्हारे चित्त पर रुग्ण लोग सवार हो गये हैं। तुम्हारे चित्त पर विक्षिप्त लोगों ने साम्राज्य स्थापित कर लिया है। जो सुखी नहीं हो सकते, उन्होंने दुख की महिमा गायी है। जो सुख की कला नहीं जानते, ऐसे हीन लोग दुख का गुणगान करते रहे हैं। और उन्होंने यह बात तर्कपूर्वक तुम्हारे चित्त में बिठा दी है कि तुम दुखी होओगे तो परमात्मा के प्यारे होओगे।
गोरख कुछ और कहते हैं, मैं कुछ और कहता हूंः
हसिबा खेलिबा धरिबा ध्यानं, अहनिसि कथिबा ब्रह्मगियानं।
फिर तुम्हारा उठना-बैठना, बोलना, श्वास लेना, सब तुम्हारे ब्रह्मज्ञान की अभिव्यक्ति हो जायेगी।
हंसै शेलै न करै मन भंग। ते निहचल सदा नाथ के संग।
फिर जुड़ जायेगा सत्संग। फिर प्रभु के साथ ही हो। फिर वह तुम्हारे साथ है। फिर भेद नहीं है।
छांड़ै आसा रहै निरास, कहै ब्रह्मा हूं ताका दास।।
और आदमियों की तो क्या बात, वह जो ब्रह्मा है, वह भी आकर तुम्हारे आनंद
से भरे हुए जीवन को नमस्कार करेगा, कहेगाः कहै ब्रह्मा हूं ताका दास। देवता भी उसकी स्तुति करते हैं जो मनुष्य आनंदमग्न हो जाता है। देवता भी उसके प्रति ईर्ष्या से भरते हैं।
अभी तो तुम्हारी दशा ऐसी हो गयी कि नरक में जो नारकीय हैं, वे भी तुम
पर दया करते होंगे। वे भी सोचते होंगे कि कहीं कोई हमसे पाप न हो जाये, नहीं तो पृथ्वी पर पैदा होना पड़े--और विशेषकर पुण्यभूमि भारत में! कोई पाप न हो जाये नरक में, नहीं तो पुण्यभूमि भारत भेजे जायें। ऐसी नरक में अफवाहें उड़ी हैं।
एक जमाना था कि हमने ऐसी कथाएं लिखी थीं कि जब बुद्ध को ज्ञान हुआ तो देवता उतरे आकाश से उनके चरणों में सिर झुकाने। जब महावीर जागे तो फूल बरसे आकाश से, देवता आये सुनने। क्योंकि जब कोई व्यक्ति परम आनंद को उपलब्ध होगा तो देवताओं को भी ईर्ष्या होगी, क्योंकि देवता अभी परम आनंद को उपलब्ध नहीं हैं। पुण्य का फल भोग रहे हैं; फल चुक जायेगा कल, वापिस लौट

आना पड़ेगा। उनका सुख कितना ही लंबा हो, अस्थायी है। शाश्वत सुख तो वही जानता है जो नाथ के सदा संग हो गया। अभी वे सदा संग नहीं हैं।
अरधै जाता उरधै धरै, काम दग्ध जे जोगी करै।
बड़ा बहुमूल्य सूत्र है!
अरधै जाता उरधै धरै, काम दग्ध जे जोगी करै।
उस योगी का काम दग्ध हो जाता है--जो अपने आनंद को नीचे नहीं जाने देता, ऊपर ले जाता है।
अरधै जाता उरधै धरै!
जो नीचे की तरफ बह रहा है, उसी रस को ऊपर की तरफ उठाने लगता है।
तीन शब्द समझ लेना। एक हैः काम। काम हैः सुख नीचे की तरफ बहता हुआ। दूसरा शब्द हैः प्रेम। प्रेम हैः सुख मध्य में अटका हुआ; न नीचे जा रहा है, न ऊपर जा रहा है। और तीसरा शब्द हैः प्रार्थना। प्रार्थना हैः सुख ऊपर जाता हुआ। ऊर्जा वही है। काम में वही ऊर्जा नीचे की तरफ जाती है, प्रेम में वही ऊर्जा बीच में थिर हो जाती है, प्रार्थना में वही ऊर्जा पंख खोल देती है, आकाश की तरफ उड़ने लगती है। इसलिए मैंने कहा है, संभोग और समाधि संयुक्त हैं, एक ही ऊर्जा है, एक ही सीढ़ी है। नीचे की तरफ जाओ तो संभोग, ऊपर की तरफ जाओ तो समाधि; और दोनों के मध्य में प्रेम है। प्रेम द्वार है। प्रेम दोनों का द्वार है, प्रेम संभोग का भी द्वार है। अगर तुम्हारी ऊर्जा नीचे की तरफ जा रही है तो प्रेम संभोग का द्वार बन जायेगा। और अगर तुम्हारी ऊर्जा ऊपर की तरफ जा रही है तो प्रेम समाधि का द्वार बन जायेगा। प्रेम बड़ा अदभुत है, सेतु है, क्योंकि मध्य है।
अरधै जाता उरधै धरै... ।
वह जो नीचे की तरफ ऊर्जा बह रही है कामवासना में... अब धीरे-धीरे जागो, उसी ऊर्जा को ऊपर की तरफ ले चलना है। और जिस ऊर्जा को ऊपर ले जाना हो, उससे लड़ना मत। क्योंकि जिससे तुम लड़े, उससे संबंध छूट जाता है। जिससे तुम लड़े, उससे तुम भयभीत हो जाते हो। जिससे तुम लड़े, उसका तुम दमन कर देते हो। और जिसका दमन हो जाता है, उसका ऊर्ध्वगमन नहीं हो सकता।
इसलिए गोरख ने और गोरख के पीछे चलनेवाले नाथपंथियों ने कामवासना का दमन नहीं कहा--कामवासना का ऊर्ध्वगमन। भेद समझ लेना, तुम्हारे तथाकथित धार्मिक गुरु कामवासना का दमन सिखाते हैं--दबा डालो... । दबाने से क्या होगा? कामवासना को निखारना है, दबाना नहीं। कामवासना हीरा है कीचड़ में पड़ा। कीचड़ धो डालनी है, मगर हीरा थोड़े ही फेंक देना है। कीचड़ के कारण हीरा मत फेंक देना, नहीं तो पीछे बहुत पछताआगे। और यही हालत तुम्हारे साधुओं की है। उनकी हालत तुमसे बदतर हो गयी है। तुम्हें हीरा नहीं मिला, क्योंकि तुम्हारा हीरा कीचड़ में पड़ा है; उनने कीचड़ छोड़ दी, साथ हीरा भी छूट गया। धोबी के गधे हो गये हैं, न घर के न घाट के। दुविधा में दोई गये, माया मिली न राम। समाधि का कुछ पता नहीं चल रहा है, संभोग से जो थोड़े-बहुत सुख की कभी झलक, किरण मिलती थी, वह भी दूर हो गयी। इसलिए चौबीस घंटे चित्त उनका रुग्ण है। कहीं भी जड़ें न रहीं। जमीन से जड़ें उखाड़ लीं, और आकाश में जड़ें जमाने का राज नहीं आया।
राज इस बात में हैः हीरे को निखारना है, साफ करना है, कीचड़ को धो डालना है। कीचड़ से कमल हो जाता है, तो कीचड़ से घबड़ाओ मत। इसलिए कमल का एक नाम हैः पंकज। पंकज का अर्थ होता हैः पंक से जो हो जाये, कीचड़ से जो हो जाये। कीचड़ से कमल हो जाता है! इतना बहुमूल्य, इतना प्यारा रूप, इतना सौंदर्य प्रगट हो जाता है! काम की कीचड़ में राम का कमल छिपा है।
अरधै जाता उरधै धरै... ।
इसलिए जागो, समझो, काम की ऊर्जा को पहचानो, उसके साक्षी बनो। लड़ो मत। दुश्मनी नहीं, मैत्री करो। मित्र को ही फुसलाया जा सकता है ऊपर जाने के लिये। हाथ में हाथ लो काम-ऊर्जा का, ताकि धीरे-धीरे तुम उसे प्रेम में रूपांतरित करो। पहले तो काम को प्रेम में रूपांतरित करना होगा, फिर प्रेम को प्रार्थना में। ऐसे ये तीन सीढ़ियां पूर्ण हो जायें तो तुम्हारे भीतर सहस्रार खुले, शून्य गगन में उस बालक का जन्म हो।
ख्याल रखना, काम से भी बच्चों का जन्म होता है, संभोग से भी बच्चे पैदा होते हैं और समाधि से भी बालक का जन्म होता है। वह बालक तुम्हारी

अंतरात्मा है। वह बालक तुम्हारा भव्य रूप है, दिव्य रूप है। जैसे तुम्हारे भीतर कृष्ण का जन्म हुआ, कृष्णाष्टमी आ गयी! तुम्हारे भीतर बालक कृष्ण जन्मा।
गगन सिषर महिं बालक बोले, ताका नांव धरहुगे कैसा।
अरधै जाता उरधै धरै, काम दग्ध जे जोगी करै।
और वही योगी काम को दग्ध कर पायेगा, जो नीचे जाती ऊर्जा को ऊपर की तरफ संलग्न कर लेता है। लड़ने की बात नहीं है।
तजै अल्यंगन काटै माया।
जो क्षुद्र है, नीचा है, जो तुमसे बाहर है, उससे धीरे-धीरे अपना आलिंगन छोड़ो। धीरे-धीरे उसमें अर्थ है, यह बात छोड़ो; उसमें अर्थ है नहीं। अर्थ तुम्हारे भीतर छिपा है।
तजै अल्यंगन काटै माया।
ममता, मोह, लोभ धीरे-धीरे छोड़ो। क्योंकि तुम जिस चीज को बाहर पकड़े हो
वह तो मौत छीन लेगी। उसे मौत से छीनने के पहले छोड़ दो तो तुम्हारा बड़ा पुरस्कार है, तुम फिर धन्यभागी हो। क्योंकि जो मौत के पहले ही चीजों को छोड़ देता है, उसकी फिर मौत नहीं आती। फिर उसके पास कुछ बचता ही नहीं, जो मौत छीन ले जाये। उसने खुद ही छोड़ दिया। इसी का नाम संन्यास है। और छोड़ने का अर्थ भागना नहीं है। जो भागता है, वह तो पकड़े है। इसीलिए भागता है, नहीं तो भागेगा क्यों? अगर कोई पत्नी को छोड़कर जंगल भागता है, उसका मतलब पत्नी को पकड़े हुए है। नहीं तो डर क्या है, भय क्या है?
मैं अपने संन्यासी को कहता हूंः जहां हो वहीं छोड़ा जा सकता है, भागने
की बात तो भूल भरी है। भागना कायरता है। छोड़ना भागने से नहीं होता, छोड़ना जागने से होता है। सिर्फ जागकर देखो। धीरे-धीरे होश सम्हालो। और तुम पाओगे, उस होश के प्रकाश में जो व्यर्थ है, व्यर्थ दिखाई पड़ जायेगा। और जो व्यर्थ दिखाई पड़ गया, उस पर तुम मुट्ठी बांधकर न रख सकोगे, उससे आलिंगन छूट जायेगा।
तजै अल्यंगन काटै माया, ताका बिसनु पषालै पाया।
उसका पैर दबाने विष्णु आ जाते हैं! हिम्मत के वचन हैं। जिसने कहे होंगे, जरूर हिम्मतवर आदमी था। इसलिए गोरख को मैं नहीं छोड़ पाता। चार में गिनती मुझे करनी पड़ती है। विष्णु से पैर दबवा दे जो लोगों के, उसकी कुछ तो हिम्मत है, कुछ तो साहस है! कोई साधारण आदमी नहीं है!
मरौ वे जोगी मरौ, मरौ मरन है मीठा।
तिस मरणी मरौ, जिस मरणी गोरष मरि दीठा।।
प्रेम में मरना होता है। प्रेम मृत्यु है। और जो मरता है वही पाता है-- शाश्वत को, अमृत को।
यह न रहीम सराहिये, लेन-देन की प्रीति
प्रानन बाजी राखिये, हार होय के जीत।
यह न रहीम सराहिये, देन-लेन की प्रीति
प्रानन बाजी राखिये, हार होय के जीत।
जीतो कि हारो, प्राण बाजी पर लगाने होंगे, तो ही... । यह प्रेम कोई लेन-देन का मामला नहीं है, यह कोई व्यवसाय नहीं है। तुम अपना पूरा दांव पर लगा देते हो। यह जुए का दांव है।
रहिमन मैन तुरंग चढ़ि, चलिबो पावक मांहि।
प्रेम-पंथ ऐसो कठिन, सब कोऊ निबहत नाहिं।।
रहीम ने कहाः रहिमन मैन तुरंग चढ़ि... । जैसे कोई मोम का घोड़ा बना ले, मोम के घोड़े पर बैठकर आग में से गुजरे।
रहिमन मैन तुरंग चढ़ि, चलिबो पावक माहिं।
मोम के घोड़े पर बैठकर आग से निकलना जितना कठिन है... । एक तो मोम का घोड़ा और फिर आग... निकल कहां पाओगे, निकल कैसे पाओगे? घोड़ा तो गल ही जायेगा।
रहिमन मैन तुरंग चढ़ि, चलिबो पावक माहिं।
प्रेम-पंथ ऐसो कठिन, सब कोऊ निबहत नाहिं।।
ऐसा है प्रेम का पंथ, ऐसा कठिन है। क्योंकि जो मरने को राजी हैं, वे ही केवल प्रेम में प्रवेश कर पाते हैं।

मरौ वे जोगी मरौ, मरौ मरन है मीठा।
लेकिन बड़ी मिठास है इस मृत्यु में... । जो ध्यान की मृत्यु मर जाये, इससे ज्यादा और अमृतपूर्ण कोई अनुभव नहीं है। क्योंकि उस मृत्यु में मर कर ही पता चलता है कि अरे, जो मरा वह मैं था ही नहीं। और जो बच गया है मरने के बाद भी, वही मैं हूं। सार-सार बच रहता है, असार-असार जलकर राख हो जाता है।
मैं भी मृत्यु सिखाता हूं।
मरौ वे जोगी मरौ, मरौ मरन है मीठा
तिस मरणी मरौ, जिस मरणी गोरष मरि दीठा।
गोरख कहते हैंः मैंने मरकर उसे देखा, तुम भी मर जाओ, तुम भी मिट जाओ।
सीख लो मरने की यह कला। मिटोगे तो उसे पा सकोगे। जो मिटता है, वही पाता है। इससे कम में जिसने सौदा करना चाहा, वह सिर्फ अपने को धोखा दे रहा है। ऐसी एक अपूर्व यात्रा आज हम शुरू करते हैं। गोरख की वाणी मनुष्य-जाति के इतिहास में जो थोड़ी-सी अपूर्व वाणियां हैं, उनमें एक है। गुनना, समझना, सूझना, बूझना, जीना... । और ये सूत्र तुम्हारे भीतर गूंजते रह जायें... हसिबा खेलिबा धरिबा ध्यानं। अहनिसि कथिबा ब्रह्मगियानं।
हंसै शेलै न करै मन भंग। ते निहचल सदा नाथ के संग।
मरौ वे जोगी मरौ, मरौ मरन है मीठा।
तिस मरणी मरौ, जिस मरणी गोरष मरि दीठा।।
आज इतना ही।

मरौ हे जोगी मरौ
दूसरा प्रवचन

अज्ञात की पुकार

पहला प्रश्नः हर बार यहां आती हूं तो बिना संन्यास लिये चली जाती हूं। संन्यास का भाव तो कई बार मन में उठता है, लेकिन लेने का साहस नहीं जुटा पाती हूं। मैं डर जाती हूं। सोचती हूंः क्या इस मार्ग पर मैं आनंद से चल सकूंगी, या रास्ता आधा छोड़कर वापिस लौट आना पड़ेगा? छोड़ देती हूं संन्यास का भाव तो इस दुनिया में जहां मैं अब तक चल रही हूं, चलना निरर्थक मालूम पड़ता है।
मैं क्या करूं? मार्ग बताने की अनुकंपा करें!

चंद्ररेखा! नये का सदा ही भय लगता है। परिचित दुखद भी हो तो भी परिचित है, भय नहीं लगता। ज्ञात आनंद न भी दे रहा हो तो भी सुरक्षा मालूम होती है; जाना-माना है। अनजान में उतरना, अपरिचित में उतरना... भय बिल्कुल स्वाभाविक है। इसलिए भय की समस्या न बनाओ।
जब भी कोई व्यक्ति किसी नये मार्ग पर कदम बढ़ाता है तो झिझकता है। लेकिन नये पर कदम बढ़ाने से ही जीवन में विकास है। जो पुराने वर्तुल में ही घूमता रहता है, कोल्हू का बैल हो जाता है। सदा विचारणीय यह है कि जिस ढंग से मैं जी रहा हूं उस ढंग से जीने में आनंद उपलब्ध हो रहा है? अगर नहीं हो रहा है उपलब्ध तो जोखिम उठानी चाहिए। नये रास्ते, नयी जीवन की पद्धति, नयी खोज करनी ही होगी। इतना तो तय है कि तुम्हारे पास खोने को कुछ भी नहीं है। पुराने जीवन से आनंद तो मिला नहीं; मिल जाता तो नये की कोई जरूरत भी न थी। पुराना तो व्यर्थ हो गया, एक बात निश्चित है; नया सार्थक भी निकल सकता है, व्यर्थ भी निकल सकता है। मगर नये में कम-से-कम एक संभावना है सार्थक होने की। पुराना तो निचुड़ चुका; उसे तो देख लिया, समझ लिया, जी लिया, नहीं कुछ पाया। जैसे कोई रेत से तेल निचोड़ता रहा हो... । अब कब तक रेत के साथ सिर मारना है?
मैं नहीं कहता कि नये से आनंद मिल ही जायेगाः क्योंकि आनंद मार्ग पर
कम निर्भर होता है, मार्गी पर ज्यादा निर्भर होता है; पथ पर कम निर्भर होता है, पथिक पर ज्यादा निर्भर होता है। इसलिए असली बदलाहट पथ की नहीं होती, असली बदलाहट तो पथिक की होती है। मगर पथ की बदलाहट से शुरुआत होती है। तुम बाहर हो, इसलिए बाहर से ही रूपांतरण शुरू करना होगा। बाहर को बदलने की हिम्मत जुटाओ तो भीतर बदलने की हिम्मत भी सघन होगी। और अगर थोड़ी बूंदें पड़ने लगीं आनंद की, तो उमंग और उत्साह से नये का अन्वेषण शुरू हो जायेगा। मगर एक बात तो तय है कि तुम्हारे पास खोने को कुछ भी नहीं है। इसलिये व्यर्थ चिंता मत लो। मिला क्या है पुराने को पकड़े रखने से? तो खो भी कुछ न जायेगा। और जब खोने को कुछ नहीं है तो डर क्या है? या तो कुछ मिलेगा; ज्यादा से ज्यादा यही होगा कि नये से भी नहीं मिलेगा। तो फिर और नये को खोजेंगे।
हमेशा ध्यान इसका करो कि जिस ढंग से हम जीये हैं, जो हम अब तक सोचे हैं, विचारे हैं, उससे कुछ मिला है या नहीं? विचार उसका करो। भविष्य का विचार मत करो कि क्या मिलेगा क्या नहीं मिलेगा, क्योंकि भविष्य तो अज्ञात है। संन्यास तो अपरिचित है। प्रयोग में उतरने से ही पता चलेगा। स्वाद लोगे तो ही पता चलेगा। स्वाद के पहले कैसे तय करोगे कि स्वादिष्ट है वस्तु या नहीं? किसी पर भरोसा करना होगा--किसी ने, जिसने स्वाद लिया हो।
यहां तुम आती हो चंद्ररेखा। मैंने स्वाद लिया है। मैं तुम्हें कहता हूंः आओ, बढ़ो। और यहां बहुत हैं जो मस्त हो रहे हैं, डूब रहे हैं। उनकी मस्ती और डुबकी देखकर ही तो तुम्हारे मन में भी संन्यास का भाव उठता है, नहीं तो संन्यास का भाव क्यों उठे? तुम्हारा हृदय आंदोलित हो रहा है, सिर्फ तुम्हारा मस्तिष्क बाधा डाल रहा है।
मस्तिष्क सदा ही रूढ़िवादी होता है। हृदय सदा नये के साथ जाने को आतुर होता है, और मस्तिष्क सदा पुराने के साथ बंधा रहने के लिये तैयार... ।

मस्तिष्क के पास अतीत के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। मस्तिष्क के पास जो भी है, स्मृति की संपदा है। वह सब अतीत है। मस्तिष्क का भविष्य होता ही नहीं। कोई भी चीज मस्तिष्क का हिस्सा बनती है, जब अतीत हो जाती है। जब तुम्हारा अनुभव हो जाता है, तब मस्तिष्क का हिस्सा बनता है। मस्तिष्क जीता है अतीत में, मुर्दा में; इसलिए मस्तिष्क डरता है भविष्य में जाने में, हृदय सदा तैयार है छलांग लेने को।
तुम्हारा हृदय तो उछाह से भरा है। तुम्हारा हृदय तो उठा लेना चाहता
है कदम। मस्तिष्क चालाकियां बरत रहा है। मस्तिष्क कहता हैः ठहरो, सोचो, पहले निर्णय करो; कहीं ऐसा न हो कि जाओ भी नये पथ पर और कुछ न मिले! कहीं ऐसा न हो कि बीच से लौट आना पड़े! कहीं ऐसा न हो कि जीवन की पद्धति बदलो, इतना श्रम उठाओ और श्रम के अनुकूल पुरस्कार न हो! ... तो थोड़ा सोचो, गणित बिठाओ, हिसाब लगाओ।
लेकिन मस्तिष्क की सुनी अगर तो कभी कदम उठ न सकेगा।
थोड़ा सोचो, छोटा बच्चा मां के पेट में है अभी। जन्म होने के करीब है। अगर मस्तिष्क हो, अगर बुद्धि पैदा हो गयी हो, तो बुद्धि कहेगीः कहां जाते हो? जीवन की यह प्रक्रिया, यह ढंग, यह गर्भ में रहना कितना सुखद है! कोई झंझट नहीं, कोई चिंता नहीं, कोई दायित्व नहीं, चौबीस घंटे सोये रहो। कहां जाते हो? पता नहीं बाहर क्या होगा--कौन-सी मुसीबतें आयें, कौन-सी चुनौतियां आयें!
अगर बच्चे के पास थोड़ा गणित हो, तर्क हो, तो कोई बच्चा मां के गर्भ से पैदा ही न हो। लेकिन गणित नहीं होता, गणित बाद में आता है--सौभाग्य की बात। तर्क बाद में आता है। बच्चे के पास तो सिर्फ हृदय होता है--नये के लिये आतुर, उत्सुक।
अगर हम बुद्धि की बात मानकर चलें तो पृथ्वी जराजीर्ण से भर जाती है।
इस देश में ऐसा ही हुआ है, लोगों ने अतिशय बौद्धिकता के साथ अपने गठबंधन बना लिये हैं। इसलिए यह देश जराजीर्ण हो गया है। इस देश में यौवन नहीं रहा। यह खंडहरों में जी रहा है। यह अब भी अतीत के ही गुणगान करता है। इसके पास कोई उमंग नहीं है नये के लिए। यह गिर गये पीले पत्तों की प्रशंसा करता है; नयी जो कोंपलें खिलती हैं उनकी तरफ पीठ फेर लेता है। यह पूजता है पत्थरों को, जड़ को, अतीत की लकीरों को। यह लकीर का फकीर हो गया है। और ऐसा ही सारे लोगों का चित्त हो गया है।
हिम्मत जुटानी पड़ेगी!
और मैं तुमसे इतना कहता हूं कि नये के साथ हारने में भी जीत है, पुराने
के साथ जीतने में भी जीत नहीं। पुराने के साथ सुख भी मिले तो ज्यादा से ज्यादा उसका अर्थ सुविधा होती है। नये के साथ दुख भी मिले तो भी विकास होता है। नये के साथ पाया गया दुख ही तपश्चर्या है; उसे ही मैं तपश्चर्या कहता हूं। धूल लगाकर, शरीर पर पोतकर बैठ गये, या कांटों की शैया बनाकर लेट गये, या उपवास किया, इस सबको मैं तपश्चर्या नहीं कहता; इस सब को तो मैं रुग्णचित्त की मूढ़ता कहता हूं।
तपश्चर्या तो एक है--नये के साथ जाने का साहस, अज्ञात में उतरने की हिम्मत! जैसे छोटा बच्चा मां के गर्भ को छोड़ता है!
अभी दो दिन पहले, पास के ही एक वृक्ष पर, एक चिड़िया अपने बच्चों को बड़ा
कर रही थी। रोज-रोज बच्चे बड़े होते चले गये। दो दिन पहले, पहली बार घोंसले से बाहर निकले। जब वे पहली बार घोंसले से बाहर निकले, मैं उनके पास खड़ा था। दोनों बैठ गये शाखा पर--बड़े आश्चर्य-विमुग्ध, पर तौलते हुए, सोचते-विचारते, आगे कदम बढ़ाना कि नहीं! अभी तक घोंसले से बाहर नहीं आये थे और उनकी मां दूर वृक्ष पर बैठकर पुकार दे रही है, गुहार दे रही है। यही ढंग है बच्चों को बुलाने का।... पुकार रही है, आवाज दे रही है। उसकी आवाज देखकर वे फड़फड़ाते हैं। पर मोह घोंसले का, सुरक्षा... । और पहले कभी पंख तो खोले नहीं... तो पंख खोलना या नहीं, उड़ पायेंगे हम या नहीं?
उनकी दुविधा देखकर नये-नये संन्यास लेते व्यक्तियों की दुविधा का मुझे स्मरण आया। ऐसे ही पर तौलते हैं, सोचते हैं, घबड़ाते हैं, पीछे लौटकर देखते हैं। लेकिन कब तक? मां थी कि पुकारे गयी, कि आवाज दिये गयी, कि टेर पर टेर... । कोई आधा घंटा लगा। धीरे-धीरे पंख फड़फड़ाये, थोड़े दूर हटे घोंसले

से... । उसी वृक्ष पर दूसरी शाखाओं पर बैठे। थोड़ा भरोसा बढ़ा, थोड़े पंख मारे हवा में, फिर लौट आये। थोड़ा और भरोसा बढ़ा, फिर उड़ गये... । तब से पता नहीं है। दो दिन से मैं देख रहा हूं रोज, फिर नहीं लौटे। अब क्या लौटना? पड़ा रह गया है घोंसला, पड़े रह गये हैं उसमें दो अंडे, टूटे-फूटे। पक्षी भी हिम्मत जुटा लेते हैं आकाश में उड़ने की, जो कभी नहीं उड़े; और मनुष्य होकर भी हम हिम्मत नहीं जुटा पाते!
मैं तुम्हें पुकार रहा हूं दूर वृक्ष से, टेर दे रहा हूं। यह रोज टेर
चल रही है।
तुम कहती होः हर बार यहां आती हूं तो बिना संन्यास लिये चली जाती हूं। संन्यास का भाव तो कई बार मन में उठता है, लेकिन लेने का साहस नहीं जुटा पाती।
चंद्ररेखा, थोड़े पर फड़फड़ाओ, थोड़े नये की पुलक से भरो, थोड़ी हिम्मत जुटाओ। पंख तुम्हारे पास हैं। मैं तुम्हें आकाश से बुलाता हूं। मैं तुम्हें दूर का निमंत्रण दे रहा हूं। ऐसा नहीं कि तुम्हारे पास पंख नहीं; उतने ही पंख हैं जितने मेरे पास, सिर्फ भरोसा नहीं है। और भरोसा आये कैसे? उड़ो तो आये। इतना कह सकता हूं कि नये के साथ मिला दुख भी बहुत प्रीतिकर है। और नये में थोड़ा दुख तो मिलेगा। क्या तुम सोचते हो, वे जो बच्चे हैं पक्षियों के, उड़े, पीड़ा नहीं हुई होगी? हवा के झोंके... । रात वर्षा हुई... किसी वृक्ष पर बैठे होंगे बिना घोंसले के अब। पंख भीग गये होंगे। ठिठुरते होंगे सर्दी में... । मन में ख्याल भी आता होगा--अपना घोंसला अच्छा था, इस किस झंझट में पड़ गये? लेकिन फिर भी आकाश में उड़ने का आनंद ऐसा है कि ये सब कीमतें चुकाई जा सकती हैं। चुकानी ही पड़ती हैं! और जो चुकाता है कीमत, वही पाता है।

गंध से बोझिल पवन है,
और फिर चंचल चरण हैं।
कौन-सा मौसम लगा है?
दर्द भी लगता सगा है।।
अनमिली स्वर लहरियों के गीत जादू डालते हैं।
शारदी मेघों तले मैदान फूल उछालते हैं।
आज तो वश में न मन है।
गीत से भीगा गगन है।
प्राण को किसने ठगा है?
दर्द भी लगता सगा है।।
ओ उदासी की किरण! भटकी हुई क्या कह रही तू? धुंधलके के पार यूं निस्सार ही क्यों बह रही तू?
प्रीत का कोई वचन है।
नित निभाना प्रणय प्रण है।
नयन में सपना जगा है।।
दर्द भी लगता सगा है।।
पूर्ण यौवन-भार खेतों में लचकती सांध्य-वेला।
बांसुरी के स्वर सरीखा एक मेरा स्वर अकेला।
टेरता मानो विजन है।
और तन मन में चुभन है।
कौन-सा मौसम लगा है?
दर्द भी लगता सगा है।।
नये के साथ दर्द भी बहुत सगा है; पुराने के साथ सुविधा भी सिर्फ धीमी- धीमी आत्महत्या है, और कुछ भी नहीं।
क्या है छोड़ने को, क्या मिट जायेगा? पाया ही कुछ नहीं तो छूटेगा क्या? इसलिए खोजो। और तब तक खोजते ही रहो जब तक मिल न जाये। तब तक कदम न रुकें, तब तक पंख बंद न हों। चाहे कितना ही भय लगे, पर तौलने ही होंगे, आकाश में उड़ना ही होगा। और चुनौती जग गयी है; कब तक झुठलाओगी, कब तक लौट-लौट जाओगी? यह लौट जाना आदत न बन जाये। यह लौट जाना भी लकीर न बन जाये। इसके पहले कि यह आदत बन जाये, कुछ करो, कुछ जगो, कुछ साहस जुटाओ।

पार करना चाहते हो इस गरजते सिंधु को यदि, प्राण लेकर आज लहरों में उतरना ही पड़ेगा।।
ये तरंगें दूर से चलकर तुम्हारे पास आतीं।
उस नये जग के नये संदेश अपने साथ लातीं।
कूल पर बैठे मनन करते रहोगे और कब तक?
हो मुखर उस पार वीणायें मधुर तुमको बुलातीं।
चाहते यदि तुम नया जीवन, नया यौवन, नया मन।
आज बाहों में उमड़ता सिंधु भरना ही पड़ेगा।।
तुम नया विश्वास लेकर पग बढ़ाओ आज अपना।
तुम नया इतिहास लेकर दृग उठाओ आज अपना।
छूट जाने दो बहुत पीछे पुराने इस गगन को।
तुम नया आकाश लेकर जग सजाओ आज अपना।
प्राण में यदि हो रहे मुखरित नये निर्माण के स्वर आज कण-कण का नया शृंगार करना ही पड़ेगा।
यह प्रलय की पीर ही नव-सृष्टि का मधुगान होगी।
यह तिमिरता ही निशा की सूर्य का वरदान होगी।
इस पुरातन जर्जरित युग-मूर्ति को अब टूटने दो।
जिस शिला पर हाथ रख दोगे वही भगवान होगी।
तुम हिमालय के स्वजन हो सिंधु की गहराई ही क्या?
आज पंखों में असीमित व्योभ भरना ही पड़ेगा।।
पार करना चाहते हो इस गरजते सिंधु को यदि
प्राण लेकर आज लहरों में उतरना ही पड़ेगा।।
उतरो! डूबने का भय लगता है तो भी उतरो। सभी नये तैरना सीखनेवालों को डूबने का भय लगता है। जो डूबने के भय से रुक ही गया है किनारे पर, वह तो जान ही न पायेगा आनंद तैरने और तिरने का। और दूर है किनारा दूसरा, और वही है मंजिल। जाना है पार, तो ही परमात्मा मिले।
संन्यास तो केवल एक छोटी-सी नौका है--उस पार जाने की! माना, दूर धुंधलके में छिपा उस पार का किनारा दिखाई तो पड़ता नहीं। इसलिए किसी आंखवाले से संबंध जोड़ना होता है। इसलिए किन्हीं आंखवालों के पास उठना- बैठना होता है, ताकि तुम्हारे भीतर भी सोये हुए स्वर धीरे-धीरे सबल हो जायें। तुम्हारी वीणा पर भी चोट पड़े!
चंद्ररेखा, इसीलिए तू आती रही। इस आने का कुछ अर्थ न रह जायेगा अगर इस
रस में न डूबी। तो फिर ऐसा ही होगा, सरोवर तक आये और प्यासे ही लौटते रहे। सरोवर तक आने से प्यास नहीं बुझती; अंजुली बनानी होगी, झुकना होगा, जल भरना होगा, कंठ में उतारना होगा, तो प्राण तृप्त होते हैं।
संन्यास झुकने की प्रक्रिया है--अंजुली बांधने की।

दूसरा प्रश्नः तंत्र, वाममार्ग, अघोरपंथ, नाथपंथ जैसे नामों से लोग क्यों डरते हैं? इन मार्गों का सही विश्लेषण और सम्यक अभ्यास से क्या ऐसी संभावना नहीं है कि लोग फिर से नये आयाम से इन्हें समझें और इनकी निंदा और उपेक्षा न करें?

तरु ने पूछा है। और एक नहीं चौदह प्रश्न पूछे हैं। मुझे भी गिनती करनी पड़ी। ऐसा उसने कभी किया नहीं। गोरख से कुछ संबंध रहा है... कोई सोयी स्मृति जग गयी, कोई झरना फूट पड़ा।
यहां कोई भी नया नहीं है, सभी पुराने हैं। न मालूम कितने पथों पर चले हैं। न मालूम किन-किन सदगुरुओं के साथ रहे हैं। मेरे पास आ जाना तुम्हारा आकस्मिक नहीं है। चलते रहे हो, खोजते रहे हो। वही खोज तुम्हें यहां ले आयी है। जो नहीं चले हैं कभी, जिन्होंने कभी खोजा नहीं है, उनसे मेरा संबंध भी बहुत मुश्किल से बन पाता है। वे आ भी जाते हैं तो छिटक जाते हैं। आकस्मिक होता है उनका आना। उनके आने के पीछे कुछ आधारशिला नहीं होती। जो मेरे पास आकर टिक जाते हैं, रुक जाते हैं... और तरु आयी है सो टिक ही गयी है... उसका अर्थ यही हैः उनके प्राणों की कोई गहरी तृषा तृप्त हो रही है। बहुत-बहुत

द्वारों से जो खोजा है और नहीं मिल पाया है, उसकी झलक मिलने लगी है, मंजिल करीब आ रही है।
गोरख से कुछ संबंध रहा होगा तरु, कुछ नाता रहा होगा। जैसे कोई पुराना सोया हुआ गीत फूट पड़ा हो, ऐसे उससे प्रश्न फूटे हैं और सभी प्रश्न सार्थक हैं। कोई भी प्रश्न बौद्धिक नहीं है, पूछने के लिये नहीं पूछा गया है, उठा है। पूछना चाहिए, इसलिए कुछ सोच-सोचकर नहीं पूछा गया है। पूछने से नहीं रुक सकी है। फिर खुद भी डर गयी होगी कि अब चौदह प्रश्न लिखे हैं, तो फिर क्षमा भी मांगी है कि मुझ पर नाराज मत होना। इतने प्रश्न... जैसे विवश थी। पूछना ही पड़ा है। न पूछे नहीं बनेगा।
उन्हीं चौदह में से एक प्रश्न यह हैः
तंत्र, वाममार्ग, अघोरपंथ, नाथपंथ जैसे नामों से लोग क्यों डरते हैं? पहली बात, ये सब नाम तंत्र के ही नाम हैं। तंत्र का ही एक नाम वाममार्ग है। वाममार्ग का अर्थ होता हैः बायें हाथ का रास्ता। तुम्हारे पास दो हाथ हैंः एक दायां हाथ है, एक बायां हाथ है। ये दो हाथ बस दो हाथ ही नहीं हैं, इनके पीछे बड़े राज छिपे हैं। तुम्हारा दायां हाथ तुम्हारे बायें मस्तिष्क के खंड से जुड़ा है, उल्टा। तुम्हारा बायां हाथ तुम्हारे दायें मस्तिष्क के खंड से जुड़ा है। मस्तिष्क दो खंडों में बंटा है। अब तो विज्ञान ने इस पर बड़ी खोज की है। और उस खोज ने बड़े रहस्य प्रगट किये हैं। तुम्हारा दायां मस्तिष्क, जो कि बायें हाथ से जुड़ा है, काव्य का स्रोत है-- अनुभूति का, भाव का, कला का, प्रज्ञा का, आनंद, मस्ती, नृत्य, संगीत, उत्सव, कल्पना। जो भी मधुर है, जो भी स्त्रैण है, जो भी सुंदर है, उस सब का जन्म तुम्हारे दायें मस्तिष्क में होता है। उस दायें मस्तिष्क का प्रतीक है बायां हाथ।
तुम्हारा दायां हाथ जुड़ा है बायें मस्तिष्क से। बायें मस्तिष्क में पैदा होता हैः तर्क, गणित, कर्मठता, कार्यकुशलता, चालाकी, राजनीति, कूटनीति, संसार, गद्य, विज्ञान, हिसाब-किताब, उपयोगिता, बाजार। इस सब का संबंध बायें मस्तिष्क से है। संसार सदा से दायें हाथ पर जोर देता रहा है, क्योंकि दायें हाथ में उपयोगिता है, हिसाब-किताब है, गणित है, तर्क है, बाजार है, दुकान है, व्यवहार है। बायां हाथ खतरनाक मालूम होता रहा है, सदा से खतरनाक मालूम होता रहा है। कवि का क्या भरोसा! गणितज्ञ का भरोसा किया जा सकता है। नर्तक का क्या भरोसा! वैज्ञानिक का भरोसा किया जा सकता है। फिर विज्ञान का उपयोग है, नृत्य का क्या उपयोग है? नृत्य तो है स्वांतः सुखाय। यह जो बायां हाथ है वह तुम्हारे भीतर स्वांतः सुखाय का प्रतीक है। इसका कोई लक्ष्य नहीं है। इसकी कोई दिशा नहीं है। यह कहीं जा नहीं रहा है। यह तो इसी क्षण में आनंद-मस्त, मुग्ध होकर जीने की कला है।
कविता का क्या मूल्य है? न तो पेट भर सकता है, न तन ढंक सकता है, न छप्पर बन सकता है। तो कवियों को हमने थोड़ा-बहुत सम्मान दिया है एक अनुपात में; जैसे सजावट की तरह, लेकिन गैर-जरूरी। एक-आध आदमी कवि हो जाये समाज में, हम बर्दाश्त करते हैं; लेकिन हम कवियों की जमात बर्दाश्त नहीं करेंगे, क्योंकि कवि किसी काम का नहीं मालूम पड़ेगा। उसकी उपयोगिता क्या है?
किसी ने पिकासो को पूछा कि तुम्हारे चित्रों की उपयोगिता क्या है? उसने अपना सिर पीट लिया। उसने कहाः फूलों से नहीं पूछते कि तुम्हारी उपयोगिता क्या है; और कोयल गीत गाती है उससे नहीं पूछते कि तुम्हारी उपयोगिता क्या है; और आकाश तारों से भर जाता है तब नहीं पूछते कि तुम्हारी उपयोगिता क्या है! मुझसे ही क्यों पूछते हो?
यह कवि और चित्रकार और मूर्तिकार और संगीतज्ञ सदा से कहते रहे हैं-- हमारी कोई उपयोगिता नहीं है। मगर जीवन उपयोगिता पर ही समाप्त नहीं होता। जीसस का वचन याद करोः मैन कैन नाट लिव बाय ब्रेड अलोन। आदमी अकेली रोटी से तो नहीं जी सकता, कुछ और भी चाहिए। रोटी से कुछ ज्यादा चाहिए। रोटी जरूरी है, मगर काफी नहीं; आवश्यक है, मगर पर्याप्त नहीं। रोटी के बिना कविता नहीं हो सकती, यह सच है; मगर अगर कविता के बिना रोटी हो तो जीवन हुआ न हुआ बराबर है। रोज पेट भर लिया, जी लिये और मर लिये। अगर जीवन में काव्य न जगा, गीत न उठा, वीणा न बजी, बांसुरी पर संगीत न खिला तो क्या सार है?

स्वांतः सुखाय रघुनाथ गाथा! जो स्वांतः सुख से भरा है, वही उस परमप्रिय के भाव से भी भरता है।
इसलिए बायां हाथ सदा से खतरे का सूचक रहा है। इसलिए जिनसे भी हम डरते हैं, उनको हम वाममार्गी कहते हैं। जिनसे हम भयभीत होते हैं, उनको हम वाममार्गी कहते हैं। तुम्हें हजारों लोग मिल जायेंगे जो मुझे वाममार्गी कहते हैं। ठीक ही कहते हैं। मैं वाममार्गी हूं, क्योंकि मैं तुम्हें स्वांतः सुखाय की कला सिखा रहा हूं। हिसाब-किताब ही सब कुछ नहीं है, हिसाब-किताब के बाहर भी एक जगत है और वही जगत तृप्तिदायी है, उसी जगत में परितोष है। उसी जगत में प्रकाश है।
जरूरतें पूरी होनी चाहिए, ठीक है। फिर क्या करोगे? जरूरतें पूरी हो जायेंगी, फिर क्या करोगे? आज पश्चिम में यही अड़चन आ गयी है, जरूरतें पूरी हो गयीं। जो बाहर की जरूरतें थीं, पश्चिम ने पूरी कर लीं। समझना कठिनाई। जरूरतें पूरी करने के लिये बायें हाथ से जुड़े हुए दायें मस्तिष्क का कोई उपयोग नहीं किया। इसलिए पश्चिम ने धर्म को इंकार कर दिया, काव्य को इंकार कर दिया, संगीत को इंकार कर दिया--रहस्य की सारी विधा इंकार कर दी। ठीक गणित, विज्ञान, पदार्थ, ठोस जिसका प्रमाण है उस पर ही पश्चिम जी रहा है। तीन सौ साल के सतत प्रयोग ने, दायें हाथ के प्रयोग ने, पश्चिम को समृद्ध बना दिया। धन है, दौलत है, मकान है, सुंदर रास्ते हैं, सुस्वादु भोजन है, भरपेट भोजन है, सब जरूरत से ज्यादा है। एक संपन्नता का युग पश्चिम में आ गया है। लेकिन तीन सौ साल निरंतर, वह जो स्वांतः सुखाय का स्रोत है, उसको इंकार करके आया।
तो पश्चिम संपन्न हो गया, लेकिन अब क्या करे? क्योंकि उसके पास सिर्फ सुख को भोगने की कला ही नहीं बची। पश्चिम किंकर्तव्यविमूढ़ है। अब कहां जायें, अब क्या करें? काम का जगत जो हो सकता था हो चुका। पश्चिम के भीतर बड़ी बेचैनी है। रविवार के दिन भी पाश्चात्य मनुष्य छुट्टी नहीं मना पाता। छुट्टी मनाने की आदत ही भूल गयी। काम और काम और काम... । काम पर इतना जोर दिया है कि काम को भगवान बना दिया! तो लीला की कला भूल गयी। तो बैठकर हंसें- बोलें, कि वीणा बजायें, कि बगिया में घास उगायें, कि मस्त हो कर लेट जायें तारों तले, कि नौका-विहार करें... । नहीं, यह सारी बात अर्थहीन है। क्योंकि तीन सौ साल एक ही बात दोहराई और सिखाई गयी है स्कूल से लेकर विश्वविद्यालय तक कि काम का मूल्य है।
तो आज अगर कोई आदमी अपनी नाव पर लेटा हुआ आकाश के तारों के नीचे तिर रहा है झील में, तो उसे लगता है कि मैं कोई पाप कर रहा हूं; क्योंकि काम पुण्य है, मैं पाप कर रहा हूं। एक अपराधभाव पैदा हो गया है सुख के क्षण में। जब भी तुम सुखी होते हो, तुमको लगता है कि कुछ तुम गलती कर रहे हो, कुछ भूल कर रहे हो। क्या कर रहे हो, गीत गुनगुना रहे हो! कंठ में ही दबा देना चाहते हो गीत को। इससे क्या होगा? तर्क उठ आते हैं, गणित खड़ा हो जाता है-- इससे क्या होगा, इससे क्या लाभ है? क्यों यह बांसुरी बजा रहे हो, कुछ काम करो!
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैंः आप लोगों को ध्यान सिखाते हैं! ध्यान से क्या होगा? कुछ काम सिखाइए।
काम की उपयोगिता है। और मैं नहीं कहता कि काम छोड़ दो, मगर मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं कि काम की उपयोगिता यही है कि तुम बेकाम क्षणों में आनंदित हो सको। काम का उपयोग यही है कि तुम निष्काम हो सको। छह दिन तुम जो बाजार में मेहनत करते हो वह इसीलिए ताकि सातवें दिन पांव पसारो, धूप में लेटो, कि वृक्ष की छाया तले बैठो, कि फूलों से बात करो, कि चांद-तारों से गुफ्तगू हो, कि मस्ती के गीत गाओ, कि पैरों में घूंघर बांधो और नाचो। यह लक्ष्य था छह दिन मेहनत करने का। और जब पांच दिन मेहनत करने से काम चल जाये तो पांच दिन मेहनत करना, दो दिन नाचना। जब चार दिन मेहनत करने से काम चल जाये तो तीन दिन... ऐसे घटाते जाना। काम को तो घटाते जाना है। विश्राम को बढ़ाते जाना है। विश्राम लक्ष्य है।
जिनके जीवन में विश्राम नहीं है, ध्यान नहीं है, उनके जीवन में विक्षिप्तता आनी शुरू हो जाती है; जैसे ही काम पूरा हुआ, उनकी समझ में नहीं आता अब क्या करें? अगर पश्चिम में बहुत लोग पागल हो रहे हैं तो उसका कारण

हैः काम के दिन तो समाप्त हो गये, काम पूरा हो गया। काम को ही जीवन समझा, अब जीवन समझ में नहीं आता कि और जीवन क्या हो सकता है? बहुत लोग आत्महत्या कर रहे हैं; उसका कारण भी वही है। क्या सार है अब जीने का? अब धन को जोड़-जोड़कर इकट्ठा कर लिया, अब कितना जा.ेडते जायें? यह भूल ही गये कि धन किसलिये जोड़ते थे? धन जोड़ते थे ताकि किसी क्षण विश्राम से बैठेंगे, कोई चिंता न होगी। वह तो भूल ही गये, क्योंकि धन जोड़ने में मस्तिष्क के एक हिस्से का उपयोग किया। वह हिस्सा तो सक्रिय हो गया। और जिस हिस्से का उपयोग नहीं किया, वह धीरे-धीरे बिल्कुल धूल-धवांस से भर गया है।
वाममार्ग का अर्थ होता हैः जीवन का लक्ष्य काम नहीं है, विश्राम है। जीवन का लक्ष्य धन नहीं है, ध्यान है। जीवन का लक्ष्य गणित नहीं है, काव्य है। जीवन का चरम शिखर विज्ञान से उपलब्ध नहीं होगा, धर्म से उपलब्ध होगा। सदा से "वाममार्ग" निंदा का शब्द रहा। और अतीत में तो स्वभावतः कारण
भी थे। क्योंकि जितने तुम पीछे जाओगे उतनी दुनिया दीन थी, दरिद्र थी, साधन नहीं थे। उन दीन-दरिद्रता के दिनों में अगर लोगों ने काम को बहुत बहुमूल्य बना दिया, बहुत कीमत दी, स्वाभाविक मालूम होता है। और जिन लोगों ने काम की जगह विश्राम को मूल्य दिया, उनसे अगर समाज ने विरोध किया तो कुछ आश्चर्य नहीं है। मगर पुरानी आदत अब भी ग्रंथि की तरह बनी रह गयी है। अब भी हमारे भीतर भय है।
फिर, जो गणित, हिसाब-किताब वाला मन है, वह सदा से उन सारी चीजों का विरोधी रहा है, जिनसे तुम्हारे भीतर सुख उत्पन्न होता है। वह स्वाद का विरोधी है, तो वह अस्वाद का व्रत सधवाता है; सौंदर्य का विरोधी है, तो वह कुरूपता को आध्यात्मिक बना लेता है; वह स्वास्थ्य का भी विरोधी है, क्योंकि स्वास्थ्य भी शारीरिक सुख है।
जर्मनी के एक प्रसिद्ध विचारक काउंट केसरलिंग ने भारत की यात्रा के बाद अपनी डायरी में लिखा कि भारत जाकर मुझे यह अनुभव हुआ कि बीमारी में एक आध्यात्मिकता है, स्वास्थ्य में एक तरह की नास्तिकता है। क्योंकि स्वास्थ्य शरीर का होता है। इसलिए आध्यात्मिक व्यक्ति को स्वास्थ्य का रस नहीं लेना चाहिए। वह तो देह का दुश्मन है। इसीलिए प्रेम का दुश्मन हो गया संसार, क्योंकि प्रेम बड़ा सुख है। सारी चीजों की दुश्मनी साध ली। वाममार्ग ने इसके विपरीत संदेश दिया है। वाममार्ग कहता हैः प्रेम प्रार्थना है और प्रेम परमात्मा है। और वाममार्ग कहता हैः कुछ भी छोड़ना नहीं है, क्योंकि जो भी परमात्मा ने दिया है उसकी उपयोगिता है; उसका उपयोग करो और उसे सीढ़ी बनाओ। उसे परमात्मा के मंदिर की सीढ़ी में रूपांतरित करो। पत्थर मत समझो मार्ग के, अवरोध मत समझो; सीढ़ियां बनाओ, ऊपर उठो। कामवासना की भी सीढ़ी बनाओ, उसका भी विरोध मत करो।
वाममार्ग का अदभुत संदेश है कि अगर तुम बुद्धिमान हो तो तुम जहर का ऐसा उपयोग करोगे कि वह औषधि हो जाये; अगर तुम बुद्धू हो तो तुम औषधि को भी जहर बना लोगे। यह बुनियादी सूत्र है वाममार्ग का कि बुद्धिमान जहर को भी औषधि बना लेता है। यही तो बुद्धिमानी है। भगोड़े कायर होते हैं, बुद्धिमान नहीं होते। वाममार्ग भगोड़ा नहीं है।
इस संसार में अब तक भगोड़ों की बड़ी प्रतिष्ठा रही है। उसका कारण है, क्योंकि भगोड़ों को देखकर तुम्हें यह समझ में आने लगता है कि वे हम से विशिष्ट हैं। तुम धन के पीछे पागल हो और एक आदमी ने लात मार दी धन को और जंगल चला गया, तुम तत्क्षण प्रभावित हो जाते हो। तुम प्रभावित इसलिए हो जाते हो कि मेरा इतना धन में मोह है, और इस आदमी में जरूर कुछ गरिमा है, इसने लात मार दी! इसलिए तुम महावीर से ज्यादा प्रभावित होते हो बजाय जनक के। जनक का नाम कुछ ज्यादा सुना नहीं जाता। तुम बुद्ध से ज्यादा प्रभावित हो जाते हो, क्योंकि वे राजमहल छोड़कर जाते हैं। तुम कृष्ण की अगर प्रशंसा भी करते हो तो थोड़े दबे-दबे कंठ से, थोड़े डरे-डरे, थोड़े भयभीत।
अगर लोग कृष्ण की प्रशंसा भी करते हैं तो गीता वाले कृष्ण की करते हैं; पूरे कृष्ण को स्वीकार करने की हिम्मत बहुत कम लोगों की है। क्योंकि कृष्ण तो तुम्हारे जैसे ही मालूम पड़ते हैं, बल्कि तुमसे भी आगे बढ़े हुए। तुम किसी तरह अपने को समझा लेते हो कि चलो वे भगवान थे, किया होगा, नाचे होंगे गोपियों के साथ; मगर यह आदमी के लिये शोभा नहीं देता। तुम शायद

कृष्ण को भगवान कह कर बच जाना चाहते हो। तुम एक बहाना खोजते हो। तुम्हारा चित्त तो गड़बड़ होने लगता है। तुम्हें बेचैनी होने लगती है।
मैं एक घर में मेहमान था--एक हिंदू परिवार में। संभ्रांत परिवार है, कुलीन परिवार है। कोई दस-बारह साल पहले की बात है। मेरी किताब "संभोग से समाधि की ओर" छपी थी। वे बड़े बेचैन थे। उन्होंने मुझसे कहा कि आप नाम कम-से-कम कोई और रख देते। क्योंकि किताब तो जब कोई पढ़ेगा तब जानेगा कि क्या है उसमें, मगर यह नाम बड़ा खतरनाक है; आप नाम कुछ और रख देते। फिर जो पहला संस्करण था, उस पर खजुराहो की मूर्तियों का चित्र छपा था कवर पर। वे कहने लगे कि यह भी आपको क्या सूझा! अगर नाम भी यह था तो भी अगर बुद्ध को ध्यान की अवस्था में बैठा हुआ बताया होता कवर पर, तो भी चल जाता... खजुराहो की मूर्तियां! किताब तो कोई पीछे पढ़ेगा, यह सब देखकर तो बड़ी बेचैनी हो जायेगी।
मैं उनके बैठकखाने में बैठा था, मैंने कहा दीवाल पर देखो... । वहां एक बड़ी तस्वीर टांग रखी थी उन्होंने कृष्ण की, जिसमें उन्होंने वस्त्र चुरा लिये हैं नग्न स्त्रियों के, जो नदी में नहा रही हैं, और झाड़ पर बैठे हैं। मैंने कहाः इसको तुम बैठकखाने में लगाये हो? उन्होंने ऊपर देखा, एक क्षण को तो रुक गये। शायद उन्होंने कभी इस तरह सोचा नहीं था। उन्होंने कहाः आप ठीक कहते हैं। यह लगी है तस्वीर, यह पिता के जमाने से लगी है। और कभी-कभी मुझे संकोच होता भी है, लेकिन इस पर कोई ध्यान देता नहीं; क्योंकि ये भगवान हैं; ठीक कर रहे हैं।
इसको हमने स्वीकार कर लिया है। मगर दोबारा जब मैं उनके घर गया, तस्वीर
हट गयी थी। मैंने उनसे पूछा, क्या हुआ? तो उन्होंने कहा कि नहीं, जिस दिन से आपने इशारा किया, मैं सचेत हो गया। फिर मुझे बड़ी बेचैनी होने लगी। फिर मैंने कहा इस तस्वीर को हटा ही देना उचित है। तो तस्वीर हटा दी।
तुम्हारा कृष्ण का स्वीकार भी अधूरा-अधूरा है। तुम कृष्ण में से बहुत-सी बातें कांट-छांट कर डालना चाहोगे। तुम कृष्ण में संशोधन करने को सदा तत्पर हो। कृष्ण को लोग अपने-अपने हिसाब से मानते हैं। जितना मान सकते हैं उतना मान लेते हैं, बाकी छोड़ देते हैं। क्या अड़चन है? अड़चन यही है कि महावीर तो तुम्हें साफ अपने से विपरीत जाते मालूम पड़ते हैं; तुम सम्मान दे सकते हो, क्योंकि तुम्हें मालूम है अपने लोभ का, अपने काम का, अपने क्रोध का, अपनी लिप्सा का तुम्हें पता है। और ये उसको छोड़कर जा रहे हैं! विशिष्ट हैं, अब कोई प्रमाण की जरूरत नहीं है। लेकिन कृष्ण? ये वहीं खड़े हैं, उसी संसार में जहां तुम खड़े हो।
कृष्ण को पहचानने के लिये बड़ी गहरी आंख चाहिए! महावीर को पहचानना अंधे के भी बस की बात है, कोई अड़चन नहीं है। अंधा भी पहचान लेगा कि ठीक, सब छोड़कर चले गये। लेकिन कृष्ण को पहचानने के लिए तो जब तक भीतर की आंख न खुली हो, तब तक पहचान मुश्किल है। क्योंकि वे वहीं खड़े हैं, भेद तो कुछ भी नहीं है। ऊपर से भेद नहीं है, भीतर से भेद है। तो जब तक भीतर देखने की क्षमता न हो, तब तक तुम कृष्ण को न समझ पाओगे।
कृष्ण वाममार्गी हैं। इसलिए जैनों ने कृष्ण को नर्क में डाला है। अपने पुराणों में नर्क में डाल दिया है। वाममार्गी हैं। और क्या वाममार्ग होगा? जीवन का सहज स्वीकार, उत्साहपूर्वक स्वीकार, स्वागतपूर्ण स्वीकार... ! जीवन को उसकी समग्र विधा में जीने की क्षमता, साहस... । जीवन में कुछ भी बुरा नहीं है। अगर कांटे भी हैं तो फूल की रक्षा के लिये तत्पर हैं, इसलिए हैं। जीवन में जो भी है सुंदर है। और अगर किसी चीज का सौंदर्य हमें दिखाई नहीं पड़ा है तो हमारी कहीं भूल-चूक हो रही है। परमात्मा असुंदर बना कैसे सकता है? परमात्मा ही प्रगट हुआ है सारे रूपों में। काम में भी राम ही छिपा है। इतना साहस बहुत कम लोग जुटा पाते हैं। इतनी दृष्टि भी नहीं होती। इसलिए तरु! तंत्र, वाममार्ग, अघोरपंथ, नाथपंथ जैसे नामों से लोग डरने लगे। इसीलिए। क्योंकि ये तुम्हारे व्यवस्थित रूढ़ि को छिन्न-भिन्न कर देते हैं। ये प्यारे नाम गालियां बन गये। किसी को वाममार्गी लोग कह देते हैं, बस खतम हो गया मामला। फलां आदमी वाममार्गी है--मतलब तुमने उसका खंडन कर दिया, अब और खंडन करने की जरूरत नहीं है। अब वह क्या कहता है, क्यों कहता है, इस तर्क और विस्तार में जाने का प्रयोजन नहीं है। वाममार्ग का लेबल

लगा दिया, अब वह आदमी खतम हो गया। अघोरपंथ! अघोर जैसा प्यारा शब्द गाली बन गया! किसी को अघोरी कह दो, वह लड़ने को तैयार हो जाता है। लोग अघोरी कहते ही हैं किसी को तभी, जब उनको गाली देनी होती है।
अघोर शब्द का अर्थ समझते हो? अघोर का अर्थ होता है--सरल। किसी को "घोरी" कहो तो गाली हो सकती है। घोर का अर्थ होता है जटिल। कहते हैं न घोर-घमासान। खूब भयंकर युद्ध हुआ, तो उसको कहते हैं घोर-घमासान--जटिल, उलझा हुआ, तो घोर... । अघोर का अर्थ होता है सरल, बच्चे जैसा निर्दोष! लेकिन लोग "अघोरी" गाली देना चाहते हैं तब कहते हैं। लोग कहते हैं मोरारजी देसाई-- अघोरी, क्योंकि जीवन-जल पीते हैं--अघोरी! उनका मतलब यह है कि गाली दे रहे हैं वे। अघोर तो सिर्फ थोड़े-से बुद्धों के लिये उपयोग में लाया जा सकता है। गौतम बुद्ध--अघोरी, कृष्ण--अघोरी, क्राइस्ट--अघोरी, लाओत्सु--अघोरी! ऐसे लोगों के लिये ही सिर्फ उपयोग में लाया जा सकता है। गोरख--अघोरी। सरल, निर्दोष, सीधे-सादे... । इतने सरल कि गणित जीवन में है ही नहीं। हिसाब-किताब लगाने का भाव ही चला गया है।
तुम तो जिसको धार्मिक कहते हो, वह भी हिसाब-किताब लगाता है। वह देखता
है कि इतने उपवास करूं तो स्वर्ग मिलेगा, इतने व्रत रखूं तो स्वर्ग मिलेगा, इतना दान करूं तो स्वर्ग मिलेगा। यह सब हिसाब-किताब है। इस दान में भी बाजार है। इस दान में भी व्यवसाय है, सौदा है। इस पुण्य में भी छिपा हुआ पाप है। अघोरी का अर्थ होता हैः सरल, सीधा--जिसके जीवन से हिसाब-किताब समाप्त ही हो गया। जो बच्चों की भांति जीता है। यह तो परम अवस्था है, परमहंस अवस्था है--अघोर। मगर ये गालियां बन गयीं दुर्भाग्य से।
नाथपंथ... गोरखनाथ और उनके गुरु मच्छिंदरनाथ के कारण तंत्र की यह शाखा नाथपंथ कहलाने लगी। भाव बड़ा प्यारा है! नाथ का अर्थ होता हैः मालिक! जिसको सूफी कहते हैं--"या मालिक"। सब उसका है, मालिक का है! हम भी मालिक के, संसार भी उसका है, सब उसका है। जैसी उसकी मर्जी वैसे जीयेंगे। जैसा जिलायेगा वैसे जीयेंगे। हम अपने संकल्प को आरोपित न करेंगे। हम चेष्टा से न जीयेंगे। हम ऐसे बहेंगे जैसे कोई नदी की धार में बह जाये, हम तैरेंगे नहीं। यह भाव है। उस मालिक के रहते हम अपना संकल्प क्यों बीच में लाएं? हमारा संकल्प आया कि अहंकार आया, अहंकार आया कि हम भटके। तो हम तो बिना अहंकार के जीयेंगे, उसकी जैसी मर्जी... ।
जैसे सूखा पत्ता हवा में उड़ता है, पश्चिम जाये कि पूरब, दक्षिण जाये
कि उत्तर, उसे कोई चिंता नहीं; हवा जहां ले जाये। लड़ता नहीं, प्रतिरोध नहीं करता, संघर्ष नहीं करता कि मैं तो पश्चिम जाऊंगा, कि मुझे पूरब नहीं जाना, मुझे क्यों पूरब लिये जा रहे हो? नहीं, पत्ते की क्या मर्जी? ऐसा जो हो जाये तो समझना कि नाथपंथी। ऐसे ही रहे गोरख। इस सहज मर्जी से रहे। इस सरलता से रहे। मगर लोग अहंकार से जीते हैं। इस जगत में अधिकतम लोगों के जीवन की भाषा अहंकार की भाषा है। स्वभावतः, इतने सरल लोग उन्हें बर्दाश्त नहीं होंगे। उन्हें तो लगेगा, बड़ा खतरा पैदा हो गया। इतनी सरलता से लोग जीने लगेंगे, उनको लगता है तो फिर नीति का क्या होगा? अनीति ही अनीति फैल जायेगी। जैसे अभी नीति है!
ये बड़े मजे की बातें हैं। लोग इस तरह की बातें करते हैं जैसे कि अभी नीति है, फिर अनीति फैल जायेगी। कहां है नीति? कैसी नीति? नीति के नाम पर पाखंड है। थोथे मुखौटे लगाये लोग बैठे हैं, झूठे मुखौटे लगाये लोग बैठे हैं। नीति कहां है?
लेकिन लोग समझते हैं कि अगर सब लोग सरल होने लगे, सहज जीने लगे, स्वाभाविक होने लगे और कहा कि जैसी परमात्मा की मर्जी, तो फिर नीति खंडित हो जायेगी।
बात उलटी ही है। लोग संकल्प से जी-जी कर अनैतिक हो गये हैं। मनुष्य से ज्यादा अनैतिक और कौन है इस पृथ्वी पर? मनुष्य से ज्यादा हिंसक और कौन है इस पृथ्वी पर? मनुष्य से ज्यादा संघातक और कौन है इस पृथ्वी पर? पशु-पक्षी कम-से-कम अपनी जाति के लोगों को मारकर नहीं खाते। कोई सिंह सिंह को मारकर नहीं खाता। कोई बाज बाज पर नहीं हमला करता। आदमी अकेला पशु है इस पूरी पृथ्वी पर, जो स्वयं की जाति में ही मारकाट करता है; और थोड़ी-बहुत नहीं, लाखों की, करोड़ों की! हत्या करने में ऐसा रस! और बड़ा मजा है, इसको भी नैतिक

जामा पहना दिया जाता है। इसको कहते हैं जिहाद, धर्मयुद्ध हो रहा है! धर्मयुद्ध हो रहा है तो फिर मारो। फिर कोई हर्जा नहीं, जितने मारे उतना ही लाभ है! जितने मारे उतना ही स्वर्ग निश्चित है।
लोग जिहाद कर रहे हैं, धर्मयुद्ध कर रहे हैं सदियों से; एक-दूसरे को काट रहे हैं परमात्मा के नाम पर! काटना है उन्हें, नाम कोई भी हो। कभी राजनीति के नाम पर काटते हैं, कभी धर्म के नाम पर काटते हैं, कभी सिद्धांत के नाम पर, कभी शास्त्र के नाम पर। ये सब बहाने हैं, काटना लक्ष्य है। बिना काटे मन नहीं मानता। यह कैसा मनुष्य हमने पैदा किया है? यह कैसा रुग्णचित्त मनुष्य हमने पैदा किया है!
कामवासना से जल रहे हैं लोग। उनके भीतर कामवासना के सिवाय और कुछ भी नहीं भरा है। दबा-दबा कर बैठ गये हैं। इसलिये जब भी कोई कहता है कामवासना का सहजता से स्वीकार करो, वह भी प्रभु की देन है, तो उनके भीतर बहुत घबराहट हो जाती है। क्योंकि वे जानते हैं कि अगर उन्होंने सहजता से स्वीकार किया तो सब गड़बड़ हो जायेगा। वे इतना दबाकर बैठ गये हैं कि करीब-करीब एक ज्वालामुखी उनके नीचे जल रहा है। अब वे सहजता से कैसे स्वीकार करें?
ऐसा ही समझो कि कोई आदमी जिंदगी-भर उपवास करता रहा है, भूखा मरता रहा
है और तुम उससे कहो कि भाई, भूख को सहज स्वीकार करो, जब भूख लगे तो भोजन कर लो--वह एकदम घबड़ा जायेगा। वह कहेगा कि अगर मैंने सहजता से स्वीकार किया तो मैं चौके से कभी बाहर निकलूंगा ही नहीं, क्योंकि मैं जानता हूं अपने को कि चौबीस घंटे मैं भोजन की ही सोचता हूं। उपवासी आदमी सोचता ही है चौबीस घंटे भोजन की।... तो फिर तो मैं निकल ही न सकूंगा चौके से। फिर तो मुझे वहीं बैठा रहना पड़ेगा।
हालांकि तुम हैरान होगे कि यह क्या कह रहे हो तुम। जो लोग भोजन करते हैं वे चौके में नहीं बैठे रहते चौबीस घंटे। मगर तुम उस आदमी की बात भी समझो, वह भी बेचारा ठीक कह रहा है। वह चौबीस घंटे भोजन की ही सोचता है; उपवास करनेवाला सोचता ही भोजन की है।
इसलिए मेरे जैसे व्यक्ति जब जीवन को सरल करने की बात करते हैं तो बड़ी बेचैनी फैल जाती है, बड़ी घबराहट फैल जाती है। यहां दमित प्रकार के लोग कभी- कभी आ जाते हैं, उनको बहुत घबराहट हो जाती है। क्योंकि वे जानते हैं, अगर मैं जो कह रहा हूं वह ठीक है, तो उनके भीतर दबे हुए रोग एकदम से प्रगट हो जायेंगे, जिंदगी-भर दबाये रोग एकदम से प्रगट हो जायेंगे। वे विक्षिप्त हो जायेंगे। वे नहीं बर्दाश्त कर सकेंगे। इस घबड़ाहट से बचने के लिये वे मेरे विपरीत हो जाते हैं, मेरे विरोधी हो जाते हैं।
मेरे विरोधी होने में कारण है। मैं जो कह रहा हूं उसका सत्य इतना खतरनाक उन्हें मालूम होता है--खतरनाक इसलिए नहीं मालूम होता है कि सत्य खतरनाक है; खतरनाक इसलिए मालूम होता है कि अब तक वे इतने असत्य में जीये हैं और अब उस असत्य को छोड़ने में बड़ी मुश्किल मालूम होती है। और वह छूटेगा तो जीवन-भर का जो बांध था, वह टूट जायेगा... ।
उनके जीवन में संयम नहीं है, संयम का सिर्फ थोथा आग्रह है। जो आदमी वस्तुतः संयमी है, जिसने वस्तुतः जाग्रत होकर सम्यक रूपेण अपनी कामवासना का अतिक्रमण किया है, उसे कुछ भी अंतर न पड़ेगा। उसे मेरी बात में जरा भी कुछ विरोध न दिखाई पड़ेगा। जिसको मेरी बात में विरोध दिखाई पड़ता है, वह केवल खबर दे रहा है अपने रुग्णचित्त की, मगर वह सोचता है कि वह मेरे खिलाफ कुछ कह रहा है।
फ्रायड के खिलाफ बड़ा प्रचार हुआ सारी दुनिया में। लेकिन फ्रायड जीवन
के सीधे-सादे सत्यों की बात कर रहा था। फ्रायड वाममार्गी है। फ्रायड ने, दबाये हुए मनोवेगों को पुनः गतिमान करो, इसका संदेश दिया। सारी दुनिया में विरोध हुआ, सारे धर्मों ने विरोध किया। विरोध इसलिए किया कि तुम्हारे नीचे की जमीन खिसक गई। तुम सब गलत हो जाओगे अगर फ्रायड सही है। और यही उचित है कि तुम अपने को ही सही सिद्ध करते रहो। फिर तुम्हारी भीड़ है। भीड़ तुम्हारे साथ है। सत्य सदा अकेला है। असत्य बहुत प्राचीन है। भीड़ उनके साथ राजी है। भीड़ ने इतने दिन तक उनका साथ दिया है। भीड़ की सारी न्यस्त स्वार्थ की व्यवस्था उनसे जुड़ गयी है। तुम एकदम घबड़ा जाते हो, तुम एकदम

भयभीत हो जाते हो। अपने भय से, अपनी घबड़ाहट से तुम विरोध करने लग जाते हो। लेकिन सत्य ऐसे हारता नहीं, सत्य बार-बार लौट आता है।
वाममार्ग लौट-लौट कर आता रहेगा। तंत्र की बार-बार घोषणा होगी, जब तक
कि मनुष्य सहज नहीं हो जाता है। जिस दिन मनुष्य सहज हो जायेगा, उस दिन तंत्र की कोई जरूरत न रह जायेगी। तंत्र सिर्फ औषधि है। वाममार्ग, वे जो उलटे चल पड़े हैं लोग, उनको रास्ते पर लाने के लिए सिर्फ एक उपाय है। जो रास्ते पर आ गया, वह न तो दायें का होता है, न बायें का होता है। दायें- बायें दोनों उसके होते हैं; वह किसी का नहीं होता। उसकी अवस्था अतिक्रमण की होती है; वह दोनों के पार चला गया होता है।
पूछा तूनेः तंत्र, वाममार्ग, अघोरपंथ, वामपंथ जैसे नामों से लोग क्यों डरते हैं?
डरने का कारण है। तुम इतनी बारूद लिये बैठे हो अपने भीतर कि जरा-सी चिनगारी सत्य की जायेगी कि विस्फोट हो जायेगा। तुम चिनगारी से डरोगे नहीं तो क्या करोगे? जब तुम अपनी बारूद को गिराने को राजी हो जाओगे, तब तुम्हें चिनगारी से कोई भय न रह जायेगा। तुम डरते उसी बात से हो जिस बात से तुम्हारे भीतर बेचैनी पैदा होती है। और सत्य बड़ा बेचैन करता है, अगर असत्य के आग्रहपूर्वक संबंध बना लिये हों। अगर असत्य के साथ भांवर डाल ली है तो सत्य बहुत बेचैन करता है।
मुल्ला नसरुद्दीन की शादी हुई। तो जैसा मुसलमानों में रिवाज है... सुहागरात... पत्नी ने मुल्ला के सामने घूंघट उठाया, बुर्का उठाया। मुल्ला ने पहली दफे पत्नी देखी, पहले तो देखी नहीं थी। एकदम निराश होकर रह गया। इससे ज्यादा बदशकल स्त्री उसने जीवन में देखी नहीं थी। रिवाज के अनुसार पत्नी ने पूछा कि मैं किस-किस के सामने बुर्का उघाड़ सकती हूं? तो मुल्ला ने कहाः तू किसी के सामने उघाड़, बस मेरे सामने मत उघाड़ना। दुनिया भर के सामने उघाड़, तू जिस-जिसके सामने उघाड़ना हो उघाड़, मेरे सामने भर मत उघाड़ना। अब यह बुर्का पड़ा ही रहे तो अच्छा।
यह जो कुरूपता है, इससे घबड़ाहट पैदा होती है। तुम अपने पर बुर्का डाले हो, तुम उघाड़ते नहीं। जो भी तुम्हारे बुर्के उघाड़ देता है, तुम्हारी गंदगी दिखा देता है, उससे ही तुम नाराज हो जाते हो। जो भी तुम्हारे भीतर का कूड़ा- करकट दिखा देता है, उससे ही तुम नाराज हो जाते हो। और सदगुरु को दिखाना ही होगा तुम्हारे भीतर कूड़ा-करकट, क्योंकि देखोगे नहीं तो उससे मुक्त कैसे होओगे? तुम्हारे भीतर की व्यर्थता जो तुम संग्रहीत करके बैठे हो, जिसकी छाती पर सवार हो, अगर उससे तुम्हारा छुटकारा न होगा तो तुम उसी में डूबोगे, उसी से डूबोगे। वही तुम्हें डुबाने का कारण हो जायेगा। तुमने छाती पर पत्थर बांध रखे हैं, उन पत्थरों को हटाना ही होगा। हालांकि तुम सोचते हो कि पारस पत्थर हैं। वही तुम्हें डुबा रहे हैं।
जब भी सत्य की नवीन उदघोषणा होती है तो असत्य ने जो इतने जाल फैला रखे हैं, सब तरफ बेचैनी की लहर हो जाती है। सत्य की गर्दन काट दो, सत्य को जहर पिला दो, सत्य की वाणी बंद कर दो, इसकी सब तरह की चेष्टाएं शुरू हो जाती हैं। और इसमें नाराज होने की कोई बात नहीं है। यह बिल्कुल स्वाभाविक है। करुणा की ही बात है, दया की ही बात है।
बुद्ध ने अपने शिष्यों को कहा था कि तुम जिन लोगों को समझाने जाओगे, वही तुम्हें मारेंगे। तुम अनुकंपा से सत्य देने जाओगे, वे ही तुम पर पत्थर फेंकेंगे। तो नाराज मत होना। उनकी भी मजबूरी है, वे भी क्या करें? सदियों- सदियों तक उन्होंने जो सत्य माना था, तुम उसे तोड़ने आ गये। तुम उनका भवन हिलाने लगे। इसी भवन को उन्होंने अपनी सुरक्षा समझा था। तुम उनकी दीवालें गिराने लगे। तुम उनके बुर्के उठाकर उनकी कुरूपता दिखाने लगे। वे नाराज होंगे।
एक शिष्य जाता था--पूर्ण--यात्रा पर, बुद्ध का संदेश लेकर। बुद्ध ने पूछाः तू कहां जायेगा? बिहार का एक हिस्सा था "सूखा"। उसने कहा कि "सूखा" अब तक कोई भिक्षु नहीं गया, वहां जाऊंगा। बुद्ध ने कहाः वहां तू न जा तो अच्छा, उस इलाके के लोग बड़े खतरनाक हैं, इसलिए अब तक कोई भिक्षु वहां गया नहीं। वे तुझे गालियां देंगे तो तुझे क्या होगा? तो पूर्ण ने कहाः वे मुझे गालियां देंगे तो मैं अपने को धन्यभागी समझूंगा कि सिर्फ गालियां देते

हैं, मारते नहीं। बुद्ध ने कहाः और उन्होंने तुझे मारा, फिर तुझे क्या होगा पूर्ण? तो पूर्ण ने कहा कि मैं धन्यभागी समझूंगा अपने को, कि मारते ही हैं, मार नहीं डालते हैं। बुद्ध ने कहाः एक सवाल और, अगर वे मार ही डालें, तो मरते-मरते तुझे क्या होगा? तो पूर्ण ने कहा कि और क्या होगा--यही कि कितने भले लोग हैं कि उस देह से छुटकारा दिला दिया जिस देह में रहता तो शायद कोई भूल-चूक हो जाती; अब भूल-चूक न हो सकेगी। उस देह से छुटकारा दिला दिया जिसमें रहता तो शायद कहीं पैर गलत रास्तों पर पड़ जाते, कुछ से कुछ हो जाता, भटक जाता; उस देह से छुटकारा दिला दिया! उनके प्रति अनुकंपा से भरा हुआ मरूंगा। उनके प्रति कृतज्ञता से भरा हुआ मरूंगा।
बुद्ध ने कहाः फिर तू जा, फिर तू कहीं भी जा। तू जहां भी जायेगा, वहीं तेरे मित्र पायेगा। क्योंकि तुझे अब शत्रु दिखाई नहीं पड़ सकता।
नहीं दिखाई पड़ने से शत्रु नहीं हो जाता है, ऐसा नहीं है। मगर जिसको शत्रु दिखाई पड़ना बंद हो जाता है, वही सत्य की उदघोषणा कर सकता है। शत्रु तो होंगे पैदा, तत्क्षण पैदा हो जायेंगे। सत्य के शत्रु निरंतर पैदा होते हैं। हमारी इतनी समझ कहां है कि हम सत्य को पचा पायें! इतनी छाती कहां है हमारी बड़ी कि हम सत्य को अपने भीतर समाविष्ट करें, अपने भीतर मेहमान बन जाने दें। हम आतिथेय बनें सत्य के, सत्य अतिथि बने--इसकी हमारी पात्रता कहां? इसलिए निरंतर यह होता रहा है। निंदा होती रही, उपेक्षा होती रही, मगर सत्य अपनी उदघोषणा बार-बार करता रहा है।
और मैं तुमसे कहता हूं कि सत्य आता है मस्तिष्क के दायें हिस्से से,
जो बायें हाथ से जुड़ा है। हिसाब-किताब आता है मस्तिष्क के बायें हिस्से से, जो दायें हाथ से जुड़ा है। हिसाब-किताब वाला आदमी कविता के प्रति कभी भी राजी नहीं होता। धन-दौलत को मूल्य समझनेवाला व्यक्ति, ध्यान का मूल्य नहीं समझ पाता। और दुकान ही जिसे सब कुछ है, वह मंदिर का नहीं हो पाता। और अगर मंदिर में चला भी जाये, तो मंदिर भी उसके साथ ही भ्रष्ट हो जाता है।

तीसरा प्रश्नः समाधि का पहला अनुभव कैसा होता है?

होगा तो ही जानोगे। कहा जा सके, ऐसा नहीं है। कुछ-कुछ इशारे किये जा सकते हैं। जैसे अंधेरे में अचानक दीया जल जाये, ऐसा होता है। या जैसे बीमार मरता हो और अचानक कोई दवा लग जाये... मरते-मरते कोई दवा लग जाये; और जीवन की लहर, जीवन की पुलक फिर फैल जाये--ऐसा होता है। जैसे कोई मुर्दा जिंदा हो जाये--ऐसा होता है समाधि का पहला अनुभव।
अमृत का अनुभव है। परम संगीत का अनुभव है। पर होगा तो ही होगा। और होगा तो ही तुम समझ पाओगे; मेरे कहने से समझ में न आ सकेगा। प्रेम में जैसा होता है। अब कोई किसी को कैसे समझाये? जिसने प्रेम न किया हो, जिसने प्रेम जाना न हो, उसके सामने तुम कितना लाख सिर पटको, कितनी व्याख्या करो--सुन लेगा सब, मगर फिर भी पूछेगा कि मेरी कुछ समझ में नहीं आया, कुछ और थोड़ी व्याख्या करिए।
ऐसा ही जैसे अंधे को तुम प्रकाश समझाओ, या बहरे को नाद समझाओ--नहीं समझ में आ सकेगा। जिसके नासापुट खराब हो गये हैं, जिसे गंध नहीं आती, उसे गंध का कोई अनुभव कैसे बताओगे? अनुभव कभी भी शब्दों में बांधे नहीं जा सकते, लेकिन कुछ इशारे किये जा सकते हैं।

गीत प्राणों में जगे, पर भावना में बह गए!
एक थी मन की कसक,
जो साधनाओं में ढली, कल्पनाओं में पली;
पंथ था मुझको अपरिचित, मैं नहीं अब तक चली,
प्रेम की संकरी गली;
बढ़ गए पग, किंतु सहसा
और मन भी बढ़ गया;
लोक-लीकों के सभी भ्रम, एक पल में ढह गए! गीत प्राणों में जगे, पर भावना में बह गए! वह मधुर वेला प्रतीक्षा की मधुर अनुहार थी,

मैं चकित साभार थी; कह नहीं सकती हृदय की जीत थी, या हार थी, वेदना सुकुमार थी; मौन तो वाणी रही, पर भेद मन का खुल गया; जो न कहना चाहती थी, ये नयन सब कह गए!
गीत प्राणों में जगे, पर भावना में बह गए!
कल्पना जिसकी संजोई सामने ही पा गई,
वह घड़ी भी आ गई; छवि अनोखी थी हृदय पर छा गई,
मन भा गई; देखते शरमा गई; कर सकी मनुहार भी कब
मैं स्वयं में खो गई; और अब तो प्राण मेरे कुछ ठगे-से रह गए!
गीत प्राणों में जगे, पर भावना में बह गए!
जैसे अचानक तुम्हारे हृदय में एक गीत जगे। जैसे अचानक, अनायास; अकारण तुम्हारे भीतर एक रस का झरना फूट पड़े!
पंथ था मुझको अपरिचित, मैं नहीं अब तक चली
प्रेम की संकरी गली!
और अचानक प्रेम जग जाये... ऐसा अनुभव है समाधि का प्रथम अनुभव। जैसे पतझड़ था और अचानक वसंत आ जाये! और जहां रूखे-सूखे वृक्ष खड़े थे, हरे हो जाएं, लद जायें पत्तों से, फूल खिल जायें--ऐसा अनुभव है समाधि का प्रथम। बढ़ गए पग, किंतु सहसा
और जिसके भीतर प्रेम जगा या जिसके भीतर प्रकाश जगा, या जिसे नाद सुनाई पड़ा, फिर उसके पैर सहसा बढ़ जाते हैं। फिर भय नहीं पकड़ता। जिसके भीतर प्रेम जगा, वह सब भय छोड़ देता है। इसलिए तो गणित, हिसाब बिठानेवाले लोग कहते हैं कि प्रेम अंधा होता है--कि जहां आंखवाले जाने से डरते हैं, वहां प्रेमी चला जाता है। जहां आंखवाले कहते हैं सावधान, सावधान, बचो, झंझट में पड़ोगे--वहां प्रेमी नाचता और गीत गुनगुनाता प्रवेश कर जाता है।
इसलिए समझदार प्रेमी को अंधा कहते हैं। असलियत उलटी ही है। समझदारों
के सिवाय कोई और अंधा नहीं। प्रेमी के पास ही आंख होती है। अगर प्रेम आंख नहीं है तो फिर और आंख कहां होगी?
पंथ था मुझको अपरिचित, मैं नहीं अब तक चली
प्रेम की संकरी गली; बढ़ गए पग, किंतु सहसा
और मन भी बढ़ गया; लोक-लीकों के सभी भ्रम, एक पल में ढह गए!
ऐसा है समाधि का पहला अनुभव। अब तक की सारी धारणाएं, अब तक के सारे पक्षपात, अब तक के सारे सिद्धांत, शास्त्र, ऐसे बह जायेंगे, जैसे वर्षा का पहला पूर आया नदी में और सब कूड़ा-करकट किनारों का ले गया... सब बह गया।
वह मधुर वेला प्रतीक्षा की मधुर अनुहार थी,
मैं चकित साभार थी;
हां, चकित होकर रह जाओगे खड़े; सोच न सकोगे क्या हो रहा है। विचार बंद
हो जायेंगे। सोचने का अवसर नहीं है। सोचने के पार कुछ घट रहा है।
वह मधुर वेला प्रतीक्षा की मधुर अनुहार थी,
मैं चकित साभार थी; कह नहीं सकती हृदय की जीत थी, या हार थी,
कहना कठिन है--कौन जीता, कौन हारा? क्योंकि वहां दो नहीं हैं, इसलिए जीत कहो तो ठीक, हार कहो तो ठीक। एक अर्थ में हार है, क्योंकि मिट गये; दूसरे अर्थ में जीत है, क्योंकि परमात्मा हो गये। एक अर्थ में हार है बूंद की कि बूंद मिट गई, दूसरे अर्थ में जीत है कि बूंद सागर हो गई।
कह नहीं सकती हृदय की जीत थी, या हार थी,
वेदना सुकुमार थी;
पर इतना पक्का है कि वह जो पीड़ा थी बड़ी प्रिय थी, बड़ी मीठी थी। कहा नहीं गोरख ने--मरण है मीठा! तिस मरणी मरो, जिस मरणी गोरख मरि दीठा। बड़ी मीठी प्रीति है, बड़ी मीठी प्रीतिकर मृत्यु है!
कल्पना जिसकी संजोई सामने ही पा गई
सच तो यह है, तुमने जितनी कल्पनाएं संजोई हैं, सब छोटी पड़ जाती हैं सत्य के समक्ष। तुमने जो मांगा था उससे बहुत ज्यादा मिलता है, जब मिलता है; छप्पर तोड़कर मिलता है।
वह घड़ी भी आ गई
जिसका भरोसा भी नहीं होता था कि आ जायेगी; घड़ी आती है।
वह घड़ी भी आ गईछवि अनोखी थी हृदय पर छा गई, मन भा गई; देखते शरमा गई,

भरोसा नहीं आता कि मेरी ऐसी पात्रता! कि प्यारा मिलेगा, कि प्रियतम से मिलन होगा।
कर सकी मनुहार भी कब
कहते कुछ न बना। स्वागत के दो शब्द न बोले जा सके... ।
मैं स्वयं में खो गई; और अब तो प्राण मेरे कुछ ठगे-से रह गए!
समाधि का पहला अनुभव, जैसे बिल्कुल ठग गए, जैसे बिल्कुल लुट गये... । हारे कि जीते, पता नहीं; इतना-भर पक्का है कि सीमाएं टूट गईं, संकीर्णताएं टूट गईं--उतरा पूरा आकाश। कबीर ने कहा हैः बुंद में समुंद समाना... । बूंद में समुद्र समा गया। सीमा में असीम आ गया, दृश्य में अदृश्य... । जो गोचर था उसके भीतर अगोचर खड़ा हो गया।
समाधि का पहला अनुभव इस जगत का सर्वाधिक बहुमूल्य अनुभव है। और फिर अनुभव पर अनुभव है, कमल पर कमल खिलते चले जाते हैं। फिर कोई अंत नहीं है, फिर पंक्तिबद्ध कमल खिलते चले जाते हैं। फिर ऐसा कभी होता ही नहीं कि समाधि के अनुभव कम पड़ते हैं, बढ़ते ही चले जाते हैं। इसलिए परमात्मा को अनंत कहा है, कि उसका अनुभव कभी चुकता नहीं है।
जीसस के जीवन में उल्लेख है कि जब बपतिस्मा वाले जॉन ने--यह भी एक अदभुत आदमी था जॉन--जीसस को दीक्षा दी। जीसस के गुरु थे जॉन। जोर्दन नदी में जीसस को ले जाकर जब उन्होंने जल से दीक्षा दी तो बड़ी भीड़ इकट्ठी हो गयी थी, क्योंकि जॉन कह रहा था कि जिस आदमी के लिए दीक्षा देने को मैं रुका हूं, वह आया, अब आया, अब आया, आने ही वाला है। तो बहुत भीड़ इकट्ठी हो गयी थी उस आदमी को देखने।
और जब जीसस आये तो जॉन ने कहा, आ गया यह आदमी, इसी को दीक्षा देने के लिए मैं रुका था; मेरा काम अब पूरा हो गया। अब यह सम्हालेगा। मैं बूढ़ा भी हो चुका हूं।
जब जीसस को दीक्षा दी जोर्दन नदी में तो कहानी बड़ी प्रीतिकर बात कहती है--ये प्रतीक हैं--कि एक सफेद कबूतर अचानक आकाश से उतरा और जीसस में समा गया... । यह तो प्रतीक है। सफेद कबूतर शांति का प्रतीक है। कोई वस्तुतः कबूतर आकाश से उतरकर जीसस में नहीं समा गया, लेकिन जरूर कोई सफेदी अचानक आकाश से उतरती हुई अनुभव हुई होगी बहुत लोगों को--जैसे बिजली कौंध गई हो! जिनके पास जरा-सी भी आंख थी... और आंखवाले लोग ही इकट्ठे हुए होंगे। किसको पड़ी है? जॉन जोर्दन नदी में जीसस को दीक्षा दे रहा है, किसको पड़ी है? प्यासे इकट्ठे हुए होंगे। जिन्हें थोड़ी बूंदें लग गयी थीं, वे इकट्ठे हुए होंगे। जिन पर थोड़े रंग के छींटे पड़ गये थे, वे इकट्ठे हुए होंगे। जिन पर थोड़ी जॉन की गुलाल पड़ गयी थी, वे इकट्ठे हुए होंगे। देखा होगा एक ज्योतिर्पुंज, जैसे उतरा आकाश से और जीसस में समा गया... । और जॉन ने तत्क्षण कहा कि मेरा काम पूरा हुआ। जिसके लिए मैं प्रतीक्षा कर रहा था, वह आ गया। अब मैं विदा हो सकता हूं।
वह समाधि का पहला अनुभव था जीसस के लिए। समाधि का जब पहला अनुभव किसी
को होता है तो उसे तो होता ही है, उसके आसपास भी भनक पड़ जाती है। कहते हैं, जब बुद्ध को समाधि का पहला अनुभव हुआ तो बेमौसम फूल खिल गये। यह भी प्रतीक है, जैसे कबूतर; कबूतर यहूदियों का प्रतीक है--शांति का प्रतीक। फूल का खिल जाना भारतीय प्रतीक है--बेमौसम, अचानक... ।
जब भी किसी को समाधि फलती है--बेमौसम का फूल है समाधि; क्योंकि इस पृथ्वी पर मौसम ही कहां है समाधि के खिलने के लिये! इस पृथ्वी पर समाधि न खिले, यह तो बिल्कुल सामान्य बात है; समाधि खिले, यही असामान्य है। यह पृथ्वी तो रेगिस्तान है, यहां हरियाली कहां, रसधार कहां? जब कभी उतर आती है तो बेमौसम का फूल है। नहीं होना था और हुआ, चमत्कार है! समाधि चमत्कार है!
अनुभव तुम्हें होगा तो ही जान पाओगे। या जिन्हें अनुभव हुआ हो उनके पास बैठो, उठो, शायद किसी दिन सफेद कबूतर उतरता दिखाई पड़े, या अचानक फूल खिलते दिखाई पड़ जायें।

मेरे आंगन श्वेत कबूतर!
उड़ आया ऊंची मुंडेर से, मेरे आंगन श्वेत कबूतर!

गर्मी की हल्की संध्या यों--
झांक गई मेरे आंगन में,
झरीं केवड़े की कुछ बूंदें
किसी नवोढ़ा के तन-मन में;
लहर गई सतरंगी-चूनर, ज्यों तन्वी के मृदुल गात पर! उड़ आया ऊंची मुंडेर से, मेरे आंगन श्वेत कबूतर! मेरे हाथ रची मेहंदी,
उर--बगिया में बौराया फागुन,
मेरे कान बजी बंसी-
धुनघर आया मनचाहा पाहुन;
एक पुलक प्राणों में, चितवन एक नयन में, मधुर-मधुरतर! उड़ आया ऊंची मुंडेर से, मेरे आंगन श्वेत कबूतर!
कोई सुंदर स्वप्न सुनहले--
आंचल में चंदा बन आया,
कोई भटका गीत उनींदा,
मेरी सांसों से टकराया;
छिटक गई हो जैसे जूही, मन-प्राणों में महक-महक कर! उड़ आया ऊंची मुंडेर से, मेरे आंगन श्वेत कबूतर! मेरा चंचल गीत किलकता
घर-आंगन देहरी-दरवाजे।
दीप जलाती सांझ उतरती
प्राणों में शहनाई बाजे;
अमराई में बिखर गए री, फूल सरीखे सरस-सरस स्वर!
उड़ आया ऊंची मुंडेर से, मेरे आंगन श्वेत कबूतर!
आता है उतर एक श्वेत कबूतर समाधि के पहले अनुभव में। चारों तरफ फूल खिल जाते हैं। वंशी की धुन बज उठती है। भीतर कोई शहनाई बजाने लगता है। सारे नाद जगते हैं।
मेरे कान बजी वंशी-धुनघर आया मनचाहा पाहुन
आ गया मेहमान जिसकी प्रतीक्षा है--अतिथि। जानते हो न, इस देश में हमने मेहमान को अतिथि इसलिए कहा कि वह बिना तिथि बतलाये आता था। परमात्मा ही एकमात्र अतिथि बचा है अब तो, बाकी सब अतिथि तो तिथि बतलाकर आते हैं। अब तो खबर कर देते हैं कि आ रहे हैं। वे यह कह देते हैं कि धक्का एकदम से देना ठीक नहीं; आ रहे हैं, सम्हल जाओ, कि तैयार कर लो अपने को। क्योंकि अतिथि को देखकर अब कोई प्रसन्न तो होता नहीं। पहले से खबर आ जाती है तो तैयारी हो जाती है, गाली-गलौज जो देनी है दे लेते हैं लोग। पत्नी को जो कहना होता है कह लेती है। पति को जो कहना होता है कह लेते हैं। तब तक आते-आते शिष्टाचार वापिस लौट आता है। एकदम से आ जाओ, कौन जाने सच्ची बातें निकल जायें। कहना तो यही पड़ता है कि धन्यभाग, कि आप को देखकर बड़ा हृदय प्रफुल्लित हो रहा है! यह मन की बात नहीं। मन की बात कुछ और है। ठीक ही है पश्चिम का रिवाज कि पहले खबर कर दो, ताकि लोग तैयारी कर लें, अपने हृदय मजबूत कर लें।
अब तो परमात्मा ही एकमात्र अतिथि बचा है--तिथि नहीं बतलाता। उसकी कोई भविष्वाणी नहीं हो सकती कब आयेगा। समाधि का पहला अनुभव कब घटेगा, कोई भी नहीं कह सकता। अनायास, बेमौसम... । सच तो यह है, जब तुम प्रतीक्षा नहीं कर रहे थे, बिल्कुल नहीं कर रहे थे, तब घटता है। क्योंकि जब तक तुम प्रतीक्षा करते हो, तुम तने ही रहते हो। तुम्हारे चित्त में तनाव रहता है। तुम राह देखते हो तो तुम पूरे संलग्न नहीं हो पाते। राह देखना भी विचार है, और विचार बाधा है। जब तक तुम सोचते हो अब हो जाये, अभी तक नहीं हुआ--तब तक तो तुम चिंताओं से घिरे हो; बदलियां घिरी हैं, सूरज निकले तो कैसे निकले? आता है आकस्मिक, अनायास--जब तुम सिर्फ बैठे होते हो... कुछ भी नहीं कर रहे होते, ध्यान भी नहीं कर रहे होते--समाधि का पहला अनुभव तब होता है। क्योंकि जब तुम ध्यान भी कर रहे होते हो, तब भी तुम्हारे मन में कहीं वासना सरकती रहती है--शायद अब हो जाये, अब होता होगा; अभी तक नहीं हुआ, बड़ी देर लगाई! शिकायतें उठती रहती हैं।

ध्यान करते-करते, करते-करते एक दिन ऐसी घड़ी घटती है कि तुम बैठे होते हो, ध्यान भी नहीं कर रहे होते हो, शांत होते हो, बस स्वस्थ होते हो, मौन होते हो--और आ गया!

मेरे कान बजी वंशी-धुनघर आया मनचाहा पाहुन
छिटक गई हो जैसे जूही, मन-प्राणों में महक-महक कर!
मेरा चंचल गीत किलकता
घर-आंगन देहरी-दरवाजे।
दीप जलाती सांझ उतरती
प्राणों में शहनाई बाजे,
अमराई में बिखर गए री, फूल सरीखे सरस-सरस स्वर!
घटती है घटना। परिभाषा मत पूछो, राह पूछो। पूछो कि कैसे घटेगी, यह मत पूछो कि क्या घटता है? क्योंकि कहा नहीं जा सकता। बताने का कोई उपाय नहीं है। यह बात कहने की नहीं है, यह बात जानने की है। लेकिन विधि बताई जा सकती है, इशारा किया जा सकता है--ऐसे चलो, ऐसे सम्हलो। चित्त निर्विचार हो, शांत हो, अपेक्षा-शून्य हो, वासना, तृष्णा से मुक्त हो--बस उसी क्षण में। जब भी ऐसी वसंत की घड़ी तुम्हारे भीतर सज जायेगी--बज उठती है भीतर की शहनाई; खिल जाते हैं बेमौसम फूल; उतर आती है कोई किरण आकाश से और कर जाती है तुम्हें सदा के लिए और, भिन्न। फिर तुम दोबारा वही न हो सकोगे। समाधि का पहला अनुभव--और स्नान हो गया!
सदियों-सदियों से तुम गंदे हो। धूल जम गई है बहुत, लंबी यात्राएं की हैं। समाधि का पहला अनुभव सारी धूल बहा ले जाता है। सारी धारणाएं, सारी धारणाओं के जाल--सब समाप्त हो जाते हैं; तुम निर्दोष हो जाते हो।
कहा नहीं गोरख ने कि जैसे छोटा बालक भीतर जन्मता है--अंतर के शून्य में एक बालक बोल उठे, एक नये जीवन का आविर्भाव! समाधि में तुम्हारी मृत्यु हो जाती है।
मरौ हे जोगी मरौ... । अहंकार मर जाता है। तुम मिट जाते हो और परमात्मा
हो जाता है।

चौथा प्रश्नः प्यारे ओशो!
प्रश्नों के अंबार लगे हैं
उत्तर चुप हैं,
कौन सहेजे इन कांटों को
बगिया चुप है, माली चुप है
प्रश्न स्वयं में रहता चुप है
दिनकर चुप है, रातें चुप हैं
उठी बदरिया कारी-कारी
लगा अंधेरा बिल्कुल घुप है
ओशो, इस स्थिति का निराकरण करने की अनुकंपा करें।

कन्नूमल! जब तक प्रश्न हैं तब तक उत्तर चुप रहेंगे। प्रश्नों के कारण
ही उत्तर चुप हैं। प्रश्नों से उत्तर नहीं मिलता; जब प्रश्न चले जाते हैं और चित्त निष्प्रश्न हो जाता है तब उत्तर मिलता है। प्रश्नों की भीड़ में ही तो उत्तर खो गया है।
ठीक कहते हो तुमः प्रश्नों के अंबार लगे हैं, उत्तर चुप हैं।
उत्तर चुप रहेंगे ही। प्रश्न इतना शोरगुल मचा रहे हैं, उत्तर बोलें
तो कैसे बोलें? और ख्याल रखना, प्रश्न अनेक होते हैं, उत्तर एक है। उत्तर तो एकवचन है, प्रश्न बहुवचन। प्रश्नों की भीड़ होती है। जैसे बीमारियां तो बहुत होती हैं, स्वास्थ्य एक होता है। बहुत तरह के स्वास्थ्य नहीं होते। तुम किसी से कहो कि मैं स्वस्थ हूं तो वह यह नहीं पूछता कि किस प्रकार के स्वस्थ, कौन-सी भांति के स्वास्थ्य में हो? लेकिन किसी से कहो मैं बीमार हूं तो तत्क्षण पूछता है--कौन-सी बीमारी? बीमारियां बहुत हैं, स्वास्थ्य एक है। प्रश्न बहुत हैं, उत्तर एक है। और बहुत प्रश्नों के कारण वह एक उत्तर पकड़ में नहीं आता। भीड़ लगी है प्रश्नों की, सच कहते हो। चारों तरफ

प्रश्न ही प्रश्न हैं... प्रश्न से प्रश्न निकलते जाते हैं, खड़े होते जाते हैं, मिटते जाते हैं, नये बनते जाते हैं। तुम इतने घिरे हो प्रश्नों से यह सच है। मगर इसी कारण उत्तर चुप है।
तुम कहते होः प्रश्नों के अंबार लगे हैं, उत्तर चुप हैं।
उत्तर चुप नहीं है; उत्तर भी बोल रहा है; लेकिन उत्तर एक है और प्रश्न अनेक हैं। नक्कारखाने में तूती की आवाज जैसे खो जाये... । बाजार में, शोरगुल में कोई धीमे-धीमे स्वर में गीत गाये, जैसे खो जाये, ऐसा ही सब खो गया है।
उत्तर पाया जा सकता है। उत्तर दूर भी नहीं है। उत्तर बहुत निकट है। उत्तर तुम हो। उत्तर तुम्हारे केंद्र में बसा है। जरा प्रश्नों को जाने दो। प्रश्नों को मूल्य मत दो। प्रश्नों को बहुत ज्यादा अर्थ भी मत दो। प्रश्नों से धीरे-धीरे उदासीन हो जाओ। प्रश्नों को सहयोग मत दो, सत्कार मत दो। प्रश्नों की उपेक्षा करो। प्रश्नों के प्रति तटस्थ हो जाओ। क्योंकि जो प्रश्नों में चला गया, वह दर्शनशास्त्र के जंगल में भटक जाता है। तुम प्रश्नों को चलने दो, आने दो, जाने दो। ऐसे ही देखो प्रश्नों की भीड़ को, जैसे तुम रास्ते पर चलते लोगों को देखते हो--न कुछ लेना, न कुछ देना--असंग-भाव से, दूर खड़े... । तुम्हारे और तुम्हारे प्रश्नों के बीच जितनी दूरी बढ़ जाये, उतना हितकर है; क्योंकि उसी अंतराल में उत्तर उठेगा।
बुद्ध के पास जब भी कोई जाता था, कोई प्रश्न पूछने, तो बुद्ध कहतेः रुक जाओ, दो वर्ष रुक जाओ। दो वर्ष चुप बैठो मेरे पास, फिर पूछ लेना।
ऐसा हुआ, एक बड़ा दार्शनिक बुद्ध के पास गया। मौलुंकपुत्त उसका नाम था। जाहिर दार्शनिक था। उसने बड़े प्रश्नों के अंबार लगा दिये। बुद्ध ने प्रश्न सुने और कहा कि मौलुंकपुत्त, तू सच ही उत्तर चाहता है? अगर सच ही चाहता है, कीमत चुका सकेगा?
मौलुंकपुत्त ने कहाः जीवन मेरा अंत होने के करीब आ रहा है। जीवन-भर से
ये प्रश्न पूछ रहा हूं। बहुत उत्तर मिले, लेकिन कोई उत्तर उत्तर साबित नहीं हुआ। हर उत्तर में से नये प्रश्न निकल आये हैं। किसी उत्तर में समाधान नहीं हुआ है। आप क्या कीमत मांगते हैं? मैं सब कीमत चुकाने को तैयार हूं। मैं इन प्रश्नों के हल चाहता ही हूं। मैं इनका समाधान लेकर इस पृथ्वी से जाना चाहता हूं।
फिर, बुद्ध ने कहा, ठीक है। क्योंकि लोग उत्तर तो मांगते हैं, मगर कीमत चुकाने को राजी नहीं होते; इसलिए मैंने तुझसे पूछा। फिर दो साल तू चुप बैठ जा, यह कीमत है। तू मेरे पास दो साल चुप बैठ, बोलना ही मत। जब दो साल बीत जायेंगे, मैं खुद ही तुझसे पूछूंगा कि मौलुंकपुत्त, अब पूछ ले। फिर तू पूछ लेना तुझे जो पूछना हो। और आश्वासन देता हूं कि सब उत्तर दे दूंगा, सब निराकरण कर दूंगा! मगर दो साल बिल्कुल चुप, सन्नाटा... दो साल बात मत उठाना।
मौलुंकपुत्त सोच ही रहा था कि हां कहूं कि ना, क्योंकि दो साल लंबा वक्त है और इस आदमी का क्या भरोसा, दो साल बाद देगा भी उत्तर कि नहीं? उसने कहा कि आप पक्का विश्वास दिलाते हैं कि दो साल बाद उत्तर देंगे? बुद्ध ने कहाः बिल्कुल विश्वास दिलाता हूं, तू पूछेगा तो दूंगा। तू पूछेगा ही नहीं तो मैं किसको उत्तर दूंगा? तभी एक भिक्षु पास के एक वृक्ष के नीचे बैठा ध्यान कर रहा था। खिलखिलाकर हंसने लगा। मौलुंकपुत्त ने पूछाः यह भिक्षु क्यों हंस रहा है? बुद्ध ने कहाः तुम्हीं पूछ लो। उस भिक्षु ने कहा कि अगर पूछना हो, अभी पूछ लो। यही धोखा मेरे साथ हुआ। हम भी ऐसे ही बुद्धू बने! मगर यह बात सच कह रहे हैं वे कि अगर पूछोगे तो दो साल बाद उत्तर देंगे, मगर दो साल बाद कौन पूछता है! दो साल से मैं चुप बैठा हूं। अब वे मुझसे कुरेद-कुरेद कर पूछते हैं कि पूछो भाई, मगर दो साल चुप रहने के बाद पूछने को कुछ बचता नहीं, उत्तर मिल ही जाता है। अगर पूछना हो तो अभी पूछ लो, नहीं तो दो साल बाद फिर पूछने को कुछ न बचेगा।
और यही हुआ, मौलुंकपुत्त दो वर्ष रुका। दो वर्ष पूरे हुए, बुद्ध भूले नहीं, तिथि-तारीख सब याद रखी। ठीक दो साल पूरे होने पर, मौलुंकपुत्त तो भूल ही गया था, क्योंकि जिसके विचार धीरे-धीरे शांत हो जायें, उसे समय का बोध भी खो जाता है। क्या समय का हिसाब, कौन दिन आया, कौन वर्ष आया, क्या हिसाब!

सब जा चुका था, सब बह चुका था। जरूरत भी क्या थी! बैठना था रोज बुद्ध के पास तो शुक्र हो कि शनि, कि रवि हो कि सोम, सब बराबर था। आषाढ़ हो कि जेठ, गर्मी हो कि सर्दी, सब बराबर था। भीतर तो एक ही रस था--शांति का, मौन का। दो वर्ष पूरे हो गये, बुद्ध ने कहाः मौलुंकपुत्त, तुम खड़े हो जाओ। खड़ा हो गया मौलुंकपुत्त। बुद्ध ने कहाः अब तुम पूछ लो, क्योंकि मैं अपने वचन से मुकरता नहीं। तुम्हें कुछ पूछना है?
मौलुंकपुत्त हंसने लगा और उसने कहाः वह भिक्षु ठीक कहा था। मेरे पास पूछने को अब कुछ भी नहीं है। उत्तर आ ही गया। आपकी कृपा से उत्तर आ ही गया। उत्तर दिया नहीं गया और आ गया! उत्तर बाहर से आता ही नहीं, उत्तर भीतर
से आता है। ऐसा ही समझो, जैसे कोई कुआं खोदता है तो पहले कंकड़-पत्थर निकलते हैं, कूड़ा-करकट निकलता है, सूखी जमीन निकलती है, फिर गीली जमीन आती है, फिर कीचड़ निकलती है, फिर जलस्रोत... । जलस्रोत तो दबे पड़े हैं। तुम्हारे प्रश्नों की ही पर्त-पर्त जम गयी है, उसी के नीचे जलस्रोत दबा पड़ा है। खुदाई करो, इन प्रश्नों को हटाओ। और हटाने का उपाय एक ही हैः जाग कर साक्षी-भाव से इन प्रश्नों के प्रवाह को देखते रहो। सिर्फ देखते रहो इस प्रवाह को, कुछ मत करो। बैठ जाओ रोज घंटे-दो-घंटे, चलने दो प्रवाह को। जल्दी भी न करना कि आज ही बंद हो जाये।
इसलिए बुद्ध ने कहा, दो साल। कोई तीन महीने के बाद पहली सरसराहट सन्नाटे की शुरू होती है। और कोई दो साल होते-होते अनुभव पक जाता है। बस कोई इतना धीरज भी रखे कि दो घंटे रोज बैठता रहे, कुछ न करे... । उस कुछ न करने में सारी कला छिपी है।
लोग पूछते हैंः बुद्ध को पहली समाधि कैसे घटी? बैठे थे वृक्ष के नीचे, कुछ कर नहीं रहे थे, तब घटी। छह साल तक बहुत कुछ किया--बड़े यम, व्यायाम, प्राणायाम, न मालूम क्या-क्या किया। सब करके थक गये थे, उस रात तय करके सोये कि अब कुछ नहीं करना, हो गया बहुत। करने से भी कुछ नहीं होता। उस रात करना भी छोड़ दिया। उस रात बिल्कुल बिना करने की अवस्था में सो गये। शून्य भाव था। सुबह आंख खुली और समाधि द्वार पर खड़ी थी। जिस मेहमान की प्रतीक्षा थी, वह आ गया। आखिरी तारा डूबता था सुबह का और भीतर बुद्ध के आखिरी विचार डूब गया। उधर आखिरी तारे से आकाश खाली हुआ, इधर आखिरी विचार भी डूब गया। समाधि आ गयी, उत्तर आ गया। इसीलिए तो समाधि कहते हैं उसे, क्योंकि उसमें समाधान है।

सांझ आई, चुप हुए धरती-गगन
नयन में गोधूलि के बादल उठे
बोझ से पलकें झपीं नम हो गईं
सांझ ने पूछा, उदासी किसलिए?
किंतु मेरे पास कुछ उत्तर नहीं! रात आई, कालिमा घिरती गई
सघन तम में द्वार मन के खुल गए दाह की चिनगारियां हंसने लगीं रात ने पूछा, जलन यह किसलिए? किंतु मेरे पास कुछ उत्तर नहीं! नींद आई, चेतना सब मौन है
देह थककर सो गई, पर प्राण को
स्वप्न की जादूभरी गलियां मिलीं
नींद ने पूछा, भुलावे किसलिए?
किंतु मेरे पास कुछ उत्तर नहीं!
प्रश्न तो बिखरे यहां हर ओर हैं
किंतु मेरे पास कुछ उत्तर नहीं!
तुम प्रश्नों को पकड़ो ही मत, उत्तर तुम्हें मिलेंगे भी नहीं। कोई कभी प्रश्नों के सहारे चलकर उत्तर पाया भी नहीं। तुम प्रश्न उठने दो, यह मन की खुजलाहट है। खुजलाहट ठीक शब्द है। कभी-कभी खुजलाहट उठती है, तुम खुजा लेते हो--बस ऐसे ही मन की खुजलाहट हैं प्रश्न। खुजा लेने से कुछ हल नहीं होता, लेकिन न खुजाओ तो भी बेचैनी होती है। खुजा लेने से थोड़ी-सी क्षण-भर को राहत

मिलती है। बस ऐसे ही तुम्हारे उत्तर हैं। एक उत्तर पकड़ लिया, थोड़ी देर राहत मिलती है। जल्दी ही उस उत्तर में से भी प्रश्न निकल आयेंगे। फिर राहत खो जायेगी, फिर उत्तर की तलाश शुरू हो जायेगी।
कन्नूमल तुम ठीक कहते होः
प्रश्नों के अंबार लगे हैं
उत्तर चुप हैं
कौन सहेजे इन कांटों को
बगिया चुप है, माली चुप है
प्रश्न स्वयं में रहता चुप है
दिनकर चुप है, रातें चुप हैं
उठी बदरिया कारी कारी
लगा अंधेरा बिल्कुल घुप है
प्रश्नों के अंबार लगे हैं
उत्तर चुप हैं।
उत्तर चुप रहेंगे। उत्तर बोलते नहीं। तुम बोलना जब बंद कर दोगे, तत्क्षण उन्हें पहचान लोगे। तुम्हारी वाणी खो जायेगी और तुम पाओगे--शून्य तुम्हारे भीतर बोला, मौन तुम्हारे भीतर बोला। उस मौन में अचानक समाधान है, सब प्रश्नों का उत्तर है; क्योंकि उस मौन में शांति है, सुख है, परम आनंद है।
तुमने एक बात ख्याल की, प्रश्न उठते दुख के कारण हैं! दुख प्रश्नों का जन्मदाता है। जैसे तुम्हारे सिर में दर्द होता है तो तुम पूछते हो सिर में दर्द क्यों है? जब नहीं होता तो तुम यह नहीं पूछते कि सिर में दर्द क्यों नहीं है? तुम्हें जब बीमारी होती है तो तुम पूछते हो डाक्टर से जाकर कि बीमार क्यों हूं, कारण? लेकिन जब तुम स्वस्थ होते हो तब तुम डाक्टर के पास जाकर नहीं पूछते कि मैं स्वस्थ क्यों हूं, कारण? स्वास्थ्य में कोई प्रश्न नहीं उठता, बीमारी में प्रश्न उठता है। दुख से प्रश्नों का जन्म होता है, सुख में प्रश्न क्षीण हो जाते हैं।
तुम जैसे ही अपने भीतर शांत हो जाओगे और थोड़े-से सुख की झलक पाओगे, हैरान हो कर पाओगे--प्रश्न खो गये! कौन पूछता है, किसलिए पूछता है! दर्द ही न रहा तो दर्द से जन्मनेवाले प्रश्न कैसे बच सकते हैं? वे अपने-आप समाप्त हो जाते हैं।

आखिरी प्रश्नः प्रार्थना क्या है?

प्रार्थना अहोभाव की दशा है।
प्रार्थना है धन्यवाद।
परमात्मा ने इतना दिया है, हम कम-से-कम धन्यवाद तो दें।
प्रार्थना है "उसके" स्वागत की तैयारी। अतिथि आयेगा, अतिथि आता ही होगा। घर पर बंदनवार लगायें। फूल की माला गूंथें। आरती सजायें। प्रार्थना स्वागत की तैयारी है। अतिथि कब आ जायेगा, पता नहीं; हम तैयार तो हों!

जब से सुना, द्वार तुम मेरे आओगे,
नई-नई नित बंदनवार बंधाती हूं!
प्राण तुम्हारे स्वागत में द्वार, देहरी,
अंगना देखो, सारा सदन बुहारा है;
कोमल हैं प्रिय चरण तुम्हारे इसीलिए, पंखुरियों से सारा पंथ संवारा है;
जब से सुना, सहन तक तुम आ जाओगे,
चौक पूरती, मंगल-कलश भराती हूं।
जब से सुना, द्वार तुम मेरे आओगे, नई-नई नित बंदनवार बंधाती हूं! वीराना-सा जीवन समझा था मैंने, सोचा, कोई भी तो मेरा गीत नहीं है;

अनजाने अधरों पर सहसा आ जाये, ऐसा कोई भी तो मेरा गीत नहीं है; जब से सुना, गीत तुम मेरे गाओगे, नये-नये नित छंद बनाकर लाती हूं! जब से सुना, द्वार तुम मेरे आओगे, नई-नई नित बंदनवार बंधाती हूं! इन नयनों में नये सपन का मेला है, सतरंगी ये चाह हृदय में मुसकाती; कैसे काटूं पंख कल्पना के सुंदर, मन की सोन-चिरैया देखो अकुलाती; जब से सुना प्राण पर मेरे छाओगे, नये-नये नित मादक सपन सजाती हूं! जब से सुना द्वार तुम मेरे आओगे, नई-नई नित बंदनवार बंधाती हूं! चौराहे पर खड़ी हुई हूं सोच यही, पता नहीं तुम किस पथ पर होकर आओ; मैं दीवानी बनी तुम्हारी, जग कहता,
सांवरिया इस पागलपन को दुलराओ;
जब से सुना अजाना पथ अपनाओगे,
डगर-डगर पर दीपक रोज जलाती हूं!
जब से सुना, द्वार पर मेरे आओगे,
नई-नई नित बंदनवार बंधाती हूं!
कब आ जाये अतिथि, किस मार्ग से आ जाये, किस द्वार से आ जाये, इसकी तैयारी का नाम प्रार्थना है! प्रार्थना एक स्वागत की भाव-दशा है। औपचारिक प्रार्थना में मत पड़ना, सहज हो प्रार्थना, सरल हो, तुम्हारे हृदय से उठी हो, तो ही सार्थक है। शास्त्रीय न हो, हार्दिक हो। फिर चाहे तुतलाने जैसी ही क्यों न हो... ।
तुमने देखा, छोटा बच्चा जब पहली बार तुतलाने लगता है तो उसका तुतलाना
भी कितना प्यारा लगता है! फिर बाद में जब ठीक-ठीक बोलने लगेगा, सम्यक रूपेण बोलने लगेगा तो शायद कोई इसकी फिक्र भी न लेगा। लेकिन तुतलाना इतना प्यारा लगता है कि मां मगन हो जाती है, पास-पड़ोस के लोगों को बुलाती है कि देखो! अभी बताने जैसा कुछ भी नहीं है। फिर जब बोलने लगेगा तो कोई फिक्र नहीं लेगा।
प्रार्थना शुरू-शुरू में तुतलाने जैसी है। और जो प्रार्थना तुतलाती
है वही परमात्मा तक पहुंचती है, ख्याल रखना। हार्दिक हो, सहज हो, तुम्हारी हो।

आज मैं किसका साथ गहूं?
गगन में लेती घटा हिलोर,
कल्पना नाचे बनकर मोर,
भावना खींचे अपनी ओर,
कहो, मैं किसके साथ बहूं?
आज तिरती अधरों पर प्यास, हृदय भी बैठा, मौन, उदास,
श्वास में उद्वेलित उच्छवास, वेदना से म्रियमाण रहूं? नयन की भाषा है अनजान,
विहग से उड़ते मेरे गान,
बड़े ही असमंजस में प्राण, विवशता का अनुताप सहूं?
सांझ की वेला बहुत अधीर,
थिरकता फिरता मंद समीर,
घुटन भर-भर जाती है पीर,
कसकती किससे बात कहूं?

आज मैं किसका साथ गहूं?
कहो, मैं किसके साथ बहूं?
प्रार्थना ऐसा निवेदन है। प्रेम की बात है आकाश से... । दूसरी तरफ से कोई उत्तर नहीं आता। इसलिए जो उत्तर की प्रतीक्षा करेगा, उसकी प्रार्थना जल्दी ही बंद हो जायेगी। उत्तर की प्रतीक्षा ही मत करना, तुम अपना निवेदन जारी रखना। तुम इसकी फिक्र ही न लेना कि वह उत्तर देता है या नहीं, उस तक बात पहुंचती है या नहीं, इस सब की चिंता मत लेना। तुम इसकी कोशिश ही मत करना कि मेरी प्रार्थना परमात्मा को बदले; तुम इतनी ही फिक्र करना कि मेरी प्रार्थना गहरी होती जाये, गहन होती जाये। मेरी प्रार्थना मेरे आंसुओं से भीगे, मेरे आनंद से भीगे। मेरी प्रार्थना पर मेरी मुस्कुराहट की छाप हो; और मेरी प्रार्थना पर मेरे प्राणों के हस्ताक्षर हों--बस इसकी फिक्र करना। और एक दिन अचानक प्रार्थना पहुंच जाती है। तुम्हारी तुतलाहट सुन ली गई। और उसी घड़ी तुम्हारे शून्य के मंदिर में उस बालक का जन्म हो जाता है। वह निर्दोष चेतना प्रवेश कर जाती है। उतरा सफेद कबूतर, समाधि की पहली झलक आई।... आयेगी, निश्चित आयेगी।
जीसस ने कहा हैः जो मुझे हुआ, तुम्हें हो सकता है। वही मैं तुमसे कहता हूंः जो मुझे हुआ, वह तुम्हें हो सकता है। जो एक मुनष्य को हुआ, वह सभी का जन्मसिद्ध अधिकार है।
आज इतना ही।

मरौ हे जोगी मरौ
तीसरा प्रवचन

सहजै रहिबा

हबकि न बोलिबा, ठबकि न चालिबा, धीरै धरिबा पांव।
गरब न करिबा, सहजै रहिबा, भणत गोरष रावं।।
स्वामी बनषंडि जाऊं तो शुध्या ब्यापै नग्री जाऊं त माया।
भरि-भरि शाऊं त बिंद बियापै, क्यों सीझति जल ब्यंद की काया।।
धाये न शाइबा, भूखे न मरिबा, अहनिसि लेबा ब्रह्म-अननि का भेवं।
हठ न करिबा, पड्या न रहिबा, यूं बोल्या गोरषदेवं।।
अति अहार यंद्री बल करै, नासै ग्यानं मैथुन चित धरै।
ब्यापै न्यंद्रा झंपै काल, ताकै हिरदै सदा जंजाल।।
दूधाधारी परिघरि चित्त। नागा लकड़ी चाहै नित्त।
मौनी करै म्यंत्र की आस। बिन गुर गुदड़ी नहीं बेसास।।

मरौ वे जोगी मरौ, मरौ मरण है मीठा।
तिस मरणी मरौ, जिस मरणी मरि गोरष दीठा।।
मनुष्य जीता है अहंकार में। अहंकार आवरण है, आत्मा नहीं। अहंकार तुम्हारा यथार्थ नहीं, तुम्हारा अभिनय है। अहंकार तुम्हारा सत्य नहीं, तुम्हारी मान्यता है। जैसे रामलीला में कोई राम बने तो राम नहीं हो जाता, ऐसे ही तुम कुछ बन गये हो जो तुम नहीं हो। एक बड़ी रामलीला चल रही है। जन्मे थे, कोई नाम लेकर न आये थे; फिर एक नाम मिल गया तुम्हें, फिर वही नाम बन गए तुम। जन्मे थे तो कुछ ज्ञान लेकर न आये थे; फिर सिखाया गया, पढ़ाया गया, विद्यालय गये, विद्यापीठ गए। फिर बहुत से विचार तुम्हारे मस्तिष्क में डाले गए। तुम ज्ञान में ढाले गये। फिर तुम सोचने लगे--यह मेरा ज्ञान है। इसमें तुम्हारा कुछ भी नहीं; सब उधार है, सब बासा है। न नाम तुम्हारा, न ज्ञान तुम्हारा, न तुम जो सोचते हो अपनी प्रतिमा वह ही तुम्हारी; वह भी दूसरों ने बना दी। किसी ने कहा सुंदर हो बहुत, तुम मान बैठे। और किसी ने कहा अद्वितीय हो बहुत, तो मान बैठे। किसी ने प्रशंसा की है तो उसे संजोकर रख लिया है। किसी ने निंदा की है तो चोट खायी है। दूसरों के मंतव्य से तुम्हारा व्यक्तित्व बना है। यह दूसरों के हाथ का निर्माण है। यह दूसरों ने तूलिका लेकर तुम पर रंग कर दिये हैं। और इसी को तुमने अपना होना मान लिया, तो तुम कभी स्वयं को जान न पाओगे।
गोरख कहते हैंः मरौ वे जोगी मरौ। यह जो तुम्हारा झूठा रूप है, इसे तो
मर जाने दो, तो सच्चे रूप का अनुभव हो। यह जो तुम्हारा आवरण है, इसे तुम गिर जाने दो। ये वस्त्र तो भस्मीभूत हो जायें तो अच्छा, ताकि तुम्हारा सत्य नग्न, अपने स्वभाव में प्रगट हो सके। अहंकार न जाये तो आत्मा का कोई अनुभव नहीं होता। और जिसे आत्मा का भी अनुभव न हो, उसे परमात्मा की तो सुध कैसे आयेगी?
आत्मा बूंद है, परमात्मा सागर है। बूंद को पहचानो तो सागर की पहचान भी होने लगे, क्योंकि बूंद में सागर छिपा है। और सागर सिवाय बूंदों के जोड़ के और क्या है?
तुम एक किरण हो, परमात्मा एक सूरज। और सूरज किरणों के जोड़ के अतिरिक्त कुछ भी नहीं। परमात्मा हम सब का जोड़ है। परमात्मा हम सबकी समग्रता है। ईश्वर को खोजने निकल पड़ते हो और अहंकार तोड़ा नहीं। अभी एक किरण भी पहचान में नहीं आयी और सूरज की तलाश पर चले! भटकोगे बहुत... । तुम ही अभी झूठे हो, तुम जो खोज लोगे वह भी झूठा होगा। झूठ सत्य तक नहीं पहुंच सकता, झूठ और बड़े झूठ तक ही पहुंचता रहेगा।
अहंकार झूठ है, नाटक है। इस नाटक के चलते तुम जो भी करोगे, भ्रांति की बात होगी। करो व्रत, तप, नियम, उपवास; छोड़ो घर-द्वार, जाओ जंगल। कुछ भी न होगा। इन सबसे तुम्हारा अहंकार नये-नये आभूषण उपलब्ध कर लेगा। और सज जायेगा, और संवर जायेगा। मरोगे नहीं तुम, तुम्हारा अहंकार और जीवन पा

जायेगा, और पोषित हो जायेगा। और अहंकार जब तक न मरे तब तक आत्मा का कोई अनुभव नहीं। आत्मा के अनुभव के लिए अहंकार गंवाना होता है।
मरौ वे जोगी मरौ, मरौ मरन है मीठा।
गोरख कहते हैंः बड़ा मीठा है यह मरण जो मैं तुम्हें समझा रहा हूं। ऐसे
जो मर जाता है, उसके जीवन में बस मिठास ही मिठास रह जाती है। सत्य बड़ा मीठा है, अनुभव हो तो। अमृत का स्वाद है। फैल जाता है तन-प्राण पर, भरपूर तुम हो जाते हो। तुम्हारे ऊपर से बहने लगता है। जिन्हें मिलता है सत्य, वे खुद तो तृप्त हो ही जाते हैं; उनके पास भी जो, उनकी छाया में भी बैठ जाता है, उसे भी तृप्ति की बूंदें पड़ने लगती हैं, बूंदाबांदी होने लगती है। मगर मरना पड़े, यह शर्त है।
झूठ मरे तो सत्य का जन्म हो। सत्य भीतर मौजूद है, मगर झूठ की दीवाल के भीतर कैद है। झूठ की बदलियों में सत्य का सूरज छिप गया है। मिट नहीं गया, कौन झूठ सत्य को मिटा सकेगा? खो भी नहीं गया है, लेकिन विस्मरण हो गया है। जैसे चेहरे पर किसी ने घूंघट डाल दिया, कोई चेहरा मिट नहीं गया, लेकिन घूंघट के कारण अब दिखाई नहीं पड़ता।
हमने अपने अहंकार के घूंघट में ही अपनी आत्मा को छिपा लिया है। लोग सोचते हैं परमात्मा पर परदा है, गलत सोचते हैं; परदा तुम्हारी आंख पर है। परदा तुम पर है, परमात्मा तो बिल्कुल बेपर्दा है। परमात्मा तो नग्न खड़ा है चारों तरफ, पर तुम्हारे पास देखनेवाली आंख चाहिए।
आज के सूत्र, यह मीठा मरण कैसे घट जाये, इसकी क्या प्रक्रिया होगी, इसकी क्या सार-साधना है--उस संबंध के सूत्र हैं। कैसे हम मरें? कैसा मरण है गोरख का? तिस मरणी मरौ... । मरते तो सभी हैं। मगर मरने-मरने में भेद है। तुम भी मरोगे, बुद्ध भी मरे; लेकिन तुम्हारे मरने में और बुद्ध के मरने में भेद है। तुम सिर्फ देह से मरोगे और अपने अहंकार को, अपने झूठ को बचाकर ले जाओगे--अपने मन में संजोए मंजूषा की तरह। तुम्हारा अहंकार नये गर्भ में प्रवेश कर जायेगा। तुम तो मरोगे, मन न मरेगा। और जब तक मन न मरा तब तक कुछ बदलता नहीं। आवरण बदलते हैं, घर बदलते हैं, यात्रा वही है पुरानी कोल्हू के बैल की जैसी वर्तुलाकार घूमती रहती है। बहुत बार तुम मरे हो, और बहुत बार तुम फिर जन्म गए हो। इधर मरे नहीं कि उधर जन्म हुआ नहीं।
अहंकार तुम्हारे सारे रोगों को अपने भीतर छिपाए नये गर्भ में प्रवेश
कर जाता है, फिर नयी देह रख लेता है। लेकिन वासनाएं पुरानी हैं, रोग पुराने हैं, दुख पुराने हैं, राहें पुरानी हैं। फिर चल पड़े। फिर थकोगे, फिर गिरोगे, फिर मरोगे, ऐसा बहुत बार हो चुका।
बुद्ध भी मरते हैं, गोरख भी मरते हैं, लेकिन उनके मरने में और तुम्हारे मरने में भेद है। तुम्हारा अहंकार नहीं मरता, केवल देह छूट जाती है; वे अपने अहंकार को गला देते हैं, जला देते हैं। इसके पहले कि देह छूटे वे अपने अहंकार से छूट जाते हैं। और जो मरने के पहले मर गया, उसे महाजीवन अनुभव हो जाता है। फिर उसे दोबारा आने की जरूरत नहीं रह जाती। क्योंकि दोबारा जो लाता था सूत्र, वही मर गया।
आत्मा का न कोई जन्म है, न कोई मृत्यु है। अहंकार जन्मता है, अहंकार ही मरता है। और जो अहंकार से छूट गया, वह शाश्वत है; फिर नहीं मरना है, फिर नहीं जन्म है। फिर एक जीवन है--नित्य, समयातीत। फिर तुम आकाश जैसे बड़े हो।
वही तुम्हारा स्वरूप है।
तिस मरणी मरौ, जिस मरणी गोरष मरि दीठा।
इसलिए कहते हैं, यह मत सोचना कि मैं साधारण मरने की बात कह रहा हूं।
साधारण तो सभी मरते हैं, पशु-पक्षी मरते हैं, पौधे मरते हैं, पहाड़ मरते हैं। उस मरने की बात गोरख नहीं कर रहे हैं, एक विशिष्ट मरण की बात कर रहे हैं--समाधि में मरो, ध्यान में मरो। अहंकार जाये और तुम ध्यान में डूब जाओ।
और अहंकार जब तक है तब तक कोई ध्यान में डूब नहीं सकता।
अहंकार के जीने का सूत्र क्या है? अगर समझ में आ जाये तो मरने की कला
भी समझ में आ जायेगी। अहंकार जीता है अति से। अति अहंकार का प्राण है। शायद तुमने ऐसा कभी सोचा न हो, विचारा न हो, जागकर देखा न हो कि अति में ही अहंकार का वास है। और, और, और... यह अहंकार के जीने का ढंग है। दस हजार रुपये हैं तो लाख हो जायें, लाख हैं तो दस लाख हो जायें। और, और, और... ऐसी

विक्षिप्तता में अहंकार जीता है। अति में अहंकार जीता है। फिर अति किसी चीज की हो, धन की हो कि ज्ञान की; पद की हो कि त्याग की; मगर और... ।
जिसने तीस दिन का उपवास कर लिया वह सोचता है अगली बार चालीस दिन का उपवास करूं। जिसने चालीस दिन का कर लिया वह सोचता है पचास दिन का करूं। फर्क कहां है? जिसके पास चालीस लाख रुपये हैं वह सोचता है पचास लाख हो जायें। फर्क कहां है? जो कहता है कि मैंने तीन बार भोजन की जगह दो बार शुरू कर दिया, वह सोचता है कब एक बार शुरू करूं? जो एक ही बार करता है वह सोचता है एक बार भी कैसे छूट जाये?
एक युवक को मेरे पास लाया गया। वह चाहता था सिर्फ पानी पर कैसे जीऊं?
और कुछ नहीं लेना चाहता, क्योंकि और सब लेना तो भोग है। सिर्फ पानी पर कैसे जीऊं? सूख गया था। भारत आया इसी तलाश में था अमरीका से कि कोई पानी से जीने का सूत्र बता दे। मैंने कहा, अगर मैं तुझे पानी से जीने का सूत्र बता दूं तो तू तृप्त हो जायेगा? आंख बंद कर और सोच। विचारशील युवक था, आंख बंद करे कोई आधा घंटा बैठा रहा। फिर उसने कहा कि नहीं, फिर मैं पूछूंगा कि हवा से कोई कैसे जीए। सिर्फ हवा पर, क्योंकि पानी की भी झंझट क्यों?
ऐसी मन की आकांक्षा है, ऐसी अहंकार की दौड़ है--और। फिर किस दिशा में तुम दौड़ते हो, इससे भेद नहीं पड़ता। अहंकार अति में जीता है। धन हो तो अति हो, त्याग हो तो अति हो, भोग हो तो अति हो, योग हो तो अति हो। मध्य में खड़े हो जाओ और अहंकार मर जाता है। इसलिए बुद्ध ने अपने मार्ग को ही मज्झिम निकाय कहा--बीच का मार्ग, ठीक मध्य में।
एक युवक, राजकुमार श्रोण, बुद्ध के पास दीक्षित हुआ। राजधानी भरोसा न
कर सकी। किसी ने कभी कल्पना में भी नहीं सोचा था कि श्रोण और भिक्षु हो जायेगा! बुद्ध के भिक्षु भी भरोसा न कर सके, आंखें फाड़े रह गए--जब श्रोण आया और बुद्ध के चरणों में गिरा और उसने कहाः मुझे दीक्षा दें, मुझे भिक्षु बनायें।
सम्राट था श्रोण, और ख्यातिनाम सम्राट था। उसकी ख्याति भोगी की तरह थी। उसके राजमहल में सबसे सुंदर स्त्रियां थीं उस जमाने की। उसके महल में श्रेष्ठतम शराब सारी दुनिया के कोनों-कोनों से आकर इकट्ठी थी। रात-भर राग-रंग चलता था, दिन-भर सोता था। ऐसे भोग में डूबा था कि उसे कभी संन्यास की भी कल्पना उठेगी, यह सोचा नहीं था किसी ने। सीढ़ियों पर भी चढ़ता था तो सीढ़ियों के पास चढ़ने के लिए सहारे के लिए उसने रेलिंग नहीं लगायी थी; नग्न स्त्रियां खड़ी होती थीं, जिनके कंधे पर हाथ रखकर वह सीढ़ियां चढ़ता था। उसका घर, उसने स्वर्ग जैसा बनाया था। स्वर्ग के देवता भी ईर्ष्या करें, ऐसा उसका महल था।
बुद्ध के भिक्षुओं ने बुद्ध से पूछाः हमें भरोसा नहीं आता कि श्रोण,
और संन्यस्त हो रहा है! बुद्ध ने कहाः तुम्हें भरोसा आये न आये, लेकिन मैं जानता था यह संन्यस्त होगा। सच पूछो तो मैं इसी के लिए आज राजधानी आया था। क्योंकि जो एक अति पर जाता है, वह दूसरी अति पर भी जायेगा। भोग की एक अति है, इसने पूरी कर डाली; अब और आगे वहां रास्ता नहीं है, तो अहंकार को तृप्ति का उपाय नहीं है। जो हो सकता है इस जगत में, सब इसके पास है। अब अहंकार को आगे दीवाल आ गयी, अब आगे अहंकार कहां जाये? अहंकार मांगता है और; अब और है नहीं, तो अहंकार लौट पड़ा, विपरीत यात्रा पर लौट पड़ा। जैसे घड़ी का पेंडुलम दायें चला जाता है आखिरी छोर तक, फिर लौट पड़ता है बायें की तरफ; फिर बायें में चला जाता है एक छोर तक, फिर लौट पड़ता है दायें की तरफ। जब घड़ी का पेंडुलम बायें तरफ जा रहा है तब तुम ख्याल रखना, वह दायें तरफ जाने के लिए गति इकट्ठा कर रहा है; और जब दायें तरफ जा रहा है, तब बायें जाने के लिए गति इकट्ठा कर रहा है। जिनके पास देखने की सूक्ष्म दृष्टि है वे देख पायेंगे। जो अति भोग में जायेगा वह एक न एक दिन अति योग में चला जायेगा।
बुद्ध ने कहाः तुम थोड़े दिन प्रतीक्षा करो, तुम देखोगे जो मैं कहता हूं उसका सत्य। और लोगों ने देखा। दूसरे भिक्षु तो ठीक पटे हुए रास्ते पर चलते हैं, लेकिन श्रोण कांटों और झाड़ियों में चलता है। उसके पैर लहू-लुहान हो गये। दूसरे भिक्षु तो धूप होती तो वृक्षों की छाया में बैठते, श्रोण धूप में ही खड़ा रहता। दूसरे भिक्षु तो वस्त्र पहनते, उसने सिर्फ लंगोटी लगा रखी थी। और ऐसा लगता जैसे लंगोटी भी छोड़ देने की आतुरता है। और एक दिन

उसने लंगोटी भी छोड़ दी। दूसरे भिक्षु तो दिन में एक बार भोजन करते, श्रोण दो दिन में एक बार भोजन करता। दूसरे भिक्षु तो बैठकर भोजन करते, श्रोण खड़े- खड़े ही भोजन करता। दूसरे भिक्षु तो पात्र रखते, श्रोण पात्र भी नहीं रखता था, हाथ में ही... करपात्री था, हाथ में ही भोजन लेता था। सूख गया। उसकी बड़ी सुंदर देह थी। दूर-दूर से लोग उसकी देह को देखने आते थे। उसका चेहरा बड़ा लावण्यपूर्ण था, अति सुंदर था। भिक्षु हो जाने के तीन महीने बाद उसे कोई देखता तो याद भी नहीं कर सकता था कि यही सम्राट श्रोण है। पैरों में छाले पड़ गये थे, शरीर काला पड़ गया था, सूख कर हड्डी-हड्डी हो गया था; लेकिन वह और कसे जाता था।
बुद्ध ने कहाः देखते हो भिक्षुओ, मैंने कहा था, जो एक अति पर जाता है
वह दूसरी अति पर चला जा सकता है! मध्य में रुकना कठिन है, क्योंकि मध्य में अहंकार की मृत्यु है।
फिर तो श्रोण ने भोजन भी बंद कर दिया। फिर तो उसने पानी लेना भी बंद कर दिया। अति, और अति पर जाने लगी। फिर तो ऐसा लगा कि अब वह दो-चार दिन का मेहमान है और मर जायेगा। तो बुद्ध उसके द्वार पर गए, जिस वृक्ष के नीचे झोपड़ा बना दिया था उसके विश्राम के लिए। वह पड़ा था। बुद्ध ने उससे कहाः श्रोण, मैं तुझसे एक बात पूछने आया हूं। मैंने सुना है कि जब तू सम्राट था तो तुझे वीणा बजाने की बड़ी आतुरता रहती थी। तू वीणा बजाने में बड़ा कुशल भी था। तेरा बड़ा रस था वीणा में। मैं तुझसे एक प्रश्न पूछने आया हूं--जब वीणा के तार बहुत ढीले हों तो संगीत पैदा होता है या नहीं?
श्रोण ने कहाः आप भी कैसी बात करते हैं, आप जानते हैं भलीभांति, तार बहुत ढीले हों तो संगीत कैसे पैदा हो, वह टंकार ही पैदा नहीं हो सकती! बुद्ध ने कहाः फिर मैं यह पूछता हूं कि तार अगर बहुत कसे हों तो संगीत पैदा होता है या नहीं?
श्रोण ने कहाः बहुत कसे हों तो छूते ही तार टूट जायेंगे, संगीत पैदा नहीं होगा, सिर्फ तारों के टूटने की आवाज आयेगी। साज के टूटने की आवाज आयेगी, संगीत कैसे पैदा होगा?
तो बुद्ध ने कहाः मैं तुझे याद दिलाने आया हूं। जैसे तुझे वीणा का अनुभव है, वैसे ही मुझे जीवन- वीणा का अनुभव है। मैं तुझसे कहता हूं, जीवन के तार भी बहुत कसे हों तो संगीत पैदा नहीं होता, और जीवन के तार बहुत ढीले हों तो भी संगीत पैदा नहीं होता। तार मध्य में होने चाहिए श्रोण; न बहुत कसे, न बहुत ढीले। संगीतज्ञ की बड़ी से बड़ी कुशलता इसी में है कि वह तारों को ठीक मध्य में ले आये, उसी को साज का बिठाना कहते हैं।
इसलिए तुम देखते हो, शास्त्रीय संगीत कहीं होता है तो आधा घंटा, घंटा
तो साज ही बिठाने में लग जाता है। साज बिठाना बड़ी कला की बात है। क्योंकि तारों को उस मध्य में ले आना, जहां न तो वे कहे जा सकते हैं कि ढीले हैं और न कसे हैं, बड़ी कुशलता, बड़ी परख चाहिए। संगीत का कोई जौहरी हो तो ही बिठा पाता है।
ऐसी ही जीवन-वीणा है--बुद्ध ने कहा--श्रोण, इसलिए अब तू जाग, बहुत हो गया। मैं प्रतीक्षा करता रहा कि तुझे कर लेने दूं अति। पहले तेरे तार बहुत ढीले थे, अब तूने बहुत कस लिये हैं। न तब संगीत पैदा हुआ, न अब संगीत पैदा हो रहा है। कहां है तेरे पास समाधि? यह तू क्या कर रहा है? पहले ठूंस-ठूंस खाता था, अब उपवासा मर रहा है। पहले कभी तू नंगे पैर नहीं चला था; तू चलता था तो रास्ते पर मखमल बिछाई जाती थी। और अब तू रास्ता ठीक हो उस पर नहीं चलता; झाड़ियों में, काटों में, ऊबड़-खाबड़ रास्तों में चलता है। पहले शायद शराब के अतिरिक्त तूने पानी कभी पीया नहीं था; अब तू पानी भी पीने में डरता है! अब तू पानी भी नहीं पीना चाहता। पहले तेरे घर मांसाहार के अनूठे-अनूठे भोजन तैयार किये जाते थे; अब तू रूखी रोटी भी खाने को राजी नहीं है। देख, एक अति से तू दूसरी अति पर चला गया। उसमें भी विसंगीत था, इसमें भी विसंगीत है। मैं तुझे पुकारता हूं कि अब समय आ गया है कि तू मध्य में आ जा।
श्रोण की आंखों से आंसू बहने लगे। उसे बोध हुआ, उसे बात दिखाई पड़ गयी।
आज के सूत्र वीणा के तारों को मध्य में ले आने के सूत्र हैं। और जैसे
ही कोई मध्य में आया कि अहंकार मर जाता है, अहंकार जी नहीं सकता। अहंकार तो

रोग है, तुम रुग्ण चित्त होओ तो ही जी सकता है। तुम्हारे रुग्ण होने में ही अहंकार का जीवन है। और तुम्हारे रुग्ण होने की कला है अति।
मैं अपने संन्यासियों को भी कहता हूं कि मैं जीवन की वीणा का पाठ तुम्हें दे रहा हूं--मध्य। संसार में ऐसे रहो जैसे संसार में नहीं हो। न तो संसार तुम पर हावी हो जाये, और न ही जरूरत है संसार छोड़कर भाग जाने की। न तो भोगी बनो न योगी; तुम मध्य में ठहर जाओ। न तो धन के पीछे दा.ैडो, न धन छोड़कर भागो, तुम बीच में रुक जाओ, ठीक मध्य में, जहां अति होती ही नहीं। वहीं तुम पाओगे--बज उठा संगीत! वीणा सप्राण हो उठी। गूंजने लगा अनाहत नाद... !
हबकि न बोलिबा, ठबकि न चालिबा, धीरै धरिबा पांव।
हबकि न बोलिबा... ।
जिन्होंने इस सूत्र पर टीका लिखी है, टिप्पणियां लिखी हैं, उन सबने इसका अर्थ किया हैः बिना सोचे-विचारे नहीं बोलना। वह अर्थ मुझे ठीक मालूम नहीं होता। भाषा की दृष्टि से ठीक है। फट से नहीं बोल देना चाहिए, कोई कुछ कहे एकदम जवाब नहीं दे देना चाहिए, सोच-विचारकर जवाब देना चाहिए। ऐसा भाषागत अर्थ तो ठीक है, लेकिन साधनागत अर्थ ठीक नहीं है। सोच-विचार के उत्तर देने का अर्थ तो यही हुआ कि उत्तर सहज नहीं होगा, सोचा-विचारा होगा। और आगे सूत्र में गोरख कहते हैंः
गरब न करिबा, सहजै रहिबा, भणत गोरष रावं।
फिर सहज रहने से इसका संबंध नहीं जुड़ेगा। फिर तो रहनी बड़ी असहज हो गयी। फिर तो तुमने जो उत्तर दिया वह सोचा-विचारा था, संयोजित था, सहज नहीं था।
सहज उत्तर, सहज बोलना, कुछ और ही बात है। सोच-विचार से उसका संबंध नहीं है। तुम जब भी सोचोगे-विचारोगे, तुम्हारा उत्तर असहज हो जायेगा। किसी ने कुछ पूछा, उत्तर देने के पहले तुमने सब जांच-परख की कि क्या कहूं क्या न कहूं, किस बात का प्रभाव अच्छा पड़ेगा किसका बुरा पड़ेगा, किससे लाभ होगा किससे हानि होगी--तुमने यह सब सोच-विचार कर, गणित बिठा कर कहा तो तुम्हारे वक्तव्य में सहजता नहीं रह जायेगी। तुम्हारा वक्तव्य झूठा हो जायेगा। सहज वक्तव्य तो निर्विचार से आयेगा।
हबकि न बोलिबा... ।
लोग कहते हैं, इसका अर्थ हैः सोच-विचार से बोलना। और मैं कहता हूं इसका अर्थ हैः निर्विचार से बोलना, जागरूकता से बोलना। फट से बोलने का मतलब है मूर्च्छा। होश रहे भीतर, होश का दीया जलता रहे, ध्यान जागा रहे।
सोच-विचारकर बोलना नहीं, निर्विचार से बोलना।
दो शब्दों का ख्याल कर लेना--"अविचार" से बोलना और "निर्विचार" से बोलना। अविचार से बोलने का मतलब हैः बोल दिये जो आया मुंह में, फिर पीछे पछताने लगे।
मैं एक रात एक मित्र के घर में मेहमान था। उस घर में महात्मा गांधी के
एक पुराने शिष्य आनंदस्वामी भी मेहमान थे। रात एक ही कमरे में हम दोनों थे, सारे घर के लोग भी इकट्ठे हो गये, कुछ बात होने लगी। आनंदस्वामी से मैंने कहाः आप महात्मा गांधी से कैसे प्रभावित हुए? क्योंकि पूरा जीवन उन्होंने गांधी के लिए ही समर्पित कर दिया। तो उन्होंने कहा कि पहला प्रभाव गांधी का मेरे ऊपर तब पड़ा जब गांधी अफ्रीका से भारत आये। उन्होंने अहमदाबाद में एक वक्तव्य दिया, मैं अखबार में रिपोर्टिंग का काम करता था; पत्रकार था। उन्होंने जो वक्तव्य दिया उसमें उन्होंने अंग्रेजों के लिए कुछ अपशब्द बोले। मैंने वे अपशब्द निकाल दिये वक्तव्य में से और जो रिपोर्ट दी अखबारों में, उसमें उन अपशब्दों को बिल्कुल नहीं रखा। दूसरे दिन गांधी ने मुझे बुलाया, मेरी पीठ ठोंकी और कहाः तुमने ठीक किया। रिपोर्टिंग ऐसी ही होनी चाहिए। तुमने वे अपशब्द निकाल दिये, बहुत अच्छा किया।
गांधी का इस भांति मेरी पीठ ठोंकना--आनंदस्वामी ने मुझे कहा--बस मुझे जीत लिया।
मैंने उनसे कहा कि यह तो बात बड़ी उल्टी हो गयी। फिर तुमने कभी दूसरा प्रयोग भी करके देखा या नहीं कि गांधी ने अपशब्द न बोले हों और किसी

वक्तव्य में तुम जोड़ देते, फिर भी वे तुम्हारी पीठ ठोंकते तो कुछ बात थी। इसका तो अर्थ इतना ही हुआ कि गांधी हबक कर बोल गये।
हबकि न बोलिबा... । बोल गये जोश में, उत्साह में, उमंग में। बोलने की धारा में बोल गये। फिर पीछे पछताये होंगे। लौटकर सोचा होगा कि वे अपशब्द जो मैंने बोल दिये, गालियां जो दे दीं, देनी नहीं थीं; क्योंकि वे महात्मा के योग्य नहीं हैं गालियां। पछताये होंगे। फिर तुमने वे अपशब्द निकाल दिये, तुमने गांधी के अहंकार की रक्षा कर ली, तो तुम्हारी पीठ ठोंकी। तुम्हारे अहंकार को इस तरह रस मिला कि मेरी पीठ ठोंकी गयी कि मैं कोई पत्रकार हूं, बड़ा पत्रकार हूं! यद्यपि तुमने जो वक्तव्य छापा था वह झूठा था। और गांधी अगर सत्य के प्रेमी थे तो उन्हें तुमसे कहना चाहिए था कि वक्तव्य वैसा ही छापो जैसा दिया गया था। जब दिया ही गया था तो छापने में क्यों भेद किया जाये? तो गांधी सत्यवादी नहीं थे। गांधी की सत्य की बात व्यर्थ हो गयी; उन्होंने झूठ को प्रश्रय दिया। जो बोला नहीं था वह छापा गया; जो बोला था वह नहीं छापा गया। यह झूठ को प्रश्रय देना हुआ। तुमने उनके अहंकार की रक्षा की, उन्होंने तुम्हारे अहंकार को फुसलावा दिया, इस तरह तुम एक-दूसरे से प्रभावित हो गये।
मैंने आनंदस्वामी को कहा कि अगर मेरे वक्तव्य में गाली हो तो छपनी ही चाहिए, क्योंकि जब मैंने कही है तो कही है; और अगर नहीं कहनी थी, ऐसा पीछे पता चलता है तो उसका अर्थ हुआ कि कहते समय मैं होश में नहीं था, मैं बेहोश था।
भाषा का भी मद होता है। कई बार तुम बोलने में ऐसी बात बोल जाते हो जो तुम बोलना नहीं चाहते थे। मगर चाहते थे कि नहीं, यह सवाल नहीं है; बोली तुमने तो कहीं तुम्हारे अचेतन चित्त में पड़ी तो थी।
तुमने वह वक्तव्य छाप कर आनंदस्वामी--मैंने उनसे कहा--एक झूठ को प्रश्रय दिया। अब सदियों तक यह बात कही जायेगी कि गांधी ने कभी गाली नहीं दी; तुम उसके लिए जिम्मेवार होओगे। तुम्हें लिखना था वही जो लिखा गया था, जो कहा गया था--जैसा, वैसा का वैसा। अगर गांधी को बदलना है तो पीछे सुधार करने का उपाय नहीं होना चाहिए। फिर विवेक से बोलना चाहिए, फिर होश से बोलना चाहिए। गांधी अविचार से बोल गये, पीछे समझदारी आयी। सोचा होगा कि क्या बोल गया। लौटकर देखा होगा, लगा होगा इसका परिणाम बुरा होगा। किसी तरह यह बात लौट जाये तो अच्छा।
ऐसा रोज होता है। राजनीतिक नेता एक बात बोल जाते हैं और फिर दूसरे दिन उसका खंडन करते हैं--कि नहीं, मैं बोला ही नहीं, या मेरा यह अर्थ नहीं था, या मेरे अर्थ को तोड़ा-मरोड़ा गया है, या मेरे वक्तव्य को ऐसा-वैसा किया गया है। फिर मुकर जाते हैं। रोज यह होता है, तुम रोज अखबारों में देखते हो। यह आश्चर्यजनक मामला है। पीछे ख्याल आता है, क्योंकि पीछे जब हिसाब लगाने बैठते हैं, गणित बिठाते हैं, तब पता चलता है कि यह न कहा होता तो अच्छा था, इसके कहने के ये-ये परिणाम होंगे। कहते वक्त तो इतनी जल्दी थी कि फुर्सत नहीं मिली कि क्या परिणाम होंगे, क्या परिणाम नहीं होगे। कहते वक्त तो त्वरा में कह गये, फिर पीछे बैठे शांति से, सोचा-विचारा, परिणाम का हिसाब लगाया। दूर, क्या-क्या इसके अर्थ लिये जायेंगे, कितने मत देनेवाले प्रभावित होंगे, कितने विपरीत प्रभावित हो जायेंगे, इससे राजनीति के दांव में क्या परिणाम हो जायेगा; चल तो गये चाल, इसका पूरे शतरंज के खेल पर क्या अंतिम अर्थ होगा--यह जब बैठकर सोचते-विचारते हैं तो फिर बदलने का मन उठता है, तो बदल लेते हैं। मगर यह बदलाहट सिर्फ एक बात की खबर देती है--अविचार से बोला गया।
मैंने सुना है, इंग्लैण्ड के एक मेडिकल कालेज में एक विद्यार्थी की मुखाग्र परीक्षा हो रही है। और सब विषयों में उत्तीर्ण हो गया, अब यह मुखाग्र परीक्षा आखिरी परीक्षा है। इसमें उत्तीर्ण हो जाये तो उसे इंग्लैण्ड की चिकित्सा की सबसे बड़ी उपाधि मिल जाये। तीन डाक्टर उसकी परीक्षा ले रहे हैं। उन्होंने उससे कहा कि इस-इस तरह का मरीज है, इस-इस तरह की बीमारी है, ये-ये दवा देनी है, कितनी मात्रा में दोगे? उसने जल्दी से मात्रा बताई। वे तीनों डाक्टर हंसे। उन्होंने कहा कि ठीक है, तुम जाओ। परीक्षा पूरी हो गयी। वह निकल ही रहा था दरवाजे से तब उसे ख्याल आया कि

इतनी मात्रा तो जान ही ले लेगी, यह जहर है! लौटा, और उसने कहा कि क्षमा करें, जितनी मैंने बताई उससे आधी दूंगा! पर डाक्टरों ने कहा कि मरीज अब मर चुका, अब लौटकर किससे कह रहे हो? बात गयी सो गयी। यह परीक्षा ही थोड़े है। अगर मरीज होता और तुमने यह दवा दे दी होती तो मरीज तो मर ही चुका होता, लौटकर किससे क्षमा मांगते? अब अगले वर्ष आना, और तैयारी करो। इस तरह लौटकर वक्तव्य बदले नहीं जा सकते और बदले जायें तो झूठे हो जाते हैं, मरीज तो मर ही जायेगा।
अविचार से मत बोलना--ऐसा अर्थ करो तो उसका अर्थ यह नहीं हुआ कि विचारपूर्वक बोलना। उसका अर्थ मेरे हिसाब में होता है--निर्विचार। क्योंकि जहां विचार हैं, वहां तो गलती हो जायेगी। जहां निर्विचार है, चित्त बिल्कुल शांत, दर्पण की भांति है, मौन है, शून्य है, जहां ध्यान जगा है--वहां कभी भूल नहीं होती। वहां लौटकर पीछे देखने की जरूरत नहीं पड़ती। वहां कभी पछतावा नहीं होता।
इसलिए मैं इसका अर्थ करता हूंः ध्यानपूर्वक बोलना। जिसको बुद्ध ने सम्यक स्मृति कहा है। जागे हुए बोलना। होश से बोलना। सोच-विचार कर नहीं, क्योंकि सोच-विचार का तो मौका हो या न हो, समय हो या न हो। जिंदगी में समय कहां है? बहुत बार तुम अच्छी बात कहना चाहते हो, नहीं कह पाते, बाद में याद आती है।
पश्चिम का एक बड़ा विचारक, विक्टर ह्यूगो, एक बैठक से आ रहा था। तीन-चार
और साहित्यिक साथ थे। कुछ बात चली। एक साहित्यकार ने कुछ कहा--इतना प्यारा वचन था कि विक्टर ह्यूगो के मुंह से निकल गया कि काश, यह मैंने कहा होता! तीसरे साहित्यकार ने कहाः ह्यूगो, मत घबड़ाओ। तुम कहोगे, तुम किसी न किसी दिन कहोगे। आज नहीं कल कहोगे। निकलेगा यह तुम्हारे मुंह से, घबड़ाओ मत। किसी और परिस्थिति में तुम कहोगे, मगर कहोगे जरूर। तुम छोड़ोगे नहीं।
मगर बात तो गयी सो गयी। तुम्हें भी लगता है बहुत बार कि यह बात मैंने कही होती, जैसे किसी ने मेरे शब्द छीन लिए, कि मेरे ओंठ पर आयी बात छीन ली। और कभी तुम्हें लगता है कि काश मैं यह एक शब्द बचा गया होता तो कितनी झंझट बच जाती! क्योंकि कभी-कभी छोटा-सा शब्द पूरे जीवन को रूपांतरण दे सकता है। तुम्हारी दी गयी छोटी-सी गाली तुम्हारे पूरे जीवन को बदल दे, और तुम्हारे मुंह से गिरा हुआ एक मधुर वचन तुम्हारे पूरे जीवन को नया कर दे, कुछ कहा नहीं जा सकता। छोटी-सी बात!
अमरीका की एक बहुत बड़ी अभिनेत्री ग्रेटागार्बो बड़ी गरीब स्त्री थी अपने बचपन में। और एक नाईबाड़े में लोगों की दाढ़ी पर साबुन लगाने का काम करती थी। उसने कभी सोचा ही नहीं था कि इतनी बड़ी अभिनेत्री, विश्वप्रसिद्ध अभिनेत्री हो जायेगी। उस नाईबाड़े में एक फिल्म-डायरेक्टर एक दिन बाल बनवाने आया और उसने उसकी दाढ़ी पर साबुन लगाया। जब वह साबुन लगा रही थी, फिल्म निर्देशक था, उसके मुंह से उसके चेहरे को दर्पण में देखकर बस एक शब्द निकल गया कि सुंदर... सुंदर चेहरा है! और उतना ही वचन ग्रेटागार्बो की जिंदगी में क्रांति बन गया। दो-दो पैसे में दाढ़ी पर साबुन लगानेवाली स्त्री करोड़ों डालरों की मालिक होकर मरी, उतना-सा वचन। सोचकर कहा भी नहीं गया था, सहज निकल गया था। पर ग्रेटागार्बो को याद आ गयी अपने सौंदर्य की। उसने पहली बार दर्पण में अपने को गौर से देखा। दर्पण के सामने तो रोज खड़ी रहती थी, मगर लोगों की दाढ़ी पर साबुन लगाती रहती थी, कभी ख्याल किया ही नहीं था। कभी सोचा भी नहीं था कि मैं सुंदर हूं, या सुंदर हो सकती हूं। उस गरीब की इतनी क्षमता भी न थी इतना विचार करने की।
ग्रेटागार्बो ने पूछाः सच, आप कहते हैं मैं सुंदर हूं? उस फिल्म निर्देशक ने कहा कि सुंदर ही नहीं, सुंदरतम स्त्रियों में एक। और यदि तुम चाहो तो मैं प्रमाण जुटा दूंगा, क्योंकि मैं एक फिल्म-निर्देशक हूं, मैं एक फिल्म बनाने आया हूं। मैं तुम्हें फिल्म में ले सकता हूं, तुम्हारे पास चेहरा है जो फोटोजैनिक है, जो चित्र में इतना सुंदर होकर प्रगट होगा! मैं जिंदगी-भर चित्रों से ही काम करता रहा हूं।
इसलिए कई बार ऐसा हो जाता है कि कोई व्यक्ति, फिल्म अभिनेता, अभिनेत्री, तुम सीधे मिलो तो चाहे इतना सुंदर न मालूम पड़े, उसके पास फोटोजैनिक चेहरा होता है। फोटो में सुंदर आता है, चाहे सामने देखने से

सुंदर आये या न आये, ये दोनों अलग बातें हैं। कई बार बहुत सुंदर लोग, सामने देखने पर सुंदर मालूम होते हैं, लेकिन चित्र में उतने सुंदर नहीं रह जाते। ग्रेटागार्बो उठ गयी आकाश पर। एक छोटी-सी घटना, एक अनायास निकला हुआ शब्द पूरे जीवन को बदल गया; अन्यथा पूरे जीवन शायद लोगों की दाढ़ी पर साबुन लगाते-लगाते मर जाती। एक छोटा-सा शब्द इतनी तरंगें पैदा कर सकता है! मित्र बना सकता है, शत्रु बना सकता है, जीवन को सौंदर्य दे सकता है, कुरूपता दे सकता है।
हबकि न बोलिबा... ।
पर मैं अर्थ करता हूं--यह नहीं कि विचारपूर्वक बोलना। विचार में तो गणित है, चालाकी है, होशियारी है, राजनीति है। मैं कहता हूंः निर्विचार, शांत, मौन भाव से बोलना। उठने देना मौन में अंतरतम को। और तब तुम जो बोलोगे वह सम्यक होगा, क्योंकि शांति से जन्मेगा। सम्यकवाणी और तुम थिर हो जाओगे। अन्यथा अहंकार तुम्हें इस अति से उस अति पर ले जायेगा।
हबकि न बोलिबा, ठबकि न चालिबा... ।
पैर पटक-पटक कर मत चलो। शोरगुल मत करो जिंदगी में। ऐसे गुजर जाओ कि किसी को पता न चले। अनुपस्थित रहो। परमात्मा के होने का ढंग यही है। परमात्मा है, चारों तरफ उपस्थित है, लेकिन पता नहीं चलता। उसकी कला क्या है? ठबकि न चालिबा... पैर पटक-पटक कर नहीं चलता। आंखों में उंगली डाल-डाल कर तुम्हें दिखाता नहीं कि देखो मुझे।
परमात्मा उपस्थित है--अनुपस्थित होकर। है मौजूद; दिखाई उनको ही पड़ता
है जो खुद भी अनुपस्थित हो जाते हैं, जो खुद भी बिल्कुल शून्य हो जाते हैं।
बस उनकी ही आंखों में उसकी छवि बन पाती है।
ठबकि न चालिबा... ।
लोग कितने अकड़ कर चल रहे हैं! अकड़े जा रहे हैं। व्यर्थ ही अकड़े जा रहे हैं।
तुमने ख्याल किया? रास्ते पर तुम अकेले चलते हो तुम एक ढंग से चलते हो। अगर रास्ता सुनसान पड़ा हो, कोई भी न हो, सुबह तुम घूमने निकले हो, तुम एक ढंग से चलते हो। तुम्हारे चलने में ठबक नहीं होती। लेकिन फिर अचानक दो आदमी रास्ते पर निकल आयें, तुम्हारी चाल बदल जाती है। तुम कल चलकर देखना, तुम्हारी चाल बदल जाती है। दो आदमी रास्ते पर आ गये, तुम्हारी चाल बदल गयी। अब तुम और ढंग से चलते हो। और अगर दो सुंदर स्त्रियां निकल आयें रास्ते पर तो तुम्हारी चाल और भी बदल गयी। तुम जल्दी से अपनी धूल-धवांस झाड़ कर मूंछ पर ताव इत्यादि देने लगोगे, टाई वगैरह ठीक कर लोगे, टोपी तिरछी कर लोगे। तुम एकदम ठबक कर चलने लगोगे। मूंछें नहीं भी हैं तो भी लोग ताव तो देते ही हैं। मूंछ होना जरूरी नहीं है ताव देने के लिए। ताव बात ही अलग है; किसी भी ढंग से दिया जा सकता है, कोई मूंछ पर देता है, कोई टाई पर दे देता है। मगर ताव हो।
लोग ऐसे चल रहे हैं कि सारी दुनिया उन्हें देख ले, कि सबकी आंखें उन पर अटक जायें।
ठबक का अर्थ होता हैः मैं सबकी आंखों का केंद्र बन जाऊं। क्यों? क्योंकि अहंकार लोगों का ध्यान मांगता है। और जितना ध्यान लोगों का मिल जाये अहंकार को, उतना ही पोषण पाता है। तुम्हें जितने लोग रास्ते पर नमस्कार करें, जितने लोग स्वीकार करें कि हां आप कुछ हैं, उतना ही तुम्हारे अहंकार को बल मिलता है। तुम एक दिन रास्ते से गुजरो, कोई देखे भी नहीं, कोई नमस्कार भी न करे, पूरा गांव तय कर ले कि तुम्हारे साथ ऐसा व्यवहार करेगा, कि मानकर चले कि जैसे तुम हो ही नहीं--तुम बहुत दुखी हो जाओगे। तुम बहुत हारे-थके लौटोगे। तुम कहोगे, बात क्या हो गयी? तुम्हारी ठबक का कोई परिणाम ही न हो।
तुम देखते हो, छोटे बच्चे रोज यह प्रयोग करते हैं। बड़ों में भी कोई बहुत भेद नहीं है। छोटे से लेकर बड़ों तक बच्चे ही बच्चे हैं! तुम्हें अगर बड़ी उम्र के बच्चे देखने हों, कभी-कभी दिल्ली चले जाया करो--पैंसठ, सत्तर, पचहत्तर, अस्सी, तिरासी साल के बच्चे! कोई प्रधानमंत्री हैं, कोई गृहमंत्री हैं, कोई रक्षामंत्री हैं, और पड़े हैं एक-दूसरे के पीछे, छोटे बच्चों की तरह! जैसे छोटे बच्चे कचरे के घूरे के पास लड़ रहे हैं कि कौन

घूरे पर खड़ा हो जाये। और एक खड़ा हो जाये तो दूसरे धक्के दे रहे हैं और बड़ी ठेलमठेल मची है। और हर एक अपनी मूंछ पर ताव दे रहा है। और हर एक कह रहा है कि एक-एक को पछाड़कर रहूंगा, कि यह देखो इसको पछाड़ा, कि देखो इसको चारोंखाने चित कर दिया!
छोटी उम्र से लेकर बड़ी उम्र तक लोग बच्चे ही हैं। जब तक तुम ध्यान आकर्षित करते हो, जब तक तुम कहते हो मेरी तरफ देखो, तब तक तुम बच्चे हो, बचकाने हो।
तुम्हें रोज अनुभव होता होगा बच्चों का। तुम्हारे घर में बच्चे हैं, मेहमान आते हैं, तुम बच्चों से कहते हो मेहमान आ रहे हैं शांत रहना; बस, फिर बच्चे शांत नहीं रह सकते। वैसे चाहे शांत बैठे रहें, अपने कोने में बैठे गुड्डे-गुड़ियों से खेलते रहें, लेकिन जैसे ही मेहमान आते हैं कि बच्चे आकर बीच में खड़े हो जाते हैं। उलटे-सीधे सवाल पूछने लगते हैं... आइसक्रीम चाहिए, भूख लगी है। तुम हैरान होते हो कि यह बच्चा अभी तक शांत बैठा था, इसे हो क्या गया! यह बच्चा राजनीतिज्ञ हो गया। यह यह कह रहा है कि ये मेहमान मुझे देखे बिना चले जायें? दिखाकर रहूंगा, बताकर रहूंगा कि मैं भी कोई हूं! इस घर में मेरी चलती है, चलाकर बता दूंगा। तुम एकांत में बच्चे को कुछ कह दो, वह मान लेता है; चार के सामने कहो, मानने को राजी नहीं होता, इनकार करने की जिद्द करने लगता है। इसलिए बाजार ले जाओ बच्चे को अपने साथ, घर बिल्कुल सदव्यवहार करता है, बीच बाजार में जाकर फजीहत करवा दे--यह भी खरीदूंगा, वह भी खरीदूंगा। और तुम्हारी फजीहत क्या है? फजीहत यही है कि अब चार आदमियों के सामने तुम भी यह नहीं कह सकते कि नहीं खरीद सकूंगा, पैसा नहीं है पास, जेब गरम नहीं है, भई मत सता मुझे। वह भी यह मौका देख रहा है कि अब देखें... ।
छोटे बच्चे तुम्हारी ही वृत्तियों को प्रगट करते हैं सरलता से। फिर बड़े होकर तुम उन्हीं वृत्तियों को थोड़ी जटिलता से प्रगट करते हो, थोड़ी होशियारी से प्रगट करते हो; मगर भेद नहीं पड़ता। तुम प्रौढ़ होते ही नहीं। अहंकार कभी प्रौढ़ होता ही नहीं, अहंकार सदा बचकाना होता है।
ठबकि न चालिबा... ।
बच्चे देखते न, पैर पटकते हैं, शोरगुल मचाते हैं, सामान पटक देते हैं! स्त्रियां देखते घर में? जरा-सी बात हो जाये कि प्लेटें गिर जाती हैं, बर्तन गिरने लगते हैं, पूरे घर में शोरगुल मचने लगता है।
ठबकि न चालिबा... ।
वह स्त्री बता रही है कि दिखा दूंगी।
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी उसके पीछे भाग रही थी, लेकर बेलन। मुल्ला घबड़ाया और एक बिस्तर के नीचे घुस गया। पत्नी मोटी है, बिस्तर के नीचे जा नहीं सकती। मुल्ला अकड़कर नीचे बैठ गया बिस्तर के। तभी किसी ने द्वार पर दस्तक दी, कुछ मेहमान आ गये। पत्नी ने जल्दी से बेलन छिपाया और मुल्ला से कहाः बाहर निकल आओ, मेहमान आ गये हैं, जल्दी बाहर निकल आओ। मुल्ला ने कहाः आ जायें मेहमान, आज दिखाकर रहूंगा इस घर में किसकी चलती है। मुझे जहां बैठना है वहां बैठूंगा।
पत्नी बोलीः अरे, जोर से नहीं। मगर मुल्ला ने कहाः किसी से डरते हैं क्या? घर का कौन मालिक है? आज यह सिद्ध हो जायेगा, तू कि मैं।
पत्नी बोलीः बिल्कुल शांत, बाहर निकल आओ! मगर मुल्ला इस वक्त अकड़ खा गया। उसने कहाः मांग माफी, रगड़ नाक।
नाक रगड़नी पड़ी। मेहमान द्वार पर खड़े हैं और मुल्ला बिस्तर के नीचे बैठा है, अब यह कुछ अच्छा लगेगा? और कुछ बोलने लगे बिस्तर के नीचे से बैठा हुआ, कुछ कहने लगे... नाक रगड़वा ली!
ठबकि न चालिबा... !
गोरख कहते हैंः ध्यान से बोलो, शून्य होकर चलो; जैसे हो ही नहीं ऐसे चलो। किसी को पता न चले। बैंड-बाजे बजाते मत चलो। नगाड़े मत पीटो।
... धीरै धरिबा पांव।
इतने आहिस्ता पैर रखो कि पैर की आवाज न हो। इस जगत से आओ और गुजर जाओ, जैसे हवा का झोंका आता और गुजर जाता है। किसी को कानों-कान खबर न पता चले,

कब आये कब चले गये। एक मौन, शून्य स्वर की भांति गुजर जाओ। और तुम जान लोगे परमात्मा को। और तुम पहचान लोगे परमात्मा को।
जो जगत को दिखलाने में ही उत्सुक हो जाते हैं, वे अभिनेता हो जाते हैं। अधिकतर तुम सड़कों पर अभिनेताओं को पाओगे। लोग घर से बाहर निकलने के पहले कितनी देर तैयारी करते हैं! स्त्रियां तो घंटों खड़ी रहती हैं दर्पण के सामने, दर्पण भी थक गये हैं! पति बैठा हार्न बजा रहा है सड़क पर और पत्नी अभी दर्पण के सामने सोच ही रही है कि यह साड़ी पहनूं कि यह साड़ी पहनूं?
मैं एक घर में मेहमान था। पति मुझे लेकर सभा में जा रहे थे, बजा रहे हैं हार्न, समय हुआ जा रहा है। और पत्नी क्रोध से खिड़की से झांककर बोलीः हजार दफे कह दिया कि एक मिनिट में आती हूं! (अगर हजार दफे कहना हो... तो हजार दफे तो कहने में ही घंटों लग जायेंगे।) मगर हार्न बजा-बजा कर जान छीने डाल रहे हो। आखिर साड़ी पहनूं कि नहीं?
शाम जब हम वापिस लौटे तो मैंने उससे पूछा कि सच, साड़ी तो पहननी ही पड़ेगी, मगर इतनी देर क्यों लगी? तो उसने कहाः कैसे न लगे, आइए आपको दिखलाऊं, तीन सौ साड़ियां हैं! आखिर सोचना पड़ता है, विचारना पड़ता है, कौन-सी पहनूं, यह पहनूं कि यह पहनूं; कुछ गुण इसके भी हैं, कुछ गुण उसके भी हैं। तो झंझट होती है। कभी-कभी तो एक पहनकर फिर बदलनी पड़ती है। तो देर लग जाती है। लोग अभिनेता हैं। इसलिए तुम्हें दूसरों की स्त्रियां जितनी सुंदर मालूम पड़ती हैं, अपनी पत्नियां नहीं मालूम पड़तीं। क्योंकि अपनी पत्नियों को तुम उनके स्वाभाविक रूप में देखते हो, दूसरों की पत्नियों को तुम मंच पर देखते हो--सजी-संवरी, रंग-रोगन... ।
मुल्ला नसरुद्दीन तो कहता है कि संतति-नियमन के लिए किसी उपाय की जरुरत नहीं, सिर्फ पत्नी रंग-रोगन न करे, बस पर्याप्त है। कोई और आवश्यकता नहीं है। इतना ही चित्त को उदास कर देने के लिए काफी है, सहज स्वाभाविक रहे, बस... ।
हबकि न बोलिबा, ठबकि न चालिबा, धीरै धरिबा पांव।
जगत को एक मंच मत समझो और यहां अभिनय करने में ही लीन मत रहो! कुछ सत्य
भी है भीतर--अभिनय के पार। उस सत्य को तुम तभी जान पाओगे, उसकी तरफ तुम तभी मुड़ पाओगे, जब तुम्हारे मन में दूसरे तुम्हें ध्यान देते हैं, तुम पर ध्यान देते हैं या नहीं, इसकी कोई चिंता न रह जायेगी। क्योंकि जब तुम चाहते हो दूसरे तुम पर ध्यान दें तो तुम्हें दूसरों पर ध्यान देना पड़ता है। यह पारस्परिक लेन-देन है। तो अपने पर ध्यान कब दोगे? तुम्हें दूसरों पर ध्यान देना ही पड़ेगा, अगर तुम चाहते हो कि वे तुम पर ध्यान दें। तुम अगर चाहते हो कि लोग तुमसे पूछें कि यह जो तुमने साड़ी पहन रखी है, कितने में खरीदी, तो तुम्हें पहले उनकी साड़ी पूछनी पड़ेगी कि यह साड़ी कैसे खरीदी, पोत तो बड़ा सुंदर है, कहां से खरीदी? तब दूसरा तुमसे पूछेगा। स्वभावतः यह जगत लेन-देन है। दूसरों को ध्यान दो तो दूसरा तुम्हें ध्यान देगा उत्तर में। क्योंकि उसकी आकांक्षा भी ध्यान पाने की है, तुम्हारी आकांक्षा भी ध्यान पाने की है। हम एक-दूसरे के अहंकार को सजाते रहते हैं। फिर अपने पर ध्यान कब दोगे? फिर चूक ही जाओगे उसको जानने से जो तुम्हारे भीतर बैठा था--और वही परम धन है, और वही परम आनंद है। उसी चैतन्य में छिपा है परमात्मा। उसी चैतन्य का स्वाद मिल जाये तो शाश्वत जीवन का स्वाद मिले।
हबकि न बोलिबा, ठबकि न चालिबा, धीरै धरिबा पांव।
अन्य स्थल पर गोरख ने कहा हैः
भरया ते थीरं, झलझलंति आधा।
सिद्धे सिध मिल्या रे अवधू बोल्या अरु लाधा।
भरया ते थीरं... ।
जो भरा हुआ पात्र होता है जल का, वह थिर होता है, झलझलाता नहीं।
भरया ते थीरं, झलझलंति आधा।
वह जो आधा भरा होता है, वही झलझलाता है। भरी मटकी आवाज नहीं करती, आधी मटकी आवाज करती है। तुम जितनी आवाज करते हो, जितने पैर पटककर चलते हो, उतनी ही खबर देते हो कि थोथे हो। जितने बैंड-बाजे बजाकर चलते हो, जितने झंडे उठाकर चलते हो... झंडा ऊंचा रहे हमारा... उतनी ही खबर देते हो, थोथे हो, आधे हो! झलझलंति आधा।

जो जानता है, जिसे जीवन का थोड़ा अनुभव हुआ है, वह गंभीर होता है, गहन होता है; आवाज नहीं होती, एक सन्नाटा होता है उसके आसपास; एक नीरव संगीत होता है... ।
भरया ते थीरं, झलझलंति आधा।
सिद्धे सिध मिल्या रे अवधू बोल्या अरु लाधा।।
तुम तो व्यर्थ ही शोरगुल मचाते हो। तुम्हारे बोलने में और क्या है? तुम्हारे बोलने में कुछ भी तो नहीं है, क्योंकि तुमने कुछ जाना नहीं है, बोलने को तुम्हारे पास क्या है? लेकिन कितना लोग बोल रहे हैं, कितनी बकवास चल रही है! तुम्हारे कान में दूसरे लोग कचरा डाल देते हैं, तुम दूसरों के कान में कचरा डाल देते हो, कचरे पर कचरा इकट्ठा होता जाता है। तुम जरा गौर करना, दिन-भर में तुम जितनी बातें बोलते हो उनमें से नब्बे प्रतिशत तो बिल्कुल व्यर्थ हैं, न कही होतीं तो चल जाता। लेकिन झलझलंति आधा... वह जो आधा-आधा भरा है, वह झलझलाये न तो क्या करे? खूब शोरगुल मचता है। लोग बातचीत में लगे हैं। सारी पृथ्वी बातचीत से भरी है। अकारण, व्यर्थ की बातचीत! गोरख कहते हैंः सिद्धे सिध मिल्या। जो जानते हैं वे तो उन्हीं से बोलते हैं जिनके जानने की आतुरता स्पष्ट है। सिद्ध उनसे बोलते हैं, जो संभावी सिद्ध हैं; हर किसी से नहीं बोलते। हर किसी से बोलने का कोई प्रयोजन नहीं है। सिद्ध तो उनके ही पास बैठते हैं जिनके संभावी सिद्ध होने की बात की झलक मिल रही है। सदगुरु उनसे बोलते हैं, जो सद शिष्य हैं। हर किसी से नहीं बोलते।
मुझसे पूछा जाता है कि यहां सभी को आगमन पर सुविधा क्यों नहीं है? सभी
की यहां कोई जरूरत नहीं है। मैं उनसे बोल रहा हूं, जो संभावी हैं। मैं उनसे बोल रहा हूं, जो आतुर हैं, जो प्यासे हैं।
सिद्धे सिध मिल्या रे अवधू बोल्या अरु लाधा।
तब बोलने में कुछ लाभ है। जो हो गया है सिद्ध, वह उनसे बोले जो होने वाले सिद्ध हैं, तब कुछ लाभ है, अन्यथा व्यर्थ की बकवास है।
गरब न करिबा, सहजै रहिबा, भणत गोरष रावं।
अहंकार न करना और सहज भाव से जीना, ऐसी छोटी-सी शिक्षा है, लेकिन बड़ी
से बड़ी शिक्षा यही है। गोरख कहते हैंः इतना ही तुमसे कहता हूं, इतनी बात तुम समझ लो, इतनी बात तुम साध लो, सब हो जायेगा।
गरब न करिबा, सहजै रहिबा... ।
सहज रहना। क्या अर्थ है सहज रहने का? हिसाब-किताब से मत रहना, निर्दोष भाव से रहना। वृक्ष सहज हैं, पशु-पक्षी सहज हैं, सिर्फ आदमी असहज है। असहजता कहां से आ रही है? जो नहीं हूं, वैसा लोगों को दिखला दूं; जो नहीं हूं वैसा सिद्ध कर दूं--इससे असहजता पैदा होती है। हूं गरीब, लेकिन लोगों पर धाक जमा दूं अमीर होने की। हूं अज्ञानी, लेकिन लोगों को खबर रहे कि ज्ञानी हूं। हूं तो नाकुछ, लेकिन बहुत कुछ बतलाने का मोह है, आग्रह है। वह अहंकार तभी तो भर सकता है। तो तुम जो नहीं हो वैसा लोगों को बतला रहे हो। भीतर कुछ बाहर कुछ। इस धोखे से असहजता हो गयी है।
सहज तुम तभी हो सकोगे जब तुम यह अहंकार की यात्रा छोड़ दो। तुम कहो, जैसा हूं हूं--बुरा तो बुरा, भला तो भला। जैसा हूं ऐसा परमात्मा का बनाया हुआ हूं। इसमें अकारण पर्दे न डालूंगा, छिपाऊंगा नहीं। अभी तुम्हारी हालत ऐसी है जैसे घाव है, और उस पर तुमने गुलाब का फूल रखकर छिपा दिया है। तो तुम असहज हो गये हो। घाव तो भीतर है, गुलाब का फूल ऊपर रखा है। भीतर मवाद पक रही है। और गुलाब के फूल के कारण घाव भर भी नहीं सकता, क्योंकि सूरज की रोशनी न मिलेगी, ताजी हवा न मिलेगी।
भीतर तुम जो हो, वैसा ही अपने को उघाड़ दो। तब तुम सहज हो जाओगे। भय छोड़ो। भय क्या है? लोग बुरा ही कहेंगे न, तो हर्ज क्या है? लोग ध्यान नहीं देंगे, सम्मान नहीं करेंगे, तो खो क्या जायेगा? उनके सम्मान से मिलता ही क्या है?
नाथ कहै तुम आपा राखौ, हठ करि बाद न करणां।
अपनी आत्मा को सम्हाल लो। नाथ कहै तुम आपा राखौ! कहते हैं गोरखनाथ कि तुम अपनी आत्मा को सम्हाल लो; व्यर्थ के विवाद में मत पड़ो कि मैं यह हूं, कि मैं वह हूं।

... हठ करि बाद न करणां।
तुम जो हो सो हो। ऐसा तुम्हें परमात्मा ने बनाया। इस आपे को सम्हालो।
नाथ कहै तुम आपा राखौ, हठ करि बाद न करणां।
यहु जग है कांटे की बाड़ी, देखि देखि पग धरणां।।
यहां बड़ी कांटे की बाड़ियां लगी हैं। बड़ी मनमोहक बाड़ियां हैं। दूर से फूल मालूम पड़ते हैं; जब चुभ जायेंगे तब पता चलेगा कांटे थे। दूर से बड़े मनमोहक सुहावने ढोल मालूम होते हैं; जब पास पहुंच जाओगे, फंस जाओगे, तब अड़चन होगी। मछली भी फंस जाती है न, आटे को देखकर, आटे के भीतर छिपा कांटा तो उसे भी दिखाई नहीं पड़ता। दूसरे तुम्हारी प्रशंसा करते हैं, आटा लगाया उन्होंने। उसी प्रशंसा में कांटा है, अब तुम फंसे।
इसीलिए तो खुशामद का इतना बल है दुनिया में। तुम किसी गधे से गधे को
भी कहो कि आह, कैसी बुद्धि! कैसे सुधी हैं आप! तो गधा भी मान लेता है। गधा भी नहीं सोचता कि मैं और सुधी और बुद्धिमान! क्योंकि चाहता है मानना। तुमने उसके मन की बात कह दी। कहावत है न, कि समय पड़ने पर गधे को भी बाप कहना पड़ता है। और गधा मान लेता है। और गधा भी जानता है भीतर से कि मैं गधा हूं और इनका बाप हो नहीं सकता हूं। मगर मानने का मन करता है कि मान लो, यह मौका क्यों छोड़ रहे हो? तुम कौवे को भी कोयल कहो तो कौवा भी इनकार नहीं करेगा। अगर तुम बहुत प्रशंसा करो और जोश में आ जाये तो कांव-कांव करके सिद्ध कर देगा कि कौवा है। लेकिन वह सोचेगा कैसी कुहू-कुहू की पुकार मचा रहा है! खुशामद का इसीलिए तो इतना प्रभाव है। खुशामद तुम किसी की भी करो, सब काम के लिए राजी हो जाते हैंः हर काम हो सकता है। तुम भी खुशामद में आ जाते हो। जरा देख-देख कर चलना! देखि-देखि पग धरणां, यहु जग है कांटे की बाड़ी। यहां बहुत कांटे हैं; फूल तो ऊपर-ऊपर हैं, कांटे भीतर हैं। पक.ड़ने तो जाओगे फूल, फिर चुभ जाओगे कांटे में, फिर निकलना मुश्किल हो जायेगा। ऐसे ही तो लोग पड़ गये हैं लोभ में, क्रोध में, अहंकार में--और असहज हो गये हैं।
गरब न करिबा, सहजै रहिबा, भणत गोरष रावं।
और गरब के बड़े रास्ते हैं। ऐसा मत सोचना कि सम्राट हैं वे ही अहंकार
से भरे होते हैं, भिखमंगों का भी अहंकार होता है। भिखमंगों के भी अहंकार होते हैं।
मैंने सुना है, एक भिखमंगा मुल्ला नसरुद्दीन की गली में रोज भीख मांगता था, कुछ दिन तक दिखाई नहीं पड़ा। बाजार में मिला एक दिन तो मुल्ला नसरुद्दीन ने पूछा कि भाई दिखाई नहीं पड़ते, पहले रोज जान खाते थे! इतने दिन तक तुमने जान खायी, इतने सालों तक, कि अब आदत बन गयी है। कई दफे ख्याल आ जाता है कि तुम आये नहीं, बात क्या है? दरवाजे पर आकर तुमने अपना डंडा नहीं पटका!
तो उसने कहा कि वह गली मैंने अपने दामाद को दे दी। मुल्ला ने कहाः मतलब? तो कहाः वह गली मेरी थी। वहां कोई पर नहीं मार सकता दूसरा भिखारी, हाथ-पैर तोड़ दूंगा। लंगड़ा है, घसिटता है, कहता है हाथ-पैर तोड़ दूंगा, कोई भिखमंगा वहां पर नहीं मार सकता। वह गली मेरी थी, दामाद को दे दी। लड़की की शादी हो गयी न!
मुल्ला सोचता था गली अपनी है, आज पता चला कि गली किसकी थी। तुम यह मत सोचना कि सम्राटों का ही अहंकार होता है, भिखमंगों का भी अहंकार होता है। उनके भी राज्य होते हैं, उनकी भी सीमाएं होती हैं। उनके जिले में घुस जाओ, मुश्किल में पड़ जाओगे। वहां मांगो तो उनको उसका टैक्स चुकाना पड़ेगा तुम्हें। नये भिखमंगे अगर मांग लें किसी पुराने भिखमंगे की गली में तो टैक्स चुकाना पड़ेगा। स्वभावतः, तुम शायद यही सोचते होओ, तुम्हें पता भी न हो कि तुम किस भिखमंगे के हो! रास्ते पर कोई भिखमंगा हो, जिसने तुम्हें खरीदा हुआ है। उसे हक है, उसके पास लाइसेंस है तुमसे मांगने का। कोई दूसरा भिखमंगा मांगेगा तो उसे उसका टैक्स चुकाना पड़ेगा। तुम्हें पता ही नहीं है कि तुम बिक गये हो, कि रास्ते पर कोई भिखमंगा तुम्हारा मालिक है और हकदार है।
यह मत सोचता कि धनी का ही अहंकार होता है। यह मत सोचना कि भोगी और सांसारिक का ही अहंकार होता है। योगियों का बड़ा अहंकार होता है,

त्यागियों का और भी बड़ा अहंकार होता है--इतना छोड़ दिया! गर्व से मत... ।
पंडितों का बड़ा अहंकार होता है।
गोरख ने कहा हैः
पंथ बिन चलिबा, अगनि बिन जलिबा, अनिल तृषा जहटिया
ससंवेद श्री गोरष कहिया, बूझिल्यौ पंडित पढ़िया।
कहा कि सुन लो ऐ पढ़नेवाले पंडितो, ऐ तोतारटंत पंडितो! तुम्हारे पास है क्या? मगर अकड़े जा रहे हो। कुछ कचरा, कुछ शब्द उधार बासे!
ससंवेद श्री गोरख कहिया... ।
गोरख कहते हैंः मैंने स्वयं अनुभव से जाना है और तब मैंने पाया है कि तुम्हारे पास सिवाय शब्दों के और कुछ भी नहीं है।
... बूझिल्यौ पंडित पढ़िया।
ऐ पढ़े-लिखे पंडितो, ऐ तथाकथित पंडितो! मैं जो कहता हूं उसे बूझो, थोड़े होश में आओ। पंथ बिन चलिबा। एक ऐसी भी गति है जो बिना पंथ के होती है; जिसमें मार्ग नहीं होता और मंजिल आ जाती है। तुम्हें उसका कुछ पता है? पढ़-पढ़ कर पंडित हो गये, तुम्हें उस राह का पता है जो होती ही नहीं और मंजिल आ जाती है।
पंथ बिन चलिबा, अगनि बिन जलिबा... ।
तुम्हें उस आग का पता है जिसके बिना जलने की घटना घट जाती है। मैं एक ऐसी आग जानता हूं, जो है नहीं लेकिन जला जाती है! मैं एक ऐसी मृत्यु जानता हूं, जो घटती नहीं और हो जाती है। मुझे एक ऐसी मंजिल का पता है जिस तक पहुंचने का कोई मार्ग नहीं है। मुझे तुम्हारे भीतर जो बैठा है उसका पता है; उस तक पहुंचने का मार्ग होगा भी क्या? मार्ग तो दूर तक जाने के होते हैं। परमात्मा अगर दूर हो तो मार्ग हो सकता है। परमात्मा तो तुम हो तो मार्ग कैसा? तुम तो परमात्मा हो ही।
पंथ बिन चलिबा... ।
इसलिए अगर तुम रुक जाओ तो पहुंच जाओ।
अगनि बिन जलिबा... ।
और यह अहंकार तो झूठा है, इसको जलाने के लिए कोई वास्तविक अग्नि की जरूरत नहीं है। यह तो तुम समझ जाओ तो बस समझ की अग्नि काफी है और यह जल जायेगा।
गोरख कहते हैंः सीधी-सी मेरी शिक्षा है--सहज की। जैसा कबीर ने कहा, गोरख के आधार पर ही कहाः साधो, सहज समाधि भली!
स्वामी बनषंडि जाऊं तो शुध्या ब्यापै, नग्री जाऊं त माया।
वे कहते हैंः ऐ स्वामियो, ऐ भगोड़े संन्यासियो! अगर जंगल जाओगे तो भूख पकड़ेगी। और बैठे जंगल में चौबीस घंटे भोजन का चिंतन करोगे, कि पता नहीं कोई देगा, लायेगा, नहीं लायेगा? और अगर नगर जाओगे तो माया पकड़ेगी, मोह पकड़ेगा, ममता पकड़ेगी, आसक्ति पकड़ेगी। देखोगे एक सुंदर स्त्री को गुजरते और मोह पकड़ लेगा। देखोगे एक सुंदर भवन और आकांक्षा जगेगी--काश, मेरा होता! अगर नगर में रहोगे तो माया पकड़ती है। अगर जंगल चले गये माया से बचने को तो भूख पकड़ती है। करोगे क्या? तुम बड़ी मुश्किल में पड़ोगे।
भरि भरि शाऊं त बिंद बियापै!
अगर खूब डट-डट कर खाओगे, खूब भर-भर कर खाओगे तो उस भरने से, उस अतिरिक्त भोजन से सिर्फ कामवासना निर्मित होगी। जरूरत से ज्यादा तुम खा लेते हो जो, वही तुम्हारे भीतर वासना बनता है। क्यों वासना बनता है? क्योंकि जो तुमने जरूरत से ज्यादा ऊर्जा अपने भीतर ले ली है, वह ऊर्जा तुम सम्हाल नहीं सकते, वह बाहर जानी चाहिए, वह अतिरिक्त है, वह अनावश्यक है, वह बोझिल है।
वासना क्या है? ऊर्जा के बाहर जाने का उपाय है। संभोग क्या है? ऊर्जा
को बाहर फेंकने का उपाय है। जब तुम्हारे पास जरूरत से ज्यादा ऊर्जा होगी जो तुम सम्हाल न सकोगे, वह अपने-आप बहने लगेगी बाहर की तरफ। उसे जाना ही होगा बाहर। एक पात्र में उतना ही तो जल भर सकते हो न जितना भरा जा सकता है। अगर ज्यादा भर दिया, पात्र के ऊपर से बह जायेगा। वासना तुम्हारे पात्र के ऊपर से बहती हुई ऊर्जा है, इसलिए अगर ज्यादा खाओगे तो कामवासना पकड़ेगी। अब बड़ी मुश्किल है, अगर कम खाओगे तो दिन-रात भोजन ही भोजन की याद आयेगी।
तो करो क्या, फिर मार्ग क्या है?

सहज हो जाओ, गोरख कहते हैं। मध्य में हो जाओ। उतना खाओ जितना आवश्यक है। न तो जंगल जाओ, क्योंकि वहां भूख पकड़ेगी; न शहर में इतने रम जाओ कि शहर के अतिरिक्त तुम्हें कुछ और बचे ही न, क्योंकि वहां कामना पकड़ेगी। फिर ढंग क्या है? शहर में ऐसे रहो जैसे कोई जंगल में रहे, यह मध्य हुआ। घर में ऐसे रहो जैसे कोई वन में रहे। संसार में रहो लेकिन संसार को अपने में मत आने दो। जल में कमलवत रहो।
क्यों सीझति जल ब्यंद की काया।
तब तुम जान पाओगे कि यह रज-वीर्य से बनी हुई देह भी सिद्धावस्था को कैसे उपलब्ध हो जाती है! तब तुम जान पाओगे। अगर तुमने इस तरह के ढंग चुने कि शहर से डर गये कि यहां कामना पकड़ती है और जंगल चले गये, तो वहां भूख पकड़ेगी। अगर जंगल से डरे कि यहां भूख पकड़ती है, शहर आ गये... और जाओगे कहां, शहर या जंगल, और तो कोई उपाय नहीं है। अगर तुम द्वंद्व में से एक को चुनोगे तो तुम ज्यादा देर उसमें रह न पाओगे, क्योंकि जो विपरीत है उसकी जरूरत तुम्हें खींचने लगेगी, आकर्षित करने लगेगी।
तो सम्यक आहार लो--उतना जितना ध्यान के लिए पर्याप्त है; उतना जितना पूजा और प्रार्थना के लिए पर्याप्त है। सम्यक आहार लो, देह को उतना दो जितना देह की सहज क्रियाओं के लिए आवश्यक है। ज्यादा मत डालो, अन्यथा ज्यादा ही तुम्हें अड़चन में डालेगा। अति मत करो।
कुछ लोग हैं, ठूंस-ठूंसकर खा रहे हैं। उनका कुल काम इतना ही है कि भोजन, भोजन, भोजन... उन्हें कुछ और सूझता नहीं। फिर अतिरिक्त भोजन से अतिरिक्त ऊर्जा पैदा होती है। फिर ऊर्जा का निष्कासन जरूरी है, नहीं तो ऊर्जा बोझिल कर देगी, भार हो जायेगी। फिर उसके लिए वासना में जाओ। फिर वासना में ऊर्जा बह जाती है। फिर वासना में ऐसे डूबते हैं लोग कि जितनी हो ऊर्जा, बहा देते हैं। फिर खाली हो जाते हैं, रिक्त हो जाते हैं। तो फिर भरो भोजन से, क्योंकि अब रिक्त हो गये। अब खालीपन अखरता है। यह तो बड़ी उपद्रव की बात हो गयी। एक अति से दूसरी अति, दूसरी से पहली, पहली से दूसरी, ऐसे ही डोलते रहोगे, घड़ी के पेंडुलम की भांति! तो जीवन की घड़ी चलती रहेगी, आवागमन होता रहेगा। रुक जाओ मध्य में। कभी घड़ी के पेंडुलम को बीच में रुका कर देखा है? जैसे ही पेंडुलम रुकता है, घड़ी रुक जाती है। आवागमन बंद हो गया, समय समाप्त हुआ। समय समाप्त हुआ तो संसार समाप्त हुआ।
धाये न शाइबा, भूखे न मरिबा, अहनिसि लेबा ब्रह्म-अननि का भेवं।
हठ न करिबा, पड्या न रहिबा, यूं बोल्या गोरषदेवं।।
सीधे-सादे सूत्र हैं, पर ऐसे कि लग जायें तो तीर की तरह हृदय में उतर जायें और जीवन रूपांतरित हो जाये।
धाये न शाइबा... !
भर-भर कर मत खाओ, टूट मत पड़ो भोजन पर!
धाये न शाइबा... !
धावा न बोल दो।
भूखे न मरिबा... ।
और भूखे भी न मरो। अनशन मत करो और उपवास मत करो।
अहनिसि लेबा ब्रह्म-अननि का भेवं।
सम्यक रूप से जीयो और ब्रह्म के रहस्य को दिन-रात गुनो। यह जो सारा जगत रहस्य से भरा है, उस परम के सौंदर्य से आपूरित है। उस परम का प्रसाद सब जगह मौजूद है। इन धूप की किरणों में, पत्तों से झरती हुई धूप के चित्तों में, हरे पत्तों में, फूलों में, पक्षियों में, लोगों में, यह जो विराट जीवन है, इसके रहस्य को पीयो, इससे अपने को भरो।

मन मेरे, उनकी बात कहो!

उनकी छवि की तुलना में,
सब रंग-रूप हैं फीके;
तृप्त हो गई हूं उनकी--
करुणा के जल को पीके;
उनकी लहर-लहर पर तिरकर, उनके संग बहो!

मन मेरे, उनकी बात कहो!

उनकी तरल-चपल गतिविधियां,
दुनिया-भर से न्यारी;
उनकी मधुर-मधुर वाणी--
कितनी है मुझको प्यारी;
उनकी छाया बनकर, प्रतिपल उनके पास रहो! मन मेरे, उनकी बात कहो!

उनकी सहज निकटता का सुख,
जीवन की थाती है;
पर यदि कोई वेला प्रिय की--
बिछुड़न की आती है;
तो भीतर-भीतर उनसे, दूरी का ताप सहो!
मन मेरे, उनकी बात कहो!

प्रभु का स्मरण करो। न तो भोजनभट्ट हो जाओ, और न भोजनभट्ट के विपरीत सदा अनशन, उपवास में लग जाओ। याद करो श्रोण की कथा फिर--जीवन की वीणा के तार न तो बहुत कसे हों न बहुत ढीले, तो संगीत उठता है। वही संगीत भजन है। वही संगीत कीर्तन है। वही संगीत स्मरण है।
मन मेरे, उनकी बात कहो! प्रभु का स्मरण करो। उसके रहस्य को गुनो। और उसका रहस्य भरपूर है, चारों तरफ छितरा हुआ है।

स्वर विहंगिनी!

फैला मुक्ताभ पंखप्राणों में फूंक शंख, उठती तुम ऊर्ध्व वेगगगन रंगिणी!

मन के कर क्षितिज पारखोल हृदय-स्वर्ग द्वारबरसाती रस निर्झरध्वनि तरंगिनी!
भेद बुद्धि-सूक्ष्म व्योमपीकर अमृतत्व सोम, गाती आनंद मत्त, चिर असंगिनी!
बेध चंद्र, बेध सूर्यघोषित कर सत्य-तूर्य, हरती भव दृष्टिभेदस्वप्न भंगिनी!
तम की केंचुल उतारचूम दीप्त सहस्रार, नाभि विवर में जगतीचिद भुजंगिनी!

बाहर भी वही है, भीतर भी वही है; थोड़े उसके रहस्य में डूबो। वही उठता दिखाई पड़ेगा वृक्षों में, वही चांद-तारों से झरता हुआ मालूम पड़ेगा। वही तुम्हारी श्वास-श्वास में आंदोलित। वही तुम्हारी धड़कन-धड़कन में छिपा। वही तुम्हारी चेतना में व्याप्त--उसके रहस्य को पीयो।
जो व्यक्ति जगत के सौंदर्य से जितना भर जाये, उतना ही परमात्मा के निकट पहुंच जाता है। यह सब सौंदर्य उसका है।
हठ न करिबा, पड्या न रहिबा, यूं बोल्या गोरषदेवं।
और जिद्द मत करना। जरूरत से ज्यादा शरीर को कसने की चेष्टा मत करना।
हठ न करिबा... ।
अतिरिक्त श्रम मत कर लेना, अन्यथा थक जाओगे और टूट जाओगे। मगर उल्टी बात भी न कर लेना।
पड्या न रहिबा... ।
आलस्य मत कर लेना। पड़े ही मत रहना--कि जब श्रम नहीं करना, प्रयास नहीं करना, तो पड़े रहें, फिर क्या करना है? दोनों के मध्य... । कर्म करना--अकर्म की भांति। करना भी और कर्ता न बनना। कर्ता वही रहे, तुम केवल उपकरण, निमित्त मात्र... जैसा कृष्ण ने अर्जुन को कहा गीता में कि तू सिर्फ निमित्त हो जा। कर्ता तो परमात्मा है, तू उसके हाथ की प्रत्यंचा हो जा।

तुझसे तीर चलाये तो तीर, और तुझसे मंदिर की आरती उतारे तो मंदिर की आरती। न तो अति सक्रिय हो जाना... जैसा कि जिन लोगों को कर्मयोग की धारणा पकड़ जाती है वे अति सक्रिय हो जाते हैं। और न अति निष्क्रिय हो जाना। अकर्मयोग भी है। उन्होंने भी धारणाएं बना ली हैं। उन्हें भी आधार मिल गये हैं शास्त्रों से, संतों की वाणी से। अर्थ उन्होंने अपने निकाल लिए हैं। जैसा कहा बाबा मलूक ने--
अजगर करे न चाकरी पंछी करें न काम।
दास मलूका कह गये सबके दाता राम।।
आलसियों ने इसमें से अर्थ निकाल लिया। उन्होंने इसकी अच्छी सुंदर व्याख्या कर ली है। उन्होंने कहा, तो ठीक है, तो पड़े रहो मस्त जैसे अजगर पड़ा रहता है। तो कुछ साधु-संत सिर्फ पड़े रहते हैं। वे सोचते हैं करना क्या है, बाबा मलूकदास कह गये--सबके दाता राम! देगा तो देगा... । रह जाओ भाग्य के भरोसे।
यह पूरा देश भाग्य के भरोसे मर गया, इस पूरे देश पर आलस्य छा गया है, यह पूरा देश काहिल और सुस्त हो गया, और इसने अपनी काहिली और सुस्ती को बड़ा आध्यात्मिक रंग दे लिया कि भाग्य में जो होगा सो होगा। तो गरीबी है तो गरीबी है। भिखमंगी है तो भिखमंगी, गुलामी है तो गुलामी। भाग्य से सब कुछ होगा। उसकी इच्छा जब होगी तो सब ठीक हो जायेगा; हमें तो घिसटना है।
इस देश का दुख है कि हमने यह सूत्र पकड़ लिया आलस्य का; हम पड़े रह गये। पश्चिम की पीड़ा यह है कि उन्होंने सक्रियता पकड़ ली, इतनी ज्यादा पकड़ ली कि अब ये रात सोयें कैसे, यह भी भूल गये। अब बिना शामक दवा के सो नहीं सकते। इतनी सक्रियता है, इतनी तरंगें उठ गयीं, इतना चित्त चंचल हो गया है कि रात बिस्तर पर पड़ जाते हैं, लेकिन चित्त सोने का नाम नहीं लेता। वह सोच-विचार किये चला जाता है; गणित बिठाता है, हिसाब लगाता है, योजना बनाता है, कल की दुकान, कल का बाजार, कल की दुनिया, उसकी योजना में ही लीन रह जाता है; रात ऐसे ही बिसर जाती है।
पश्चिम पागल हुआ जा रहा है, अति सक्रियता के कारण। और पूर्व दीन-दरिद्र हो गया, अति निष्क्रियता के कारण। अगर गोरख की बात समझो तो न तो पागल होने की जरूरत है और न दीन-दरिद्र होने की जरूरत है।
गोरख कहते हैंः
हठ न करिबा, पड्या न रहिबा, यूं बोल्या गोरष देवं।
मैं तुमसे बीच की बात कहता हूंः करो काम, लेकिन निष्काम भाव से। कर्म में उतरो, लेकिन शांत, मौन... कि कर्म तुम्हें उद्विग्न न कर जाये। कर्म में उतरो, मगर विक्षिप्त मत हो जाओ।
अति अहार यंद्री बल करै, नासै ग्यानं मैथुन चित धरै।
बहुत भोजन करोगे, इंद्रियां बल करेंगी। बोध नष्ट होगा।
नासै ग्यानं मैथुन चित धरै।
और जितना बोध नष्ट होता है उतना चित्त में सिवाय कामवासना के कुछ भी नहीं रह जाता। इस बात को समझना। बोध की मात्रा जितनी बढ़ती है, काम की मात्रा उतनी कम होती जाती है। बोध की मात्रा जितनी कम होती है, काम की मात्रा उतनी ज्यादा होती है। ये दोनों हमेशा एक-दूसरे पर प्रभाव डालते हैं।
तुम प्रयोग करके देखना। अगर तुम ज्यादा भोजन कर लोगे तो मूर्च्छा पकड़ेगी, तत्क्षण नींद आने लगेगी। इसलिए भोजन के बाद नींद आने लगती है। किसी रात बिना भोजन किए रह जाओ तो रात-भर नींद न आयेगी। क्योंकि भोजन ही नहीं किया तो मूर्च्छा नहीं पकड़ेगी। इसलिए उपवास जो करता है उसे रात नींद नहीं आती, या नींद कम हो जाती है। बुढ़ापे में नींद कम हो जाती है, क्योंकि भोजन कम हो जाता है। शरीर भोजन ज्यादा नहीं पचा सकता। उम्र चुकने लगी तो अब नींद की भी कोई जरूरत नहीं रह जाती। नींद के साथ मूर्च्छा बढ़ती, नींद में जरूरी है कि तुम्हारी देह तुम्हारी आत्मा से सबल हो जाये, तो ही नींद बढ़ सकती है। भोजन करते हो तो देह बढ़ती है, आत्मा निर्बल होती है। अति भोजन करते हो तो देह बहुत बोझिल हो जाती है, तंद्रा में पड़ जाना पड़ता है। जैसे-जैसे होश बढ़ेगा वैसे-वैसे तुम पाओगे कि कामवासना कम होने लगी, क्योंकि देह का बल आत्मा पर कम होने लगा। इसलिए गोरख या मैं तुमसे

कामवासना से लड़ने को नहीं कहते, कहते हैं बोध में जागने को। ज्यादा जागरूक बनो। जो भी करो, जागरूकता से करो। कामवासना में भी उतरो तो जागरूकता से उतरो, होशपूर्वक उतरो। और तुम चकित हो जाओगे, जैसे-जैसे होश बढ़ेगा वैसे- वैसे कामवासना अपने से क्षीण हो जायेगी। एक दिन तुम अचानक पाओगे बिना दबाये, बिना लड़े कामवासना कहां तिरोहित हो गयी, पता नहीं चलता--खोजने जाते हो भीतर, मिलती नहीं। सब तरफ भीतर प्रकाश हो गया है जागरण का।
कामवासना और ध्यान का वैसा ही संबंध है, जैसा रोशनी और अंधेरे का। रोशनी जल जाये, अंधेरा समाप्त। अंधेरे को हटाने की जरूरत नहीं, कौन हटा पायेगा, कैसे हटा पायेगा? अंधेरा कोई हटा सकता है? सिर्फ दीया जलाना होता है। इसलिए जो लोग कामवासना से लड़ रहे हैं, बड़े मूढ़तापूर्ण कृत्य में लगे हैं। लड़ने से वासना और बढ़ेगी, तुम और ग्रसित हो जाओगे। अंधेरे से लड़कर कोई कभी जीता नहीं। तलवार से काटो तो काम न आयेगी। डंडे मारो, कुछ अर्थ न होगा। धक्के लगाओ, गांव-भर के पहलवानों को इकट्ठा कर लो, एक छोटी-सी कोठरी का अंधेरा बाहर न निकाल पाओगे। और एक छोटा-सा दीया जलाओ और बस अंधेरा कहां गया, पता नहीं चलता। अंधेरा कुछ है थोड़े ही, अंधेरा नकार है। अंधेरा केवल अभाव है, प्रकाश की अनुपस्थिति है। प्रकाश उपस्थित हो गया, बात हो गयी। न तो अंधेरा था, न कहीं गया; सिर्फ प्रकाश नहीं था, प्रकाश आ गया।
कामवासना ध्यान की अनुपस्थिति है। ध्यान का दीया जल जाये, बस कामवासना गयी।
मुझसे यहां लोग पूछते हैं कि आप लोगों को ब्रह्मचर्य की शिक्षा क्यों नहीं देते? ब्रह्मचर्य की शिक्षा दी ही नहीं जा सकती; शिक्षा केवल ध्यान की दी जा सकती है। ब्रह्मचर्य तो परिणाम है। जैसे-जैसे ध्यान सघन होता है, ब्रह्मचर्य अपने-आप फलित होगा। सारा श्रम ध्यान पर करना है। जो ब्रह्मचर्य पर सीधी कोशिश करेगा, वह ब्रह्मचर्य के नाम पर कामवासना को दबाकर बैठ जायेगा। और ब्रह्मचर्य तो नहीं होगा, ऊपर-ऊपर होगा, भीतर आत्मा में वासना के कीड़े-मकोड़े सरकेंगे। भीतर वासना के सांप फन उठायेंगे। उसकी जिंदगी बड़ी असहज हो जायेगी, उसकी जिंदगी बड़ी कठिन हो जायेगी। उसके जीवन में शांति पैदा नहीं होगी, न समरसता आयेगी; वह तो बड़े द्वंद्व में घिर जायेगा। एक सतत कलह उसके भीतर चलती रहेगी और कलह में कैसे परमात्मा का अनुभव हो सकता है? चित्त निर्द्वंद्व चाहिए तो ही परमात्मा की प्रतीति हो सकती है।
अति अहार यंद्री बल करै, नासै ग्यानं मैथुन चित धरै।
ब्यापै न्यंद्रा झंपै काल... ।
नींद पकड़ लेती है, मौत पकड़ लेती है।
... ताकै हिरदै सदा जंजाल।
और फिर भीतर सदा जंजाल बना रहता है, एक उपद्रव मचा रहता है। एक विक्षिप्तता बढ़ती चली जाती है। तुम जरा कभी अपने भीतर झांककर देखो कैसे पागल हो! वहां पागलपन चल रहा है। इस पागलपन के रहते तुम कैसे जान पाओगे सत्य को; असंभव है! यह पागलपन जाना चाहिए। और यह पागलपन एक ही उपाय से जाता है--हंसिबा खेलिबा धरिबा ध्यानं। हंसे, खेले, नाचे, मस्त हो और ध्यान धरे। बस यह चला जाता है।
दूधाधारी परिघरि चित्त... ।
कुछ हैं जिन्होंने तय कर लिया है कि दूध ही लेंगे। सोचते हैं दूध शुद्ध आहार है।
मैं रायपुर में कुछ दिन मेहमान था। वहां एक मठ है--दूधाधारी मठ। वहां सिर्फ दूध ही पीकर रहते हैं लोग। लोग सोचते हैं दूध से सब ठीक हो जायेगा। पागल हो गये हो? पहली तो बात, तुम जो दूध पी रहे हो, वह तुम्हारे लिये बनाया नहीं गया है। गाय का पीयोगे न, वह बनाया गया था बछड़ों के लिए। उससे सांड पैदा होते हैं। दूध शुद्ध आहार नहीं है। दूध से कामवासना जगेगी। और कामवासना भी वैसी जैसी सांड की होती है! छोटी-मोटी नहीं, क्योंकि वह बनाया सांड के लिए परमात्मा ने, तुम्हारे लिए बनाया नहीं है। और दूध की प्रकृति में व्यवस्था है कि बच्चे को मिले, जब तक बच्चा भोजन न पचाने लगे तब तक मिले। कोई पशु एक उम्र के बाद दूध नहीं पीता, सिवाय आदमी को छोड़कर। आदमी

अस्वाभाविक व्यवहार कर रहा है। तो चाय इत्यादि में, कॉफी में थोड़ा-बहुत डाल लो तो चलेगा; मगर दूधाधारी मत हो जाना।
क्योंकि जब मैं रायपुर में था तो दूधाधारी मठ के एक महंत मुझे मिलने आये। उन्होंने कहा कि कामवासना पर कैसे विजय हो? मैंने कहा कि पहले दूधाहार तो छोड़ो, यह मठ छोड़ो। नहीं तो आदमी तो आदमी, तुम सांड हो जाओगे! ... और दूध ही दूध पी रहे हैं। लोग ले जा रहे हैं दूध कि संतजन हैं, इनको दूध ही दूध... शुद्ध आहार! दूध में क्या शुद्ध है?
अभी कुछ दिन पहले अखबारों में खबर थी कि जापान में दूध के द्वारा मांस निर्मित किया गया है। क्योंकि दूध खून का हिस्सा है, इसलिए मांस निर्मित हो सकता है। सफल हो गये हैं वैज्ञानिक दूध से मांस निर्मित करने में। जापान के बाजारों में दो-तीन महीनों के भीतर दूध से निर्मित सफेद मांस उपलब्ध हो जायेगा। क्योंकि दूध में वही तत्व हैं जो मांस में हैं। इसीलिए तो दूध पीने से मांस बढ़ जाता है, खून बढ़ जाता है, आदमी मोटा-तगड़ा हो जाता है।
तुम क्या सोचते हो मां के पेट से बच्चा जब पैदा होता है तो दूध कहां से
आ जाता है? उसका खून उसके स्तन की प्रक्रिया से गुजरकर दूध बनने लगता है। इसलिए बच्चे के लिए खून मिल रहा है। और बच्चा और कुछ पचा नहीं सकता, इसलिए अभी ठीक है। दूध में कुछ ऐसी पवित्रता नहीं है जैसा तुम सोच रहे हो। उससे ज्यादा पवित्रता तो फलों में है। उससे ज्यादा पवित्रता तो गेहूं, चावल, चने में है।
गोरख कहते हैंः दूधाधारी परिघरि चित्त... । दूधाधारी मत बन जाना। नहीं
तो दूधाधारी का हमेशा यही ध्यान लगा रहता है--किसके घर से दूध मिलेगा, किसके घर से नहीं मिलेगा? परिघरि चित्त! उसका ध्यान दूसरे के घर में लगा रहता है। किसकी गाय अच्छी है, किसकी बुरी... ।
एक दफे मैं एक संत के साथ यात्रा कर रहा था, वे सिर्फ सफेद गाय का ही दूध पीते हैं! मैंने कहाः तुम पागल हो गये हो, तुम कुछ अकल का तो उपयोग करो; काली गाय होने से दूध थोड़े ही काला हो जाता है, दूध तो सफेद ही होता है। काली गाय से डर है कि कहीं कुछ कालिमा न आ जाये दूध में! नहीं; उन्होंने कहाः नहीं, मैं तो... मेरे गुरु ने कहा है सफेद गाय का दूध। गाय की चमड़ी सफेद या काली, इससे क्या फर्क पड़ता है दूध में? तब तो काली स्त्रियों का दूध काला हो जाये, सफेद स्त्रियों का दूध सफेद हो जाये। दूध तो सफेद है, मगर सफेद होने से कोई चीज शुद्ध थोड़े ही हो जाती है।
बगुले नहीं देखे, खादीधारी बगुले नहीं देखे? मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन पहने खादी का कुर्ता और अचकन और खादी की टोपी और चूड़ीदार पाजामा; बाजार में निकला। और किसी ने कहाः मुल्ला, क्या झक सफेद! मुल्ला ने कहाः धोखे में मत जाओ, कपड़े कितने ही सफेद हों, दिल तो मेरा अभी भी काला है।
कपड़ों के सफेद होने से न तो दिल सफेद होता है, न सफेद दूध पीने से किसी
की आत्मा शुद्ध हो जायेगी। मगर उलझनें खड़ी कर लेते हैं लोग। वे संत जो मेरे साथ यात्रा पर गये, इनके साथ बड़ी मुसीबत थी। पहले वे गाय देखेंगे चारों तरफ से घूमकर कि कहीं कोई काला चिट्टा वगैरह तो नहीं है गाय पर। जब गाय बिल्कुल सफेद हो, तब कोई स्नान करे, फिर दूध दुहे, गीले ही कपड़े पहने हुए दूध दुहना चाहिए, ताकि स्नान की स्थिति बनी ही रहे। उनके पीछे लोगों को गीले कपड़े पहने दूध दुहना पड़े, कंपते जा रहे हैं। सर्दी के दिन, वे कंप रहे हैं और दूध दुह रहे हैं... । और वे दूधाहार कर रहे हैं और सोच रहे हैं कि वे बड़ा पुण्य कर रहे हैं!
मैंने कहाः तुम नर्क में पड़ोगे, ये सब शिकायतें तुम्हारे खिलाफ की जायेंगी। ये जो आदमी ठंड में सिकुड़ रहे हैं, किसी को निमोनिया हो जाये, किसी को सर्दी हो जाये--वह सब तुम्हारे लिए किया जा रहा है। तुम फल भोगोगे बुरा। तुम अभी चौंक जाओ, सावधान हो जाओ तो अच्छा।
दूधाधारी परिघरि चित्त, नागा लकड़ी चाहै नित्त।
और वे जो नंगे हो गये हैं, उनको रोज लकड़ी चाहिए जलाने को। इससे कंबल क्या बुरा है? इससे कपड़े क्या बुरे हैं? अब नंगे हो गये तो लकड़ी जलाओ। यह तो और बड़ी हिंसा हो गयी, क्योंकि लकड़ी जलाओ तो वृक्ष काटो। और उनका चित्त इसी में लगा रहता है कि लकड़ी मिलेगी कि नहीं आज। उनको चौबीस घंटे लकड़ी की

धूनी चाहिए क्योंकि वे नंगे हो गये हैं। और आग जला रहे हैं, और आग में कितने कीटाणु मर रहे हैं। वृक्ष कटे, आग में कीटाणु मरे... तुम कपड़े ही पहने रहते तो क्या बुरा था? क्यों परेशानियां खड़ी कर रहे हो?
गोरख कहते हैंः सहज जीवन चाहिए। ये अब असहजताएं हैं। अब व्यर्थ की बातों की चिंता पकड़ी है कि लकड़ी मिलेगी आज कि नहीं मिलेगी, सफेद गाय मिलेगी कि नहीं मिलेगी, दूध मिलेगा कि नहीं मिलेगा, पूरा मिलेगा कि नहीं मिलेगा? जीवन को सरल बनाओ, जटिल नहीं। सहज बनाओ, साधारण बनाओ। व्यर्थ की बातों की चिंताएं अपने सिर पर मोल मत लो।
मौनी करै म्यंत्र की आस... ।
और वह जो मौनी होता है, वह चाहता है कोई उसके साथ चले, उसको मित्र की आशा रहती है। एक मित्र मुझे मिलने आये, मौनी साधु! साथ में एक को लेकर आये। वे उसको इशारा करें, वह मुझे बतायें। मैंने कहाः तुम सीधे क्यों नहीं बोलते? उनके मित्र ने बताया कि नहीं, वे मौनी हैं, वे सीधे नहीं बोलते। मैंने कहाः यह और एक झंझट हो गयी। अब ये जहां जायें तुम्हें जाना पड़ता होगा। उन्होंने कहाः हां, जाना पड़ता है। फिर मौनी महाराज पैसा भी नहीं छूते, वह पैसा मुझे रखना पड़ता है। रिक्शा में बैठो, टैक्सी में बैठो, तो पैसा तो देना पड़ेगा; ये छूते ही नहीं पैसा।
मगर पैसा किसका है, मैंने पूछा।
"पैसा तो इन्हीं का है। लोग इनको देते हैं, रखता मैं हूं। लोग इनके पैरों में चढ़ा देते हैं, मैं जल्दी से इकट्ठा कर लेता हूं।"
मैंने कहाः मौनी महाराज हिसाब रखते हैं? वह बोलाः अब आप से क्या छिपाना, वे देखते रहते हैं, गिनती करते रहते हैं कितने नोट आये। हाथ से इशारा करके बता देते हैं कि पांच, सम्हालकर रखना। क्यों फिजूल की बकवास! जब तुम्हें गिनती करनी है तो खुद ही गिनती करो, खुद ही खीसे में रखो। गिनती खुद करनी और खीसे में दूसरे के रखवाना और फिर चिंता में पड़े रहना कि कहीं भाग न जाये, कहीं सुबह बदल न जाये!
मैंने उनसे कहा कि कल आप ध्यान को आ जायें। बंबई की घटना है, बिड़लामातुश्री में ध्यान का प्रयोग चलता था। तो मैंने कहा, कल सुबह आप ध्यान के लिए आ जायें। उन्होंने कहा... अपने मित्र से कहलवाया, इशारे किये, कि नहीं आ सकेंगे, क्योंकि कल सुबह मैं मौजूद नहीं हूं, मैं दूसरी जगह जा रहा हूं। मेरे बिना नहीं आ सकते, क्योंकि टैक्सी कौन करेगा, बिठायेगा कौन, उतारेगा कौन? वे बोलते नहीं।
यह तो अपने हाथ से पंगु हो गये! ये परमात्मा ने तुम्हें पैर दिये हैं, जबान दी है; तुमने उनको इंकार ही कर दिया! और उपयोग तो तुम जबान ही कर रहे हो; यह भी परमात्मा की जबान है, इस आदमी के मुंह में भी। तुम्हारी जबान भी उसी की है। इतनी करीब की जबान को छोड़कर उतनी दूर की जबान का उपयोग करने का अर्थ क्या है? मगर ऐसे ही उपद्रवों में, ऐसे ही जंजालों में पड़ गये हैं। मौनी करै म्यंत्र की आस... ।
मित्र की आशा लगी रहती है।
... बिन गुर गुदड़ी नहीं बेसास।
यह सब व्यर्थ की बकवास चलती रहती है, क्योंकि बिना गुरु को खोजे जीवन
का सार-सूत्र इन लोगों को नहीं मिला है। ये व्यर्थ की बकवास में पड़ गए हैं किताबें पढ़ कर, शास्त्रों को पढ़ कर।
तासों ही कछु पाइये, कीजे जाकी आस।
रीते सरवर पर गये, कैसे बुझे प्यास?
रहीम का वचन प्यारा है!
तासों ही कछु पाइये...
उससे ही कुछ मिल सकता है, जिसके पास कुछ हो।
रीते सरवर पर गये, कैसे बुझे प्यास?
शास्त्रों में कहीं पानी है? शब्द ही शब्द हैं। पानी का विचार है, विवरण है, मगर पानी कहां है? सदगुरु के पास ही "गुर" मिले, सूत्र मिले, कुंजी मिले।
गोरख का वचन है--
बास सहेती सब जग बास्या, स्वाद सहेता मीठा।

सांच कहूं तौ सतगुर मांतैं रूप सहेता दीठा।।
कहते हैं गोरख कि वह तो सारे जगत में सुगंध की तरह भरा हुआ है। उसकी सुगंध से सारा जगत सुगंधित है।
बास सहेती सब जग बास्या, स्वाद सहेता मीठा।
और उसकी मिठास सारे जगत में है, लेकिन कोई दिखानेवाला मिले, कैसे उसे चखें? कोई बतानेवाला मिले, कैसे उसकी सुगंध हमारे नासापुटों तक आ जाये? कैसे उसका संगीत हमारे कानों से संयुक्त हो जाये?
सांच कहूं तौ सतगुर मांतैं रूप सहेता दीठा।
सच्ची बात इतनी है कि जब तक कोई देखनेवाला न मिल जाये, जिसने देखा हो,
तब तक तुम्हारा संबंध जुड़वाया न जा सकेगा।
बिन गुर गुदड़ी नहीं बेसास... ।
बिना गुरु के विश्वास नहीं आयेगा, श्रद्धा नहीं आयेगी। कोई आंखवाला
ही तुम्हारे भीतर यह आत्म-विश्वास पैदा कर सकता है कि हां, परमात्मा है।
क्योंकि कोई आंखवाला ही साक्षी हो सकता है--चश्मदीद गवाह।
किसी गुरु को खोजे बिना कुछ भी नहीं मिलता। इसी तरह के व्यर्थ झंझटों में लोग पड़ जाते हैं। और गुरु की बात छोटी है, छोटा-सा सूत्र हैः सहज हो रहो।
हबकि न बोलिबा, ठबकि न चालिबा, धीरै धरिबा पांव।
गरब न करिबा, सहजै रहिबा, भणत गोरष रावं।।
छोटा-सा सूत्र हैः अहंकार छोड़ दो, सरलता से जीयो। अति न करो, मध्य में
आ जाओ, सहज भाव... ।
सुणि गुणवंता, सुणि बुधिवंता, अनंत सिधां की वांणी।
सीस नवावत सतगुर मिलिया, जागत रैंणिं विहांणी।
गोरख ने कहाः सुनो, जो सुन सकते होओ, समझ सकते होओ तो समझो।
सुणि गुणवंता... ।
अगर थोड़ा गुण हो, थोड़ी बुद्धि हो तो सुन लो।
सुणि बुधिवंता... ।
अगर थोड़ा बोध हो तो पकड़ लो।
अनंत सिधां की वांणी।
और यह मैं ही नहीं कहता हूं, अनंत सिद्धों ने यही कहा है।
सीस नवावत सतगुर मिलिया, जगत रैंणिं विहांणी।
बस शीश झुकाना आ जाये तो गुरु मिल जाये। इधर झुका शीश कि उधर मिला गुरु। गुरु तो सदा मौजूद है, तुम झुको तो गुरु मिल जाये।
पुरानी मिस्री कहावत है कि जब शिष्य तैयार होता है, गुरु प्रगट हो जाता है। ह्वैनेवर द डिसाइपल इ.ज रेडी, द मास्टर एपियर्स। एक क्षण की भी देर नहीं होती। उधर शिष्य झुका, इधर गुरु आया।
सीस नवावत सतगुर मिलिया, जगत रैंणिं विहांणी।
फिर यह जगत की रात रात नहीं है, फिर तो जागते-जागते बीत जाती है।
इन छोटे-से सूत्रों को समझना, गुनना और थोड़ा-थोड़ा जीवन में साधना, इनका स्वाद लेना। रहीम के वचन से आज की बात पूरी करता हूं--
रहिमन नीर पहान, बूड़ै पै सीझै नहीं।
तैसे मूरख जान, बूझै पै सूझै नहीं।।
जैसे पत्थर नदी में पड़ा रहता है, फिर भी भीगता नहीं। ऐसे ही नासमझ सत्संग भी करते रहें, तो भीगते नहीं।
रहिमन नीर पहान, बूड़ै पै सीझै नहीं।
बूड़ा तो रहता है, डूबा तो रहता है पानी में, मगर सीझता नहीं, भीगता नहीं, अछूता ही रह जाता है। पानी में पड़ा-पड़ा अछूता रह जाता है।
तैसे मूरख जान, बूझै पै सीझै नहीं।
सत्संग में बैठकर जो सुन तो ले, शब्द तो सुन ले, लेकिन अनुभव अनुभव न करे। बूझै पै सीझै नहीं। सुन ले, समझ ले, मगर जीये न, अनुभव न करे, उसे मूरख समझना; वह पत्थर है।
यह सत्संग है! भीगो, डूबो, जीयो... !
हबकि न बोलिबा, ठबकि न चालिबा, धीरै धरिबा पांव।
गरब न करिबा, सहजै रहिबा, भणत गोरष रावं।

मरौ हे जोगी मरौ
चौथा प्रवचन

अदेखि देखिबा

पहला प्रश्नः विचार की ऊर्जा भाव में कैसे रूपांतरित होती है?

चैतन्य कीर्ति! चित्त की दो अवस्थाएं हैं। एक--आंदोलित, तरंगायित, चंचल; वही विचार है। दूसरी--शांत, तरंग-शून्य, मौन, थिर; वही भाव-समाधि है। जैसे झील तरंगों से भरी हो, तो विचार; और झील शांत हो, निस्तरंग हो, तो भाव। चित्त दोनों अवस्थाओं में हो सकता है।
साधारणतः चित्त विचार की अवस्था में है, क्योंकि वासना की हवाएं बह रही हैं। झील तरंगित होती है हवाओं के कारण। हवाओं के थपेड़े झील को डांवांडोल कर जाते हैं। ऐसे ही चित्त तरंगित होता है वासना की हवाओं के कारण--यह पाऊं वह पाऊं, ऐसा हो जाऊं वैसा हो जाऊं। वह जो भीतर निरंतर कुछ होने की, कुछ पाने की तीव्र ज्वाला जल रही है, वही तरंगित करती है। जैसे ही वासना चली जाती है, हवाएं बंद हो गयीं, झील शांत हो गयी, भाव सम्हल गया। इसलिए समस्त ज्ञानियों ने कहा हैः वासना को समझ लो, सब समझ में आ जायेगा। क्योंकि जिसने वासना को समझ लिया, उसने अपने भीतर विक्षिप्तता के पैदा होने का मूल कारण समझ लिया। और जिसे समझ में आ गया है मूल कारण, वह उसे फिर सहयोग नहीं देगा। कौन पागल होना चाहता है! कौन विचार की उधेड़बुन, आपाधापी में पड़ा रहना चाहता है! कौन झेलना चाहता है रोग विचार का!
विचार रोग है क्योंकि निरंतर बेचैनी है, अशांति, तनाव है। विचार संताप है। विचार के कारण ही तो आनंद नहीं अनुभव हो रहा है। आनंद अनुभव हो जाये उसी क्षण, जिस क्षण विचार विदा हो जाये। और विचार तब तक विदा न होगा जब तक वासना की हवाएं बहती हैं।
तुम पूछतेः विचार की ऊर्जा भाव में कैसे रूपांतरित होती है?
वासना को समझो। तुम जो हो, उससे ही राजी हो जाओ; वासना विदा हो गयी। तुम जैसे हो, उससे ही संतुष्ट हो जाओ। और की मांग न हो। जो है, परम आह्लादकारी है। जैसा है, उससे भिन्न होने की कोई आवश्यकता नहीं। तो इसी क्षण, देखो कहां गये विचार! भाव सम्हल गया... । धीरे-धीरे भाव का रस अनुभव होगा। और जब भाव का रस अनुभव होगा तो कौन विचार में जाना चाहेगा! जिसका फूलों से संबंध जुड़ने लगा वह फिर कांटों की तलाश नहीं करता।
लेकिन यह पूरा समाज, यह भीड़, ये लोग, तुम्हारे भीतर वासना को उत्तेजित करते हैं। बचपन से ही वासना की दीक्षा दी जाती है, महत्वाकांक्षा सिखाई जाती है। बाप भी चाहता है बेटा कुछ हो जाये--धन कमाये, पद कमाये, यश-प्रतिष्ठा... घर का नाम, कुल का नाम उजागर करे--पकड़ाई तुमने वासना। छोटे- छोटे बच्चे जिन्हें हम स्कूल भेजते हैं, हम वासना की दीक्षा लेने भेज रहे हैं। पच्चीस वर्ष, जीवन का एक तिहाई हिस्सा, हम लोगों को महत्वाकांक्षा सिखाते हैं! कैसे तुम प्रथम हो जाओ, कैसे दूसरों को पीछे छोड़ दो। चाहे कुछ भी कीमत चुकानी पड़े, चाहे जीवन ही खो जाये इस दौड़ में, मगर दौड़ कर आगे हो जाना... । मरना तो आगे जाकर मरना, पीछे मत रह जाना।
जीसस के वचन पर विचार करोः धन्यभागी हैं वे जो अंतिम हैं, क्योंकि वे
ही मेरे प्रभु के राज्य में प्रथम होंगे; और जो प्रथम हैं, वे अंतिम पड़ जायेंगे।
महत्वाकांक्षी प्रभु के राज्य से जुड़ेगा कैसे? उसने तो नरक से अपना नाता बना लिया। फिर जीवन-भर की आपाधापी के बाद, न मालूम कितने घाटों का गंदा पानी पीने के बाद, न मालूम कितने रास्तों की धूल-धवांस से लद जाने के बाद, जब जिंदगी का सूरज अस्त होने लगता है, और जब लगता है कि हाथ कुछ लगा नहीं, खाली के खाली रह गये; दौड़े बहुत, पहुंचे नहीं कहीं--तब पश्चात्ताप घेरता है। तब मन सोचता है अब समाधि कैसे पा लें; अब परमात्मा को कैसे पा लें। और फिर तुम्हें मन ने धोखा दिया; वही पाने की भाषा... । अब तुम्हें नयी महत्वाकांक्षा पकड़ेगी। इस महत्वाकांक्षा का रूप भर धार्मिक है, ढंग भर धार्मिक है; इसकी आत्मा तो वही की वही है। तुम चाहे धन चाहो चाहे धर्म, पद

चाहो चाहे परमात्मा, जब तक चाह है तब तक हवाएं बहती रहेंगी और चित्त तरंगित होता रहेगा। जो धन चाहता है उसके चित्त में धन के विचार उठते हैं; जो परमात्मा चाहता है उसके मन में परमात्मा के विचार उठते हैं--लेकिन विचार तो जारी रहेंगे। इससे क्या फर्क पड़ता है कि विचार किसके हैं, धन के हैं कि धर्म के हैं? धार्मिक विचार हो कि अधार्मिक विचार हो, विचार विचार है। और जहां विचार है वहां अशांति है।
इसलिए मैं तुम्हें धार्मिक विचार नहीं सिखा रहा हूं। मैं तुम्हें निर्विचार की दीक्षा दे रहा हूं। आमतौर से यही चल रहा है मंदिर-मस्जिदों मेंः जो लोग सांसारिक विचारों से भरे हैं, उन्हें हम कैसे आध्यात्मिक विचारों से भर दें, बस... । मगर क्या फर्क पड़ता है? रोग का नाम धार्मिक रख लिया, अच्छा-प्यारा नाम रख लिया, इससे क्या फर्क पड़ता है?
जब तक तुम कुछ भी होना चाहते हो, जब तक तुम भविष्य में कुछ होने की आकांक्षा रखते हो, जब तक तुम कल के प्रति आतुर हो, आकांक्षी हो, अभीप्सु हो, तब तक तुम अशांत रहोगे। विचार की धारा बहती रहेगी। और विचार की धारा बहती रहेगी, तुम परमात्मा से टूटे रहोगे।
मैं तुमसे यह कह रहा हूं कि धार्मिक विचार भी परमात्मा के और तुम्हारे बीच उतनी ही बड़ी बाधा है जितनी सांसारिक विचार की। विचार बाधा है, निर्विचार मिलन है।
गोरख ने कहा हैः
अदेखि देखिबा, देखि विचारिबा, अदिसिटि राषिबा चीया
पाताल की गंगा ब्रह्मंड चढ़ाइबा, तहां बिमल बिमल जल पीया।
जो नहीं दिखाई पड़ता उसे देखना है, तो साधारण आंखें काम न दे सकेंगी।
जो नहीं विचार में आता उसका अनुभव करना है, तो विचार की प्रक्रिया साथ न दे सकेगी।
अदेषि देषिबा!
जो दिखाई नहीं पड़ता उसे देखना है, तो आंख बंद करके देखना होगा। वह दिखाई तो पड़ता ही नहीं है; आंख खोलकर तो जो दिखाई पड़ता है वह संसार है। अदेषि देषिबा, देषि विचारिबा!
फिर उसे देखकर ही नहीं रह जाना है, उसे देखकर अपने अंतरतम में प्रविष्ट कराना है। उसे सूझना है, बूझना है। तो जो दिखाई पड़ जाये उतने से ही काम हल नहीं हो जाता। जो झलक मिल जाये, वह हमारी आत्म-अवस्था में सम्मिलित हो जानी चाहिए। जो झलक मिले, वह बिजली की कौंध जैसी न हो कि आयी और गयी--हमारे भीतर जलते हुए एक शाश्वत दीये की भांति हो, जिसका प्रकाश बना ही रहे, बना ही रहे।
अदिसिटि राषिबा चीया!
वह जो अदृश्य है उसमें अपने चित्त को डुबाना है। और अपने चित्त में अदृश्य को सम्हालना है।
पाताल की गंगा ब्रह्मंड चढ़ाइबा!
और वह जो ऊर्जा की गंगा है, जो नीचे की तरफ बही जा रही है--वासना में, कामना में, महत्वाकांक्षा में; जो संसार की तरफ प्रवाहित है... ।
पाताल की गंगा ब्रह्मंड चढ़ाइबा!
वह जो नीचे की तरफ जा रही है--पाताल की तरफ, नर्क की तरफ--उसे ऊपर की तरफ ले जाना है, उसे ऊर्ध्वगमन देना है।
तहां बिमल-बिमल जल पीया!
और एक बार तुम चढ़ने लगे ऊपर की तरफ, ऊर्ध्वगामी हुए, ऊर्ध्वरेतस, तो फिर खूब विमल रस, फिर अमृतरस को पीयो। परमात्मा को बैठ जाने दो हृदय में, तुम बैठ जाओ परमात्मा के हृदय में, फिर पीयो खूब अमृतरस!
परमात्मा हृदय में बैठता ही तब है जब चित्त निस्तरंग होता है।
ऐसा ही समझो झील है, पूर्णिमा की रात है, आकाश में बड़ा प्यारा चांद है, बड़ा सुंदर समा है; लेकिन झील तरंगित है तो चांद का प्रतिबिंब झील में नहीं बैठ पाता, टूट-टूट जाता है, बिखर-बिखर जाता है, बनाओ-बनाओ और बिखर जाता है। पूरे झील पर चांद के टुकड़े-टुकड़े फैल जाते हैं। चांदी फैल जाती है झील पर, मगर चांद का प्रतिबिंब नहीं बन पाता। फिर झील शांत हो गयी, हवाएं अब नहीं

बहतीं, अब सन्नाटा है, अब झील ध्यानमग्न हो गयी, अब झील समाधिस्थ हो गयी--अब चांद का प्रतिबिंब बनता है। अब चांद पूरा का पूरा झील में बैठ गया।
ऐसी ही घटना घटती है। परमात्मा तो चारों तरफ मौजूद है। पूर्णिमा तो
है ही, क्योंकि परमात्मा एक क्षण को भी अनुपस्थित नहीं हो रहा है। पूरा चांद निकला ही हुआ है, सिर्फ तुम्हारे चित्त की झील तरंगित है। तो तुम्हारे भीतर परमात्मा का प्रतिबिंब नहीं बन पाता, तुम उसे अपने भीतर नहीं सम्हाल पाते। वह तुम्हारे गर्भ में प्रविष्ट नहीं हो पाता है; टूट-टूट जाता है, बिखर-बिखर जाता है; पारे की तरह छिटक-छिटक जाता है। जितनी मुट्ठी बांधते हो उतनी मुश्किल होती जाती है।
भाव की अवस्था का अर्थ होता हैः चित्त निर्मल हुआ, शांत हुआ। अब नहीं बहतीं वासना की तरंगें। अब न कुछ पाना है, न कुछ होना है। बैठे रहे चुप मौन... । इस विश्राम की अवस्था में तत्क्षण जो मौजूद था वह भीतर झलकने लगता है। चांद बाहर ही नहीं होता फिर, चांद भीतर भी आ जाता है। और तब पीयो खूब... बिमल-बिमल रस पीया!
इहां ही आछै, इहां ही अलोप। इहां ही रचिलै तीन त्रिलोक।
आछै संगै रहै जूवा। ता कारणि अनंत सिधा जोगेश्वर हूवा।
गोरख कहते हैं कि अनंत साधकों ने, खोजनेवालों ने इस तरह सिद्धि पायी।
इस तरह सिद्ध योगेश्वर हुए। किस तरह? इहां ही आछे, इहां ही अलोप! जिसे तुम खोज रहे हो वह यहीं छिपा है। कहां जाते हो?
इहां ही आछे, इहां ही अलोप!
जिसे तुम खोजने दूर-दूर की यात्रा करते हो, काशी और कैलाश, कुरान और पुराण... और जिसको तुम पत्थरों में पूजते हो और शब्दों में तलाशते हो, वह बिल्कुल यहीं मौजूद है, अभी, तुम्हारी श्वास-श्वास में, तुम्हारी आंख के सामने है। तुम कहीं भी आंख फेरो, वहीं मौजूद है। इहां ही आछे इहां ही अलोप। यहीं मौजूद है और यहीं छिपा है। और छिपा है, इसका यह अर्थ नहीं है कि तुमसे छिपने की कोशिश कर रहा है। छिपा है इसलिए, अलोप इै इसलिए, क्योंकि तुम्हारी आंखों पर विचार का परदा पड़ा है। तुम अपने विचारों से भरे हो, देखने की सुविधा कहां है? तुम तरंगायित हो।
इहां ही रचिलै तीन त्रिलोक!
कहां की तुम बातें कर रहे हो कि और कहीं आगे कोई लोक है? यहीं तीनों लोक हैं। नर्क भी यहीं है, पृथ्वी भी यहीं, स्वर्ग भी यहीं। सब तुम्हारी दृष्टि की बात है। इधर दृष्टि बदली कि उधर सृष्टि बदली।
जो आदमी विचार में जी रहा है, वह नर्क में जी रहा है। जो आदमी भाव में
जी रहा है, वह स्वर्ग में जी रहा है। जो दोनों के मध्य में अटका है, वह पृथ्वी पर।
इस पृथ्वी पर अधिक लोग नर्क में जी रहे हैं। तुम यह मत सोचो कि नर्क कहीं पाताल में है। भूलो पुरानी व्यर्थ की बकवासें। अगर खोदते चले जाओगे जमीन को तो पाताल में तो अमरीका है, नर्क नहीं है। और अमरीका के भी लोग यही सोचते हैं कि नीचे। तुम हो नीचे!--यह पुण्यभूमि भारत! अगर अमरीका खोदता ही चला जाये तो यहां निकल आयेंगे, पूना में। तुमको पाकर बड़े हैरान होंगे। "शैतान इत्यादि कहां हैं, आग कहां जल रही है, कड़ाहे कहां हैं?"
जमीन गोल है। नीचे यही पृथ्वी है। इसलिए नीचे-ऊपर की भाषा को प्रतीक समझो। नीचे का अर्थ जमीन के नीचे नहीं है। और ऊपर का अर्थ आकाश में मत देखने लगो। नीचे का अर्थ है विचार। ऊपर का अर्थ है भाव। नीचे का अर्थ है विक्षिप्तता। ऊपर का अर्थ है विमुक्तता। और दोनों के मध्य में पृथ्वी है। जो लोग नर्क में जी रहे हैं वे दुख पा रहे हैं, बहुत दुख पा रहे हैं; अभी पा रहे हैं, इसी क्षण पा रहे हैं! करो क्रोध और तुम नर्क में प्रविष्ट हो गये... जलने लगी आग। किस आग का विचार कर रहे हो, और कौन-से कड़ाहे चाहिए? क्रोध जितना गला देता है और जितना जला देता है, और क्या जलायेगा? होने लगे दग्ध, डूबने लगे जहर में। कड़वाहट फैलने लगी प्राणों पर। और करो प्रेम, करुणा और उठने लगे ऊपर; ऊर्ध्वगमन शुरू हुआ, खुले द्वार स्वर्ग के!
आकाश में नहीं है स्वर्ग! ऊपर कहते हैं इसलिए कि वह ऊपर की अवस्था है, तुम्हारी चेतना की ऊपरी से ऊपरी अवस्था का नाम है। भाव तुम्हारी श्रेष्ठतम अवस्था है--तुम्हारे भीतर का गौरीशंकर! लेकिन लोग सोचते हैं कि

गौरीशंकर पर कुछ है। इसलिए कैलाश पर तीर्थ बन गया है। तीर्थ तुम्हारे भीतर है, तुम्हारे भीतर है कैलाश। तुम्हारी चेतना जब परम शांत होती है तो गौरीशंकर बन जाती है। ऊंचे से ऊंचा हिमालय भी तुमसे नीचे पड़ जाता है। तुम उड़ने लगे आकाश में, तुम आकाश हो गये! और जब तुम नीचे गिरते हो तो नर्क हो जाते हो। दोनों के मध्य में पृथ्वी है।
अधिकतम लोग नर्क में जी रहे हैं, बहुत थोड़े-से लोग पृथ्वी पर जी रहे हैं, और बहुत विरले लोग स्वर्ग का अनुभव कर रहे हैं। और सब अभी है यहीं है। गोरख का वचन बहुत अदभुत हैः
इहां ही रचिलै तीन त्रिलोक!
रच लो यहीं, जो भी तुम्हें करना हो, जो भी तुम्हें बनाना हो, जहां भी जीना हो; यह तुम्हारे जीवन की शैली पर निर्भर है।
आछै संगै रहै जूवा!
यहीं तुम्हारे भीतर, तुम्हारे शून्य में सब छिपा है। तुम्हारे सहस्रार में सब छिपा है। यहीं आलोकों का आलोक छिपा है, प्रकाशों का प्रकाश! इसी शून्य में परमात्मा विराजमान है। इसमें जो डूबा, वह सिद्ध हुआ, योगेश्वर हुआ।
आछै संगै रहै जूवा!
अपने ही भीतर के शून्य से संबंध बना लो।
ता कारणि अनंत सिधा जोगेश्वर हूवा।
और उतने ही कारण से, बस उतने ही कारण से, अपने शून्य से संबंध बना लेने से, अनेक-अनेक लोग योग की परम अवस्था--निर्विकल्प समाधि को--उपलब्ध हो गये हैं। भक्त उसी को भाव-समाधि कहते हैं।

दूसरा प्रश्नः मैं प्रभु से कुछ मांगना चाहता हूं, क्या मांगूं?

मांगने की बात शोभा की बात नहीं। प्रभु के द्वार पर भिखमंगे होकर मत जाना। बिन मांगे मोती मिलें, मांगे मिले न चून। और ऐसा नहीं है कि नहीं मिलेगा; मगर नहीं मांगनेवाले को मिलता है। मांगनेवाले लौटा दिये जाते हैं। मंगनों का कौन स्वागत करता है? परमात्मा के द्वार के पहरेदार कह देते हैं--आगे बढ़ो! मांगने वालों से लोग परेशान हैं।
एक यहूदी मरा, जिंदगी-भर प्रार्थना में ही समय बिताया। खूब चिल्ला- चिल्लाकर प्रार्थना करता था सिनेगाग में जाकर। रात सोता तो भी चिल्लाकर प्रार्थना करता। नींद खुल जाती बीच में तो भी चिल्लाकर प्रार्थना करता-- सुन ले परमात्मा! उसके सामने ही एक नास्तिक था, जिसने कभी प्रार्थना न की और कभी मंदिर न गया। सोचता था यहूदी दिल में--धार्मिक था, सोचता था--कि बच्चू, कर लो दो-चार दिन मजा और फिर पड़ोगे नर्क में, फिर भुगतोगे। और प्रसन्न होता था, कि हम होंगे स्वर्ग में; इतनी की हैं प्रार्थनाएं, इतना पुण्य कमाया है। तुम पड़े होओगे नर्क में। अभी कर लो चार दिन मजा-मौज, बजा लो खूब बांसुरी; मगर यह चार दिन की चांदनी है, फिर अंधेरी रात।
ऐसा मन ही मन में सोचता, और और जोर से प्रार्थना करता। प्रार्थना में अपने लिये तो स्वर्ग मांगता ही था, साथ में सामने रहनेवाले नास्तिक के लिये नर्क भी मांगता था। संयोग की बात, दोनों एक ही दिन मरे। देवता लेने आये, धार्मिक को नर्क की तरफ ले चले। वह बहुत चिल्लाया कि यह क्या कर रहे हो? और अधार्मिक को स्वर्ग की तरफ ले चले। उसने कहा यह अन्याय हो रहा है। जिंदगी भर मेरे साथ अन्याय हुआ और अब भी अन्याय हो रहा है। तब भी मैं परेशान रहा, मगर मैंने सब तरह से धीरज रखा कि कोई बात नहीं, झेल लें, चार दिन की परेशानी है, फिर तो स्वर्ग है। और इस भोगी को तुम स्वर्ग ले जा रहे हो! जरूर कुछ भूल-चूक हो गयी है। आज्ञा लाये होओगे मुझे स्वर्ग ले जाने की, तुम्हारी चिट्ठी तो देखें! ले चले उसे, कुछ भूल हो रही है तुमसे।
मगर उन्होंने कहाः कोई भूल नहीं हो रही है। अगर तुम्हें ज्यादा परेशानी हो तो हम दोनों को परमात्मा के सामने ले चलें।
उसने कहा कि जरूर ले चलो, वहां निर्णय हो जायेगा। परमात्मा के सामने जाकर उसने फिर चिल्लाया, पुरानी आदत थी। परमात्मा ने कहाः अब तो मैं तुम्हारे सामने हूं, अब क्यों चिल्ला रहे हो? क्या चाहते हो?

उसने कहाः कुछ भूल हो गयी है, ले जाना है मुझे स्वर्ग में और ले जा रहे हैं इस दुष्ट को। और यह तो भोगी है। और यह तो जिंदगी-भर गलत काम करता रहा। प्रार्थना इसने कभी की नहीं; मैं सदा प्रार्थना करता रहा, मुझे नर्क क्यों ले जाया जा रहा है?
परमात्मा ने कहाः तेरी प्रार्थनाओं के कारण। तू मेरा सिर खा गया। अब तुझे यहां स्वर्ग में बसाकर और अपनी जान की मुसीबत लेनी है, बला लेनी है? तेरी प्रार्थनाओं का यह फल है। इस आदमी को बसा रहा हूं इसलिए कि यह बांसुरी बजाता है, राग-रंग में रहता है; इससे स्वर्ग में थोड़ी-सी रौनक आयेगी। तेरे बसाने से तो रौनक आयेगी नहीं; थोड़ी-बहुत है, वह भी चली जायेगी। तुम मांगोगे प्रभु से कुछ तो क्या मांगोगे? कुछ क्षुद्र ही मांगोगे। अच्छा तो हो कि न मांगो। अगर न मांगने की क्षमता जुटा सको तो श्रेष्ठतम है। अगर मांगना ही हो तो सिर्फ प्रभु को मांगो, और कुछ न मांगो। नंबर दो की बात है वह। मन माने ही नहीं, मन को आदत ही मांगने की पड़ गयी हो, बिना मांगे चित्त राजी ही न हो, कांटा चुभता रहे, तो फिर प्रभु को ही मांग लो।
रहीम ने कहा है--
कहा करौं बैकुंठ लै, कल्पवृक्ष की छांह।
रहिमन ढाक सुहावनो, जो गल प्रीतम बांह।।
क्या करूंगा लेकर तुम्हारा बैकुंठ? और क्या करूंगा कल्पवृक्ष की छांह?
रहिमन ढाक सुहावनो!
यह ढाक का कुरूप-सा वृक्ष भी खूब सुहावना है; बस एक काम हो जाये--
जो गल प्रीतम बांह!
तुम्हारे गले में मेरा हाथ हो, मेरे गले में तुम्हारा हाथ हो, फिर इसी ढाक के नीचे स्वर्ग बस गया। फिर क्या करेंगे कल्पवृक्ष और बैकुंठ का? फिर यहीं बैकुंठ है!
तो अगर मांगना ही हो तो उसे मांगो; बस उससे ज्यादा कुछ न मांगना। अगर मांगना ही हो तो इतना मांगो कि मुझ अपात्र को स्वीकार कर लो। अगर मांगना ही हो तो इतना ही कि मुझे शरण दे दो, कि मेरा समर्पण स्वीकार हो, अस्वीकार न हो। जैसे प्रेमी प्रेयसी से मांगता है, या प्रेयसी प्रेमी से मांगती है। परमात्मा के द्वार पर प्रेमी की तरह जाओ, भिखमंगे की तरह नहीं।

मानिनी सब कुछ निछावर चरण पर तेरे--
वरण कर पुण्यतम क्षण है!

खोल दे निज नयन-पाटल
युग-युगों से स्निग्ध उर-तल,
वेदना बन जाये यमुना--
एक सुधि की सांस से गल;
रागिनी, सुर-लय निछावर भजन पर तेरे-- ध्वनन कर पुण्यतम क्षण है!
वरण कर पुण्यतम क्षण है!

आज बंदी-सा बना है
धड़कनों की आह का स्वर
अधर का संगीत खोया--
कहरती-सी है लहर;
मानिनी, मन-प्राण नूपुर-झनन पर तेरे-- किरण कर पुण्यतम क्षण है!
वरण कर पुण्यतम क्षण है!

आज स्वप्निल-सा पुरातन
एक अभिनव मधुर नूतन,
विगत-आगत सब लिये--
थिरकन-भरे तेरे सुकंकण;

रंगिनी, मृदु नेह अर्पित मिलन पर तेरे--
सृजन कर पुण्यतम क्षण है!
मानिनी, सब कुछ निछावर चरण पर तेरे--
वरण कर पुण्यतम क्षण है!

जैसे कोई प्रेमी अपनी प्रेयसी के चरणों पर सब रख दे, जैसे कोई प्रेयसी अपने प्रेमी के चरणों पर सब रख दे--ऐसा परमात्मा से संबंध जोड़ो! लेने-देने का नहीं, दांव-पेंच का नहीं, आकांक्षाओं, अभीप्साओं का नहीं।
मांगो मत, मांगने से प्रार्थना गंदी हो जाती है। प्रार्थना को मुक्त रहने दो। मांग से मुक्त, तो ही प्रार्थना आकाश में उड़ पाती है; नहीं तो मांग के पत्थर भारी हो जाते हैं। प्रार्थना को पृथ्वी पर ही गिरा देते हैं; आकाश तक नहीं उठ पाती। मांगोगे क्या? तुम्हारा मन ही तो मांगेगा न! मन से मुक्त होना है। उसकी मांग की पूर्ति चाहोगे तो मन से मुक्त कैसे होओगे? मांगोगे क्या? मांग भी तो एक विचार है न? विचार के ही बाहर जाना है और विचार की ही पूर्ति मांगोगे, तो बाहर कैसे जाओगे?
मांगो मत, मौन हो जाओ। उसके सामने मौन निवेदन पर्याप्त है। बह जाओ उसके चरणों में गंगाजल जैसे। धो दो उसके चरण अपने जीवन से, बस इतना काफी है। और मिलता है बहुत, बिन मांगे मिलता है। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि मिलता नहीं; मगर मिलता उसी को है जो मांगता नहीं। मांगनेवाले को नहीं मिलता। मांगनेवाला अपनी मांग के कारण ही अड़चन खड़ी कर देता है।
फिर भी, न सम्हाल सको तो मैं कहता हूं कुछ मांग लेना--परमात्मा को मांग लेना। या कुछ... परमात्मा को मांगने की आकांक्षा ही न जगती हो, क्योंकि बहुत मुश्किल से परमात्मा को मांगने की आकांक्षा जगती है। वह तो जिसके भीतर प्रेम जग आया है, वह परमात्मा को मांग सकता है। मगर अधिक लोगों के भीतर प्रेम ही नहीं है; वे धन मांग सकते हैं, पद मांग सकते हैं, प्रतिष्ठा मांग सकते हैं, इस तरह की बातें। लंबी उम्र मांग सकते हैं, स्वास्थ्य मांग सकते हैं; इस तरह की चीजें ही मांग सकते हैं।
अगर तुम्हारे भीतर प्रेम हो तो परमात्मा को मांग लेना; अगर ध्यान हो
तो कुछ मांगना ही मत। ध्यान तो ऊंचे से ऊंचा शिखर हैः कुछ मांगना ही मत। चुप रह जाना--मौन, अवाक, उसके समक्ष आश्चर्यविमुग्ध, रहस्यलीन, लवलीन, तल्लीन... । मिलेगा बहुत, पूरा परमात्मा बरस पड़ेगा तुम पर। उसके आशीष ही आशीष फूलों की तरह तुम्हें लबालब भर देंगे। लेकिन अगर मौन रहने की क्षमता अभी न हो और कुछ न कुछ तरंग उठती ही हो तो फिर परमात्मा को मांगना; वह प्रेमी की तरंग है। वह नंबर दो है। और अगर अभी प्रेम भी न जगा हो तो फिर तीसरा सुझाव हैः

मुस्कुराता हुआ दीप मैं बन सकूं
स्नेह इतना हृदय में भरो आज तुम!
मोतियों से न रीती रहे आंख यह
रागिनी कंठ में खो न जाए कहीं
भय मुझे है तिमिर की घनी छांह में ज्योति धुंधली स्वयं हो न जाए कहीं, जिंदगी में खिंची है परिधि मौत की डगमगाता हुआ हर कदम चल रहा,
एक पल की मनुज की हंसी को यहां डबडबाता हुआ हर नयन छल रहा, चांदनी-सा मधुर हास बिखरा सकूं, प्राण! उल्लास इतना भरो आज तुम! मुस्कुराता हुआ दीप मैं बन सकूं स्नेह इतना हृदय में भरो आज तुम! फूल कुछ झर रहे हैं धरा पर अरे नव कली का न घूंघट हटाओ अभी, हंस सकें साथ ही मुस्कुरा घूमकर; डाल के फूल यों मुस्कुराओ अभी;

आवरण रश्मि का फूल पर डाल दो
नव कली के नयन मुस्कुरा तो सकें, हो नए राग का ही सृजन कुछ घड़ी
मुक्त मन से अधर गुनगुना तो सकें;
मैं गरल पी सकूं गीत गा-गा यहां
जीभ पर बूंद मधु की धरो आज तुम!
मुस्कुराता हुआ दीप मैं बन सकूं,
स्नेह इतना हृदय में भरो आज तुम!
तो पहलाः मांगना ही मत कुछ। वह ध्यान, वह भाव, वह निर्विचार दशा है। दोः मांगो तो प्रभु को मांगना। तुम स्वीकृत हो सको, ऐसी अनुकंपा मांगना। लेकिन उतना प्रेम न जागा हो तो इतना ही मांगना कि मेरा हृदय प्रेम से भर जाए।

मुस्कुराता हुआ दीप मैं बन सकूं
स्नेह इतना हृदय में भरो आज तुम
मैं गरल पी सकूं गीत गा-गा यहां
जीभ पर बूंद मधु की धरो आज तुम!
इससे नीचे मत गिरना। इससे नीचे गये तो प्रार्थना बिल्कुल ही भ्रष्ट
हो गयी, प्रार्थना ही न रही।

तीसरा प्रश्नः गोरखनाथ पंडितों के खिलाफ क्यों हैं?

और क्या करें? पंडित का अर्थ होता हैः पढ़ा-लिखा तोता। राम-नाम जप लेता
है तोता, इससे राम-नाम उसके हृदय में थोड़े ही होता है। गीता भी दोहरा सकता है, गायत्री भी पढ़ सकता है, कुरान की आयत भी कंठस्थ कर सकता है; लेकिन इससे उसका प्राण थोड़े ही भीगता है। पत्थर की तरह पड़ा रहेगा नदी में, मगर भीगेगा थोड़े ही। तोता राम-राम भी जपे तो तुम सोचते हो उसके प्राण में राम-नाम है? ऐसी ही दशा पंडित की है। पंडित खुद धोखा खा रहा है, दूसरों को धोखा दे रहा है। अनुभव तो कुछ नहीं हुआ। प्राणों में कोई स्वाद नहीं उतरा, कोई मधु- बूंद नहीं भरी, कोई फूल नहीं खिला; लेकिन उधार बातें कंठस्थ हो गयी हैं, उन्हें दोहरा रहा है। और दोहरा-दोहरा कर अकड़ रहा है।
गोरखनाथ ने ही विरोध नहीं किया है, समस्त ज्ञानियों ने विरोध किया है; क्योंकि पांडित्य ज्ञान का दुश्मन है; पांडित्य ज्ञान का धोखा है, प्रवंचना है, विडंबना है। पांडित्य से कोई ज्ञानी नहीं होता, सिर्फ अज्ञान ढंक जाता है, अज्ञान मिटता नहीं। जैसे दीये की बात करने से अंधेरा नहीं मिटता, ऐसे ही ब्रह्म की चर्चा से कोई अंतरज्योति नहीं जग जाती। न तो भोजन की चर्चा से भूख मिटती है; भोजन से मिटती है। और पंडित चर्चा में ही लीन हो गया है। और भूल ही गया है कि भोजन पकाना भी है। पंडित पाकशास्त्रों को ढोता रहता है। हजार पाकशास्त्र रखे हों तो भी एक रूखी-सूखी रोटी से उनका ज्यादा मूल्य नहीं है, कम ही मूल्य है, क्योंकि रूखी-सूखी रोटी पेट भरेगी, मांस-मज्जा बनेगी। संतों की वाणी चाहे उतनी अलंकृत न हो; नहीं है, गोरख की भी वाणी बहुत अलंकृत नहीं है; सीधे-सादे दो टूक शब्द हैं, साफ-सुथरे हैं, आभूषणों से लदे नहीं हैं। शायद पंडित की भाषा ज्यादा परिमार्जित हो, सुसंस्कृत हो। संस्कृत शब्द का अर्थ ही होता है परिमार्जित।
तुम यह जानकर हैरान होओगे कि बुद्ध लोकभाषा में बोले। महावीर लोकभाषा में बोले। गोरख लोकभाषा में बोले। कबीर, नानक, दादू लोकभाषा में बोले। किसी ने संस्कृत का उपयोग नहीं किया। कारण? कारण साफ है। संस्कृत अब सिर्फ पंडितों की भाषा रह गयी थी। अब संस्कृत लोगों के जीवन से संबंधित ही नहीं थी। अब तो पंडित चालबाजी के कारण संस्कृत का उपयोग कर रहा था। चालबाजी क्या है?--उस भाषा का उपयोग करो, जिसको लोग न समझते हों। तुम जब ऐसी भाषा का उपयोग करोगे जिसे लोग नहीं समझते, तो लोगों को कभी पता नहीं चलेगा कि तुम जानते भी हो कि नहीं। तुम ऊलजलूल बकते रहो, तुम व्यर्थ की बकवास करते रहो, और लोग बड़ी श्रद्धा से सुनेंगे। उनकी समझ में ही नहीं आ रहा है। और जब

लोगों के समझ में नहीं आता तो वे सोचते हैंः जरूर कोई गहन-गंभीर बात कही जा रही होगी, इसलिए समझ में नहीं आ रही।
सत्य सीधा-साफ होता है; सीधा, अत्यंत सीधा होता है, एकदम समझ में आ जाता है। सत्य को समझने के लिये बहुत दांव-पेंच नहीं लगाने पड़ते। असत्य बहुत जटिल होता है। तुम देखते हो न, डाक्टर से दवा लिखवाने जाते हो तो वह हिंदी या मराठी में, या अंग्रेजी में नहीं लिखता; वह लैटिन और ग्रीक में लिखता है नाम दवा के। लैटिन और ग्रीक में लिखने का कारण है कि तुम्हारी समझ में नहीं आता। और डाक्टर की लिखावट देखी है? वह ऐसा लिखता है कि दोबारा उसको खुद भी पढ़ना पड़े तो अटक जाये।
मुल्ला नसरुद्दीन अपने गांव में अकेला पढ़ा-लिखा आदमी है। एक ग्रामीण उससे पत्र लिखवाने आया। मुल्ला ने कहा कि नहीं लिख सकूंगा, आज नहीं लिख सकूंगा, कम-से-कम आठ दिन नहीं लिख सकूंगा। मेरे अंगूठे में बहुत दर्द है, पैर के अगूंठे में बहुत दर्द है।
उस आदमी ने कहाः मुल्ला, होश की बातें करो। पैर के अगूंठे की जरूरत ही क्या है? पत्र हाथ से लिखना है।
मुल्ला ने कहाः तुम समझते ही नहीं तो बीच में मत बोलो। लिख तो मैं दूंगा, फिर पढ़ने कौन जायेगा? मेरा लिखा मैं ही पढ़ सकता हूं, और कभी-कभी तो मैं ही अटक जाता हूं। ऐसा भी हुआ एक दिन एक आदमी पत्र लिखवाने आया... ।
अब यह बड़े मजे की बात हुई, पहले पत्र लिख देगा, पत्र जायेगा, फिर दूसरे गांव पढ़ने जायेगा उसे, क्योंकि दूसरा कोई पढ़ नहीं सकता। एक आदमी पत्र लिखवा रहा था। सारा पत्र लिखवाने के बाद... अपनी प्रेयसी को पत्र लिखवा रहा था... लंबा पत्र लिखवाने के बाद उसने कहा कि नसरुद्दीन, अब एक बार पूरा पढ़ दो कि मेरा दिल तृप्त हो जाये कि जो लिखवाना था लिखवा दिया।
नसरुद्दीन ने कहाः यह मुसीबत की बात है। उसने कहाः क्यों क्या हर्जा
है पढ़ने में? नसरुद्दीन ने कहाः पहली तो बात यह है कि पत्र मेरे नाम नहीं लिखा गया है तो मैं कैसे पढ़ सकता हूं? ग्रामीण ने कहाः यह बात तो कानून की है। यह बात जंचती है। हां, ठीक कह रहे हो कि पत्र तो तुम्हारे नाम लिखा ही नहीं है तो तुम पढ़ कैसे सकते हो।
मुल्ला ने कहाः समझे! एक तो पत्र मेरे नाम लिखा नहीं गया है। और फिर हम क्यों फिक्र करें, यह तो उनकी चिंता है जिनके नाम लिखा गया है, अब वे समझें; पढ़ सकें पढ़ें, न पढ़ सकें न पढ़ें।
डाक्टर लिखता है लैटिन और ग्रीक में और वह भी इस तरह से लिखता है कि पढ़ा न जा सके।
मैंने सुना है, एक डाक्टर ने अपने एक मरीज को निमंत्रण भेजा कि मेरी लड़की का विवाह है कल सांझ भोजन पर आमंत्रित हों। उसने पत्र देखा, वह समझा कि कोई प्रस्क्रिप्शन भेजा है डाक्टर ने। वह गया केमिस्ट की दुकान पर और केमिस्ट ने जल्दी से मिक्श्चर भी बनाकर दे दिया। वह दो दिन मिक्श्चर पीया; तब डाक्टर का फोन आया कि भाई तुम आये नहीं, लड़की की शादी भी हो गयी, मैंने पत्र भी भेजा था। तब सारा राज खुला। केमिस्ट भी पढ़े या न पढ़े, जल्दी से मिक्श्चर तो बना ही देता है। वह लैटिन या ग्रीक में लिखने का कारण है; नहीं तो तुम केमिस्ट को जाकर पंद्रह रुपये नहीं चुकाओगे। समझो कि उस पर लिखा हो अजवाइन का सत्त, अब तुम पंद्रह रुपये नहीं चुका सकते। अजवाइन का सत्त, तुम कहोगे चार पैसे का पंद्रह रुपये मांग रहे हो! लेकिन लैटिन में कोई बड़ा ही अपरिचित शब्द लिखा है, पंद्रह नहीं कोई पचास भी मांगे तो चुकाने पड़ेंगे। तुम्हें पता ही नहीं है कि अजवाइन का सत्त है।
संस्कृत उपयोग की जाती रही पंडितों के द्वारा, ताकि लोग मूढ़ रखे जा सकें। ऐसा इसी देश में नहीं हुआ, पोप और पादरी लैटिन और ग्रीक का उपयोग करते रहे हैं--पुरानी भाषाओं का उपयोग, जो मर चुकी हैं, जिनमें अब कोई जीवन नहीं रह गया है, लोग जिन्हें जानते नहीं। संत तो सीधी-साधी बात बोलते हैं, लोकभाषा में बोलते हैं। तुम जो भाषा समझते हो, वही बोलते हैं। अपना अनुभव लोगों तक पहुंचाना है तो वही भाषा बोलनी चाहिए, जो लोग समझते हैं; लेकिन जिनके पास अनुभव नहीं है, पहुंचाने को कुछ है ही नहीं, उनके लिए तो यही उचित है कि वे ऐसी भाषा बोलें कि कोई समझे न। समझ गये तो पकड़े जायेंगे।

पंडित उधार है, बासा है। उसने परमात्मा को स्वयं नहीं देखा है। हां, उसने शास्त्र पढ़े हैं जिनमें परमात्मा की चर्चा है। उसने तर्क किया है, विचार किया है, सोचा है; ध्याया नहीं, अनुभव नहीं किया है। इसलिए विरोध है। विरोध में कोई पंडित की दुश्मनी नहीं है, पंडित पर करुणा है। उसे भी चेताना है, उसे भी जगाना है।
गोरख का वचन हैः
पढ़ि देखि पंडिता, रहि देखि सारं। अपणीं करणीं उतरिबा पारं।।
किसी पंडित से कह रहे हैंः पढ़ि देखि पंडिता। देख लिया पढ़-पढ़ कर, अब जरा करके देख ले।
रहि देखि सारं! अब जरा सार को रहकर भी देख ले। एक बात तुझसे कहे देता हूंः
अपणीं करणीं उतरिबा पारं!
करेगा तो ही पार उतरेगा।
अपणीं करणीं उतरिबा पारं!
ये किताबें डूब जायेंगी। ये कागज की नावें हैं; इनको लेकर सागर में मत उतर जाना। यह मत कहना कि हमने वेद से बनायी है यह नाव। यह काम नहीं आयेगी; यह कागज की नाव है, यह डूब ही जायेगी। यह खुद भी डूबेगी, तुझे भी डुबायेगी। और खतरा यह है कि तू लोगों को समझा रहा है, उन सबको भी डुबायेगी। तू खुद अंधा है और सोचता है दूसरे अंधों को मार्ग दिखा रहा हूं। अंधा-अंधा ठेलिया दोई कूप पड़ंत। वे दोनों कुएं में गिर गये हैं।
पढ़ि देखि पंडिता!
कहते हैंः देख तो चुका तू पढ़-पढ़ कर, मिला क्या, सार क्या पाया? अब रहि देखि सारं। अब हमारी सुन। अब जरा जीवन में उतरने दे। अब जरा जीवन से जुड़ने दे। अब विचार ही विचार मत कर समाधि के संबंध में, क्योंकि समाधि के संबंध में विचार से क्या होगा; अब तो निर्विचार हो, समाधि को उतरने दे! रहि देखि सारं!
अपणीं करणीं उतरिबा पारं!
और करेगा, उससे उतरेगा। जानेगा, उससे उतरेगा। उसी की नाव बनेगी जो पार
ले जायेगी। और दूसरों की नावें काम नहीं आतीं। इस जगत में कोई उधार ज्ञान काम नहीं आता। उधार ज्ञान तो सिर्फ अज्ञान को ढांक लेता है।
बेद कतेब न पांखी वांणी। सब ढंकी तलि आणीं।
गगनि सिषर महि सबद प्रकास्या। तहं बूझै अलष बिनांणी।
गोरख कहते हैंः सत्य का, ब्रह्म का, ठीक-ठीक निर्वचन न वेद कर पाये, न किताबी धर्मों की किताबें कर पायीं--न कुरान, न बाइबिल, न कोई और। कोई वाणी नहीं कर पायी उसका निर्वचन। ये सब तो उसे उल्टे आच्छादन के नीचे ले आये। इन्होंने तो उसे छिपा लिया। इन्हीं किताबों में डूब गया, खो गया सत्य। ये तो उस पर आवरण बन गये हैं। इनके द्वारा सत्य का आविष्कार नहीं होता। इनके द्वारा सत्य का आविष्कार रुकता है, बाधा पड़ती है। वह तो शून्य समाधि में ही जाना सकता है। वहीं बूझो!
तहं बूझै अलख बिनांणी!
जो असली खोजी है ज्ञान का, जो असली विज्ञानी है, वह वहीं खोजता है-- शून्य में, समाधि में।
गोरख कहते हैंः
कहणि सुहेली, रहणि दुहेली, कहणि रहणि बिन थोथी।
पढ्या-गुंण्या सूआ बिलाई खाया, पंडित के हाथि रह गयी पोथी।
कहणि सुहेली! कहना बहुत सरल है। रहणि दुहेली! रहना बहुत कठिन है।
कहणि रहणि बिन थोथी!
और जो तुम कहते हो बिना रहे, बिना जीये, बिना अनुभव से, वह बिल्कुल थोथी बकवास है।
पढ्या-गुंण्या सूआ बिलाई खाया।
तुम क्या सोचते हो कि बिल्ली पढ़े-लिखे सुए को छोड़ देगी, इसीलिए कि राम-राम जप रहा है सुआ? कि छोड़ो भगत जी हैं, कि देखो कैसा राम-राम जप रहे हैं, कैसी राम-राम की चदरिया पहने बैठे हैं! छोड़ो भी, भगत को तो छोड़ो। लेकिन

बिल्ली छोड़ेगी नहीं, बिल्ली जानती है कि जपते रहो राम-राम, पहने रहो चदरिया, इससे क्या फर्क पड़ता है, हो तो तोते ही! बिल्ली छोड़ेगी नहीं।
पढ्या-गुंण्या सूआ बिलाई खाया।
बिल्ली तो पढ़े-लिखे सुए को भी खा जाती है। ऐसे ही मौत तुम्हें खा जायेगी। मौत बिल्ली की तरह आयेगी और तुम पढ़े-लिखे तोते हो; इससे ज्यादा कुछ भी नहीं हो। तुम खाये जाओगे, मौत तुम्हें छोड़ नहीं देगी।
पंडित के हाथ रह गयी पोथी!
और जब बिल्ली हमला करेगी, मौत जब तुम्हारी गर्दन दबायेगी तब हाथ में सिर्फ पोथी रह जायेगी। बिल्कुल थोथी, पंडित के हाथ रह गयी पोथी। कुछ और नहीं रहेगा, सब भूल जायेगा; सब पढ़ा-गुना व्यर्थ हो जायेगा। मौत जब हमला करती है तब तो जो जाना है वही काम आयेगा। जिसने जाना है वह मौत को देखकर हंसेगा।
मंसूर हंसा था जोर से। लोगों ने पूछा कि हम तो तुम्हें मार रहे हैं, तुम हंसते क्यों हो? मंसूर ने कहा कि मैं इसलिए हंसता हूं कि तुम जिसे मार रहे हो वह मैं नहीं हूं; और मैं जो हूं तुम उसे छू भी नहीं सकते, मारना तो बहुत दूर।
नैनं छिदंतिं शस्त्राणि, कृष्ण कहते हैं। न ही शस्त्र छेद सकते हैं उसे। नैनं दहति पावकः! और न आग उसे जला सकती है।
मंसूर ने कहाः इसलिए मैं हंस रहा हूं कि यह भी खूब मजा रहा! तुम कहते
थे कि मारेंगे मंसूर तुम्हें, अब तुम मार किसी और को रहे हो; वह मैं हूं नहीं। तुम मेरा हाथ काट रहे हो, हाथ मैं नहीं हूं। तुमने मेरे पैर काट दिये, पैर मैं नहीं हूं। अब तुम मेरी गर्दन भी काट दोगे, मैं तुमसे कहे जाता हूं कि मैं गर्दन नहीं हूं, मैं तो भीतर बैठा साक्षी हूं, इसको तुम कैसे काटोगे? कोई शस्त्र छेद नहीं सकता और कोई आग जला नहीं सकती।
यह अनुभव की बात है। पढ़ा-लिखा तोता यह नहीं कह सकता। पढ़ा-लिखा तोता तो गिड़गिड़ाने लगता है; भूल जाता है राम-नाम, बिल्ली की स्तुति गाने लगता है-- कि माई छोड़, कि हो गयी भूल, अब आज से तेरी ही पूजा-प्रार्थना करूंगा, कहां के राम-राम में पड़ा रहा!
कथणी कथै सो सिष बोलिये, वेद पढ़ै सो नाती।
रहणी रहै सो गुरु हमारा, हम रहता का साथी।।
कहते हैं गोरखःकथनी कथै सो सिष बोलिये!
जो सिर्फ सुनी-सुनाई बातें कह रहा है वह तो विद्यार्थी है; ज्ञानी नहीं है, ज्यादा से ज्यादा विद्यार्थी है; ठीक है, पढ़ रहा है, लिख रहा है। कथणी कथै सो सिष बोलिये, वेद पढ़ै सो नाती।
और यह कथनी भी अगर उसने किसी गुरु से सुनी हो और बोल रहा हो, तो ही शिष्य है, तो विद्यार्थी का दर्जा है उसका। और अगर यह भी कुछ मरे गुरुओं की, किन्हीं पुरानी कब्रों को खोदकर वेदों में से निकाल लाया हो, तब तो शिष्य भी नहीं है; और भी गया-बीता है, तो और भी नीचे रखो उसको।
वेद पढ़ै सो नाती।
शिष्य तो बेटा है। शिष्य का मतलब कि जो सदगुरु के पास से सुनकर दोहरा रहा है। माना कि उसने अभी स्वयं नहीं जाना है, लेकिन जाननेवाले स्रोत के निकट है; स्रोत से बहुत दूर नहीं है। जैसे कोई गोरख के पास बैठकर सुने और दोहराये, तो गोरख कहते हैं यह विद्यार्थी है, यह मेरा बेटा है। यह आज नहीं कल मुझमें लीन हो जायेगा। स्रोत के पास है, छूट नहीं पायेगा, भाग नहीं पायेगा। चलो अभी दोहराता है दोहराने दो, धीरे-धीरे पकड़ में आ जायेगा। पहुंचा तो पकड़ ही लिया है, जल्दी हाथ भी पकड़ लिया जायेगा। इसकी बुद्धि तो पकड़ में आ गयी है, जल्दी ही इसका भाव भी पकड़ में आ जायेगा; हृदय पर भी हाथ पहुंच जायेंगे।
लेकिन जो वेद को दोहरा रहा हो, किताबों में से पढ़ा हो, सदगुरु के पास
भी न हो, जीवंत गुरु के पास भी न हो, वह तो और भी गया-बीता है। वह तो बेटा भी नहीं; वह तो नाती समझो।
वेद पढ़ै सो नाती।
वह तो और दूर हो गया न! उससे नाता दूर का हो गया।
रहणी रहै सो गुरु हमारा!

और गोरख कहते हैंः जो रह रहा है स्वयं, वह गुरु है। उसे तो हम गुरु-भाव
से पूजते हैं।
रहणी रहै सो गुरु हमारा, हम रहता का साथी।
और हम तो उसके ही साथी हैं, उसके ही संगी हैं--जो जी रहा है सत्य को; जैसा है वैसा ही जी रहा है; जो नग्न सत्य को जी रहा है। फिर चाहे कितनी ही अड़चन हो, कितनी ही बाधा आये, सूली लगे कि सिंहासन मिले, अंतर नहीं उसे--सत्य को जी रहा है। निंदा आये, अपमान आये कि प्रशंसा, सफलता कि विफलता, कोई भेद नहीं पड़ता--जो सत्य को जीये जा रहा है।
हम रहता का साथी... ।
रहता हमरा गुरु बोलिये, हम रहता का चेला।
मन मानै तो संगि फिरै, नहिंतर फिरै अकेला।।
गोरख स्वातंष्य के पक्षपाती हैं। वे कहते हैंः सहज भाव से जो घटे वही करना। अगर गुरु के पास रहने में आनंद आता हो सहज तो साथ रहना और अगर अकेले विचरण करने में आनंद आता हो तो अकेले विचरना, क्योंकि परमात्मा सब जगह मौजूद है। लेकिन सहज आनंद को मत खोना, उसको कसौटी समझना। जहां तुम सहज हो सको, वहीं होने में सार है।
रहता हमरा गुरु बोलिये, हम रहता का चेला।
यही भाव तुम्हारे भीतर रहे कि जो जी रहा है सत्य को वही हमारा गुरु हो। पंडित नहीं, कोई बुद्धपुरुष। बड़ी-बड़ी उपाधियों वाला नहीं, गहरी समाधि वाला।
रहता हमरा गुरु बोलिये, हम रहता का चेला।
यही भाव रहे कि हम उसके ही पास डूब जायें, उसके ही चरणों में--जो जीता
हो सत्य को।
मन मानै तो संगि फिरै... ।
और फिर रस आये साथ रहने में तो गुरु के साथ रहे। क्योंकि गुरु से जो स्वाद मिल गया है वह छूटनेवाला नहीं है।
मन मानै तो संगि फिरै, नहिंतर फिरै अकेला।
कोई फिक्र नहीं है, अकेले घूमो फिर जगत में, एकाकी घूमो, कोई अंतर नहीं पड़ता। एक बार लेकिन किसी मूलस्रोत से स्वाद ले लो। तुम्हारे कंठ में कुछ बूंदें पड़ जायें सत्य की, समाधि की थोड़ी-सी भनक आ जाये। थोड़ी-सी उस बांसुरी की टेर तुम्हें सुनाई पड़ जाये, फिर सब ठीक है। फिर अकेले रहो, सत्संग करो, गुरु के पास रहो कि दूर रहो, सब बराबर है। लेकिन एक बार जलते दीये के पास आना जरूरी है, ताकि तुम्हारी बुझी ज्योति जल जाये। फिर कोई सदा पास रहना आवश्यक भी नहीं है।
मन मानै तो संगि फिरै, नहिंतर फिरै अकेला।
ज्ञान मुक्ति है। ज्ञान स्वतंत्रता है। ज्ञान जीवंत अनुभव है।
पांडित्य थोथी बातें हैं।
गोरख या ज्ञानियों का विरोध पंडितों से इसलिए नहीं है कि कोई दुश्मनी है; बल्कि इसलिए है कि वे खुद भी धोखा खा रहे हैं और दूसरों को भी धोखा दे रहे हैं। अनुकंपा के कारण है, ताकि दूसरे जागें और पंडित भी जागें।

चौथा प्रश्नः एक ओर आप कहते हैं कि जो भी करो उसे समग्रता से करो और दूसरी ओर कहते हैं कि किसी चीज की अति मत करो, मध्य में रहो। क्या इस विरोधाभास को दूर करने की अनुकंपा करेंगे?

आनंद मैत्रेय! विरोधाभास नहीं है। थोड़ा "समग्रता" शब्द पर विचार करो। कुछ और शब्द इस सिलसिले में सोचो--संतुलन, समाधि, समन्वय, सम्यकत्व, समता, संबोधि, समवेत, समग्रता। इन सब का जन्म हुआ है एक छोटी-सी धातु से--"सम"। सम का अर्थ होता है शांत। उसी से समता बनता है, उसी से समन्वय बनता है, उसी से संबोधि, उसी से समाधि। वही सम समग्रता में मौजूद है।
समग्रता अति पर नहीं होती, समग्रता कभी अति नहीं होती; क्योंकि सम अवस्था तो मध्य में ही होती है। तो जब मैं कहता हूं समग्रता से करो, तो मैं यह नहीं कह रहा हूं कि अतिपूर्वक करो। तुम्हें ऐसा ख्याल आ सकता है। तुम्हें लगता है कि जब हम समग्रता से करेंगे तो अति हो जायेगी। अगर अति हो

गयी तो समग्रता से चूक गये। समग्रता से चूकने के दो उपाय हैं--बायें जाओ या दायें जाओ। दोनों ही स्थिति में समग्रता से चूक गये।
अब जैसे कि मैंने कहा कि भोजन समग्रता से करो और अति न हो; इन दोनों में विरोधाभास नहीं है। जो समग्रता से भोजन करेगा, वह ठीक उस वक्त रुक जायेगा जब शरीर कह देगा बस। और शरीर हमेशा मध्य में बस कह देता है। न तो भूख लगी हो तो शरीर कहेगा बस और न तुम अतिशय भरते जाओ तो शरीर चुप रहेगा, नहीं कहेगा बस। अगर तुम भूखे हो, शरीर कहेगा--थोड़ा और। अगर तुमने ज्यादा खाना शुरू कर दिया, शरीर कहेगा--बस अब नहीं, अब और नहीं।
शरीर कभी अति नहीं करता, अति करता है मन। इस बात को समझने की कोशिश करो। इसलिए कोई पशु अति नहीं करता, नहीं तो पशुओं की क्या हालत होती! उनके पास तो कोई उपदेश देनेवाला नहीं है। उनको कोई महात्मा गांधी और अन्य महात्मा इत्यादि तो मिले हुए नहीं हैं कि देखो ज्यादा घास मत खा जाना, कि आज उपवास कर लो, आज एकादशी है। लेकिन कोई पशु तुमने देखा है ज्यादा खाते? जंगल में जाकर जरा गौर करो, कोई पशु तुम्हें दिखाई पड़ता है जिसको तुम कह सको कि यह ज्यादा खा गया है? कोई पशु ऐसा दिखाई पड़ता है जो उपवास कर रहा हो? मन नहीं है तो अति नहीं है। पशु उतना ही लेता है जितना शरीर को जरूरी है; वही लेता है जो जरूरी है। तुम अपनी गाय को छोड़ दो घास से भरे मैदान में, वह वही घास चुन लेती है जो उसके शरीर को रास आता है। बाकी घास छोड़ देती है। तुम बकरी को छोड़ दो जंगल में, वह अपने काम की बात चुन लेती है, अपने काम की पत्तियां चुन लेती है, बाकी सब छोड़ देती है। कौन कह रहा है उसे कि इस पत्ती को मत खा? हरी तो यह भी दिखाई पड़ती है। स्वाद इसमें भी हो सकता है, है ही, कुछ न कुछ स्वाद। लेकिन नहीं; जो उसके शरीर को रास पड़ता है, जो उसकी प्रकृति के अनुकूल है, जो उसकी प्रकृति को सम-अवस्था में रखता है, वही चुन लेती है। यह सहज हो रहा है। मन नहीं है वहां।
मन उपद्रव करता है। मन ही तुम्हें ज्यादा खिला देता है। क्योंकि मन कहता है कि हो जाये एक कचौड़ी और, स्वादिष्ट है। शरीर को सुनो तो पेट कह रहा है कि बस करो, अब कृपा करो, अब ज्यादा हो जायेगा। मगर शरीर की मन सुनने नहीं देता। और तुम्हें अक्सर समझाया गया है कि शरीर तुम्हारा दुश्मन है। शरीर तुम्हारा दुश्मन नहीं, मन तुम्हारा दुश्मन है। और जिन्होंने तुम्हें समझाया है कि शरीर तुम्हारा दुश्मन है, उन्होंने बड़ी गलत बात समझा दी है। उनके कारण मन को तो तुमने मित्र मान लिया है, शरीर को दुश्मन मान लिया है। शरीर तो सहज प्राकृतिक है; मन में हैं सारे विकार, सारे उपद्रव। मन सुनता ही नहीं है। मन कहता है, स्वाद थोड़ा और ले लें, हो जाये थोड़ा और, क्या फर्क पड़ता है, जरा तकलीफ होगी पेट को तो हो लेगी। पेट तो कह रहा है कि बस, लेकिन पेट की तुम सुनते नहीं हो। और तुम्हारे तथाकथित साधु पेट को गाली देते हैं।
समझो मन को! मन अति करवाता है। शरीर तो सदा ठीक समय पर जवाब दे देता है। वह तो एक इंच ऊपर नहीं जाने देगा, नीचे नहीं जाने देगा। लेकिन आदमी का मन बड़ा धोखेबाज है। मैंने अभी सुना है कि गंगा में पूर आया, किसी गांव में प्रांत के मुख्यमंत्री गये। उन्होंने इंजीनियरों से कहा कि बात क्या है, हालत क्या है, खतरे के निशान को पानी छू रहा है! तो मुख्यमंत्री ने कहा कि "भाई, खतरे के निशान को थोड़ा ऊपर क्यों नहीं कर देते? कम-से-कम खतरे का निशान तो न छुए।" जैसे कि खतरे के निशान को ऊंचा कर देने से तुम गंगा को धोखा दे लोगे, कि किसको धोखा दे रहे हो? मगर यही हो रहा है। मन यही कर रहा है। मन ऐसी ही मूढ़तापूर्ण बातें कर रहा है।
और मन तुमसे अति करवा देता है। वह कहता है, खतरे का निशान जरा ऊपर कर दो। मत सुनो शरीर की, शरीर में क्या रखा है, शरीर तो अंधा है, शरीर को बुद्धि क्या है? एक दिन ज्यादा खिला देता है मन, फिर दूसरे दिन तकलीफ होती है तो मन कहता है अब उपवास करो--कि महीने में एक दिन तो उपवास करना ही चाहिए, कि सप्ताह में एक दिन तो उपवास स्वास्थ्य के लिए बहुत अच्छा है। अब उपवास करो। शरीर तब भी कहता है कि भाई भूख लगी है भोजन लो; तब मन कहता है उपवास करो। धीरे-धीरे मन की ये उल्टी-सीधी गतिविधियां शरीर की सूक्ष्म संवेदना को नष्ट कर देती हैं। फिर शरीर कुछ नहीं बोलता। जब उसकी सुनी नहीं

जाती तो धीरे-धीरे मूक हो जाता है। इस मूक शरीर के साथ तुम अतियां कर लेते हो।
मनोवैज्ञानिकों ने प्रयोग किये हैं और बड़े हैरानी के निष्कर्ष हाथ आये हैं। मनोवैज्ञानिकों ने प्रयोग किये हैं कि छोटे बच्चों को अगर भोजन के पास बिठा दिया जाये तो तुम सोचते हो कि वे ज्यादा खा लेंगे। तुम गलत ख्याल में हो, वे ज्यादा नहीं खाते। ज्यादा उनके मां-बाप खिला देते हैं--कि और खाओ, कि खाओ थोड़े तगड़े-तड़ंग होना है, कि थोड़े मस्त तो दिखो, यह क्या हालत है? जरा और खाओ! मां बैठी है छाती पर कि और खाओ, कि थोड़ा और। बच्चा किसी तरह रो रहा है, खा रहा है। तुम देखोगे कई बच्चों को रोते। उसका शरीर कह रहा है कि नहीं। उसका शरीर कह रहा है बाहर चलो, जरा कूदो, उछलो, वृक्षों पर चढ़ो। और उसको खिलाया जा रहा है। डाक्टर तो बता देते हैं कि हर तीन घंटे में बच्चे को दूध पिलाना है। बच्चा पीता ही नहीं है, और वह मुंह फेर-फेर लेता है; मगर मां है कि दूध पिला रही है, क्योंकि तीन घंटे हो गये। ये औसत नियम काम के नहीं हैं। जब बच्चे को भूख लगेगी, वह रोयेगा, वह खुद खबर देगा। घड़ी देखने की कोई जरूरत नहीं है; बच्चे के पास अपने भीतर शरीर की घड़ी है। मगर उसकी घड़ी को तुम खराब किये दे रहो हो। और सब बच्चों को अलग-अलग भूख लगेगी। कोई को चार घंटे में लगेगी, कोई को तीन घंटे में, किसी को दो घंटे में भी लगेगी। अब बड़ी अड़चन हो गयी, एक नियम बना लिया--औसत नियम।
औसत नियम से सावधान रहना। औसत नियम ऐसा होता है जैसे यहां पांच सौ आदमी बैठे हैं। हमने सबकी ऊंचाई निकाल ली और सब की संख्या गिन ली। सब की ऊंचाई जोड़ ली, फिर उसमें पांच सौ का भाग दे दिया। समझो ऊंचाई आयी चार फीट साढ़े तीन इंच--औसत ऊंचाई। अब यह चार फीट साढ़े तीन इंच का कोई भी नहीं होगा यहां, शायद ही कोई हो। क्योंकि इसमें कई छोटे बच्चे हैं जो दो ही फीट के हैं और कोई छह फीट के सज्जन हैं। मगर दोनों को मेल कर दो तो चार-चार फीट औसत ऊंचाई हो गयी। चार फीट का कोई भी नहीं; न तो छह फीट वाला आदमी चार फीट का है न दो फीट वाला बच्चा चार फीट का है। मगर छह फीट वाले एक आदमी और दो फीट वाले बच्चे को जोड़ दिया, आठ फीट हो गये, दो का भाग दे दिया, चार फीट औसत आ गया। अब झंझट हुई, अब बच्चे को खींचो, चार फीट का करो, तब वह औसत होगा! अब छह फीट के आदमी को काटो, या कहो कि जरा पैर सिकोड़ो, कि जरा सिर को अंदर लो। कछुए की तरह अपने अंग अंदर करो, तुम जरा ज्यादा हो।
यूनान में कथा है प्रोक्रेस्टीज की। वह एक सम्राट था। वह बड़ा भयानक सम्राट था। उसके अपने हिसाब थे। बड़ा गणितज्ञ था प्रोक्रेस्टीज। वह गणित से जीता था। उसके घर किसी का मेहमान होना, उससे लोग डरते थे। उसके घर कोई मेहमान नहीं होना चाहता था। क्योंकि उसके पास एक सोने का पलंग था-- बहुमूल्य हीरे-जवाहरातों से जड़ा; उसी पर सुलाता था अपने मेहमानों को। और उसके साथ खतरा यह था कि अगर मेहमान लंबा हो तो वह काट देता उसके हाथ-पैर, क्योंकि पलंग तो कीमती है। पलंग तो बड़ा किया नहीं जा सकता, छोटा किया नहीं जा सकता, इतनी जल्दी हो भी नहीं सकता। मगर मेहमान को तो छोटा-बड़ा किया जा सकता है। और अगर कोई छोटा होता पलंग से तो उसके दो पहलवान आकर उसको खींच-खींच कर लंबा करने की कोशिश करते! उसके घर कोई ठहरता नहीं था।
यह कहानी अर्थपूर्ण है। मगर यह सभी गणितज्ञों की कहानी है। सब बच्चों
का भाग दे दिया, किसी को चार घंटे में भूख लगती है, किसी को तीन घंटे में, किसी को दो घंटे में, किसी को ढाई घंटे में, किसी को पौने तीन घंटे में। सब का भाग दे दिया, हिसाब निकाला, तीन घंटे में सबको भूख लगती है। अब बस तीन घंटे से बैठे हैं। बैठे हैं प्रोक्रेस्टीज! अब वह घड़ी देख रहे हैं कि तीन घंटे हो जायें, दूध पिलाओ। उसको दो घंटे में लगती है, वह दो घंटे में रो रहा है, मगर अभी घड़ी में तीन घंटे नहीं हुए, रोते रहो बच्चू! तुम धीरे-धीरे उसके शरीर की सहज-संवेदना को नष्ट कर दोगे। धीरे-धीरे वह भी घड़ी देखने लगेगा कि कब भूख लगती है, क्योंकि घड़ी से भूख लगती है।
तुम्हारी हालत यही हो गयी है। अगर तुम्हें बारह बजे रोज भोजन मिलता है, तुम देखते हो घड़ी में बारह बज गये कि भूख लग गयी; भूख लगी हो कि न लगी हो। हो सकता है, घड़ी रात बंद हो गयी हो। बारह उसमें बजे हों रात-भर से। अभी ग्यारह ही बजे हों, मगर घड़ी में बारह बजे देखकर एकदम भूख लग आती है। यह भूख झूठी है। इस झूठी भूख को सुनकर तुम जो भोजन कर रहे हो वह शरीर के साथ

अत्याचार है। भूख तो लगेगी, उसको घड़ी देखने की जरूरत नहीं है; शरीर की अपनी भीतरी घड़ी है।
वैज्ञानिकों ने इस बात की खोज की है कि शरीर घड़ी से चल रहा है। उसी हिसाब से तो स्त्रियों को ठीक अट्ठाईस दिन में मासिक धर्म आ जाता है। शरीर के भीतर अपनी घड़ी है। उसी के अनुसार तुम्हें ठीक वक्त पर भूख लग जाती है। उसी के अनुसार तुम्हें ठीक वक्त पर नींद आ जाती है। उसी के अनुसार इशारे मिल जाते हैं कि पेट भर गया, बस अब रुक जाओ। तुम अगर शरीर की मानकर चलो तो कभी अति नहीं होगी। न तुम ज्यादा खाओगे, न तुम कम खाओगे। और समग्रता होगी, आनंद होगा। तुम जितना भी खाओगे उसमें पूरा आनंद होगा, तुम पूरे डूबकर उस स्वाद को लोगे, क्योंकि स्वाद भी परमात्मा है। अन्नं ब्रह्म! उसके साथ भी वही समादर, वही पूज्यभाव, वही पूजा जो मंदिर में होती है, अन्न के साथ भी होनी चाहिए, भोजन के साथ भी होनी चाहिए, जीवन की सारी प्रक्रियाओं में होनी चाहिए।
जब मैं तुम से कहता हूं कि समग्रता से जीयो तो मैं यह नहीं कह रहा हूं
कि अति कर जाओ, मैं यही कह रहा हूं कि अगर समग्रता से जीना है तो सम को ध्यान में रखना होगा। और सम अनति है, मध्य है।
इसलिए समग्रता में जीना और अति न करना इसमें कोई भी विरोध नहीं है। ये
एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

पांचवां प्रश्नः विरह के संबंध में कुछ कहें।

विरह के संबंध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता; विरह को अनुभव किया जा सकता है। क्योंकि विरह शब्दों में नहीं आता, आंसुओं में आता है। और विरह बोलता नहीं, मौन है, मूक है। विरह रोता है, विरह जागता है; विरह बोलता नहीं। विरह के संबंध में कुछ भी कहा नहीं जा सकता, लेकिन जिसने भी प्रेम को जाना है वह विरह की अनुभूति से गुजरने लगेगा। तुम प्रेम को जानो, विरह तो उसके साथ आयेगा। जितना गहन प्रेम होगा उतनी ही विरह-अवस्था गहरी हो जायेगी। विरह का अर्थ यह होता है कि हमारा जो वास्तविक स्वरूप है, वही हम से चूक गया है, वही हमें नहीं मिल रहा है। जो हमारा केंद्र है वही हम से छिटक गया है, और हम परिधि पर घूम रहे हैं कोल्हू के बैल की तरह। हमें अपनी आत्मा का ही अनुभव नहीं हो रहा है। हम देखते तो हैं पदार्थ को, लेकिन परमात्मा हमें दिखाई नहीं पड़ रहा है। और वही मालिक है। मालिक खो गया है, नौकर-चाकर दिखाई पड़ रहे हैं। मंदिर की दीवालें समझ में आ रही हैं, मंदिर की मूर्ति पहचान में नहीं आती। लेकिन यह तो प्रेम जगेगा तब, तभी यह प्र्रतीति होनी शुरू होगी। प्रेम की पहली प्रतीति विरह है और प्रेम की अंतिम प्रतीति मिलन है। प्रेम पहले पीड़ा की तरह शुरू होता है और आनंद की तरह पूर्ण होता है। विरह होगा तो खोज शुरू होती है। विरह होगा तो मिलन की अभीप्सा जगती है। विरह का अर्थ है हमें जैसे होना चाहिए हम वैसे नहीं है; कुछ चूका-चूका है, कुछ खाली-खाली है।
इसे देखो, हर एक व्यक्त्ति खाली-खाली है। कौन है यहां भरा हुआ। कभी- कभी कोई गोरख, कोई कबीर, कोई नानक भरा हुआ होता है, बाकी लोग बिल्कुल खाली- खाली हैं--खाली बर्तन। इसलिए तो खूब आवाज कर रहे हैं। खाली बर्तन को जैसे याद आ जाये भरेपन की। खाली बर्तन जैसे भरे बर्तन को देखकर इस अभीप्सा से भर जाए कि मैं कब भरूंगा! और बिना भरे कैसे शांति होगी, कैसे आनंद होगा? इस भरेपन की आकांक्षा से विरह का जन्म होता है।

वेदना मेरी अधर तक आ गयी, कुछ कह न पायी!
कट गये हैं पंख, पंछी गिर गया नभ से धरा पर
कसकते हैं घाव, फिर भी कुछ नहीं लाया गिरा पर
तुम बताओ, क्या मरण की वेदना वरदान बनती
या अधूरी साध निश्च्छल प्यार का अभिमान बनती रागिनी खुल कर मलय में हंस गयी, कुछ कह न पायी। वेदना मेरी अधर तक आ गयी, कुछ कह न पायी।
बज उठे हैं तार, कंपित राग हंसते मुग्ध मन से

खोल गोपन भाव रखती सामने भोले नयन से
लाज का घूंघट हटाकर झांकते प्यारे सपन-से जो छिपे थे विस्मरण के कफन में बिखरे रुदन से प्राण की कोकिल सिहर कर रह गयी, कुछ कह न पायी वेदना मेरी अधर तक आ गयी, कुछ कह न पायी।
पर नशीले नयन-नभ में अश्रुओं के घन घुमड़ते।
साधना की सेज पर ये रात-दिन दुख-सुख विहंसते।
कल्पनाएं मिट गयीं, पर आह भर पायी कभी ना
लुट गया सर्वस्व, फिर भी सांस कह पायी कभी ना
भोर की सुकुमार कलिका खिल गयी कुछ कह न पायी!
वेदना मेरी अधर तक आ गयी, कुछ कह न पायी!
विरह की वेदना बड़ी मौन वेदना है। और मौन होती है तभी तो गहरी हो पाती है। बोलने से तो बात उथली हो जाती है। न कहो तो बड़ी कीमती है; कह दो, दो कौड़ी की हो गयी। कहते हैं न, बंधी मुट्ठी लाख की और खुली तो खाक की। विरह चुपचुप रोता है, गुपचुप रोता है।
प्रार्थना बतानी नहीं होती। उसका कोई प्रदर्शन नहीं करना होता। उसकी कोई डुंडी नहीं पीटनी होती। इसलिए मंदिरों में जहां तुम घंटे बजाकर, शोरगुल मचाकर प्रार्थना शुरू कर देते हो, वहां विरह नहीं है; वहां सिर्फ एक आयोजन है, सिर्फ एक औपचारिकता निभा रहे हो। और तुमने ख्याल किया, अगर दर्शक मौजूद हों मंदिर में तो प्रार्थना करनेवाला बड़ी देर तक प्रार्थना करता है, खूब जोर-जोर से प्रार्थना करता है। मंजीरे पीटता है, ढोल पीटता है। अगर कोई न हो, प्रार्थना करनेवाला अकेला हो, जल्दी-जल्दी करके, कह-सुनाकर किसी तरह पूरा करके भाग खड़ा होता है।
तुम प्रार्थना परमात्मा से कर रहे हो कि देखनेवालों को, कि दिखावे के लिए? तुम नाच रहे हो उसके सामने, या लोगों के सामने? अगर तुम्हारे मन में जरा भी रस है कि लोगों को पता चल जाये कि देखो मैं कैसी प्रार्थना कर रहा हूं, कैसी गहरी भक्त्ति में उतर रहा हूं, तो तुम प्रार्थना परमात्मा के सामने नहीं कर रहे हो, तुम तमाशा कर रहे हो। तुम बाजार में खड़े हो। और तुम अहंकार को ही भर रहे हो। विरह तो चुप-चुप रोता है, गुप-चुप रोता है। और जितना गुप-चुप रोये उतना ही गहरा और दूरगामी उसकी पहुंच होती है।

चांद तो घर आ गया है, और तुम जाने कहां हो?
एक दीपक ने दसों दीपक जलाये,
एक दूरी से विहग घर लौट आये;
मैं स्वयं को एक मेला लग रही हूं,
आंख में सुकुमार सपने डगमगाये;
प्राण यह घबरा गया है, और तुम जाने कहां हो? चांद तो घर आ गया है, और तुम जाने कहां हो? रात-रानी गंध के स्वर फूंकती है,
प्राण में उन्मन पिकी-सी कूकती है;
क्या कहूं मैंने हृदय पाया अजब है, जिंदगी हर बार यूं ही चूकती है;
मधु मुझे नहला गया है, और तुम जाने कहां हो? चांद तो घर आ गया है, और तुम जाने कहां हो? कंठ में संगीत बैठा बुदबुदाता,
ओंठ पर आता न, पीछे लौट जाता;
पायलों में एक कंपन-सा विलय है,
आरती में दीप रह-रह झिलमिलाता;
रूप रस बरसा गया है, और तुम जाने कहां हो?
चांद तो घर आ गया है, और तुम जाने कहां हो?
परमात्मा की तलाश ऐसी उठती है जब हृदय में, जैसे कोई प्रेयसी प्रेमी
को पुकारे कि सावन आ गया, कि मेघ घिर गये, कि कोयलें पुकारने लगीं, कि मोर नाच उठे--और तुम जाने कहां हो? ... कि सब तरफ फूल भर गये, कि सब तरफ झूले तन गये, और सब तरफ राग-रंग उठ आया--और तुम जाने कहां हो? और--चांद तो घर आ गया

है और तुम जाने कहां हो? जब किसी को ऐसा अभाव लगने लगता है परमात्मा का भीतर, तो विरह उत्पन्न होता है।
विरह अनुभूति है। इसकी कोई व्याख्या नहीं हो सकती। जानो तो जानो, जीयो तो जानो। विरह कोई सिद्धांत नहीं है। समझने-समझाने का कोई उपाय नहीं है। और कठिनाई यह हो गयी है कि हमारी आंखों के आंसू सूख गये हैं, और हमारा हृदय प्रेम से बिल्कुल खाली हो गया है। हमें सिखाया गया है अप्रेम। हमें दीक्षा दी गयी है कठोर होने की। हमें कहा गया है जिंदगी संघर्ष है; इसमें जितने कठोर होओगे, जितने पाषाणवत, उतने ही सफल हो सकोगे। हमें सब तरफ से यही सुझाया गया है कि यहां लोगों के सिरों की सीढ़ियां बनानी हैं, तो ही महत्वाकांक्षा के शिखरों तक पहुंच सकोगे। हृदय को करो कठोर और बढ़ जाओ। फिर दूसरों को मिटाना पड़े तो मिटाओ। दूसरों की लाशें बिछानी पड़ें तो बिछाओ।
यह पूरा का पूरा समाज सदियों से हिंसा से जी रहा है; अहिंसा की तो सब बकवास है, बातचीत है। यहां अहिंसक भी अहिंसक नहीं है; यहां अहिंसक भी छिपा हुआ हिंसक है। यहां अहिंसा के पीछे भी सब तरह की हिंसा का आयोजन है। यहां अहिंसा भी लड़ने का एक उपाय है। तुम जरा मजा देखो! अहिंसा भी लड़ने का एक उपाय है! महात्मा गांधी की इसलिए प्रशंसा की जाती है कि उन्होंने अहिंसा को अस्त्र बना दिया, लड़ने का एक उपाय बना दिया। प्रशंसा नहीं होनी चाहिए; इसके कारण ही निंदा होनी चाहिए। अहिंसा को भी अस्त्र बना दिया! कुछ तो छोड़ देते, जो अस्त्र न बनता।
तुमने प्रेम की भी तलवार ढाल ली। तुमने शांति के भी छुरे बना लिये। अहिंसा का भी अस्त्र! अहिंसा को भी लड़ने का एक ढंग बना लिया। मगर लड़ाई जारी रही। लड़ने में हिंसा है, तो अहिंसा कैसे लड़ने का साधन हो सकती है? तो अहिंसा नाम ही नाम होगी; भीतर तो हिंसा ही हिंसा होगी। यह कोई अहिंसा नहीं है। लोग सोचते हैं कि महात्मा गांधी ने बुद्ध और महावीर के आगे कदम उठा दिया। गलत बात है। बुद्ध और महावीर की बड़ी क्रांति पर पानी फेर दिया। अहिंसा को भी लड़ने की विधि बना ली; जैसे कि लड़ने की विधि का ही मूल्य है जगत में। सब चीज लड़ने की विधि है--प्रेम भी लड़ने का ही एक उपाय है। प्रेम भी करो तो इसलिए ताकि जीत सको। अहिंसा भी इसीलिए ताकि दूसरे को दबा सको।
अब एक आदमी अगर तुम्हारे घर के सामने उपवास करके बैठ जाता है कि मैं
मर जाऊंगा अगर मेरी न मानी, तो तुम सोचते हो यह अहिंसा है? अगर मेरी न मानी तो मैं मर जाऊंगा! यह तो हिंसा है, यह तो सीधी धमकी है। यह तो ब्लैकमेल है। यह आदमी तो साफ धमकी दे रहा है कि मैं मर जाऊंगा। यह तुम्हारी मनुष्यता को लज्जित करने की कोशिश कर रहा है। यह कह रहा हैः याद रखो, जिंदगी-भर फिर पछताओगे; तुमने ही मुझे मारा।
इसी पूना में यह घटना घटी। महात्मा गांधी ने उपवास किया डाक्टर अंबेदकर के विरोध में। क्योंकि डाक्टर अंबेदकर चाहते थे कि शूद्रों को, हरिजनों को अलग मताधिकार प्राप्त हो जाये। काश, डाक्टर अंबेदकर जीत गये होते तो जो बदतमीजी सारे देश में हो रही है वह नहीं होती। अंबेदकर ठीक कहते थे कि जिन हिंदुओं ने इतने दिन तक शूद्रों के साथ अमानवीय व्यवहार किया, उनके साथ हम क्यों रहें? क्या प्रयोजन है? जिनके मंदिरों में हम प्रविष्ट नहीं हो सकते, जिनके कुओं से हम पानी नहीं पी सकते, जिनके साथ हम उठ-बैठ नहीं सकते, जिन पर हमारी छाया पड़ जाये तो जो अपवित्र हो जाते हैं-- उनके साथ हमारे होने का अर्थ क्या है? उन्होंने तो हमें त्याग ही दिया है, हम क्यों उन्हें पकड़े रहें?
यह बात इतनी सीधी-साफ है, इसमें दो मत नहीं हो सकते। लेकिन महात्मा गांधी ने उपवास कर दिया। वे अहिंसक थे, उन्होंने अहिंसा का युद्ध छेड़ दिया! उन्होंने उपवास कर दिया कि मैं मर जाऊंगा, अनशन कर दूंगा। यह तो बड़ी संघातक हानि हो जायेगी हिंदुओं की। हरिजन तो हिंदू हैं और हिंदू ही रहेंगे। उनका लंबा उपवास, उनका गिरता स्वास्थ्य, अंबेदकर को अंततः झुक जाना पड़ा। अंबेदकर राजी हो गये कि ठीक है, मत दें अलग मताधिकार। और इसको गांधीवादी इतिहासज्ञ लिखते हैं--अहिंसा की विजय! अब यह बड़ी हैरानी की बात है इसमें अहिंसक कौन है? अंबेदकर अहिंसक है। यह देखकर कि गांधी मर न

जायें, वह अपनी जिद छोड़े। इसमें गांधी हिंसक हैं। उन्होंने अंबेदकर को मजबूर किया हिंसा की धमकी देकर कि मैं मर जाऊंगा।
इसको थोड़ा समझना, अगर तुम दूसरे को मारने की धमकी दो तो यह हिंसा, और खुद को मारने की धमकी दो तो यह अहिंसा; इसमें भेद कहां है? एक आदमी तुम्हारी छाती पर छुरा रख लेता है और कहता है निकालो जेब में जो कुछ हो--यह हिंसा। और एक आदमी अपनी छाती पर छुरा रख लेता है वह कहता है निकालो जो कुछ जेब में हो, अन्यथा मैं मार लूंगा छुरा। तुम सोचने लगते हो कि दो रुपट्टी जेब में हैं, इसके पीछे इस आदमी का मरना! भला-चंगा आदमी है, एक जीवन का खो जाना... तुम दो रुपये निकालकर दे दिये कि भइया, तू ले ले, और जा। दो रुपये के पीछे जान मत दे।
इसमें कौन अहिंसक है? मैं तुमसे कहता हूंः डाक्टर अंबेदकर अहिंसक हैं, गांधी नहीं। मगर कौन इसे देखे, कैसे इसे समझा जाये? इसमें लगता ऐसे है, अहिंसा की विजय हो गयी; अहिंसा हार गयी, इसमें हिंसा की विजय हो गयी। गांधी हिंसक व्यवहार कर रहे हैं। जो तर्क नहीं दे सकता, वह इस तरह के व्यवहार करता है।
स्त्रियां सदा से यह करती रही हैं घर में। तुम्हें मालूम है? स्त्री पति को नहीं मारती, खुद को पीट लेती है; मगर वह कोई अहिंसा है? पति को मार नहीं सकती, क्योंकि पति परमात्मा है। पतियों ने ही ऐसा समझाया है कि पति परमात्मा है। पति को तो मार नहीं सकती, अब क्या करे? और मारने का भाव उठ रहा है, पिटाई करने की इच्छा हो रही है। और पति को मार नहीं सकती अपने को पीट लेती है या अपने बच्चों को पीट देती है। अब बच्चे को कुछ पता ही नहीं है, वह बेचारा अपना हिसाब-किताब कर रहा था बैठा। उसकी पिटाई क्यों हो रही है, उसको कुछ समझ में ही नहीं आ रहा। यह अहिंसक पिटाई हो रही है! यह पति का परिपूरक है। ये पति पीटे जा रहे हैं, प्रतीकवत। यह उन्हीं का बेटा है, आधा तो कम-से-कम है ही पति, कर दो इसकी पिटाई। अगर बेटा न मिले तो पत्नी खुद को मार लेगी।
पुरुष को गुस्सा आ जाये तो हत्या कर देता है; स्त्री को गुस्सा आ जाये
तो दवाई की गोलियां खाकर, नींद की गोलियां खाकर सो जाती है। और पुरुष को गुस्सा आ जाये तो हिंसा करता है, हत्या करता है; स्त्री को क्रोध आ जाये तो आत्महत्या करती है। मगर ये दोनों ही हिंसाएं हैं; एक स्त्रैण हिंसा है, एक पुरुषगत हिंसा है।
गांधी की स्त्रैण हिंसा को अहिंसा कहने का कोई कारण नहीं है। सिर्फ स्त्रैण हिंसा है, सिर्फ कमजोर की हिंसा है। एक ताकतवर की हिंसा, एक कमजोर की हिंसा; मगर इसमें अहिंसा कोई भी नहीं है। बुद्ध और महावीर की अहिंसा का राज कुछ और ही है। लेकिन हमने तो अहिंसा का भी अस्त्र बना लिया। यह समाज हिंसा से भरा है। यह प्रत्येक को कठोर होने की शिक्षा देता है--पाषाणवत हो जाओ। हृदय को सुखा लो। क्योंकि हृदय अगर भीगा रहा, गीला रहा, तो तुम जगत में जीत न पाओगे। आंसुओं को सुखा लो, क्योंकि आंसू नामर्दगी है; मर्द कहीं रोते हैं? स्त्रैण मत बनो!
तुम्हारे आंसू सूख गये, तुम्हारा प्रेम सूख गया! अब तुम जी रहे हो सिर्फ खोपड़ी में, तुम्हारे हृदय में धड़कन नहीं होती। इसलिए तुम्हें विरह का कोई अनुभव नहीं हो सकता है। विरह के लिए पहले प्रेम का अनुभव जरूरी है। विरह के लिए थोड़ा अपने हृदय में उतरो। फिर से अपने हृदय को गूंजने दो। फिर से देखो फूलों को, पत्तों को, चांद-तारों को, लोगों को। फिर से छोटे बच्चे की तरह अपने भाव को गति दो, गतिमान करो। हटा दो पत्थर बीच में पाषाणता के, कठोरता के, महत्वाकांक्षा के, हिंसा के, और फिर से आंखों को गीली करो। फिर से रोना सीखो।
कभी किसी गुलाब के फूल को खिला देखकर रोये हो? नहीं रोये, तो गलत बात है। गुलाब का फूल खिला और तुम रोये भी नहीं! तुम इतना भी न कर सके कि दो आंसू टपकाते आनंद के! कि कोयल पुकारी है और तुम रोये हो? कि पपीहे ने पी पुकारा, पिया को पुकारा, तुम्हारे भीतर कोई पुकार नहीं उठती! तुम ऐसे ही चले जाते हो बहरे! संगीत कोई छेड़ देता है, रोये हो?
कल एक छोटी-सी संन्यासिनी, जरा-सी लड़की शक्तिपात के लिए आयी। बार-बार लिख रही थी कि मेरे सिर पर भी हाथ रखें, मेरी भी शक्ति को जगायें। देखती थी,

और संन्यासी आते हैं, उनके सिर पर मैं हाथ रखता हूं; उनके भीतर ऊर्जा का प्रवाह होता है। छोटी बच्ची है, अभी तो ध्यान भी उसने किया नहीं है। अभी तो मां-बाप ने संन्यास लिया, तो उसने भी संन्यास ले लिया है। लेकिन उसके भीतर भाव की तरंग थी तो मैंने कहा ठीक है, तू आ। और मैं भी चकित हुआ, जब उसकी ऊर्जा प्रवाहित होने लगी। पास में ही मनीषा बैठी थी, मनीषा तो इतनी आनंद-विभोर हो गयी उस बच्ची की ऊर्जा को प्रवाहित होते देखकर कि रोने लगी, अपने आंसू नहीं रोक पायी। वे आनंद के आंसू हैं। इस छोटी-सी बच्ची में जो घट रहा है, एक कमल खिल रहा है। इस कमल को खिलते देखकर तुम आनंद से रोओगे नहीं, तुम्हारी आंखें गीली नहीं हो जायेंगी?
आकाश में उड़ते पक्षी को देखकर तुम्हें अपने भीतर मुक्त होने की कामना नहीं जगती? पिंजड़े में बंद पक्षी को देखकर तुम्हें अपनी स्थिति की याद नहीं आती? किसी रूखे-सूखे वृक्ष को देखकर तुम्हें अपना बोध नहीं होता कि ऐसा ही मैं हो गया हूं। तुम कभी अपने लिए रोये हो; दूसरों के लिए रोये हो? तुम्हारे भीतर कभी प्रेम को तुमने बहाव दिया है, प्रवाह दिया है? ... तो तुम विरह समझ सकोगे।
प्रेम को जगाओ। और मैं जानता हूं कि तुम परमात्मा के प्रेम में एकदम नहीं पड़ सकते। तुमने अभी पृथ्वी का प्रेम भी नहीं जाना, तुम स्वर्ग का प्रेम कैसे जान पाओगे? इसलिए मैं निरंतर कह रहा हूं कि मेरा संदेश प्रेम का है। पृथ्वी के प्रेम को तो जानो, तो फिर वही प्रेम तुम्हें परमात्मा के प्रेम की तरफ ले चलेगा। अभी तो तुमने प्रेम को जाना ही नहीं। पृथ्वी का प्रेम नहीं जाना, किसी स्त्री का प्रेम नहीं जाना, किसी पुरुष का प्रेम नहीं जाना, किसी मित्र का प्रेम नहीं जाना; प्रेम से वंचित हो तुम, तुम कैसे परमात्मा का प्रेम जानोगे? और अक्सर यह भ्रांति प्रचलित है कि इस संसार में अगर प्रेम किया तो परमात्मा से वंचित रह जाओगे। न मालूम किन नासमझों ने यह बात तुम्हें समझाई है! तुमने अगर इस संसार में प्रेम नहीं किया तो तुम परमात्मा के प्रेम में कभी पड़ोगे ही नहीं। जो उथले-उथले नहीं तैरा वह सागर में कैसे तैरेगा? जो मानवीय संबंधों के छोटे-छोटे नाते- रिश्तों में नहीं डूबा, वह उस परम रिश्ते में कैसे डूबेगा? वह तो बड़ा गहरा सागर है! तैरना तो किनारे पर सीखना होता है, जहां पानी उथला हो, ताकि डूबो भी तो मर न जाओ, जहां कि डूब न सको। हां, तैरना आ जाये फिर जाओ, फिर दूर-दूर सागर तैरो। फिर कोई अंतर नहीं पड़ता। नीचे कितना पानी गहरा है, तैरनेवाले को कोई अंतर नहीं पड़ता। मील-भर गहरा हो कि दस मील गहरा हो, कोई अंतर नहीं पड़ता। तैरनेवाला तो तैरना जानता है, बात समाप्त हो गयी। लेकिन न तैरनेवाले को अंतर पड़ता है, पानी उथला है कि गहरा है। गहरा डुबा देगा। उथले में सीखना होता है।
मेरे देखे, मेरे लेखे--संसार परमात्मा का उथला रूप है। यह उसका किनारा है। संसार परमात्मा का किनारा है। इस किनारे पर थोड़ा तैरो, थोड़ा प्रेम करो। इसी प्रेम से तुम भीगोगे, आर्द्र होओगे, गीले होओगे। यही प्रेम तुम्हें स्वाद देगा, यद्यपि यह प्रेम तुम्हें पूरा तृप्त नहीं करेगा। यही इस प्रेम की खूबी है, यह तुम्हें स्वाद देता है लेकिन तृप्त नहीं करता। यह तुम्हें झलक देता है, लेकिन भूख नहीं भरती, पेट नहीं भरता। वस्तुतः इसकी झलक के कारण तुम्हें पहली दफा भूख पैदा होती है। तुम्हें अनुभव आता है कि ऐसा भी हो सकता है।
एक स्त्री और एक पुरुष का मिलन अत्यंत गहन प्रेम में क्षण-भर का ही होता है, लेकिन उस क्षण-भर में कोई झरोखा खुलता है। उस झरोखे से समय मिट जाता है, काल मिट जाता है, दूरियां मिट जाती हैं। मैं-तू का भाव मिट जाता है। क्षण भर को! मगर उस क्षण-भर में ही वर्षा हो जाती है एक अपूर्व शाश्वत आनंद की! फिर क्षण-भर के बाद बड़ी अंधेरी रात है। फिर विछोह है और बड़ी पीड़ा है। पहले से ज्यादा पीड़ा! क्योंकि पहले तो पता न था, इस आनंद का यह झरोखा खुला न था। बंद कमरे में रहे थे, बंद कमरा ही जाना था। तुलना के लिए कोई उपाय न था। अब तो खुला हुआ आकाश देख लिया, आकाश के तारे देख लिये, अब तो दूर-दूर विस्तीर्ण नीलिमा देख ली आकाश की। आकाश में उड़ते पक्षी देख लिये। झरोखा बंद हो गया, लेकिन अब उसकी याद सताती है। अब यह घर तुम्हें ज्यादा

दिन कैद में नहीं रख सकेगा; आज नहीं कल, तुम पंख पसारोगे। तुम उस झरोखे से उड़ जाओगे।
मनुष्यों का प्रेम, पृथ्वी का प्रेम, झरोखा खोलता है परमात्मा का। और दोहरी घटना घटती है सामान्य प्रेम मेंः एक तरफ आनंद के क्षण आते हैं, दूसरी तरफ दुख की, विषाद की घड़ियां आती हैं। आनंद कहता है ऐसा ही सदा के लिए हो जाये, यह क्षण शाश्वत हो जाये। मगर कोई मानवीय संबंध शाश्वत नहीं हो सकता, क्षण-भंगुर ही होता है। फिर पीछे विषाद आता है। तभी तो आदमी समाधि की तलाश में निकलता है; उस परम प्यारे की तलाश में निकलता है, जिससे आलिंगन एक बार हुआ तो हुआ; जिससे मिलन हुआ तो हुआ, सदा के लिये हो गया।
मगर जिसने घूंट-भर शराब न पी, वह मधुशाला की तलाश में क्यों निकलेगा?
इस पृथ्वी की शराब को घूंट-भर शराब समझो, ताकि तुम परमात्मा की मधुशाला में जाने के लिए आतुर होने लगो, दीवाने होने लगो। तो तुम्हें प्रेम समझ में आये, विरह समझ में आये, और किसी दिन सौभाग्य की घड़ी में मिलन भी समझ में आये। पर शब्दों से समझने का उपाय नहीं।

छठवां प्रश्नः गोरखनाथ की मूल शिक्षा क्या है?

बड़ी छोटी, संक्षिप्त--
हंसिबा खेलिबा रहिबा रंग। काम क्रोध न करिबा संग।
हंसिबा खेलिबा गाइबा गीत। दृढ़ करि राखी अपना चीत।
यही मेरी शिक्षा भी हैः हंसिबा खेलिबा रहिबा रंग।
रंग से रहो! मस्ती में, मौज में, आनंद में। इतना परमात्मा ने दिया है, नाचो, गुनगुनाओ, गाओ! धन्यवाद का गीत उठना चाहिए तुम्हारे हृदय से; वही प्रार्थना है।
हंसिबा खेलिबा रहिबा रंग।
हंसो। अगर न हंस सको तो समझना तुम कभी धार्मिक न हो सकोगे।
तुम्हारे तथाकथित साधु-संत तो हंसी भूल कर बैठे हैं। हंस ही नहीं सकते, हंसने में गुनाह है, पाप है। इसलिए तुम अपने साधु-संतों के साथ ज्यादा देर नहीं रह सकते। बस गये, जल्दी से पैर छुए, नमस्कार किए, चले। चौबीस घंटे रह जाओ तो तुम्हें कठिनाई पता चले। तुम्हारी भी हंसी छिन जाये। साधु-संतों के पास जाकर लोग गंभीर हो जाते हैं। साधु-संतों के पास जाकर लोग अकड़ जाते हैं--रूखे हो जाते हैं, गंभीर, अति गंभीर! हंसी तो गुनाह मालूम होगी।
और सुनो, ये परम साधु गोरख क्या कहते हैंः हंसिबा खेलिबा... ! हंसो और खेलो। जीवन को अभिनय से ज्यादा मत समझो, खेल समझो, लीला समझो।
हंसिबा खेलिबा रहिबा रंग!
और ऐसे रहो, रंग से रहो। मौज तुम्हारा जीवन हो, मौज तुम्हारी शैली हो।
काम क्रोध न करिबा संग।
और तभी तुम पाओगे काम-क्रोध अपने से छूटने लगे, उन्होंने तुम्हारा संग छोड़ दिया। छोड़ना भी न पड़ेगा। क्योंकि तुम्हारी सारी ऊर्जा हंसने में, खेलने में, गीत गाने में, प्रार्थना में, मस्ती में, नाचने में लग गयी; वही ऊर्जा काम-क्रोध में लगती थी, अब फुर्सत कहां है? जिसका धन हीरे-जवाहरात खरीदने लगा, उसका धन अब कूड़ा-करकट तो नहीं खरीदेगा! अब तुम्हारी ऊर्जा का आयाम बदला।
हंसिबा खेलिबा रहिबा रंग। काम-क्रोध न करिबा संग।
हंसिबा खेलिबा गाइबा गीत।
उठने दो गीत! गीत तुम्हारी श्वास-श्वास में होना चाहिए तो ही तुम धार्मिक हो पाओगे। धर्म काव्य है, महाकाव्य है। धर्म गद्य नहीं है, पद्य है। धर्म जीवन को गाने की कला है। धर्म संगीत है और नृत्य।
दृढ़ करि राखी अपना चीत।
गाओ गीत और गीत में अपने चित्त को दृढ़ हो जाने दो, जम जाने दो, लग जाने
दो बैठक--और सब हो जायेगा। शेष सब अपने से हो जायेगा। शेष परमात्मा कर लेगा, तुम इतना करो।
सबदहिं ताला सबदहिं कूंजी, सबदहिं सबद जगाया।

सबदहिं सबद सूपरचा हूआ, सबदहिं सबद समाया।
उसी महासंगीत से सब पैदा हुआ है। परमात्मा परमध्वनि है--ओंकार, एक ओंकार सतनाम। ओम का नाद परमात्मा। सबदहिं ताला सबदहिं कूंजी। इसलिए उस परम शब्द में ही ताला है, उसी परम शब्द में कुंजी भी है। संगीत का ही ताला है, संगीत की ही कुंजी है। छंद का ही ताला है, छंद की ही कुंजी है। तुम्हारे भीतर मौन संगीत उठ आये, मौन गीत जग जाये--शब्द-शून्य, शब्द-रिक्त--शुद्ध संगीत जग जाये, बस कुंजी मिल गयी!
सबदहिं सबद जगाया!
और यही तो गुरु के पास घटता है। गुरु अपनी वीणा छेड़ देता है, अपना शब्द छेड़ देता है, तुम्हारे भीतर सोये हुए शब्द में झंकार पड़ती है। तुम्हारे भीतर भी शब्द में प्रतिध्वनि उठने लगती है।
सबदहिं सबद जगाया।
सबदहिं सबद सुपरचा हुआ।
और गुरु के संगीत में डूबकर, गुरु के शब्द में डूबकर, गुरु की मूल ध्वनि में डूबकर अपना भी परिचय हुआ।
सबदहिं सबद सुपरचा हुआ, सबदहिं सबद समाया।
और फिर संगीत, जीवन का सारा संगीत उस महासंगीत में लीन हो जाता है।
शब्द है संसार। शब्द का अर्थ हैः संगीत प्रगट हुआ। शून्य है परमात्मा। शून्य का अर्थ हैः शब्द वापिस अपने मूलस्रोत में समा गया। मगर नाचो, गाओ।
हंसिबा खेलिबा रहिबा रंग। काम-क्रोध न करिबा संग।
हंसिबा खेलिबा गाइबा गीत। दृढ़ करि राखी अपना चीत।

आखिरी प्रश्नः ईश्वर-अस्तित्व का प्रमाण क्या है?

कोई प्रमाण नहीं है, या प्रत्येक चीज प्रमाण है। तर्क की दृष्टि से तो कोई प्रमाण नहीं, क्योंकि परमात्मा तर्कातीत है। न तो तर्क से कोई सिद्ध कर सकता है उसे, न असिद्ध कर सकता है। और ख्याल रखना, जो तर्क से सिद्ध हो सकता है वह तर्क से असिद्ध भी हो सकता है।
परमात्मा न तो सिद्ध होता है न असिद्ध होता है। परमात्मा तो बस है। शायद यह कहना भी ठीक नहीं कि परमात्मा है। क्योंकि परमात्मा है, ऐसा कहने से पुनरुक्ति-दोष लगता है। "है" ही तो परमात्मा है। जो है वही परमात्मा है। तो जब हम कहते हैं वृक्ष है, यह ठीक है कहना; क्योंकि एक दिन वृक्ष नहीं हो जायेगा; और एक दिन नहीं था, फिर नहीं हो जायेगा। होना सिर्फ बीच में हुआ। इसलिए वृक्ष है, आदमी है, मकान है; लेकिन परमात्मा है, यह कहना ठीक नहीं, क्योंकि परमात्मा न तो कभी "नहीं" था और न कभी "नहीं" होगा। इसलिए जिस अर्थ में हम "है" का प्रयोग करते हैं, उस अर्थ में परमात्मा के लिये नहीं किया जा सकता। परमात्मा तो "है" का ही दूसरा नाम है। वृक्ष है, अर्थात वृक्ष परमात्मा में है। मनुष्य है अर्थात मनुष्य परमात्मा में श्वास ले रहा है। जब परमात्मा अपनी श्वास वापिस ले लेगा, मनुष्य नहीं हो जायेगा। जब परमात्मा अपनी हरियाली वापिस ले लेगा, वृक्ष नहीं हो जायेगा।
तो एक अर्थ में कोई प्रमाण नहीं--तर्क के अर्थ में; अस्तित्व के अर्थ में उसका ही प्रमाण है सब तरफ। ये खड़े वृक्ष, यह गिरती धूप, यह पक्षियों की आवाज, यह मेरा तुमसे बोलना, यह तुम्हारा यहां चुप, मौन, आनंदमग्न हो सुनना-- इस सब में प्रमाण है। सुनते हो यह आवाज पक्षियों की, प्रमाण ही प्रमाण है! लेकिन तुम शायद तर्क की दृष्टि से प्रमाण चाहते हो, वैसा कोई प्रमाण नहीं है।

अरे, ये किसने बीने शूल, बिछाईं किसने ये कलियां?
यह किस वंशी की तान
कि जिसके स्वर-स्वर से ले ताल,
अचानक थिरक उठा जीवन?
यह किन अधरों का गान,
फूटते जिसके बेसुध रागों से,

उल्लास-भरे निर्झर अनगिन?
यह कौन अछूता सुमन
बीनने जिसका मदिर पराग,
भाग आईं भ्रमरावलियां?
प्राण, ये किसने बीने शूल, बिछाईं किसने ये कलियां? यह कैसी पागल प्यास,
मांगना जिसने सीखा नहीं,
न कुछ भी पाने का उल्लास?
यह अजब अनोखी आस,
खोजती खोकर खोने हेतु,
निराशा में पलता विश्वास?
यह कैसी लुटी बहार,
खोजती आई जो मधुमास,
बन गई मन की रंगरलियां।
आह, ये किसने बीने शूल, बिछाईं किसने ये कलियां? यह किस जीवन का तिमिर,
खोजता आया मेरे पास,
स्नेह की ज्योति सहज ही घिर?
ये किसके सपने बधिर,
नहीं जो सुनें पराई बात
नित्य आते नयनों में तिर?
यह कैसी ज्वाला उठी,
जलाने आई है जो आज,
प्यार की शत दीपावलियां?
बता दो किसने बीने शूल, बिछाईं किसने ये कलियां?
पूछते हो प्रमाण?
अरे, ये किसने बीने शूल, बिछाईं किसने ये कलियां?
कौन रंग रहा है ये रंग, कौन चितेरा! कौन भरता है रंग इंद्रधनुषों में! कौन रंगता है रंग तितलियों के परों में! कौन भरता है गीत कोकिल के कंठों में! कौन तुम्हारे भीतर श्वास ले रहा है! कौन तुम्हारे भीतर धड़क रहा है! कौन है तुम्हारा जीवन! और तुम पूछते हो प्रमाण परमात्मा का? यह सब परमात्मा है। परमात्मा है, परमात्मा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। "जो है" उसका ही परमात्मा दूसरा नाम है।
मैं परमात्मा को और अस्तित्व को अलग-अलग नहीं तोड़ता। पुराने धर्मों
ने यह भूल की थी; इस भूल का बड़ा दुष्परिणाम हुआ। पुराने धर्म संसार को तोड़ देते हैं परमात्मा से अलग, फिर सवाल उठता है उसका प्रमाण कहां है? स्वाभाविक सवाल है। संसार तो है नहीं परमात्मा, फिर परमात्मा कहां है? फिर अड़चन खड़ी होती है। फिर आकाश में हाथ उठाने पड़ते हैं। ये हाथ झूठे हैं। मैं तुमसे कहता हूंः परमात्मा अस्तित्व है; इससे पार नहीं है, इसी में छिपा है, इसी में गुंथा है। यहीं खोजो, अभी खोजो। तुम पत्ते-पत्ते में उसके हस्ताक्षर पाओगे। तुम पत्थर-पत्थर में उसे छिपा हुआ पाओगे। जीसस का वचन हैः उठाओ पत्थर को और तुम मुझे छिपा पाओगे। तोड़ो लकड़ी को और तुमने मुझे तोड़ दिया।
बता दो किसने बीने शूल, बिछाईं किसने ये कलियां?
और तुम प्रमाण पूछ रहे हो? और प्रमाण देनेवाले लोग हुए हैं। और उनके
सब प्रमाण व्यर्थ हैं। कोई प्रमाण कारगर नहीं है। अब तक जितने प्रमाण दिये गये हैं परमात्मा के, सब दो कौड़ी के हैं। जैसे कोई कहता है कि हर चीज को बनानेवाला होना चाहिए; इतना बड़ा जगत तो इसका बनानेवाला कोई होगा। मगर उसका प्रमाण आत्मघात कर लेगा, नास्तिक के सामने जाते ही हाथ-पैर उसके लंगड़ा जायेंगे। क्योंकि नास्तिक कहता है, अगर हर बनाई गयी चीज का बनानेवाला होना चाहिए, अगर संसार को बनाने के लिए परमात्मा चाहिए तो फिर परमात्मा को किसने बनाया? बस उसने अटका दी तुम्हारी फांसी! परमात्मा को किसने बनाया है? तुम नाराज होने लगे कि नहीं, परमात्मा को किसी ने नहीं

बनाया। तो नास्तिक कहता है, जब परमात्मा बिना बनाये हो सकता है तो संसार क्यों नहीं हो सकता? टूट गया तर्क, पोचा निकला।
तुम कहते हो कि जैसे कुम्हार घड़े को बनाता ऐसा उस कुंभकार ने इस संसार
को बनाया। लेकिन कुम्हार को भी कोई बनाता है न, या कि कुम्हार बिना बनाया होता है? अब फंसे मुश्किल में। तो तुम्हारे उस बड़े कुम्हार को किसने बनाया?
ये प्रमाण कुछ काम नहीं आते। ये बच्चों को समझाने की बातें हैं, इनसे कोई जीवन-क्रांतियां नहीं होतीं। इसलिए मैं प्रमाण नहीं देता, मैं तो अनुभव देता हूं। मैं तो कहता हूं आओ मेरे पास, बैठो गुप-चुप। गाओ, नाचो। और किसी दिन अचानक तुम पाओगे, कौंध गयी उसकी बिजली। कब कौंध जाये, कुछ कहा नहीं जा सकता। उसकी कोई भविष्यवाणी भी नहीं हो सकती। अनायास आता है वह अतिथि, अचानक द्वार पर खड़ा हो जाता है। जिस क्षण तुम्हारी पात्रता होती है, जिस क्षण तुम निर्मल होते हो, शांत होते हो, उसी क्षण घटना घट जाती है। फिर कोई प्रमाण नहीं चाहना पड़ता, फिर तुम स्वयं ही प्रमाण हो जाते हो।
तुम्हारा अनुभव ही प्रमाण हो सकता है, और कोई चीज प्रमाण नहीं हो सकती।
बता दो किसने बीने शूल, बिछाईं किसने ये कलियां?
आज इतना ही।

मरौ हे जोगी मरौ
पांचवां प्रवचन

मन मैं रहिणा

मन मैं रहिणा, भेद न कहिणा, बोलिबा अमृत-बाणी।
आगिला अगनी होइबा अवधू, तौ आपण होइबा पाणी।।
गोरष कहै सुणहुरे अवधू, जग में ऐसै रहणां।
आंषैं देषिबा काणैं सुणिबा मुष थैं कछू न कहणां।।
नाथ कहै तुम आपा राषौ हठ करि बाद न करणां।
यहु जग है कांटे की बाड़ी देषि देषि पग धरणां।।
आसण दिढ अहार दिढ जे न्यद्रा दिढ होई।
गोरष कहै सुणौं रे पूता मरै न बूढ़ा होई।।
शांयें भी मरिये अणषांयें भी मरिये।
गोरष कहै पूतसंजमि ही तारिये।।
मधि निरंतर कीजै वास।
निहचल मनुवा थिर होइ सांस।।

रूपोश हकीकत है जब तक, अफसाने बंद नहीं होंगे इसरारे-हरम आबाद रहें जब तक, अफसाने बंद नहीं होंगे।
ऐ अहले-खिरद! मुख्तार हो तुम, तामीर करो जिंदां लेकिन
खुद रक्स करेंगी दीवारें, दीवाने बंद नहीं होंगे।
यह लाला-ओ-गुल, माहो-अंजुम मुंह नोच न लें वाइ.ज तेरा
मैखाने बंद नहीं होते, मैखाने बंद नहीं होंगे।
खुद शमए-यकीं बन जायेंगे, हंस-हंसकर जल जाने के लिए
औहाम के जुल्मतखानों में, परवाने बंद नहीं होंगे।
यह तं.जो-मलामत कुछ भी नहीं जु.ज हर्फे मुहब्बत कुछ भी नहीं
दुनिया है "रविश" और दुनिया के अफसाने बंद नहीं होंगे।
परमात्मा जब तक छिपा है, तब तक उसे उघाड़ने वाले लोग पैदा होते रहेंगे।
रूपोश हकीकत है जब तक, अफसाने बंद नहीं होंगे।
जब तक उस प्यारे के चेहरे पर पर्दा है, तब तक राम की चर्चा चलेगी, तब तक प्रार्थना के गीत जगेंगे।
रूपोश हकीकत है जब तक, अफसाने बंद नहीं होंगेइसरारे-हरम आबाद रहें जब तक, अफसाने बंद नहीं होंगे।
यह जो परमात्मा की खोज की कथा है, यह जारी रहेगी, जब तक परमात्मा खोज न लिया जाये। लेकिन परमात्मा की खोज तो व्यक्तिगत होती है; कोई एक खोज पाता है। जो खोज लेता है, उसकी खोज समाप्त हो जाती है। लेकिन और हैं अनेक-अनेक, जो अंधेरे में भटकते हैं, उनकी खोज तो जारी रहेगी।
धर्म तब तक रहेगा पृथ्वी पर, जब तक एक भी आदमी सोया हुआ है, जब तक सभी नहीं जाग गये। जब तक सभी के दीये नहीं जल गये।
ऐ अहले-खिरद! मुख्तार हो तुम, तामीर करो जिंदां लेकिन
हे बुद्धिमान लोगो, हे पंडितो! ऐ अहले खिरद! जिनका भरोसा बुद्धि पर है, तर्क पर है...
ऐ अहले-खिरद! मुख्तार हो तुम, तामीर करो जिंदां लेकिन
बनाते रहो तुम शास्त्रों की दीवालें, खड़े करते रहो शब्दों के कारागृह, ढालते रहो सिद्धांतों की जंजीरें।
ऐ अहले-खिरद! मुख्तार हो तुम, तामीर करो जिंदां लेकिन
खुद रक्स करेंगी दीवारें, दीवाने बंद नहीं होंगे।
लेकिन जिन्हें प्रभु की पुकार सुनाई पड़ गयी वे तो दीवालों के भीतर भी नाचने लगेंगे। उनके साथ तो कारागृह की दीवारें भी नाचने लगेंगी। और कितने ही तुम सिद्धांत बनाओ, इस पृथ्वी से तुम प्रेमी पागलों को मिटा न सकोगे। क्योंकि कोई सिद्धांत तृप्ति देता नहीं। सिद्धांत ऊपर-ऊपर रह जाता है, प्राण उससे भीगते नहीं। सिद्धांत सिर में गूंजता रह जाता है, आत्मा उससे अछूती रह जाती है।

ऐ अहले-खिरद! मुख्तार हो तुम, तामीर करो जिंदां लेकिन
खुद रक्स करेंगी दीवारें, दीवाने बंद नहीं होंगे।
कितने सिद्धांतों के जेल खड़े कर दिये गये हैं--हिंदू, मुसलमान, ईसाई, पारसी, जैन, बौद्ध, सिक्ख। ये सब कारागृह हैं। मंदिरों के नाम पर जंजीरें ढालने के कारखाने बने हैं। मस्जिदों में तुम्हारी गुलामी ढाली जा रही है। पर फिर भी प्रभु के प्यारे इन सारी जंजीरों के बीच भी नाच उठते हैं। उनके साथ जंजीरें भी पायल की झनकार बन जाती हैं। नाच आये तो जंजीर भी पायल बन जाती है, नाच न आता हो तो पायल भी जंजीर है। नाच आये तो कारागृह भी नृत्यशाला है, नाच न आता हो तो नृत्यशाला में बैठकर भी क्या करोगे? पीना आता हो तो तुम जो पी लो वही मधु है; और पीना न आता हो तो अमृत की धार भी बरसती रहे तो तुम्हारे किस काम की?
यह लाला-ओ-गुल, माहो-अंजुम मुंह नोच न लें वाइज तेरा!
ये फूल, लाला-ओ-गुल, ये माहो-अंजुम, ये सूरज, ये चांद-तारे... हे तथाकथित बुद्धिमान, कहीं तेरा मुंह न नोच लें। ऐ पंडित, कहीं तुझे भूमि की धूल न चटा दें। क्योंकि तू जो भी कर रहा है वह सौंदर्य के विपरीत है। तू जो भी कर रहा है वह चांद-तारों के महोत्सव के विपरीत है।
पंडितों ने बड़ी उदास धारणाएं मनुष्य को दी हैं। उन उदास धारणाओं में फूल नहीं खिलते, उन उदास धारणाओं में कब्रों की दुर्गंध आती है। उन उदास धारणाओं में चांद-तारे नहीं चमकते, उन उदास धारणाओं में गहन अंधकार है। इसलिए सारी मनुष्य-जाति धार्मिक मालूम होती है, फिर भी धर्म कहां? धर्म होता तो उत्सव होता। तो लोगों के चेहरों पर फूल खिलते, कि उनकी आंखों में चांद-तारे होते, कि उनके हृदय में वीणा बजती, कि उनके जीवन में एक नृत्य होता। कहां है नृत्य, कहां हैं चमकती हुई आंखें? कहां हैं नाचते हुए लोग? कहां हैं रस-भरी आत्माएं? और कहते हैं परमात्मा रस है, रसो वै सः! परमात्मा रस है, मगर तुम्हारे महात्मा बड़े विरस हैं। परमात्मा से तुम्हें जिन्होंने तोड़ दिया है, वे तुम्हारे महात्मा हैं। अस्तित्व के बीच और तुम्हारे बीच जो दीवाल बनकर खड़े हो गये हैं, चीन की दीवाल बनकर खड़े हो गये हैं, वे तुम्हारे तथाकथित पंडित-पुरोहित हैं। और जब तक कोई व्यक्ति पंडित-पुरोहितों से मुक्त नहीं होता तब तक बुद्धि से मुक्त नहीं हो पाता। और अभागा है वह आदमी जो बुद्धि में ही जी लेता है और बुद्धि में ही मर जाता है। उसे पता ही नहीं चलता जीवन का राज। उसे जीवन के रहस्यों का कोई बोध नहीं होता।
यह लाला-ओ-गुल, माहो अंजुम मुंह नोच न लें वाइज तेरा
मैखाने बंद नहीं होते, मैखाने बंद नहीं होंगे।
यद्यपि तुम करते रहो गुहार, तुम मचाते रहो पुकार, लेकिन कहीं न कहीं कोई मैखाना पैदा हो जाता है। जहां कोई गोरख पैदा हुआ, वहां मैखाना पैदा हुआ। जहां कोई कबीर उठा वहां मैखाना उठा। जहां कोई जीसस चला वहां मधुशाला चली। बुद्ध जहां बैठे, वहीं महोत्सव होगा।
मैखाने बंद नहीं होते, मैखाने बंद नहीं होंगे।
यद्यपि जहां-जहां मैखाने बनते हैं, जल्दी ही वहां मधुशालाएं तो समाप्त हो जाती हैं, वही मंदिर और मस्जिद खड़े हो जाते हैं। बुद्ध के पास तो एक मधुर रस बरस रहा है, लेकिन फिर आते हैं बौद्ध पंडित और उनकी जमात, मधुशाला जल्दी ही एक उदास मंदिर बन जाती है। नृत्य जल्दी ही क्रिया-कांड हो जाते हैं। हृदय से उठे हुए उच्छवास जल्दी ही औपचारिक प्रार्थनाएं बन जाते हैं। जहां जीवंत सत्य का आविर्भाव होता था, वहां अब सत्य के संबंध में चर्चा होती है।
ऐसा ही जीसस के साथ होता, ऐसा ही कृष्ण के साथ होता, ऐसा ही सभी सदगुरुओं के साथ हुआ है। कृष्ण के मंदिर तक में अब बांसुरी कहां बजती है? कृष्ण के मंदिर तक में अब ढोलक पर थाप कहां पड़ती है? कुछ अजीब-सा जाल है आदमी का, आदमी मुक्तिदाताओं से भी अपनी अमुक्ति खोज लेता है। मगर सौभाग्य है एक कि हमारे सारे आयोजन के बावजूद, हमारी सारी व्यवस्था, बंदोबस्त के बावजूद, कोई-न-कोई खिल उठता है, कहीं कोई कमल खिल जाता है, कहीं कोई सुवास उड़ने लगती है आकाश की तरफ, कहीं पूजा के स्वर फिर सुनाई पड़ते हैं, कहीं फिर जीवन अपनी मस्ती में आ जाता है!

मैखाने बंद नहीं होते, मैखाने बंद नहीं होंगे।
खुद शमए-यकीं बन जायेंगे, हंस-हंसकर जल जाने के लिए
औहाम के जुल्मतखानों में, परवाने बंद नहीं होंगे।
अच्छा है कि परवाने अंधविश्वासों के अंधेरे में बंद नहीं होते; वे तो
जल जाने के लिए आतुर होते हैं। और अगर शमाएं न मिलें तो वे खुद ही शमाएं बन जाते हैं। परवाने ही शमाएं बन जायेंगे अगर शमाएं न मिलें। लेकिन परवाने अंधविश्वास के अंधेरों में बंद नहीं होते।
यह पृथ्वी अंधविश्वास के अंधेरे से भरी है। और अंधविश्वास इतना प्राचीन है कि ऐसा लगता है कि अंधविश्वास ही जीवन है। ईश्वर को तुम मानते हो तो अंधविश्वासी हो। ईश्वर को जानना होगा, मानने से कुछ काम नहीं चलेगा। मानना बड़ी सस्ती बात है। मानना बिल्कुल ही दो कौड़ी की बात है। जो मानता है वह अधार्मिक है। जानना होगा, जानने से कम में काम नहीं होगा। लेकिन जानने की हिम्मत जुटानी पड़ती है। जानने के लिए तो परवाने को शमा बन जाना होता है। और जानने के लिए तो अपने प्राणों की आहुति देनी होती है। जानने के लिए तो दांव पर लगाना होता है जीवन को।
धर्म कोई कुतूहल नहीं है, धर्म कोई खाज की खुजलाहट नहीं है--धर्म है प्राणों की बाजी। इसलिए थोड़े-से साहसी लोग ही धार्मिक हो पाते हैं। धर्म भयभीतों के लिए नहीं है, कायरों के लिए नहीं है। कायर तो भगोड़े हो जाते हैं। धर्म तो उनके लिए है, जो जीवन के युद्ध में, जीवन की चुनौती को, उसकी समग्रता में स्वीकार करते हैं। जो जीवन को जीते हैं, पूर्णता से जीते हैं। जो भागते नहीं। जो डरे हुए नहीं हैं। जो कंपे हुए नहीं हैं। जो पैर जमाकर जीवन में संघर्ष लेते हैं। उसी संघर्ष से आत्मा का जन्म होता है। उन्हीं चुनौतियों में आत्मा पकती है, सबल होती है।
गोरख के सूत्र तुम्हारे जीवन को मधुशाला बना दे सकते हैं। गोरख के सूत्र तुम्हें परवाना बना सकते हैं--और ऐसा परवाना कि अगर शमा न मिले तो तुम खुद शमा बन जाओ। ये सूत्र अदभुत हैं। एक-एक सूत्र में खूब डूबना, पीना।
एक-एक सूत्र को प्याली में भर लेना हृदय की।
मन मैं रहिणा, भेद न कहिणा, बोलिबा अमृत-बाणी।
आगिला अगनी होइबा अवधू, तौ आपण होइबा पाणी।।
मन मैं रहिणा... !
अभी तुम बाहर रह रहे हो। अभी तुम्हें भीतर रहने की कला नहीं आती। इसी
से दुखी हो। जो बाहर है वह दुखी, जो भीतर है वह सुखी। जो बाहर है वह नर्क में है, जो भीतर है वह स्वर्ग में है। बाहर रहने का अर्थ होता हैः वासनाओं में रहना। धन मिले, पद मिले, प्रतिष्ठा मिले, सम्मान मिले, समादर मिले। बाहर रहने का अर्थ होता है, कुछ मिले, तो सुख हो। भीतर रहने का अर्थ होता है जिससे सुख हो सकता है, वह तो मिला ही हुआ है।
इस भेद को खूब बारीकी से याद रख लेना। बाहर रहने का अर्थ होता है कुछ मिले तो सुख होगा; सुख सशर्त है। एक शर्त है। कोई कहता है दस लाख रुपये मेरे पास हों तो मैं सुखी होऊंगा। ये उसने शर्त लगा दी सुख पर। अब दस लाख जब तक नहीं मिलेंगे, वह दुखी रहेगा। और उसे एक और अचंभा उस दिन होगा जब दस लाख मिलेंगे। जब तक दस लाख नहीं मिले दुखी हो गया, क्योंकि शर्त लगा दी सुख पर। जिसने भी शर्त लगायी, वह चूका; क्योंकि सुख बेशर्त मिला हुआ है। सुख हमारा स्वभाव है। सुख हम लेकर आये हैं। सुख हमारे भीतर बसा है। और तुम बाहर खोजने चल पड़े। और तुमने सुख पर शर्तें लगा दीं।
बाहर खोजना है तो शर्त लगानी पड़ती है, नहीं तो खोजोगे क्या? खोज का अर्थ होता हैः शर्त पूरी करने का उपाय। किसी ने कहा कि जब तक प्रधानमंत्री न हो जाऊंगा, सुखी न होऊंगा; उसने एक शर्त लगा दी। अब साठ करोड़ का देश हो तो प्रधानमंत्री होना लंबी यात्रा है। जिंदा-जिंदा पहुंच पाओगे, इसकी संभावना कम है। तो पूरी जिंदगी तो दुख में बीतेगी। क्योंकि जब तक शर्त पूरी नहीं होती, सुखी कैसे हो जाऊं? और जो आदमी पूरी जिंदगी दुख में जीया है वह जब प्रधानमंत्री हो जायेगा तो और चकित होगा कि पूरी जिंदगी दुख में रहने के कारण दुख आदत हो गयी। इसलिए प्रधानमंत्री होने से ही कोई दुख की आदत इतनी जल्दी छूट नहीं जायेगी।

तुम जानते हो, आदतें बड़ी मुश्किल से छूटती हैं। अब अगर जिस आदमी ने साठ साल तक दुख की आदत का अभ्यास किया है--सतत, अहर्निश, सुबह और शाम, जागते और सोते एक ही सपना देखा है कि कैसे प्रधानमंत्री हो जाऊं--वह साठ साल बाद जब प्रधानमंत्री हो जाये--अगर हो जाये, संभावना बहुत कम है, अधिक लोग तो मर जायेंगे, प्रधानमंत्री नहीं हो पायेंगे--लेकिन कभी किसी बिल्ली के भाग्य से छींका टूट जाये, जैसे इंदिरा का छींका टूट गया मोरारजी के भाग्य से, टूट जाये तो भी सुखी नहीं हो सकेगा व्यक्ति। क्योंकि अब साठ साल का निरंतर अभ्यास कहां छोड़ोगे? वे जो दुख की आदतें बन गयी हैं, वह जो चित्त दुख में रहने का आदी हो गया है, उसे कैसे छोड़ोगे? ऐसा थोड़े ही है कि उतार कर रख दिया, अब तो दुख तुम्हारी हड्डी-मांस-मज्जा हो गया। ऐसा थोड़े ही है कि कपड़े जैसा है कि उतार कर रख दिया और दूसरे कपड़े पहन लिए। अब तो दुख तुम्हारी चमड़ी हो गया है। अब तो दुख उतारना बड़ा मुश्किल हो जायेगा। तो नये दुख के आयोजन मन कर लेगा।
दस लाख जब तक नहीं मिले हैं तब तक दस लाख मिल जाएं, इसके लिए दुखी हो। जैसे ही दस लाख मिलेंगे तुम पाओगे, मन कहता है दस लाख से क्या होगा, कम-से- कम करोड़ तो चाहिए ही। इसलिए कोई वासना पूरी नहीं होती, क्योंकि जब तक पूरे होने का समय आता है तब तक दुख की आदत हो जाती है। तुम नया प्रक्षेपण कर लेते हो। तुम दुख के लिए नयी शर्त बना लेते हो। तुम शर्त को आगे हटा देते हो। तुम कहते हो एक करोड़ होगा तब सुखी हो पाऊंगा। और तुम सब जानते हो, इसके लिए कोई प्रधानमंत्री होने की जरूरत नहीं है। तुम सब जानते हो, सोचते थे यह कार मिल जाये, यह मकान मिल जाये, यह दुकान मिल जाये--मिल गयी; सुखी कहां हो? सोचते थे यह स्त्री मिल जाये, मिल गयी; यह पुरुष मिल जाये, मिल गया-- सुखी कहां हो? सुख कहां है?
शायद तुम्हें याद ही न आया हो कि जिस दिन तुम्हें जो चीज मिल जाती है, उसी दिन व्यर्थ हो जाती है। उसी दिन तुम दूसरी योजना बनाने लगते हो। मन नये सपने देखने लगता है--और आगे कैसे पहुंच जाऊं! तुमने नयी शर्त लगा दी। शर्त को तुमने आगे हटा दिया। शर्त को तुम जीवन-भर आगे हटाते जाओगे और तुम दुखी रहोगे।
सुख होता है बेशर्त; उसकी कोई शर्त नहीं है। और जिसको यह समझ में आ गया
है कि सुख बेशर्त है, वह तत्क्षण भीतर मुड़ जाता है। बाहर तो हम चलते ही इसलिए हैं कि शर्तें पूरी करनी हैं। शर्तें बाहर ही पूरी हो सकती हैं, भीतर शर्तें पूरी कैसे करोगे? भीतर तो न तो धन पैदा कर सकते हो, न पद पैदा कर सकते हो। आंख बंद किये-किये बैठे-बैठे प्रधानमंत्री नहीं हो जाओगे; न ही आंख बंद किये बैठे-बैठे कोहिनूर हीरों का ढेर तुम्हारे सामने लग जायेगा; न ही आंख बंद किये बैठे-बैठे जगत में तुम्हारी ख्याति हो जायेगी। नहीं, भीतर तो कोई शर्त पूरी नहीं हो सकती है। भीतर तो वही जायेगा जिसने शर्त की मूढ़ता देख ली है; जिसने देखा कि सब शर्तें पूरी हो जायें तो भी कुछ पूरा नहीं होता। जिसे यह सत्य दिखाई पड़ गया, वही भीतर जाता है।
और जो भीतर गया, उसने सुख पाया; क्योंकि भीतर सुख मौजूद है। सुख तुम्हारा स्वभाव है।
मन मैं रहिणा... !
मन में रहने का अर्थ होता है; भीतर रहना। वहां रहना जहां तुम हो। वहां
से हटना मत। वहां से हटे कि भटके। हटाता कौन है? वासना हटा लेती है, इच्छा हटा लेती है, आकांक्षा हटा लेती है। आकांक्षा कहती हैः यहां बैठे-बैठे क्या कर रहे हो भीतर? उठो, चलो, बहुत कुछ करना है दुनिया में। बड़ी यात्राएं करनी हैं, पूरी करो। ऐसे तो जिंदगी गंवा दोगे।
हम सब चल पड़ते हैं। और सारी दुनिया चल रही है, इसलिए लगता है कि चलना
ही ठीक मालूम होता है। ठीक है चलना ही, क्योंकि सभी चल रहे हैं। मनुष्य तो अनुकरण करता है। बाप चल रहा है, भाई चल रहे हैं, मित्र चल रहे हैं, पड़ोस के लोग चल रहे हैं, सब चल रहे हैं बाहर--तुम भी भागे। तुम भी छिटके भीतर से। तुमने भी मन का व्यापार शुरू किया। तुमने कहाः यह हो जाये, वह हो जाये। मेरे पास जब इतना सब होगा, तब सुखी होऊंगा।
और मैं तुमसे कहना चाहता हूं और सदा से बुद्धपुरुषों ने यही कहा है कि अगर तुम सुखी होना चाहते हो तो कहीं भी जाने की जरूरत नहीं है। लाओत्सू का

वचन हैः अपना कमरा भी छोड़ने की जरूरत नहीं है। क्योंकि सुख तुम्हारी संपदा है। यह धर्म का आधारभूत सत्य हैः कि सुख कमाना नहीं होता, सुख मिला हुआ है। सुख प्रसाद है; परमात्मा ने दिया ही हुआ है। मगर तुम उस प्रसाद को देखो कब? तुम तो पीठ किये हो प्रसाद की तरफ। तुम तो भागे जाते हो बाहर। तुम तो रुकते ही नहीं हो क्षण-भर को। तुम्हारी दौड़ तो अहर्निश चल रही है। दिन-भर सोचते हो, सोचने में दौड़ते हो। रात-भर सपने देखते हो, सपनों में दौड़ते हो। दौड़ते ही चले जाते हो। रुकोगे कब? ठहरोगे कब? जिस दिन ठहर जाओगे, जिस दिन रुक जाओगे, उसी दिन अचानक चौंकोगे, विश्वास भी न आयेगा, अवाक रह जाओगे, ठगे--कि मैं क्यों इतना व्यर्थ दौड़ा! जिसे मैं खोजता था, वह मेरे भीतर मौजूद है।
मन मैं रहिणा, भेद न कहिणा... !
और यह जो मन के भीतर तुम्हें अनुभव में आये, इसे किसी से कहना मत। क्यों? इस भेद को क्यों न कहना? क्योंकि यह भेद ऐसा है कि तुम जिससे कहोगे वही हंसेगा। और हो सकता है अभी तुम में इतनी सामर्थ्य न हो कि तुम दूसरों की हंसी झेल सको। क्योंकि यह भेद तुम जिससे कहोगे, वही तुम्हें पागल समझेगा। और हो सकता है अभी तुम कच्चे-कच्चे होओ, अभी नये-नये भीतर की यात्रा पर चले, कहीं लोगों का हंसना तुम्हें छिटका न दे। कहीं ऐसा न हो कि लोग तुम्हें पागल कहने लगें, तुम्हें भी शक हो जाये कि कौन जाने!
आदमी लोगों के मंतव्यों से जीते हैं। जो लोग कहते हैं वही तुम मान लेते हो। और तुम मान्यता पाओगे कहां से? तुम्हारे पास अभी इतनी तो क्षमता नहीं है, इतना तो बोध नहीं है कि तुम अपनी मान्यता अपने भीतर से पा सको। तुम अपनी मान्यता बाहर से पाते हो। इसलिए तो तुम इतने उत्सुक होते हो कि कोई प्रशंसा करे और इतने डरे होते हो कि कहीं निंदा न हो जाये। दुनिया में तुम्हें इतने लोग जो नैतिक मालूम पड़ते हैं, इसका कारण इनका नैतिक होना नहीं है; इसका कुल कारण इतना है, ये डरे हुए हैं कि लोग क्या कहेंगे? ये भयभीत लोग हैं; इनकी नीति में भय है। अगर इनको पक्का भरोसा आ जाये कि हम पकड़े नहीं जायेंगे, कि पकड़ने का कोई उपाय ही नहीं है हमें, तो ये सारे लोग अनीति में उतर जायेंगे।
इसलिए अक्सर ऐसा होता है, जो लोग सत्ता में पहुंच जाते हैं, वे अनैतिक
हो जाते हैं। लार्ड ऐक्टन का प्रसिद्ध वचन हैः पावर करप्ट्स एंड करप्ट्स एब्सोल्यूटली। सत्ता लोगों को भ्रष्ट कर देती है; और अंशतः नहीं, पूर्णतः भ्रष्ट कर देती है, समग्रतः भ्रष्ट कर देती है। क्यों? मैं ऐक्टन की बात से सहमत भी हूं और नहीं भी। सहमत इसलिए हूं कि तथ्य तो यही है कि सत्ता लोगों को भ्रष्ट करती दिखाई पड़ती है। अच्छे-भले लोग सत्ता में पहुंचते ही भ्रष्ट हो जाते हैं। सीधे-सादे लोग, जिन्हें तुमने कभी सोचा भी न था कि सत्ता में पहुंचकर भ्रष्ट हो जायेंगे, सत्ता में जाते से एकदम से उनके भीतर फन उग आते हैं, जहर की ग्रंथियां निकल आती हैं। क्या हो जाता है सत्ता में पहुंचने से लोगों को? तो ऐक्टन की बात तथ्यगत तो मालूम पड़ती है कि सत्ता लोगों को भ्रष्ट करती है, क्योंकि यह रोज दिखाई पड़ता है।
गांधी बाबा के चेलों को देखा, तीस साल से इस देश में क्या कर रहे हैं? अच्छे लोग थे। बुरे लोग थे, ऐसा नहीं कह सकते। जब तक सत्ता में नहीं थे तब तक कोई सोच भी नहीं सकता था कि बुरे लोग साबित होंगे। न शराब पीते थे, न मांस खाते थे, खादी पहनते थे, हाथ से बुनाई करते थे, चर्खा चलाते थे। सिगरेट नहीं, पान नहीं, तंबाकू नहीं; व्रत-उपवास-नियम करते थे, देश की सेवा करते थे। अच्छे लोग थे--सेवक थे। फिर क्या हुआ, सत्ता में जाते से कैसे यह शकल बदल गयी?
तो ऐक्टन की बात ठीक तो लगती है, फिर भी मैं कहता हूं उसमें एक भूल है;
और भूल यह है कि सत्ता लोगों को विकृत नहीं करती, सत्ता केवल लोगों के असली चेहरे उघाड़ देती है। सत्ता विकृत नहीं करती, सत्ता केवल नग्न कर देती है। सत्ता के पहले आदमी वस्त्रों में छिपा होता है, क्योंकि सत्ता के पहले तुम्हें पकड़े जाने का डर होता है। तुम्हारे पास ताकत कितनी है? सामर्थ्य कितनी है? सत्ता में पहुंचकर तुम्हारे हाथ में सामर्थ्य आ जाती है। फिर तुम जो चाहो कर सकते हो, कौन तुम्हें पकड़ेगा? तुम पकड़नेवाले हो, पकड़ेगा तुम्हें कौन? तुम्हारे हाथ में सारी ताकत है। और जिसके हाथ में लाठी है,

उसकी भैंस है। सत्ता की लाठी तुम्हें आश्वस्त कर देती है कि अब दिल खोलकर करो, जो तुम सदा करना चाहते थे और नहीं कर पाये, क्योंकि सत्ता नहीं थी करने की। पकड़े जाते।
सत्ता किसी को विकृत नहीं करती; मेरे देखे तो सत्ता में जाने को उत्सुक वे ही लोग होते हैं जो विकृत हैं। लेकिन अपनी विकृति को खुलकर खेलने का मौका नहीं है। हाथ कमजोर हैं। दिल में तो पूरी भरी है आग, मगर डरते हैं कि अभी प्रगट करेंगे तो जो थोड़ा-बहुत सम्मान है वह भी छिन जायेगा। सत्ता में पहुंचकर कौन सम्मान छीनेगा? सत्ता में पहुंचकर जो करेंगे वही ठीक होगा। शक्तिशाली जो करता है वही ठीक है। शक्तिशाली पर कोई नियम लागू नहीं होते, शक्तिशाली नियमों के ऊपर होता है। और सब पर नियम लागू होते हैं। इसलिए सत्ता भ्रष्ट करती मालूम होती है, सत्ता भ्रष्ट करती नहीं। सत्ता केवल उघाड़कर रख देती है। सत्ता तुम्हारी नग्न तस्वीर जाहिर कर देती है, तुम कैसे हो, तुम कौन हो, तुम क्या हो?
हम लोगों से प्रशंसा चाहते हैं तो हम नैतिक होते हैं। हम लोगों की निंदा से डरते हैं तो हम इस तरह चलते हैं सोच-समझकर कि निंदा न हो। कदम फूंक-फूंक कर रखते हैं। इसलिए जब भीतर की अनुभूति तुम्हें होने लगे और बेशर्त सुख मिलने लगे और तुम्हारे भीतर एक झरना फूटे रस का, किसी से कहना मत, गोरख कहते हैं। गोरख पते की बात कह रहे हैं, भेद खोलना मत। यह नयी-नयी कोंपल निकल रही है, लोग इस पर टूट पड़ेंगे, इसे तोड़ देंगे। और लोग इसको तोड़ने में उत्सुक हैं, क्योंकि यह कोंपल उनके भीतर नहीं निकली और "तुमने कैसे हिम्मत की?" "हम सब दुखी हैं और तुम सुखी हो गये!" ईर्ष्या जगेगी, भयंकर ईर्ष्या जगेगी! उनकी ईर्ष्या शायद तुम न सह पाओ, अभी तुम नये-नये हो इस अंतर्यात्रा पर।
भेद न कहिणा... !
इसलिए जब भीतर कुछ रस उमगने लगे, फूल खिलने लगे, बताना ही मत किसी को, चुपचाप सम्हाल कर रख लेना। अपने गुरु से कह देना, अपने गुरु भाइयों से कह देना, जो समझ सकें उन से कह देना। लेकिन उसकी घोषणा लोगों में मत करना। नाचने मत लगना रास्तों पर जब तुम्हारे भीतर नाच आये, नहीं तो पुलिस पकड़कर ले जायेगी। घर के लोग ही मनोचिकित्सक के पास लेकर पहुंच जायेंगे; इंजेक्शन दिलवाने लगेंगे कि इनको कुछ गड़बड़ हो गयी। बिजली के शाक दिलवाने लगेंगे कि इनको कुछ गड़बड़ हो गयी है। कहीं कोई आदमी सड़क पर नाचता है! बर्ट्रेंड रसेल पहली बार एक आदिवासी समाज में गया। पूरे चांद की रात... और जब आदिवासी नाचने लगे और ढोल बजे और मंजीरे बजे तो रसेल के मन में उठा कि सभ्य आदमी ने कितना खो दिया है! सभ्यता के नाम पर हमारे पास है क्या? न ढोल बजते हैं, न मंजीरा बजता है, न कोई नाचने की क्षमता रह गयी है; पैर ही नाचना भूल गये हैं। रसेल ने लिखा है कि उस रात पूरे चांद के नीचे, वृक्षों के नीचे नाचते हुए नंगे आदिवासियों को देखकर मेरे मन में यह सवाल उठा कि हमने पाया क्या है प्रगति के नाम पर? और उसने यह भी लिखा कि अगर लंदन में लौटकर मैं ट्रेफिलगर स्क्वायर में खड़े होकर नाचने लगूं तो तत्क्षण पकड़ लिया जाऊंगा। लोग समझेंगे पागल हो गये।
लोग दुख को तो समझते हैं स्वास्थ्य और आनंद को समझते हैं विक्षिप्तता। हालतें इतनी बिगड़ गयी हैं कि इस दुनिया में केवल पागल ही हंसते हैं, बाकी समझदारों को तो हंसने की फुर्सत कहां है? समझदारों के हृदय तो सूख गये हैं। समझदार रुपये गिनने में उलझे हैं। समझदार महत्वाकांक्षा की सीढ़ियां चढ़ रहे हैं। समझदार तो कहते हैं दिल्ली चलो। फुर्सत कहां है हंसने की, दो गीत गाने की, इकतारा बजाने की, तारों के नीचे वृक्षों की छाया में नाचने की, सूरज को देखने की, फूलों से बात करने की, वृक्षों को गले भेंटने की, फुर्सत किसे है? ये तो आखिर की बातें हैं, जब सब पूरा हो जायेगा--धन होगा, पद होगा, प्रतिष्ठा होगी, तब बैठ लेंगे वृक्षों के नीचे। लेकिन यह दिन कभी आता नहीं, न कभी आया है, न कभी आयेगा। ऐसे जिंदगी तुम गुजार देते हो रोते-रोते, झींकते-झींकते। ऐसे ही आते हो ऐसे ही चले जाते हो--खाली हाथ आये, खाली हाथ गये।
तो अगर तुम्हें कभी भीतर का रस जन्मने लगे और भीतर स्वाद आने लगे... और देर नहीं लगती आने में, जरा भीतर मुड़ो कि वह सब मौजूद है। सरोवर की तरफ पीठ

किये खड़े हो, इसलिए प्यासे हो। बदलो रुख; संसार की तरफ पीठ करो और अपनी तरफ मुंह करो। और तुम चकित हो जाओगे कि क्यों तुम प्यासे थे इतने दिन तक! तुम रोओगे इसलिए कि कितना गंवाया और हंसोगे इसलिए कि यह भी खूब रही, जो अपने पास था उसकी तलाश कर रहे थे! जो मिला ही था उसे खोजने निकले थे, और नहीं मिलता था तो तड़प रहे थे, परेशान हो रहे थे। और मिल सकता नहीं था, क्योंकि जो भीतर होगा बाहर नहीं मिलेगा। जो जहां है वहीं मिलेगा।
मगर कह मत देना, क्योंकि उस घड़ी में एकदम उदघोषणा करने की भावना उठती है, स्वाभाविक भावना उठती है--कि जायें औरों को भी कह दें, जो भटक रहे हैं अंधेरे में। मगर वे भटकनेवाले इतनी आसानी से राजी नहीं हो जायेंगे। उनके अहंकार उनकी भटकन का अंग बन गये हैं। तुम अगर जाकर उनसे कहोगे कि भटको मत, व्यर्थ भटक रहे हो; देखो मुझे मिल गया; देखो मेरी तरफ, मेरी आंखों में झांको! वे हंसेंगे, वे कहेंगे एक आदमी और गया काम से। तुम पागल हो गये। पश्चिम के बहुत बड़े मनोवैज्ञानिक आर. डी. लैंग ने एक नयी अवधारणा दी है। लैंग ने सिद्ध करने की कोशिश की है कि पश्चिम के पागलखानों में ऐसे बहुत से लोग हैं जो अगर अतीत में कभी पूरब के देशों में पैदा हुए होते तो परमहंस समझे जाते; जिनको लोग मस्त फकीर समझते; जिनकी लोग पूजा करते। और जब आर. डी. लैंग जैसा विचारशील मनोवैज्ञानिक कुछ कहता है तो उसमें अर्थ होता है। जीवनभर पागलों का अध्ययन करके उसने ये वक्तव्य दिये हैं कि बहुत से ऐसे लोग बंद हैं, जो अगर पूरब में होते तो रामकृष्ण होते। और तुम पक्का समझो अगर रामकृष्ण पश्चिम में होते तो किसी अस्पताल में रखे जाते, हिस्टीरिया के मरीज समझे जाते। वह तो संयोग था कि वे भारत में पैदा हुए और संयोग था कि समय अच्छा था जब पैदा हुए। अगर अब पैदा होते कलकत्ते में तो दक्षिणेश्वर के मंदिर में नहीं होते, बड़े बाजार के अस्पताल में होते। और लाख चिल्लाते, कौन सुनता? लाख चिल्लाते कि मुझे ज्ञान हो गया है; लोग कहते शांत रहो, सभी पागलों को हो जाता है। लाख कहते कि मुझे काली मइया के दर्शन हो रहे हैं; लोग कहते शांत रहो, तुम्हें भ्रांतियां हो रही हैं। मनोवैज्ञानिक तो अभी भी कहते हैं कि रामकृष्ण को मिरगी की बीमारी थी, हिस्टीरिया था। यह जो बेहोश होकर गिर जाते थे, यह कोई समाधि इत्यादि नहीं है। मनोवैज्ञानिक तो यह भी कहते हैं कि जीसस भी विक्षिप्त थे। क्योंकि विक्षिप्त आदमी ही आकाश से बातें करते हैं, कोई समझदार आदमी आकाश से बातें करते हैं? जीसस झुक जाते, घुटने टेक देते, आकश से बोलते--और ऐसे बोलते जैसे आकाश में कोई हो। पुकारते अपने पिता को कि--अब्बा! पागल हो गये हो, कौन अब्बा है वहां आकाश में? मनोवैज्ञानिक कहेंगे हेल्यूसिनेशन्स, विभ्रम हो रहा है। यह आदमी रुग्ण हो गया, इसको इन्सुलिन के इंजेक्शन दो, कि बिजली के शाक दो। इसको होश में लाओ, इसको रास्ते पर लाओ।
वह तो अच्छा हुआ कि बुद्ध, महावीर, कृष्ण और क्राइस्ट पहले ही निपट लिये। मुसीबतें तो अब हैं; मुसीबतें बढ़ गयी हैं। ठीक कहते हैं गोरख, साधक के लिए बिल्कुल ठीक इशारा दे रहे हैं।
मन मैं रहिणा, भेद न कहिणा... !
किसी से कहना ही मत कि भीतर क्या हो रहा है! चुपचुप, मन ही मन में रस लेना; डूबते जाना। हां, कभी कोई मिल जाये भीतर का यात्री, उससे गुफ्तगू कर लेना। सत्संग का यही अर्थ है जहां चार दीवाने बैठ जाते हैं, एक-दूसरे की कह लेते हैं, सुन लेते हैं। जहां समझ सकते हों लोग वहां कह देना, बाकियों से तो छिपाये रखना। यह भेद की बात सभी से कह देने की नहीं है।
भेद न कहिणा, बोलिबा अमृत-वाणी।
और तुम्हारे भीतर जो हुआ है उसकी तो कोई खबर मत देना, लेकिन तुम्हारे वचनों में उसका अमृत झरे। उसकी तो कुछ बात मत कहना कि मेरे भीतर अमृत का स्रोत मिल गया है मुझे, कि परमात्मा मिल गया है मुझे, कि आत्मा मिल गयी मुझे। मत कहना! जल्दी मत करना। यह तो अंतिम घड़ी में इसकी उदघोषणा करनी चाहिए, जब दुनिया-भर भी तुम्हारे विपरीत हो जाये तो भी तुम्हें रत्ती-भर भेद न पड़े। तुम अकेले भी रह जाओ तो तुम्हें संदेह पैदा न हो। अकेले होने में संदेह पैदा होना शुरू हो जाता है। नये-नये यात्री को तो हो जाता है। क्योंकि हम इसी तरह सोचते हैं कि जहां अधिक लोग जा रहे हैं वहीं सत्य होगा, नहीं तो इतने लोग क्यों जाते? इसलिए तो दुनिया भर के धर्म अपनी भीड़ बढ़ाने

की कोशिश करते हैं। क्योंकि जितनी बड़ी भीड़ हो उतना ही भरोसा आता है कि जरूर हमारे पास सत्य होगा।
ईसाई अगर कहते हैं कि हमारे पास सत्य है, तो कारण क्या? कारण यह है कि हमारे पास करीब-करीब दुनिया की एक तिहाई संख्या ईसाई है। जैन अगर दावा करें तो क्या दावा करें? मुश्किल से तीस लाख जैन हैं। ईसाई हैं एक अरब। तीस लाख जैन! महावीर को हुए पच्चीस सौ साल हो गये। अगर तीस दंपतियों को भी उन्होंने प्रभावित किया था तो अब तक तीस लाख बच्चे उनके पैदा हो जाते। बच्चे इस जोर से बढ़ते हैं--और भारत में! तीस दंपति होते तो पर्याप्त था, क्योंकि अगर बारह-बारह भी एक-एक दंपति पैदा करता, फिर प्रत्येक बारह-बारह में से बारह-बारह पैदा करते, तो पच्चीस सौ साल में संख्या तीस लाख से ऊपर हो जाती, तुम हिसाब लगा लेना। तीस लाख आदमी! साफ है कि सत्य हो नहीं सकता। नहीं तो इतने से लोग प्रभावित हुए!
यह दुनिया भीड़ से जीती है। बर्नार्ड शा से एक आदमी कह रहा था, एक ईसाई
कह रहा था कि इतने लोग मानते हैं तो सत्य होगा ही। बर्नार्ड शा ने कहा, क्षमा करें, इतने लोग मानते हैं इसलिए सत्य नहीं हो सकता। सत्य तो कभी- कभार होता है। एक-आध के जीवन में प्रगट होता है, बाकी लोग तो असत्य में जीते हैं, क्योंकि असत्य में बड़ी सांत्वना है, असत्य में बड़ी सुविधा है, असत्य में चादर ओढ़कर सो जाने का उपाय है। असत्य निद्रा है। अधिक लोग सोये हुए हैं। सत्य तो जाग्रत को मिलता है।
तो जब तक ऐसी स्थिति न आ जाये तुम्हारे भीतर, इतनी दृढ़ता न हो जाये कि सारी दुनिया भी कहे कि तुम पागल हो तो भी तुम्हें संदेह पैदा न हो, तब तक चुप रहना, तब तक गुपचुप रहना। तब तक पकने देना। तब तक प्रौढ़ता को जमने देना। तब तक दृढ़ता को पैदा होने देना। तब तक पकड़ने देना जड़ों को--गहरे, और गहरे तुम्हारी चेतना में। फैलने देना वृक्ष को इस ज्ञान के। हां, एक दिन जब वृक्ष इतना मजबूत हो जायेगा कि उसे बागुड़ की कोई जरूरत न रह जायेगी, तब उदघोषणा अपने से हो जायेगी, फिर करने की जरूरत नहीं पड़ती। अभी तो तुम छोटी- छोटी बात से चिंतित हो जाओगे।
सोचो, तुमने किसी से कहा कि मुझे ध्यान लग रहा है और उसने कहा, "होश की बातें कर रहे हो? ध्यान होता ही नहीं; ये तो सब भ्रांतियां हैं मन की।" और तुम्हें संदेह पैदा हो जायेगा। तुम रात चिंतित हो जाओगे कि ध्यान होता है कि नहीं। ध्यान करने बैठोगे तो यह संदेह तुम्हें घेर लेगा कि होता भी है कि नहीं, तुम व्यर्थ ही समय खराब कर रहे हो? और अगर बहुत लोग कहनेवाले मिल जायें तो बड़ी मुश्किल हो जाती है। तुम्हारा चित्त अभी बाहर से बहुत आंदोलित होता है, इसलिए चुप रहना। लेकिन तुम्हारी वाणी में अमृत बहने लगे। अमृत की बात मत करना, लेकिन तुम्हारी वाणी में मिठास आने लगे। तुम्हारी वाणी में स्वाद बहने लगे। कहना मत सीधा-सीधा कि क्या मुझे मिल गया है, लेकिन तुम्हारे उठने में, बैठने में, तुम्हारे चलने में भेद तो पड़ने लगेगा, क्रांति तो होने लगेगी। तुम बोलोगे, तब तुम्हारे बोलने में एक मिठास होगी, जो कभी भी नहीं थी। तुम्हारे बोलने में एक गीत होगा, एक छंद होगा, जो कभी भी न था। वही छंद उन लोगों को तुम्हारे पास लाने लगेगा, जो छंद की तलाश में हैं। वही छंद लोगों को आकर्षित करने लगेगा। वे तुमसे पूछने लगेंगे, तुम्हें क्या हो गया? जब कोई तुम्हारे बहुत निकट आकर मुमुक्षा करे तो उससे कह देना, अन्यथा भेद को छिपाकर रखना।
मन मैं रहिणा, भेद न कहिणा, बोलिबा अमृत-बाणी।
आगिला अगनी होइबा अवधू... !
और अगर सामनेवाला आदमी आग हो उठे, आगबबूला हो उठे, क्रोध से उन्मत्त
हो उठे, पागल हो उठे, तो आपण होइबा पाणी, तो तुम बिल्कुल पानी हो जाना। जब सामने कोई प्रज्वलित हो जाये क्रोध से तो तुम पानी हो जाना, तुम उस पर पानी की तरह बरस जाना। यह तुम्हारी जीवनचर्या हो। ऐसा तुम्हारा व्यक्तित्व हो। ऐसी तुम्हारी अभिव्यक्ति हो। इससे ही पता चलना शुरू होगा धीरे-धीरे उनको, जो तलाश कर रहे हैं। उनको सुराग मिलेगा। इसकी घोषणा नहीं करनी पड़ती, डुंडी नहीं पीटनी पड़ती। ऐसे ही ऐसे धीरे-धीरे तुम्हारी सुवास उन नासापुटों में पहुंच जायेगी जो उत्सुक हैं, जो खोजी हैं। तुम्हारी यह जो बीन भीतर बजेगी, यह धीरे-धीरे तुम्हारे व्यक्तित्व को रूपांतरित करेगी;

और जिनको खोज है, जिनको प्यास है, उनके भीतर की वीणा भी तुम्हारी टंकार से गूंजने लगेगी। वे लोग आने लगेंगे, वे लोग दूर-दूर से भी आने लगेंगे। क्योंकि यहां कौन है जो अमृत की तलाश नहीं करना चाहता है! यहां कौन है जो आनंद की खोज में नहीं है? गलत दिशाओं में खोज रहे हैं लोग, लेकिन खोज तो लोग आनंद ही रहे हैं। और जब भी उन्हें कोई ऐसा व्यक्ति मिल जायेगा जो आनंदित है, तो उसका प्रभाव अपरिहार्य है।
रहीम ने कहा हैः
दोनों रहिमन एक से, जौं लौं बोलत नाहिं
जान परत है काक पिक, रितु वसंत के माहिं।
कौआ और कोयल एक-से लगते हैं जब तक बोलें न; लेकिन जब वसंत आ जाता है तब भेद खुल जाता है। जब वसंत आ जाता है तब भेद खुल जाता है। कौआ भी काला है, कोयल भी काली है, ऊपर-ऊपर से कुछ भेद मालूम पड़ता नहीं।
तुम जब बोलो, तुम जब व्यवहार करो, जब तुम किसी का हाथ हाथ में लो, जब तुम किसी को गले लगाओ, तब भेद पता चलेगा। जान परत है काक पिक, रितु वसंत के माहिं। तुम्हारा प्रेम, तुम्हारा माधुर्य, तुम्हारा प्रसाद वसंत बन जाये, उसी वक्त भेद पता चलेगा।
आगिला अगनी होइबा अवधू, तौ आपण होइबा पाणी।
और यह समझ लेना, यह बहुत हैरानी की बात है, मगर समझ लेनी चाहिए।
एक महिला मुझे मिलने आयी। एक बहुत बड़े समृद्ध परिवार की महिला है, सुशिक्षित। उसने मुझे कहा, ध्यान सीखने आयी हूं, लेकिन इसके पहले कि ध्यान सीखूं एक बात पूछनी है। ध्यान सीखने से मेरे दांपत्य में, मेरे पारिवारिक जीवन में कोई अड़चन तो न आयेगी?
इसके पहले कि मैं बोलूं, उसने स्वयं ही कहा, यह तो मैं जानती हूं अड़चन क्यों आयेगी, ध्यान तो अच्छी चीज है; ध्यान से क्यों अड़चन आयेगी? लेकिन मैं पूछ रही हूं, क्योंकि मेरे पति ने मुझसे कहा है कि ध्यान सीखने के पहले यह पूछ लेना।
मैंने उस महिला को कहा कि फिर बेहतर हो तू ध्यान मत सीख, अड़चन तो आयेगी।
और बड़े आश्चर्य की बात तो यह है कि अगर तुम कुछ बुरे काम सीखो तो कुछ ज्यादा अड़चन नहीं आती। जैसे पत्नी या पति शराब पीने लगे तो थोड़ी ही अड़चन आयेगी। जुआ खेलने लगे तो थोड़ी ही अड़चन आयेगी। और सच तो यह है, यह भी हो सकता है कि अड़चन बिल्कुल न आये। और यह भी हो सकता है कि जहां पहले अड़चन थी वह अड़चन भी चली जाये, सुविधा हो जाये।
तुम चौंकोगे थोड़ा, क्योंकि तुम्हें मन के गहरे रहस्यों का बोध नहीं है। पत्नियों को बड़ा मजा आता है पतियों को सुधारने में। अगर पति बिल्कुल ठीक-ठीक हो, पत्नी को रस ही नहीं रह जाता। अगर पति शराब पीता है, सिगरेट पीता है, तो पत्नी ऊपर हावी हो जाती है। पत्नी पवित्र हो जाती है। क्योंकि अभी भारत की स्त्रियों ने इतनी हिम्मत नहीं जुड़ाई है कि शराब पीयें और सिगरेट पीयें। तो खुद तो पी नहीं सकतीं, उसकी हिम्मत नहीं है; सदियों ने तोड़ दी है हिम्मत। कल्पना में भी नहीं आता कि हम शराब पीयें, सिगरेट पीयें, यह तो हो ही नहीं सकता। तो फिर एक सुविधा मिल जाती है, पति की निंदा करने की सुविधा मिल जाती है। और पति पर कब्जा रखने की सुविधा मिल जाती है। पति घर में आता है तो वैसे ही डरा हुआ आता है, क्योंकि सिगरेट पीता है। अगर पति एकदम से सिगरेट पीना बंद कर दे और शराब पीना बंद कर दे तो जो पत्नी बीस साल से मालिक बनी बैठी थी, उसकी सारी मालकियत गिर जायेगी। उसे जो रस था वह रस खो जायेगा। बुराई से लोग इतने परेशान नहीं होते, क्योंकि जो आदमी बुरा कर रहा है वह दीन हो जाता है, और दूसरे के अहंकार को भरने का कारण हो जाता है। हम सभी चाहते हैंः और लोग हमसे दीन हों, हमसे हीन हों। यह हमारी अंतरआकांक्षा है। इसके दो उपाय हैंः एक तो कि हम श्रेष्ठ हो जायें तो वे दीन हो जायें; और दूसरा यह है कि वे दीन हो जायें तो हम जैसे हैं वैसे ही रहे, लेकिन हम श्रेष्ठ हो गये। अक्सर ऐसा हो जाता है, तुम्हारे तथाकथित साधु-संत सिर्फ इसीलिए त्याग और तपश्चर्या, व्रत और उपवास कर पाते हैं कि इससे ज्यादा सुविधापूर्ण अहंकार को भरने का और कोई उपाय नहीं है। इन छोटी- छोटी चीजों को छोड़कर वे सिंहासनों पर विराजमान हो जाते हैं--क्योंकि वे

सिगरेट नहीं पीते, क्योंकि वे पान नहीं खाते, क्योंकि वे तंबाकू नहीं खाते, क्योंकि वे रात में पानी नहीं पीते, क्योंकि वे पानी छानकर पीते हैं, क्योंकि वे यह नहीं खाते वह नहीं खाते। इन क्षुद्र बातों के आधार पर अहंकार को बड़ी प्रतिष्ठा मिल जाती है। इतना सस्ता अहंकार मिलता हो और पुजता हो तो कौन छोड़े! अहंकार के लिए तो आदमी क्या नहीं करने को राजी हो जाता है! ये तो बड़े सस्ते त्याग हैं, इनमें रखा ही क्या है? अगर परिवार में कोई व्यक्ति कुछ हीनतापूर्ण काम कर रहा है, तो दूसरे उसके ऊपर हावी रहने के लिए सुविधा पाते हैं।
मैंने उस महिला को कहा कि यह मैं नहीं कह सकता कि ध्यान करने से अड़चन न आयेगी; ध्यान करने से बड़ी अड़चन आयेगी, क्योंकि घर की पूरी राजनीति बदल जायेगी। घर की राजनीति में बड़ा उलट-फेर हो जायेगा। तू अगर ध्यान करेगी तो अड़चनें शुरू होंगी। तू शांत होगी, पति आगबबूला होंगे और तू शांत ही रहेगी। तो तू सोचती है पति के अहंकार को कितनी चोट पहुंचेगी? इसलिए तू सोचकर आ, तू जा फिर सोचकर आ। फर्क तो पड़नेवाले हैं। और मैं अनुभव करता हूं रोज फर्क होते हैं।
एक महिला ने कोई तीन वर्ष से ध्यान किया है, अड़चन शुरू हो गयी, क्योंकि
अब उसे कामवासना में कोई रस नहीं है। और पति एकदम विक्षिप्त हुए जा रहे हैं। पति एकदम पागल हुए जा रहे हैं।
मैंने उस महिला को कहा भी कि तू अभिनय कर कम-से-कम, रोज-रोज झगड़ा करने
से क्या फायदा है? पति की मांग है, पूरी कर दे--अभिनय की तरह। उसने कहा, ठीक है। ध्यानी व्यक्ति अभिनय कर सकता है, बड़ी सरलता से। ध्यानी ही अभिनय कर सकता है! भीतर दूर, बाहर से एक खेल कर दे। मगर जब बाहर से पत्नी खेल कर रही हो तो भी पति को अड़चन है। पति मेरे पास आये। उन्होंने कहा कि यह आपने और एक नयी शिक्षा दे दी उसको। अब हम और बुद्धू मालूम पड़ते हैं। वह खेल कर रही है। और जब कोई दूसरा सामने खेल कर रहा हो और हमें साफ पता है कि उसे कोई रस नहीं है, रस दिखला रही है, तो हमें और ग्लानि होती है। आपने हमारा सारा जीवन बर्बाद कर दिया।
तो मैंने उस महिला को कहा, तू फिर से पूछकर आ, समझकर आ। फर्क तो होंगे। ध्यान तेरी ऊंचाइयां बढ़ायेगा, गहराइयां बढ़ायेगा। निश्चित ही घर की सारी व्यवस्था बदल जायेगी। क्योंकि जो कल तुझसे ऊंचे थे, नीचे पड़ने लगेंगे। जो कल तुझसे गहरे थे, उथले पड़ने लगेंगे। उन सब के अहंकार को चोट लगेगी। वे बदला लेंगे।
पांच साल हो गये, वह महिला नहीं लौटी।
ख्याल रखना, जैसे ही तुम्हारे जीवन में थोड़ी अंतरज्योति जगेगी, अंतर पड़ेंगे; मत कहो तो भी अंतर पड़ेंगे। भेद को छिपाये रखो तो भी अंतर पड़ेंगे। तुम वैसा ही तो व्यवहार नहीं कर सकते जैसा कल तक करते थे। वसंत आ गया, अब तो कौए और कोयल का भेद साफ हो जायेगा। कौए नाराज होंगे। कौए कोयलों पर बड़े नाराज हैं। स्वभावतः, कोयल कूकती है, सारे लोग गदगद हो जाते हैं। कौआ भी बेचारा बड़ी चेष्टा करता है कि कोई तो ताली बजाए। लोग ताली बजाते हैं-- उड़ाने के लिए कि जाओ, भागो, कि अब दुबारा इधर न आना।
एक कौआ उड़ा जा रहा था। कोयल ने पूछा कि चाचा कहां जाते हो? उसने कहा, मैं पूरब जा रहा हूं। इधर नहीं रहना अब। इधर के लोग गलत हैं। कोई मेरे गीत का, गान का स्वागत नहीं करता है। मैं पूरब जा रहा हूं। मैंने सुना है पूरब के लोग बड़े भले हैं।
कोयल ने कहा कि मैं एक बात आप को कह दूं कि तुम चाहे पूरब जाओ चाहे पश्चिम, चाहे तुम कहीं जाओ; जब तक तुम्हारा कंठ ऐसा है जैसा है, तब तक तुम सभी जगह परेशानी पाओगे। कंठ को बदल लो। पूरब-पश्चिम जाने से कुछ भी नहीं होगा। पूरब के लोग भी ऐसे हैं।
एक सूफी कहानी है। एक आदमी एक नगर के द्वार पर बैठा है, बूढ़ा आदमी। एक सवार रुका, घुड़सवार, और उसने पूछा, इस नगर के लोग कैसे हैं? उस बूढ़े ने पूछा, क्या कारण है तुम्हारे पूछने का, किसलिए पूछते हो? उस घुड़सवार ने कहा कि मैं जिस नगर से आ रहा हूं उस नगर के लोग बड़े अभद्र हैं, मैं उनसे बेचैन हो गया, परेशान हो गया; छोड़ दिया मैंने वह नगर। अब मैं नये नगर में

निवास का इंतजाम करना चाहता हूं। तो मैं तुमसे पूछता हूं इस नगर के लोग कैसे हैं?
उस बूढ़े ने कहा, भइया, तुम आगे बढ़ो, इस नगर के लोग और भी लुच्चे हैं, और
भी बुरे, और भी अभद्र। यहां तो तुम मुसीबत में पड़ जाओगे, तुम कहीं और खोजो। वह घुड़सवार आगे बढ़ गया। उसके पीछे ही एक दूसरी बैलगाड़ी आकर रुकी और एक आदमी ने झांककर देखा और कहा कि बाबा, इस गांव के लोग कैसे हैं? मैं नया निवास खोज रहा हूं।
उस बूढ़े ने फिर पूछा कि तुम जिस गांव को छोड़ आये हो उस गांव के लोग कैसे थे?
उस आदमी की आंखों में आंसू आ गये। उसने कहा, मैं छोड़ना नहीं चाहता था मजबूरी में छोड़ना पड़ा। उस गांव के लोग बड़े प्यारे थे। अब कहीं भी रहूं लेकिन उस गांव के लोगों की याद मुझे सताती रहेगी। मजबूरी थी, आर्थिक रूप से परेशान हो गया। छोड़ा है इसीलिए कि कुछ कमा लूं, कहीं और अपने भाग्य को आजमा लूं। और आकांक्षा एक ही है कि जब भी भाग्य साथ दे देगा, वापिस लौट जाऊंगा। बसूंगा तो उसी गांव में, अंततः तो उसी गांव में मरना चाहूंगा। अगर जी न सका तो कम-से-कम मरना तो उसी गांव में चाहूंगा।
उस बूढ़े ने कहा, तुम्हारा स्वागत है, तुम इस गांव के लोगों को उस गांव
से भी ज्यादा प्यारे पाओगे। अंदर आ जाओ।
एक आदमी जो बैठा ये सारी बातें सुन रहा था, पहले घुड़सवार की भी बात सुनी थी, इस बूढ़े का उत्तर सुना था; इस बैलगाड़ीवाले आदमी की भी बात सुनी, इस बूढ़े का उत्तर सुना। उस आदमी ने कहा, तुमने मुझे हैरानी में डाल दिया। एक आदमी को कहा कि इस गांव में बड़े लुच्चे और लफंगे हैं, तुम हट जाओ; और दूसरे को कहा इस गांव के बड़े प्यारे लोग हैं, तुम्हें कहीं जाने की जरूरत नहीं, स्वागत तुम्हारा! वह बूढ़ा कहने लगा, आदमी वैसे ही होते हैं जैसे तुम होते हो। आदमी सब जगह एक जैसे हैं। असली सवाल तुम्हारा है। ख्याल रखना!
आगिला अगनी होइबा अवधू, तौ आपण होइबा पाणी।
दूसरा आग हो जाये तो तुम पानी हो जाना, आग बुझ जायेगी। और जो व्यक्ति ध्यान के जगत में उतरता है, अंतर्यात्रा पर जाता है, उसे रोज-रोज ऐसे लोग मिल जायेंगे जो आग हो जायेंगे। तुम चकित होओगे जानकर यह बात, फ्रेडरिक नीत्से, जर्मनी के बड़े विचारक ने जीसस के खिलाफ बहुत-सी बातें लिखीं, उनमें एक बात यह भी लिखी, जो कि शायद तुमने कभी सोची भी न हो, कोई शायद ही सोचे।
जीसस का वचन हैः "जो तुम्हारे एक गाल पर चांटा मारे, उसके सामने दूसरा गाल भी कर देना। जो तुम्हारा कोट छीन ले, उसे कमीज भी दे देना। और जो तुमसे कहे कि चलो एक मील मेरा बोझ ढोते हुए तो उसके साथ दो मील चले जाना।" यह बड़ा प्यारा वचन है। जीसस अपनी भाषा में कह रहे हैंः आगिला अगनी होइबा अवधू तौ आपण होइबा पाणी। तो तुम पानी हो जाना दूसरा आग हो तो। एक गाल पर चांटा मारे तो दूसरा कर देना।
जीसस ने कभी कल्पना में भी न सोचा होगा कि कोई इसका भी खंडन करेगा। नीत्से ने और बातों के खंडन में इसका भी खंडन किया है। नीत्से ने कहा है, यह अपमानजनक व्यवहार है। अगर मैं किसी के गाल पर चांटा मारूं और वह दूसरा गाल मेरे सामने कर दे, तो वह मुझे कीड़ा-मकोड़ा समझ रहा है! उसने मुझे आदमी होने का भी समादर नहीं दिया।
थोड़ा सोचना! नीत्से कहता है, जब मैं किसी के गाल पर चाटा मारूं और वह अगर सच में मेरा सम्मान करता है तो उसे भी मुझे चांटा मारना चाहिए। तो हम समान हुए। और जीसस तो बड़ी अहंकार की बात सिखा रहे हैं। वे कह रहे हैं, वह क्या है, दो कौड़ी का आदमी! चलो, मार लिया मार लिया। जैसे कहते हैं न कि हाथी चलता जाता है, कुत्ते भौंकते रहते हैं। मगर हाथी का चलते जाना, कुत्तों का भौंकना सिर्फ यही कह रहा है कि हाथी कहता है भौंकते रहो, तुम्हारे भौंकने में मूल्य क्या है? तुम हो किस मूली की जड़! भौंकते रहो, व्यर्थ शोरगुल मचाते रहो; मेरा क्या बनता-बिगड़ता है, मैं हाथी हूं! मगर यह तो बड़े अहंकार की बात है, नीत्से कहता है। नीत्से ने कहा है कि यह तो बड़ी अहंकार की बात है, कि मैं बड़ा पवित्र आत्मा हूं। तुमने चांटा मारा, लो दूसरा गाल भी।

तो तुम यह मत सोचना कि जब कोई दूसरा आग हो जाये तो तुम पानी हो जाओ तो इससे वह शांत हो जायेगा। जरूरी नहीं है। हो सकता है वह और आग हो उठे। तब तुम्हें और पानी होना पड़ेगा। कोई नहीं जानता कि वह कैसा व्यवहार करेगा। इस भ्रांति में मत रहना। बहुत-से लोग इस भ्रांति में रहते हैं कि जब हम पानी हो जायेंगे तो दूसरा भी पानी-पानी हो जायेगा। वह तुम्हारी भ्रांति है, तुम समझे ही नहीं फिर सूत्र को। जरूरी नहीं है कि दूसरा पानी हो जाये; दूसरे की आग और प्रज्वलित हो सकती है कि अच्छा, तो तुमने अपने को कोई महात्मा समझा है! कि मैंने चांटा मारा और तुम दूसरा गाल कर रहे हो!
और तुमने अगर इसीलिए दूसरा गाल किया है कि इससे दूसरा आदमी विनम्र हो जायेगा, तो तुमने भी गलत कारण से किया है। तुम भी समझे नहीं राज। यह तो फिर दूसरे को हराने की ही तरकीब हुई। यह तो फिर चांटा ही मारना हुआ। यह बड़ा सूक्ष्म चांटा हो गया। यह परोक्ष चांटा हो गया। मगर तुमने चांटा तो मार दिया दूसरे के चेहरे पर कि देख, तू है कुत्ता और हम हैं हाथी; भौंक, हमारा क्या बिगड़ता है! यह दूसरा रहा गाल, इस पर भी मार ले और हो जा नीचा!
मैंने सुना है, एक ईसाई फकीर को एक आदमी ने चांटा मारा। फकीर ऐसे ही रहा होगा जैसे फकीर होते हैं। उसने दूसरा गाल कर दिया, नियम के अनुसार। उस आदमी ने दूसरे पर भी चांटा मारा--और करारा मार दिया! उसने कहा यह भी अच्छा मौका मिला कि अगर बुद्धू दूसरा गाल दे रहा है तो इसको भी क्यों छोड़ना! उसने और करारा मारा। लेकिन जैसे ही उसने करारा मारा, वह बहुत चौंका। दूसरे गाल के दिखाने से नहीं चौंका था इतना, जितना चौंका, क्योंकि तब वह फकीर एकदम झपट्टा मार कर उसकी छाती पर चढ़ बैठा और लगा मारने। उस आदमी ने कहा, अरे भाई, तुम फकीर हो, ईसाई फकीर, और तुम यह क्या कर रहे हो? फकीर ने कहा कि तीसरा तो कोई गाल है नहीं, अब मैं तुझे मजा चखाऊंगा। जीसस के नियम का पालन हो चुका, अब हम से मुकाबला है।
फकीर तो मस्तंड था! उसने बड़ी धुनाई कर दी। उसने कहा कि जीसस ने कहा दूसरा गाल; दूसरा गाल खत्म, अब तो हम स्वतंत्र हैं।
तुम दूसरे को हराने के लिए अगर दूसरा गाल कर रहे हो तो इसी फकीर की हालत में हो; जल्दी ही तुम उछल पड़ोगे।
जिस दिन जीसस ने यह कहा था कि जो तुम्हारा अपमान करे, निंदा करे, उसे क्षमा कर देना--एक शिष्य ने पूछा, कितनी बार? सोच लो, जो शिष्य रहा होगा उसका मतलब साफ है।... कितनी बार? वह यह कह रहा है कि आप सीमा बनाओ, उसके बाद फिर हम मुख्तयार होंगे खुद। जीसस ने कहाः सात बार। उस आदमी ने कहा, ठीक है। मगर जिस ढंग से उसने कहा ठीक है, उसका मतलब था कि आठवीं बार देख लेंगे। और ऐसा भी होता है न, कि सौ सुनार की एक लुहार की। एक में ही ठिकाने लगा देंगे, तुम घबड़ाओ न। सात दफे टुच-पुच जो वह करता है सुनार की तरह खटर-खटर-खटर... । एक ही... लुहार का जो हथौड़ा पड़ेगा, छठी का दूध याद आ जायेगा!
तो जीसस ने कहा कि नहीं, सात बार नहीं, सतत्तर बार! लेकिन क्या होगा, सतत्तर बार से भी क्या होगा? अगर वृत्ति वैसी है तो अट्ठतरवें बार... । नहीं सात सौ सात बार से भी कुछ न होगा। इसलिए तो दुनिया-भर के इतने अच्छे नियम बनते हैं लेकिन कोई परिणाम नहीं होता, क्योंकि हर नियम की सीमा आ जाती है। हर नियम की मर्यादा है। इसीलिए तो नियम को मर्यादा कहते हैं। मर्यादा का मतलब होता है उसकी सीमा है। कोई नियम असीम नहीं हो सकता, आत्मा ही असीम हो सकती है। इसलिए यह नियम नहीं है। इसको तुम आत्मभाव की तरह समझना।
मन मैं रहिणा, भेद न कहिणा, बोलिबा अमृत-बाणी।
आगिला अगनी होइबा अवधू, तौ आपण होइबा पाणी।।
यह तुम्हारे अंतर का भाव होना चाहिए, किसी नियम का अनुसरण नहीं। यह भाव तुम्हारे प्रेम से जगना चाहिए, तुम्हारी बुद्धि से नहीं, तुम्हारे गणित से नहीं। यह तुम्हारी सहज दशा होनी चाहिए। यह तो तभी होती है जब तुम अपने आत्मभाव में परिपूर्ण लीन हो जाते हो।
और ख्याल रखना, एक अपूर्व क्रांति घटती हैः जब तुम अपने आत्मभाव में पूर्ण लीन हो जाते हो, तभी तुम्हें पता चलेगा कि आत्मा नहीं है, परमात्मा है। तुम्हारी अपनी आत्मा से जितनी दूरी है उसके कारण ही परमात्मा अलग मालूम पड़ रहा है। जिस दिन तुम्हारी आत्मा से दूरी समाप्त हो गयी, परमात्मा

की भी दूरी समाप्त हो गयी। फिर आत्मा ही परमात्मा है। फिर तुम एकरंग हुए।
फिर तुम अद्वैत हुए।
रहिमन प्रीति सराहिये, मिले होत रंग दून।
ज्यों जरदी हरदी तजै, तजै सफेदी चून।।
ऐसे एक हो जाओ...
रहिमन प्रीति सराहिए...
तभी प्रीति की सराहना की जा सकती है कि दो रंग का एक का रंग हो जाये।
मिले होत रंग दून।
वे जो दो थे अब तक, उनका रंग एक हो जाये।
ज्यों जरदी हरदी तजै...
जैसे तुमने देखा न हल्दी और चूना मिल जाते हैं तो दोनों अपना रंग छोड़ देते हैं
ज्यों जरदी हरदी तजै...
हल्दी अपना पीलापन छोड़ देती है।
तजै सफेदी चून।
और चूना अपनी सफेदी छोड़ देता है, एक नया रंग पैदा होता है, लाली पैदा होती है। दोनों मिलकर लाल हो जाते हैं। ऐसे तुम और परमात्मा से जब एक हो जाओ तो प्रेम घटा। और यह घटना कभी भी घट सकती है, जब तुम अंतर्मुख होने लगो। वहां परमात्मा छिपा तुम्हारी प्रतीक्षा करता है।
गोरष कहैं सुणहुरे अवधू, जग मैं ऐसे रहणां।
आंषैं देखिबा काणैं सुणिबा मुष थैं कछू न कहणां।।
इस भांति जग में रहना--जैसे दर्पण। दर्पण... तो छाया बनती है; सुंदर आदमी का सुंदर बिंब बनता है, कुरूप आदमी का कुरूप बिंब बनता है। मगर दर्पण कुछ कहता नहीं, दर्पण वक्तव्य नहीं देता। दर्पण यह भी नहीं कहता कि अहा, कितने सुंदर! दर्पण यह भी नहीं कहता कि चलो, चलो, आगे बढ़ो; कहां का भयानक कुरूप आदमी मुझमें प्रतिबिंब बना रहा है, कि मुझे भी कुरूप किये दे रहा है! दर्पण तो साक्षी रहता है। यह साक्षी का सूत्र है।
गोरष कहैं सुणहुरे अवधू, जग मैं ऐसे रहणां।
यह जग में रहने की कला है--साक्षी-भाव।
आंषैं देषिबा काणैं सुणिबा मुष थैं कछू न कहणां।
देख लेना, सुन लेना, गुजर जाना। यह सिर्फ नाटक है, यह पर्दे पर चलती फिल्म है। यहां केवल धूप-छाया का खेल है। इसमें बहुत मत उलझ जाना।
मुल्ला नसरुद्दीन फिल्म देखने गया। पहली-पहली बार फिल्म देखने गया था। पहला शो खतम हो गया, मगर वह उठा नहीं। मैनेजर ने आकर कहा थिएटर के, कि अब जाओ मुल्ला, शो खतम हो गया। मगर वह उठा नहीं। उसने कहा कि पैसे लो दूसरे शो के, मगर दूसरा भी देखूंगा। दूसरा भी देख लिया, फिर भी हटा नहीं। जब मैनेजर ने कहा कि मुल्ला क्या कर रहे हो अब, उसने कहा कि पैसे ले लो, तीसरा भी देखूंगा। उस मैनेजर ने पूछा, लेकिन बात क्या है, वही फिल्म बार-बार देखना? उसने कहा, कारण तुम्हें समझना है, समझ लो। एक चित्र आता है जिसमें कुछ स्त्रियां अपने कपड़े उतारकर तालाब में उतर रही हैं। बस उन्होंने सब कपड़े उतार दिये हैं, आखिरी कपड़ा रह गया है और तभी एक रेलगाड़ी गुजर जाती है। तालाब के किनारे से पटरी है रेल की, सो रेलगाड़ी आ जाती है। रेलगाड़ी की आड़ में स्त्रियां छिप जाती हैं। जब तक रेलगाड़ी निकलती है तब तक वे पानी में उतर चुकीं। तो मैं यह देख रहा हूं कि रेलगाड़ी कभी तो लेट होगी। मैं जानेवाला नहीं हूं। आखिर है तो हिंदुस्तानी रेलगाड़ी, कभी तो लेट होगी। मैं तो पूरा ही खेल देखकर जाऊंगा।
हंसो मत, क्योंकि तुम भी फिल्म जब देखते हो तो ऐसे ही प्रभावित हो जाते हो। जब छोटे-छोटे गांवों में पहली-पहली दफे फिल्म चलती है तो लोग पैसे फेंकने लगते हैं; जैसा कि गांवों में आदत है। नौटंकी वगैरह होती है, कोई नाचा, तो उन्होंने पैसे फेंके। फिल्म पर पैसे फेंकने लगते हैं, छोटे- छोटे गांवों में। मैंने देखा है छोटे गांवों में लोगों को पैसा फेंकते फिल्म पर। कोई नाच रही है नर्तकी, वे पैसा फेंकने लगते हैं। कोई नर्तकी जब नाचती है और उसका घाघरा ऊपर उठने लगता है नाच में तो वे झुक-झुक कर नीचे

देखने लगते हैं। वहां कुछ भी नहीं है, धूप-छाया का खेल है। पर लोग, लोग ही जैसे लोग हैं। यही उनका जिंदगी भर का ढंग है।
और यह छोटों की बात नहीं। ईश्वरचंद्र विद्यासागर के जीवन में उल्लेख है, एक नाटक देखने गये... बंगाल के प्रसिद्ध पंडित, ख्यातिनाम व्यक्ति, बड़े सदाचारी... तो उनको पहली ही पंक्ति में बिठाया गया था। नाटक चला। नाटक में एक दुष्ट पात्र है वह सब तरह की दुष्टताएं कर रहा है। सदाचारी ईश्वरचंद्र विद्यासागर को बड़ा गुस्सा आ रहा है। सदाचारियों को बड़ी जल्दी गुस्सा आ जाता है। इतना क्रोध चढ़ने लगा उसकी हरकतों पर, कि जब आखिरी हरकत उसने की तो वे बर्दाश्त न कर सके। आखिरी हरकत यह थी कि उसने एक स्त्री को जंगल में से गुजरते हुए पकड़ लिया, खींचकर उसकी साड़ी उतारने लगा। अब ईश्वरचंद्र का बस नहीं रहा।
जैसे कहानी है न कि जब द्रौपदी की साड़ी उतारी जाने लगी तो कृष्ण एकदम
से आ गये और बढ़ा दिया उन्होंने द्रौपदी का पल्ला और पल्ला बढ़ता ही चला गया... । ईश्वरचंद्र भी कैसे छोड़ें! भूल ही गये कि नाटक है, निकाल लिया जूता, चढ़ गये मंच पर, लगे पीटने उस आदमी को। उस आदमी ने ज्यादा बुद्धिमत्ता का लक्षण बताया। उसने उनका जूता अपने हाथ में ले लिया, अपने सिर पर रख लिया और कहा कि आपने जितना सम्मान मुझे दिया किसी ने नहीं दिया। मैं यह नहीं सोचता था कि मेरा अभिनय इतना कुशल है कि आप जैसा बुद्धिमान और धोखा खा जाये! यह तो सिर्फ अभिनय है। पहली तो बात, यह कोई औरत नहीं है, यह हमारे मैनेजर साहब हैं। धोती पूरी मैं खुद भी नहीं खींच सकता था। आप नाहक मेहनत किये, जरा गौर से तो देखो, मैनेजर साहब को पहचानते नहीं आप? और जूता आपको लौटाऊंगा नहीं, क्योंकि यह मेरा पुरस्कार है।
वह जूता अब भी रखा है उसके परिवार में, सम्हाल कर उन्होंने एक कांच की मंजूषा में वह जूता रखा है--इसी याददाश्त में कि कभी उनके घर में एक ऐसा कलाकर भी हुआ था, जिसके अभिनय को देखकर ईश्वरचंद्र विद्यासागर भी धोखा खा गये थे।
तो छोटे-छोटे आदमियों की बात छोड़ दो, तुम्हारे बड़े-बड़े पंडित भी बहुत भिन्न नहीं हैं। और यह तुम्हारे जीवन-भर की आदत है। तुम जल्दी ही कर्ता हो जाते हो, साक्षी नहीं रह पाते। और साक्षी होने में सार है।
गोरष कहैं सुणहुरे अवधू, जग मैं ऐसे रहणां।
आंषैं देषिबा काणैं सुणिबा मुष थैं कछू न कहणां।।
कर्ता में ही तुम्हारा अहंकार है। जिस दिन तुम साक्षी हुए, अहंकार गया। फिर क्या अहंकार बचता है? सिर्फ देखनेवाले हो, दर्शक। दर्पण का क्या अहंकार? और जिसका अहंकार गया, उसका बोझ गया। जो निरबोझ हुआ, वही उड़ सकता है परमात्मा तक।
भार झौंकि कै भार में, रहिमन उतरे पार
पै बूड़े मझधार में, जिनके सिर पर भार।
रहीम ने कहा, भार को तो भाड़ में ही झोंक दिया।
भार झौंकि कै भार में...
वह जो भार था उसको भाड़ में झोंक दिया।
रहिमन उतरे पार।
पै बूड़े मझधार में... ।
लेकिन वे बेचारे डूब गये मझधार में,
जिनके सिर पर भार।
भार क्या है? अहंकार का, कर्ता का। जैसे ही तुम साक्षी हुए, निर्भार हुए। साक्षी हुए कि शून्य हुए। दर्पण तो सदा शून्य है; प्रतिबिंब बनते हैं, मिटते हैं, दर्पण का क्या बनता मिटता है! दर्पण तो सिर्फ देखता है। आषैं देषिबा काणैं सुणिबा मुष थैं कछू न कहणां।।
रहिमन पैड़ा प्रेम को, निपट सिलसिली गैल,
बिछलत पांव पिपीलिको, लोग लदावत बैल।
कहते हैं, यह जो प्रेम का पंथ है परमात्मा की तरफ जानेवाला...
रहिमन पैड़ा प्रेम को...
यह जो प्रेम का पंथ है,
निपट सिलसिली गैल,

यह बड़ी सिलसिली गैल है।
बिछलत पांव पिपीलिको,
यहां तो चींटी के भी पैर फिसल जाते हैं। उतना भी बोझ बाधा बन जाता है। बिछलत पांव पिपीलिको, लोग लदावत बैल।
और लोग हैं कि बैलों को लादकर चलने की कोशिश कर रहे हैं--जहां चींटियां भी फिसलकर गिर जाती हैं; जहां जरा-सा सूक्ष्म अहंकार भी गिरा देने के लिए काफी है--चींटी जैसा अहंकार... ! वहां लोग बैल लादे हुए चलने की कोशिश कर रहे हैं। अहंकार जितना बड़ा, उतना ही तुम्हारे ऊपर बोझ है। अहंकार बिल्कुल ही चला जाये... और कैसे जाता है? सूत्र यही है, बुनियादी सूत्र यही है, विज्ञान यही हैः कर्ता मत बनो और अहंकार विदा हो जायेगा, साक्षी रहो। नाथ कहै तुम आपा राषौ हठ करि बाद न करणां।
यहु जग है कांटे की बाड़ी देषि देषि पग धरणां।।
कहते हैं गोरख, तुम आपा राषौ! अहंकार जाने दो, आत्मा को बचाओ। आत्मा और अहंकार दो अलग-अलग चीजें हैं। अहंकार भ्रांति है तुम्हारी; तुम्हारी ही निर्मित प्रक्रिया है। और आत्मा परमात्मा का प्रसाद है। आत्मा वह है जो तुम लेकर आये हो, अहंकार वह है जो तुमने अर्जित कर लिया। आत्मा तो दर्पण जैसी है, साक्षी मात्र; अहंकार कर्ता हो गया है, भोक्ता हो गया है।
नाथ कहै तुम आपा राषौ!
बस आत्मा बच जाये, बहुत; अहंकार को जाने दो। और अहंकार जाये तो ही आत्मा का पता चले कि मैं कौन हूं। अभी तो तुमने न मालूम क्या-क्या अपने को समझ रखा है। कोई समझता है मैं डाक्टर हूं, कोई समझता है मैं इंजीनियर हूं। कोई समझता है मैं यह, कोई समझता है मैं वह। आत्मा न तो डाक्टर है, न तो इंजीनियर है, आत्मा तो बस खाली दर्पण है। इंजीनियर की छाप पड़ गयी, तुम इंजीनियर हो गये। इंजीनियरिंग कालेज में पढ़ आये, तुम इंजीनियर हो गये। डाक्टर हो गये, वकील हो गये, मजिस्ट्रेट हो गये, दुकानदार हो गये, यह हो गये, वह हो गये। जो तुम्हारे चित्त पर छाप डाल दी गयी वही तुम हो गये। और कभी-कभी तो भूल से छाप पड़ जाती है।
कल मैं एक व्यक्ति की जीवन-कथा पढ़ रहा था। जब वह आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी में पढ़ने गया, नया-नया, तो बड़ा संकोची था, लज्जालु था। उससे क्लर्क ने पूछा, क्या पढ़ना है? तो उसने कहा थियोलाजी, धर्मशास्त्र। लेकिन क्लर्क ने समझा जियोलाजी, भूगर्भशास्त्र। संकोची आदमी था, क्लर्क ने जियोलाजी लिख दिया, उसने देख भी लिया कि जियोलाजी, मगर संकोची ऐसा था कि नहीं बोला कुछ, कहा कि ठीक है। जियोलाजी पढ़ा। छह साल पढ़ कर जियोलाजी में गोल्डमेडल लेकर निकला, तब उसने जाहिर किया लोगों को कि यह बिल्कुल ही दुर्घटना है, हम थियोलाजी पढ़ने आये थे और दुर्भाग्य कि जियोलाजिस्ट हो गये; और न छोटे-मोटे जियोलाजिस्ट--गोल्डमेडलिस्ट! अब तो फंस गये जिंदगी भर को, अब तो कोई उपाय न रहा।
और उसने तब बताया कि छह साल किस मुसीबत से गुजरा हूं, मैं ही जानता हूं। संकोच ही संकोच में एक साल बीत गया, फिर यह सोचा कि अब कहना और बुद्धूपन होगा। एक साल क्यों गंवाया? फिर दो साल बीत गये, फिर और बुद्धूपन होगा। फिर तो डिग्री भी एक मिल गयी, फिर और मुश्किल हो गयी। फिर मैंने सोचा, अब जो होना था हो गया, भगवान की यही मर्जी कि जियोलाजिस्ट ही होना है, तो जियोलाजिस्ट ही होकर मरना है। वह जगत का प्रख्यात जियोलाजिस्ट हो गया। गये थे हरिभजन को ओटन लगे कपास!
तुम क्या हो?
उसकी जब मैं यह बात पढ़ रहा था तो मुझे याद आया अपना संयोग। मैं जब कालेज में भर्ती होने गया तो मैं कलम भूल गया ले जाना, तो मैं वहां खड़ा था कि किसी से कलम मिल जाये। एक युवक वहां कलम लिये खड़ा था, फार्म भर रहा था, लेकिन बड़े सोच में पड़ा था। तो मैं पूछाः भाई, तू जब तक सोच, कलम मुझे दे दे। मैंने अपना फार्म भरा। उसने मेरा फार्म देखा, उसने कहा कि ठीक है, उसने वही फार्म खुद भी भर दिया। मैंने पूछा कि तू मेरा फार्म देखकर भरा है? उसने कहा, मैं इसी सोच में पड़ा था कि क्या भरना है, कौन-से विषय पढ़ना है? आपने बड़ी कृपा की कि आ गये, कि मुझे विषय का बोध हो गया कि यही विषय भर देना है।
चूंकि मैं फिलासफी भरा था, उसने भी फिलासफी भर दी।

अब वे फिलासफी के प्रोफेसर हो गये हैं। और कुल मामला इतना था कि उनके पास कलम थी और मेरे पास कलम नहीं थी, इस कारण। अब उनसे तुम पूछो, आप कौन हैं? वे कहते हैं, हम प्रोफेसर हैं, फिलासफी के प्रोफेसर।
ये सांयोगिक बातें हैं। यह तुम नहीं हो, तुम तो वह हो जो तुम मां के पेट में थे, उसके भी पहले थे। तुम तो वह हो जो तुम अपनी गहरी से गहरी नींद में भी होते हो--न डाक्टर, न इंजीनियर, न प्रोफेसर। तुम तो वह हो जो तुम मौत के बाद भी होओगे। तुम आत्मा हो; वही तुम्हारा स्वभाव है, स्वरूप है।
नाथ कहै तुम आपा राषौ हठ करि बाद न करणां।
तुम अपनी आत्मा सम्हालो और व्यर्थ के विवाद में मत पड़ना कि आत्मा है
या नहीं है; है तो कैसी है; लाल है कि काली कि पीली कि हरी। व्यर्थ विवाद में मत पड़ना, नहीं तो विवाद में ही जीवन गंवा दोगे। आंख भीतर मोड़ो, जो है उसे देखो। किससे पूछना है, कौन तुम्हें उत्तर दे सकता है? उत्तर तुम्हें अपने भीतर पाना है। किताबों में मत जाओ, सिद्धांतों में मत जाओ और व्यर्थ के विवादों में मत पड़ो।
लोग घंटों विवादों में लगे रहते हैं, जिंदगी विवादों में गुजार देते हैं। कुछ हैं जो कहते हैं आत्मा नहीं है, कि आत्मा मर जायेगी। वे भी अभी मरे नहीं हैं, मगर कहते हैं आत्मा मर जायेगी। कुछ हैं जो कहते हैं कि नहीं, आत्मा अमर है, मर कर भी रहेगी; आत्मा शाश्वत है। अभी ये भी नहीं मरे, विवाद चल रहा है! किस विवाद में पड़े हो? आत्मा है तुम्हारे भीतर; मरेगी नहीं मरेगी, यह कल की बात है। अभी जो है कम-से-कम उससे पहचान तो करो! जरा तलाश तो करो, खोज तो करो! अगर नहीं होगी तो नहीं मिलेगी। नहीं मिले तो कह देना कि नहीं है। मगर जो भी भीतर गया है उसमें से एक ने भी लौटकर नहीं कहा है कि नहीं है। निरपवाद रूप से जिन लोगों ने अंतस में गमन किया है उन्होंने कहा है--है। और जो कहते हैं नहीं है, वे भीतर गये ही नहीं हैं।
मार्क्स कभी ध्यान नहीं किया, कहता है आत्मा नहीं है। यह बात बड़ी मूढ़तापूर्ण है। ध्यान तो करते! यह तो ऐसा हुआ कि कोई आदमी कहे कि पानी पीने से प्यास नहीं बुझती और पानी उसने कभी पीया न हो, क्या उसकी तुम मानोगे? और मार्क्स कहता है कि मैं वैज्ञानिक समाजवादी हूं। क्या खाक विज्ञान है? विज्ञान की प्राथमिक शर्त भी पूरी नहीं की। विज्ञान की पहली शर्त हैः वही कहना जो प्रयोग से सिद्ध है। विज्ञान की और क्या शर्त होती है? मार्क्स कहता हैः धर्म अवैज्ञानिक है। मगर प्रयोग की शर्त तो पूरी करो। बुद्ध ने ध्यान किया, महावीर ने ध्यान किया, जीसस ने ध्यान किया, लाओत्सु ने ध्यान किया, गोरख ने ध्यान किया, जिन्होंने भी ध्यान किया उन्होंने कहा--है। भीतर गये तो कैसे इंकार करें? जब है तो कैसे इंकार करें? जो आंख खोलेगा, कैसे सूरज से इंकार करेगा? हां, आंख जो बंद किये बैठा है वह इंकार कर सकता है। उल्लू इंकार कर सकते हैं, वे आंख बंद किये बैठे हैं। जब तुम्हारी सुबह होती है, उल्लू की रात होती है।
इधर पास में अलमंड के एक झाड़ पर एक दिन मैंने एक उल्लू की बात सुनी। सुबह सुबह हो रही है, सूरज निकल रहा है। एक उल्लू आकर बैठा। पास ही एक गिलहरी बैठी सुबह की ताजगी में तैयार हो रही है, दिन की यात्रा शुरू होने को है। एक महत दिन फिर पैदा हुआ। अभी-अभी जाग रही है... । उल्लू ने गिलहरी से पूछा कि ऐ गिलहरी, रात होने के करीब है, इस वृक्ष पर विश्राम ठीक होगा? गिलहरी ने कहा, क्षमा करें, रात नहीं सुबह हो रही है। उल्लू ने कहा, चुप, बकवास बंद कर। मैं जानता हूं कि रात हो रही है, अंधेरा घिर रहा है। अब गिलहरी उल्लू से क्या झंझट करे, और झंझट करे कि हमला बोल दे, उल्लू उल्लू है! तो गिलहरी ने कहा, आप ठीक ही कहते होंगे। जब वह दूर शाखा पर हट गयी, उसने कहा अब मैं बताती हूं कि ठीक नहीं कहते, सिर्फ तुम उल्लू हो, तुम्हारी आंख बंद हो रही है। आंख बंद होने के कारण तुम सोचते हो रात आ रही है? आंख खोलो, सूरज निकल रहा है।
मगर उल्लू कैसे मान सकते हैं? उल्लू को रात में दिन होता है, दिन में रात होती है।
जो बाहर जी रहे हैं, उन्हें भीतर आत्मा है इसकी स्वीकृति नहीं हो सकती। जो भीतर आंख को मोड़ते हैं, भीतर आंख को खोलते हैं, वे ही केवल कह सकते

हैं। तो तुम वाद-विवाद में मत पड़ना, व्यर्थ समय खराब मत करना। जितना वाद-विवाद में समय हो उतना ध्यान में लगा देना।
यहु जग है कांटे की बाड़ी!
यहां बहुत उलझनें हैं, यहां बहुत कांटे हैं। और वाद-विवाद बड़े से बड़ा कांटा है। क्योंकि वाद-विवाद में लोग जिंदगी गंवा देते हैं। फिर जिद्दें पैदा हो जाती हैं, हठ पैदा हो जाते हैं।
हठ करि बाद न करणां!
हठ पैदा हो जाता है कि जो मैंने कहा वह ठीक होना ही चाहिए, क्योंकि अहंकार दांव पर लग गया। लोगों के विवाद सत्य के कारण थोड़े ही हो रहे हैं, सत्य से किसको लेना-देना है! विवाद होते हैं अहंकारों के कारण। मैं ठीक कि तुम ठीक, यह असली सवाल है। ठीक से किसी को क्या लेना है? लेकिन मैंने जो कहा वह ठीक होना ही चाहिए, क्योंकि मैंने कहा है। ख्याल रखना, विवादी का वक्तव्य यही होता है कि जो मैं कहता हूं वह ठीक है, क्योंकि मैं कहता हूं। यह कोई सत्य के खोजी की बात नहीं है। सत्य का खोजी यह कहता है--मैं क्या कहूं; सत्य जहां हो मैं उसी के साथ खड़ा होने को राजी हूं।
दुनिया में दो तरह के लोग हैं। एक, जो कहते हैं सत्य को मेरे पीछे खड़ा होना होगा; जहां मैं खड़ा होऊं, वहीं सत्य को खड़ा होना होगा; सत्य मेरी छाया बने। यह विवादी है। और जो कहता है मैं सत्य की छाया बनूं; जहां सत्य हो मैं वहीं खड़ा हो जाऊंगा। मैं सत्य के प्रति अनुगत हूं। मैं सत्य की छाया बनना चाहता हूं। यह खोजी का लक्षण है।
तो बहुत पैर देख-देख कर रखना, यहां बड़े कांटों की झाड़ियां हैं। और सबसे बड़े कांटों की झाड़ियां सिद्धांतों की हैं। सिद्धांतों में लोग उलझ जाते हैं, ध्यान भूल जाते हैं। अक्सर ऐसा हो जाता है कि परमात्मा के पक्ष में विवाद करनेवालों को भी प्रार्थना करने की फुर्सत नहीं मिलती। यह तो बड़ी व्यर्थ बात हो गयी। भोजन के संबंध में विवाद चलता है, भोजन कब पकाओगे? पानी के संबंध में विवाद करोगे, सरोवर कब खोजोगे?
एक साधै सब सधै, सब साधै सब जाय;
रहिमन मूलहिं सींचिबो, फूलहि फलहि अघाय।
रहीम ने कहाः एक को साध लो सब सध जायेगा; वह एक तुम्हारे भीतर मौजूद है--वह तुम हो। एक साधै सब सधे, सब साधे सब जाये। तुम व्यर्थ के विवाद में, बड़े-बड़े सिद्धांतों में, वेद, कुरान, बाइबिल में, और इनको सिद्ध करने में मत उलझ जाना, अन्यथा सब गंवा बैठोगे। एक को साध लो।
जब श्वेतकेतु अपने गुरु के गृह से वापस लौटा पिता के घर तो उद्दालक ने उससे पूछा कि बेटा, तू क्या-क्या पढ़ कर आया है? तो उसने बताया कि वेद पढ़े, उपनिषद पढ़े, ब्राह्मण-गं्रथ पढ़े, आरण्यक पढ़े, पुराण पढ़े, व्याकरण, भाषा-- जो-जो उस समय में उपलब्ध था--सब पढ़ कर आ गया हूं। जो भी गुरु दे सकते थे, सब लेकर आ गया हूं।
पिता उदास हो गये, कथा कहती है। श्वेतकेतु ने पूछा, लेकिन आप प्रसन्न नहीं हैं, मैं सबसे ऊंची उपाधियां लेकर आया हूं। पूर्ण रूप से सम्मानित होकर आया हूं। मेरे सर्टिफिकेट देखें।
लेकिन पिता ने कहा कि मैं तुझसे एक बात पूछता हूंः तुमने वह एक जाना जिसको जानने से सब जान लिया जाता है? श्वेतकेतु ने कहाः वह एक कौन है? मैंने सब जाना। जो भी उपलब्ध था गुरु-गृह में, गुरुकुल में, मैं सब जानकर आया हूं।
पिता ने कहाः यह कुछ काम का नहीं है। तू जा वापिस, एक को जानकर आ; तू अनेक को जानकर आया है। अनेक से क्या होगा? एक को जानकर आ। तू कौन है, यह जानकर आ। जब तक तूने आत्मा नहीं जानी, तब तक कुछ भी नहीं जाना। और ध्यान रख, मैं बूढ़ा हो गया हूं। शायद तू अब एक को जानकर लौटे, मुझे पाये न पाये; मगर एक बात तुझे कह जाना चाहता हूं, हमारे घर में नाममात्र के ब्राह्मण नहीं हुए हैं, हम ब्रह्म को जानकर अपने को ब्राह्मण कहते रहे हैं। इतना ख्याल रखना। जब तक ब्रह्म को न जान ले तब तक अपने को ब्राह्मण मत समझना। हमारे कुल में पैदायशी ब्राह्मण नहीं हुए हैं, हमारे कुल में ब्रह्म को जानकर ही ब्राह्मण हुए हैं। यही मेरे पिता ने मुझसे कहा था, यही मैं तुझसे कहता

हूं। एक को जानकर आ, तभी तू ब्राह्मण है। ब्राह्मण के घर में जन्म लेने से कोई ब्राह्मण नहीं होता है।
रहिमन मूलहिं सींचिबो, फूलहि फलहि अघाय।
पत्ते-पत्ते मत सींचते फिरो, मूल को सींचो। मूल तुम्हारी आत्मा है। वहीं से द्वार है परमात्मा का। उस एक मूल को सींच देने से खूब पत्तों से भर जाओगे, खूब शाखाएं-प्रशाखाएं होंगी। पक्षी तुम पर बसेरा करेंगे, नीड़ बनायेंगे, तुम्हारी छाया में बैठेंगे। तुम में फल भी लगेंगे, भूखे की प्यास भी मिटेगी, भूख भी मिटेगी। तुम में फूल भी लगेंगे; लोगों के सौंदर्य की क्षुधा भी तृप्त होगी। तुम भरे-पूरे हो जाओगे। मगर एक को सींचो।
आसण दिढ अहार दिढ जे न्यद्रा दिढ होई।
गोरष कहै सुणौं रे पूता, मरै न बूढ़ा होई।।
कैसे उस एक को साधोगे, कैसे उस एक को जानोगे, कैसे उस एक को जानोगे?
आसन दिढ!
बैठना सीखो। ख्याल रखना, आसन से अर्थ सिर्फ शारीरिक आसन का नहीं है; भीतर ऐसे बैठ जाओ कि कोई हलन-चलन न हो। बाहर का आसन तो भीतर के आसन के लिए सिर्फ एक आयोजन है। बाहर शरीर न हिले-डुले, ऐसे बैठ जाओ, थिर। यह तो केवल शुरुआत है, फिर भीतर मन न हिले, कोई कंपन न हो। जब मन और तन दोनों नहीं हिलते, तब आसन। तब बाहर-भीतर तुम ठहर गये, रुक गये। रुक गये यानी अब कोई वासना नहीं है। रुक गये यानी अब कोई आकांक्षा नहीं है। रुक गये यानी चित्त में अब चंचल लहरें नहीं उठ रही हैं। अब चित्त एक झील हो गया है।
आसण दिढ अहार दिढ... !
और उतना ही भोजन लो जितना सम्यक है। व्यर्थ की चीजें मत खाते फिरो। व्यर्थ की चीजें मत अपने शरीर में भरते फिरो! जो जरूरी है, जो आवश्यक है, वह पूरा कर लो। और इसमें दृढ़ता बनाओ।
कुछ लोग हैं जिनका कुल जीवन में काम इतना ही हैः एक तरफ से डालो भोजन
और दूसरी तरफ से निकालो भोजन, इतना ही उनका काम है। ऐसे-ऐसे लोग हैं, जैसे नीरो हुआ सम्राट, वह अपने साथ चार चिकित्सक रखता था। वह भोजन करता, उसको भोजन में बड़ा रस था। मगर कितना ही रस हो, कितनी बार भोजन करोगे? एक बार, दो बार, तीन बार, चार बार, पांच बार, कितनी बार भोजन करोगे? मगर उसका रस ऐसा था कि उसका चित्त भरता ही नहीं था। तो चिकित्सक उसको वमन करवा देते थे। वे चिकित्सक उसके साथ रहते थे; वह भोजन करता, वे जल्दी से उसको वमन करने की दवा देकर वमन करवा देते, ताकि वह फिर भोजन कर सके। यह जरा अतिशयोक्ति मालूम होती है, मगर मैं ऐसे लोगों को जानता हूं जो वमन करते हैं।
एक युवती अमरीका से आयी, वह आज कोई पंद्रह साल से नियम से यह काम कर रही हैः खाना खा लेगी और वमन कर देगी, ताकि फिर खाना खा सके। फिर तो मैं और दो-चार लोगों के संपर्क में आया। मेरे पास तो सब तरह के मरीज आते हैं, जिनका काम ही यही है। और जो नहीं भी ऐसा करते हैं, वे भी ठूस-ठूस कर खाते रहते हैं, जैसे जिंदगी बस भोजन है। जिंदगी कुछ ज्यादा है। जिंदगी भजन भी है! और भोजन को ही जिसने सब समझ लिया, वह बहुत निम्न तल पर जीता है, जब तक भजन न जगे। इतना भोजन करो जितना भजन के लिए जरूरी हो।
मगर तुम अपने साधु-संतों को देखो, तुम बड़े हैरान हो जाओगे। हिंदू संन्यासियों को देखो, तुम बड़े हैरान हो जाओगे, अगर उनकी तोंद न हो तो वे स्वामी ही नहीं! कुल काम... बातें भजन की कर रहे हैं, मगर कर रहे होंगे सिर्फ भोजन। तुम जाकर देख सकते हो और जितनी बड़ी तोंद हो उतना बड़ा स्वामी! कुल काम इतना है--बातें भजन की करते रहो और भोजन करते रहो। तो भोजन करना है, भोजन को चाहना है, इसलिए भजन की बातें करते रहो। यह कैसा संन्यास, ये कैसे साधु!
आसण दिढ अहार दिढ जे न्यद्रा दिढ होई।
तो पहले आसन को सम्हाल लो, फिर भोजन को सम्हाल लो, फिर निद्रा को सम्हाल लो--बस ये तीन बड़ी महत्वपूर्ण बातें हैं, जो तुम सम्हाल सको तो आत्मा को जानने के लिए कोई अड़चन नहीं रह जाती। ये तीन बाधाएं हैं। निद्रा दृढ़ का क्या अर्थ होगा? जिसका आसन सम्हल गया, जो बिल्कुल शांत होकर बैठने में कुशल हो गया, जिसके भीतर विचार की तरंगें चली गयीं, जिसका भोजन सम्हल

गया, जो देह को इतना देता है जितना आवश्यक है, न कम न ज्यादा। कम भी मत देना।
इधर एक तरफ हिंदू साधु हैं, जिनकी तोंद ही प्रमाण है उनकी साधुता का;
और उधर फिर जैन साधु हैं, जिनका हड्डी-हड्डी हो जाना ही प्रमाण है उनकी साधुता का। ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इनमें कुछ भेद नहीं है। एक ज्यादा खा रहा है, एक कम खा रहा है। दोनों ही अति पर चले गये हैं। होना है मध्य में, होना है सम्यक। तो भोजन सम्हाल लो। ये दो चीजें सम्हल जायें तो फिर तीसरी चीज सम्हालने की क्रिया शुरू होती है। फिर निद्रा सम्हाल लो।
निद्रा सम्हालने का क्या अर्थ होगा? यह सूत्र बड़ा गहरा है। निद्रा सम्हालने का अर्थ है, जैसे जागते में विचार शांत हो गये, ऐसे ही स्वप्न भी शांत हो जायें सोते में। हो जाते हैं। क्योंकि स्वप्न भी विचारों के कारण उठते हैं। विचारों का ही प्रतिफलन हैं स्वप्न, विचारों की ही गूंज-अनुगूंज हैं। दिन-भर खूब सोचते हो तो रातभर खूब सपने देखते हो। जो सोचते हो उसी के सपने देखते हो। जो भोजनभट्ट हैं, वे रात भी सपनों में भोजन करते रहते हैं, राजमहलों में उनको निमंत्रण मिलता है। सुस्वाद भोजन चलते रहते हैं। जो कामी हैं, वे कामवासना के स्वप्न देखते रहते हैं। जो धनलोलुप हैं, वे धनलोलुपता के स्वप्न देखते रहते हैं। जो पदलोलुप हैं, वे सपने में सम्राट हो जाते हैं।
तुम्हारे सपने तुम्हारे चित्त के ही विकारों के प्रतिफलन हैं। नींद में भी उनकी गूंज सुनाई पड़ती रहती है। जब तुम शांत होकर बैठना सीख जाआगे, भोजन संयत हो जायेगा... और भोजन के संयत होने में ख्याल रखना, जो भी तुम भीतर डालते हो... वह सभी भोजन में सम्मिलित है। व्यर्थ की किताबें न पढ़ो, क्योंकि वह भी भोजन है, तुम भीतर डाल रहे हो। व्यर्थ की बातें न सुनो, क्योंकि वह भी भोजन है, तुम भीतर डाल रहे हो। कोई कहता ही नहीं किसी से... । अगर तुम्हारे घर में कोई कचरा फेंक जाये, तुम फौरन इनकार करोगे; लेकिन तुम्हारी खोपड़ी में आकर कोई व्यर्थ की अफवाहें डाल जाये, तुम इनकार ही नहीं करते, तुम बिल्कुल कान लगाकर सुनते हो कि हां भाई, और सुनाओ, आगे क्या हुआ? सोचो तो तुम, तुम क्या कचरा मन में भर रहे हो! यह सब आहार है। कान से जाये, आंख से जाये, मुंह से जाये, नाक से जाये, यह सब आहार है। ये सब इंद्रियां भोजन लेती हैं।
तो भोजन दृढ़ करने का अर्थ हैः व्यर्थ को भीतर मत जाने दो। व्यर्थ से सावधान रहो। वही देखो जो देखना जरूरी है। वही सुनो जो सुनना जरूरी है! वही बोलो जो बोलना जरूरी है। और तुम्हारे जीवन में साधुता अपने-आप उतरने लगेगी। और फिर तुम्हारी नींद भी सध जायेगी। फिर नींद में भी तुम शांत रहोगे। स्वप्न विदा हो जायेंगे। और एक अपूर्व घटना घटती है। जिस दिन नींद में स्वप्न विदा हो जाते हैं, उस दिन तुम सोते भी हो और जागे भी रहते हो। इसलिए कृष्ण ने कहा है कि जब सब सो जाते हैं तब भी योगी जागता है। इसका मतलब यह नहीं है कि योगी बैठे हैं या खड़े हैं कमरे में और जाग रहे हैं। इसका अर्थ यह है कि शरीर सो जाता है, मगर भीतर एक ज्योति जलती रहती है। एक होश सधा ही रहता है।
गोरष कहै सुणौं रे पूता!
इसलिए कहते हैं, अपने शिष्यों को कि हे पुत्रो, सुनो।
मरै न बूढ़ा होई!
ऐसा अगर हो जाये तो फिर न तो तुम जानोगे कभी कि बुढ़ापा आया और न तुम जानोगे कि कभी मौत आयी। इसका यह मतलब नहीं है कि बूढ़े नहीं होओगे। शरीर ही बूढ़ा होगा, मगर तुम बूढ़े नहीं होओगे। शरीर ही मरेगा, तुम अमृत हो गये। गोरख के लिए दो नाम प्रचलित हैं। एक नाम हैः गोरखगोपालं। वह सदा ताजे रहे, युवा रहे। दूसरा नाम हैः बूढ़ाबालं। बूढ़े हो गये, लेकिन फिर भी बालक के जैसे रहे, उतने ही ताजे। जैसे सुबह-सुबह की ताजी-ताजी ओस, सुबह-सुबह खिली हुई फूल की कली, ऐसे ही ताजे रहे; उनकी ताजगी कभी न गयी।
गोरष कहै सुणौं रे पूता, मरै न बूढ़ा होई।
शांयें भी मरिये, अणषांयें भी मरिये
गोरष कहै पूतसंजमि ही तारिये।

खाओगे तो भी मरोगे, नहीं खाओगे तो भी मरोगे; मृत्यु तो होनेवाली है।
सिर्फ एक की मृत्यु नहीं होती जो संयम को उपलब्ध हो गया है। संयम के वे तीन सूत्र हैंः
आसण दिढ, अहार दिढ, जे न्यद्रा दिढ होई।
फिर कोई मृत्यु नहीं है। फिर शाश्वत का अनुभव है।
मधि निरंतर कीजै वास!
इसलिए हर चीज में मध्य को खोज लो, न ज्यादा खाओ, न ज्यादा सोओ। न कम खाओ, न कम सोओ। हर चीज में मध्य को खोज लो; न ज्यादा बोलो, न कम बोलो, मध्य को खोजते जाओ।
तुमने देखा न कभी रस्सी पर नट चलता है, बस उसी तरह अपने को सम्हालते रहो रस्सी पर, मध्य में। न ज्यादा बायें झुको, न ज्यादा दायें झुको; झुके कि गिरे। सम्हालते रहो मध्य में। हर चीज का मध्य खोज लो और तुम्हें जीवन की समता, सम्यकत्व उपलब्ध हो जायेगा।
निहचल मनुवा थिर होइ सांस!
और जब ठीक-ठीक मध्य सध जाता है तो मन निश्चल हो जाता है। इतना निश्चल
कि श्वास भी चलनी बंद हो जाती है। तब समाधि फलित होती है। वहां न मन चंचल होता है, न श्वास चंचल होती है।
ख्याल रखना, जब समाधि फले तो घबड़ा मत जाना। यहां यह रोज होता है। जब किसी संन्यासी को पहली समाधि का अनुभव होता है तो वह घबड़ा जाता है। घबड़ाहट यह होती है कि सांस बंद हो जाती है। उसे लगता है कि मरा, मरा। मगर यह मौत नहीं है, यह नये जीवन की शुरुआत है।
मरौ वे जोगी मरौ, मरौ मरण है मीठा।
तिस मरणी मरौ, जिस मरणी गोरष मरि दीठा।।
यह उस मृत्यु का प्रारंभ है, जिसके बाद परम जीवन है।
मरो! ऐसी मरनी मरो जैसी गोरख मरा। और मर कर देखा। और जो देखा, वह शाश्वत है, अमृत है!
आज इतना ही।

मरौ हे जोगी मरौ
छठवां प्रवचन

साधनाः समझ का प्रतिफल

पहला प्रश्नः आपने गोरखनाथ जी को भारत के चार शीर्षस्थ प्रज्ञा- पुरुषों में रखा है। मगर आश्चर्य है कि ऐसे चोटी के महापुरुष के जन्म-स्थान और समय का भी पता नहीं है! ऐसा क्यों?

आनंद मैत्रेय, इस संबंध में पश्चिम और पूर्व की दृष्टियां भिन्न हैं। पश्चिम सोचता है इतिहास की भाषा में, पूरब सोचता है पुराण की भाषा में। इतिहास तथ्यों का होता है, पुराण सत्यों का। तथ्य एक विशेष स्थान में घटता है और विशेष समय में तथ्य की सीमा होती है। तथ्य सामयिक होता है, समय की घटना। सत्य शाश्वत है। उसकी अभिव्यक्ति भी समय में होती है, तो भी वह समय में सीमित नहीं है।
इसलिए पूर्व में हमने जरा भी चिंता नहीं की। न राम का ठीक-ठीक इतिहास पता है, न कृष्ण का। जो हमारे हाथ में है, कहानियां हैं। पश्चिम की नजर से देखो तो बस कहानियां मात्र हैं, कपोल-कल्पनाएं हैं। क्योंकि जब तक ठोस प्रमाण न हों, पश्चिम किसी बात को इतिहास स्वीकार नहीं करता। जैनों के चौबीस तीर्थंकर कपोल-कल्पनाएं मालूम होते हैं; कोई प्रमाण नहीं। बुद्ध भी ठीक-ठीक किस तिथि-तारीख को पैदा हुए, पक्का करना मुश्किल है।
हमने चिंता ही नहीं ली इस बात की। इससे अंतर भी क्या पड़ता है? बुद्ध "अ" नाम के गांव में पैदा हों कि "ब" नाम के गांव में पैदा हों, इससे अंतर क्या पड़ता है? और बुद्ध इस सन में पैदा हों या उस सन में, क्या भेद पड़ेगा? हमने बुद्धत्व को समझने की चेष्टा की है। बुद्ध के व्यक्तित्व से क्या लेना-देना है? उनकी देह तो क्षण-भंगुर है, आज है और कल नहीं हो जाएगी। उनका संदेश शाश्वत है। और वह संदेश एक बुद्ध का ही नहीं, वह संदेश समस्त बुद्धों का है।
इसलिए यह भी ध्यान रखना कि जब हमने बुद्ध की प्रतिमा बनायी तो हमने इसकी बहुत फिक्र नहीं की कि बुद्ध ऐसे ही लगते हैं या नहीं। हमने बुद्ध की प्रतिमा गौतम बुद्ध को देखकर नहीं बनायी है; हमने बुद्ध की प्रतिमा बनायी समस्त बुद्धों के सार-निचोड़ की तरह। बुद्ध कैसे बैठते हैं, कैसे उठते हैं-- सारे बुद्धों का जो सार-संचय है, वह हमने बुद्ध की प्रतिमा में ढाला है। बुद्ध की प्रतिमा समस्त बुद्धों का प्रतीक है।
इसलिए तुम चकित होओगे, जैन-मंदिर में जाना कभी, चौबीस तीर्थंकरों की प्रतिमाएं देखकर तुम हैरान होओगे, वे बिल्कुल एक जैसी मालूम होती हैं। अब ये चौबीस व्यक्ति एक जैसे नहीं हो सकते। दुनिया में दो व्यक्ति भी एक जैसे नहीं होते, तो चौबीस व्यक्ति तो एक जैसे कैसे हो सकते हैं? जुड़वां बच्चे भी बिल्कुल एक जैसे नहीं होते, तो ये चौबीस व्यक्ति समय की बड़ी लंबी यात्रा में, बड़े दूर-दूर, जिनके बीच हजारों साल का फासला है, कैसे एक जैसे हो सकते हैं?
ये एक जैसे नहीं थे। लेकिन इनके भीतर कुछ था जो एक जैसा था। वही ध्यान, वही समाधि, वही रसधार... । उस भीतर के एक-जैसे-पन के कारण हमने बाहर की प्रतिमा पर ध्यान नहीं दिया। हमने भीतर की अनुभूति को स्मरण रखा। बाहर की प्रतिमा उस भीतर की अनुभूति की दिशा-सूचक मात्र है। ये जैन तीर्थंकरों की मूर्तियां तथ्यगत नहीं हैं, सत्यगत हैं।
तथ्य तो बाहरी होता है। जैसे तुमने एक गुलाब का फूल देखा, यह तथ्य है। तुमने दो गुलाब के फूल देखे, यह तथ्य है। और तुमने हजारों गुलाब के फूलों का इत्र निचोड़ लिया, यह सत्य है। इसका किसी एक फूल से कुछ लेना-देना नहीं है; यह सार है।
इसलिए इस देश की चिंता बड़ी भिन्न है। इसने फिक्र नहीं की कि गोरख कहां पैदा हुए। अलग-अलग दावेदार हैं। कोई कहता है पंजाब, कोई कहता है बंगाल, और सबसे बड़ा दावा नेपाल का है। क्योंकि नेपाली कहते हैं कि गोरख जिस गांव में पैदा हुए उसका नाम है गोरखाली। इसलिए नेपालियों की एक जाति है गुरखा। वह

गोरख के नाम से है। मगर गोरख की भाषा संकेत देती है कि जैसे वे बंगाल में पैदा हुए होंः हंसिबा खेलिबा करिबा ध्यानं। उनका व्यक्तित्व बहुआयामी मालूम होता है। मेरे देखे वे बंगाल से लेकर काश्मीर तक, नेपाल से लेकर कन्याकुमारी तक परिव्राजक रहे होंगे। बहुत जगह ठहरे होंगे, बहुत लोगों से मिले-जुले होंगे बहुत जगह उनके प्रेमी पैदा हुए होंगे। बहुत जगह लोगों को ऐसा लगा होगा कि वे हमारे हैं। इतना प्यारा व्यक्ति किसको अपना नहीं लगता! जिनको अपना लगा होगा, उन्होंने अपनी कहानियां गढ़ ली होंगी।
कहानियां प्रीतिकर हैं। कहानियां सत्यों के संबंध में कुछ नहीं कहतीं; लेकिन गोरख और लोगों के बीच जो भाव घटा होगा, उसके संबंध में कुछ कहती हैं। गोरख बंगाल गये तो बंगाली हो गये होंगे। ऐसे डूब गये होंगे बंगाल की जीवन-धारा में कि लोगों को लगे होंगे कि बंगाली हैं।
इधर मेरे पास लोग आ जाते हैं। अगर मैं जीसस पर बोलता हूं तो ईसाई मुझसे आकर कहते हैं, क्या आप ईसाई हैं? अगर मैं बुद्ध पर बोलता हूं तो बौद्धों ने मुझे कहा है कि क्या आप बुद्ध के अनुयायी हैं? जब मैं नानक पर बोला तो सिक्खों ने मुझे आकर कहा कि जो हमने कभी नहीं सोचा था, वह अर्थ आपने प्रगट कर दिया, आप ही सच्चे सिक्ख हैं! मैं जिस पर बोलता हूं, उसके साथ तल्लीन हो जाता हूं; उसे बोलने देता हूं अपने से। तो सिक्खों को लग सकता है कि सिक्ख हूं और बौद्धों को कि बुद्ध हूं, ईसाईयों को कि ईसाई हूं।
ऐसा ही लगा होगा। जहां गये होंगे, जहां ठहरे होंगे, जहां उनके पैर पड़े होंगे, वहीं के लोगों को लगा होगा--अपने हैं। यह उनके प्रेम के कारण लगा होगा। और इसलिए बात और भी मुश्किल हो गयी तय करनी कि वे कहां पैदा हुए, कब पैदा हुए। फिर ऐसे व्यक्ति न तो अपने जन्म की चर्चा करते हैं, न अपने घर-द्वार की चर्चा करते हैं। ऐसे व्यक्तियों का क्या घर, क्या द्वार? यह सारा आकाश उनका घर है! यह सारी पृथ्वी उनकी है।
मैं कल ही मेरे खिलाफ किसी हिंदू संन्यासी का लिखा हुआ एक पत्र करंट में छपा है, वह देख रहा था। उसने सरकार से प्रार्थना की है कि मैं देशद्रोही हूं, मुझ पर अदालत में मुकदमा चलाया जाना चाहिये। उसकी बात ठीक है। सरकार को उसकी बात पर ध्यान देना चाहिये। मुझे देशद्रोही कहा जा सकता है, क्योंकि देशों में मेरा कोई भरोसा नहीं। न मुझे कोई देश है, न कोई परदेश है; मुझे यह सारी पृथ्वी अपनी मालूम होती है।
जिस संन्यासी ने यह कहा है... हिंदू मतांधता... उसे अड़चन होती होगी कि मैं अपने को हिंदू घोषित क्यों नहीं करता। मैं नहीं हूं! मैं किसी सीमा में बंधा नहीं हूं। मस्जिद भी मेरी है और मंदिर भी मेरा है और गिरजा भी और गुरुद्वारा भी... । और राष्ट्रों में मेरा भरोसा नहीं है। मैं तो मानता हूं कि राष्ट्रों के कारण ही मनुष्य-जाति पीड़ित है। राष्ट्र मिट जाने चाहिए। हो चुके बहुत राष्ट्रगान, उड़ चुके बहुत झंडे, हो चुकीं बहुत मूढ़ताएं पृथ्वी पर; अब तो मनुष्य की एकता स्वीकार करो। अब तो एक पृथ्वी और एक मनुष्य... । ये राष्ट्रीय सरकारें जानी चाहिये। और जब तक ये न जायेंगी तब तक मनुष्य की समस्याएं हल न हो सकेंगी, क्योंकि मनुष्य की समस्याएं अब राष्ट्रों से बड़ी समस्याएं हैं।
जैसे आज भारत गरीब है। भारत अपनी ही चेष्टा से इस गरीबी के बाहर नहीं निकल सकेगा, कोई उपाय नहीं है। भारत गरीबी के बाहर निकल सकता है, अगर सारी मनुष्यता का सहयोग मिले। क्योंकि अब मनुष्यता के पास इस तरह के तकनीक, इस तरह का विज्ञान मौजूद है कि इस देश की गरीबी मिट जाये। लेकिन अगर तुम अकड़े रहे कि हम अपनी गरीबी खुद ही मिटायेंगे, तो तुम ही तो इस गरीबी को बनानेवाले हो, तुम मिटाओगे कैसे? तुम्हारी बुद्धि इसके भीतर आधार है, तुम इसे मिटाओगे कैसे? तुम्हें अपने द्वार-दरवाजे खोलने होंगे। तुम्हें अपना मस्तिष्क थोड़ा विस्तीर्ण करना होगा। तुम्हें मनुष्यता का सहयोग लेना होगा।
और ऐसा नहीं है कि तुम्हारे पास कुछ भी देने को नहीं है। तुम्हारे पास कुछ देने को है दुनिया को। तुम दुनिया को ध्यान दे सकते हो। अगर अमरीका को ध्यान खोजना है तो अपने बलबूते नहीं खोज सकेगा अमरीका। उसे भारत की तरफ नजर उठानी पड़ेगी। मगर वे समझदार लोग हैं; ध्यान सीखने पूरब चले आते हैं।
कोई अड़चन नहीं है उन्हें, कोई बाधा नहीं है।

बुद्धिमानी का लक्षण यही है कि जो जहां से मिल सकता हो ले लिया जाये।
यह सारी पृथ्वी हमारी है। इसको खंडों में बांटकर हमने उपद्रव खड़ा कर लिया है। आज मनुष्य के पास ऐसे साधन मौजूद हैं कि अगर राष्ट्र मिट जायें, तो सारी समस्यायें मिट जायें। सारी मनुष्यता इकट्ठी होकर अगर उपाय करे तो कोई भी समस्या पृथ्वी पर बचने का कोई भी कारण नहीं है।
मगर पुरानी आदतें हैं। हमारा राष्ट्र--सारे जहां से अच्छा हिंदोस्तां हमारा... ! और इसी तरह की मूढ़ताएं और राष्ट्रों में भी हैं। उनको भी यही ख्याल है। इन्हीं अहंकारों के कारण संघर्ष है। फिर संघर्ष और राष्ट्रों की सीमाओं के कारण मनुष्य की सारी शक्ति युद्धों में लग जाती है।
तुम्हें जानकर यह हैरानी होगी कि अब हमारे पास इतना युद्ध का सामान इकट्ठा हो गया है सारी दुनिया में, रूस और अमरीका में विशेषकर, कि एक-एक आदमी को एक-एक हजार बार मारा जा सकता है! हमारे पास एक हजार पृथ्वियों को नष्ट करने का साधन उपस्थित हो गया है; एक ही पृथ्वी है हालांकि। अंबार लगे जा रहे हैं अस्त्र-शस्त्रों के! और किसी भी दिन किसी एक पागल राजनीतिज्ञ की धुन और यह सारी पृथ्वी धूल का एक ढेर, राख का एक ढेर रह जायेगी।
और राजनीतिज्ञों से पागलपन की अपेक्षा की जा सकती है। और किससे करोगे? एक राजनीतिज्ञ के पागल होने से इस सारी दुनिया में ऐसा भयंकर उत्पात हो जायेगा कि तुम्हें सोचने-समझने का मौका भी नहीं मिलेगा। पांच-सात मिनट लगेंगे सारी दुनिया को राख हो जाने में। खबर भी नहीं पहुंच पायेगी और मौत आ जायेगी। जहां इतना भयंकर हिंसा का आयोजन हो गया हो, अब पुराने राष्ट्रों की धारणाएं काम नहीं दे सकतीं। अब खतरा है। इन्हीं राष्ट्रों के कारण ये अस्त्र-शस्त्र इकट्ठे हो रहे हैं--अपनी रक्षा करनी है... । कहीं दूसरा आगे न बढ़ जाये, उससे हमें आगे रहना है।
मनुष्य-जाति की अस्सी प्रतिशत क्षमता युद्ध में चली जाती है। यही अस्सी प्रतिशत क्षमता अगर खेतों में लगे, बगीचों में लगे, कारखानों में लगे, यह पृथ्वी स्वर्ग हो जाये! जो सपना तुम्हारे ऋषि-महर्षि देखते थे आकाश में स्वर्ग का, वह अब पृथ्वी पर बन सकता है, कोई रुकावट नहीं। लेकिन पुरानी आदतें... । यह हमारा देश, वह उनका देश। हमें भी लड़ना है, उन्हें भी लड़ना है। गरीब से गरीब देश भी अणुबम बनाने की चेष्टा में संलग्न हैं। भूखे मर रहे हैं, मगर अणुबम बनाना है! भारत जैसे देश के पीछे भी वही भाव है गहरे में। भूखे मर जायें, मगर अपनी शान रखनी है!
मैं तो राष्ट्रों में मानता नहीं। अगर मेरी सुनी जाये तो मैं तो कहूंगा कि भारत को पहला देश होना चाहिए जो राष्ट्रीयता छोड़ दे। यह अच्छा होगा कि कृष्ण, बुद्ध, पतंजलि और गोरख का देश राष्ट्रीयता छोड़ दे और कह दे कि हम अंतर्राष्ट्रीय भूमि हैं। भारत को तो संयुक्त राष्ट्र संघ की भूमि बन जानी चाहिए। कह देना चाहिए, यह पहला राष्ट्र है जो हम संयुक्त राष्ट्र संघ को सौंपते हैं--सम्हालो! कोई तो शुरुआत करे... । और यह शुरुआत हो जाये तो युद्धों की कोई जरूरत नहीं है। ये युद्ध जारी रहेंगे, जब तक सीमाएं रहेंगी। ये सीमाएं जानी चाहिये।
तो ठीक ही कहते हो, कह सकते हो मुझे देशद्रोही--इन अर्थों में कि मैं मानव-द्रोही नहीं हूं। लेकिन तुम्हारे सब देश-प्रेमी मानव-द्रोही हैं। देश-प्रेम का अर्थ ही होता है मानव-द्रोह। देश-प्रेम का अर्थ होता है खंडों में बांटो। तुमने देखा न, जो आदमी प्रदेश को प्रेम करता है वह देश का दुश्मन हो जाता है। और जो जिले को प्रेम करता है वह प्रदेश का भी दुश्मन हो जाता है। मैं दुश्मन नहीं हूं देश का, क्योंकि मेरी धारणा अंतर्राष्ट्रीय है। यह सारी पृथ्वी एक है। मैं बड़े के लिये छोटे को विसर्जित कर देना चाहता हूं।
और इन छोटे-छोटे घेरों ने, बागुड़ों ने मनुष्य को बहुत परेशान किया है। तीन हजार साल में पांच हजार युद्ध लड़े गये हैं। और पहले तो ठीक था कि तीर-कमान से चल रहे थे युद्ध, चलते रहते, कोई हर्जा नहीं था। थोड़े-बहुत लोग मरते थे तो कोई अड़चन नहीं हो जाती थी। अब युद्ध समग्र युद्ध है। अब यह पूरी मनुष्य-जाति की आत्महत्या है। अब सब जगह हिरोशिमा बन सकता है--किसी भी दिन, किसी भी क्षण... । इस युद्ध की विभीषिका को समझो और इसमें जितनी ऊर्जा जा

रही है, वह सोचो। यही ऊर्जा सारी पृथ्वी को हरियाली से भर सकती है, वैभव से भर सकती है। मनुष्य पहली दफा आनंदमग्न हो नाच सकता है, प्रभु के गीत गा सकता है, ध्यान की तलाश कर सकता है।
लेकिन यह नहीं होगा। ये तुम्हारे तथाकथित देशप्रेमी, ये राष्ट्रवादी... ।
राष्ट्रवाद महापाप है। इस राष्ट्रवाद के कारण ही दुनिया में सारे उपद्रव होते रहे। मैं राष्ट्रवादी नहीं हूं। मैं तो सारी सीमाएं तोड़ देना चाहता हूं। इस पृथ्वी पर जिन लोगों ने भी परमात्मा की छोटी-सी झलक पाई है उनकी कोई सीमाएं नहीं हैं। वे किसी देश, किसी जाति, किसी वर्ग, किसी संप्रदाय, किसी वर्ण के नहीं होते। वे सब के हैं, सब उनके हैं।
फिर इस तरह के व्यक्ति, गोरख जैसे व्यक्ति, इस बात की चिंता ही नहीं लेते कि कब हम पैदा हुए, इसकी बात करें; किस घर में पैदा हुए, इसकी बात करें; किस गांव में पैदा हुए, इसकी बात करें। ये व्यर्थ की बातें हैं, क्योंकि गोरख जानते हैं--न हम कभी पैदा हुए और न हम कभी मरेंगे। ये तो देहवादियों की बातें हैं। ये तो जिनका शरीर से मोह और तादात्म्य है, उनकी बातें हैं। गोरख जैसे व्यक्ति तो उसे जान लिये हैं जो न कभी पैदा होता है, न मरता है; न मर सकता है, न पैदा हो सकता है। अजन्मे को, अनादि को, अनंत को जान लेने के बाद कौन जन्म की बात करे? किसकी बात करनी है?
इसलिए इस तरह के लोग बात नहीं करते। स्वभावतः उनके पीछे बहुत-सी कथाएं तो छूट जाती हैं, लेकिन सुनिश्चित तथ्य नहीं छूट जाते। और ऐसे लोग इतने विराट हृदय होते हैं कि किन्हीं भी तरह के विशेषणों को अंगीकार नहीं करते। क्योंकि विशेषण तो अज्ञान का ही सूचक है। जो कहता है मैं हिंदू हूं, मुसलमान हूं; ईसाई हूं--यह अज्ञानी का लक्षण है। जहां प्रकाश जला वहां विशेषण गये; विशेषण तो अंधेरे में ही जीते हैं। वहां तो विशेषणशून्य अनिर्वचनीय का आविर्भाव हो जाता है। इस कारण नहीं कुछ पक्का पता चलता, कहां पैदा हुए कब पैदा हुए।
लेकिन कुछ लोग इस खोजबीन में लगे रहते हैं। कुछ लोग अपनी जिंदगी इसी में लगाते हैं। इसी तरह के लोग विश्वविद्यालयों में शोध करते हैं, बड़े शोधकर्ता हो जाते हैं। उन्हें उपाधियां मिलती हैं--पी एच. डी. और डी. लिट और डी. फिल.। और उनका बड़ा सम्मान होता है। उनका काम क्या है? उनका काम यह है कि वे तय करते हैं कि गोरखनाथ कब पैदा हुए थे। कोई कहता है दसवीं सदी के अंत में, कोई कहता है ग्यारहवीं सदी के प्रारंभ में। इस पर बड़ा विवाद चलता है। बड़े-बड़े विश्वविद्यालयों के ज्ञानी सिर गपा कर खोज में लगे रहते हैं शास्त्रों की, प्रमाणों की, इसकी, उसकी। उनकी पूरी जिंदगी इसी में जाती है। इससे बड़ा अज्ञान और क्या होगा?
गोरख कब पैदा हुए, इसे जानकर करोगे क्या? इसे जान भी लिया तो पाओगे क्या? गोरख न भी पैदा हुए हों, यह भी सिद्ध हो जाये, तो भी क्या फायदा है? हुए हों, न हुए हों, अर्थहीन है। गोरख ने क्या जीया उसका स्वाद लो।
इसलिए तुम्हारे विश्वविद्यालय ऐसी व्यर्थता के कामों में संलग्न हैं
कि बड़ा आश्चर्य होता है कि इन्हें विश्वविद्यालय कहो या न कहो। इनका काम ही... तुम्हारे विश्वविद्यालयों में चलने वाली जितनी शोध है, सब कूड़ा-करकट है।
मैं एक जगह बोल रहा था। एक बहुत बड़े शोधकर्ता, बड़े पंडित खड़े हुए और उन्होंने मुझसे पूछा कि आप सिर्फ मेरे एक प्रश्न का जबाव दे दें कि बुद्ध और महावीर में उम्र में कौन बड़ा था। दोनों समसामयिक थे। क्योंकि मैं इसी पर तीस साल से शोध कर रहा हूं।
मैंने उनकी तरफ बड़े दया-भाव से देखा। मैंने कहा, तुम्हारे तीस साल गये। अब बुद्ध उम्र में बड़े थे कि छोटे थे, इससे क्या सार? नहीं उन्होंने कहा कि इतिहास को जानकारी होनी चाहिए। मैंने कहा, तुमने पक्का भी कर दिया कि बुद्ध बड़े थे या महावीर बड़े थे, तुम्हें क्या मिलेगा? और इतिहास जो पढ़ेंगे उन्हें क्या मिलेगा? और तीस साल तुमने अपनी जिंदगी के गंवा दिये! और लोग सोचते हैं कि तुम एक बहुत महत्वपूर्ण कार्य में लगे हो।
कभी-कभी तथाकथित ज्ञान के नाम पर ऐसी मूढ़ताएं चलती हैं कि अगर तुम गौर
न करो तो तुम्हें ख्याल ही न आयेगा। बुद्ध के अंतरतम में उतरो, महावीर के

अंतरतम में उतरो, तो तुम पाओगे वहां दो व्यक्ति भी नहीं हैं--एक ही है।
वहां एक ही निरभ्र आकाश है, एक ही शून्य संगीत है, एक ही आनंद-उत्सव है।
झेन फकीर ठीक कहते हैं कि बुद्ध हुए ही कहां। बुद्ध को माननेवाले लोग हैं, कहते हैं बुद्ध हुए ही कहां, कभी नहीं हुए, सब व्यर्थ की बातें हैं। रोज बुद्ध की पूजा करते हैं और कहते हैं, बुद्ध कभी हुए नहीं, सब झूठी बातें हैं। क्या प्रयोजन होगा झेन फकीरों का? वे यही कह रहे हैं कि कहो हुए, तो बस चले कुछ लोग खोजने कि कब हुए, किस तारीख में हुए। इसी में वे समय गंवा देंगे। इसलिए हम कहते हैं, हुए ही नहीं, झंझट छोड़ो। लेकिन बुद्ध के भीतर जो घटा है वह जरूर घटा है। किसके भीतर घटा है यह बात महत्वपूर्ण नहीं है। उनका नाम गौतम था कि कुछ और था; उनके पिता यह थे कि वह थे--इस सब से कोई प्रयोजन नहीं है।
बुद्ध के भीतर कुछ घटा है। वृक्ष के तले बैठे हैं एक सुबह। वे जैसे सांझ बैठे थे वैसे ही नहीं उठे, कुछ नया आदमी उठा। वही असली जन्म है, उसको ही जन्म कहो। और उसका तिथि, दिवस, माह से, वर्ष से कोई संबंध नहीं है। एक क्षण ऐसा आया जब विचार शांत हो गये, शून्य हो गये। चेतना शुद्ध दर्पण बनी। ऐसे ही तुम्हारी चेतना बने, इसकी प्रक्रिया में समय लगाओ। अच्छा यही है कि तुम ही बुद्ध हो जाओ। अच्छा यही है कि तुम्हारे भीतर गोरख का नाद गूंजे। बजाय तुम गोरख के इतिवृत्त में जाओ, अच्छा हो गोरख के अंतस में जाओ। इसलिए इस देश ने ठीक ही किया कि व्यर्थ बातों का विचार नहीं किया, व्यर्थ बातों को बीच में लाये ही नहीं। जो सार-सार है उतना कहा। क्योंकि आदमी ऐसा उपद्रवी है, ऐसा अज्ञानी है कि जरा-सा असार हाथ में लग जाये तो उसे तो सम्हाल कर रख लेता है, और सार को भूल जाता है। इसलिए असार की हमने बात नहीं की है, सार ही सार की बात की है, कि तुम कुछ भी पकड़ोगे तो सार ही पकड़ में आयेगा। तुम्हें असार मिले ही न, इसलिए हमने सारा असार मिटा दिया है, पोंछ डाला है।
हमने जो प्यारी कथाएं गढ़ी हैं, वे जरूरी नहीं है कि हुई हों। होने की जरूरत भी नहीं है; वे प्रतीक हैं। और प्रतीक काव्यात्मक होते हैं। इतिहास से उनका संबंध नहीं होता, अंतरात्मा से उनका संबंध होता है। जैसे हमने कहा कि बुद्ध को जब ज्ञान हुआ तो बेमौसम फूल खिल गये। अब यह कोई इतिहास नहीं है, बेमौसम फूल नहीं खिलते कभी। हमने लिखा है कि जब बुद्ध जंगल से निकलते थे, अगर किसी सूखे वृक्ष के नीचे बैठ जाते तो उसमें हर पत्ते आ जाते। ऐसा कहीं नहीं होता है। बुद्ध के ध्यान को, बुद्ध की समाधि को देखकर वृक्ष में हरे पत्ते आ जाएं, यह इतिहास नहीं है। मगर जहां बुद्ध के चरण पड़ते हैं, वहां हरियाली फैलती है, इतना सूचक है। वहां जीवन हरा होता है। वहां जीवन में नयी उमंग आती है, नया प्रसाद बरसता है। बुद्ध एक वर्षा हैं अमृत की, इस बात को कहने का यह काव्यात्मक ढंग हुआ, इससे ज्यादा नहीं।
जीसस को सूली लगी और सूली के बाद वे पुनरुज्जीवित हुए। अब यह पुनरुज्जीवित होना कोई ऐतिहासिक घटना नहीं है; यह पुनरुज्जीवित होना एक गहन प्रतीक है, काव्य है। इतना ही कहा जा रहा है कि जीसस जैसे व्यक्ति की मृत्यु हो ही नहीं सकती। मृत्यु तो अज्ञानियों की होती है। जिन्होंने मान रखा है कि हम देह हैं, वे मरते हैं। जिन्होंने जान लिया कि हम देह के भीतर अदेही हैं, वे कैसे मर सकते हैं? उनकी तो सूली से भी नये जीवन का ही प्रारंभ होता है। उनकी तो सूली भी सिंहासन है। उनकी मृत्यु नहीं होती। वे तो जीते अमृत में हैं, मरते अमृत में हैं। उनका अमृत जारी रहता है, अमृत की धारा बहती रहती है... देह में तो देह में, देह में नहीं तो देह के बाहर। लेकिन लोग इनको ऐतिहासिक तथ्य सिद्ध करने की कोशिश में लग जाते हैं।
और तब अड़चन हो जाती है। मैंने तुमसे कुछ ही दिन पहले कहा कि महावीर को काटा सर्प ने तो दूध निकला। अब ऐसे जैन हैं जो यह सिद्ध करने की कोशिश करते हैं कि यह ऐतिहासिक तथ्य है कि दूध निकला। वे खुद भी नासमझी करते हैं और दूसरों को भी नासमझी करने का आवाहन देते हैं। इतना ही जाहिर है कि दूध प्रतीक है प्रेम का। जब मां के पेट में बच्चा आता है तो उसके प्रेम के आविर्भाव में उस बच्चे के पोषण के लिए मां के स्तन दूध से भर जाते हैं। मां बहने लगती है बच्चे के लिए दूध की धारा में। मां के दूध में बच्चे को जीवन मिलने लगता है। प्रेम जीवनदायी है! बस इतना ही प्रतीक है इस कथा में कि

सांप ने भी काटा महावीर को तो भी महावीर के हृदय में करुणा ही है, प्रेम ही है। इसको कैसे कहें कविता में! इसको कविता में ऐसे कहा कि काटा तो महावीर की देह से खून नहीं निकला, दूध निकला। निकलना था खून, निकला दूध! यह तो कविता है। प्यारी कविता है, अगर कविता की तरह समझो। मगर अगर जिद मानकर बैठ जाओ कि यह कोई वैज्ञानिक वक्तव्य है तो तुमने मूढ़ता कर ली।
हमने उन सारे अपूर्व पुरुषों के पास कहानियां गढ़ी हैं। वे सब कहानियां बड़ी प्रीतिकर हैं। उन कहानियों को तुम इशारे समझना। सही-गलत का संबंध ही नहीं है। उनसे कुछ इंगित... । और इंगित पकड़ में आ जाये, कहानियां पीछे छूट जायेंगी। तुम एक यात्रा पर संलग्न हो जाओगे।
फिक्र छोड़ो इसकी कि गोरख कहां पैदा हुए, कब पैदा हुए। यह काम पंडितों
पर छोड़ दो। आखिर उनको बेचारों को भी कुछ काम चाहिए न! यह शोधकर्ताओं पर छोड़ दो, नहीं तो कौन उनको पी एच. डी. देगा। गोरख ने बड़ी कृपा की, लिखकर नहीं गये। लिख जाते तो न मालूम कितने लोगों की डाक्टरेट रह जाती! यह भी उनकी अनुकंपा है, कुछ खबर नहीं दे गये, कहां पैदा हुए। न मालूम कितने लोग संलग्न हैं, इसी काम में संलग्न हैं। मूढ़ों को कुछ तो चाहिए संलग्न होने के लिए! समझदार इन बातों में न उलझें।
गोरख का संदेश पहचानो। गोरख के सूत्रों को हृदय में उतरने दो। हुए हों गोरख तो ठीक, न हुए हों तो चलेगा; सूत्र महत्वपूर्ण हैं। गोरख के होने न होने से सूत्रों की महत्ता में कोई भेद नहीं पड़ता।
क्या तुम सोचते हो कृष्ण हुए हों तो गीता ज्यादा मूल्यवान हो जायेगी
और कृष्ण न हुए हों तो गीता का मूल्य खो जायेगा? क्या पागलपन की बात करते हो? आइंस्टीन हुए हों तो सापेक्षवाद का सिद्धांत ज्यादा मूल्यवान हो जायेगा? आइंस्टीन के होने से सापेक्षवाद के सिद्धांत में कुछ बल मिलता है? कोई बल नहीं मिलता। आइंस्टीन हुए हों कि न हुए हों, सापेक्षवाद का सिद्धांत अपने-आप में सबल है। उसकी भित्ति उसमें ही है। किसने उसे जन्म दिया, यह बात गौण है।
तुम्हें पता है किसने पहली दफा आग जलाई? वैज्ञानिक कहते हैं कि दुनिया का सबसे बड़ा आविष्कार है आग का; किसने सबसे पहले जलाई, हमें कुछ पता नहीं। हो गये होंगे कोई कम-से-कम पचास हजार साल या उससे भी ज्यादा, जब किसी आदमी ने आग जलाई होगी। उसका नाम तो किसी को भी पता नहीं है। लेकिन उसके नाम के न होने से क्या तुम आग पर रोटी नहीं सेंक लेते हो? क्या जब सर्दी लगती है तो आग के पास बैठकर ताप नहीं लेते हो? उससे क्या लेना-देना है कि अ था, कि ब था, कि स था; काला था कि गोरा था; हिंदुस्तान में घटी बात कि अफ्रीका में घटी बात? कहां सबसे पहले आग जली, किसने जलाई, क्या भेद पड़ता है? हम जानते हैं कि आग बहुमूल्य है अपने-आप में।
ऐसी ही साधना की प्रक्रियाएं हैं--आग हैं, जलती आग; अगर हिम्मत हो, छलांग लगा लो।
मरौ वे जोगी मरौ, मरौ मरण है मीठा।
तिस मरणी मरौ, जिस मरणी मरि गोरष दीठा।
उसी आग में तुम भी कूद जाओ, जिसमें गोरख कूद गये। उसी निर्विचार की अग्नि में तुम भी भस्मीभूत हो जाओ। और तुम्हारी भस्मियों से उठेगा एक नया रूप, एक नया आलोक, एक नया जीवन, जो शाश्वत है।

दूसरा प्रश्नः मैं सांसारिक अर्थों में सब भांति सुखी हूं, लेकिन फिर
भी सुखी नहीं हूं। मेरे दुख का कारण भी समझ में आता नहीं। आप मार्गदर्शन दें।

सांसारिक अर्थों में जो सब भांति सुखी होता है उसे ही पहली बार पता चलता है कि सुख में कुछ सार नहीं है। दुखी को तो पता ही नहीं चलता है। दुखी तो इसी आशा में जीता है कि सांसारिक सुख मिल जायेंगे तो सब ठीक हो जायेगा। दुखी आदमी की आशा में बड़ी जीवंतता होती है। दुखी आदमी की आंखों में आशा की ज्योति होती है। सिर्फ सुखी आदमी की आंखों से आशा की ज्योति खो जाती है। इसलिए मैं निरंतर कहता हूं कि सिर्फ सुखी आदमी, तथाकथित सांसारिक अर्थों में सुखी आदमी ही, धार्मिक यात्रा पर निकल सकता है।

जब तुम्हारे पास सब तथाकथित सुख हैं और फिर भी सुख नहीं है, तब एक बात साफ हो गई कि इस संसार में सुख नहीं हो सकता। बाहर से जो तुम इकट्ठा कर सकते थे, कर लिया, तुम अब एक स्थिति में हो जहां सारे भ्रम टूट गये, जहां सारी मृगमरीचिकाओं के सपने उखड़ गये, तुमने घूंघट उठाकर देख लिया, भीतर कुछ भी नहीं है, भीतर कोई भी नहीं है, भीतर रिक्तता है। अड़चन जरूर होती है।
जब कोई सांसारिक अर्थों में सब भांति सुखी होता है तो उसको अड़चन होती
है कि फिर मामला क्या है? अब मुझे चाहिए, ऐसा तो कुछ भी नहीं; सब मेरे पास है--धन है, पद है, प्रतिष्ठा है, परिवार है, सब भांति सुखी मुझे होना चाहिए। यही तो मैं मांगता था। इन्हीं के न होने के कारण अब तक दुखी था, अब दुखी क्यों हूं? अब तो मुझे दुखी नहीं होना चाहिए।
तुम्हारी भ्रांति टूटी। तुम जिन कारणों से सोचते थे कि दुखी हो, वे असली कारण नहीं थे। तुम जो सोचते थे कि इतनी-इतनी चीजें मेरे पास हो जायेंगी तो मैं सुखी हो जाऊंगा, अब तुम्हें पता चला कि वे सब चीजें हैं और सुख नहीं आया। तो तुम्हारे सुख के संबंध का सारा विश्लेषण गलत था; कुछ और चाहिए था जिससे सुख मिलता है। कुछ भीतर जगना चाहिए, उससे सुख मिलता है। सुख बाहर की किसी शर्त के पूरे होने से नहीं मिलता। सुख आत्म-जागृति
की छाया है। सुख तो परमात्मा को मिलने से ही मिलता है। और परमात्मा तुम्हारे भीतर छिपा बैठा है, मगर तुम बाहर दौड़े चले जाते हो। तुमने पीठ कर रखी है, उसकी तरफ। तुम परमात्मा को भी खोजने जाते हो तो बाहर जाते हो--काशी, काबा, कैलाश। तुम परमात्मा को भी खोजते हो मंदिर-मस्जिद, गुरुद्वारा... । तुम आंख बंद कब करोगे? तुम अपने भीतर कब झांकोगे? तुम खोजनेवाले में कब खोजोगे? यह तुम्हारे भीतर जो चेतना है, जरा इससे संबंध बनाओ, जरा इसमें जड़ें फैलाओ। जरा इससे परिचय बनाओ। बस इसके परिचय से ही सुख पैदा होता है। संसार में न तो सुख है, न हो सकता है; न कभी हुआ है, न कभी होगा। सुख तो केवल तब होता है जब हमारा अंतरतम में छिपे मालिक से मिलन होता है।

जब तुम्हीं अनजान बनकर रह गए,
विश्व की पहचान लेकर क्या करूं?
जब न तुमसे स्नेह के दो कण मिले,
व्यथा कहने के लिए दो क्षण मिले;
जब तुम्हीं ने की सतत अवहेलना,
विश्व का सम्मान लेकर क्या करूं? जब तुम्हीं अनजान बनकर रह गए, विश्व की पहचान लेकर क्या करूं? एक आशा, एक ही अरमान था,
बस तुम्हीं पर हृदय को अभिमान था; पर न जब तुम ही हमें अपना सके, व्यर्थ यह अभिमान लेकर क्या करूं? जब तुम्हीं अनजान बनकर रह गए, विश्व की पहचान लेकर क्या करूं? दूं तुम्हें कैसे जलन अपनी दिखा? दूं तुम्हें अपनी लगन कैसे दिखा? जो स्वरित होकर न कुछ भी कह सकें, मैं भला वे गान लेकर क्या करूं? जब तुम्हीं अनजान बनकर रह गए, विश्व की पहचान लेकर क्या करूं? शलभ का था प्रश्न दीपक से यही, मीन ने यह बात जीवन से कही;
हों विलग तुम से न जो फिर भी मिटे; मैं भला वे प्राण लेकर क्या करूं? जब तुम्हीं अनजान बनकर रह गए, विश्व की पहचान लेकर क्या करूं? अर्चना निष्प्राण की कब तक करूं, कामना वरदान की कब तक करूं,

जो बना युग-युग पहेली-सा रहे,
मौन वह भगवान लेकर क्या करूं?
जब तुम्हीं अनजान बनकर रहे गए,
विश्व की पहचान लेकर क्या करूं?
परमात्मा से पहचान हो, उससे थोड़ा नाता बने, नेह-नाता बने, उससे थोड़े प्रेम का सूत्र जुड़े। कच्चा धागा ही सही उसके प्रेम का--और सुख की अनंत वर्षा हो जाती है। सारा संसार पाकर जो नहीं मिलता, वह समाधि का एक क्षण पाकर मिल जाता है।
संपदा भीतर है। संपदा तुम लेकर आये हो। सुख तुम्हारा स्वभाव है। सुख
को अर्जित नहीं करना है। और सुख के लिए कोई शर्त पूरी नहीं करनी है; सुख बेशर्त है, क्योंकि सुख स्वभाव है। दुखी होना विभाव है, सुखी होना सहज घटना है।
जैसे आग गरम है, यह उसका स्वभाव है--ऐसे मनुष्य आनंदित हो, यह उसका स्वभाव है। आनंदित मनुष्य को देखकर यह मत सोचना कि कुछ विशिष्टता हो गयी। आनंदित मनुष्य सामान्य मनुष्य है, सरल मनुष्य है। दुखी मनुष्य को देखकर समझना कि कुछ गड़बड़ है, कुछ विशिष्टता है। दुखी आदमी असाधारण आदमी है, क्योंकि जो नहीं होना चाहिए वह उसने करके दिखा दिया। सुखी आदमी तो वही कर रहा है जो होना चाहिए। जैसे कोयल कूके, गीत गाये; इसको तुम कुछ विशिष्टता तो नहीं कहते। हां, कोयल एक दिन कौवे की तरह कांव-कांव करने लगे तो अड़चन होगी।
मनुष्य का सुख एकदम सहज बात है। जैसे वृक्ष हरे होते हैं और फूलों में गंध होती है और पक्षी पंख फैलाकर आकाश में उड़ते हैं, ऐसा ही सुख मनुष्य का स्वभाव है। इस स्वभाव को हमने सच्चिदानंद कहा है। इसके तीन लक्षण हैं--सत, चित, आनंद। सत का अर्थ होता हैः जो है और कभी मिटेगा नहीं, जो शाश्वत है। चित का अर्थ होता हैः चैतन्य, जागरण, ध्यान, समाधि। और आनंद पराकाष्ठा है। जो है और ध्यानमग्न है, उसमें आनंद की सुवास उठती है।
सत बनो, ताकि चित बन सको। और जिस दिन तुम चित बने, उसी दिन आनंद की सुवास उठेगी। सत्य के वृक्ष पर चित के फूल लगते हैं, आनंद की सुगंध बिखरती है।
क्या तुम्हारे पास है, क्या तुम्हारे पास नहीं है--इससे सुख का कोई लेना-देना नहीं है। क्या तुम हो, इससे सुख का संबंध है। वस्तुएं कितनी ही इकट्ठी कर लो, उनसे शायद तुम्हारी चिंताएं बढ़ जाएं, परेशानियां बढ़ जाएं, मगर सुख न बढ़ेगा। उनसे दुख बढ़ सकता है जरूर, मगर सुख के बढ़ने का कोई संबंध नहीं है। और मैं यह नहीं कह रहा हूं कि तुम चीजें छोड़ दो, कि घर से भाग जाओ, कि बाजार का त्याग कर दो। नहीं, मेरी बात गलत मत समझ लेना। जो है ठीक है; न छोड़कर भागने से कुछ होनेवाला है, न पकड़ने से कुछ होनेवाला है। तुम जहां हो वहीं रहो, मगर तलाश भीतर शुरू करो। बहुत हो चुकी बाहर की खोज, अब भीतर जाओ। अब उससे पहचान हो, जिससे पहचान हो जाती है तो सब मिल जाता है, सब आकांक्षाएं तत्क्षण पूरी हो जाती हैं।

तीसरा प्रश्नः जीवन इतना प्यारा क्यों है? हरेक वस्तु, व्यक्ति, सृष्टि, व्यक्त-अव्यक्त भी! रंग, नाद, गति, रुचि, कलह भी! इसका स्मरण करने से भी हृदय भर आता है, आंसू बहते हैं, सांस खिंच जाती है। बात बंद हो जाती है। रुदन होता है। कुछ बता नहीं सकती! आंख बंद होती है और बैठ जाती हूं।

आनंद भारती! जीवन प्यारा ही हो सकता है, क्योंकि जीवन परमात्मा है! जीवन उस परम प्यारे की अभिव्यक्ति है। वही तो प्रगट हुआ है अनंत-अनंत रूपों में। तुमने मंदिर बनाकर उसे झुठला दिया, क्योंकि उसका मंदिर तो सब तरफ है। जहां झुक गए वहीं उसका मंदिर। जहां आंख खोली वहीं उसकी छवि। जहां सुनने को राजी हुए वहीं उसका नाद। जो देखो, जो सुनो, जो चखो, सब वही है। इसलिए तो उपनिषद कह सकेः अन्नं ब्रह्म। ऐसा वक्तव्य दुनिया के किसी शास्त्र में नहीं है। और जब पहली दफा उपनिषदों के अनुवाद किये गये और जब अंग्रेजी में लिखा गया फुड इज गॉड, लोग बड़े हैरान हुए--भोजन और भगवान! अब अनुवाद भी क्या करो? थोड़े चौंके कि यह किस तरह का वक्तव्य है! समझे भी

नहीं। सीधा-सीधा शाब्दिक अनुवाद कर दिया--फुड इज गॉड, अन्नं ब्रह्म। चूक हो गयी। इतने महत वचनों के सीधे-सीधे अनुवाद नहीं होते। इतने महत वचनों के तो केवल परोक्ष अनुवाद होते हैं। ऐसे वचनों को समझाया जा सकता है, सीधा- सीधा अनुवादित नहीं किया जा सकता। यह तो बड़ा महत्वपूर्ण वचन है।
उपनिषद यह कह रहे हैं कि स्वाद भी लोगे तो उसी का, और तो कोई है नहीं। लेनेवाला भी वही है; वह जो भीतर बैठा स्वाद ले रहा है वह भी वही है; और जिसका स्वाद ले रहा है वह भी वही है। तुमने तोड़ा एक वृक्ष से नासपाती का फल; नासपाती में भी वही है, तुम में भी वही है, तुम दोनों भिन्न नहीं हो। वह एक ढंग था उसके प्रगट होने का, तुम दूसरे ढंग हो उसके प्रगट होने के। परमात्मा अनंत रूपों में अभिव्यंजित हुआ है। ये सारे गीत उसके हैं, गायक एक है। प्यारा तो होगा ही जगत और जीवन।
लेकिन मैं समझता हूं आनंद भारती की क्या अड़चन है। हमें सदियों से सिखाया गया है कि जीवन पाप है। हमें समझाया गया है कि जीवन तो हमारे पिछले जन्मों के पापों का फल है, प्यारा कैसे हो सकता है? जिन्होंने भी जीवन को पाप कहा है, उन्होंने परमात्मा को पाप कह दिया! नहीं समझे वे उपनिषदों के वचन। जिन्होंने जीवन को पापों का फल कह दिया, उन्होंने परमात्मा के प्रसाद का तिरस्कार कर दिया।
इसलिए जो मेरे पास आये हैं, जो मेरे पास धीरे-धीरे ध्यान की सीढ़ियां उतर रहे हैं, उन्हें तो आज नहीं कल यह अड़चन आयेगी, जैसा आनंद भारती को आ गयी। एक दिन ऐसा होगा अचानक सुबह जागकर तुम पाओगे कि सारा जगत अपूर्व रूप से प्रीतिकर है, सारा जीवन उसके नाद से भरा है। उसी की वीणा बज रही है। वही गाता है पक्षियों में। वही बहता है सर-सरिताओं में। वही सागर में उत्तुंग लहरें उठाता है। वही चांद-तारों में झांकता है। जुगनू से लेकर सूर्यों तक उसी का प्रकाश है। पापियों में भी वही बैठा है, उतना ही जितना पुण्यात्माओं में; रत्तीभर कम नहीं।
रावण में तुम सोचते हो राम कम हैं? उतने ही राम रावण में हैं जितने राम में, जरा भी भेद-भाव नहीं है; भेद-भाव हो ही नहीं सकता। यह दूसरी बात है कि रामलीला के लिए दो हिस्सों में बंटना जरूरी है। तुम सोचते हो कि रावण के बिना रामलीला हो सकेगी? कैसे होगी; सहारा ही गिर जायेगा। रावण के बिना राम हो सकेंगे, तुम सोचते हो? असंभव है। जरा लिखकर देखो कोई कथा राम की; रावण को छोड़ दो, सिर्फ राम ही राम की कथा लिखो। तुम खुद ही पाओगे, बिल्कुल बेस्वाद हो गयी। कुछ रस न रहा, कुछ अर्थ न रहा। खड़े हैं धनुषबाण लिए, खुद भी थक जायेंगे, तुम भी थक जाओगे। बैठी हैं सीता मइया और बैठे हैं रामचंद्र जी। न कोई चोरी ले जाता, न कोई घटना घटती।
जरा एक-आध दफे किसी गांव में रामलीला तो करके देखो बिना रावण के। पहले दिन लोग आयेंगे, फिर दूसरे दिन लोग आना बंद हो जायेंगे कि सार ही क्या है? सजा है दरबार, बैठे हैं रामचंद्र जी। लोग ही पूछने लगेंगे खड़े होकर कि अब रामलीला कब शुरू होगी, यह क्या हो रहा है?
जीवन की अभिव्यक्ति द्वंद्व में है। जीवन द्वंद्वात्मक है, डायलेक्टिकल है। इसलिए यहां प्रकाश है और अंधेरा है, जन्म है और मृत्यु है, अच्छा है और बुरा है, सफेद है और काला है, सुंदर है और कुरूप है, राम है और रावण है। जो जानते हैं वे कहेंगेः दोनों में उसका ही खेल है। और जो ऐसा जान ले, फिर उसे अड़चन नहीं रह जाती; फिर जीवन बड़ा प्यारा लगेगा। फिर तो जीवन में तुम्हें सब जगह सौंदर्य का अनुभव होगा, क्योंकि उसकी छाप पाओगे। जगह-जगह उसकी पगध्वनि सुनाई पड़ेगी।

दिल है फिरदौस की बहारों में
फिक्र-ए-तूबा के शाख-सारों में
हाय मदहोश रात का अफसूं
मैं जमीं पर हूं, रूह तारों में
जरा समझ आयेगी तो तुम जमीन पर न रह जाओगे; जमीन पर भी रहोगे और तुम्हारी रूह तारों में होगी। तुम फैलने लगोगे। तुम्हारी आत्मा विराट होने लगेगी। तुममें कमल खिलने लगेंगे।

तेरे गीतों की लै अरे तोबा!
यह तरब, यह निशात और यह लोच। क्यों न दुनिया पिघल के बह जाये
इक जरा तू ही अपने दिल में सोच।
ऐ कि तू रागिनी में है मदहोश
ऐ कि तू गुम है मस्त तानों में
थम, कि गीत अपने बाजुओं पे मुझे
लिये जाता है आसमानों में!
जरा तुम खुलो। जरा तुम जागकर देखो। जरा अपने तथाकथित साधु- संन्यासियों से दी गयी शिक्षा को हटाकर रखो एक किनारे। फिर से आंख खोलो। फिर से पहचान लो प्रकृति की। और तुम चकित हो जाओगे।

ऐ कि तू रागिनी में है मदहोश
ऐ कि तू गुम है मस्त तानों में
थम, कि गीत अपने बाजुओं पे मुझे
लिये जाता है आसमानों में!
तुम्हें सब तरफ से उसका गीत घेर लेगा, कि तुम उड़ने लगोगे आसमानों में,
कि तुम डरने लगोगे, कि तुम घबड़ा जाओगे कि यह क्या हुआ जाता है! इतना सौंदर्य है! और इतना अनायास बरस उठे, जैसे बूंद में आ जाये सागर!
आनंद भारती ठीक ही पूछती है। मस्त हो रही है, आनंद-मग्न हो रही है। इतनी मस्त हो रही है कि पहले आगे बैठती थी, अब उसको पीछे बिठाना पड़ता है। क्योंकि आगे बैठे-बैठे वह मस्त होने लगती थी, इसलिए दूसरों को बाधा शुरू हो जाती थी। हंसने लगती, बेवजह! वजह से हंसो तो ठीक है। कि मैंने कोई कहानी कही, कि कोई चुटकुला कहा कि तुम हंसो तो ठीक। मगर आनंद भारती इतनी देर रुकती ही न कि मैं चुटकुला कहूं, पहले ही हंस देती। मानकर ही चलती कि कहूंगा ही, कहता ही होऊंगा, अब क्या रुकना! तो बेचारी को पीछे बैठना पड़ रहा है। एक मस्ती आ रही है, एक आनंद-भाव आ रहा है। आसमानों में उड़ी जा रही है। तो लगेगा, जीवन इतना प्यारा क्यों है? उत्तर मैं क्या दूं? जीवन प्यारा है। कुछ और किया नहीं जा सकता। जीवन सदा से प्यारा है। सिर्फ तुम्हारी आंखों पर परदे थे; परदे खिसकने शुरू हो गये। तुम्हारी आंख पर सिद्धांतों का जाल था, जाल टूटना शुरू हो गया, जाली टूटनी शुरू हो गयी।
और मेरा काम यहां क्या है--तुम्हारी आंख की धूल थोड़ी साफ करूं; तुम्हारी आंख से थोड़ी धूल पोछूं, ताकि आंख दर्पण बन जाये और चीजों का प्रतिबिंब वैसा बनने लगे जैसी चीजें हैं।

तुम्हारे नाम जैसी, छलकते जाम जैसी,
मुहब्बत सी नशीली, शरद की चांदनी है।।
हृदय को मोहती है, प्रणय संगीत जैसी,
नयन को सोहती है, सपन के मीत जैसी,
तुम्हारे रूप जैसी, वसंती धूप जैसी,
मधुस्मृति सी रसीली, शरद की चांदनी है।।
चांदनी खिल रही है, तुम्हारे हास जैसी,
उमंगें भर रही है, मिलन की आस जैसी,
प्रणय की बांह जैसी, अलक की छांह जैसी,
प्रिये! तुम सी लजीली, शरद की चांदनी है।।
हुई है क्या न जाने, अनोखी बात जैसी,
भरे पुलकन बदन में, प्रथम मधुरात जैसी,
हंसी दिल खोल पूनम, गया अब हार संयम,
वचन से भी हठीली, शरद की चांदनी है।।
तुम्हारे नाम जैसी, छलकते जाम जैसी,
मुहब्बत सी नशीली, शरद की चांदनी है।।
अस्तित्व तो बड़े ही प्रीतिकर सौंदर्य से भरा है। यहां तो चांदनी ही चांदनी है। यहां तो चांद ही चांद है। यहां सब शीतल है, सिर्फ तुम उत्तप्त न रह जाओ। तुम्हारा ताप जरा कम हो।

ध्यान और क्या है? तुम्हारे ताप को कम करने की प्रक्रिया है, तुम्हारा तापमान थोड़ा नीचे गिराने का उपाय है। लोग बड़े उत्तप्त हैं। लोग बड़े ज्वरग्रस्त हैं। लोग विक्षिप्त हैं। हजार-हजार वासनाओं ने उन्हें उत्तप्त किया है। उनके चित्त में बड़ी आपाधापी है; शांति का क्षण ही नहीं आता, विश्राम की घड़ी ही नहीं आती। रुके पांव तो मिले गांव! मगर पैर रुकते नहीं और गांव मिलता नहीं। रुको तो मंजिल अभी है, यहीं है। मगर तुम हो कि दौड़े चले जाते हो, तुम हो कि भागे चले जाते हो। तुम सोचते हो कि जितनी तेजी से दौडूंगा, उतनी जल्दी पहुंचूंगा। तुम जितनी तेजी से दौड़ोगे, उतनी दूर निकल जाओगे। क्योंकि मंजिल वहां है जहां तुम हो, मंजिल कहीं और नहीं है। परमात्मा यहां है, यही मेरी उदघोषणा है। परमात्मा अभी है, यही मेरी देशना है। अभी और यहीं! कल पर मत टालना। और तब अचानक तुम्हारी आंख से परदा उठ जाएगा। कल का परदा तुम्हारी आंख पर पड़ा है। तुम कहते हो कल होगा, कल होगा। और इस जिंदगी के कल चुक जाते हैं तो तुम कहते हो अगली जिंदगी में होगा, फिर कल! और अगर अगली जिंदगियों के कल भी चुक जाते हैं तो तुम कहते हो परलोक में होगा। और आगे का कल, मगर तुम कल पर टाले जाते हो। तुमने कल पर परमात्मा को टालकर परमात्मा को झूठा कर दिया।
परमात्मा अभी है, यहीं, इसी क्षण; तुम्हारी आंख से जरा घूंघट सरके। हटाओ बुर्के, हटाओ ये घूंघट! और घूंघट हैं क्या? व्यर्थ के विचार, जो सदियों-सदियों में तुम्हारे सिर पर थोप दिये गये हैं। तुम्हारी खोपड़ी में शास्त्र भरे पड़े हैं, इसलिए सत्य प्रगट नहीं हो पाता।
गोरख, देखते हो, बार-बार कहते हैंः हे पंडित, पढ़ कर तो खूब देख लिया, अब
रह कर देख! हम रहता का साथी, कि हम तो उनके संगी-साथी हैं जो रह रहे हैं। जीयो परमात्मा को, प्रार्थनाएं बहुत हो चुकीं। परमात्मा को खाओ, परमात्मा को पीयो, परमात्मा को ओढ़ो, परमात्मा को पहनो, परमात्मा में जागो, परमात्मा में सोओ--जीयो परमात्मा को! हो चुकीं प्रार्थनाएं बहुत, पूजाएं बहुत; अर्चन, यज्ञ, हवन बहुत हो चुके; उनसे कुछ भी नहीं हुआ। जीयो। अन्नं ब्रह्म! स्वाद लो। भोजन भी करो तो याद रखना--वही है! किसी से बात करो तो याद रखना--वही है! धीरे-धीरे पहचान सघन होगी। धीरे-धीरे प्राण उसके सौंदर्य से अभिभूत होंगे। वह प्यारा दिखाई पड़ेगा।

वेणी में तारक-फूल गूंथ,
निशि ने मेरा शृंगार किया;
राका-शशि ने बन शीश फूल,
छवि का मोहक संसार दिया;
उषा उनकी पद-लाली से,
हंस मेरी मांग संवार गई!
मैं तो उन पर बलिहार गई!
बिन मांगे प्यार-दुलार दिया, सम्मान और सत्कार दिया;
रह गई मुक्ति करबद्ध खड़ी, मैंने बंधन स्वीकार किया; वे हार-हार कर जीत गए,
मैं जीत-जीतकर हार गई!
मैं तो उन पर बलिहार गई!
उनकी छाया में पली सदा,
उनके पीछे ही चली सदा;
उनके ही जीवन-मंदिर में,
मैं मोम-दीप-सी जली सदा;
मैं उनको पा जग भूल गई,
अपने को स्वयं बिसार गई!
मैं तो उन पर बलिहार गई!
कब चाहा प्यार-दुलार मिले, फूलों का मृदु गलहार मिले; पूजा-अर्चन ही ध्येय रहा,

बस पूजा का अधिकार मिले;
उनके श्री चरणों पर हंसकर,
मैं तन-मन सब-कुछ वार गई
मैं तो उन पर बलिहार गई।
कहां खोजने जा रहे हो? बलिहार होना है तो इसी क्षण हो जाओ, क्योंकि वह मौजूद है।

उनके श्री चरणों पर हंसकर,
मैं तन-मन सब-कुछ वार गई
मैं तो उन पर बलिहार गई!
मैं उनको पा जग भूल गई,
अपने को स्वयं बिसार गई!
मैं तो उन पर बलिहार गई!
वे हार-हारकर जीत गए,
मैं जीत-जीतकर हार गई!
मैं तो उन पर बलिहार गई!
उषा उनकी पद-लाली से,
हंस मेरी मांग संवार गई!
मैं तो उन पर बलिहार गई!
परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है जिससे तुम्हारा कभी मिलन होगा। परमात्मा इसी अस्तित्व का दूसरा नाम है। मिलन हो रहा है, लेकिन तुम्हारी भ्रांत धारणा कि परमात्मा कोई व्यक्ति है, कि मिलेगा कहीं राम के रूप में, कि मिलेगा कहीं कृष्ण के रूप में, कि क्राइस्ट के रूप में, कि बुद्ध के रूप में, कि महावीर के रूप में। इसी से तुम भटके हो, इसीलिए मिलना नहीं हो पा रहा है। तुम्हारी धारणा अड़चन बन रही है।
परमात्मा सामने खड़ा है, लेकिन तुम कहते हो जब तक धनुष-बाण हाथ न लोगे...
तब लगि झुके न माथ। माथा हमारा झुकनेवाला नहीं। पहले धनुष-बाण लो हाथ। तुम्हारी शर्तें हैं। तुम्हारे छोटे-छोटे लोगों की शर्तें तो ठीक हैं; यह तुलसीदास का वचन है।
तुलसीदास को ले गये कुछ मित्र कृष्ण के मंदिर में। सब तो झुके, तुलसीदास न झुके। उन्होंने कहा मेरा माथा नहीं झुकेगा! मैं तो बस एक को ही जानता हूं--धनुष-बाण हाथ में जो लेता है। अब उधर कृष्ण खड़े हैं बांसुरी बजाते, मोर-मुकुट बांधे। कृष्ण नहीं जंचते तुलसीदास को।
कैसा संकीर्ण चित्त है हमारे तथाकथित महात्माओं का भी! रामचंद्रजी
को बांसुरी न बजाने दोगे? धनुष-बाण ही लिये रहें चौबीस घंटे? आदमियों को भी छुट्टी मिलती है। ओवरटाइम भी कभी खतम हो जाता है। लेकिन वे कहते हैं जब तक धनुष-बाण हाथ न लोगे, मैं नहीं झूकूंगा। मैं तो सिर्फ एक के सामने झुकता हूं--धनुष-बाण वाले के।
यह जरा ख्याल करना, यह आदमी झुकना जानता ही नहीं। यह तो कह रहा है कि झुकूंगा भी तब जब मेरी शर्त पूरी हो। यह झुकना भी सशर्त है। इस झुकने में भी अहंकार है। यह कहता है, मेरी शर्त पूरी करो तो मैं झुकूं। यह सौदा है साफ। अगर झुकवाना हो मुझे, अगर रस हो तुम्हें कि मैं झुकूं तो मेरी शर्त पूरी करो। मैं तो अपनी धारणा के सामने झुकूंगा। यह अहंकार है। तुम कैसे हो, मुझे कुछ लेना-देना नहीं है। अभी तुम बांसुरी बजा रहे हो, यह मोर-मुकुट बांधे खड़े हो, खड़े रहो। यह मेरी मान्यता नहीं, मैं तो अपनी मान्यता के सामने झुकूंगा। ले लो धनुष-बाण हाथ, तो मैं झुक जाऊं।
यही अड़चन है। अब ये बेचारे वृक्ष कैसे धनुष-बाण हाथ लें? यह सूरज कैसे धनुष-बाण हाथ ले? ये चांद-तारे कैसे धनुष-बाण हाथ लें? कठिनाई है। और परमात्मा खड़ा है सूरज की तरह द्वार पर आकर, मगर तुम न झुकोगे। बाबा तुलसीदास नहीं झुके तो तुम कैसे झुकोगे! धनुष-बाण लो हाथ, फिर झुकूंगा। अस्तित्व धनुष-बाण हाथ नहीं ले सकता और न बांसुरी हाथ ले सकता है। अस्तित्व कोई व्यक्ति थोड़े ही है। लेकिन हमने व्यक्ति की धारणा बना रखी है कि परमात्मा कोई व्यक्ति है। बस भटकते रहो। तुम्हें कभी परमात्मा नहीं मिलेगा। और अगर कभी मिल जाये धनुष-बाण हाथ लिये, तो समझ रखना कि यह

तुम्हारे मन की भ्रांति है, तुम्हारी कल्पना का जाल है, यह तुम्हारा सपना। यह तुमने इतने दिन तक सपना देखा है कि अब तुम खुली आंख भी देखने लगे हो। यह दिवास्वप्न है। यह एक विभ्रांति है।
यह कोई परमात्मा नहीं है जो तुम्हारे भीतर आंख जब तुम बंद करते हो, धनुष-बाण लेकर खड़ा हो जाता है, कि बांसुरी बजाता है, कि सूली पर लटका हुआ जीसस... । यह तो तुम्हारी मान्यता है। और तुमने इस मान्यता को बचपन से इतना दोहराया है, इतना दोहराया है, इतना दोहराया है कि दोहरा-दोहरा कर तुमने अपने को आत्म-सम्मोहित कर लिया है। अब तुम्हें दिखाई पड़ रहा है। यह तुम कोई भी चीज इस तरह देख सकते हो। जरा दोहराये चले जाओ, दोहराये चले जाओ, जिद किये चले जाओ; कोई भी चीज तुम्हें ऐसी ही दिखाई पड़नी शुरू हो जायेगी। तुम थोड़े प्रयोग करके देखो।
नागार्जुन के पास एक युवक गया। और उसने कहा कि मुझे परमात्मा का अनुभव होना शुरू हो गया है। उनकी छवि सामने खड़ी हो जाती है। आंख बंद करता हूं, मंद-मंद स्मित परमात्मा सामने खड़े, बड़ा रस आता है। नागार्जुन ने कहाः तुम एक काम करो। नागार्जुन एक फक्कड़ साधु था, अदभुत साधु था; जैसा गोरख, ऐसा ही आदमी। उसने कहा, तू एक काम कर, फिर पीछे बात करेंगे इस अनुभव की। तू सामने यह जो छोटी-सी गुफा है इसके भीतर बैठ जा, और तीन दिन तक यही सोच कि मैं आदमी नहीं हूं, भैंस हूं।
उसने कहाः क्या मामला, क्यों सोचूं? नागार्जुन ने कहा कि अगर मुझसे कुछ संबंध रखना है और कुछ समझना है तो यह करना पड़ेगा; एक छोटा-सा प्रयोग है, इसके बाद फिर रहस्य खोलूंगा। तीन दिन वह आदमी बैठा रहा; जिद्दी आदमी था। जो भगवान की छवि तक को खींच लाया था, भैंस में क्या रखा है? लग गया जोर से, तीन दिन न सोया, न खाया, न पीया! भूखा-प्यासा, थका-मांदा रटता ही रहा एक बात कि मैं भैंस हूं। एक दिन, दो दिन, दूसरे दिन वहां से, भीतर से भैंस की आवाज सुनाई पड़ने लगी। बाहर में गुफा से लोग झांककर देखने लगे कि मामला क्या है? था तो आदमी ही, मगर भैंस की आवाज निकलने लगी, रंभाने लगा। तीसरे दिन जब आवाज बहुत हो गयी और नागार्जुन को बहुत विघ्न-बाधा पड़ने लगी उसकी आवाज से, तो नागार्जुन उठा अपनी गुफा से, गया और कहा कि मित्र अब बाहर आ जाओ। वह बाहर आने की कोशिश किया, लेकिन बाहर निकल न पाये।
नागार्जुन ने पूछा, बात क्या है? उसने कहा, निकलूं कैसे, मेरे सींग... दरवाजा छोटा है। नागार्जुन ने उसे हिलाया और कहाः आंख खोल नासमझ! यह मैंने तुझसे इसलिए करने को कहा कि मैं समझ गया तुझे देखकर कि तू जिसको परमात्मा समझ रहा है यह तेरा आत्म-सम्मोहन है। अब देख तूने अपने को भैंस समझ लिया। तीन दिन में भैंस हो गया। हुआ कुछ भी नहीं है; तू वैसा ही का वैसा आदमी है; दरवाजा वही। जैसा तू भीतर आया था वैसा ही का वैसा है। निकल बाहर!
आंख खोली, थोड़ा चौंका। धक्का मारा उसको तो बाहर निकल आया। लेकिन अभी उसके सींग अटकने लगे थे!
तुमने देखा होगा अगर किसी सम्मोहित करने वाले को कभी मंच पर, किसी जादूगर को, तो वह सम्मोहित कर देता है लोगों को। सिर्फ उनको भाव बिठा देता है मन में। बस जो भाव बिठा देता है, वही वे करने लगते हैं, वैसा ही व्यवहार करने लगते हैं।
जिसको तुमने धर्म के नाम से जाना है वह आत्म-सम्मोहन से ज्यादा नहीं है। वास्तविक धर्म समस्त सम्मोहन से मुक्त होने का नाम है। और तब परमात्मा व्यक्ति नहीं है, तब परमात्मा समष्टि है। तब परमात्मा इस सारे अस्तित्व का जोड़ मात्र है। और तब अदभुत रसधार बहती है। क्योंकि जहां जाओ उसी से मिलना हो जाता है। फिर जगत, फिर जीवन बहुत प्यारा है! और जब जीवन ऐसा प्यारा है तभी समझना कि धर्म का तुम्हारे जीवन में आविर्भाव हुआ, सूत्रपात हुआ, धर्म की पहली बूंद पड़ी।
आनंद भारती! शुभ हो रहा है। इसको चिंता मत बनाना, संदेह मत करना, प्रश्न मत उठाना--इसमें डूबना, और गहरे डूबना! परमात्मा सौंदर्य है, परम सौंदर्य है। जहां सौंदर्य दिखाई पड़े, समझना उसी की पदचाप सुनाई पड़ी। परमात्मा संगीत है, परम संगीत है। जहां नाद का अनुभव हो, जानना वही गुनगुनाया। परमात्मा प्रकाश है, फिर चाहे दीये का हो और चाहे चांद-तारों का। जहां प्रकाश दिखाई पड़े उसी को पहचानना। परमात्मा चैतन्य है, फिर चाहे

तुम्हारे भीतर हो, चाहे तुम्हारे बच्चे के, चाहे तुम्हारे पड़ोसी के। परमात्मा जीवन है, फिर तुम्हारा जीवन हो कि पक्षी का, कि पशु का, कि पौधे का।
परमात्मा को उसकी अनंत भाव-भंगिमाओं में पहचानो। कितना विराट मंदिर उसने दिया है, जिसका चंदोवा आकाश है! कितना विराट मंदिर उसने दिया है, जहां रोज रात दीवाली है! कितने दीये जलाता है! वैज्ञानिक गिनती नहीं कर पाये हैं अभी तक। तुम खाली आंख से जो गिनती कर सकते हो तारों की वह तीन हजार से ज्यादा नहीं होती। वैज्ञानिक जो गिनती करते हैं, वे थक गये गिनती करते- करते। चार अरब तारों की गिनती हो चुकी। मगर यह सिर्फ शुरुआत है। अभी तारे और हैं, अभी और हैं। जितना वैज्ञानिक गिनती करते जाते हैं, लगता है और आगे, और आगे... ! कोई अंत नहीं मालूम होता। रोज रात दीवाली होती है और कैसे अंधे लोग हैं, कोई देखता ही नहीं दीवाली को! रोज सुबह उसकी होली होती है, कितनी गुलाल उड़ती है, कितने फूल खिलते हैं, कितनी सुगंध छूटती है, कितना इत्र बिखेरा जाता है; मगर लोग अंधे हैं। रोज सुबह उसकी शहनाई बजती है कितने- कितने कंठों से! मगर लोग बहरे हैं।
जीसस ने बार-बार कहा हैः अगर आंख हों तो देख लो, अगर कान हों तो सुन लो। क्या तुम सोचते हो जीसस बहरों और अंधों के किसी आश्रम में बोल रहे थे? जीसस तुम्हीं जैसे लोगों से बोल रहे थे, जिनकी आंख भी थी, कान भी थे; लेकिन न तो आंखें देखती हैं और न कान सुनते हैं। आंखें बड़ी सीमित हो गयी हैं, बड़ा क्षुद्र देखती हैं। कान भी बहुत सीमित हो गये हैं, बड़ा क्षुद्र सुनते हैं। मैं तुम्हें सिखाता हूं संवेदनशीलता। तुम्हारी प्रत्येक इंद्रिय गहन रूप से संवेदनशील हो जाये। तुम्हारी प्रत्येक इंद्रिय अपनी परिपूर्णता से संवेदनशील हो जाये। तुम्हारी प्रत्येक इंद्रिय ऐसी जल उठे जैसे मशाल जले दोनों ओर से एक साथ। और तब सारे अनुभव उसके ही अनुभव हैं। जीवन निश्चित ही प्यारा है!

चौथा प्रश्नः जीवन के सुख-दुखों को हम कैसे समभाव से स्वीकार करें?

वही देता सुख, वही देता दुख; देनेवाला मालिक एक है। सब उससे आता है। समभाव से स्वीकार कर लो तो यह सत्य तुम्हें दिखाई पड़ जाये कि सब उससे आता है। उसके सिवाय कोई है ही नहीं।
फिर दुख की भी अपनी महिमा है। दुख व्यर्थ नहीं है। दुख मांजता है; दुख निखारता है; दुख जगाता है, दुख गहराई देता है। दुख ही तुम्हें इस योग्य बनाता है कि सुख हो सके। इसलिए दुख को भी शत्रु मत मान लेना। जिसने दुख को शत्रु मान लिया वह सुख से भी वंचित रह जायेगा। दुख को उसकी सीढ़ी मानना, उसके मंदिर की सीढ़ी! हां, चढ़ने में कठिनाई होती है, माना; थकान भी आती है, श्वास भी चढ़ जाती, पसीना भी आता है, माना। मगर उसके मंदिर की सीढ़ी है; उसका मंदिर बहुत ऊंचा है। बहुत सीढ़ियां हैं उसके मंदिर की। उसका मंदिर गौरीशंकर का शिखर है! चढ़ने में कठिनाई है, जरूर है, मगर जितनी कठिनाई चढ़ने में है, उतना ही पहुंचने का आनंद है। और उसके मंदिर तक पहुंचने के लिए कोई हेलिकाप्टर नहीं है। और अच्छा है कि कोई हेलिकाप्टर नहीं है, नहीं तो तुम उसके मंदिर में भी चढ़कर पहुंच जाते और तुम्हें कुछ आनंद का अनुभव भी न होता।
तुमने इस बात को ख्याल किया है, जिस चीज को पाने में जितना कष्ट उठाना पड़ता है, उसको पाकर उतना ही आनंद अनुभव होता है--कष्ट के अनुपात में ही! जो चीज तुम्हें मुफ्त मिल जाये, उसके लिए तो धन्यवाद देने तक का मन नहीं होता।
यही तो हुआ है। तुम्हें जीवन मिला मुफ्त, जरा सोचो, तुमने धन्यवाद दिया किसी को? परमात्मा को धन्यवाद दिया जीवन देने के लिए? मुफ्त मिल गया, क्या देना धन्यवाद, किसको देना धन्यवाद?
सिकंदर से एक ज्ञानी ने कहा कि तूने इतना बड़ा साम्राज्य बना लिया, इसका कुछ सार नहीं है; मैं इसे दो कौड़ी का समझता हूं। सिकंदर बहुत नाराज हो गया। उसने उस फकीर को कहाः इसका तुम्हें ठीक-ठीक उत्तर देना होगा, अन्यथा

गला कटवा दूंगा। तुमने मेरा अपमान किया है। मेरे जीवन-भर का श्रम और तुम कहते हो कुछ भी नहीं, दो कौड़ी!
उस फकीर ने कहाः तो फिर ऐसा समझो कि एक रेगिस्तान में तुम भटक गए हो। प्यास लगी जोर की, तुम मरे जा रहे हो। मैं मौजूद हूं, मेरे पास मटकी है, पानी भरा हुआ है स्वच्छ। लेकिन मैं कहता हूं कि एक गिलास पानी दूंगा, लेकिन कीमत लूंगा। अगर मैं आधा साम्राज्य तुमसे मांगूं, तुम दे सकोगे? सिकंदर ने कहा कि अगर मैं मर रहा हूं और रेगिस्तान में हूं और प्यास लगी है तो आधा क्या मैं पूरा दे दूंगा। तो उस फकीर ने कहा, बात खतम हो गयी, एक गिलास कीमत... एक गिलास पानी कीमत है तुम्हारे साम्राज्य की। और तुम कहते हो, दो कौड़ी! दो कौड़ी भी नहीं है, क्योंकि पानी तो मुफ्त मिलता है। जीवन बचाने के लिए सिकंदर अपना पूरा साम्राज्य देने को राजी है; लेकिन तुमने जीवन पाया है, इसके लिए तुमने धन्यवाद दिया? जिसके लिए तुम पूरा साम्राज्य दे सकते हो सारी पृथ्वी का, वह तुम्हें मुफ्त मिला है--और तुमने धन्यवाद भी नहीं दिया है, तुमने कृतज्ञता भी स्वीकार नहीं की! तुम्हें कितना मिला है, जरा सोचो! तुम्हारे हृदय में प्रेम की संभावना है, तुमने धन्यवाद दिया? तुम्हारे कंठ में से गीत पैदा हो सकते हैं, तुमने धन्यवाद दिया? तुम्हारी आंखें खुलती हैं और तुम जगत के अपूर्व सौंदर्य को देख सकते हो, तुमने धन्यवाद दिया? जरा किसी अंधे आदमी से पूछो कि अगर तुझे आंखें मिल जायें तो तू क्या देने को तैयार है? वह कहेगा, मैं अपना सब कुछ देने को तैयार हूं, आंखें मिल जायें, बस आंखें मिल जायें। मैं क्या है जो बचाऊं, सब दे दूंगा।
लेकिन तुमने आंख के पाने में कोई गौरव अनुभव किया है?
मनुष्य को जो मुफ्त में मिल जाता है उसका कोई मूल्य नहीं होता। परमात्मा ने बहुत दिया है तुम्हें, जो अमूल्य है, मगर तुम उसे निर्मूल्य समझ रहे हो। लेकिन एक बात मूल्य से ही, चुकाने से ही मिलती है--पहाड़ चढ़ना पड़ता है परमात्मा का। तुम्हें पहाड़ चढ़ना ही होगा। पहाड़ के चढ़ने में दुख भी होंगे, मगर अगर तुम मंदिर की तरफ जा रहे हो तो फिर दुख दुख मालूम नहीं होते।
मैंने सुना है, एक संन्यासी हिमालय तीर्थयात्रा को गया था! थका-मांदा, पसीने-पसीने! सांस चढ़ आयी है। चढ़ाव भारी है। उसके समाने ही एक पहाड़ी लड़की, होगी कोई नौ-दस साल की, अपने छोटे भाई को कंधे पर रखे हुए चढ़ रही है। पसीने से लथपथ है, थकी-मांदी। संन्यासी जब पहुंचा उस लड़की के पास तो उसने कहाः बेटी--सहानुभूति के स्वर में, प्रेम के भाव में--कि मैं भी बहुत थक गया हूं, तू भी बहुत थक गयी होगी। कितना बोझ लेकर चल रही है!
उस लड़की ने क्रोध से उस संन्यासी की तरफ देखा और कहाः स्वामी जी, बोझ
आप लिये हुए हैं; यह मेरा छोटा भाई है, बोझ नहीं।
जहां प्रेम है, वहां बोझ नहीं है। हालांकि छोटे भाई को भी तराजू पर रखो तो बोझ निकलेगा, मगर प्रेम के तराजू पर बोझ समाप्त हो गया। प्रेम का जादू देखते हो, गुरुत्वाकर्षण के नियम को खतम कर दिया प्रेम के जादू ने! स्वामी जी भी अपनी पोटली लिये चढ़ रहे हैं। उस पोटली में भी वजन है। तराजू पर रखोगे तो शायद छोटे भाई में वजन ज्यादा निकले, लेकिन प्रेम के तराजू पर छोटे भाई में कोई वजन नहीं है। लड़की नाराज हो गयी। इस बात से नाराज हो गयी कि तुमने मेरे भाई को वजन कहा! वजन आप लिये हैं, यह मेरा छोटा भाई है!
तुम अगर परमात्मा के मंदिर की सीढ़ियां चढ़ते वक्त पाओ कि कठिनाई हो रही है, क्या तुम कहोगे यह कठिनाई है? प्यारे के मंदिर की तरफ जाते हो तो फिर कोई कठिनाई नहीं है।
जीवन अगर सत्य की खोज है तो फिर सुख और दुख दोनों समान रूप से स्वीकार
हो जाते हैं, फिर कोई अड़चन नहीं रह जाती।

धूप-छांह है प्यार तुम्हारा,
कभी हंसाए, कभी रुलाए, हाथ न आए!
कभी कभी नंदन-कुसुमों से
भर जाती है मेरी झोली,
कभी राह की धूल निगोड़ी

कर जाती है क्रूर ठिठोली;
इसीलिए तो बिलख-बिलखकर कहती हूं मैं बैरी है या मीत हमारा,
गले लगाए, या ठुकराए, बाज न आए! धूप-छांह है प्यार तुम्हारा,
कभी हंसाए, कभी रुलाए, हाथ न आए! मुखरित हो जाता अपने में
कभी-कभी तो सूनापन भी,
और कभी तो भरे जगत में
पास न रहता अपना मन भी;
इसीलिए तो सिसक-सिसककर कहती हूं मैं मौज कहूं, या इसे किनारा
कभी डुबाए, पार लगाए, आस जगाए! धूप-छांह है प्यार तुम्हारा,
कभी हंसाए, कभी रुलाए, हाथ न आए! कभी कल्पना के धागों में
बंध जाते हैं क्षण अनजाने,
कभी नयन के यमुना-जल में
बह जाते हैं घर-पहचाने;
इसीलिए तो तड़प-तड़पकर कहती हूं मैं
है कैसा अनमोल सहारा,
दीप बुझाए, स्वप्न सजाए, नींद न आए!
धूप-छांह है प्यार तुम्हारा,
कभी हंसाए, कभी रुलाए, हाथ न आए!
सब उसका है, धूप भी उसकी, छांव भी उसकी। दुख भी उसका, सुख भी उसका। जीवन
भी उसका दिया हुआ, मृत्यु भी उसकी दी हुई। जब सब उसका है तो अनायास समभाव सध जाता है। इस भेद को समझना।
हो सकता है पूछनेवाले ने सोचा हो कि मैं कोई प्रक्रिया समझाऊंगा कि ऐसे समभाव साधो। अगर तुम समभाव साधोगे किसी प्रक्रिया से तो ऊपर-ऊपर रहेगा। साधा हुआ कभी भीतर नहीं जाता, साधा हुआ ऊपर रह जाता है। बस तुम्हारे वस्त्र रंग जायेंगे, तुम अनरंगे रह जाआगे। साधा हुआ पर्त पर होता है--बाहरी पर्त पर--अंतस्तल नहीं छू पाता उससे। अंतस्तल तो तभी छूता है जब तुम समझो। साधना की बात नहीं है, समझने की बात है। बस समझो कि सब उसका है।
साधना क्या है? साधने का तो मतलब है कि दुख आये, अकड़कर खड़े रहे कि नहीं प्रभावित होंगे! गुजर जायेंगे अप्रभावित, आंदोलित नहीं होंगे। यह तो अकड़ ले आयेगा, यह साधना नहीं होगी। इससे अहंकार और मजबूत हो जायेगा। इससे तुम पिघलोगे नहीं, इससे तो तुम और जम जाओगे, और पत्थर हो जाओगे। इसलिए तो तुम्हारे तथाकथित साधु-संन्यासी पथरीले हो जाते हैं। उनके जीवन में जरा भी आर्द्रता नहीं रह जाती। उनके जीवन में जरा भी सौंदर्य नहीं रह जाता। उनके जीवन में संगीत की संभावना ही नष्ट हो जाती है। और चले हैं परमसंगीत को खोजने! और चले हैं अनंत सौंदर्य को खोजने! और उनके जीवन में तुम कोई काव्य न पाओगे; रूखा-सूखा हो जाता है उनका जीवन। क्यों? साधने के कारण। जबर्दस्ती कर रहे हैं अपने साथ। साधना है, कष्ट साधना है। तो क्या करें, कांटे की सेज बना लेंगे, उस पर लेट जायेंगे। क्योंकि कष्ट को साधना है। समभाव रखना है, कांटे की सेज हो तो भी वैसे ही सोयेंगे जैसे कि सुंदरतम पलंग पर सोते हैं।
मगर जो आदमी कांटों की सेज पर सोता है, उसकी देह संवेदनशीलता खो देती है; उसकी देह जड़ हो जाती है; उसकी देह मुर्दा हो जाती है। उसकी देह में जीवन समाप्त हो जाता है; जीवन भीतर सरक जाता है। उपवास करो कि हम तो भूख साधेंगे, कि भूख आयेगी तो भी हम समभाव रखेंगे। तो साध ले सकते हो, मगर यह साधना सच्ची न हुई। सच्ची साधना समझ का प्रतिफल है--समझ के ही पीछे आती है छाया की भांति।
तो मैं तो तुमसे कहता हूं इतना ही समझोः

धूप-छांह है प्यार तुम्हारा, कभी हंसाए, कभी रुलाए, हाथ न आए! बैरी है या मीत हमारा,
गले लगाए, या ठुकराए, बाज न आए! मौज कहूं, या इसे किनारा,
कभी डुबाए, पार लगाए, आस जगाए!
है कैसा अनमोल सहारा,
दीप बुझाए, स्वप्न सजाए, नींद न आए!
धूप-छांह है प्यार तुम्हारा,
कभी हंसाए, कभी रुलाए, हाथ न आए!
चलो इस रहस्य के जगत में। जो हाथ की पकड़ में नहीं आता, उसकी खोज करें।
जो किसी पकड़ में नहीं आता, उसे खोजने चलें। फिर खोजेंगे कैसे, जो पकड़ में नहीं आता? परमात्मा तो तुम्हारी पकड़ में नहीं आता, लेकिन तुम उसकी पकड़ में आ जा सकते हो। उसे खोजोगे तो तुम उसकी पकड़ में आ जाओगे, तुम उसकी गिरफ्त में आ जाओगे। और वहीं है मिलन।

आखिरी प्रश्नः मैं आपका आशीर्वाद चाहता हूं। लेकिन आशीर्वाद से क्या चाहता हूं, वह जरा भी स्पष्ट नहीं है। उसे भी आप ही स्पष्ट करें। मेरी ओर से इतना भर निश्चित है कि आपका आशीर्वाद चाहता हूं।

यह सुंदर है, यह बात सुंदर है। तुम तो जो भी आशीर्वाद चाहोगे उसमें गलती हो जायेगी; तुम्हारी कोई मांग समाविष्ट हो जायेगी। तुम्हारी कोई वासना पीछे के द्वार से आ जायेगी। तुम्हारी कामना ही होगी तुम्हारी मांग में। तुम्हारा मांगा गया आशीर्वाद तो गलत हो जायेगा। आशीर्वाद मांगना हो तो ऐसे ही मांगना चाहिए कि मुझे पता नहीं कि मैं क्या चाहता हूं, बस आशीर्वाद चाहता हूं। और तब जो तुम सोच भी नहीं सकते वह मिल सकता है। जिसे तुम कल्पना में भी नहीं विचार सकते थे, वह मिल सकता है। और वह तुम्हारी कल्पना में अभी है भी नहीं, जो तुम्हें मिलना चाहिए, जिसके मिलने से तुम तृप्त हो जाओगे। हो भी कैसे कल्पना में? तुम्हारा अनुभव ही नहीं है उस किरण का। वह बूंद ही तुम्हारे कंठ नहीं उतरी।
इसलिए तुम्हारा प्रश्न प्यारा है। तुम्हारा प्रश्न अर्थपूर्ण है। अच्छा किया, तुमने आशीर्वाद के साथ कोई शर्त न लगायी। लोग शर्त लगा देते हैं। लोग शर्त के बिना आशीर्वाद मांगते ही नहीं।
कोई चुनाव लड़ता है तो मेरे पास आ जाता है कि आशीर्वाद दें। मैं उसको कहता हूं, तुम मुझको भी फंसाओगे। तुम तो नरक जाओगे पक्का, तुम मुझे भी ले जाओगे। मैं तो एक ही आशीर्वाद दे सकता हूं कि भगवान करे, तुम चुनाव में न जीतो! क्योंकि जीते कि गये। हारे तो कुछ संभावना शेष रहती है कि तुम्हारे जीवन में कुछ हो जायेगा। जीते कि गये। जो जीता वह तो ऐसे अहंकार से भर जाता है कि फिर उसके जीवन में कुछ नहीं हो सकता। जीत का जहर जो पीने लगा, वह धीरे-धीरे और जहर मांगता है, और जहर मांगता है। वह नशा शराब जैसा है, शराब से ज्यादा घातक। क्योंकि शराब का नशा तो सांझ पीयो सुबह उतर जाता है; पद-लिप्सा का नशा जो पी लेते हैं, फिर उतरता ही नहीं, चढ़ता ही चला जाता है। एक पद मिले तो और आगे का पद है, वह मिलना चाहिए। वह मिले तो और आगे का पद है, वह मिलना चाहिए। और अगर कुछ आगे मिलने को न बचे तो जो मिल गया है, वह अब छिनना नहीं चाहिए। वह तो पागलपन समाप्त ही नहीं होता है।
मेरे पास लोग आ जाते हैं, वे कहते हैं कि पत्नी बीमार है, आशीर्वाद दे दें, कि बच्चे की नौकरी नहीं लग रही, आशीर्वाद दे दें। तुम आशीर्वाद को भी किन छोटे-मोटे कामों में लगाने चले हो! नौकरी नहीं मिल रही तो नौकरी खोजने के ढंग हैं। पत्नी बीमार है तो चिकित्सा के उपाय हैं। इसके लिए आशीर्वाद को बीच में लाने की क्या जरूरत है? और आशीर्वादों से अगर नौकरियां मिलती होतीं और आशीर्वादों से अगर पत्नियां ठीक होती होतीं तो यह देश तो कभी बीमार हो ही नहीं सकता था; यह तो कभी गरीब हो ही नहीं सकता था। यहां इतने आशीर्वाद देनेवाले हैं--संत-महंत, साधु-संन्यासी, महात्मा! यहां कमी क्या

है आशीर्वाद देनेवालों की? यहां तो आशीर्वाद ही आशीर्वाद दिए जा रहे हैं। न तो आशीर्वादों से पेट भरता है किसी का, न नौकरी मिलती है; मगर एक खतरा हो जाता है, आशीर्वाद मांगनेवाला आदमी और उपाय छोड़ देता है; वह सोचता है आशीर्वाद मिल गया, सब ठीक है। अब क्या करना है चिकित्सक के पास जाकर? और अगर एक आशीर्वाद नहीं फलता तो वह यह नहीं सोचता कि मैंने कुछ गलती की थी, वह यही सोचता है कि हमने गलत आदमी से आशीर्वाद मांग लिया, अब किसी ठीक से मांगेंगे। बस ऐसे ही जिंदगी बीतती है। ऐसे ही इस देश की जिंदगी बीतती रही है। यह देश दरिद्र होता गया, दीन होता गया, दास हो गया, इसके पीछे बड़े से बड़े कारणों में एक कारण यह आशीर्वाद मांगने की वृत्ति है।
आशीर्वाद से इस जगत का कोई संबंध नहीं जुड़ता; आशीर्वाद दूसरे ही लोक
की बात है। बेशर्त ही मांगो तो ही कुछ हो सकता है। आशीर्वाद से कुछ होता है जरूर--धन पैदा नहीं होता, ध्यान पैदा होता है। शरीर की बीमारी नहीं मिट सकती आशीर्वाद से, अन्यथा चिकित्सा-शास्त्रों की जरूरत ही न रह जाये। हां, आत्मा की बीमारी मिट सकती है। मगर आत्मा की बीमारी का तो तुम्हें पता ही नहीं है! तुम्हें आत्मा का ही पता नहीं है। ध्यान बरस सकता है आशीर्वाद से; लेकिन तुम्हारे भीतर तो मांग धन की है, ध्यान की नहीं। तुम तो ध्यान भी करते हो तो इस आशा में कि शायद इससे धन मिले।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं महर्षि महेश योगी तो कहते हैं कि जो ध्यान करेगा उसे उस जगत में तो बहुत मिलेगा ही मिलेगा, इस जगत में भी मिलेगा। सांसारिक लाभ भी होगा। आप क्या कहते हैं?
ध्यान से अगर सांसारिक लाभ होता तो यह देश तो शिखर पर होता वैभव के।
इस देश ने जितना ध्यान किया है, किसी और ने किया है? बुद्ध ने ध्यान किया, समाधि को उपलब्ध हुए। कहानी कहती है कि फूल बरसे; नोट बरसे, ऐसा मैंने सुना नहीं। फिर से लिखो कहानी, ताकि महर्षि महेश योगी के साथ संबंध बन सके। फिर से लिखो कहानी। महावीर समाधि को उपलब्ध हुए, केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ, तो आकाश से फूल बरसते हैं, देवता मधुर नाद करते हैं। पागल रहे होंगे देवता, फूल बरसाने से क्या होगा, अरे हीरे-जवाहरात बरसाते! कुछ देना था तो कुछ मतलब की बात देते, बेचारे महावीर वैसे ही नंगे खड़े थे। इनको कुछ देना था; कम से कम कपड़े-लत्ते गिराते। भूखे-उपवासे रहते थे, कुछ धनधान्य दे देते। फूल गिरा रहे, भूखे आदमी का मजाक कर रहे! नंगे खड़े आदमी पर शहनाई बजा रहे! वह तो महावीर भले आदमी थे, नहीं तो शहनाई तोड़ देते और देवी-देवताओं की मारपीट कर देते, कि मजाक कर रहे हो? महर्षि योगी का उन्हें कुछ पता नहीं था कि आगे जाकर हालतें कैसी हो जानेवाली हैं।
लेकिन मैं महर्षि महेश योगी का कारण समझता हूं। अमरीका में अगर प्रचार करना हो, अमरीका की उत्सुकता धन में है, ध्यान में नहीं है। महर्षि महेश योगी कुशल विक्रेता हैं; जो तुम्हारी मर्जी वही देने को राजी हैं। ग्राहक जो मांगे वही देना पड़ता है। दुकानदार इसकी फिक्र नहीं करता कि ग्राहक की क्या जरूरत है; जो मांगे, गलत मांगे तो गलत भी देता है; जैसा कहे वैसा ही राजी हो जाता है। कुशल दुकानदार मानते हैं कि ग्राहक हमेशा ठीक है। वह जो कहे ठीक है, जैसा कहे ठीक है।
अमरीका में बेचना है ध्यान--और यह बिक्री चल रही है वहां--बेचना है ध्यान। अमरीका कहता है कि स्वास्थ्य चाहिए, तो स्वास्थ्य मिलेगा, धन चाहिए तो धन मिलेगा, व्यवसाय में कुशलता चाहिए तो व्यवसाय में कुशलता मिलेगी।
इस तरह की किसी मूढ़तापूर्ण बात को मैं समर्थन नहीं दे सकता हूं। अगर ध्यान से यह होता होता तो इस देश में ये सब बरस गये होते सोने-चांदी कभी के। तुम जो वे कहानियां भी सुनते हो कि यह देश कभी सोने की चिड़िया था, वह भी कहानी है। यह सोने की चिड़िया था, अगर तुम इस देश के राजाओं-महराजाओं के संबंध में विचार करो, तो वह तो अभी भी है। इस देश के आम आदमी को सोचो तो यह हमेशा से दीन और भिखारी है। यह कोई आज ही दीन और भिखारी नहीं हो गया है। और राजा-महाराजाओं की बात सोचो तो वे अब भी धनी हैं। बदल गये हैं ढंग। अब उद्योगपति होगा; राजा-महाराजा अब नहीं रहे। कोई और होगा--उनको अगर तुम देखो तो अब भी सोने की चिड़िया है।

सोने की चिड़िया यह देश कभी नहीं रहा। हां, इस देश में कुछ लोगों के पास सोना रहा है। और उनके पास सोना रहा ही इस कारण है कि और सारे लोगों का सोना छिन गया है।
ध्यान से धन नहीं मिलता, ध्यान से कुछ और मिलता है, जो परम धन है। ध्यान से कुछ मिलता है, जो इस लोक का नहीं है, परलोक का है। ध्यान से परलोक इस लोक में उतरता है।
तुमने ठीक किया, आशीर्वाद मांगा; और क्या मांगना है, इसे अनकहा छोड़ दिया। एक ही बात मांगने जैसी है--

इस जग का कण-कण बदले पर
प्रिय मंदिर की राह न बदले
पूजा का उत्साह न बदले
अंकित हुई यहीं पर मेरे
अंतर के भावों की भाषा
इसे स्वाति-सा समझ, तृषा को तुष्टि समझता चातक प्यासा जीवन का कण-कण बदले पर
दृग का पुण्य प्रवाह न बदले प्रिय मंदिर की राह न बदले यह अर्चन के फूल, सुकोमल
अक्षत, शुचि वंदन अभिनंदन श्वासों की रोली आंसू की अंजलि, प्राणों का आमंत्रण मंदिर का कण-कण बदले पर
मेरे प्रभु की चाह न बदले प्रिय मंदिर की राह न बदले वहां पहुंचने से प्रिय मुझको प्रतिदिन चलने की तैयारी
और मधुर आशा आयेगी
एक दिवस मेरी भी बारी
मधुर मिलन का कण-कण बदले
किंतु विरह की आह न बदले
प्रिय मंदिर की राह न बदले
एक ही मांगो आशीर्वाद, कि परमात्मा में लौ जगे, जगी रहे। एक ही मांगो आशीर्वाद, हम उसे कैसे जान लें जो सब का आधार है, सब का स्रोत है।

इस जग का कण-कण बदले पर
प्रिय मंदिर की राह न बदलेपूजा का उत्साह न बदले!
आज इतना ही।

मरौ हे जोगी मरौ
सातवां प्रवचन

एकांत में रमो

जोगी होइ परनिद्यां झशै। मदमास अरु भांगि जो भषै।
इकोतर सै पुरिषा नरकहि जाई। सति सति भाषंत श्री गोरषराई।।
एकाएकी सिध नांउं, दोइ रमति ते साधवा।
चारि पंच कुटंब नांउं, दस बीस ते लसकरा।।
महमां धरि महमां कूं मेटै, सति का सबद बिचारी।
नांन्हां होय जिनि सतगुर शोज्या, तिन सिर की पोट उतारी।।
जे आसा ते आपदा, जे संसा ते सोग।
गुरमुषि बिना न भाजसी (गोरष) ये दून्यों बड़ रोग।।
जपतप जोगी संजम सार। बाले कंद्रप कीया छार।
येहा जोगी जग मैं जोय। दूजा पेट भरै सब कोय।।
कैसे बोलौ पंडिता, देव कौंने ठांईं।
निज तत निहारतां अम्हें तुम्हें नहीं।।
पषांणची देवली पषांण चा देव, पषांण पूजिला कैसे फीटिला सनेह।
सरजीव तोड़िला निरजीव पूजिला, पाप ची करणी कैसे दूतर तिरीला।।
तीरथि तीरथि सनांन करीला, बाहर धोये कैसे भीतरि भेदीला।
आदिनाथ नाती मच्छींद्रनाथ पूता, निज तात निहारै गोरष अवधूता।।

एक अदद उधड़ी-सी जिंदगी
टांकते-न-टांकते
आगे यों चल देने में क्या तुक?
रोना ही रोना
आपा खोना
रोना-कलपना
अकारथ है
घुटे-घुटे जीना
केवल विष पीना
भटकना
अकारथ है
सार्थकता
कुछ तो संजोये है--
चिरि-चुरमुन की
--चुक-चुक-चिक
चुक-चुक
आगे यों चल देने में क्या तुक?

क्षण दो-या-चार
जिसको जीना कहते
--जानना
नहीं गुनाह
और पंक्तिकाएं
गीत किसी की
मन में बांचना
नहीं गुनाह
तेरी मन-भाषा में ही गाते --भानु-कांत-रंजक-अंजुम
--पिक-शुक।
आगे यों चल देने में क्या तुक?

घेरे में जीवन

आंखों पर पट्टियां
--यातना
निरंतरता
लीक-लीक गाड़ी
चाबुक-दर-चाबुक
--भागना
निरंतरता
मशीनी करिश्मे--
कट-चिट-चिट-पट
कुछ रुक
आगे यों चल देने में क्या तुक?

एक अदद उधड़ी-सी जिंदगी
टांकते-न-टांकते
आगे यों चल देने में क्या तुक?

मनुष्य चलता ही चला जाता है--बिना सोचे, क्यों; बिना सोचे, कहां से; बिना सोचे, किस ओर? यह भी नहीं सोचता कि मैं कौन हूं और भागा जाता है। ऐसी भाग-दौड़ का क्या परिणाम होगा? क्या हाथ लगेगा? आगे यों चल देने में क्या तुक?
थोड़ा रुको। एक बार पुनर्विचार करो। मैं कौन हूं, इस प्रश्न को जगने दो। क्योंकि इसी प्रश्न के गहन उतर जाने पर, तुम्हारे प्राण-प्राण में इसी प्रश्न के तीर के चुभ जाने पर, जीवन का रहस्य अपना परदा उठाता है।
लेकिन धर्म के नाम पर जो लोग मंदिरों, मस्जिदों, देवालयों में बैठ गये हैं, वे भी रुके नहीं हैं, वे भी चल रहे हैं। उनकी दौड़ जारी है। तुम धन पाना चाहते हो, वे स्वर्ग पाना चाहते हैं। तुम पद पाना चाहते हो, वे परमात्मा पाना चाहते हैं। लेकिन चाह जहां है, वहां विक्षिप्तता है। और जहां चाह है, वहां प्रतिस्पर्धा है। और जहां चाह है वहां प्रतियोगिता है, पूरा बाजार है। जहां चाह है वहां भय है--कहीं मैं हार न जाऊं, कहीं दूसरा मुझसे पहले जीत न जाये! जहां चाह है वहां निंदा है, विरोध है। जहां चाह है वहां संघर्षण है, वहां तनाव है। चाह के जाते ही जीवन में एक अपूर्व विश्राम आ जाता है। चाह के जाते ही पतझड़ के दिन गये, वसंत आया।
धार्मिक कौन है? वह नहीं, जिसने चाह बदल ली; बल्कि वह जिसने चाह समझ ली। चाह दौड़ाती है, बेतुक दौड़ाती है, व्यर्थ दौड़ाती है, निरर्थक दौड़ाती है, दौड़ने के लिए दौड़ाती है। फिर दौड़ना आदत हो जाती है, आदमी दौड़ा ही चला जाता है। जब तक कब्र में न गिर जाये, दौड़ जारी रहती है। पहुंचता कहीं नहीं। सारी दौड़ के बाद हम केवल कब्र में पहुंच जाते हैं। हाथ कुछ भी नहीं लगता; शायद कुछ लेकर आये थे, वह भी गंवा बैठते हैं। लेकिन दौड़ ने इस बुरी तरह पकड़ा है मन को कि अगर हम कभी दौड़ की व्यर्थता से जागते भी हैं तो नयी दौड़ शुरू कर देते हैं। जंजीरों में हम ऐसे बंध गये हैं कि कभी अगर जंजीरों की पीड़ा सालती है तो हम नयी जंजीरें ढाल लेते हैं। यह भी हो सकता है कि लोहे की जंजीरों की जगह तुम सोने की जंजीरें ढाल लो। और यह भी हो सकता है कि सोने की जंजीरों पर हीरे-जवाहरात जड़ लो, मगर जंजीरें जंजीरें हैं।
यहां सांसारिक तो बंधा ही हुआ है, यहां तथाकथित आध्यात्मिक लोग भी बंधे हुए हैं। मुक्त तो वही है जिसकी कोई चाह नहीं; जो परमात्मा को भी चाहता नहीं; जो स्वर्ग भी चाहता नहीं; जिसने चाह की व्यर्थता समझ ली कि चाह भटकाती है, दौड़ाती है; जिसने चाह की ज्वरग्रस्तता समझ ली; जिसने चाह की विक्षिप्तता समझ ली; जिसने चाह को भर आंख देख लिया और चाह को गिर जाने दिया और नयी चाह नहीं उठाई। जो ऐसा चाह-शून्य हो जाता है उसे परमात्मा मिलता है। उसे मिला ही हुआ है। इधर गयी चाह, उधर आंख खुली। इधर मिटी चाह, उधर परमात्मा अवतरित हुआ। छिपा ही था, बाट जोहता था कि चाह हट जाये तो आमना- सामना हो जाये। तुम्हीं थोड़े ही उसके दरस-परस को लालायित हो, वह भी तुम्हारे दरस-परस को लालायित है। लेकिन बीच में खड़ी है चाह की एक दीवाल।

चाह का क्या अर्थ होता है? चाह का अर्थ होता हैः जैसा मैं हूं वैसा नहीं, मुझे कुछ और होना है। चाह का अर्थ होता हैः जहां मैं हूं यहां नहीं, मुझे कहीं और होना है। चाह का अर्थ हैः आज? आज सुख नहीं है, सुख कल होगा। चाह कहती हैः चलो, दौड़ो, पहुंचो।
चाह छोड़ने का अर्थ होता हैः मैं जहां हूं संतुष्ट हूं; जैसा हूं आनंदित हूं, इससे अन्यथा होने की कोई आकांक्षा नहीं है।
सब आकांक्षाएं अन्यथा होने की आकांक्षाएं हैं। इसलिए सब आकांक्षाएं तुम्हें तुम्हारे केंद्र से च्युत कर देती हैं। जैसे ही आकांक्षा गयी, तुम अपने केंद्र पर विराजमान हो गये। केंद्र पर विराजमान होते ही पाया जाता है कि भक्त ही भगवान है।
आज के सूत्रः
जोगी होइ परनिद्यां झशै। मदमास अरु भांगि जो भषै।
इकोतर सै पुरिषा नरकहि जाई। सति सति भाषंत श्री गोरषराई।।
जोगी होइ परनिद्यां झशै!
कहते हैं, योगी होकर पर की निंदा करोगे तो योग खो गया।
यहां कुछ बातें समझ लेना जरूरी हैं। पहली बात, निंदा और आलोचना का भेद समझ लेना जरूरी है। क्योंकि आलोचना तो गोरख भी कर रहे हैं। ये भी आलोचना के सूत्र हैं। यह कहना कि...
जोगी होइ परनिद्यां झशै। मदमास अरु भांगि जो भषै।
... कि योगी होकर जो पराये की निंदा करेगा, मद्य-मांस खायेगा, भांग पीयेगा, ऐसे लोग हजारों की तादाद में हैं, नरक में पड़ते हैं।
झकोतर सै पुरिषा नरकहि जाई।
ऐसे लोग अनंत संख्या में हैं, नरक में पड़ जाते हैं। गोरख कहते हैंः मैं तुमसे सच-सच कह रहा हूं, सुन लो।
आलोचना तो इसमें भी है, निंदा इसमें नहीं है। आलोचना और निंदा का भेद जरा बारीक है और समझ में न आये तो भूल हो सकती है। आलोचना तो बुद्ध ने भी की, महावीर ने भी की। आलोचना तो क्राइस्ट ने भी की, मुहम्मद ने भी की। ऐसा कोई सदगुरु नहीं हुआ पृथ्वी पर जिसने आलोचना न की हो।
भेद क्या है? आलोचना और निंदा का भेद सूक्ष्म है। कभी-कभी निंदा आलोचना जैसी मालूम हो सकती है और कभी-कभी आलोचना निंदा जैसी मालूम हो सकती है। बहुत करीब नाता-रिश्ता है। उनका रूप-रंग एक जैसा है, मगर उनकी आत्मा बड़ी भिन्न है। आलोचना होती है करुणा से, निंदा होती है घृणा से। आलोचना होती है जगाने के लिए, निंदा होती है मिटाने के लिए। आलोचना का लक्ष्य होता है सत्य का आविष्कार, निंदा का लक्ष्य होता है दूसरे के अहंकार को गिराना, धूल-धूसरित करना, पैरों में दबा देना। निंदा का लक्ष्य होता है दूसरे की आत्मा को कैसे चोट पहुंचाना, कैसे घाव करना? आलोचना का लक्ष्य होता है, सत्य को कैसे खोजें? धूल में पड़ा हीरा है, इसे कैसे धो लें, शुद्ध कर लें?
आलोचना अत्यंत मैत्रीपूर्ण है, चाहे कितनी ही कठोर क्यों न हो, फिर भी उसमें मैत्री है और निंदा चाहे कितनी ही मधुर क्यों न हो, मीठी क्यों न हो, उसमें जहर है। शायद जहर ही शक्कर में लपेटकर दिया जा रहा है।
निंदा उठती है अहंकार-भाव से--मैं तुम से बड़ा, तुम्हें छोटा करके दिखाऊंगा। आलोचना का संबंध अहंकार से नहीं है। आलोचना का संबंध मैं-तू से नहीं है।
आलोचना इस बात का अन्वेषण है कि सत्य क्या है, सत्य कैसा है? आलोचना बहुत कठोर हो सकती है, क्योंकि कभी-कभी असत्य को काटने के लिए कृपाण का उपयोग करना होता है। असत्य की चट्टानें हैं तो सत्य के हथौड़े और छैनियां बनानी पड़ती हैं।
आखिर गोरख हथौड़ी और छैनी की चोट कर रहे हैं। फिर गोरख के पीछे आनेवाले कबीर और भी धार रखते हैं, तलवार पर और धार आ जाती है! कबीर की चोट ऐसी है कि टुकड़े-टुकड़े कर जाये; लेकिन तुम्हें नहीं टुकड़े-टुकड़े कर जाये, तुम्हारे असत्य को। जब तुम चोर पर हमला कर दो तो निंदा है और जब तुम चोरी पर हमला करो तो आलोचना। जब तुम पापी को घृणा करने लगो तो निंदा और जब तुम पाप को घृणा करो तो आलोचना।

निंदा तो योगी नहीं कर सकता। निंदा का तो रस ही अत्यंत मूर्च्छित व्यक्ति में होता है। निंदा का मनोविज्ञान क्या है? दुनिया के अधिकतम लोग निंदा में पड़े होते हैं; मनोविज्ञान क्या है? मनोविज्ञान बहुत सीधा-साफ है। प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि मेरे अहंकार की प्रतिष्ठा हो, कि मैं सबसे बड़ा! इसको सिद्ध करना बहुत कठिन है। मैं सबसे बड़ा, यह बात सिद्ध करनी बहुत कठिन है, क्योंकि और भी सभी लोग इसी को सिद्ध करने में लगे हैं। और वे लोग एक ही बात को सिद्ध करना चाहते हैं कि मैं सबसे बड़ा। कितने लोग बड़े हो सकते हैं? इतना घमासान चलेगा, इसमें जीत करीब-करीब असंभव है, कौन जीत सकेगा? एक-एक आदमी अरबों आदमियों के खिलाफ लड़ेगा, हार निश्चित है। यहां सभी हार जायेंगे। यहां कोई ऊपर चढ़ नहीं सकता। तो फिर एक सुगम उपाय खोजता है मन। मन कहता हैः मैं सबसे बड़ा हूं, यह तो सिद्ध करना कठिन है; लेकिन कोई मुझसे बड़ा नहीं है, यह सिद्ध करना आसान है।
ख्याल रखना, किसी चीज की विधायकता को सिद्ध करना सदा कठिन होता है, नकारात्मक वक्तव्य सदा आसान होता है। जैसे अगर सिद्ध करना चाहो कि ईश्वर है तो बहुत कठिन बात है। जीवन को तपश्चर्या में अग्नि से गुजारना होगा, तब भी कब हो पायेगी यह सिद्धि, कुछ पता नहीं--इस जन्म में, जन्मों-जन्मों में। लेकिन ईश्वर नहीं है, यह सिद्ध करना हो तो अभी हो सकता है। इसमें कुछ अड़चन नहीं है; जरा-सी तर्क-कुशलता चाहिए, बस। नास्तिक होना कोई बड़ी कुशलता की, बुद्धिमानी की बात नहीं है; बुद्धू से बुद्धू आदमी नास्तिक हो सकता है। तुर्गनेव की प्रसिद्ध कथा हैः महामूर्ख। एक गांव में एक महामूर्ख था।
वह बहुत परेशान था, क्योंकि वह कुछ भी कहता लोग हंस देते; लोग उसको महामूर्ख मान ही लिये थे। वह कभी ठीक भी बात कहता तो भी लोग हंस देते। वह सिकुड़ा-सिकुड़ा जीता था, बोलता तक नहीं था। न बोले तो लोग हंसते थे, बोले तो लोग हंसते थे। कुछ करे तो लोग हंसते थे, न करे तो लोग हंसते थे। उस गांव में एक फकीर आया। उस महामूर्ख ने रात उस फकीर के चरण पकड़े और कहा कि मुझे कुछ आशीर्वाद दो, मेरी जिंदगी क्या ऐसे ही बीत जायेगी सिकुड़े-सिकुड़े? क्या मैं महामूर्ख की तरह ही मरूंगा, कोई उपाय नहीं है कि थोड़ी बुद्धि मुझमें आ जाये?
उस फकीर ने कहाः उपाय है, यह ले सूत्र, तू निंदा शुरू कर दे। उसने कहाः निंदा से क्या होगा? फकीर ने कहाः सात दिन तू कर और फिर मेरे पास आना। उस महामूर्ख ने पूछाः करना क्या है निंदा में? उस फकीर ने कहाः कोई कुछ भी कहे, तू नकारात्मक वक्तव्य देना। जैसे कोई कहे कि देखो, कितना सुंदर सूरज निकल रहा है! तू कहना इसमें क्या सुंदर है? सिद्ध करो, सुंदर कहां है, क्या सुंदर है? रोज निकलता है, अरबों-खरबों सालों से निकल रहा है। आग का गोला है, सुंदर क्या है? कोई कहे कि देखो, जीसस के वचन कितने प्यारे हैं! तू तत्क्षण टूट पड़ना कि क्या है इसमें प्यारा, कौन-सी बात खूबी की है, कौन-सी बात नयी है? सदा से तो यही कहा गया है, सब पिटा-पिटाया है, सब बासा है, सब उधार है। तू नकार ही करना। कोई सुंदर स्त्री को देखकर कहे कितनी सुंदर स्त्री है! तू कहना इसमें है क्या? जरा नाक लंबी हो गयी तो हो क्या गया, कि रंग जरा सफेद हुआ तो हो क्या गया? सफेद तो कोढ़ी भी होते हैं। सुंदर कहां है, सिद्ध करो। तू हर-एक से प्रमाण मांगना और ख्याल रखना यह कि हमेशा नकार में रहना; उनको विधेय में डाल देना, तू नकार में रहना। सात दिन बाद आ जाना। सात दिन बाद तो जब आया महामूर्ख तो अकेला नहीं आया, उसके कई शिष्य हो गये थे। वह आगे-आगे आ रहा था। फूल-मालाएं उसके गले में डली थीं। बैंड-बाजे बज रहे थे। उसने फकीर से कहा कि तरकीब काम कर गयी! गांव में एकदम सन्नाटा खिंच गया है, जहां निकल जाता हूं लोग सिर नीचा कर लेते हैं। लोगों में खबर पहुंच गयी है कि मैं महामेधावी हूं। मेरे सामने कोई जीत नहीं सकता। अब आगे क्या करना है?
उसने कहाः अब आगे तो कुछ करना ही मत, बस तू इसी पर रुके रहना। अगर तेरे
को मेधा बचानी है, कभी विधेय में मत पड़ना। ईश्वर की कोई कहे तो तत्क्षण, तत्क्षण नास्तिकता प्रकट करना। जो भी कहा जाये, तू हमेशा नकारात्मक वक्तव्य देना, तुझे कोई न हरा सकेगा; क्योंकि नकारात्मक वक्तव्य को असिद्ध करना बहुत कठिन है। विधायक वक्तव्य को सिद्ध करना बहुत कठिन है।

ईश्वर को स्वीकार करने के लिए बड़ी बुद्धिमत्ता चाहिए, बड़ी सूक्ष्म संवेदना चाहिए। हृदय का अत्यंत जागरूक रूप चाहिए। चैतन्य की निखरी हुई दशा चाहिए। भीतर थोड़ी रोशनी चाहिए। लेकिन ईश्वर को इंकार करने के लिए कुछ भी नहीं चाहिए। कोई अनिवार्यता नहीं है ईश्वर को इंकार करने के लिए। इसलिए लोग दुनिया में निंदा करते हैं।
निंदा का मनोविज्ञान सस्ता मनोविज्ञान है, सुगम उपाय है। इससे तुम्हारी प्रतिभा सिद्ध होगी। और उसमें कुछ खर्च पड़ता ही नहीं। हल्दी लगे न फिटकरी रंग चोखा हो जाये। इसमें कुछ खर्च होता ही नहीं। इसे सीखने कहीं जाने की जरूरत नहीं। इसके लिए कोई सत्संग करना आवश्यक नहीं। इसलिए हर आदमी निंदा में कुशल है।
तुम चारों तरफ लोगों को पाओगे निंदा-रस लेते। पता नहीं जिन्होंने रसों की गणना की है उन्होंने निंदा-रस क्यों छोड़ दिया? क्योंकि और सब रस तो कोई कभी-कभार लेता है, निंदा-रस तो लोग रोज लेते हैं, सुबह से सांझ तक। तुम अखबार पढ़ते हो इसलिए कि कुछ निंदा रस-मिल जाये। जरा किसी की निंदा हो रही हो तुम एकदम चौकन्ने होकर सुनने लगते हो। तुम कैसे ध्यानस्थ हो जाते हो अगर कोई आकर बताये कि पड़ोसी की स्त्री किसी के साथ भाग गयी! तुम भूल जाते हो सब संसार की बातें, उस क्षण ध्यान ऐसा लगता है। तुम खोद-खोद कर पूछने लगते हो कि "कुछ और तो कहो, कुछ आगे तो बताओ। विस्तार में चलो जरा, ऐसे संक्षिप्त न होओ। कहां भागे जा रहे हो, पूरी बात कह कर जाओ। बैठो चाय पी लो।" पलक-पांवड़े बिछा देते हो।
जहां तुम्हें लगता है कि कुछ निंदा हो रही है, वहीं तुम्हें रस आता है। रस आता है, क्योंकि दूसरा आदमी छोटा किया जा रहा है और उसके छोटे होने में एक भीतरी प्रतीति होती है कि मैं बड़ा हूं। इसलिए अगर कोई भिखारी रास्ते पर केले के छिलके पर फिसल कर गिर पड़े तो तुम्हें उतना रस नहीं आता है, जितना रस कोई सम्राट केले के छिलके पर फिसल कर गिर पड़े तो आये। दिल खुश हो जायेगा--जिसको मुल्ला नसरुद्दीन कहता है दिल का गार्डन-गार्डन हो जाना--बाग-बाग हो जाने का उसने अनुवाद किया है। जब पहली दफा उसने मुझसे कहा, मैं भी चौंका और मैंने उससे पूछा कि यह दिल का गार्डन-गार्डन हो जाना क्या है। उसने कहाः अरे, बाग-बाग हो जाना! यह उसका अंग्रेजी अनुवाद है। कोई बादशाह फिसलकर गिर पड़े, कैसा चित्त प्रसन्न होता है! इसलिए जब तुम्हें खबर मिल जाती है कि कोई प्रधानमंत्री, कोई राष्ट्रपति किसी गलत काम को करते हुए पकड़ लिया गया है, तो कैसा निंदा का रस फैलता है! क्या प्रयोजन है, किसको लेना-देना होना चाहिए? कोई प्रधानमंत्री अगर किसी स्त्री के प्रेम में पड़ गया है, बस... । जैसे कि कोई बड़ी अनूठी बात हो गयी है! कितना रस फैलता है, कितने लोग उत्सुक हो जाते हैं! यह सिर्फ एक बात बताई जा रही है इसके भीतर, सिर्फ एक बात की सूचना हो रही है कि तुम प्रतीक्षा ही कर रहे थे कि जरा फंसो, कि जरा कहीं गिरो, कि जरा पैर फिसले तुम्हारा किसी केले के छिलके पर, तुम चारोंखाने चित्त हो जाओ। यह दिल में तुम्हारे आकांक्षा ही थी।
इसीलिए जो व्यक्ति भी चार-पांच साल सत्ता में रह जाता है, जनता उसी को सत्ता से उतारने को उत्सुक हो जाती है, आतुर हो जाती है। बहुत हो गया, यह गिरना ही चाहिए आदमी। छोटी-छोटी बातें फिर खूब बड़ी-बड़ी करके फैलायी जाती हैं। और लोग उनको स्वीकार करने को राजी होते हैं।
तुमने मजा देखा, अगर तुम किसी की प्रशंसा करो कोई सुनने को राजी नहीं है, न कोई स्वीकार करने को राजी है। अगर तुम कहो कि फलां व्यक्ति देखो, कैसा महात्मा हो गया! वह कहेगाः अरे, सब देख लिये महात्मा! कहीं कोई महात्मा न होता है न हुआ है; सब धोखाधड़ी है। कुछ चालबाजी होगी, जरा रुको, थोड़ा ठहरो, जब पकड़ा जायेगा तब पता चलेगा। हमने कई को गिरते देख लिया है। लेकिन अगर कोई तुमसे कहे कि फलां आदमी चोरी कर रहा है, फलां आदमी बेईमान है, फलां आदमी ने रिश्वत खायी है, तो तुम कभी इंकार नहीं करते कि नहीं-नहीं, ऐसा कैसे हो सकता है? तुम तो तत्क्षण स्वीकार कर लेते हो जैसे तुम पहले से माने ही बैठे थे। हमने यह मान ही रखा है कि हमारे अतिरिक्त और सब लोग बुरे हैं; किन्हीं का पता चल गया है, किन्हीं का पता नहीं चला है, कभी चल जायेगा, मगर हमारे सिवाय सारे लोग बुरे हैं। यह तो हमारी स्वीकृत

मान्यता है। इस स्वीकृत मान्यता को जो भी सहारा दे देता है हम तत्क्षण अंगीकार कर लेते हैं।
हालत हमारी ऐसी है कि अगर कोई तुमसे कहे कि फलां आदमी देखो, कितनी प्यारी बांसुरी बजा रहा है! तुम कहोगेः वह क्या खाक बांसुरी बजायेगा, चोर, लंपट, लुच्चा! जैसे कि लुच्चा और लंपट और चोर होने से बांसुरी बजाने में कोई बाधा पड़ती हो! लेकिन तुमने तत्क्षण निंदा कर दी, कि वह क्या खाक बांसुरी बजायेगा, उसकी बांसुरी में क्या रखा है? हम उसे भलीभांति जानते हैं। हम उसके बाप-दादों को भी जानते हैं, वह क्या बांसुरी बजायेगा? लेकिन इससे उल्टी बात तुम्हें कभी सुनने में न आयेगी--कि कोई कहे कि देखो, वह आदमी चोर है, बेईमान है, लंपट है; और तुम कहो कि नहीं, यह कैसे हो सकता है, क्योंकि वह इतनी प्यारी बांसुरी बजाता है! नहीं-नहीं, यह नहीं हो सकता। इतनी प्यारी बांसुरी बजाने वाला आदमी चोर होगा, लंपट होगा, यह कैसे हो सकता है?
ऐसा तुम कभी न कहोगे। यह तुम्हारे अहंकार के विपरीत है। जो तुम्हारे अहंकार को भरता है वह है निंदा। इसलिए प्रशंसा तो लोग बड़े बेमन से करते हैं--बड़े बेमन से, मजबूरी में करते हैं। कुछ लेना हो प्रशंसा कर के तो करते हैं। इसलिए ऊपर-ऊपर प्रशंसा कर देते हैं, पीछे बदला लेते हैं।
अदालत में मुकदमा था। एक नेताजी ने अदालत में एक आदमी पर मानहानि का मुकदमा चलाया था। क्योंकि होटल में जहां कि पचास-साठ लोग मौजूद थे, उस आदमी ने नेताजी को उल्लू का पट्ठा कह दिया। स्वभावतः नेताजी क्रुद्ध हो गये। उल्लू का पट्ठा! इसको मजा चखा कर रहेंगे।
मुल्ला नसरुद्दीन नेताजी के बगल में ही खड़ा था, जब उल्लू का पट्ठा उन्हें कहा गया। तो उन्होंने उससे कहा कि मुल्ला, गवाही देनी होगी, तुम्हारे सामने कहा था। उसने कहाः तो बिल्कुल गवाही दूंगा, प्रत्यक्ष गवाह मैं हूं। मेरे सामने गाली दी गयी है, मैं तुम्हारे बगल में खड़ा था। अदालत में गवाहियां हुईं। मुल्ला नसरुद्दीन से पूछा मजिस्ट्रेट ने
कि वहां पचास लोग थे, और जिस आदमी पर दोष लगाया गया है गाली देने का, वह आदमी कहता है कि मैंने किसी का नाम लेकर नहीं कहा; हां, मैंने उल्लू का पट्ठा शब्द उपयोग किया था। मगर वहां पचास-साठ लोग थे, नेताजी को मैंने लक्ष्य कर के यह नहीं कहा है। तुम्हारे पास क्या सबूत है नसरुद्दीन कि इसने नेताजी को ही लक्ष्य कर के कहा?
नसरुद्दीन ने कहाः मैं मानता हूं वहां पचास-साठ लोग थे, लेकिन उल्लू
का पट्ठा वहां सिवाय नेताजी के और कोई था ही नहीं।
अब क्या करोगे? अपना गवाह भी यह कह रहा है। तुम चाहते हो जो सत्ता में है, शक्ति में है, पद में है, जिनके पास धन है, वह चारों खाने गिरे; इससे तुम्हारे दिल को बड़ी राहत होगी। दुनिया में जब कभी किसी का पतन होता है, लोगों के चित्त को बड़ी राहत मिलती है, बड़ा हलकापन आ जाता है। लोग प्रतीक्षा करते हैं इसकी कि किसी का चरित्र भ्रष्ट हो जाये। इस पर बहुत दारमदार है उनकी। चरित्र तो बनाना मुश्किल है। अपने जीवन को तो गरिमा देना मुश्किल है, महिमा देना मुश्किल है; मगर किसी की महिमा छिन जाये तो उसको बढ़ा-चढ़ा कर चर्चा करना तो आसान है। जितनी उसकी तुम चर्चा करते हो बुराई की, उतने ही तुम भीतर अच्छे होते जाते हो। यह निंदा का मनोविज्ञान है। यह अहंकार की छाया है और अहंकार का पोषण भी।
मगर इसका अर्थ यह नहीं है कि मैं तुमसे कह रहा हूं तुम अंधे की तरह जीना; या गोरख तुमसे कह रहे हैं कि तुम अंधे की तरह जीना। जहां तुम गलत देखो वहां चुप रह जाना, यह मैं नहीं कह रहा हूं, न गोरख कह रहे हैं। क्योंकि अगर गोरख यह कहते तो जो उन्होंने कहा, यह भी नहीं कह सकते थे। इस बात को ख्याल में ले लेना, यह भी तो गलत देखा न! यह देखा कि योगी और निंदा कर रहे हैं, कि योगी और मद्य-मांस और भांग पी रहे हैं। तो कहा कि नर्क में पड़ोगे। इसको तुम निंदा मत समझना। इसमें निंदा कुछ भी नहीं है; इसमें सहज करुणा है, इसमें सहज सदभाव है। उन्हें नीचे दिखाने का प्रयोजन नहीं है। सच में तो उन्हें ऊपर उठाने की आकांक्षा है, उन्हें जगाने की आकांक्षा है।
कभी-कभी जगाने वाला भी दुश्मन मालूम पड़ता है। कभी-कभी तो ऐसा हो जाता है, तुम किसी से कह देते हो कि भाई सुबह मुझे उठा देना, ट्रेन पकड़नी है चार

बजे की, और तुम तो तीन बजे उठते ही हो ब्रह्ममुहूर्त में, मुझे उठा देना। वह आदमी तुम्हें तीन बजे उठाने आया, तुम मन ही मन में गाली देते हो--उस आदमी को जिसको तुमने ही कहा है कि तीन बजे उठा देना!--कि यह बदतमीज आ गया, कि इस हरामजादे को आज ही सूझा, कि हमने कह दिया था, गलती हो गयी, मगर कोई गलती को मान कर करने की जरूरत ही थोड़ी थी।... कि यह दुष्ट कहां टले। और अगर वह तुम्हें खींच कर भी उठाने लगे, झगड़ा भी हो सकता है।
जर्मनी का प्रसिद्ध विचारक हुआ इमेन्युल कांट। उसने एक नौकर रख छोड़ा था। उसको सुबह उठने में बड़ी अड़चन होती थी। नौकर का कुल काम इतना था कि चाहे मारपीट हो जाये, मगर उठा दे। तो मारपीट होती थी, यह इसके लिए नौकर ही रखा हुआ था। कई नौकर छोड़कर चले जाते थे कि यह क्या मामला है? पर वह कहता है कि तुम्हें रखा ही इसलिए है। तुम फिक्र ही मत करना, मैं तुमसे यह तो नहीं कहता कि मैं मारूं तो तुम मत मारना।
भिन्न-भिन्न तरह के लोग हैं! अभी तो पश्चिम में इस तरह के विद्युत-कंबल बन गये हैं जिनमें तुम अलार्म भर दो, घड़ी भी लगी रहती है, और सुबह ठीक पांच बजे बिजली का शॉक... । जो नहीं उठ सकते उनके लिए इंतजाम करना पड़ेगा। लगा एक शॉक और छलांग लगाकर तुम बाहर हुए! क्योंकि साधारण अलार्म काम नहीं करते; लोग उनको बंद कर देते हैं। घड़ी पटक देते हैं। खुद की घड़ी! फिर बाद में पछताते हैं कि फूट गयी है, पचास रुपये का नुकसान हो गया। खुद ने ही अलार्म भरा, खुद ही घड़ी पटक देते हैं। उनके लिए इंतजाम करने पड़े हैं।
जगानेवाला प्रीतिकर नहीं लगता, क्योंकि उस समय तुम मधुर निद्रा में खोये हो; हो सकता है कोई मीठा सपना देख रहे हो। हो सकता है बिल्कुल अभी-अभी बस क्लियोपेत्रा से मिलन ही होनेवाला था, कि हेमामालिनी बस चली ही आ रही थी। बस आलिंगन होने के ही करीब था और यह दुष्ट आ गया, या यह अलार्म बज गया। ऐसी घड़ी को कोई बर्दाश्त करेगा?
इसलिए बुद्धों को हम बड़ी मुश्किल से स्वीकार कर पाते हैं; करते-करते
ही स्वीकार कर पाते हैं। तुम्हारे स्वप्न तोड़ देने वाले लोग कैसे तुम्हें प्रीतिकर लगेंगे? तुम नाराज होते हो। इससे यह मत समझना कि योगी आलोचना न करेगा, और कौन करेगा? वही हकदार है। लेकिन निंदा नहीं करेगा। उसकी आंखों में तुम्हारा अपमान नहीं होगा। उसकी वाणी कठोर हो सकती है। उसकी वाणी बहुत पैनी हो सकती है। उसके शब्द धारवाले हो सकते हैं। होने ही चाहिए। कबीर ने तो कहा हैः कबिरा खड़ा बजार में लिए लुकाठी हाथ। लट्ठ हाथ में लिए खड़े हैं, बाजार में। जो घर बारे आपना, चलै हमारे साथ! हो तैयारी तो घर में आग लगा दो, चलो हमारे साथ। और लट्ठ लिए खड़े हैं... लिए लुकाठी हाथ! फिर पीछे लौटकर भी नहीं देखने देंगे, नहीं तो सिर खोल देंगे।
योगी कठोर हो सकता है। लेकिन कठोर होता है तुम्हारे दुर्गुण पर, तुम
पर नहीं। तुम पर तो उसकी बड़ी अनुकंपा है, बड़ा प्रेम है। इसलिए कभी-कभी अड़चन हो सकती है। कभी-कभी तुम्हें भ्रांति हो सकती है। पर साफ-साफ भेद समझ लेना।
जोगी होइ पर निद्यां झशै!
योगी होकर और दूसरे की निंदा करोगे?
मदमास अरु भांग जो भषै।
और अभी भी तुमसे मांस नहीं छूटा, मदिरा नहीं छूटी? और अभी भी तुम भांग
और गांजा जैसे मादक पदार्थों में डूबते हो!
एक बात ख्याल रखनाः जो जागे हैं वे तुम्हारे शराब या मांस-मदिरा के विपरीत किन्हीं और कारणों से हैं। तुम भी इनके विपरीत होते हो, लेकिन तुम्हारे कारण भिन्न हैं। तुम कहते हो मदिरा मत पीना, क्योंकि व्यर्थ पैसे की हानि होती है, स्वास्थ्य खराब होता है। पत्नी-बच्चे भूखे मरेंगे, इसलिए मत पीना। ये कोई कारण ज्यादा देर तक साथ देनेवाले नहीं हैं।
समझो कि तुम्हारे पास काफी सुविधा है और तुम्हारे मांस-मदिरा पीने से, खाने से, बच्चे-पत्नी भूखे नहीं मर जायेंगे। तो फिर क्या अड़चन है? तो यह शिक्षा गरीबों के लिए होगी। अमीरों के लिए? नहीं, उनके लिए कोई अड़चन नहीं होनी चाहिए। तो यह तो बड़ी सशर्त शिक्षा हो गयी। यह शिक्षा कहती है कि शरीर खराब हो जायेगा, लेकिन शरीर तो खराब हो ही जाता है। दिन-दो-दिन पहले कि दिन-दो-दिन बाद, इसका क्या मूल्य है? सत्तर साल में मरे कि अस्सी साल

में मरे... अच्छा तो यही है कि सत्तर साल में मर गये, दस साल के लिए दूसरे को जगह खाली कर गये। दुनिया में जगह वैसे ही कम है। भीड़ बढ़ती जाती है, हाथ हिलाने कि जगह नहीं रह गयी है। तुम जितनी जल्दी विदा हो जाओ उतना अच्छा है। तो दस साल ज्यादा जी गए, इससे कुछ दुनिया का हित नहीं है, न मनुष्य-जाति का कोई कल्याण है। फिर दस साल पहले मरे कि दस साल बाद मरे, फर्क क्या पड़ता है? दस साल और रह जाते, कुछ लोगों को और चूसते, कुछ और धन इकट्ठा करते, तिजोड़ी में कुछ और भरते। लोग तुमसे और परेशान होते, और क्या होता? और तुम्हारी जिंदगी थी ही क्या? कोई तुक तो था नहीं, कोई संगति थी नहीं, कोई संगीत था नहीं। लंबा जीकर भी क्या करोगे?
ये तर्क कोई काम नहीं आनेवाले हैं। और फिर ये तर्क सही भी नहीं हैं। क्योंकि शराब पीनेवाले भी लंबे जीते देखे जाते हैं। शराबी जल्दी नहीं मरते। अगर जल्दी मरना और देर से मरना यही प्रामाणिक हो तो बड़ी अड़चन हो जायेगी। शंकराचार्य तैंतीस साल में मर गये; इसका क्या यह अर्थ होगा कि धर्म से सावधान? विवेकानंद चौंतीस साल में मर गये। इसका क्या अर्थ होगा? इसका अर्थ यह होगा कि भाई, बचना! धर्म इत्यादि में मत लगना, देखी विवेकानंद की क्या गति हुई? देखा शंकराचार्य बेचारे, अभी होते-होते जवान विदा हो गये! इस तरह कुछ उम्रें नहीं बांटी जाती हैं।
मोरारजी देसाई को अभी किसी ने पूछा बी. बी. सी. के इंटरव्यू में कि आप चर्चिल के संबंध में क्या कहते हैं, क्योंकि वह तो खूब पीता था--सिगरेट भी, शराब भी, मांस भी। ब्रह्ममुहूर्त में कभी उठता ही नहीं था, नौ और दस बजे के पहले नहीं उठता था, लेकिन जीया तो खूब! तो मोरारजी देसाई ने कहा कि वह अपवाद है। और मोरारजी देसाई सोचते हैं कि वह जो लंबा जी रहे हैं वह जीवन-जल पीने की वजह से। और चर्चिल अपवाद है!
मैंने सुना, मुल्ला नसरुद्दीन अस्सी वर्ष का हो गया था, लेकिन अभी भी तैराकी में प्रथम आता था। तो पत्रकार उसके घर गये। जन्मदिन उसका मनाया जा रहा था अस्सीवां। उन्होंने पूछा कि अस्सी वर्ष के तुम हो गये हो, तुम्हारा राज क्या है? तुम कैसे अब तक प्रथम तैराक... जवान भी तुमसे हार जाते हैं! तो उसने कहाः चूंकि मैंने कभी शराब नहीं पी, मांस नहीं खाया, स्त्रियों के पीछे नहीं भागा-भटका। मैं किसी व्यसन में रहा ही नहीं। इस कारण।
चमत्कृत हुए लोग, जो पूछने आये थे। लेकिन तभी मुल्ला ने कहाः लेकिन इस
पर बहुत विचार में मत पड़ो, मैं कुछ भी नहीं हूं। मेरे पिता सौ साल के हो गये हैं, मगर घुड़सवारी में उनका कोई मुकाबला नहीं है। मैं भी घुड़सवारी में उनका मुकाबला नहीं कर पाता; जवान से जवान नहीं कर पाते। और वे शराब भी पीते हैं। क्षमा करना, मुल्ला ने कहा, वे शराब भी पीते हैं, मांस भी खाते हैं। तो पत्रकारों ने कहाः हम तुम्हारे पिताजी को मिलना चाहते हैं। यह तो बड़ी हैरानी की बात है कि शराब भी पीते हैं, मांस भी खाते हैं, सौ साल के हुए और घुड़सवारी में कोई मुकाबला नहीं कर सकता। तुम्हारा परिवार तो बड़ा अदभुत मालूम होता है। पिताजी कहां हैं, उनके हम दर्शन करना चाहते हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन ने कहाः यह नहीं हो सकेगा, क्योंकि पिताजी गये हैं मेरे दादा की बारात में।
दादा की बारात?
तो मुल्ला ने कहाः हां, मजबूरी थी।
तुम्हारे दादाजी विवाह कर रहे हैं? उन लोगों ने पूछा।
मुल्ला ने कहाः कर नहीं रहे हैं, करना पड़ रहा है; स्त्री गर्भवती हो गयी।
"दादा जी की उम्र कितनी है?"
"एक सौ बीस साल।"
क्या हिसाब लगाओगे, कैसे हिसाब लगाओगे? शराब पीने वाले खूब जीते हैं। तुम इस तरह के तर्क देकर किसी को शराब पीने से उसे नहीं बचा सकते। ये तर्क थोथे हैं। इन तर्कों में कोई बल नहीं है। इसलिए ये तर्क चलते रहते हैं और लोग शराब पीते रहते हैं, सिगरेट पीते रहते हैं, मांस खाते रहते हैं। सब चलता रहता है। ये तर्क भी चलते रहते हैं और बाकी सब भी चलता रहता है। इन तर्कों में और उनके जीवन-व्यवहार में कोई संबंध कभी निर्मित नहीं होता।

जब बुद्धपुरुष कहते हैं, गोरख जैसे पुरुष कहते हैं कि मत पीयो शराब,
तो उनके कारण बहुत अन्य हैं। इसलिए नहीं कि तुम ज्यादा जी लोगे; ज्यादा जी कर भी क्या करोगे? जीने में मूल्य ही क्या है? इसलिए भी नहीं कि स्वास्थ्य अच्छा रहेगा। स्वास्थ्य का कोई आध्यात्मिक मूल्य थोड़े ही है। रुग्ण व्यक्ति भी परमात्मा को पा सकता है, और स्वस्थ व्यक्ति हो सकता है इसलिए परमात्मा को न पा सके कि स्वास्थ्य के कारण संसार में उलझा रहता है, कि अभी तो मैं स्वस्थ हूं। कर लेंगे राम का स्मरण अंत में, अभी तो भोग लें। चार दिन की जिंदगी है, अभी तो मजा कर लें।
नहीं, ये थोथे सिद्धांत किसी सहारे के नहीं हैं। फिर गोरख जैसे व्यक्ति क्यों कहते हैं? उनके कहने का कारण बड़ा अनूठा है। तुम चकित होओगे जानकर।
मैं भी चाहता हूं तुम शराब से मुक्त हो जाओ, लेकिन मेरा कारण वही नहीं
है जो मोरारजी देसाई का है। मैं भी चाहता हूं कि तुम शराब से मुक्त हो जाओ क्योंकि एक और बड़ी शराब है। अगर तुम इसी में उलझे रहे तो उस बड़ी शराब को तुम कभी न पी पाओगे। मैं तुम्हें असली मधुशाला में ले चलना चाहता हूं, इसलिए झूठी मधुशाला से छुड़ाना चाहता हूं।
परमात्मा शराब है और ऐसी शराब कि जिसने पी ली, सदा के लिए पी ली; और ऐसी बेहोशी कि आयी तो आयी; और ऐसी बेखुदी कि फिर कभी टूटती नहीं। यह तो तुम जो बाजार से खरीदकर पी लेते हो, यह तो सांझ पी लोगे, सुबह टूट जायेगी। फिर वही के वही, बेचैनी, फिर वही तनाव, फिर वही चिंताएं। थोड़ी देर को भुला सकते हो शराब में डुबाकर, मगर मिटा न सकोगे। एक ऐसी भी शराब है जहां चिंताएं मिट जाती हैं। मैं तुम्हें वही शराब देना चाहता हूं। ध्यान शराब है, प्रार्थना शराब है। और जब कोई मंदिर जीवित होता है तो मधुशाला ही उसका ढंग होता है।
मैं भी तुम्हें चाहता हूं कि शराब न पीयो, लेकिन मेरा कारण बड़ा उल्टा है; इसलिए चाहता हूं कि छोटी-छोटी शराब में उलझे रहे तो बड़ी शराब कब पीयोगे, असली शराब कब पीयोगे? ये सड़क के किनारे गंदे डबरे पानी के जो भरे हैं, इन्हीं से जल पीते रहे तो मानसरोवर की यात्रा करनी है या नहीं करनी है? उस स्वच्छ, स्फटिक जैसे स्वच्छ जल को कंठ के भीतर उतारना है या नहीं उतारना है?
मैं तुम्हें शराब छोड़ने को इसलिए नहीं कहता कि मैं कोई नीतिवादी हूं,
कि शराब पीने से कोई बहुत बड़ा पाप हुआ जा रहा है। क्या खाक पाप होगा? शराब तो शुद्ध शाकाहार है--अंगूर का निचुड़ा हुआ रस है। क्या पाप होनेवाला है? अंगूर खाने से नहीं होता, शराब पीने से कैसे हो जायेगा? शराब पीने से तुम नर्क में नहीं पड़ जाओगे। लेकिन हां, शराब पीने से तुम्हें स्वर्ग की शराब नहीं मिल पायेगी; उससे तुम वंचित रह जाओगे।
मैं चाहता हूं कि तुम्हारे हाथ से कंकड़-पत्थर छूट जायें, क्योंकि हीरों की खदान मौजूद है। तुम क्यों कंकड़-पत्थर से अपनी झोली भरते हो? मोरारजी देसाई और मेरे वक्तव्य में जमीन-आसमान का भेद है। उनकी दुश्मनी है तुम्हारे कंकड़-पत्थरों से। वे कहते हैं छोड़ो कंकड़-पत्थर, कंकड़-पत्थर बुरे हैं। मैं कहता हूं कंकड़-पत्थर से मेरी कोई दुश्मनी नहीं; मगर हीरे- जवाहरात हैं। तुम्हारी झोली कंकड़-पत्थर से भरी रही तो हीरे-जवाहरात ऐसे ही पड़े रह जायेंगे, जिनको पा लेने का तुम्हें हक था; जो तुम्हें पाने ही चाहिए थे; जिनको बिना पाये तुम्हारी नियति कभी पूर्ण नहीं होगी।
भेद ख्याल कर लेना, भेद बहुत बुनियादी है। मैं भी तुमसे कहता हूं मांस छोड़ो, लेकिन इसलिए नहीं कि मांस खाओगे तो नर्क जाओगे; इसलिए नहीं कि मांस खाओगे तो हिंसा हो जायेगी। इन सब छोटी बातों से मुझे कोई प्रयोजन नहीं है। क्योंकि अगर मांस खानेवाले सारे लोग नर्क जाते हैं तो जीसस नर्क में होंगे, रामकृष्ण परमहंस भी नर्क में होंगे, क्योंकि बंगाली का बिना मछली के चलेगा? मछली-भात के बिना चल ही नहीं सकता। रामकृष्ण परमहंस मछली तो खाते ही रहे, नरक में होंगे!
ये छोटी-छोटी बातें हैं। इनका कोई मूल्य नहीं है। मगर इतना जरूर इनसे सिद्ध होता है कि रामकृष्ण परमहंस की संवेदना जितनी गहन हो सकती थी उतनी न हो पायी होगी। थोड़ा-सा पर्दा रह गया। हृदय जितना प्रेमपूर्ण होना चाहिए

था, न हो पाया होगा। थोड़ी कालिख रह गयी। नर्क में पड़ गये, ऐसा नहीं है; मगर एक और सौंदर्य का अनुभव हो सकता था जिससे वंचित रह गये।
जीसस नर्क जायेंगे, ऐसा नहीं; लेकिन जीवन के समझने में थोड़ी-सी चूक रह गयी, एक कांटा रह गया। वह कांटा भी निकल सकता था, निकल ही जाना चाहिए था। और मुझे लगता है कि जीसस अगर थोड़े ज्यादा दिन जिंदा रह गये होते... जवान मर गये, मार डाले गये... तो शायद कांटा निकल जाता। अभी उम्र कम थी। और सारे लोग मांसाहारी थे, जिनके बीच वे पैदा हुए थे। थोड़ी उम्र पकती, थोड़ा बोध गहन होता, थोड़ा परमात्मा का साक्षात्कार और-और सघन होता तो निश्चित ही मांसाहार छूट जाता। क्योंकि अंतिम अवस्था में जिसे सब तरफ परमात्मा दिखाई पड़ने लगा, वह अपने भोजन के लिए किसी के जीवन की हत्या करेगा, यह सोचना असंभव है।
तो मैं इसलिए नहीं कहता कि मांसाहार पाप है, कि इस पाप के परिणाम में तुम्हें नरक भुगतना होगा, बल्कि इसलिए कहता हूं कि मांसाहार तुम्हारी संवेदनशीलता को कम करता है। तुम्हारी संवेदनशीलता की सूक्ष्मता छिन जाती है। तुम्हारे भीतर से जितना शुद्ध संगीत पैदा हो सकता है, नहीं हो सकेगा। तुमने अपनी वीणा में बड़े मोटे और खुरदरे तार लगा लिये हैं। संगीत तो होगा, गीत भी पैदा होगा, लेकिन मोटे और खुरदरे और सस्ते तार लगा लिये हैं, जब कि महीन, अभिजात, सूक्ष्म तार उपलब्ध थे। तुमने अपनी वीणा के साथ दुर्व्यवहार कर लिया है। नहीं कि तुम नर्क में पड़ोगे, क्योंकि तुमने वीणा में खुरदरे तार लगा लिये हैं।
और यह ध्यान रखना कि जब तुम मांसाहार करते हो तो तुमने किसी को मारा,
इस भ्रांति में मत पड़ना, क्योंकि मर तो कोई सकता नहीं। इसलिए पाप यह नहीं है कि तुमने किसी को मार डाला। मृत्यु तो यहां होती ही नहीं। मारने का तो कोई उपाय ही नहीं है। सिर्फ तुमने देह छीन ली एक आत्मा की; वह आत्मा नयी देह ले लेगी। सवाल हत्या का नहीं है, सवाल इसका है कि तुम देह छीन सके। सवाल तुम्हारा है। वह आत्मा तो नयी देह ले लेगी, नया गर्भ ले लेगी। कोई मरता नहीं है। कृष्ण कहते हैंः न हन्यते हन्यमाने शरीरे। नहीं शरीर के मरने से उसकी मृत्यु होती है। मगर सवाल तुम्हारा है। तुमने संवेदनशून्यता दिखलायी। तुम्हारे भीतर हार्दिकता नहीं है। तुम थोड़े पथरीले हो, तुम कोमल नहीं हो। और तुम कोमल नहीं हो तो तुम्हारे भीतर का कमल नहीं खिलेगा, या अधखिला रहेगा। या एक-आध पंखुड़ी अनखिली रह जायेगी। परमचित्त की अवस्था में मांसाहार असंभव है। और जो परमचित्त की अवस्था चाहते हैं, उन्हें यह बोध रखना चाहिए।
तो ठीक कहते हैं गोरखः
जोगी होइ परनिद्यां झशै, मदमास अरु भांगि जो भषै।
इकोतर सै पुरिषा नरकहि जाई... ।
ऐसे मैंने हजारों लोगों को नरक जाते देखा है।
सति सति भाषंत श्री गोरष राई।
मैं सच-सच कह रहा हूं, किसी की निंदा नहीं कर रहा हूं। जो तथ्य है उतना
ही निवेदन कर रहा हूं। और जो सच को सुन लेगा उसकी जिंदगी में क्रांति शुरू हो जाती है।
अब रहीम मुसकिल पड़ी, गाढ़े दोऊ काम
सांचे से तो जग नहीं, झूठे मिलैं न राम।
जिसने सच को सुना, सच को समझा, उसके जीवन में क्रांति का क्षण आ गया। उसे एक बात दिखाई पड़ने लगेगी कि अगर सच की मानकर चलूं तो राम मिल सकते हैं, लेकिन जग अपने-आप खो जायेगा। छोड़ना नहीं पड़ता जग, अपने-आप खो जाता है। झूठ से तो राम नहीं मिलता, सच से जग नहीं मिलता। जिसको यह बात दिखाई पड़ गयी, उसे स्पष्ट चुनाव करना ही होता है। उसी चुनाव को मैं संन्यास कहता हूं। वह निर्णायक घटना है।
एकाएकी सिध नांउं, दोइ रमति ते साधवा।
चारि पंच कुटंब नांउं, दस बीस ते लसकरा।।
सिद्ध तो जानता है कि मैं अकेला हूं। और भीड़ में भी हो तो भी अकेला होता है। इसे तुम ऐसा समझो कि तुम अगर जंगल में भी बैठ जाओ तो तुम अकेले नहीं होते। तुमने देखा कि लोग जाते हैं, कहां जा रहे हैं--पहाड़ जा रहे हैं--

मगर ले चले अपना ट्रांजिस्टर-रेडिओ साथ। रख लिये बहुत से अखबार, पत्रिकाएं खरीद कर। ले चले पत्नी-बच्चों को, मित्रों को साथ--कि अकेले क्या जाना! जा रहे हैं पहाड़, ले चले भीड़-भाड़, पूरा बाजार ले चले। और अगर कभी ये अकेले भी रह जायें जाकर पहाड़ पर तो भी अकेले नहीं होते, बैठे अकेले दिखाई पड़ते हैं, मगर भीतर इनके मित्रों की स्मृतियों, पत्नी, पति, बच्चे, परिवार, धन, दौलत, दुकान, बाजार, सब घूमता रहता है।
तुम अकेले भी होते हो तो भीड़ में होते हो। सिद्ध वही है, जो जहां भी हो अकेला हो; भीड़ में हो तो भी अकेला हो। क्योंकि सिद्ध का अर्थ हैः जिसने अपने भीतर का स्वभाव पहचाना। अकेले हम आये, अकेले हम जायेंगे, अकेले हम हैं। क्योंकि जैसे हम आये हैं, वैसे ही हम हैं, और वैसे ही हम जायेंगे। हमारा अकेलापन शाश्वत है। और हमने जो खेल रचा लिये हैं पति-पत्नी के, हमने भांवरें डाल ली हैं, हमने परिवार बसा लिये हैं, वे सब भुलावे हैं, वे खेल हैं। गुड्डा-गुड्डियों के खेल से ज्यादा मूल्य उनका नहीं है। खेलो जरूर; मैं नहीं कहता कि खेलना बंद कर दो, मगर स्मरण रखो कि खेल खेल है।
एकाएकी सिध नांउं!
जो एकाकीपन को अनुभव करता है वह सिद्ध है, उसका नाम सिद्ध है। जो साथ
भी रहे तो भी अकेला ही होता है, उसका नाम सिद्ध है।
दोइ रमति ते साधवा।
जिनको दो की जरूरत पड़ती है, जो अकेले नहीं हो सकते, जो मैं और तू के बिना नहीं हो सकते--उनको कहा कि साधु समझ लेना। उनको भी साधु कहा। इतना भी क्या कम है कि दो से ही राजी हैं; मन तो अनेक से भी राजी नहीं होता। जो एक पर पहुंच गया और अपने होने से राजी है, वह सिद्ध। अब उसको कुछ पाने को न बचा। उसकी कोई निर्भरता न रही। उसकी कोई परतंत्रता न रही। जो अभी कहता है कम-से- कम एक और चाहिए--फिर वह एक पत्नी हो, पति हो, मित्र हो, गुरु हो, शिष्य हो, एक चाहिए--वह एक चाहे परमात्मा ही क्यों न हो, जब तक भक्त कहता है भगवान चाहिए, तब तक साधु से ऊपर नहीं उठ पाता। अभी द्वैत कायम है। तुम द्वैत को नयी-नयी दिशाओं में कायम कर सकते हो--पति-पत्नी का द्वैत, शिष्य-गुरु का द्वैत, भक्त-भगवान का द्वैत, मगर द्वैत कायम है। सिद्ध तो तुम तभी होओगे जब अद्वैत हो जाये। तो अभी तुम साधु हो। इतना भी क्या कम है कि तुम दो से राजी हो; यहां तो लोग हैं जो अनेक से राजी नहीं हैं।
अलबर्ट कामू का एक पात्र कहता है कि मुझे अगर दुनिया की सारी स्त्रियां भी मिल जायें तो भी मैं तृप्त नहीं हो सकता। क्योंकि मैं रास्ते पर गुजरता हूं, जो स्त्री मुझे दिखती है, लगता है इसी को पा लूं। और यह जो कामू का पात्र कह रहा है, करीब-करीब प्रत्येक मनुष्य के मन की दशा है। कितने से तुम तृप्त हो जाओगे? अगर तुम्हारे सामने परमात्मा खड़ा हो जाये और कहे कि मांग लो, तो कितने से तुम तृप्त हो जाओगे? तो तुम बड़ी मुश्किल में पड़ जाओगे कि कितना मांगें! दस लाख की सोचोगे तो मन कहेगा दस करोड़ मांग लो, जब मौका ही मिला है। दस करोड़ की सोचोगे तो दस करोड़ भी छोटे लगेंगे; लगेगा दस अरब मांग लूं, कि शंख, महाशंख। और तब तुम्हें बेचैनी होगी कि और संख्याएं क्यों न लीं, महाशंख के आगे। दस महाशंख ही मांग कर रह जाऊंगा; आगे पता नहीं और कितनी संख्याएं हों! तुम्हें कितना ही मिल जाये, तुम तृप्त न हो सकोगे।
इसलिए कहते हैं गोरख कि वह भी साधु है जो दो से राजी हो गया; वह भी काफी
कम से राजी हो गया। करीब आ गया एक के। अब एक ही बचा है छोड़ने को, अब एक से ही मुक्त होना है।
चारि पंच कुटुंब नांउं।
और जो चार-पांच से कम में राजी नहीं होता वह गृहस्थ है। वह परिवार में
जी रहा है। गृहस्थ का अर्थ समझ लेना, घर में रहनेवाले को गृहस्थ नहीं कहते हैं--जिसके लिए अनेक की जरूरत है उसको गृहस्थ कहते हैं; जिसका चित्त अभी दो से भी राजी नहीं हो सकता।
मेरे एक मित्र पहाड़ जाते थे गर्मियां बिताने। कोई दस साल पहले की बात है। मुझसे कहा कि आप भी चलें। पति-पत्नी दोनों जाते थे। मैंने कहा कि आप पति-पत्नी के बीच मुझे क्यों ले जाते हैं, आप दोनों ही जायें। उन्होंने कहा कि इसीलिए आपको ले चलना चाहते हैं, कि हम दोनों ही रह जाते हैं तो कुछ

सूझता ही नहीं कि अब क्या करें। कोई तीसरा हो तो थोड़ा मन लगा रहता है। अगर हम दोनों को ही जाना है तब तो हम जायेंगे ही नहीं। दो से काम नहीं चलता, कम-से-कम तीन तो चाहिए ही।
तुम ख्याल करना, पहले लोग अकेले होते हैं, बेचैन होते हैं, विवाह कर लेते हैं; फिर विवाहित होकर बेचैन होने लगते हैं तो बच्चे पैदा कर लेते हैं। बढ़ती जाती है संख्या... । और इसका कोई अंत नहीं है। फिर इतने से काम नहीं चलता तो जाकर रोटरी क्लब के सदस्य हो जाते हैं। इतने से भी काम नहीं चलता तो जनता पार्टी में सम्मिलित हो गये। कुछ न कुछ भीड़-भाड़, उपद्रव... । दस बीस ते लसकरा।
और जो लोग दस-बीस से भी राजी नहीं होते हैं, फौज-फांटा चाहिए जिन्हें, लश्कर चाहिए पूरा, ये संसारी हैं।
सिद्ध वह है जो अपने होने से राजी है। संसारी वह है जिसको हजारों की भीड़ भी तृप्त नहीं करती, जो हमेशा भीड़ की तलाश कर रहा है। चले... कुंभ का मेला जा रहे हैं देखने। क्या करोगे कुंभ के मेले में? धक्का-मुक्का खाने हैं? जहां जितनी भीड़ हो वहां और भीड़ बढ़ जाती है। क्योंकि कई लोगों को भीड़ का रस है। कहीं भीड़ खड़ी है, तुम लाख काम छोड़कर भीड़ में खड़े हो जाते हो। तुम भूल ही जाते हो असली काम, किसके लिये निकले थे। हो सकता है पत्नी बीमार पड़ी हो और तुम जा रहे थे डाक्टर को बुलाने, मगर भीड़ इतनी थी कि दिल हुआ कि जरा देख लें कि मामला क्या है। खड़े हो गये भीड़ में, रसमग्न हो गये।
भीड़ की एक अपनी चुंबकीय शक्ति है, जो कुछ लोगों को खींचती है। जितनी बड़ी भीड़ हो, उतने जल्दी वे उत्सुक हो जाते हैं, आतुर हो जाते हैं। यह चित्त की सबसे पतित अवस्था है भीड़। और जो भीड़ की मानकर चलता है वह इसलिए भीड़ की मानकर चलता है, क्योंकि भीड़ के साथ रहना है तो भीड़ को मानना पड़ेगा। संन्यास भीड़ से मुक्त होने का उपाय है। भीड़ के मनोविज्ञान को तिलांजलि देना है। भीड़ कहती हैः हमारे जैसे रहो अगर, हमारे बीच रहना है। हम जैसे कपड़े पहनें, ऐसे कपड़े पहनो। हम जैसे बाल कटाएं, ऐसे बाल कटाओ। हम जैसे उठे-बैठें, ऐसे उठो-बैठो। तो हमारे सदस्य हो सकते हो। तो हमारे साथ हो सकते हो।
भीड़ कहती है कि तुमने अगर अपना व्यक्तित्व दिखलाने की कोशिश की तो हम
से नहीं बनेगा। इसलिए हर भीड़ चेष्टा करती है कि तुम्हारे व्यक्तित्व को छीन ले, तुम्हें पोंछ दे, तुम्हें एक नंबर बना दे, एक आंकड़ा, मनुष्य नहीं। इसलिए कोई भीड़ बर्दाश्त नहीं करती कि तुम जरा भिन्न हो जाओ। छोटी-छोटी बातें बर्दाश्त नहीं करती।
एक सज्जन मेरे पास आये कि जब से मेरा बेटा आपको सुनने आने लगा है उसने बाल बढ़ा लिये हैं। तो मैंने कहा, बाल बढ़ा लेने से तुम्हारा क्या बिगड़ रहा है? नहीं, उन्होंने कहा, बिगड़ तो कुछ नहीं रहा है, लेकिन हमारे घर में ऐसा कभी कोई बाल बढ़ाता नहीं रहा। तो मैंने कहा, उनकी गलती थी, अब छोड़ो उनको, नहीं बढ़ाते रहे। इसमें हर्ज क्या है? पैसे बच रहे हैं कुछ। क्या परेशानी हो रही है, लड़के ने बाल बड़े कर लिये हैं? परेशानी हो रही है; उत्तर कुछ नहीं दे पाते कि परेशानी क्या हो रही है, लेकिन परेशानी हो रही है। क्योंकि वह कुछ अनूठा हुआ जा रहा है, हमसे कुछ भिन्न हुआ जा रहा है। ऐसा हमारे घर में कभी हुआ नहीं। ढंग से बाल काटे, जैसे कटने चाहिए।
कौन तय करे कि कैसे कटने चाहिए, कौन है मालिक इस बात को तय करने वाला? मैंने उनसे कहाः कृष्ण भगवान को पूजते हो?
उन्होंने कहाः जरूर पूजते हैं।
"मानते हो?"
"मानते हैं।"
"उनके बाल? तुम्हारे घर में पैदा हो जायें, तुम कहोगे हिप्पी है। और अगर मोरमुकुट बांध लें, फिर? तुम्हारे बेटे की जरा सोचो, बाल-वाल बढ़ा कर, पीत वस्त्र पहन कर रेशमी, आभूषण इत्यादि पहन कर, बांसुरी लेकर, पांव पर पांव टेक कर और खड़ा हो जाये मोरमुकुट बांधकर, फिर क्या करोगे? पूजा करोगे कि नहीं? कि दूसरे अर्थ में पूजा करोगे?"
जरा-सा भेद भीड़ बर्दाश्त नहीं करती। क्योंकि भीड़ चाहती है कि तुम अनुगत हो जाओ। और नहीं, तो तुम गांव में जानते हो लोग क्या करते हैं? भीड़

त्याग कर देती है तुम्हारा--रोटी-पानी बंद, चिलम-तमाखू बंद! और जिस आदमी की गांव में चिलम-तमाखू बंद हो गयी, कोई चिलम-तमाखू नहीं पिलाता, रोटी-पानी के लिए नहीं बुलाता, वह आदमी मरा, उसका जीना मुश्किल हो गया।
शहरों ने मनुष्य को एक तरह की स्वतंत्रता दी है, जो गांवों में कभी नहीं थी, और कभी हो नहीं सकती थी। गांव बहुत गुलाम थे। दुनिया से गांव मिटने लगे तो दुनिया में स्वतंत्रता बढ़ी है, क्योंकि गांव में बड़ी संघातक बात थी। सबसे बड़ा गांव का खतरा यह था कि गांव तुम्हें तिलांजलि भी दे सकता था किसी भी मौके पर। जरा-सी बात पर, और तुम्हें तिलांजलि दे-दे, तुम्हारी जिंदगी दूभर हो जाये। किसके साथ उठो, किसके साथ बैठो, किससे बात करो? हुक्का-पानी बंद। तुम्हारा जीना असंभव। तुमसे कोई बोलेगा नहीं, बात नहीं करेगा। गांव इतना छोटा है कि कोई बात करे तो उसका भी हुक्का-पानी बंद हो जाये। लोग तुमसे बचकर निकल जायेंगे।
लोग गांव की बड़ी प्रशंसा करते हैं बिना समझे-बूझे। गांव बड़े परतंत्र थे, गांव बिल्कुल कारागृह थे। अब भी गांव कारागृह है। अभी भी गांव में कोई स्वतंत्रता नहीं है। गांव में स्वतंत्रता हो नहीं सकती, स्वतंत्रता बड़े नगर में ही संभव है, जहां लोग इतने हों कि हुक्का-पानी बंद न किया जा सके। कोई कर भी दे तो दूसरे लोग उपलब्ध होंगे, जिनके साथ तुम बैठ सकोगे, बोल सकोगे। गांव इतने छोटे होते हैं कि आसानी से नियंत्रण रखा जा सकता है। इसलिए भारत जैसे देश में अछूतों को तब तक मिटाना असंभव है, जब तक गांव रहेंगे। और मजा ऐसा है कि महात्मा गांधी से लेकर उनके पीछे चलनेवाले सारे लोग सोचते हैं कि गांव ही रहने चाहिए और साथ में वे चाहते हैं अछूत भी मिट जायें। अछूत मिट नहीं सकते गांव में; गांव में असंभव है अछूत का मिटना। कोई उपाय नहीं है। वह पानी भी नहीं पी सकता गांव के कुएं से, गांव के मंदिर में जा भी नहीं सकता। शहर में मिट जाता है, शहर में कौन पता चला सकता है कि अछूत मंदिर में आ गया है। कोई अछूत के ऊपर चेहरे पर सील तो नहीं लगी है। दुनिया में जो काम बुद्ध-महावीर नहीं कर पाये, वह छोटी-छोटी चीजों ने
कर दिया; जैसे रेलगाड़ी। बुद्ध-महावीर नहीं कर पाये यह काम, जो रेलगाड़ी ने कर दिया। अछूत तुम्हारे बगल में बैठा है मस्त। तुम कुछ कर नहीं सकते। उसने भी टिकट ली है। अब करो तो करो क्या? और पक्का पता भी तो नहीं चलता कि वह अछूत है। और हो सकता है तुमसे भी ज्यादा ढंग से कपड़े पहने हो, कि तुम बीड़ी पी रहे हो, वह सिगरेट पी रहा है। क्या करोगे? अब ट्रेन में भूख भी लगेगी तो तुम खाना खाओगे, अछूत बगल में बैठा है, वह और सरक कर बैठ जायेगा, वह और धक्के मारेगा। तुम कुछ कर नहीं सकते।
मैं तुमसे कहता हूं कि जो बुद्ध-महावीर नहीं कर पाये... बहुत कोशिश की बुद्ध-महावीर ने कि अछूत मिट जायें; नहीं मिट सके... वह रेलगाड़ी ने कर दिया। गरीब रेलगाड़ी काम करके दिखा गयी। क्रांति ला दी उसने। जो काम मंदिर नहीं कर सके, होटलों ने कर दिया। जो काम तीर्थ नहीं कर सकते, सिनेमागृहों ने कर दिया। जीवन के बड़े अपने ढंग हैं चलने के।
शहर मनुष्य को एक तरह की स्वतंत्रता लाये; गांव में तो बड़ी अड़चन है। गांव में तुम्हारा इंच-इंच व्यवहार, तुम्हारा इंच-इंच चरित्र सबको पता होता है। छोटी जगह है; उठो, बैठो, क्या कर रहे हो, सब सबको पता है। प्रत्येक जानता है, तुम्हारी नस-नस से वाकिफ है; जैसे तुम उनकी नस-नस से वाकिफ हो। शहर में बड़ी सुविधा है। तुम किसी स्त्री के प्रेम में पड़ गये, वह रहती है दूसरे छोर पर शहर के, तुम्हारे मुहल्लेवालों को पता ही नहीं चलेगा कि तुम किसी स्त्री के प्रेम में पड़ गये। वे यही समझते हों कि रोज सत्संग करने जाते हैं, कि भगत जी हैं बहुत, सुबह-सुबह मंदिर के लिए निकल जाते हैं। गांव में यह संभव नहीं था। गांव में स्वतंत्रता संभव नहीं थी, गांव परतंत्र था; भीड़ मालिक थी।
व्यक्ति का जन्म हुआ शहरों में; गांवों में व्यक्त्ति होता ही नहीं था, सिर्फ भीड़ होती थी। भीड़ से जो उठता है उसी के भीतर आत्मा का जन्म शुरू होता है। भीड़ में आत्मा पैदा नहीं होती।
इसलिए मैं कहता हूं जो हिंदू है वह आत्मवान नहीं है। जो मुसलमान है वह आत्मवान नहीं है। वह भीड़ का हिस्सा है; भीड़ की राजनीति से दबा है।

व्यक्ति बनो। मुक्त हो जाओ कारागृहों से। सारे विशेषण छोड़ दो। और तुम पाओगे, तुम्हारे भीतर आत्मा जगमगाने लगी। तुम अकेले होने लगे।
अकेले होने में कठिनाई तो है ही। लेकिन कठिनाइयों से जो गुजरता है, वह निखरता भी है।
महमां धरि महमां कूं मेटै, सति का सबद विचारी।
नांन्हां होय जिनि सतगुर शोज्या, तिन सिर की पोट उतारी।।
प्यारा वचन है। गोरख कहते हैंः महिमा तुम्हारी तभी है जब तुम अपनी महिमा को बिल्कुल मिटा दो।
महमां धरि महमां कूं मेटै!
तुम्हारे जीवन में महिमा तभी आयेगी जब तुम अपने अहंकार को बिल्कुल पोंछ कर मिटा दोगे; जब मैं-भाव बिल्कुल खो जायेगा। मैं-भाव कब खोयेगा? जब तू की जरूरत न रह जाएगी। जब तक तू की जरूरत है, मैं भी रहेगा। मैं और तू साथ-साथ होते हैं।
तुम यह जानकर चकित होओगे कि मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि पहले बच्चे को
तू का पता चलता है, फिर मैं का पता चलता है। पहले बच्चा अपने को कैसे देखे? उसे कुछ अपना पता नहीं होता। पहले उसे मां का पता चलता है। देखता है मां कभी करीब आती है, दूर जाती है। पड़ा-पड़ा देखता रहता है झूले में कि जब भूख लगती है, रोता हूं तो मां करीब आती है; जब निश्चिंत हो जाता हूं, मां दूर चली जाती है। धीरे-धीरे उसे साफ होने लगता है कि मां मुझसे अलग है। मां वह है। जैसे-जैसे मां उसे स्पष्ट होने लगती है भिन्न, वैसे-वैसे उसे यह धीरे- धीरे एक छाया की तरह यह भी स्पष्ट होने लगता है कि मैं भी भिन्न हूं।
तू का भाव पहले पैदा होता है, फिर मैं का भाव पैदा होता है। और इसी तरह मिटता भी है; पहले तू का भाव मिटता है, फिर मैं का भाव मिटता है। जो लोग मैं का भाव पहले मिटाना चाहते हैं, उनका कभी नहीं मिटता। इसलिए अहंकार को सीधे मिटाने मत जाओ। तू की निर्भरता छोड़ दो। ऐसे हो जाओ कि तुम्हें किसी की जैसे जरूरत नहीं है; जैसे अकेले काफी हो--पर्याप्त, तृप्त, परितुष्ट! बस धीरे-धीरे तू गया, उसी के पीछे-पीछे मैं चला जायेगा।
मैं और तू एक ही सिक्के के दो पहलू हैं--एक तरफ मैं लिखा है, एक तरफ तू।
तू को छोड़ना आसान है, क्योंकि तू तू है, अलग है; मैं को छोड़ना कठिन है। और जो तू को छोड़ देता है, उसका मैं अपने-आप छूट जाता है।
महमां धरि महमां कूं मेटै!
और तब तुम्हारे जीवन में महिमा आती है। यह अपूर्व वचन है। जिसने अपने अहंकार को, अपने मैं-भाव को, मैं ऊंचा हूं, मैं बड़ा हूं, मैं विशिष्ट हूं, मैं खास हूं, मैं असाधारण हूं, अद्वितीय हूं--ऐसी महिमा के भाव को मिटा डाला, पोंछ डाला, उसके भीतर महिमा प्रगट होती है। वह अद्वितीय हो जाता है। तुम सिर्फ मानते हो अद्वितीय; हो नहीं। वह निश्चित हो जाता है।
गोरख कहते हैंः सत्य की इस बात को जरा विचार करना।
नांन्हां होय जिनि सतगुर शोज्या!
और जो इस तरह से मैं से शून्य हो जाता है, नान्हा हो जाता है, छोटे बच्चे की तरह सरल हो जाता है, जिसमें अभी मैं-भाव पैदा नहीं हुआ, सतगुरु उसे खोजते स्वयं आ जाते हैं।
नांन्हां होय जिनि सतगुर शोज्या, तिन सिर की पोट उतारी।
और स्वभावतः छोटे बच्चे के सिर पर पोटली रखी हो तो किसका मन न हो जाये
कि उतार लो। तुम जब नन्हें होकर, छोटे होकर, बालक होकर गुरु के सामने मौजूद होते हो तो ही तुम्हारी पोटली उतारी जा सकती है। तो ही तुम पर करुणा की वर्षा हो सकती है। और पोटली उतर जाये, तुम्हारा बोझ उतर जाये--विचारों का, वासनाओं का--तो जड़ कट गयी!
पात-पात को सींचिबो, बरी-बरी को लौनरहिमन ऐसी बुद्धि को, कहो बरैगो कौन।
तुमने देखा, गांव में स्त्रियां बरी डालती हैं तो एक-एक बरी पर थोड़े
ही नोन डालना पड़ता है, नमक डालना पड़ता है। बरी बनाने की दाल में ही नमक मिलाना पड़ता है। माली बगीचे में पानी सींचता है तो एक-एक पत्ते पर थोड़े ही सींचता है, जड़ में डालता है।
पात-पात को सींचिबो!

बिल्कुल पागलपन होगा अगर कोई माली पत्ते-पत्ते को सींचे।
बरी-बरी को लौन!
और एक-एक बरी पर अलग-अलग नोन डाले कोई तो पागलपन होगा।
रहिमन ऐसी बुद्धि को, कहो बरैगो कौन।
इसको तो कोई बुद्धिमानी का लक्षण न कहेगा। माली जड़ को पानी दे देता है। बरी बनाने वाली स्त्री दाल में ही नमक मिला देती है। मूल को पकड़ लो।
मूल है अहंकार तुम्हारी सारी भ्रांतियों का। अहंकार को काट दो।
गोरख का एक और वचन हैः
नाथ कहै तुम सुनहु रे अवधू, दिढ़ करि राषहु चीया।
काम क्रोध अहंकार निबारौ, तो दिसंतर कीया।
मत जाओ तीर्थयात्रा पर। कहीं जाने की कोई जरूरत नहीं है। सब दिशाएं,
सब दिशांतर हो गये, सब तीर्थ हो गये--एक काम कर लोः
काम क्रोध अहंकार निबारौ।
और अहंकार मूल है। और अहंकार में ही फिर सारे पत्ते लगते हैं--काम के, क्रोध के, लोभ के। सारे पत्ते फिर अहंकार में लगते हैं। अहंकार मूल है। यह एक बात निबर जाये, यह एक बात विदा हो जाये--मैं की--बस जीवन में क्रांति का क्षण आ गया। महाक्रांति घट गयी। तुम अंधेरे से प्रकाश में प्रवेश कर गये। जे आसा ते आपदा, जे संसा ते सोग।
और जो आशाएं रख कर जी रहा है, वासनाएं रख कर जी रहा है, वह हमेशा आपदाओं में घिरा रहेगा। जितनी तुम्हारी आकांक्षा है उतना ही तुम्हारा विषाद है, क्योंकि इस जगत में कोई आकांक्षा पूरी नहीं होती। आकांक्षा पूरी हो ही नहीं सकती। आकांक्षा का स्वभाव पूरा होना नहीं है। आकांक्षा दुष्पूर है। ऐसा बुद्ध ने कहा कि तृष्णा दुष्पूर है। यह भर नहीं सकती।
एक आदमी एक सूफी फकीर के पास आया। और उसने कहा कि मेरी तृष्णा की पूर्ति कैसे हो? उस फकीर ने कहाः तू मेरे साथ आ। मैं कुएं पर जा रहा हूं पानी भरने, लगे हाथ तुझे उपदेश भी हो जायेगा। जहां तक बन पड़ेगा, कहने की जरूरत न आयेगी, तू देखकर ही समझ लेगा।
जिज्ञासु थोड़ा चकित हुआ कि यह किस तरह का उपदेश है जो कुएं पर दिया जायेगा! और यह आदमी कुछ होश में है कि नहीं? फकीर था भी फक्कड़। बड़ा मस्त! उसकी आंखें ऐसी थीं जैसे अभी-अभी शराब पीया हो; लाल हो रही थीं। किसी मस्ती में था। चलता था ऐसा जैसे पैर डोलते; जैसे कोई मदमस्त शराबी चलता हो! जिज्ञासु थोड़ा डरने भी लगा, कुएं का मामला, धक्का दे-दे, कुछ कर दे या खुद कूद जाये और हम फंसें! मगर फिर भी उत्सुकता थी कि क्या उत्तर देता है, चले चलें, जरा दूर खड़े रहेंगे, देख लेंगे। और जो देखा तो और हैरान हुआ कि यह बिल्कुल पागल है।
उसने एक बाल्टी कुएं में डाली जिसमें पेंदी थी ही नहीं। खूब बाल्टी
को खंखोड़े कुएं के भीतर, खूब आवाज करे, पानी में डुबाये। डूबने में तो देरी ही न लगे, क्योंकि उसमें पेंदी तो थी ही नहीं। फिर खींचे, लेकिन हाथ कुछ न आये। बाल्टी उपर आ जाये खाली, फिर डाले। दो-तीन दफा तो उस आदमी ने देखा, उसने कहाः भाई, तुम होश में हो? हम तुम से शिक्षा लेने आये थे; ऐसा मालूम पड़ता है, तुम्हें खुद ही शिक्षा की जरूरत है। तुम यह क्या कर रहे, पागल हो तुम! यह बाल्टी कभी भरेगी?
उस फकीर ने कहाः कुछ समझ में आया? यह बाल्टी मैं तेरे लिये इस कुएं में डाल रहा हूं। तृष्णा की बाल्टी में कोई पेंदी नहीं है; तू भरता रहे जिंदगी भर, भरेगी नहीं। कभी किसी की नहीं भरी। पेंदी ही नहीं है; मैं भी क्या करूं, तू भी क्या करे? इसलिए विषाद होता है। फिर जब बाल्टी... तुम इतनी मेहनत से जाओगे, कुएं पर पहुंचे, बामुश्किल तो कुएं पर पहुंच पाये, क्योंकि वहां कतार लगी थी, भीड़-भाड़ थी। बामुश्किल तो किसी तरह तुम्हें मौका मिला है कि बाल्टी डालो। बाल्टी डालो, भर भी गयी। क्योंकि जब तुम नीचे कुएं में झांककर देखोगे तो बाल्टी को भरा पाओगे, पानी में डूबी हुई पाओगे। चित्त उत्फुल्ल हुआ, खींचने लगे। बड़े उत्साह से खींची, और हाथ में जब आयी--खाली की खाली!
तुमने कितनी वासनाएं कीं! कितनी बार लगा कि अब तृप्ति मिली, मगर मिली कभी? कितनी बार लगा कि दूर बाल्टी भरी है, कुएं के भीतर; जब तक हाथ में आयी,

खाली हो गयी। बार-बार ऐसा हुआ, फिर भी तुम जागे नहीं, फिर भी तुम चौंके नहीं!
जे आसा ते आपदा, जे संसा ते सोग।
जो इस तरह आशा में जीता है, वह विपत्तियों में पड़ता रहेगा।
जे संसा ते सोग!
और जो शंकालु है, जो जीवन में अभी तक श्रद्धा के सूत्र को नहीं पकड़ पाया है, उसके जीवन में दुख ही दुख रहेगा।
संदेह कभी भी सुख पैदा नहीं कर सकता, क्योंकि संदेह दुविधा है, डांवांडोलपन है, चित्त का खंड-खंड होना है। श्रद्धा में चित्त इकट्ठा हो जाता है, एकजुट हो जाता है, अखंड हो जाता है। और अखंड चित्त का ही स्वभाव आनंद है।
गुरमुषि बिना न भाजसी, गोरष ये दून्यों बड़े रोग।
यह दोहरे किस्म का जो रोग है--आशा का और संशय का--यह हटेगा नहीं, जब तक कोई सदगुरु चौंकाये न, जगाये न।
गुरुमुषि बिना न भाजसी।
यह भागेगा नहीं। यह तो कोई सदगुरु अपने प्रकाश से तुम्हें आमंत्रित
कर ले, अपने आभामंडल में तुम्हें सम्मिलित कर ले, अपने भीतर तुम्हें देखने का मौका दे दे। और तुम वहां देखो जलता हुआ प्रकाश और आनंद की होती वर्षा और अमृत का स्वाद, तो तुम्हें सब समझ में आ जाये कि यह कैसे घटा--श्रद्धा से घटा। यह कैसे घटा--यह वासना-शून्य होने से घटा।
जैसे मैंने कहा कि मैं और तू एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, वैसे ही वासना और संदेह एक सिक्के के दो पहलू हैं, वैसे ही श्रद्धा और आनंद एक सिक्के के दो पहलू हैं। ये चीजें साथ-साथ चलती हैं। मगर कैसे जानोगे कि श्रद्धा और आनंद एक सिक्के के दो पहलू हैं? किसी में घटी हो घटना, उसी के पास बैठकर जान सकोगे।
जपतप जोगी संजम सार। बाले कंद्रप कीया छार।
येहा जोगी जग मैं जोय। दूजा पेट भरै सब कोय।।
यह सारे जप-तप का, सारे संयम का सार है--सत्संग। इसके बिना कुछ भी नहीं
हो सकता। इसके बिना तुम जो भी करोगे वह अंधे आदमी का टटोलना है। वह अंधा आदमी जैसे तीर चला रहा हो। न उसे तीर दिखाई पड़ रहा है, न उसे लक्ष्य दिखाई पड़ रहा है। अंधेरे में चलाये गये तीर कहीं लगते हैं? और लग भी जायें तो उनका कोई मूल्य नहीं है।
जपतप जोगी संजम सार!
सत्संग से ही एक संयम का आविर्भाव होता है जो कि सब जप और तप का सार है।
संयम शब्द को समझना। संयम शब्द बड़ा विकृत हो गया है लोगों के हाथों में। तुम आमतौर से त्यागी को संयमी कहते हो, जो गलत है। न तो भोगी संयमी है, न त्यागी संयमी है; दोनों असंयमी हैं। एक भोग की दिशा में असंयम कर रहा है, दूसरा त्याग की दिशा में असंयम कर रहा है। संयमी तो मध्य में होता है। संयम शब्द का ही अर्थ होता है मध्य में, संतुलित, समभाव में।
एक आदमी बहुत खा रहा है, यह असंयमी है; और एक आदमी बहुत उपवास कर रहा है, यह भी असंयमी है। यह दूसरे छोर पर असंयमी है। लेकिन जो सम्यक आहार करता है, जितना जरूरी है उतना खा लेता है, न कम न ज्यादा--वह संयमी है।
संयम शब्द जीवन के संगीत का सूचक है। संयम संगीत है जीवन-वीणा का। तार
न तो बहुत कसे हों और न तार बहुत ढीले हों।
ऐसा जोगी जग मैं जोय।
ऐसा ही योगी कहीं कोई मिले तो देखने योग्य है; जो संयमी हो। न भोगी न त्यागी। यही अड़चन है मेरे साथ, मेरे संन्यासियों के साथ। उनको मैं त्यागी बनने को नहीं कह रहा हूं। और तुमने सदियों से यह समझा है कि त्यागी संयमी होता है। इसलिए तुम सोचते हो कि मैं अपने संन्यासियों को संयम नहीं सिखा रहा हूं। मैं उन्हें संयम ही सिखा रहा हूं। मैं उनसे कह रहा हूंः भोग से थोड़े हटो, त्याग की तरफ मत झुक जाना। भोग है बायें, त्याग है दायें; सत्य है दोनों के मध्य में, अत्यंत मध्य में--मज्झिम निकाय है। वही है स्वर्णपथ,

बीच में रहना। रहना संसार में, पर ऐसे रहना जैसे संसार तुम में बिल्कुल न हो। बैठना बाजार में और होना ध्यान में।
येहा जोगी जग मैं जोय।
देखना हो कभी, देखने योग्य अगर जगत में कोई अपूर्व घटना है तो ताजमहल नहीं है, और न मिस्र के पिरामिड हैं, और न चीन की दीवाल है--अगर देखने योग्य कोई जगत में घटना है तो एक ऐसा व्यक्ति जो मध्य में आ गया है, जो संयम में है। क्योंकि वहां से उठती है एक सुवास, एक नाद, जो तुम्हारी समझ में आ जाये, जो तुम्हारे नासापुटों में आ जाये, कि तुम्हारे कर्ण को भेद दे, कि तुम्हारे हृदय को छेद दे--तो तुम रूपांतरित होने लगे। तुम्हारे जीवन में एक नयी यात्रा शुरू होः तमसो मा ज्योतिर्गमय। तुम चल पड़ो अंधकार से प्रकाश की ओर। मृत्योर्मा अमृतं गमय! तुम मृत्यु से अमृत की ओर चल पड़ो।
असतो मा सदगमय। तुम असत्य से सत्य की ओर चल पड़ो।
लेकिन यह घटना घटेगी किसी संयमी के पास।
गुरुमुषि बिना न भाजसी... ।
येहा जोगी जग मैं जोय। दूजा पेट भरै सब कोय।
और बाकी जो योग के नाम से चलता है सारा धंधा, गोरखधंधा, वह तो पेट भरने
की तरकीब है, उससे ज्यादा कुछ भी नहीं। तो तुम देख सकते हो तुम्हारे अखंडानंद, पाखंडानंद इत्यादि, इत्यादि... । कुल काम इतना है कि पेट बड़ा होता जाये! जितनी बड़ी तोंद उतना बड़ा योगी--ऐसी लगती है परिभाषा। सब को मात कर दिया है गणेशपुरी के बाबा मुक्तानंद के गुरु नित्यानंद ने। उनकी तस्वीर देखी? उनकी तस्वीर देखना और फिर पढ़ना यह गोरख का वचनः
दूजा पेट भरै सब कोय।
पेट तुमने बहुत देखे होंगे, मगर नित्यानंद का कोई मुकाबला नहीं--पेट
ही पेट है! तस्वीर देखी है कि नहीं? नहीं देखी हो तो जरूर देखना। लोग बस भरे जा रहे हैं। और इनको तुम संन्यासी कहते हो, महात्मा कहते हो!
संयम एक संगीत है। संयम एक अपूर्व कला है। जबर्दस्ती का नाम संयम नहीं है, सहजता का नाम संयम है।
कैसे बोलौ पंडिता, देव कौंने ठांईं
निज तत निहारतां अम्हें तुम्हें नहीं।
ऐ पंडितो, ऐ पढ़े-लिखे लोगो! तुम्हें मैं कैसे समझाऊं कि परमात्मा किस जगह है, क्योंकि परमात्मा सब जगह है। वही है और कुछ भी नहीं।
ऐ पंडितो! तुम्हें मैं कैसे समझाऊं कि परमात्मा कहां है... परमात्मा कहां नहीं है?
निज तत निहारतां अम्हें तुम्हें नहीं।
एक बात तुमसे कह सकता हूं, अगर तुम अपने को देखो तो तुम वहां न मैं पाओगे, न तू पाओगे। और जिस घड़ी न मैं रह जाये, न तू रह जाये तो जो रह जायेगा वही परमात्मा है। और कहीं तुम परमात्मा को न पा सकोगे।
गोरख का एक वचन हैः
दृष्टि अग्रे दृष्टि लुकाइबा, सुरति लुकाइबा कानं।
नासिका अग्रे पवन लुकाइबा, तब रहि गया पद निरबानं।।
आंख में ज्योति को छिपा लो, देखने की कला को छिपा लो। बाहर मत देखो, बाहर देखने में उलझ गये हो।
दृष्टि अग्रे दृष्टि लुकाइबा!
छिपा लो आंख में देखने की क्षमता को और कर लो आंख बंद, ताकि देखने की सारी क्षमता भीतर ही संगृहीत हो जाये, ताकि तुम अपने को देख सको।
सुरति लुकाइबा कानं!
और अब कान से बाहर मत सुनो। अब कान को बाहर से तो मुक्त कर लो और भीतर सुनो।
सुरति लुकाइबा कानं।
नासिका अग्रे पवन लुकाइबा!
बहुत ले चुके बाहर की श्वास; अब उस घड़ी की तलाश करो जब बाहर श्वास थिर
हो जाती है, शांत हो जाती है, आती नहीं जाती नहीं। तब तुम्हें भीतर एक नये प्राण का अनुभव होगा, एक नयी श्वास का अनुभव होगा।
तब रहि गया पद निरबानं!

फिर कुछ नहीं बचा, फिर पद निर्वाण ही रह गया। वही अनुभव परमात्मा का अनुभव है, वही अनुभव मोक्ष का, वही निर्वाण का। ये नामों के भेद हैं।
रहि गया पद निरबानं!
कैसे बोलौ पंडिता, देव कौंने ठांईं।
कैसे बताऊं तुम्हें पंडितो, तुम शास्त्रों में खोज रहे हो, पागल हो गये हो। तीर्थों में खोज रहे हो, पागल हो गये हो। मूर्तियों में खोज रहे हो, पागल हो गये हो। परमात्मा ऐसी जगह नहीं मिलेगा।
निज तत निहारतां! अपने को निहारो!
अम्हें तुम्हें नहीं। जहां न हम बचेंगे न तुम; न मैं न तू--वहां जो शेष
रह जाता है, वही परमात्मा है।
तब रहि गया पद निरबानं।
पषांणची देवली!
मूर्ति भी पत्थर की बना ली है।
पषांण चा देव!
मंदिर भी पत्थर का, मूर्ति भी पत्थर की!
पषांण पूजिला कैसे फीटिला सनेह।
और पत्थर पूज-पूज कर तुम सोच रहे हो तुम्हारे भीतर प्रेम का झरना फूट पड़ेगा?
खूब सम्हाल कर रखना इस वचन को हृदय में! इस देश में यह दुर्घटना इतनी साफ घटी है कि इसके लिए प्रमाण देने की जरूरत नहीं है। यह देश इतना पाषाण-हृदय हो गया, उसका कुल कारण यह पत्थरों की पूजा! पत्थर को पूजोगे, पत्थर हो जाओगे। जरा पूजा सोच-समझकर करना। क्योंकि जिसे तुम पूजोगे, वही तुम्हारा जीवन-लक्ष्य हो गया। जिसे तुम पूजोगे, वही तुम्हारे लिये दृष्टांत हो गया। जिसे तुम पूजोगे, वैसे ही तुम होने लगोगे। जरा सोच कर पूजना! पषांणची देवली पषांण चा देव, पषांण पूजिला कैसे फीटिला सनेह।
और तुम्हारे भीतर कैसे प्रार्थना उठे, कैसे प्रेम जगे, कैसे नेह का दीया पैदा हो? पत्थर तुम्हारा देवता है, पत्थर के तुम्हारे मंदिर हैं, तुम भी पत्थर हो गये हो! पत्थर जिसका भगवान है, वह भक्त ज्यादा दिन तक आदमी नहीं रह सकेगा, पत्थर हो जायेगा।
इसलिए इस देश में बड़ी चमत्कार की बात तुम्हें दिखाई पड़ेगी। लोग खूब पूजा कर रहे हैं, प्रार्थना कर रहे हैं--और बिल्कुल पत्थर हैं! न दया है, न करुणा है, न प्रेम है। बिल्कुल दया, करुणा, प्रेम समाप्त हो गये हैं। किसी को कुछ लेना-देना नहीं है। कोई मर रहा हो, कोई जी रहा हो, किसी को प्रयोजन नहीं है। और लोगों ने खूब सिद्धांत खोज लिये हैं कि अपने-अपने कर्मों का फल लोग भोग रहे हैं, हम क्या करें? हम तो अभी मंदिर पूजा करने जा रहे हैं! लोग अपने-अपने कर्मों का फल भोग रहे हैं; जिसने जैसा किया वैसा भोगेगा। जिसने जैसा बोया वैसा काटेगा। अगर तुम्हारे घर में आग लग गयी है तो तुमने कभी लगायी होगी किसी के घर में आग। अब भोगो, कौन बुझाये? तुम भूखे मर रहे हो मरो; मारा होगा किसी को भूखा पिछले जन्मों में, तो अब फल भोग रहे हो।
ये तरकीबें हैं। ये सिद्धांतों के जाल हैं। और ख्याल रखना, जैसे मकड़ियां जाल फैलाती हैं मक्खियों को पकड़ने के लिए, फिर ऐसा थोड़ी ही घोषणा करती हैं बैठकर अपने जाल पर कि आओ मक्खियो और फंसो, हम तुम्हें खायेंगे। फिर कौन मक्खी फंसेगी? मकड़ी जाल फैला देती है, फिर मक्खियों को कहती है, आओ मक्खियो चाय पीयो, नाश्ता करो... । कभी-कभी आओ, मिलो-जुलो। सत्संग हो, दो बातें हों। तब मक्खी फंसेगी। फंस गयी कि फंस गयी।
सिद्धांतों के बड़े मकड़ी जैसे जाल तुम्हारे चारों तरफ फैले हुए हैं। तुम उनमें फंसे तड़फ रहे हो, मकड़ियां तुम्हें चूस रही हैं। यही मकड़ियां तुम्हारे धर्मगुरु बनकर बैठ गयी हैं--पंडित, पुरोहित। ये तुम्हारे लिए जीवन-दर्शक हो गये हैं, जीवन-द्रष्टा हो गये हैं। ये तुम्हें मार्ग चला रहे हैं, ये तुम्हें मार्ग दिखा रहे हैं--जिन्हें कोई मार्ग पता नहीं है! जिन्होंने अभी स्वयं का कोई अनुभव नहीं किया है, वे आत्मा की बातें कर रहे हैं, परमात्मा की बातें कर रहे हैं। कोरे शब्द हैं, थोथे शब्द हैं। उन शब्दों में श्वास नहीं है और न हृदय धड़कता है।
पषांणची देवली पषांण चा देव

पषांण पूजिला कैसे फीटिला सनेह।
सरजीव तोड़िला निरजीव पूजिला!
तुम देखते हो न, लोग फूल तोड़ लेते हैं, जिंदा फूल! अभी खिला था, अभी हवाओं में नाचता था। अभी आकाश में अपनी सुरभि बिखेरता था! अभी सूरज की किरणों से गुफ्तगू करता था। अभी कितना मस्त था, कितना मदमस्त था। तोड़ लिया। निकल पड़ते हैं सुबह से लोग फूल तोड़ने। तोड़ लिया, चले मंदिर में चढ़ाने। जिंदा फूल को मार डाला, और चढ़ा दिया पत्थर पर! जो चढ़ा था परमात्मा को, उसे छीन लिया परमात्मा से और चढ़ा दिया पत्थर पर!
ठीक बात कहते हैंः
सरजीव तोड़िला निरजीव पूजिला।
तुम हो कैसे पागल! अपने पत्थरों को लाकर फूलों पर चढ़ा देते तो ठीक था, मगर फूलों को तो मत तोड़ो। और लोग कहते हैं कि नहीं-नहीं फूलों को हम बहुत प्रेम करते हैं, इसलिए तोड़ते हैं।
जार्ज बर्नार्ड शा को किसी ने एक फूल तोड़ कर देना चाहा। बगीचे में दोनों घूम रहे थे। मित्र का बगीचा था, उसमें फूल... । बर्नार्ड शा को देखा खड़े फूल के पास भाव-विभोर, मुग्ध... तोड़ने लगा। बर्नार्ड शा ने कहा, रुको- रुको, तोड़ना मत। उसने कहा कि आपको फूल पसंद नहीं? बर्नार्ड शा ने कहा कि बहुत पसंद है, बहुत प्यारा है! तो उसने कहा, इसीलिए मैं तोड़ता हूं। उसने कहाः यह तो हद्द हो गयी! अगर कोई बच्चा प्यारा है, उसकी गर्दन तोड़कर क्या गुलदस्ता बनाओगे? अगर फूल प्यारा है तो उसे तोड़ोगे कैसे, उसे तोड़ कैसे पाओगे? तुम कोई बच्चों की गर्दनें काट कर गुलदस्ते तो नहीं सजाते, कि रख दिया टेबल पर बच्चे की गर्दन, कि हमारा बेटा है देखो, कितना प्यारा! तो फूल क्यों तोड़ते हो?
गोरख ठीक कह रहे हैंः
सरजीव तोड़िला निरजीव पूजिला।
मैं जबलपुर बहुत वर्षों तक रहा। मैंने एक प्यारा बगीचा लगा रखा था। उसमें बहुत फूल खिलते थे। आने लगे सुबह से लोग फूल तोड़ने। तिलक, चंदन-वंदन लगाये हुए। राम-राम, राम-राम जपते हुए। तो मैंने कहाः फूल मत तोड़ना।
उन्होंने कहाः लेकिन हम तो पूजा के लिए तोड़ रहे हैं। पूजा के लिए तोड़ने में तो सब हकदार हैं।
मैंने कहाः और किसी काम के लिए तोड़ रहे हो तो दे भी सकता हूं, मगर पूजा
के लिए तो नहीं दूंगा।
उन्होंने कहाः आप बात कैसी करते हैं!
मैंने कहाः कम-से-कम पूजा के लिए तो नहीं। क्योंकि पूजा तो वे कर रहे हैं, उनकी पूजा में विघ्न मत डालो। परमात्मा को वे चढ़े हैं। हां, तुम्हें किसी स्त्री से प्रेम हो गया हो और एक फूल भेंट करना हो, भले ले जाओ। कम-से- कम जिंदा को तो चढ़ाओगे।
नहीं-नहीं, उन्होंने कहा, हम तो भगवती जी के मंदिर में जाते हैं।
मैंने कहाः जिंदा भगवती को चढ़ाओ तो तोड़ सकते हो, मंदिर-वंदिर के लिए नहीं।
तो मैंने एक तख्ती लगा छोड़ी थी कि सिर्फ पूजा के लिए छोड़कर और किसी भी काम के लिए तोड़ना हो तो तोड़ लेना। मगर पूजा की बात बर्दाश्त नहीं की जा सकती।
इस बगीचे में भी फूल खिलते हैं, वे अपना खिलकर वहीं मुर्झा जाते हैं। वहीं से चढ़े हैं परमात्मा को। उनको तोड़ना क्या है?
सरजीव तोड़िला निरजीव पूजिला
पाप ची करणी कैसे दूतर तिरीला।
इस दुस्तर सागर को कैसे तिर पाओगे इन थोथी बातों से? इन व्यर्थ के कामों से? इन मूर्च्छित कृत्यों से?
तीरथि तीरथि सनांन करीला,
कितने तीर्थों का स्नान कर आये हो!
बाहर धोये कैसे भीतर भेदिला!

और बाहर से धो लिया शरीर को, इससे भीतर कैसे भिदेगा? भीतर को कब धोओगे? भीतर तो एक ही तीर्थ पर धुलता है--कहीं सत्संग का तीर्थ मिले। सत्संग में ही सरोवर है, जहां भीतर का स्नान होता है।
आदिनाथ नाती मच्छींद्रनाथ पूता।
निज तात निहारै गोरष अवधूता।।
बड़ा अदभुत वचन है। तुम चकित होओगे जानकर। कह रहे हैं... ।
आदिनाथ भारत के इतिहास में अनूठा पौराणिक नाम है। पौराणिक कहता हूं, ऐतिहासिक नहीं; क्योंकि इतिहास का कुछ भी हिसाब नहीं है। लेकिन आदिनाथ जैसे गंगोत्री हैं। जैन आदिनाथ को अपना प्रथम तीर्थंकर मानते हैं। ऋषभदेव, आदिनाथ दोनों उन्हीं के नाम हैं। पहले तीर्थंकर हैं, इसलिए आदिनाथ। प्रथम जिनसे हुआ, शुरुआत जिनसे हुई। जैन परंपरा आदिनाथ से पैदा हुई। ऋग्वेद में भी आदिनाथ का, ऋषभदेव का बड़े सम्मान से उल्लेख है, अति सम्मान से उल्लेख है। इसलिए हिंदू परंपरा ने भी उन्हें पूरा सम्मान दिया है। महावीर को जरा भी सम्मान नहीं दिया हिंदू परंपरा ने। नाम ही उल्लेख नहीं किया है। अगर जैन शास्त्र और बौद्ध शास्त्र न हों तो हिंदू शास्त्रों से पता ही नहीं चल सकता था कि महावीर कभी हुए हैं। मगर आदिनाथ को बड़ा सम्मान दिया है। ऐसा प्रतीत होता है कि जैन और हिंदू परंपरा बाद में अलग हुई होंगी, आदिनाथ के समय एक ही रही होंगी। भेद नहीं पड़ा होगा अभी। इसलिए ऋग्वेद में भी सम्मानसूचक, अति सम्मानसूचक उल्लेख है। और जैनों के तो वे प्रथम तीर्थंकर हैं; उनके सारे धर्म का मूल आधार वहां है।
तांत्रिक भी मानते हैं कि आदिनाथ से ही तंत्र की शुरुआत हुई। और सिद्धयोगी भी मानते हैं कि आदिनाथ उनके प्रथम गुरु हैं। इसलिए आदिनाथ उदगम-स्रोत मालूम होते हैं; जैसे इस देश की सारी परंपराएं इस एक व्यक्तित्व से निकली हों।
मगर गोरख का वचन बड़ा चौंकानेवाला है। गोरख कहते हैंः
आदिनाथ नाती!
आदिनाथ मेरे नाती हैं।
मच्छींद्रनाथ पूता!
और अपने गुरु, उनके जो गुरु हैं मच्छिंद्रनाथ, वे मेरे पुत्र हैं।
निज तात निहारै गोरष अवधूता!
अपने बेटे-बेटियों को, अपने पुत्रों-नातियों को देखकर मैं बड़ा प्रसन्न हूं।
कबीर के समय तक आते-आते इस तरह के वचन उलटबांसी कहे जाने लगे। मगर बड़े प्यारे वचन हैं! जीसस का भी ऐसा वक्तव्य है। जीसस से किसी ने पूछाः तुम किस अधिकार से बोलते हो, आन व्हाट अथारिटी? और जीसस ने कहा कि किस अधिकार से? अब्राहम नहीं हुआ, उसके भी पहले मैं हूं!
अब्राहम का वही स्थान है यहूदी, ईसाई और इस्लाम परंपराओं में जो आदिनाथ का जैन, हिंदू और बौद्ध परंपरा में है। अब्राहम आदि-पुरुष हैं यहूदी परंपरा के। उन्हीं से फिर ईसाइयत निकली, उन्हीं से फिर इस्लाम निकला। मगर जीसस का वक्तव्य बड़ा अदभुत है! जीसस कहते हैंः किस अधिकार से! मैं अब्राहम के पहले हूं।
पूछनेवाले ने कहाः तुम चौंकाते हो। तुम होश की बात कर रहे हो? अब्राहम
को हुए हजारों साल हो गये!
जीसस ने कहाः वह मुझे मालूम है, लेकिन मैं उनसे पहले हूं।
क्या मतलब होगा जीसस का? जीसस यह कह रहे हैं कि वह जो हमारा केंद्रों
का केंद्र है, वह जो हमारे प्राणों का प्राण है, वह जब कुछ भी नहीं हुआ था, तब से है। जब अस्तित्व भी शुरू नहीं हुआ था, जब अस्तित्व का सूर्योदय नहीं हुआ था तब से है।
और जब भी कोई उसे जान लेता है तो शेष सब बातें पीछे हैं। जिसने अपने स्वरूप को जान लिया, उसने परमात्मा को जान लिया, उसने मूल को जान लिया अस्तित्व के। और मूल तो निश्चित ही सबसे आगे है। आदिनाथ उसके बाद हुए, अब्राहम उसके बाद हुए।
गोरख यही कह रहे हैं। एक गंभीर मजाक, एक प्यारा मजाक! गोरख यही कह रहे हैं कि जब से मैंने अपने को जाना है, तब से मैंने यह जाना कि और सब मेरे

पीछे हुआ है। ख्याल रखना, मेरे का मतलब गोरख नहीं है। मेरे का मतलब वही है जो कृष्ण का मतलब है गीता मेंः सर्व धर्मान परित्यज्य, मामेकं शरणं व्रज! छोड़ सब धर्म इत्यादि अर्जुन, और मेरी शरण आ। उस "मेरी शरण" से अर्थ "कृष्ण की शरण आ", ऐसा नहीं है। माम एकम! मुझ एक! वह "मुझ एक" कौन है? कृष्ण नहीं हैं। वह एक कृष्ण में भी प्रगट हुआ है, अर्जुन में भी प्रगट हुआ है। वही एक सदा से प्रगट होता रहा है और सदा प्रगट होगा। वही मुझमें प्रगट हुआ है, वही तुम में प्रगट हुआ है। किसी को पता चल जाये तो वह बुद्ध हो जाता है, और किसी को पता न चले तो वह सोया रह जाता है। बस इतना ही भेद है बुद्धों में और अबुद्धों में, और कुछ भेद नहीं है। एक जाग गया, एक सो रहा है। मगर जो सो रहा है वह भी उतना ही परमात्मा है जितना जागा हुआ, रत्ती-भर भेद नहीं है। गुण का कोई भेद नहीं है।
इस अदभुत बात को यूं प्रगट करते हैंः आदिनाथ नाती! कि क्या कहूं मैं अपनी बात, कि जब से अपने को जाना है, स्वयं को निहारा है, क्या हालत घट गयी है! अब तो मुझे ऐसा लगता है कि आदिनाथ भी मेरे बाद हुए।
आदिनाथ नाती, मच्छींद्रनाथ पूता!
और शायद आदिनाथ को तो तुम भूल-भाल चुके हो, तुम्हें याद भी न हो। मगर मच्छींद्रनाथ, जो गुरु हैं--और जो अभी जिंदा थे--वे भी मेरे पुत्र हैं! निज तात निहारै गोरष अवधूता।
और यह सारा अस्तित्व मेरी ही संतति है। ऐसा देख कर गोरख अवधूत बड़ा प्रसन्न हो रहा है। गोरख का और एक वचन है, नरेंद्र ने उस संबंध में कल ही पूछा था। वह वचन भी प्यारा है!
अवधू ईश्वर हमरै चेला, भणींजै मच्छींद्र बोलिये नाती।
निगुरी पिरथी परलै जाती, ताथै हम उल्टी थापना थाती।।
हे अवधूत, शिव हमारे चेला हैं, ईश्वर स्वयं हमारे चेला हैं। हे अवधूत, ईश्वर हमारे चेला हैं, मच्छींद्रनाथ नाती हैं, अर्थात चेले के भी चेले। हमें स्वयं गुरु धारण करने की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि हम साक्षात परमात्मा हैं। किंतु इस डर से कि हमारा अनुकरण कर अज्ञानी लोग बिना गुरु के ही योगी होने का दम न भरने लगें, इसलिए हमने मच्छींद्रनाथ को गुरु बना लिया, जो वस्तुतः उल्टी स्थापना करना है, क्योंकि खुद मच्छींद्रनाथ हमारे शिष्य हैं।
निगुरी पिरथी परलै जाती।
कहीं ऐसा न हो जाये कि लोग बिना गुरु को बनाये ही अपनी घोषणा करने लगें, कि हम पहुंच गये। थोथे लोग कहीं झूठी घोषणाएं न करने लगें, इस कारण।
निगुरी पिरथी परलै जाती।
कहीं पूरी पृथ्वी प्रलय में न चली जाये।
ताथै हम उल्टी थापना थाती।
इसलिए हमने उल्टा काम शुरू किया, अपने ही बेटे को पिता बना लिया; अपने
ही शिष्य को गुरु बना लिया, ताकि अज्ञानी लोगों के लिए एक संकेत रहे कि गुरु के बिना ज्ञान नहीं है।
मगर जिसको भी ज्ञान हो जाता है, उसको यही अनुभव होता हैः
अवधू ईश्वर हमरै चेला, भणींजै मच्छींद्र बोलिये नाती।
जिसको ज्ञान होता है, वह ब्रह्मस्वरूप हो गया। जिसने स्वयं को जाना
वह स्वयं ब्रह्म हो गया। उसे जानते ही वही हो जाता है। फिर शेष सब उसके बाद है। वह समयातीत हो गया, काल और क्षेत्र के बाहर चला गया। वह प्रथम है, वही अंतिम है। सबसे पहले भी वही, सबसे अंत में भी वही। असल में फिर एक ही है, दो नहीं हैं। फिर कौन गुरु, कौन चेला! फिर कौन भक्त, कौन भगवान! इतना भेद भी नहीं बचता है; नहीं बचना चाहिए। इस अभेद में ही आनंद की वर्षा है, अमृत का अनुभव है।
लेकिन इसके पहले मिटना पड़े। तुम जैसे हो, अहंकारग्रस्त, इस भावदशा को
तो विदा करना पड़ेगा।
मरौ हे जोगी मरौ, मरौ मरण है मीठा।
तिस मरणी मरौ, जिस मरणी गोरष मरि दीठा।
आज इतना ही।

मरौ हे जोगी मरौ
आठवां प्रवचन

आओ चांदनी को बिछाएं, ओढ़ें

पहला प्रश्नः परमात्मा को अनिर्वचनीय क्यों कहा जाता है?

जीवन में सभी कुछ अनिर्वचनीय है। परमात्मा है जीवन की समग्रता। जब जीवन का सभी कुछ अनिर्वचनीय है, तो सबका जोड़ तो अति अनिर्वचनीय होगा।
तुम प्रेम का निर्वचन कर सकते हो, कोई पूछे प्रेम क्या है? और ऐसा भी नहीं है कि तुमने प्रेम न जाना हो। न बरसी हो वर्षा, बूंदाबांदी जरूर हुई होगी। किसी-न-किसी ढंग, किसी-न-किसी द्वार से प्रेम की थोड़ी अनुभूति हुई होगी। मित्र का प्रेम जाना होगा, पति का, पत्नी का, बेटे का, मां का, पिता का। कहीं-न-कहीं से प्रेम की कोई किरण उतरी ही होगी, क्योंकि बिना प्रेम की किरण के तो कोई जी ही नहीं सकता। पहचान हुई होगी, झरोखा खुला होगा। पर अगर कोई पूछे प्रेम क्या है, तो एकदम अवाक रह जाओगे न, क्या कहोगे?
कोई पूछे, सौंदर्य क्या है? और ऐसा नहीं कि सुंदर तुमने नहीं देखा। कभी देखी है पूरे चांद से भरी रात, कभी देखा है आकाश तारों से जगमगाता। फूल खिलते देखे हैं, कोयल की कूक सुनी है। वीणा को बजते जाना है। बहुत-बहुत रूपों में सौंदर्य प्रगट हो रहा है। जो अति संवेदनशून्य हैं, वे भी कुछ न कुछ सौंदर्य देखते हैं। कभी किसी मनुष्य के चेहरे में, कभी किसी की चाल में, उठने-बैठने में, कभी किसी के कंठ में। सुंदर की कोई न कोई प्रतीति तो हुई ही होगी। इतना अभागा तो कोई मनुष्य नहीं है कि उसे सुंदर का अनुभव न हुआ हो। पर कोई पूछे सौंदर्य क्या है? कैसे करोगे व्याख्या? क्या व्याख्या दोगे? गूंगे हो जाओगे।
जब सुंदर की व्याख्या नहीं हो पाती, प्रेम की व्याख्या नहीं हो पाती,
तो परमात्मा की व्याख्या कैसे होगी? क्योंकि परमात्मा परम सुंदर है; और परमात्मा परम प्रेम है।
खैर, सौंदर्य और प्रेम बड़ी बातें हैं, तुम शायद सोचो; छोटी बातों की तरफ आओ। तुमने स्वाद लिया है किसी चीज का? और कोई अगर पूछे कि क्या है स्वाद? मिठास तुमने जानी है, मगर अगर कोई पूछे कि करो व्याख्या मिठास की, तो तुम पराजित हो जाओगे। मिठास जैसी छोटी-सी चीज की भी व्याख्या नहीं हो सकती। वहां भी आदमी एकदम चुप हो जाता है, मौन हो जाता है। और अगर ऐसा आदमी पूछे जिसने कभी मिठास न जानी हो, तब तो मुश्किल और भी घनी हो जायेगी। मिठास की भी व्याख्या नहीं हो सकती।
पश्चिम के एक बहुत बड़े विचारक जी. ई. मूर ने शुभ क्या है, इसकी व्याख्या पर एक बड़ी अदभुत किताब लिखी है। कोई ढाई सौ पृष्ठों पर निरंतर मेहनत करने के बाद कि शुभ क्या है, मूर इस नतीजे पर पहुंचा कि शुभ की व्याख्या नहीं हो सकती। और उदाहरण जो लिया मूर ने वह लिया--जैसे पीले रंग की क्या व्याख्या करोगे? पीला रंग जैसी छोटी चीज सब तरफ छितरी है। गेंदे के फूल खिले हैं। कनेर के पीले फूल खिले हैं। सूरज से बरस रहा है सोना पीला। पीले का तो सबको अनुभव है। अगर कोई पूछे पीला क्या? तो तुम इतना ही कह सकोगे न, पीला पीला।
मिठास क्या? मिठास यानी मिठास। और प्रेम क्या? प्रेम यानी प्रेम। अनिर्वचनीय हैं ये सब छोटी घटनाएं भी, तो वह विराट तो अनिर्वचनीय होगा ही। उसकी कोई भी तस्वीर बनाओगे, झूठी हो जाएगी, छोटी हो जाएगी। उसके संबंध में कोई सिद्धांत निर्मित करोगे, ओछा पड़ जायेगा।
इसलिए कहा है परमात्मा अनिर्वचनीय है। जिन्होंने जाना है उन्होंने कहा है अनिर्वचनीय है; जिन्होंने नहीं जाना, वे परमात्मा का निर्वचन करते हैं। जो नहीं जानते, केवल वे ही परमात्मा का निर्वचन करते हैं, वे ही व्याख्या करते हैं। वे ही परमात्मा की मूर्तियां बनाते हैं। वे ही परमात्मा के लिए सिद्धांत निर्मित करते हैं, शास्त्र बनाते हैं। जिन्होंने जाना है, वे तो परमात्मा को अनिर्वचनीय ही कहते हैं; वे तो मौन

ही रह गये हैं। परमात्मा के संबंध में नहीं बोले; हां, बोले हैं, परमात्मा को कैसे पाया जाये, इस संबंध में।
जल पीयोगे तो जानोगे कि मीठा है, खारा है, शीतल है, नहीं शीतल है; पीयोगे तो जानोगे। जो जानते हैं, वे सरोवर की तरफ इशारा करते हैं; वे जल के स्वाद की तरफ एक शब्द नहीं बोलते। वे कहते हैं, वह रहा सरोवर। वहां मैंने पीया। तुम भी आ जाओ, तुम्हें भी ले चलूं। आओ मेरा हाथ पकड़ लो।
जानने वाले विधि की बात करते हैं कि परमात्मा कैसे जाना जा सकता है। न जाननेवाले परमात्मा को सिद्ध करने की कोशिश करते हैं, प्रमाण देते हैं कि ऐसा प्रमाण है। इस तरह का परमात्मा है। उसके हजार हाथ हैं, कि चार हाथ हैं, कि तीन सिर हैं। सब मूढ़तापूर्ण बातें हैं। हजार हाथों में भी उसके हाथ पूरे नहीं होते। तीन सिर भी काफी नहीं हैं। क्योंकि सब सिर उसके हैं, और सब हाथ उसके हैं। और वे ही हाथ नहीं जो आज हैं; जो हाथ अब तक हुए हैं वे भी उसके हैं; जो आज हैं वे भी उसके हैं। जो आगे अनंत काल में होंगे वे भी उसके हैं। हजार हाथों में कैसे बात चुकेगी? और आदमी के ही हाथ उसके नहीं हैं, पशु- पक्षियों के हाथ भी उसके हैं। वृक्षों की शाखाएं, वृक्षों के हाथ भी उसके हैं। सब उसका है। इस विराट को कैसे समायें शब्द में, अड़चन होगी।
जो बात तुझमें है, तेरी तस्वीर में नहीं!
तुमने किसी से प्रेम किया? और तुम्हें कभी किसी ने तुम्हारे प्रेयसी
की तस्वीर दी है और तुमने भेद देखा?

जो बात तुझमें है, तेरी तस्वीर में नहीं!
रंगों में तेरा अक्स ढला, तू न ढल सकी
सांसों की आंच, जिस्म की खुशबू न ढल सकी
तुझ में जो लोच है, मेरी तहरीर में नहीं
तेरी तस्वीर में नहीं!

बेजान हुस्न में कहां रफ्तार की अदा इनकार की अदा है न इकरार की अदा
कोई लचक भी जुल्फे-गिरहगीर में नहीं तेरी तस्वीर में नहीं!

दुनिया में कोई चीज नहीं है तेरी तरह
फिर एक बार सामने आ जा किसी तरह
क्या और इक झलक मेरी तकदीर में नहीं?
तेरी तस्वीर में नहीं!

जो बात तुझमें है, तेरी तस्वीर में नहीं!
साधारण प्रेम की घटना में भी ऐसा तुम्हें अनुभव होगा, तुम्हारी प्रेयसी की तस्वीर उतारी नहीं जा सकती। कितने ही कोई रंग भरे, उसका रंग नहीं आयेगा। कितना ही कोई चमकाये, उसकी चमक नहीं आयेगी। कुछ छूट जायेगा। जो जीवंत है, पीछे छूट जायेगा। जो असली है, पीछे छूट जायेगा। जो ऊपर-ऊपर है, वह तस्वीर में उतर आयेगा। आत्मा पीछे छूट जायेगी, देह पकड़ में आ जायेगी। और परमात्मा शुद्ध आत्मा है, इसलिए अनिर्वचनीय है। परमात्मा इस जगत
का शुद्धतम सार है। फूल की तो तस्वीर बन सकती है, लेकिन सुगंध की तस्वीर कैसे बनाओगे? फूल में देह है और आत्मा है। सुगंध में सिर्फ आत्मा बची, देह गयी।
परमात्मा सुगंध है इस अस्तित्व की। हां, वीणा की तस्वीर बन सकती है; लेकिन वीणा के तार छिड़े, संगीत उठा, संगीत की तस्वीर कैसे बनाओगे? किसी ने बनाई है कभी संगीत की तस्वीर? अनुभव हो सकता है। प्रतीति हो सकती है। स्वाद लिया जा सकता है।
इसलिए परमात्मा की व्याख्या में पड़ना ही मत। परमात्मा को ओढ़ो।
परमात्मा को पहनो। परमात्मा को पीयो। परमात्मा को खाओ, पचाओ। परमात्मा को तुम्हारी मांस-मज्जा बनने दो। मत पूछो उसकी व्याख्या। मत शब्दों के जाल में पड़ो।

आओ, चांदनी को बिछायें, ओढ़ें, पहनें आओ!
चांदनी की बातें न करो। बातों में कहीं खो न जाये बात। बात-बात में कहीं अटक न जाओ।

आओ, चांदनी को बिछायें, ओढ़ें, पहनें आओ!
चांदनी में नहायें, डूबें उतरायें
आओ, चांदनी को बिछायें!

ठंडी-ठंडी-सी चांदनी है
मरहम घावों की चांदनी है
अनियंत्रित रिसना
घावों का
थम जाये बहता हुआ
नयन-जल
ठिठके, जम जाये
आओ, अनबोये सपनों का धान उगायें आओ, चांदनी को बिछायें!

मद्धिम-मद्धिम किरणों की वंशी नंदन-वन में चंदन-सी वंशी मधुरिम कंठ
तुम्हारे-सा
यह स्वर-साधन
प्रेम-पगे
प्राणों की
धड़कन-सा वादन
आओ, मंद्र लहरियों पर झूमें, खो जायें
आओ, चांदनी को बिछायें!

छोड़ो परमात्मा की व्याख्या, परमात्मा के प्रमाण, परमात्मा के संबंध में शब्दों का ऊहापोह। परमात्मा का विचार नहीं हो सकता। आओ, निर्विचार हो जायें। परमात्मा को जीयें, अनुभव करें।
मैं यहां परमात्मा की व्याख्या करने को नहीं हूं। तुम्हारे मन में अभीप्सा जगी हो तो तुम्हारा हाथ लेकर उस तीर्थ तक तुम्हें पहुंचा दे सकता हूं। मेरे पास विद्यार्थी की तरह मत आओ। विद्यार्थी की उत्सुकता होती है कि थोड़ा-सा ज्ञान और बढ़ जाये। मेरे पास साधक की तरह आओ। साधक की अभीप्सा और है; विद्यार्थी से बड़ी भिन्न है। साधक कहता है, अनुभव कैसे हो जाये? विद्यार्थी कहता है थोड़ा ज्ञान कैसे बढ़ जाये। विद्यार्थी अपनी स्मृति को संजोना चाहता है। साधक अपने जीवन को ज्योतिर्मय करना चाहता है।

आओ, चांदनी को बिछायें, ओढ़े, पहनें आओ!
प्रेम-पगे
प्राणों की
धड़कन-सा वादन
मद्धिम-मद्धिम किरणों की वंशी
नंदन-वन में चंदन-सी वंशी
मधुरिम कंठ
तुम्हारे-सा
यह स्वर-साधन
आओ, मंद्र लहरियों पर झूमें, खो जायें
आओ, चांदनी को बिछायें!

अनुभव होगा, बस उसी अनुभव में निर्वचन है। साक्षात्कार हो तो उसी साक्षात्कार में सारे शास्त्रों का प्रमाण मिल जायेगा। तुम साक्षी बन

जाओगे, वेदों के, उपनिषदों के, कुरानों के। तुम साक्षी बनो। तुम प्रमाण बनो। परमात्मा का प्रमाण मत पूछो। तुम ही प्रमाण बन सकते हो। तुम्हारी मौजूदगी पर्याप्त होगी। कुछ बातें हैं जो कहीं नहीं जातीं; कुछ बातें हैं जो प्रगट होती हैं।
रामकृष्ण से किसी ने पूछा, ईश्वर का प्रमाण? तो रामकृष्ण ने कहाः मैं, मैं हूं ईश्वर का प्रमाण! यह भाषा दार्शनिक की नहीं है, विचारक की नहीं है; यह भाषा अनुभोक्ता की है। मैं हूं प्रमाण!
जब विवेकानंद ने रामकृष्ण को पूछा कि मुझे आप ईश्वर सिद्ध कर सकते हैं, ईश्वर है? रामकृष्ण ने कहा, व्यर्थ की बकवास बंद करो। तुझे ईश्वर को जानना है, यह पूछ। ईश्वर है या नहीं, यह बात ही मत कर। तुझे जानना है? जना सकता हूं। अभी जानना है?
विवेकानंद ने ऐसा नहीं सोचा था, और बहुत मनीषियों के पास वह गये थे, जिज्ञासु थे। जहां खबर मिली कि कोई ज्ञानी है, वहीं गये। सब जगह खाली हाथ लौटे थे। चूंकि शब्द तो बहुत थे, लेकिन शब्दों से किसकी कब तृप्ति हुई! तुम भूखे हो और कोई भोजन की बातें करे, कैसे तृप्ति होगी? विवेकानंद भूखे थे। उनकी उत्सुकता विद्यार्थी की उत्सुकता नहीं थी, साधक की उत्सुकता थी। लौट आये जगह-जगह से। उसी तरह गये थे रामकृष्ण के पास भी। और मन में यह धारणा थी कि बेपढ़ा-लिखा गंवार आदमी है; जब बड़े-बड़े पढ़े-लिखों के पास कुछ नहीं मिला... ।
महर्षि देवेंद्रनाथ के पास गये थे। वे रवींद्रनाथ के दादा थे। उनकी बड़ी ख्याति थी, महर्षि की तरह ख्याति थी। वे नदी में एक बजरे पर रहते थे। विवेकानंद आधी रात में कूद कर बजरे पर चढ़ गये, नदी तैर कर; बीच में बजरा ठहरा था। अंधेरी रात, अमावस की रात! सारा बजरा कंप गया... । देवेंद्रनाथ ध्यान करते थे रात्रि के एकांत में। आंख खुल गयी, यह युवक खड़ा है सामने भीगा-भागा! छोटा-सा टिमटिमाता दीया है बजरे पर। पूछा, क्या चाहते हो? विवकानंद ने कहा, ईश्वर है? देवेंद्रनाथ भी चौंके, यह भी कोई वक्त है पूछने का, यह कोई जिज्ञासा करने का समय है! आधी रात किसी के बजरे पर चढ़ आना भीगे-भागे, अंधेरे में खड़े हो जाना... पूछना ईश्वर है! एक क्षण झिझके, युवक पागल मालूम होता है। उनकी झिझक देखी कि विवेकानंद वापिस कूद गये नदी में। पूछा देवेंद्रनाथ ने कि युवक, वापिस लौट चले, क्यों? विवेकानंद ने कहाः आपकी झिझक ने सब कह दिया कि अभी आपको भी पता नहीं। झिझके क्यों आप? जिसे पता है उसे पता है। उससे आधी रात पूछ लो, सोते में से जगाकर, तो भी उसे पता है। जिसे पता है उसे पता है। आपकी झिझक ने सब कह दिया। मुझे कुछ पूछना नहीं है।
तो स्वभावतः जब महर्षि देवेंद्रनाथ जैसे ज्ञानी, पंडित, जगत-विख्यात
भी उत्तर न दे पाये हों तो यह गांव का गंवार रामकृष्ण, यह क्या उत्तर दे पायेगा! इस भाव से भरे गये थे। लेकिन बात उलटी हो गयी। गये थे रामकृष्ण को चौंकाने, खुद चौंक गये। क्योंकि रामकृष्ण ने कहाः जानना है तुझे और अभी जानना है? अभी बता दूं, इसी वक्त? इतना सोचकर नहीं गये थे कि अभी जानना है। इतनी तैयारी करके भी न गये थे। यह तो कभी सोचा ही न था कि कोई इस तरह पूछेगा। और इसके पहले कि विवेकानंद कुछ कहें, रामकृष्ण उछले और अपने पैर को विवेकानंद की छाती से लगा दिया। ये कोई ज्ञानियों के ढंग नहीं हैं, ये मस्तों के ढंग हैं। मगर मस्तों को ही पता है। पता है, इसीलिए तो मस्ती है। विवेकानंद बेहोश होकर गिर गये। जब तीन घंटे बाद होश में आये, रामकृष्ण ने कहाः बोल, कुछ और प्रश्न बाकी बचे? जैसे किसी और लोक से लौटे हों! एक स्वाद लग गया। फिर दीवाने हो गये इस बे-पढ़े-लिखे पुरोहित के। फिर इसी के पीछे चक्कर काटने लगे। नहीं था इसके पास शास्त्र, नहीं था ज्ञान, नहीं थे सिद्धांत, नहीं थीं बड़ी उपाधियां, नहीं था इसका नाम कोई विश्वविख्यात। अट्ठारह रुपये महीने की छोटी-सी नौकरी थी दक्षिणेश्वर के मंदिर में पूजा-पाठ कर देने की। गरीब आदमी था। गांव का बे-पढ़ा-लिखा था, दूसरी कक्षा तक पढ़ा था। संस्कृत नहीं आती थी। मगर विवेकानंद को कोई मोहित न कर सका, रामकृष्ण मोहित कर लिए।
जहां अनुभव है परमात्मा का, वहां एक जीवित जादू है।

मैं तुम्हें परमात्मा की व्याख्या नहीं दे सकता; किसी ने कभी नहीं दी है। लेकिन तैयारी हो तो अनुभव दे सकता हूं। अनुभव सुगम है, शास्त्र बड़े दुर्गम हैं। अनुभव इसलिए सुगम है कि तुम भूल गये हो भला, लेकिन हो तो तुम परमात्मा में ही। जैसे मछली को पता नहीं है कि सागर में है। सागर में पैदा हुई है, सागर में ही रही है; पता भी कैसे चले कि सागर में है? ऐसे ही तुम परमात्मा में जी रहे हो, उसी में श्वास ले रहे हो, उसी में चलते हो, उसी में बैठते हो। मगर सदा से यह हो रहा है, इसलिए तुम्हें याद ही नहीं पड़ रही है कि परमात्मा कहां है?
तुम पूछते हो परमात्मा कहां है? परमात्मा ही है! उसी ने तुम्हें घेरा है। उसी के जीवन-सागर में तुम भी जीवित हो।
इसलिए कठिन नहीं है बात। जरा-सा होश, बस जरा सा होश... । जरा सी टिमटिमाती होश की ज्योति तुम में जग जाये कि तुम जानोगे परमात्मा ही है, और कुछ भी नहीं है। व्याख्याओं में पड़ना ही मत। जब अनुभव मिल सकता हो तो कोई पागल होगा जो व्याख्याओं की चिंता करेगा।
परमात्मा अनिर्वचनीय है, पर अनुभवगम्य है।

दूसरा प्रश्नः मैं विचारों से अत्यधिक पीड़ित था, तो एक साधु महाराज
से ध्यान की विधि पूछ बैठा। उन्होंने राम-राम मंत्र को सतत स्मरण करने को कहा। उससे विचार तो चले गये हैं, पर अब राम-राम की रटंत बनी रहती है। अब मैं उठते-बैठते राम-राम रटता रहता हूं। और इसे रोकना भी चाहूं तो नहीं रोक सकता हूं। इसकी सतत धारा भीतर चलती रहती है। इससे एक विक्षिप्त-सी दशा हो गयी है। आप कुछ मार्गदर्शन दें, मैं इस मंत्र से छूटना चाहता हूं।

ऐसा अक्सर हो जाता है। बीमारी से आदमी छूट जाता है तो औषधि से बंध जाता है। इसी को एडिक्शन कहते हैं। इसलिए चिकित्सक बहुत चिंता रखता है कि जैसे ही बीमारी जाये, जल्दी से औषधि भी बंद करनी चाहिए, नहीं तो फिर औषधि की गुलामी शुरू हो जाती है।
मंत्र सतत रटने की बात नहीं है। घड़ी-दो-घड़ी उसका उपयोग करते तो हानि न होती। मात्रा में औषधि लेनी चाहिए। जिसने तुम्हें दे दिया होगा मंत्र, उसे मंत्र-शास्त्र का कुछ पता नहीं होगा। मगर यह तुम्हारे साथ ही घटा है, ऐसा नहीं है; यहां बहुत लोग ऐसे आते हैं।
एक सरदार जी को मेरे पास लाया गया था। सेना में हैं; अच्छे ओहदे पर हैं। और हालतें खराब हो गयी हैं उनकी, क्योंकि किसी ने बता दिया है बस जपते ही रहो, जपते ही रहो। तो जपुजी दोहराते रहते हैं भीतर। धीरे-धीरे लोगों को भी शक होने लगा कि बात क्या है, क्योंकि वे उखड़े-उख.ड़े मालूम होने लगे। जब तुम भीतर कोई चीज रटते रहोगे तो बाहर से उखड़ जाओगे। रास्ते पर चलते हैं अब, कोई कार का हार्न बजा रहा है कि रास्ते से हटो, सरदार जी को पता ही नहीं चलता, क्योंकि वे तो अपना जप में लगे हुए हैं, उनका ध्यान वहां है। पत्नी कुछ कहती है, सुन ही नहीं पाते। पत्नी कुछ कहती है, बाजार से कुछ और खरीद लाते हैं। फिर तो दफ्तर में भी, सेना में भी भूल-चूकें होने लगीं। क्योंकि जब तुम्हारा भीतर चित्त पूरी तरह उलझ जायेगा तो बाहर से तुम मूर्च्छित होने लगोगे। तुम्हारा जीवन अस्तव्यस्त हो जायेगा।
मंत्र तो ऐसा है जैसे स्नान। अब कोई दिन-भर थोड़े ही स्नान करते रहना है। मंत्र भी स्नान है। घड़ी-भर कर लिया, ताजे हो गये, फिर ताजगी बहती रहेगी। फिर ताजगी का भी ज्यादा लोभ नहीं करना चाहिए कि और कर लूं, और कर लूं। मन बड़ा लोभी है। मन कहता है कि अभी इतना मजा आ रहा है, और एक बार कर लूं, और एक बार कर लूं। और ऐसा कुछ मंत्र के साथ ही होता है, ऐसा नहीं; किसी भी चीज के साथ हो सकता है।
अब एक मित्र आये। सारा शरीर दुखता है, कहते हैंः सिर में दर्द है, कमर में दर्द है। और कहने लगे, यह सब आपके ध्यान से ही हुआ है। मैंने कहा, मामला क्या है? उन्होंने कहा, पांच दफे ध्यान करता हूं दिन में। अब पांच बार सक्रिय ध्यान करोगे तो, मैंने कहा, तुम बच गये जिंदा, यह भी चमत्कार है! तुमसे कहा किसने पांच बार सक्रिय ध्यान करने को?

और कहा कि सब काम-धाम भी बरबाद हो गया है। पांच बार सक्रिय ध्यान करोगे तो दुकान कौन करेगा? तो बच्चों को कौन पालेगा, तो घर की देख-भाल कौन करेगा?
नहीं; उन्होंने कहा कि बहुत आनंद आता था एक बार करता था, तो फिर मैंने सोचा दो बार। दो बार किया तो और आनंद आया। तो सोचा तीन बार। फिर तो अब धुन लगी रहती है कि खूब मजा आ रहा है।
मजा तो आ रहा है, लेकिन यह शरीर की हालत खराब हुई जा रही है।
यह शरीर मंदिर है। इसका सम्मान सीखो। यह परमात्मा की देन है। इसे ऐसा बरबाद मत करो। यह परमात्मा का अपमान है। और लोभ मन की बीमारी है। और लोभ कहीं भी पकड़ सकता है। दस हजार हैं तो दस लाख हो जायें, यह भी लोभ है; और एक बार ध्यान किया, खूब आनंद आया, तो दस बार ध्यान करें, यह भी लोभ है। कुछ भेद नहीं है, वही लोभी चित्त... । लोभ से सावधान रहना!
और अक्सर ऐसा हो जाता है। एक आदमी को मेरे पास लाया गया। वह जहां रहता
है वहां जाने के लिए बीच में से एक मरघट पार करना पड़ता है। भूत-प्रेतों का डर... उसको बड़ी अड़चन होती है। और रोज वहां से जाना ही है, घर ही उसका मरघट के उस पार है। किसी ने उसको ताबीज दे दिया कि तू यह ताबीज बांध ले, फिक्र छोड़। इस ताबीज के रहते कोई भूत-प्रेत असर नहीं कर सकता। और इसका काम भी हो गया, ताबीज बांधकर अब वह अकड़ से मरघट से गुजर जाता, आधी रात में भी। मगर ताबीज न खो जाये, इसका डर लगा रहता है। रात भी ताबीज हाथ में रखकर सोता है, कि कहीं रात ताबीज छोड़ा और वे लोग नाराज तो होंगे ही, जिनको मरघट में ताबीज की वजह से डरवा कर चले आये हो वे नाराज तो होंगे ही। कहीं आकर छाती पर न चढ़ बैठें! अब यह इतना घबड़ा गया है कि कहीं ताबीज चोरी न चली जाये, कहीं भूल न जाऊं, कहीं खो न जाये, कोई उठा न ले! इतना घबड़ा गया है कि भूत-प्रेत दूर, जितना भूत-प्रेत से भय था, उतना ही भय ताबीज से हो गया।
मैंने कल एक कहानी पढ़ी। चंदूलाल के परिवार में एक विकट समस्या खड़ी हो गयी है। उनका तीन वर्षीय पोता मुन्ना राम-राम को लाम-लाम बोलता था। चंदूलाल के पड़ोसी और मित्र ढब्बूजी ने इस भाषा-मनोविज्ञान की चुनौती को स्वीकार किया। उसने मुन्ना को "र" प्रशिक्षण देने के लिए भाषा-शास्त्रीय तरीका निकाला। मुन्ना को पहले ढिर्र बोलना सिखाया, ताकि र का उच्चारण हो सके। अब राम को तो लाम कर सकते हो, ढिर्र को थोड़ी ढिम्म कर दोगे। र का अभ्यास करवाया--ढिर्रऽ... ढिर्रऽ। मुन्ना ढिर्र... ढिर्र सीख गया। और एक दिन अचानक ढिर्र, ढिर्र बोलते-बोलते मुन्ना एक साथ बोलने लगा ढिर्र... राम-राम। तो र बोलना आ गया तो वह भी चिंतित तो था ही कि ल बोलता हूं, र नहीं बोल पाता हूं। जब ढिर्र बोलने लगा तो एक दिन अचानक बोला आनंद से भर कर, ढिर्र राम-राम। डब्बू जी भी बहुत प्रसन्न हो गये सफलता पर। लेकिन अब समस्या यह है कि मुन्ना से तुम कहो राम-राम, वह कहता है ढिर्र राम-राम। अब सवाल यह है कि ढिर्र से कैसे छुड़ाया जाये? सिखा तो बैठे... । अब उससे कितना ही कहो, वह जब भी कहेगा राम-राम, तो पहले--ढिर्र।
तुमने मंत्र जो सीख लिया है वह ऐसे ही हो गया है--ढिर्र राम-राम। अब तुम ढिर्र में फंस गये!
असल में विचारों को जबर्दस्ती हटाने की कोई भी चेष्टा कभी सफल नहीं
हो सकती है। तुम्हारे भीतर विचार चलते हैं ऊलजलूल, तुमने उन सब विचारों की शक्ति को राम-राम, राम-राम, राम-राम में लगा दिया है। यह कुछ क्रांति नहीं है, यह केवल रूपांतरण है। वही चीज चल रही है अभी, पहले कुछ और सोचते थे कि लाटरी कैसे मिल जाये, कि राष्ट्रपति कैसे हो जाऊं। और दूसरे विचार चलते थे, वे भी शब्द हैं, राम भी शब्द है। उन सारे शब्दों में जो तुम्हारी शक्ति नियोजित होती थी उसको तुमने राम-राम में नियोजित कर दिया; यही तो तुम्हारा तथाकथित मंत्र का विज्ञान है। जब तुम राम-राम, राम-राम दोहराने लगे त्वरा से, तीव्रता से, तो न समय बचा, न शक्ति बची, न मन में जगह बची। राम-राम, राम-राम की शृंखला भर गयी, तब इसमें लाटरी कैसे जीतूं यह बीच में आ नहीं सकता। अगर यह बीच में आयेगा तो राम-राम टूटेगा। यह तुमने परिपूरक खोज लिया। यह क्रांति नहीं है।
और इसीलिए तुम फिर चौबीस घंटे राम-राम जपने लगे। क्योंकि जब भी राम-राम छूटेगा वह लाटरी रास्ता देख रही। वह क्यू में पीछे खड़ी है। वह कह रही

है, कभी तो राम-राम बंद करोगे तब देख लेंगे। वे भूत बैठे हैं मरघट में, कि कभी ताबीज छूटा तब तुम्हें मजा चखा देंगे। इसीलिए तुम धीरे-धीरे चौबीस घंटे रटने लगे, क्योंकि तुम्हें डर लगा कि वे बातें जो किसी तरह राम-राम के जपने से दूर हो गयी हैं, कहीं फिर न प्रवेश कर जायें! मगर यह राम-राम खुद ही बीमारी हो गयी। बीमारियां इतनी आसानी से हल नहीं होतीं, थोड़ी ज्यादा बुद्धिमत्ता की जरूरत है।
विचार को जबर्दस्ती धक्का देकर कुछ हल नहीं होगा। राम-राम भी विचार है; यह कोई निर्विचार थोड़ी ही है। इसमें कुछ भेद थोड़ी ही है। वही का वही है। इससे तुम कुछ समाधि को थोड़े ही उपलब्ध हो जाओगे। तुमने एक चीज की जगह दूसरी चीज रख ली, एक उलझन की जगह दूसरी उलझन रख ली। मगर इससे तुम उलझन से मुक्त नहीं हो गये। विचार को जबर्दस्ती धक्के देने की आवश्यकता नहीं है, विचार के साक्षी बनो।
तो मैं तुमसे यह कहना चाहूंगाः अब तुम राम-राम के साक्षी बनो। इसको सहयोग देना बंद कर दो, अन्यथा तुम विक्षिप्त हो जाओगे। और बहुत-से लोग धर्म के कारण विक्षिप्त होते हैं। क्योंकि धर्म को कोई भी देता रहता है, कोई भी सुझाव देता रहता है, कोई भी सलाह देता रहता है। सलाह देनेवाले बिना ढूंढे मिल जाते हैं, एक ढूंढो हजार मिल जाते हैं। तुम न भी ढूंढो तो वे तुम्हें ढूंढते चले आते हैं, क्योंकि उनको सलाह देने का रस है। सलाह देने का मजा भी बहुत होता है। अहंकार को बड़ी तृप्ति मिलती है कि मैं सलाह देनेवाला, तुम सलाह लेनेवाले; मैं ज्ञानी, तुम अज्ञानी। इसमें बड़ा रस आ जाता है। इसलिए जो बात तुम्हें पता भी नहीं होतीं, उस संबंध में भी तुम सलाह दे देते हो। तुम खुद भी दे देते हो। ख्याल रखना, जो तुम्हारी हालत है वही दूसरों की हालत है। अब जिस साधु महाराज ने तुम्हें यह समझा दिया है, उन्हें कुछ पता नहीं है।
विचार के साक्षी बनो, अगर विचार से मुक्त होना है। नहीं तो तुम एक विचार की जगह दूसरा रख लोगे, दूसरे की जगह तीसरा रख लोगे, तीसरे की जगह चौथा रख लोगे; इससे भेद नहीं पड़ेगा। पैर में कांटा लगा। एक दूसरे कांटे से इस कांटे को निकाल लिया, लेकिन दूसरा कांटा रख लिया। क्या फर्क पड़ने वाला है? कांटे बदलते रहोगे।
यही लोग करते हैं। किसी को पान खाने की आदत है। उसको पान छुड़वा दो, वह सिगरेट पीने लगता है। सिगरेट छुड़वा दो, च्युइंगम, उसमें लग गया। उसे कुछ न कुछ चाहिए, मुंह चलता रहना चाहिए। अगर सभी छुड़ा दो तो वह राम-राम, राम-राम, राम-राम... वह भी च्युइंगम है, और कुछ भी नहीं है। मुंह शांत नहीं रह सकता। विचार को समझो। विचार के प्रति जागो। साक्षी बनो। विचार की धारा चित्त में चलती है, उसे देखो। निर्णय मत लो अच्छा क्या, बुरा क्या; चलने दो, जैसे रास्ता चलता है। रास्ते के किनारे खड़े तुम देख रहे हो। अच्छे लोग भी निकलते हैं, बुरे लोग भी निकलते हैं, बेईमान भी निकलेंगे, ईमानदार भी निकलेंगे, साधु, असाधु; तुम्हें क्या लेना है? तुम रास्ते के किनारे खड़े सिर्फ देख रहे हो। तुम सिर्फ द्रष्टा हो। साक्षी-मात्र। और तुम चकित हो जाओगे, अगर तुम विचार की राह के किनारे खड़े हो जाओ... ।
और विचार सिर्फ एक राह है। तुम उससे भिन्न हो। तुम विचार नहीं हो, तुम विचार के देखनेवाले हो। बस इतनी तुम्हें स्मृति जगानी है कि मैं द्रष्टा हूं। चलने दो विचार को। अब राम-राम निकले कि कोकाकोला निकले, कुछ भी निकले, चलने दो विचार। तुम दूर खड़े देखते रहो--शांत; न तो पक्ष, न विपक्ष। न तो कहनाः अहा, कितना अच्छा विचार आया! ऐसा कहा कि फंसे। क्योंकि उस विचार को तुम पकड़ लोगे जो अच्छा लगा। उससे तुम्हारा मोह बन जायेगा। तुम चाहोगे बार-बार आना। मित्रता बना लोगे। भांवर पाड़ लोगे। या कोई विचार आया और कहा कि बहुत बुरा विचार है, मैं देखना भी नहीं चाहता और आंख फेर ली। यह भी तुम्हारा पीछा करेगा, क्योंकि यह नाराज हो जायेगा। तुमने इसका अपमान कर दिया। तुमने इसका निषेध किया, नकार किया; यह बार-बार दरवाजे पर दस्तक देगा। यह कहेगा कि मेरी तरफ देखो।
तुम जिस चीज को निषेध करोगे, वह बार-बार लौट कर आयेगी। तुम कोशिश करके देख लो, कोई भी विचार को निषेध करके देखो, वह बार-बार आयेगा। चौबीस घंटे सतायेगा। और अगर तुम किसी चीज को पकड़ो तो भी फंसे, त्यागो तो भी फंसे। भोग

भी पकड़ लेता है, त्याग भी पकड़ लेता है। सिर्फ साक्षी-भाव में मुक्ति है; न भोग, न त्याग। न कहना बहुत सुंदर, न कहना बहुत बुरा। कुछ कहना ही मत, कहने की जरूरत ही नहीं है। सिर्फ देखना। क्या मात्र देख नहीं सकते, जैसा दर्पण देखता है? सुंदर स्त्री निकली दर्पण के सामने से तो भी वह कहता नहीं कि जरा रुक जा, थोड़ी देर और... कि दो बात तो कर लें। कुरूप स्त्री निकली तो वह यह नहीं कहता कि जल्दी हटो, कि माई जाओ, कि आगे बढ़ो, कि किसी और दर्पण को सताओ। दर्पण देखता है। ऐसे ही दर्पण की भांति जब तुम साक्षी बन जाओगे, सारे विचार अपने-आप शांत होने लगेंगे। एक ऐसी घड़ी आती है कि विचार का रास्ता निर्जन हो जाता है, कोई नहीं आता। उस सन्नाटे में पहली दफे परमात्मा की भनक सुनाई पड़ती है, उसकी टेर सुनाई पड़ती है। उसी शून्य में पहली दफे समाधि का स्वर उतरता है। उसी शून्य में पहली दफे पूर्ण की किरण आती है।
तुम कुछ यह मत सोचो कि तुम कुछ धार्मिक हो गये राम-राम जपने से। तुम यह
मत सोचो कि तुमने कोई बहुत बड़ी उपलब्धि कर ली। अगर तुमने उपलब्धि कर ली, ऐसा सोचा तो तुम्हारा छुटकारा न हो सकेगा। उपलब्धियों से कोई छूटना क्यों चाहेगा? यह मत समझो कि तुम्हारे भीतर कोई क्रांति हो गयी। कुछ भी नहीं हुआ; तुमने एक बीमारी की जगह दूसरी बीमारी उधार ले ली। वह उतनी ही बीमारी है जितनी पहली थी, कुछ फर्क नहीं है। अब तुम इसको सहयोग देना बंद कर दो। हालांकि कुछ दिन अड़चन आयेगी, क्योंकि तुमने अगर बहुत दिन अभ्यास कर लिया है और अब यह धारा अपने-आप चलने लगी है, तो तुम सहयोग न दोगे तो भी कुछ दिन चलेगी। जैसे कोई साइकिल चलाये, फिर थोड़ी देर पैडल मारना बंद भी कर दे तो पुराना पैडल का जो मोमैंटम है, थोड़ी दूर तक साइकिल चली जायेगी बिना चलाये भी। ऐसे ही कुछ दिन तक तो यह राम-राम चलेगा। मगर अब तुम सहयोग बंद कर लो। जितना तुमने किया सहयोग उतना ही काफी है। अब सहयोग मत दो। अब अपनी तरफ से साथ मत दो। अपनी ऊर्जा वापिस ले लो। अब तुम साक्षी हो जाओ।
ज्यादा से ज्यादा तीन महीने यह धारा चल सकती है थोड़े-बहुत रूप में, मगर रोज क्षीण होती जायेगी। अभी बाढ़ की तरह है--वर्षा की बाढ़ की तरह; जल्दी ही ग्रीष्म-काल की सूखी-साखी नदी रह जायेगी। थोड़ी-बहुत धार, कहीं-कहीं डबरों में जल है। तीन महीने तक धीरे-धीरे-धीरे कम होते-होते-होते विलीन हो जायेगी। और फिर तुम यह ख्याल रखना कि जो कुछ भी इसके बाद चले, विचार जो पड़े रह गये हैं, दबे रह गये हैं, जिनको तुमने हटा दिया है, राम-राम करके दबा दिया है, वे सब उठेंगे। उनको भी उठने देना। भय मत करना। साधक को निर्भय होना चाहिए।
और विचार का भी क्या भय है? विचार में रखा क्या है? हवा में बनी तरंग है। पानी का बबूला भी नहीं, हवा का बबूला है! कुछ तत्व थोड़े ही है विचार में। आकाश का फूल है; न जड़ है, न कोई रूप है, न कोई रंग है। विचार तो केवल एक विकार है। तुम चुपचाप देखते रहो, जल्दी ही देखते-देखते तुम पार हो जाओगे। साक्षी अतिक्रमण की प्रक्रिया है। और जो अतिक्रमण कर जाता है विचार का--बिना दबाये, बिना लड़े-झगड़े, सहजता से, सुगमता से--वही पहुंच पाता है। याद करो गोरख का वचनः हंसिबा खेलिबा करिबा ध्यानं... । यह कोई गंभीरता
की बात नहीं है, हंसते-खेलते हो जाती है बात। हंसते-खेलते ही होनी चाहिए। अगर तुम्हारा धर्म तुम्हें गंभीर कर दे तो समझना कि कहीं न कहीं गलती हो गयी। अगर तुम्हारा धर्म तुमसे तुम्हारी हंसी छीन ले तो समझना कहीं भूल हो गयी। तुम्हारा धर्म अगर तुम्हारा जीवन उदास कर दे, भारी कर दे, वजनदार कर दे, अकड़ पैदा कर दे, तो समझना कि चूक हो गयी।
हंसिबा खेलिबा धरिबा ध्यानं। हंसते-खेलते ध्यान होना चाहिए। और ध्यान का अर्थ है साक्षी।... तो जरूर जीवन में महोत्सव आता है।

तीसरा प्रश्नः
मारो हे प्रभु मारो, मारो मरण की है उत्कंठा।
तिस मरणी मारो, जिस मरणी रजनीश मरि दीठा।।
इतना पत्थर हूं कि पूरा पिघल भी नहीं पाता। व्याकुल हूं। क्या करूं?

सुधीर भारती! बात तो तुमने प्यारी लिखी, मगर बड़ी चूक-भरी। तुमने गोरख
के वचन को नया रूप दे दिया, मगर गोरख के वचन को नया रूप दिया नहीं जा सकता।
वह जैसा है वैसा ही पूर्ण है, उसमें परिवर्तन नहीं हो सकता।
गोरख का वचन फिर से समझो।
मरौ हे जोगी मरौ, मरौ मरण है मीठा।
तिस मरणी मरौ, जिस मरणी मरि गोरष दीठा।।
तुमने फर्क बहुत बड़ा कर लिया है। तुम कहते होः मारो हे प्रभु मारो!
कोई दूसरा तुम्हें मार नहीं सकता, असंभव है। तुम्हारे शरीर को तो कोई मार सकता है, लेकिन तुम्हारे अहंकार को कोई नहीं मार सकता। उस संबंध में केवल तुम्हीं समर्थ हो। परमात्मा भी तुम्हारे अहंकार को नहीं मार सकता, नहीं तो मार ही दिया होता उसने। तुम कहते हो परमात्मा सर्वशक्तिमान है। उसकी भी कुछ सीमा है शक्ति की, जैसे तुम्हारे अहंकार को नहीं मार सकता। अहंकार अगर होता तो परमात्मा मार भी सकता था। अहंकार है नहीं, सिर्फ भ्रांति है। भ्रांति तुम्हारी है। तुम्हारी भ्रांति तुम्हीं को छोड़नी पड़ेगी, तुम्हारी भ्रांति मैं कैसे छोडूं? तुम मानते हो कि दो और दो पांच होते हैं; मैं लाख मानता रहूं कि दो और दो चार होते हैं, इससे क्या होगा--जब तक तुम न मानोगे दो और दो चार होते हैं? तुमने अगर जिद ही कर रखी है दो और दो को पांच करने की, तो तुम दो और दो को पांच ही करते रहोगे।
मैंने सुना है, एक आदमी को यह विक्षिप्तता पैदा हो गयी कि वह मर गया है। जिंदा था भलीभांति, मगर यह पागलपन हो गया पैदा कि मैं मर गया हूं। वह लोगों को कहता फिरता कि मैं मर गया हूं भाई, तुम्हें पता चला कि नहीं? लोग कहते कि भाई, यह भी हद हो गयी! अब तक किसी मुर्दे ने इस तरह खबर नहीं दी, तुम भी गजब कर रहे हो! तुम भले-चंगे हो, सब ठीक-ठाक है।
पहले तो लोग मजाक समझे, लेकिन धीरे-धीरे बात गंभीर होने लगी। ग्राहक उसकी दुकान पर आएं, उससे पूछें; वह कहे कि भाई, मैं तो मर ही गया। कैसी दुकान, कैसा क्या? उसकी पत्नी पूछे कि सब्जी ले आये? वह कहे कि मरे हुए आदमी कहीं सब्जी लाते हैं? मैं तो मर चुका! तुम्हें खबर नहीं मिली?
फिर चिंता बढ़ने लगीः यह मजाक मजाक नहीं मालूम होता, यह तो मामला गंभीर है। दो-चार दिन तो लोगों ने सहा, फिर उस मुर्दे को लेकर मनोवैज्ञानिक के पास गये कि अब उसकी कुछ चिकित्सा करवानी पड़ेगी। मनोवैज्ञानिक ने भी देखा, मनोवैज्ञानिक भी हैरान हुआ। बहुत तरह के मरीज उसने देखे थे; यह पहला ही मरीज था जो कहता है मैं मर चुका हूं। सोचा मनोवैज्ञानिक ने, उसने एक तरकीब निकाली। उसने कहाः तुम एक बात बताओ, अगर मुर्दा आदमी को हम चीरा लगायें तो उसमें से खून निकलेगा कि नहीं? उस पागल ने कहा कि मुर्दा आदमी से कहीं खून निकला है? जो मर ही गया, उसका तो खून पानी हो जाता है। खून नहीं निकलेगा, खून जिंदा आदमी से निकलता है।
मनोवैज्ञानिक खुश हुआ, उसने कहाः अब ठहरो, चलो मेरे साथ, दर्पण के सामने खड़े हो जाओ। चाकू उठाकर उसने उस आदमी के हाथ में थोड़ा-सा घाव किया। खून का फव्वारा निकल पड़ा; जिंदा तो था ही वह। मनोवैज्ञानिक बोला, अब बोलो।
वह आदमी बोला कि मेरी पहली बात गलत थी। तो इससे सिद्ध होता है कि मुर्दा आदमी को काटने से भी खून निकलता है।
अब क्या करोगे? जिसने तय ही कर लिया है कि दो और दो पांच, कोई उपाय नहीं है। वह बोलता है कि पहली बात गलत थी, क्षमा करो, मेरी भूल हो गयी।
मनोवैज्ञानिक सोच रहा था कि अब इसको भरोसा आ जायेगा कि मैं जिंदा हूं, मगर भरोसा यह आया कि मुर्दा आदमी को काटने से भी खून निकलता है।
नहीं, तुम्हारे अहंकार को मैं न तोड़ सकूंगा सुधीर। कोई नहीं तोड़ सकता। तुम्हारा अहंकार तुम्हारी भ्रांति है। तुम्हीं जागोगे तो टूटेगा। बाहर से नहीं तोड़ा जा सकता। बाहर की कोई रोशनी तुम्हारी भीतर रोशनी नहीं कर सकती। हां, मैं तुम्हें प्रक्रिया बता सकता हूं कि कैसे तुम भीतर का दीया जलाओ। मगर मैं तुम्हारा दीया जला नहीं सकता, जलाना तो तुम्हें ही होगा।
इसलिए बुद्ध ने कहा हैः बुद्ध मार्ग दिखाते हैं, चलना तो तुम्हीं को होता है। कोई बुद्ध तुम्हारे लिए चलकर मंजिल पर नहीं पहुंच सकता, और पहुंच

भी जाए तो वह पहुंचेगा मंजिल पर, तुम तो जहां के तहां रह जाओगे। सत्य उधार नहीं हो सकता।
इसलिए गोरख के वचन को बदलो मत। तुमने बात ठीक कही किः मारो हे प्रभु मारो, मारो मरण की है उत्कंठा।
लेकिन नहीं, गोरख ही ठीक कह रहे हैंः
मरौ हे जोगी मरौ, मरौ मरण है मीठा।
वे कह रहे हैं, तुम्हें मरना होगा। अगर यह मेरे हाथ में हो कि तुम्हारे अहंकार को मिटा दूं, तब तो बात कितनी आसान हो जाये। तब तो तुम मेरे पास आओ, मैं एक जादू की डंडी फेरूं, तुम्हारा अहंकार मिट जाये, तुम परमात्मा को उपलब्ध होकर अपने घर चले जाओ। मगर अगर उतने सस्ते से मिट जाता हो तो खतरा है। रास्ते में कोई दूसरा मिल जाये और वह एक डंडी फेर दे उलटी, वापिस जहां के तहां!
एक आदमी रामकृष्ण के पास आया, उसने कहा कि मैं जा रहा हूं, गंगा-स्नान
को जा रहा हूं, तीर्थयात्रा पर जा रहा हूं। आप क्या कहते हैं?
रामकृष्ण ने कहाः जाते हो भाई ठीक; मगर एक ख्याल रखना। तुमने देखा, गंगा के किनारे बड़े-बड़े वृक्ष खड़े हैं।
उसने कहाः हां, खड़े हैं।
"किसलिए खड़े हैं?"
"यह मुझे पता नहीं है, यह भी आप खूब सवाल पूछते हैं! वृक्ष हैं, खड़े हैं, अब किसलिए खड़े हैं, यह मैं क्या कहूं?"
तो मैं तुझे राज बता देता हूं, रामकृष्ण ने कहा। राज यह है कि तुम गये पाप की गठरी लिए अपने शरीर पर, गंगा में डुबकी लगायी। जब तुम डुबकी लगाते हो, गंगा मइया का प्रताप, पाप अलग हो जाते हैं। मगर पाप कोई इतनी आसानी से तुम्हें छोड़ थोड़े ही देंगे, वे वृक्षों पर बैठ जाते हैं। वे कहते हैंः अब बेटा निकलोगे तो, कब तक डूबे रहोगे? निकले गंगा से, वे उचक कर फिर सवार हो गये। सो किया न किया सब बराबर हो गया। तुम जरा झाड़ों का ख्याल रखना, डुबकी मारो तो निकलना मत फिर।
उसने कहाः यह भी आप क्या कह रहे हैं, क्या जान लेंगे मेरी? अगर डुबकी मारूंगा और निकलूंगा नहीं, तो गये काम से! फिर बेकार है जाना।
रामकृष्ण ने कहाः फिर तुम्हारी मर्जी। फिर वे झाड़ इसीलिए खड़े हैं। पाप तुम करोगे, और गंगा तुम्हारे पापों को पवित्र कर देगी! अगर इतना सस्ता होता तो जिंदगी कितनी आसान होती, लेकिन दो कौड़ी की हो गयी होती।
रामकृष्ण ठीक कहते हैं कि गंगा में नहाने से कहीं पाप धुल सकते हैं? हां, शरीर का कूड़ा-करकट धुल जायेगा। वह भी बाहर आते ही से फिर धूल उड़ेगी, फिर जम जायेगी। लेकिन भीतर को गंगा कैसे धोयेगी? बाहर की गंगा बाहर की धूल को धो सकती है। और भीतर की गंगा तो तुम्हें अपनी भीतर की ही चेतना से जगानी होगी। वह जल तो तुम्हें अपने ही स्रोतों से खोजना होगा।
तुम्हें मरना होगा, मैं तुम्हें नहीं मार सकता। मैं मार भी दूंगा, कोई
भी तुम्हें जगा देगा। तुम ही मरोगे, फिर तुम्हें कोई जिंदा न कर सकेगा। जिसने होशपूर्वक अपने भीतर जागकर अहंकार को विसर्जित कर दिया, फिर इस दुनिया की कोई शक्ति उसे वापिस अहंकार के जाल में नहीं गिरा सकती।
इसलिए ऐसा मत कहो कि--मारो हे प्रभु मारो, मारो मरण की है उत्कंठा! उत्कंठा से कोई नहीं मरता है। जिसको उत्कंठा है मरने की, उसी को तो मरना है। उत्कंठा किसको है?
मेरी बातें तुम सुनते हो, तुम्हारे अहंकार को लगता है कि काश, हम भी महायोगी हो जायें गोरख जैसे! मगर ये गोरख उपद्रव की बात कहते हैं, ये कहते हैंः मरो, फिर हो सकोगे। चलो ठीक है मरेंगे, मगर होकर रहेंगे। हमें भी सिद्ध होना है।
तुम्हारा अहंकार ही सिद्ध होना चाह रहा है, और उसी को मरना है। इसलिए अहंकार कहता है कि ठीक है, चलो मर जायेंगे। अगर यही सिद्ध होने का उपाय है तो चलो, मरने को भी राजी हैं, मगर सिद्ध होकर रहेंगे! और वह सिद्ध होने की जो उत्कंठा है, वही तो बचा लेती है; वही तो श्वास है अहंकार की।
अहंकार की श्वास कहां से आती है? कुछ होने की आकांक्षा में से अहंकार
को श्वास मिलती है। गरीब हो, अमीर होना चाहते हो; अहंकार श्वास लेता

रहेगा। अज्ञानी हो, ज्ञानी होना चाहते हो; अहंकार श्वास लेता रहेगा। दीन-हीन हो, पद पर प्रतिष्ठित होना चाहते हो; अहंकार श्वास लेता रहेगा।
अहंकार की प्रक्रिया समझो, अहंकार जीता कैसे है? अहंकार जीता हैः तुम
जो हो और तुम जो होना चाहते हो, उसके तनाव में। अ, ब होना चाहता है, बस इसी तनाव में अहंकार निर्मित होता है।
अहंकार मरता कैसे है? तुम जो हो, उससे राजी हो गए कि अहंकार मर गया। तुमने कहाः मैं जैसा हूं, बस ठीक, जहां हूं ठीक। प्रभु जैसा रखे वैसा रहूंगा। जो उसकी मर्जी, वही मेरी मर्जी। तुमने तनाव छोड़ दिया भविष्य का-- कि यह होऊं, वह होऊं--अहंकार गया।
अहंकार जीता है अतीत के आधार पर और भविष्य के आधार पर। तुम जरा समझना
इस बात को। अहंकार के दावे होते हैं अतीत के कि मैंने ऐसा किया, मैंने वैसा किया; वह सब अतीत। और अहंकार कहता है मैं ऐसा करके रहूंगा और ऐसा करके दिखाऊंगा; वह सब भविष्य। वर्तमान में अहंकार होता ही नहीं। अगर तुम वर्तमान में आ जाओ अहंकार विदा हो गया। वही है मृत्यु अहंकार की। वर्तमान में आ जाना अहंकार की मृत्यु है।
जो गया, गया; अब उसको पकड़े मत रखो। अतीत को जाने दो। और जो नहीं हुआ है उसकी तुम आकांक्षा न करो, क्योंकि उसकी आकांक्षा में अहंकार बचता रहेगा। "जो है" उसमें परितुष्ट हो जाओ, तो इसी क्षण तुम पाओगे अहंकार नहीं है। जो है, जैसा है--वही ठीक है, परिपूर्ण रूप से ठीक है। इस कला का नाम ही संतोष है। और संतोष में अहंकार मर जाता है, असंतोष में अहंकार जीता है। इसलिए जितना असंतुष्ट आदमी होगा, उतना ही अहंकारी होगा। जितना अहंकारी होगा, उतना असंतुष्ट होगा ये एक-दूसरे के साथ-साथ चलते हैं।
अगर तुमने यह उत्कंठा बना ली सुधीर कि सिद्ध होना है, कि हमें भी उस जगह पहुंचना है, जहां हम कह सकें कि पा लिया परमात्मा, तो फिर अहंकार नहीं मरेगा। सब अभीप्साएं, सब आकांक्षाएं, सब वासनाएं, सब तृष्णाएं अहंकार की अग्नि में घी का काम करती हैं। परमात्मा को पाने की आकांक्षा भी अहंकार की अग्नि में घी का काम करती है।
इसलिए तुम्हारे संन्यासी जितने अहंकारी होते हैं, तुम्हारे साधारण लोग उतने अहंकारी नहीं होते। तुम्हारे महात्माओं में जैसा शुद्ध अहंकार मिलेगा, बिल्कुल शुद्ध जहर की तरह, खालिस, बिना मिलावट के--वैसा तुम्हें साधारण लोगों में नहीं मिलेगा। साधारण दुनिया में तो हर चीज मिलावट से भरी है।
मुल्ला नसरुद्दीन मरना चाहता था, तो जहर लाकर पीकर और सो रहा। दो-चार दफा रात में आंख खोलकर देखा, अभी तक मरा कि नहीं! टटोला, च्यूंटी लेकर देखा कि जिंदा हूं, अभी तक असर नहीं हुआ। करवटें बदलता रहा। सुबह हो गयी, आंख खोलकर देखी। पत्नी भी उठकर काम में लग गयी है, बच्चे स्कूल जाने की तैयारी कर रहे हैं--यह किस प्रकार की मौत है! दूधवाला आ गया, द्वार पर दस्तक दे रहा है। पड़ोसी की आवाज सुनाई पड़ रही है... यह किस तरह की मौत है! और जहर इतना पी गया है कि कहते हैं कि उससे अगर चौथाई भी पीया होता तो मर जाता, चार गुना पी गया! उठकर बैठ गया। दर्पण में जाकर देखा कि यह किस तरह की मौत है! और किसी को पता भी नहीं चल रहा है, कोई अर्थी भी नहीं सजायी जा रही और कोई मामला नहीं, पत्नी रो भी नहीं रही, बच्चे स्कूल जाने की तैयारी कर रहे हैं। तब उसे ख्याल आया कि यह तो मौत नहीं है। भागा, पहुंचा दुकादार के पास, जहां से जहर खरीदकर लाया था, कि यह क्या मामला है? दुकानदार ने कहा कि हम क्या करें? हर चीज में मिलावट है। कोई आजकल शुद्ध जहर मिल सकता है? वे जमाने गये, सतयुग की बातें कर रहे हो, शुद्ध जहर! कलियुग चल रहा है, अब कोई शुद्ध जहर वगैरह नहीं मिलता।
संसार में हर चीज में मिलावट है। साधारण आदमी है, उसमें हर चीज मिली- जुली है। जो परमात्मा को पाने चल पड़े हैं, इनका शुद्ध होने लगता है अहंकार। इनका जहर सतयुगी होने लगता है। इसलिए तुम तुम्हारे तथाकथित महात्माओं के भीतर जैसा दंभ और जैसी अस्मिता पाओगे, ऐसी तुम नहीं पाओगे कहीं भी।
इसीलिए तो तुम्हारे पंडित, पुजारी, महात्मा लड़वाते हैं, लड़ते हैं। तुम्हारे मंदिर, मस्जिद, गिरजे, गुरुद्वारे अहंकारों के अड्डे बन गये

हैं। उनसे प्रेम नहीं पैदा होता, उनसे घृणा पैदा होती है। उनसे जहर फैलता है दुनिया में, अमृत नहीं फैलता।
अगर मनुष्य-जाति सारे धर्मों से मुक्त हो जाये तो शायद शांति हो जाये। धर्म सभी कहते हैं शांति लाना चाहते हैं, लेकिन लाते अशांति हैं। मूल प्रक्रिया ख्याल में नहीं रह जाती। वासना मात्र आदमी को अहंकार देती है। और जितनी बड़ी वासना उतना बड़ा अहंकार देती है। निश्चित, परमात्मा से बड़ी कोई वासना नहीं हो सकती। तो परमात्मा की वासना से भरा हुआ आदमी सर्वाधिक अहंकारी हो जाता है।
मैं तुमसे क्या कह रहा हूं? मैं तुमसे यह कह रहा हूंः परमात्मा को पाना हो तो परमात्मा की वासना नहीं करनी होती। परमात्मा को पाना हो तो वासना का स्वरूप समझकर वासना से मुक्त हो जाना होता है। जिस क्षण वासना चली गयी, उस क्षण परमात्मा उतरता है। परमात्मा पाया जाता है, लेकिन परमात्मा की कामना नहीं की जा सकती। परमात्मा मिलता है और मिलता उसी को है जिसने यह बड़ी शर्त पूरी कर दी।
इसलिए बुद्ध जैसे परमज्ञानी ने परमात्मा शब्द का उपयोग भी नहीं किया--इसीलिए कि तुम अज्ञानी कहीं परमात्मा की वासना न करने लगो। बुद्ध ने ईश्वर की बात ही न उठाई, क्योंकि बुद्ध ने देखा कि लोग वासना बदल लेते हैं; धन नहीं मांगते, अब स्वर्ग मांगते हैं; पद नहीं मांगते, परमात्मा मांगते हैं; प्रतिष्ठा नहीं मांगते, समाधि मांगते हैं। मगर मांगते हैं! और मांग जहां है वहां अहंकार है।
तो बुद्ध ने कहाः कोई परमात्मा नहीं है, कोई आत्मा नहीं है, कोई मोक्ष नहीं है। तुम यह मत समझना कि बुद्ध यह कह रहे हैं कोई परमात्मा नहीं है, कि कोई आत्मा नहीं है, कि कोई मोक्ष नहीं है। बुद्ध के माननेवालों ने भी गलत समझा और बुद्ध का विरोध करनेवालों ने भी बुद्ध को गलत समझा। बुद्ध को समझना बहुत दुरूह है, कठिन है, क्योंकि बुद्ध की बात बड़ी सूक्ष्म है। बुद्ध यह कह रहे हैं कि अगर मैं यह कहूं कि परमात्मा है तो तत्क्षण परमात्मा तुम्हारी वासना का विषय हो जाता है। और वासना जब तक है, तब तक परमात्मा मिलेगा नहीं। इससे अच्छा है हम परमात्मा की चर्चा ही छोड़ दें, बुद्ध ने कहा। है ही नहीं। न होगा बांस, न बजेगी बांसुरी। जब परमात्मा है नहीं तो तुम परमात्मा को कैसे चाहोगे? जब स्वर्ग है ही नहीं तो स्वर्ग की कामना कैसे करोगे? और जब आत्मा भी नहीं है तो क्या समाधि?
मगर अदभुत प्रक्रिया है बुद्ध की। तुम्हारी वासना के सब संभव उपाय छीन लिये। अब तुम्हारे पास जो छोटी-मोटी वासनाएं हैं, धन कमा लूं, पद काम लूं, प्रधानमंत्री हो जाऊं। ये जो छोटी-मोटी वासनाएं हैं, इनको तुम समझने की कोशिश करो और तुम पाओगे हर वासना दुख लाती है। हर वासना और गहरे नर्क में ले जाती है। देखते-देखते, पहचानते-पहचानते एक दिन यह होश तुम्हें आ जायेगा कि वासना दुख है। उसी क्षण वासना गिर जायेगी। और परमात्मा तो है नहीं कि वासना को बदल लो। संसार की वासना गिर जायेगी और परलोक की वासना का तो उपाय बुद्ध ने छोड़ा नहीं है। तुम जिस क्षण निर्वासना में हो जाओगे, उसी क्षण परमात्मा मिल जाता है।
परमात्मा, ऐसा समझो, तुम्हारी निर्वासना की अवस्था का नाम है। समाधि, ऐसा समझो कि जब तुम्हारे भीतर कोई वासना न रही तो जो बचता है वही समाधि है। यह काम उत्कंठा से नहीं होगा।
और तुम कहते होः तिस मरणी मारो... ।
तुम्हारे मारने में भी शर्त है। तुम कह रहे हो मारना जरूर, मगर वह मरण होना चाहिए--वही, जिससे आपको मिला, जिससे आपको दर्शन हुआ, कोई और दूसरा मरण न हो जाये! तुम मरने में भी शर्त लगाये हो! तुम बीच-बीच में आंख खोलकर देखते रहोगे कि कोई गलती मरण तो नहीं हुआ जा रहा है!
एक झेन फकीर ने अपने एक शिष्य को ध्यान का एक प्रयोग दिया था कि सोचकर लाओ, एक हाथ की ताली कैसे बजती है? अब एक हाथ की ताली कहीं बजती है? बहुत सोचा, खूब खोजा उसने। बड़ा विचारशील आदमी था। लाये अनेक बातें कि एक हाथ की ताली ऐसे बजती है, जैसे आकाश में मेघों का गर्जन। और गुरु ने उसको एक डंडा मारा कि मूरख, यह एक हाथ की ताली है! कहां है इसमें एक हाथ? और जब गर्जन होता है आकाश में तो बादल टकराते हैं, ये तो दो हाथ हो गये। जहां टकराहट है

वहां दो। तू ऐसी खबर ला जहां टकराहट न हो और ध्वनि उत्पन्न हो। बहुत उसने खोजा। कई तरकीबें निकालीं, सब में हारता गया। महीने बीतने लगे, उदास होने लगा। दिन-भर खोज कर आये और फिर वही की वही बात; फिर गुरु उसे भगा दे। उसने पुराने शिष्यों से पूछा कि भई, तुमने कैसे हल किया है?
तो एक शिष्य ने बताया कि मेरा तो ऐसे हल हुआ कि मुझे भी इसने बहुत सताया। तेरा तीन महीना, मैं तो तीन साल घट्टे खाया। फिर एक दिन बिल्कुल थका-मांदा था, ऊब चुका था... एक हाथ की ताली... यह कहीं बजती है! यह पागल और एक हम पागल हैं कि इसकी बात मानकर बैठे हैं, एक हाथ की ताली बजने का विचार कर रहे हैं, ध्यान कर रहे हैं। पक्का पता है कि यह हो नहीं सकता। हमको भी पता है, इसको भी पता है, सब को पता है। मगर लग गया मोह इस आदमी से। इसके प्रेम में पड़ गये, तो चलो यही करते हैं कि ठीक है, कभी-न-कभी तो बजेगी या कुछ होगा। तीन साल में जब बिल्कुल थक गया और मैं पहुंचा और इसने फिर पूछा कि एक हाथ की ताली, कि मैं एकदम गिर पड़ा। मैं बिल्कुल निराश ही हो गया था, तो मैं बिल्कुल गिर पड़ा। और उस दिन गुरु प्रसन्न हो गये। और उन्होंने मेरे सिर पर हाथ रखा, डंडा-वंडा नहीं मारा उस दिन, और कहाः बेटा, उठो, बज गयी एक हाथ की ताली!
यह जो गिरना था, इसमें अहंकार गिर गया। यह जो गिरना था इसमें सारा चित्त गिर गया--उदास, उदास, उदास... हार, हार, हार... एक सीमा होती है। हार उस जगह पहुंच गयी कि हार अंतिम आ गयी। पराजय पूरी हो गयी। अब यह पक्का हो गया कि मुझसे कुछ होने वाला नहीं है। न यह एक हाथ की ताली बजनी है, न मुझे सफलता मिलनी है, न मुझे समाधि लगनी है। यह हताशा उस जगह पहुंच गयी जहां मृत्यु घट जाती है अहंकार की। विजय मिलती रहे थोड़ी-थोड़ी, सफलता मिलती रहे, तो अहंकार को पोषण मिलता रहता है। इसीलिए तो एक हाथ की ताली, ताकि अहंकार को पोषण न मिल सके। यह तो प्रक्रिया है तुम्हारे अहंकार को तोड़ने की। तो गुरु ने सिर पर हाथ रखा और कहा कि बज गयी एक हाथ की ताली! यह है एक हाथ की ताली। अब उठ आ, अब कोई चिंता नहीं।
तो इसने कहा कि भलेमानस! मुझे पहले क्यों न बताया? हम पहले ही दिन बजा देते एक हाथ की ताली, जाकर गिर पड़ते। आज ही बजाये देते हैं; अभी चला।
चले वे, पहुंचे। जैसे ही गुरु ने पूछा कि बजी एक हाथ की ताली, वह चारों खाने... मगर देखकर गिरे कि कहीं चोट वगैरह न लग जाये। जरा देख लिया एक तिरछी नजर से कि सब ठीक-ठाक है। सिर भी ऐसी जगह गिराया जहां तकिया रखा था। आंखें बंद करके बिल्कुल चारोंखाने चित, शवासन में लेट गये। चित्त बड़ा प्रसन्न है कि आज मामला हल हुआ, अब गुरु आये, सिर पर हाथ फेरा। और गुरु ने मारा डंडा। एक आंख खोलकर देखा कि मामला क्या है यह, हम तो कुछ और ही सोच रहे थे।
गुरु ने कहा कि नासमझ, मुर्दे कहीं आंख खोलकर देखते हैं? और मुर्दे ऐसा देखकर गिरते हैं कि तकिया कहां है? यह तू नकल कर रहा है। मैं समझ गया तू किसकी नकल कर रहा है; मगर उसकी बजी थी एक हाथ की ताली। तू अनुकरण कर रहा है। तू चाहता है सस्ता कुछ हो जाये। यह सस्ती नहीं हो सकती बात। वह तीन साल परेशान हुआ था। तीन साल उसने अथक श्रम किया था। खून को पसीना बनाया था। न दिन सोया था, न रात सोया था। खाना-पीना भूल गया था। सब लगा दिया था उसने दांव पर। तब एक घड़ी ऐसी आयी थी कि उस पराजय के क्षण में टूट कर गिर पड़ा था। उसने देखा नहीं था चारों तरफ कि पत्थर पर सिर पड़ेगा कि तकिये पर। उसकी कोई कल्पना भी नहीं थी कि अब क्या होने वाला है। तू तो पड़कर, लेटकर वहां देख रहा है कि गुरु का हाथ आया सिर पर। जब वह गिरा था तो सच में गिरा था, उस गिरने में अहंकार गिर गया था। और तू जो गिरा है, यह तो अहंकार का ही आयोजन है। यह तो अहंकार की ही तरकीब है। तू चाहता है मैं कह दूं कि हो गया तू सिद्ध। इतना सस्ता नहीं है।
तुम कहते होः तिस मरणी मारो... ।
कम-से-कम छुट्टी तो देते पूरी! कम-से-कम इतना तो कहते, जैसा मारना हो मारो! वह भी तुमने छोड़ा नहीं। तुमने अपनी शर्त लगा दी। तुम्हारा समर्पण भी सशर्त होता है। और समर्पण कहीं सशर्त हो सकता है? समर्पण का अर्थ ही होता है--सब शर्तें छोड़ीं, गिर पड़े चरणों में, कि अब जो हो सो हो, न हो तो न हो। उसके लिए भी राजी हैं। कहीं भीतर कोर-कोने में जरा-सी भी आकांक्षा छिपी

राह देखती रही, कि अब ऐसा होगा, अब ऐसा होना चाहिए, कि अब तो हम गिर भी गये, अभी तक वह मरण नहीं हुआ, जिस मरण से गोरख को दिखाई पड़ा था। हम तो अभी वही के वही। अभी तक समाधि नहीं फली। अभी तक कोई परमात्मा के चरण दिखाई नहीं पड़ रहे। अगर ऐसी वासना और विचार बना रहा तो मृत्यु हो ही न पायेगी।
और ख्याल रखो, गुरु शिष्य को मार नहीं सकता, गुरु शिष्य को मरने की कला सिखा सकता है। मरना तो तुम्हीं को पड़ता है।
तुम भोजन करोगे तो तुम्हारा पेट भरेगा। तुम पानी पीयोगे तो तुम्हारी प्यास बुझेगी। मैं पानी पीयूं, इससे तुम्हारी प्यास नहीं बुझ सकती। मैं भोजन करूं, इससे तुम्हारी भूख नहीं मिट सकती। मैं श्वास लूं, इससे तुम्हारा हृदय नहीं धड़केगा। और ये तो सब ऊपर की बातें हैं, सबसे गहरी बात तो है अहंकार का मरना, वह सबसे गहरा है। वह तो ऊपर से किया ही नहीं जा सकता। वह तो तुम ही जागोगे, जानोगे अहंकार की पीड़ा और नर्क को पहचानोगे। देखोगे कि कितना दंश अहंकार ने दिया है... !
तो यह उत्कंठा की बात नहीं है, समझ की बात है। पर अच्छा सुधीर, विचार
तो उठा। इसी तरह विचार उठता है तो कला सीखी जाती है। वही तो मैं सिखा रहा हूं--मरने की कला। चाहे कहो जीवन की कला, चाहे कहो मृत्यु की कला, एक ही बात है। तुम मरे तो परमात्मा प्रगट हुआ। तुम्हारी मृत्यु उसका प्रारंभ है।

चौथा प्रश्नः आपको सुनता हूं तो प्रार्थना का भाव हृदय में हिलोरें लेने लगता है। पर प्रार्थना कैसे करूं? प्रार्थना करना तो मुझे आता नहीं है।

प्रार्थना की नहीं जाती, प्रार्थना हो जाती है। यह जो भाव हिलोरें लेता है, यही प्रार्थना है। करने चलोगे, झूठ कर लोगे। करने चलोगे, औपचारिक हो जायेगा। करने चलोगे, उधार हो जायेगा। दूसरों का अनुकरण हो जायेगा। प्रार्थना अनुकरण नहीं है। अनुकरण के कारण ही पृथ्वी से प्रार्थना खो गयी है। लोग चले अपने-अपने मंदिर। अगर मस्जिद बगल में है तो वहां जाकर प्रार्थना नहीं करते, दो मील चल कर जाते हैं मंदिर में प्रार्थना करने। जितना दो मील चलने में समय खराब किया, इतना भी प्रार्थना में लगा देते, मस्जिद बगल में थी, कहां जाते हो! लेकिन वही हालत मस्जिद वाले की है। मंदिर बगल में है, वहां तो देखता नहीं, पीठ करके निकल जाता है।
जैन-शास्त्रों में और हिंदू-शास्त्रों में इस तरह के उल्लेख हैं। एक-
से ही उल्लेख हैं, क्योंकि मूढ़ता सब में एक-सी है। ऐसे उल्लेख हैं जैन-शास्त्रों में कि अगर तुम हिंदू-मंदिर के सामने से निकलते हो और पागल हाथी तुम्हारा पीछा कर रहा हो, तो पागल हाथी के पैर के नीचे दब कर मर जाना बेहतर है, बजाय हिंदू-मंदिर में शरण लेने के। और ठीक यही बात हिंदू-शास्त्रों में कही गयी है कि अगर तुम्हारे पीछे पागल हाथी पड़ा हो, तो उसके पैर के नीचे दबकर मर जाना, मगर जैन-मंदिर में शरण मत लेना।
ये कैसी ओछी बातें हैं, जो धर्म के नाम पर चलती रही हैं। और हिंदू और जैन तो खैर अलग-अलग धर्म हैं। हिंदुओं में भी कोई हैं जो राम को मानते हैं, तो वे कृष्ण के मंदिर में न जायेंगे; और कोई हैं जो कृष्ण को मानते हैं, वे राम के मंदिर में न जायेंगे। और भी मजे की बात है, जैनों में दिगंबर और श्वेतांबर हैं; दोनों ही महावीर को मानते हैं, मगर दोनों का भी मंदिर एक नहीं हो सकता।
आदमी धर्म के नाम पर भी राजनीतियों में उलझ जाता है। और यह सारा उपद्रव होता है अनुकरण के कारण। प्रार्थना एक सहज निश्छल भाव है। वृक्ष को देखकर तुम्हारे भीतर आनंद हिलोरें लेने लगे, वहीं झुक जाना, प्रार्थना हो गयी। वृक्ष के पास ही झुक जाना। वृक्ष की जड़ों में ही सिर रख देना, और तुम्हारा नमन परमात्मा तक पहुंच गया। क्योंकि परमात्मा से जुड़े हैं वृक्ष। तुम्हारे मंदिर की मूर्तियां परमात्मा से बिल्कुल नहीं जुड़ी हैं, क्योंकि तुम्हारी बनायी हुई हैं। वृक्ष अभी जीवंत हैं, उनमें जीवन बह रहा है, रसधार बह रही है। नहीं तो हरे न होते। नहीं तो कोंपलें न निकलतीं। नहीं तो फूल न खिलते। अभी परमात्मा से जुड़े हैं, झुक लो।

वृक्ष की जड़ों में परमात्मा के चरण जितनी सरलता से उपलब्ध हैं, उतनी तुम्हारी मंदिर की मूर्तियों में नहीं। वे सब झूठी हैं, औपचारिक हैं। आदमी की बनायी हुई मूर्तियों में तुम परमात्मा को खोजने चले हो? आदमी की बनायी हुई चीजों में उसको खोजने चले हो, जिसने आदमी को बनाया? तुम भूल कर रहे हो। उसकी बनायी हुई प्रकृति चारों तरफ फैली है। उसकी नदियां बह रही हैं, उसके सागर उत्तुंग लहरों से भरे हैं। उसका चांद उगता है। उसका सूरज निकलता है। उसके वृक्ष हैं, उसके पशु-पक्षी हैं, तुम हो।
किसी प्रीति के क्षण में अगर तुम अपने बेटे के चरणों में भी झुक जाओ,
तो भी तुम्हारा नमन पहुंच जायेगा। किसी प्रीति के क्षण में अगर तुम अपनी पत्नी के चरणों में झुक जाओ, तो भी नमन पहुंच जायेगा।
प्रार्थना अनौपचारिक है। उसे उपचार मत बनाओ। मगर प्रार्थना इतनी औपचारिक हो गयी है कि तुम यह भूल ही गये कि प्रार्थना का अनौपचारिक, नैसर्गिक स्वाभाविक रूप क्या है।
तुम कहते होः आपको सुनता हूं तो प्रार्थना का भाव हृदय में हिलोरें लेने लगता है।
वही प्रार्थना है, अब और तुम क्या पूछते हो?
अब तुम पूछ रहे हो कि मैं प्रार्थना कैसे करूं?
प्रार्थना घट रही है। सत्संग में बैठे-बैठे प्रार्थना घट जाती है। अगर मैं प्रार्थनापूर्ण हूं और तुम सरलभाव से मेरे पास आकर बैठ गये हो, तुम्हारे भीतर विवाद नहीं है, तुम मेरे एक-एक शब्द को इस तरह नहीं सुन रहे हो जैसे तुम मेरे न्यायाधीश हो, कि तुम्हें तय करना है कि क्या ठीक क्या गलत--तुम मेरे शब्दों को अगर ऐसे सुन रहे हो जैसे कोई संगीत को सुनता है, बिना चिंता किये क्या ठीक क्या गलत--अगर तुम बस मेरे पास होने का रस ले रहे हो, तो प्रार्थना फल जायेगी, प्रार्थना घट जायेगी। तुम्हारे भीतर कोई झुक जायेगा। तुम्हारे भीतर कोई मिट जायेगा। तुम्हारे भीतर कुछ नया सूत्रपात होने लगेगा। कोई तरंग उठेगी, जिसमें तुम डूब जाओगे। वही प्रार्थना है। मगर मैं तुम्हारी तकलीफ समझता हूं। तुम सोच रहे हो कि यह तो कभी-कभी होता है; इसको रोज व्यवस्था से कैसे करना? जब भी तुम व्यवस्था से करोगे तभी झूठ हो जायेगा। यह जब होता है तब होता है। प्रार्थना के लिए समय नहीं बांधा जा सकता। ऐसा नहीं कि रोज सुबह उठ कर कर लोगे प्रार्थना। जब हो जाये। कभी आधी रात हो जायेगी, कभी सुबह, कभी दोपहर। प्रार्थना का कोई समय नियत नहीं है, क्योंकि परमात्मा का सारा समय है। प्रार्थना के लिए कोई मुहूर्त नहीं होता, कोई क्षण नहीं होता।
तुम बजाए नियम बनाने के, बजाए एक क्रिया-कांड बनाने के, अपनी सहजता की तरफ से चलो। जब हो जाये तब आंख बंद कर लो, एक क्षण डूब जाओ। कहां-कहां होने लगेगी, तुम चकित होओगे। तुमने कभी सोचा न होगा, ऐसी जगह होने लगेगी। कोई बांसुरी बजा रहा है और होने लगेगी। दोपहर है, सन्नाटा है, हवाएं बंद हैं, वृक्ष हिलते नहीं हैं... और होने लगेगी। रात है, झींगुरों की झनकार है, और होने लगेगी। तुम अपने मित्र के पास बैठे हो हाथ में हाथ लिए हुए, और होने लगेगी। कोई नियत काल नहीं है। और कैसी होगी हर बार, कहना मुश्किल है। क्योंकि कोई पुनरुक्ति थोड़े ही है। भाव की दशा है। विचार की बात नहीं है प्रार्थना।
प्रार्थना कोई ग्रामोफोन रिकार्ड नहीं है कि वही-वही होगा, बार-बार वही-वही होगा। नये-नये रंग, नये-नये रूप, नये-नये ढंग में प्रार्थना प्रगट होती है।

सलाम-ए-हसरत कबूल कर लो, मेरी मुहब्बत कबूल कर लो!
उदास नजरें तड़प-तड़प कर तुम्हारे जल्वों को ढूंढती हैं
जो ख्वाब की तरह खो गए उन हसीन लमहों को ढूंढती हैं,
अगर न हो नागवार तुमको तो यह शिकायत कबूल कर लो
सलाम-ए-हसरत कबूल कर लो!

तुम्हीं निगाहों की जुस्तजू हो, तुम्हीं ख्यालों का मुद्दआ हो तुम्हीं मेरे वास्ते सनम हो, तुम्हीं मेरे वास्ते खुदा हो

मेरी परस्तिश की लाज रख लो, मेरी इबादत कबूल कर लो
सलाम-ए-हसरत कबूल कर लो!

तुम्हारी झुकती नजर से जब तक न कोई पैगाम मिल सकेगा
न रूह तस्कीन पा सकेगी, न दिल को आराम मिल सकेगा
गमे-जुदाई है जानलेवा, यह इक हकीकत कबूल कर लो
सलाम-ए-हसरत कबूल कर लो!
कहीं भी, कहीं से भी भेजो सलाम। किसी फूल के पास झुक जाओ, भेजो सलाम। कोयल की कूक सुनकर नाच उठो, भेजो सलाम। बूंदाबांदी हो रही है तुम्हारे छप्पर पर, बूंदों ने संगीत छेड़ रखा है, भेजो सलाम।
सलाम-ए-हसरत कबूल कर लो मेरी मुहब्बत कबूल कर लो।
और शब्द बनाने की जरूरत नहीं है, बिना शब्द के भेज दो। परमात्मा तुम्हारी भाषा नहीं समझता, तुम्हारे भाव समझता है। भाषाएं तो बहुत हैं। अगर परमात्मा को भाषा समझनी पड़े तो पगला जायेगा। जमीन पर कोई तीन-सौ भाषाएं हैं। ये तो खास-खास। और छोटी-छोटी भाषाएं गिनती करो, और बोलियां गिनती करो तो बड़ी मुश्किल में पड़ जायेगा। परमात्मा की अड़चन तुम समझ सकते हो! और एक ही पृथ्वी नहीं है, वैज्ञानिक कहते कम-से-कम पचास हजार पृथ्वियों पर जीवन है। कम-से-कम! ज्यादा पर हो सकता है, लेकिन पचास हजार पर तो होना ही चाहिए। यह इतना बड़ा विस्तार है! फिर आदमी का ही सवाल नहीं है, पशु-पक्षी भी प्रार्थनापूर्ण हो जाते हैं!
महर्षि रमण के आश्रम में एक गाय मरी तो उन्होंने उसे इस तरह विदा दी जैसे समाधिस्थ पुरुष को दी जाती है। लोग बहुत हैरान थे। लेकिन गाय साधारण गाय थी भी नहीं, बड़ी सत्संगी थी। रमण के पास आनेवाले और लोग सत्संगी कभी आते कभी न आते, मगर गाय नियमित आती थी। ऐसा कोई दिन नहीं चूकता था कि रमण के दर्शन न करती हो। आकर खिड़की में से सिर अंदर करके खड़ी हो जाती। खिड़की के बाहर ही खड़ी रहती थी, लेकिन सिर खिड़की के भीतर कर लेती थी। घंटों खड़ी रहती, जब दूसरे लोग बैठे रहते वह भी खड़ी रहती। जब सत्संग विदा हो जाता, तब वह भी चली जाती। और कभी-कभी उसकी आंखों से आंसुओं के धारे भी लग जाते थे, वहीं खड़े-खड़े खिड़की पर! जब गाय बीमार पड़ी और एक दिन नहीं आ पायी, तो रमण खुद गये। जैसे ही उसने, गाय ने उनको आते देखा उसकी आंखों से आंसुओं की धार बहने लगी। रमण का हाथ उसके सिर पर था जब वह मरी। उन्होंने उसे ऐसा सम्मान दिया जैसे कि किसी समाधिस्थ व्यक्ति को सम्मान दिया जाता है। उसकी समाधि बनवायी। लोगों ने पूछा कि महर्षि, क्या आप सोचते हैं यह गाय इतनी मूल्यवान थी? उन्होंने कहाः यह इसका आखिरी जन्म है। अब यह नहीं लौटेगी। इसकी प्रार्थना सुन ली गयी। इसकी सलाम पहुंच गयी।
तो आदमी का ही सवाल नहीं हैः पशु-पक्षी हैं, इनमें भी कोई प्रार्थनापूर्ण होते हैं। पौधे हैं, इनमें भी कोई प्रार्थनापूर्ण होते। अभी वैज्ञानिक बड़ी खोज में लगे हैं। और एक बात बिल्कुल स्पष्ट रूप से, निर्णायक रूप से सिद्ध हो गयी है कि पौधों में बड़ी संवेदनशीलता है--उतनी ही जितनी मनुष्यों में; शायद ज्यादा, कम तो नहीं।
रविशंकर का सितार बजते देखकर पौधे भाव-मग्न हो जाते हैं। इस पर वैज्ञानिक प्रयोग हुए हैं। मस्त हो जाते हैं। अब तो यंत्र खोज लिए गए हैं। जैसा तुम्हारा कार्डियोग्राम का यंत्र होता है, जिससे तुम्हारे हृदय की धड़कन पहचानी जाती है, ऐसे यंत्र खोज लिए गए हैं जिनसे वृक्षों की धड़कन पहचानी जाती है। यंत्र लगा दिया जाता है वृक्ष पर, उसकी भाव-दशाओं का पता चलने लगता है। दुखी है, सुखी है, क्रुद्ध है, करुणापूर्ण है?
रविशंकर का सितार सुनकर वृक्ष झुक आते हैं। जहां से सितार बज रहा है
उस तरफ। झुकने लगते हैं। और आधुनिक संगीत, जाज और उस तरह के संगीत को सुनकर वृक्ष दूर हटने लगते हैं, दूसरी तरफ झुकने लगते हैं, और कहना चाहते हैं कि बंद भी करो! यह क्या मचा रक्खा है? तुम्हारा जो फिल्मी संगीत चलता रहता है, लाऊडस्पीकर लगाकर लोग जो शोरगुल मचाये रखते हैं, जिसको वे संगीत कहते हैं, वृक्ष तड़फते हैं। आदमी तो शायद संवेदनशीलता खो दिया है, वृक्षों की संवेदनशीलता अब भी उतनी है।

जो वैज्ञानिक वृक्षों पर प्रयोग कर रहा था, वह तो चकित होकर भरोसा ही नहीं कर सका, जब पहली दफा उसे निर्णय मिलने शुरू हुए। जब कोई कुल्हाड़ी लेकर वृक्षों को काटने आता है, अभी काटना शुरू नहीं किया, लेकिन कुल्हाड़ी लिए वृक्षों ने देखा कि आ रहा है लकड़हारा, कि सारे वृक्ष कंप जाते हैं। यंत्र बता देता है फौरन कि वृक्ष चिंतित हैं, बहुत घबड़ाये हुए हैं, पता नहीं किसकी बारी आ गई! और चकित होने की बात है कि एक वृक्ष को काटो तो सारे वृक्ष पीड़ित होते हैं आस-पास। और ऐसा ही नहीं कि वृक्ष को काटने से पीड़ित होते हैं; तुम एक चिड़िया को मार डालो, सारे वृक्ष पीड़ित होते हैं। चिड़िया को मारने से! वृक्षों को क्या लेना-देना है? मगर चिड़िया भी उनकी थी। नीड़ बनाती थी उन पर। उनको गौरव देती थी, सौभाग्य देती थी। आस-पास नाचती थी, गीत गुनगुनाती थी। टी वी टुक टुक मचाती थी। थी तो जीवन था। और फिर किसी भी जीवन को चोट पड़ रही है तो वृक्षों को संवेदनशीलता होती है।
और जब माली को वृक्ष आते देखते हैं पानी का फव्वारा लिये तो आनंद-मग्न
हो जाते हैं। अभी पानी बरसा नहीं उन पर, मगर उनकी प्यास आतुर हो जाती है। तैयार हो गये, प्रसन्नचित्त हैं। धन्यवाद उठने लगा। ये सब अब वैज्ञानिक तथ्य हैं। कवि तो इस तरह की बातें सदा से करते रहे हैं। कवि हजारों वर्ष पहले वे बातें कह देते हैं, जो विज्ञान को पकड़ने में हजारों वर्ष लग जाते हैं।
महावीर ने जरूर ही इस तरह की कुछ बात वृक्षों में सुनी होगी, पहचानी होगी, तभी उन्होंने कहा वृक्ष से कच्चे फल भी मत तोड़ो। जब फल पक जायें और अपने से गिर जायें तभी स्वीकार करो। जब वृक्षों की यह हालत, तो पशु- पक्षियों की तो कैसी न होगी! कैसे कठोर होंगे वे लोग, जो पशु-पक्षियों को खाये चले जाते हैं। और छोटे-मोटे लोगों की बात छोड़ दो, जिनसे तुम अपेक्षा न करो... ।
अभी भारत के राष्ट्रपति संजीव रेड्डी मद्रास से बहुत नाराज लौटे, क्योंकि मद्रास के राजभवन में उनको मांसाहार की सुविधा नहीं मिल सकी। गांधीवादी हैं। गांधीवादी टोपी लगाने से कोई गांधीवादी होता है! यह किस तरह का गांधीवाद है? मांसाहार गांधीवादी कर रहा है, फिर क्यों बकवास व्यर्थ अहिंसा की उठा कर रखी है? बंद करो यह बकवास! भूलो गांधी को और गांधी के नाम को! ये थोथी बातें क्यों दोहराते हो? किसको धोखा दे रहे हो?
मगर तुम्हारे राजनेताओं में अधिक मांसाहारी हैं। तुम्हारे राजनेताओं में अधिक शराब पीनेवाले हैं। और ये सब गांधीवादी हैं। और दो अक्टूबर को राजघाट पर बैठकर चरखा चलाने लगते हैं। मांसाहार कोई आदमी कर सके और अहिंसक होने का दावा भी कर सके, तो फिर और झूठ क्या होगा इस दुनिया में? मगर सारी बातों के पीछे एक ही लक्ष्य है--कैसे तुम्हारा वोट मिल जाये?
मैंने सुना है नेता जी ने मजमा लगाया और हांक लगायी--बहनो और भाइयो, कहने की बात है, न कहने की भी; सुनने की बात है, न सुनने की भी; सोचने की बात है, न सोचने की भी; करिश्मे बहुत देखे होंगे पर भैया ठहरना, आखिर तक ठहरना और सारे खेल देखकर जाना। तो... तो यह लो पहला खेल... देखे न कितने करिश्मे, कितने खेल, अब हाथों को दिलों पर धर लो, दिमाग को कहीं और धर दो। मेरी बहनो, मेरे भाइयो! कसम है हरेक भाई को, हरेक बहन को, बीच में छोड़कर न जाना, नहीं तो मेरी यह सत्ताइस साल की बेटी पड़ी रहेगी। तो बेटी किसकी?
"हमारी", एक स्वर गूंजा।
"नाम?"
"आजादी।"
"कहो सिर काट दूं इसका?"
"काट दो।"
"हां, काट दो। तुम्हारी कौन लगती है? बेटी मेरी है। कहो काट कर जोड़ दे नेता!"
"काट कर जोड़ दे नेता।"
"हां तो कद्रदान, यह लो।"
चादर डाल उसने आजादी की गरदन काट अलग रख दी।
"कहो, दिखा दे नेता, कपड़ा हटा दे।"

"नहीं", कई चीखें उभरीं--पर नेता का स्वर सबसे ऊपर--
"कसम है खिसकना मत अपनी जगह से, वरना तुम्हारी आजादी, तुम्हारी सच्चाई यूं ही पड़ी रहेगी। साहिबानों, एक, दो, जितने डाल सको, वोट डाल दो। जिला दो मेरी बच्ची को।
वह एक तरफ बैठ गया और सहमे मजमे में हरेक ने कटी गरदन देखने के डर से सारे वोट डाल दिये उसके बंद डिब्बे में।
तुम्हारे नेता मदारियों से ज्यादा भिन्न नहीं रह गये हैं। और हर चीज
की आकांक्षा एक है कि कैसे तुम्हारा वोट पड़ जाये। तो चरखा भी कातते हैं, खादी भी पहनते हैं, गांधीबाबा का नाम भी लेते हैं। मंदिरों में भी जाते हैं, मस्जिदों में भी चले जाते हैं। अल्लाह ईश्वर तेरे नाम, सबको सनमति दे भगवान! ऐसे भजन भी करते हैं। और मांसाहार न मिले तो देश का राष्ट्रपति, भारत जैसे देश का राष्ट्रपति (!) परेशान हो जाता है। एक दिन मांसाहार नहीं मिल सका तो अड़चन हो गई। मिल गया होता तो शायद लोगों को पता ही नहीं चलता कि वे मांसाहार भी करते हैं।
महावीर को दिखाई पड़ा होगा कि वृक्षों को चोट पहुंचानी तभी संभव है, जब तुम्हारे भीतर संवेदनशीलता न हो, जब तुम पत्थर के हो गये हो। पशुओं को मार कर खाना तभी संभव है, जब तुम्हारा हृदय मर चुका हो, तुम्हारी आत्मा बिल्कुल जड़ हो गई हो।
वही तो कल गोरख ने कहा, तुम्हें याद है न, कि पत्थर को पूजते हो और पत्थर हो गये हो! पत्थर के तुम्हारे मंदिर हैं, पत्थर की तुम्हारी प्रतिमायें हैं, तुम्हारे भीतर भी पत्थर है। तुम्हरे भीतर से प्राण खो गए हैं।
सारा जगत संवेदनशील है। यह सारा जगत अपने-अपने ढंग से प्रार्थना कर रहा है। पूजा चल रही है, अर्चन चल रहा है। भाषा का सवाल नहीं है, भाव का सवाल है। तुम भाषा छोड़ो। तुम, भाव जब उमगे, भाव जब तुम्हारे प्राणों में भर जाये, तब डूब जाओ। हां, रोना हो रोओ, हंसना हो हंसो, नाचना हो नाचो। ये भाव के ढंग हैं।
तुम्हारे आंसू जितने निकट तुम्हें ले जायेंगे परमात्मा के, तुम्हारे शास्त्र नहीं ले जा सकते। क्योंकि तुम्हारे आंसू तुम्हारे हैं; तुम्हारे हृदय की गहराइयों से आते हैं। तुम्हारे आंसू तुम्हारा निवेदन हैं। सलाम-ए-हसरत कबूल कर लो मेरी मुहब्बत कबूल कर लो
नाचो कभी मगन होकर, इतना अपूर्व संसार दिया है तुम्हें उसने। ऐसा बहुमूल्य जीवन दिया है! एक-एक चीज बेशकीमती है। यहां एक-एक कण उससे ही आपूरित है, इतना छंदबद्ध अस्तित्व--और तुम धन्यवाद भी नहीं देते!
धन्यवाद है प्रार्थना। और निश्चित ही उसकी याद सताये, यह शुभ है। उसकी याद तुम्हें मथ डाले, यह शुभ है। मगर इस याद को औपचारिकता मत बनाना, नहीं तो यह झूठी हो जाती है। औपचारिकता काम नहीं आती।
मैं एक घर में मेहमान था। उस घर की बच्ची, स्कूल में वाद-विवाद प्रतियोगिता थी, मुझसे बोली, कि आप इतना बोलते हैं, मुझे सिर्फ तीन मिनिट व्याख्यान देना है, मुझे व्याख्यान तैयार करवा दो। और अगर आप तैयार करवाओगे तो मुझे प्रथम पुरस्कार मिलने ही वाला है। वह एकदम पीछे पड़ी थी तो मैंने उसे तैयार करवाया। बार-बार उसे दोहरवा कर तैयार करवा दिया। पहले ही उसको कहा कि भाइयो एवं बहनो, अगर मुझसे कोई भूल हो जाये तो क्षमा करना। मैंने उससे कहा कि तू यह पहले ही कह देना। उसके मां-बाप जा रहे थे, उन्होंने कहा आप भी चलें, तो मैं भी गया सुनने। तो उसने व्याख्यान शुरू किया, मेरी तरफ देखा। बहुत खुश थी, क्योंकि उसने बिल्कुल तैयार कर रखा था। उसने कहाः भाइयो एवं बहनो! अगर मुझसे कोई क्षमा हो जाये तो आप भूल कर देना।
अब क्या करोगे? तोतों की तरह रटा दो तो बहुत दूर तक बात जाती नहीं है।
ऐसे ही तुम्हारी प्रार्थनायें लड़खड़ा कर गिर जाती हैं। तुमने सीख लिया तोतों की तरह। कर रहे हैं भजन, मगर सब सीखा-सिखाया। तो अभिनय है, यथार्थ नहीं है। यथार्थ होना चाहिये।
तो मत पूछोः प्रार्थना कैसे करूं? हिलोर आने दो, उसी हिलोर में बहो।
बस रोकना मत, जब हिलोर पकड़े तो रोकना मत। हम बड़े कंजूस हो गये हैं। हम रोने में डरते हैं, हम हंसने में डरते हैं। हम नाचने में डरते हैं। हम

भावाभिभूत होने में डरते हैं। हम बिल्कुल सिकुड़ गये हैं। हमारी पूरी मनुष्यता झूठी, थोथी, पाखंडी हो गई है।

तुम्हारी याद सताती है।
घाव की टीस बढ़ाती है!
आम पर बोल रही कोयल
दर्द कुछ घोल रही कोंपल
आंख से अपने तुम ओझल
कहीं छिप बिरहन गाती है
तुम्हारी याद सताती है!
कहीं पर बजती मादक बीन
नयन से निंदिया लेती छीन तड़पती मरु में कोमल मीन
तुम्हें छू पुरवा आती है! घाव की टीस बढ़ाती है!
अभी मैं कहती हूं कुछ बोल
मुझे दे चुंबन कुछ अनमोल
प्राण से प्राण जरा ले मोल
उमरिया बीती जाती है!
घाव की टीस बढ़ाती है!
तुम्हारी याद सताती है!
परमात्मा की याद को सताने दो। टीस को बढ़ने दो। तुम्हारे भीतर घाव गहरा हो, वही घाव प्रार्थना है। प्रार्थना शब्दों में नहीं होती, प्रार्थना प्राणों का गुंजन है।
तुम जल्दी करना ही मत इसे शब्दों में ढालने की, अन्यथा मन बहुत कुशल है। मन सब चीजों को झूठा करने का रास्ता जानता है।
रास्ते पर कोई मिल जाता है, तुम एकदम मुस्कुराने लगते हो। वह मुस्कुराहट झूठी है। तुम्हारे भीतर नहीं है, सिर्फ ओंठ पर चिपकी है। जिमी कार्टर जैसी मुस्कुराहट है वह।
मैंने सुना है कि जिमी कार्टर की पत्नी को रात में उनका मुंह बंद करना पड़ता है, नहीं तो वे रातभर भी मुंह खोले रहते हैं। दिन-भर का अभ्यास! मुंह बंद करना पड़ता है, नहीं तो कोई चूहा चला जाये भीतर या कुछ, उपद्रव हो जाये कुछ।
तुम्हारी मुस्कुराहटें झूठी हैं। तुम हंसते हो क्योंकि हंसना चाहिये, तुम रोते हो क्योंकि रोना चाहिये। कोई मर गया तो तुम रोते हो। मैं एक घर में मेहमान था। उस घर में एक सज्जन मर गए। किसी को फिकर नहीं
थी उनके मरने की। सब प्रसन्न थे, क्योंकि वह सज्जन काफी सता चुके थे। कई साल से बीमार थे। और घर में अगर एक ही प्रार्थना चलती थी सबके हृदय में, तो यह कि वह किसी तरह अब जायें, भगवान उठाओ इन्हें! घर-भर की नाक में दम कर रखी थी उन्होंने। वह मर गये तो सब प्रसन्न थे, मगर प्रसन्नता जाहिर तो नहीं कर सकते। कोई मृदंग बजा कर तुम घोषणा तो नहीं कर सकते कि बड़े आनंदित हैं। रोना तो पड़ेगा ही। सर्दियों के दिन थे, मैं बाहर बैठा था। घर की जो गृहणी थी, उसने मुझे कह रखा था, कोई बैठने वाला आये, आप जरा यह घंटी बजा देना। मैंने कहा, क्यों? उसने कहा कि रोना पड़ेगा न! कोई एकदम से आ जाये और देखे कोई रो ही नहीं रहा है, तो लोकलाज भी रखनी पड़ती है। तो मैंने कहा, अच्छा। एक सज्जन आये, मैंने घंटी बजाई। सज्जन अंदर गये, मैं भी अंदर गया, मैं देख कर दंग हुआ। उस महिला ने जल्दी से घूंघट मार लिया जोर से और रोने लगी। घूंघट इसलिये मार लिया कि आंसू तो आयेंगे नहीं। आंसू कैसे आ सकते हैं? घूंघट जोर से मार लिया। और रोने लगी जोर-जोर से। जैसे ही वह सज्जन गये, घूंघट वापिस... वह फिर बातचीत करने लगी। सब ठीक-ठाक है, कहीं कोई अड़चन न रही।
तुम रोते भी झूठे हो, तुम हंसते भी झूठे हो! तुम्हारा सारा व्यक्तित्व मिथ्या है। इसी मिथ्या व्यक्तित्व को कहीं तुम प्रार्थना का अंग भी मत बना देना। इसलिये तो लोग सत्यनारायण की कथा करवा लेते हैं। खरीद लाये एक

पंडित को कि भाई करवा दे, ले लेना दस रुपये; कि यह भगवान पीछे पड़ा है, करवा दे सत्यनारायण की कथा, कहने को तो रह जायेगा कि करवायी थी कथा।
तिब्बती एक प्रार्थना का चक्र बना लिये हैं। छोटा चका जैसा, जैसा चरखा पर चका होता है। उसमें जितने आरे हैं... एक सौ आठ आरे हैं, जैसे माला में एक सौ आठ गुरिये होते हैं। प्रत्येक आरे पर मंत्र लिखा है। वह चके को घुमा देते हैं। जितने चक्कर चका लगा लेता है, उतने मंत्र-पाठ का लाभ मिल गया, पुण्य मिल गया।
मैं बोधगया में था। एक तिब्बती लामा मेरे पास ठहरे थे। वह अपनी किताब
भी पढ़ते रहें और बीच-बीच में चके को चक्कर लगा दें। एक दिन मैंने देखा, दो दिन देखा, मैंने उनसे कहाः एक काम करो, कहां का पुराना तुम यह रवैया लिये बैठे हो। इसमें बिजली का तार जोड़ कर इसको बिजली से कनेक्ट कर दो। तुम फिर जो तुम्हें करना है करो, यह चक्कर लगाता ही रहेगा, लगाता ही रहेगा। रात तुम सोये रहो तो भी चक्कर लगाता रहेगा। तुम्हारे पुण्य का कोई अंत नहीं रहेगा। पुण्य ही पुण्य बरस जायेगा तुम पर।
किसको धोखा दे रहे हो? लोग तरकीबें निकाल लिये हैं प्रार्थना की भी,
जो झूठी हैं। लोग झूठे हैं, इसलिये जो भी करते हैं, वही झूठ हो जाता है।
मत पूछो कि मैं प्रार्थना कैसे करूं। लहर उठ रही है, भाव उठ रहा है--इस भाव में रुकावट मत डालना बस। बाधा मत डालना। यह लहर जहां ले जाये इसके साथ जरा चले जाना। डर लगेगा पहले पहले कि पता नहीं यह कहां ले जाए, कि कहीं बीच बाजार में रोने लगूं, कि जहां लोग गंभीर बैठे हों वहां मैं हंसने लगूं, तो लोग पागल समझेंगे! ध्यान रखना, सिर्फ पागल ही प्रार्थना कर सकते हैं। जिनमें पागल होने की हिम्मत है वे ही केवल प्रार्थना के रास्ते पर यात्रा कर सकते हैं।

छूकर प्राणों की पीर, प्रीत बन जाओ!
जो कुछ सुलझी थी, आज उसे उलझा दो
जो कुछ उलझी थी, आज उसे सुलझा दो
मेरे आंसू के सावन आज सुखा दो
मैं चाह रही हूं, मुझको आज दुखा दो नयनों के नेही स्नेह-नीति बन जाओ! छूकर प्राणों की पीर, प्रीत बन जाओ! तुम स्नेह-स्वाति बन, जीवन-भर तरसाओ मेरे चित-चातक को न अधिक दरसाओ अधरों की यदि मुसकान चुराओ जानूं इतना कर दो धन्यभाग मैं मानूं
तुम वर्तमान के चिर अतीत बन जाओ! छूकर प्राणों की पीर, प्रीत बन जाओ! मेरे सम्मुख झूठा शृंगार नहीं है
स्वप्निल आशाओं का आधार नहीं है
मेरी वीणा के बिखरे तार सजा दो
इंगित से उनको क्षण-भर आज बजा दो
गाकर तुम मेरे गीत, मीत बन जाओ!
छूकर प्राणों की पीर, प्रीत बन जाओ!
प्रार्थना तुम मत करो, परमात्मा को पुकारो कि तुम्हारे भीतर प्रार्थना बने।

मेरी वीणा के बिखरे तार सजा दो
इंगित से उसको क्षण-भर आज बजा दो
गाकर तुम मेरे गीत, मीत बन जाओ!
छूकर प्राणों की पीर, प्रीत बन जाओ!
यथार्थ प्रार्थना, तुम्हारी नहीं होती--परमात्मा के द्वारा ही परमात्मा की होती है। तुम सिर्फ माध्यम होते हो। बांस की पोंगरी! वही गाता तुमसे गीत। तभी प्रार्थना सच्ची होती है। और तभी प्रार्थना मुक्तिदायी होती है।

आखिरी प्रश्नः मैं अपनी पत्नी के अतिरिक्त अन्य स्त्रियों में भी उत्सुक हो जाता हूं। लेकिन जब मेरी पत्नी किसी पुरुष में उत्सुकता दिखाती है तो मुझे बड़ी ईर्ष्या होती है, भयंकर अग्नि में मैं जलता हूं।

पुरुषों ने सदा से अपने लिए सुविधाएं बना रखी थीं, स्त्रियों को अवरुद्ध कर रखा था। पुरुषों ने स्त्रियों को बंद कर दिया था मकानों की चार दीवारों में, और पुरुष ने अपने को मुक्त रख छोड़ा था। अब वे दिन गए। अब तुम जितने स्वतंत्र हो, उतनी ही स्त्री भी स्वतंत्र है। और अगर तुम चाहते हो कि ईर्ष्या में न जलो तो दो ही उपाय हैं। एक तो उपाय है कि तुम स्वयं भी वासना से मुक्त हो जाओ। जहां वासना नहीं वहां ईर्ष्या नहीं रह जाती। और दूसरा उपाय है कि अगर वासना से मुक्त न होना चाहो तो कम-से-कम जितना हक तुम्हें है, उतना हक दूसरे को भी दे दो। उतनी हिम्मत जुटाओ।
मैं तो चाहूंगा कि तुम वासना से मुक्त हो जाओ। एक स्त्री जान ली तो सब स्त्रियां जान लीं। एक पुरुष जान लिया तो सब पुरुष जान लिये। फिर जो भेद हैं, वे केवल ऊपरी रेखाओं के हैं। और जो एक स्त्री को जानकर स्त्रियों को नहीं जान पाया, समझ लेना कि मूर्च्छित होकर जी रहा है। वह अनंत स्त्रियों को जानकर भी नहीं जान पायेगा। वह जान ही नहीं पायेगा। क्योंकि जानना होता है बोध से; वह मूर्च्छित है। वह भागता रहेगा एक को छोड़कर दूसरी के पीछे। और निश्चित ही तुम जलोगे, क्योंकि पुरुष के अहंकार को चोट लगेगी। इसको तो तुम समझते हो बिल्कुल ठीक है, कि तुम किसी दूसरे की स्त्री में उत्सुक हो जाओ तो कोई अड़चन नहीं। हम कहते हैंः पुरुष आखिर पुरुष है! पुरुषों ने ही गढ़ ली होगी यह कहावत कि पुरुष आखिर पुरुष है। पुरुषों ने ही यह हिसाब गढ़ लिये कि पुरुष एक से तृप्त नहीं होता, पुरुष को अनेक स्त्री चाहिये; स्त्री एक से तृप्त हो जाती है। ये पुरुषों की ही तरकीबें हैं। स्त्री को एक से तृप्त होना चाहिये--वह एक तुम हो! और तुम! तुम कैसे एक से तृप्त हो सकते हो, तुम तो पुरुष हो, पुरुष को तो सुविधा ज्यादा होनी चाहिये!
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन के पड़ोस में श्रीमान मल्होत्रा नये- नये आकर पड़ोसी हुए। उनकी पत्नी बहुत सुंदर है। मुल्ला ने अपनी पत्नी को चिढ़ाने के लिए एक दिन सुबह उठते से ही कहा कि सुनो, नाराज न होना, कुछ दिनों से रोज मुझे सपनों में श्रीमती मल्होत्रा दिखाई पड़ती हैं।
पत्नी बोलीः अकेले ही दिखाई देती हैं न? मुल्ला बोलाः हां, पर तुम्हें कैसे पता चला? पत्नी ने कहाः क्योंकि श्रीमान मल्होत्रा मेरे सपनों में आते हैं। मुल्ला इससे बहुत दुखी था। चले थे पत्नी को चिढ़ाने, चिढ़ गए खुद। जितनी स्वतंत्रता तुम अपने लिये चाहते हो, उतनी ही स्वतंत्रता तुम्हारी पत्नी की भी है। और अगर तुम पाते हो कि नहीं, पत्नी का दूसरे पुरुषों में उत्सुक होना उचित नहीं है, तो फिर तुम्हारा भी दूसरी स्त्रियों में उत्सुक होना भी उचित नहीं है। और जो तुम चाहते हो तुम्हारी पत्नी करे, वह तुम्हें पहले करना चाहिये; तभी तुम हकदार हो।
अपनी वासना की दौड़ों को छोड़ो। और मैं तुमसे यह बात कहे देता हूंः स्त्रियां निश्चित ही इतनी ज्यादा वासनाग्रस्त नहीं होतीं, जितने पुरुष होते हैं। स्त्रियों के पास एक तरह का समर्पणभाव होता है। और स्त्रियों के पास एक तरह की निष्ठा और आस्था और श्रद्धा होती है। पुरुष का प्र्रेम भी छिछला होता है, गहरा नहीं होता, ऊपर-ऊपर होता है। पुरुष की जिंदगी में प्रेम ही सब कुछ नहीं होता, और भी बहुत चीजें होती हैं; स्त्री के जीवन में बस सब कुछ प्रेम ही होता है, और सब चीजें प्रेम के ही भीतर समाविष्ट होती हैं। पुरुष के जीवन में और भी कई काम हैं, जिनमें प्रेम भी एक काम है। स्त्री के जीवन में और कोई काम ही नहीं है; सारा काम ही, सारे काम ही प्रेम में ही समाविष्ट हैं।
पुरुष उच्छृंखल है, पुरुष चंचल है। यह तुम छोटे-छोटे बच्चों में भी देख लेना। छोटा लड़का हो, शांत बैठ ही नहीं सकता। चीजें पटकेगा, घड़ी खोलेगा, मक्खियां पकड़ने लगेगा, कुछ-न-कुछ करेगा खटर-पटर। छोटी बच्ची है, वह शांत बैठी है एक कोने में। हो सकता है, अपनी गुड़िया को छाती से लगाये हो।

और तुम ख्याल रखना, स्त्रियों को पता चलना शुरू हो जाता है गर्भ में
भी कि लड़का है कि लड़की। अगर जरा संवेदनशील स्त्री हो, उसे पता चलना शुरू हो जाता है, क्योंकि लड़का वहीं उपद्रव शुरू कर देता है। कहीं टांग मारेगा, कहीं सिर हिलायेगा। लड़की शांत होती है। अनुभवी मां को पता चलना शुरू हो जाता है कि लड़का है कि लड़की। उपद्रव के अनुपात से पता चलना शुरू हो जाता है।
इसका वैज्ञानिक कारण है। जीवशास्त्र कहता है कि स्त्री के व्यक्तित्व में अनुपात है, पुरुष के व्यक्तित्व में अनुपात नहीं है। स्त्री के जो अणु हैं, वे सम हैं। दो अणुओं से मिलकर जन्म होता है व्यक्ति का--पुरुष और स्त्री के दो अणुओं से मिलकर। पुरुष में चौबीस कोष्ठों वाले अणु होते हैं और तेईस कोष्ठोंवाले अणु होते हैं, दो तरह के अणु होते हैं। स्त्री में चौबीस कोष्ठों वाला ही होता है। जब पुरुष का चौबीस कोष्ठों वाला अणु स्त्री के चौबीस कोष्ठों वाले अणु से मिलता है तो लड़की का जन्म होता है। अड़तालीस अणु। सम होता है तौल। तराजू के दोनों पलड़े बराबर होते हैं। और जब पुरुष का तेईस कोष्ठों वाला अणु स्त्री के चौबीस कोष्ठों वाले अणु से मिलता है तो पुरुष का जन्म होता है। एक पलड़ा नीचा होता है, एक पलड़ा ऊंचा होता है, समतुलता नहीं होती। सैंतालीस कोष्ठ होते हैं--एक तरफ तेईस, एक तरफ चौबीस। स्त्री में चौबीस-चौबीस कोष्ठ होते हैं। इसलिये स्त्री ज्यादा सुंदर होती है, समानुपाती होती है, शांत होती है। उसमें एक तरह की समता होती है। एक तरह की थिरता होती है। एक तरह की गोलाई होती है स्त्री के व्यक्तित्व में। पुरुष में थोड़ा-सा तिरछापन होता है, आड़ा-आड़ा जाता है। उसके वैज्ञानिक आधार भी हैं।
ढब्बू जी और उनकी पत्नी तीर्थयात्रा को गये। ढब्बू जी किताबों के बड़े प्रेमी हैं, चौबीस घंटे किताबें बगल में दबाये रहते हैं। मंदिर में भी गए-- विश्वनाथ के मंदिर में गये होंगे काशी में। ढब्बू जी अपनी किताब ही पढ़ रहे हैं मंदिर में भी खड़े होकर। पत्नी प्रार्थना कर रही है। अब उसका दुख तुम समझो। उसने जोर से कहाः हे विश्वनाथ के देवता! इतना भर करना, अगले जन्म में मरकर मैं स्त्री न होऊं, किताब होऊं, ताकि कम-से-कम ढब्बू जी के साथ चौबीस घड़ी तो रह सकूं।
ढब्बू जी ने सुना। वह भी तत्क्षण झुक गए घुटनों के बल, हाथ जोड़कर कहा
कि हे प्रभु! अगर उसकी प्रार्थना मान ही लो तो तुम इसे टेलीफोन की डायरेक्टरी बनाना, ताकि हर साल बदल सकूं।
पुरुष का चित्त ऐसा ही चंचल है। इस चंचलता को जाने दो। थोड़े थिर होओ। थोड़े शांत होओ। थोड़े जीवन में समझदार होओ। बहुत दौड़ चुके जन्मों-जन्मों तक, कहां पहुंचे हो? और कब तक दौड़ते रहोगे? अब ठहरो!
ठहरें पांव तो मिले गांव। ठहर जाओ तो गांव मिल जाये। तो जिसकी तलाश है
वह मिल जाये। उस ठहरने का नाम ही ध्यान है। चलते रहने का नाम संसार है। ठहर जाने का नाम परमात्मा है।
आज इतना ही।

मरौ हे जोगी मरौ
नौवां प्रवचन

सुधि-बुधि का विचार

सुणौ हो नरवै सुधि बुधि का विचार। पंच तत ले उतपनां सकल संसार।
पहलै आरंभ घट परचा करौ निसपती। नरवै बोध कथंत श्री गोरषजती।।
पहलै आरंभ छांड़ौ काम क्रोध अहंकार। मन माया विषै विकार।
हंसा पकड़ि घात जिनि करौ। तृस्नां तजौ लोभ परहरौ।।
छांड़ौ दंद रहौ निरदंद। तजौ अल्यंगन रहौ अबंध।
सहज जुगति ले आसण करौ। तन मन पवना दिढ़ करि धरौ।।
संजम चितओ जुगत अहार। न्यंद्रा तजौ जीवन का काल।
छांड़ौ तंत मंत बैदंत। जंत्रं गुटिका धात पाषंड।।
जड़ी बूटी का नांव जिनि लेहु। राज दुवार पाव जिनि देहु।
थंभन मोहन बिसिकरन छा.ंडौ औचाट।
सुणौ हो जोगेसरो जोगारंभ की बाट।।
और दसा परहरौ छतीस। सकल विधि ध्यावो जगदीस।
बहु विधि नाटारंभ निबारि। काम क्रोध अहंकारहि जारि।।
नैंण महा रस फिरौ जिनि देस। जटा भार बंधौ जिनि केस।
रूष बिरष बाड़ी जिनि करौ। कूवा निवांण शोदि जिनि मरौ।।
टूटै पवनां छीजै काया। आसण दिढ करि वैसो राया।
तीरथ बर्त कदै जिनि करौ। गिर परबतां चढि प्रानमति हरौ।।
पूजा पाति जपौ जिनि जाप। जोग माहि विटंबौ आप।
छांड़ौ वैद बणज व्यौपार। पढ़िबा गुणिबा लोकाचार।।
बहुचेला का संग निबारि। उपाधि मसांण बाद विष तारि।
येता कहिये प्रतच्छि काल। एकाएकी रहौ भुवाल।।
सभा देषि मांडौ मति ग्यांन। गूंगा गहिला होइ रहौ अजांण।
छाड़व राव रंक की आस। भिछ्या भोजन परम उदास।।
रस रसाइंन गोटिका निवारि। रिधि परहरौ सिधि लेहु विचारि।
परहरौ सुरापांत अरूभंग। तातैं उपजैं नांनां रंग।।
नारी, सारी, कींगुरी। तीन्यूं सतगुर परहरी।
आरंभ घट परचै निसपति। नरवै बोध कथंत श्री गोरषजती।।

जुज मर्तबए कुल को हासिल करे है आखिर,
एक कतरा न देखा जो दरिया न हुआ होगा।

एक बूंद भी ऐसी नहीं है अस्तित्व में जो आज नहीं कल सागर न हो जाये। अंश अंशी हो जाता है, खंड अखंड हो जाता है, सीमित असीम हो जाता है। एक बूंद भी ऐसी नहीं है जिसकी नियति में सागर होना न हो, तो फिर एक मनुष्य भी कैसे हो सकता है जो परमात्मा होने से वंचित रह जाए?
परमात्मा होना मनुष्य का स्वभाव है। जैसे बूंद सागर हो सकती है, ऐसे मनुष्य सीमाओं से मुक्त हो जाये तो परमात्मा हो सकता है। मनुष्य परमात्मा है, सिर्फ सीमायें गिराने की बात है। मनुष्य के परमात्मा होने में और कोई बाधा नहीं है; हमने चारों तरफ एक लक्ष्मण-रेखा खींच रखी है। हमारी खींची हुई रेखा है; हम ही उस रेखा के बाहर नहीं जाते; हमने ही दीवाल बना ली है; हमने ही सुरक्षा का आयोजन कर लिया है; हम ही ज्ञात में आबद्ध हो गए हैं। अज्ञात पुकारता है, पर भय के कारण हम यात्रा पर नहीं निकल पाते।
योग की यात्रा अज्ञात की यात्रा है। लेकिन अज्ञात की यात्रा पर तो वही जायेगा जो ज्ञात से थक गया। तुमने जो जाना है, उससे मन भरा?
अगर मन भर गया है तब तो परमात्मा तक जाने का कोई सवाल नहीं उठता; परमात्मा तुम्हें मिल ही गया। मन भर जाने का नाम ही तो परमात्मा का मिलना है। मन भरा नहीं है। मन जरा भी भरा नहीं है। खाली का खाली है। सिर्फ आशायें--कल भर जायेगा, परसों भर जायेगा--उलझाये रखती हैं। सिर्फ आश्वासन झूठे, जो कभी पूरे नहीं होते; किसी के कभी पूरे नहीं होते।

कल मैं एक लोकप्रिय गीत सुन रहा था--
जाने वो कैसे लोग थे जिनके प्यार को प्यार मिला
ऐसे लोग कभी नहीं हुए जिनके प्यार को प्यार मिला हो। इस संसार में कभी कोई तृप्ति को उपलब्ध नहीं हुआ।

जाने वो कैसे लोग थे जिनके प्यार को प्यार मिला
हमने तो जब कलियां मांगीं, कांटों का हार मिला
खुशियों की मंजिल ढूंढ़ी तो गम की गर्द मिली
चाहत के नग्मे चाहे तो आहें सर्द मिली
दिल के बोझ को दूना कर गया, जो गमख्वार मिला
बिछुड़ गया हर साथी देकर पल दो पल का साथ
किसको फुर्सत है जो थामे दीवानों का हाथ
हमको अपना साया तक अक्सर बेजार मिला
इसको ही जीना कहते हैं तो यूं ही जी लेंगे
उफ न करेंगे, लब सी लेंगे, आंसू पी लेंगे
गम से अब घबड़ाना कैसा? गम सौ बार मिला
जाने वो कैसे लोग थे जिनके प्यार को प्यार मिला
हमने तो जब कलियां मांगीं कांटों का हार मिला
ऐसे लोग कभी हुए ही नहीं। यहां तो जिसने भी कलियां मांगी हैं, उसी को कांटों का हार मिला है। इस संसार में कांटों के सिवाय कुछ और है ही नहीं। हां, दूर से फूल दिखाई पड़ते हैं, पास आने पर कांटे सिद्ध होते हैं। जो नहीं मिला है प्यारा लगता है; जो मिल जाता है वही व्यर्थ हो जाता है। अभाव में आकर्षण है। दूर के ढोल सुहावने हैं।
योग की यात्रा पर तो वही निकलेगा जिसे यह बात बिल्कुल साफ हो गई कि यहां सुख मिलना संभव नहीं है। सुख असंभव है संसार में। क्योंकि संसार का अर्थ होता है बहिर्यात्रा--अपने से बाहर जाना। और अपने से बाहर जाकर कोई कभी सुख को उपलब्ध न हो सकेगा। क्योंकि जितने तुम अपने से दूर हो जाओगे उतने ही स्वभाव के प्रतिकूल हो जाओगे। और स्वभाव में डूब जाना सुख है। अपने स्व में निमग्न हो जाना सुख है। स्वभाव सुख है, विभाव दुख है। तो जितने तुम अपने से दूर जाते हो--धन में, पद में, प्रतिष्ठा में--उतने ही तुम दुखी होते चले जाते हो। संसार का अर्थ ये वृक्ष नहीं, ये चांद-तारे नहीं; संसार का अर्थ है मन की बाहर जाती हुई दौड़। बहिर्यात्रा संसार है। अंतर्यात्रा धर्म है।
जरा अपने जीवन को गौर से देखो, विचारो, तो ही गोरख के ये अमृत शब्द समझ में आ सकेंगे। गोरख के ही क्यों, समस्त बुद्धपुरुषों के वचन इसलिए तुम्हारे काम नहीं आते, कि तुमने अपने जीवन का निरीक्षण नहीं किया। अभी भी तुम्हारी आशायें शेष हैं। अभी भी तुम्हारी आशायें खंडित नहीं हुई हैं। धोखा है तमाम बहरे-दुनिया
देखेगा तो होंठ तर न होगा।
दिखाई पड़ता है, जल लहरें ले रहा है; पर दूर से दिखाई पड़ता है। मृग-मरीचिका है। और जब पास जाओगे ओंठ तर भी न हो सकेंगे। कंठ तक तो पहुंचने की बात दूर, ओंठ भी तर न हो सकेंगे।
सब्ज होती ही नहीं यह सरजमीं,
तुख्मे-ख्वाहिश दिल में तू बोता है क्या?
इस जमीन पर हरियाली कभी होती ही नहीं। तू नाहक ही इच्छाओं के बीज बो रहा है अपने दिल में। बहुत पछतायेगा। ये बीज कभी अंकुरित होते नहीं। सब्ज होती ही नहीं यह सरजमीं,
तुख्मे-ख्वाहिश दिल में तू बोता है क्या?
क्यों बोये चले जाते हो नई-नई आकांक्षाओं के बीज? पुराने बीज नहीं उपजते तो तुम नए बीज बो देते हो। ऐसा जन्मों-जन्मों से कर रहे हो।
पास के गये पै एक बूंद हू न हाथ लगै, दूर सों दिखात मृगतृष्णिका में पानी है। शंकर प्रमाण-सिद्ध रंग को न संग पर, जानि परै अंबर में नीलिमा समानी है। भाव में अभाव है अभाव में धौं भाव भर्यो, कौन कहै ठीक बात काहू ने न जानी है।

बहुत उलझन है इस जगत की। भाव में अभाव है। जो होता है वह तो भूल जाता है। जो है वह तो दिखाई नहीं पड़ता। भाव में अभाव है अभाव में धौं भाव भर्यो। और जो नहीं है उसमें हमारे भाव उलझे रहते हैं। जो तुम्हारे पास नहीं है उसमें तुम अटके हो, यह बात तो तुम जानकर हैरान होओगे।
लोग सोचते हैं कि जो हमारे पास है उसमें हम अटके हैं; गलत है। जो तुम्हारे पास है उसमें तो तुम जरा भी नहीं अटके हो; जो तुम्हारे पास नहीं है उसमें अटके हो। तुम्हारे पास दस हजार रुपये हैं, उनमें तुम नहीं अटके हो; दस लाख, जो अभी तुम्हारे पास नहीं हैं, उनमें तुम अटके हो। तुम यह दस हजार छोड़ भी दो तो कुछ लाभ न होगा। जब तक वे दस लाख न छूट जायें जो तुम्हारे पास नहीं हैं... ।
यह जरा बड़ी उलटी सी बात मालूम होगी कि जो नहीं है, उसमें हम उलझे हैं।
जो पत्नी तुम्हारे पास है उसमें तुम नहीं उलझे हो; उससे तो तुम कब के मुक्त हो गए हो; उसे तो तुमने देखना ही बंद कर दिया है। उसे तो तुम पहचान भी न सकोगे। कितने दिन हो गए, कितने वर्ष, जबसे तुमने पत्नी को देखा नहीं है भर आंख! अपनी पत्नी को देखता ही कौन है! दूसरों की पत्नियों को लोग देखते हैं! जो तुम्हारे पास नहीं है, उससे तुम उलझे हो। अभाव ने उलझाया है। इसलिए सदगुरु का बड़ा बेबूझ काम है। वह तुमसे वही छीन लेता है जो तुम्हारे पास नहीं है। और तुम्हें वही दे देता है जो तुम्हारे पास है। पास जाकर पाओगे बूंद भी नहीं है वहां, जहां सागर लहराता मालूम पड़ता था।
यह धोखा ऐसे ही है जैसे आकाश नीला दिखाई पड़ता है। बस दिखाई पड़ता है; आकाश का कोई रंग नहीं है। आकाश कोई वस्तु थोड़े ही है कि उस पर रंग पोता जा सके। आकाश तो शून्य का नाम है। शून्य को कैसे रंगोगे? आकाश नीला दिखाई भर पड़ता है।
शंकर प्रमाण-सिद्ध रंग को न संग पर, जानि परै अंबर में नीलिमा समानी है।
पक्का प्रमाण है इसका, अब वैज्ञानिक प्रमाण है कि आकाश में कोई रंग नहीं होता, लेकिन फिर भी नीला दिखाई पड़ता है। और मरुस्थल में जब तुम प्यास से विदग्ध हो रहे हो, तुम्हारी प्यास ही मृग-मरीचिकाएं पैदा कर लेती है। और साधारण आदमी की तो बात छोड़ दो, असाधारण पुरुष भी मृग-मरीचिकाओं में पड़ जाते हैं। राम तक स्वर्ण-मृग को पकड़ने निकल पड़े। स्वर्ण-मृग होते हैं? कभी हुए हैं?
कथा प्यारी है! सीता को गंवा बैठे राम--रावण के कारण नहीं; स्वर्ण-मृग
को खोजने निकल पड़े, इस कारण। अगर तुम मुझसे पूछो तो रावण ने सीता चुरायी यह बात गौण है; राम ने सीता गंवायी, यह बात महत्वपूर्ण है। थोड़ा सोचो तो, तुम भी होते तो सोचते कि कहीं सोने का मृग होता है, कभी हुआ है? लेकिन स्वर्ण-मृग दिखाई पड़ा, चले राम खोज पर। उठा लिया धनुष-बाण। छोड़ गए सीता को। जो था उसे छोड़ गए--उसके लिए, जो नहीं है; और जो कभी हुआ नहीं और जो कभी हो भी नहीं सकता। बुद्धि जिसके बिल्कुल विपरीत है, विचार जिसके विपरीत है, समझ जिसके विपरीत है--उस स्वर्ण-मृग को खोजने चल पड़े।
मगर कथा प्रीतिकर है। ऐसे ही तो हम सब भी स्वर्ण-मृग को खोजने निकले हैं, और सीताओं को गंवा बैठे हैं। सीता यानी तुम्हारी आत्मा, जो तुम्हारे पास है। उसे तो तुम भूल ही गए हो। उसकी तरफ तो पीठ कर ली है। चले स्वर्ण-मृग की तलाश में--पद-प्रतिष्ठा, धन, यश, गौरव। ये सब स्वर्ण-मृग हैं--जो न कभी हुए हैं, न कभी होते हैं।
हस्ती अपनी हुबाब की सी है, यह नुमाइश सराब की सी है। चश्मे-दिल खोल उस
भी आलम पर, यांकी औकात खाब की सी है।
जरा अपना हृदय उस परलोक की तरफ भी खोलो, क्योंकि यहां तो सब है जो सपने जैसा है। चश्मे-दिल खोल उस भी आलम पर। दिल की आंख उस सत्य की तरफ भी खोलो, घूंघट हटाओ, पर्दे उठाओ। यांकी औकात खाब की-सी है! क्योंकि यहां की जो सत्ता है इस संसार की, वह एक स्वप्न से ज्यादा नहीं है। हस्ती अपनी हुबाब की-सी है। एक बुलबुले जैसी हस्ती है। पानी का बुलबुला, अभी बना अभी मिटा। यह नुमाइश सराब की-सी है। यह तो मृग-जल जैसा प्रदर्शन चल रहा है--झूठा; मान लिया इसलिये है।

और लोग क्या-क्या मान नहीं लेते हैं! हमारा सारा संसार हमारी मान्यताओं से निर्मित है। हमने मान लिया है। सारी बात मानने की है। और मान लिया है तो चलते चले जाते हैं। जिसने नहीं माना है वैसा, वह हंसेगा।
जिस आदमी को धन की दौड़ लगी है, उसके लिए धन सत्य है। और जिसको धन की दौड़ नहीं लगी है, वह हंसेगा कि तुम पागल हो, धन का करोगे क्या, धन से होगा क्या? सब पड़ा रह जाएगा। जिसकी मान्यता नहीं है, वह बड़ा हैरान होता है कि तुम किस चीज के पीछे दौड़ रहे हो! लेकिन जिसकी मान्यता है उसकी आंखों में नशा है; वह होश में नहीं है।
यह संसार हमारी कामना, हमारी तृष्णा, हमारी दौड़, हमारी महत्वाकांक्षा
का परिणाम है। और जो इस महत्वाकांक्षा के ज्वर से नहीं जागेगा, वह कभी पहचान न पायेगा स्वयं को। स्वयं को जाने बिना कोई सुख नहीं है। स्वयं को जाने बिना कोई संगीत नहीं है। स्वयं को जाने बिना कोई अमृत का स्वाद नहीं है। ये सूत्र उसी अमृत की तलाश के लिये हैं।
सुणौ हो नरवै सुधि बुधि का विचार।
गोरख कहते हैंः ऐ सम्राटो! ... तुम्हें सम्राट कहते हैं, याद रखना।
क्योंकि हो तो तुम सम्राट, मान लिया है तुमने कि भिखमंगे हो। हो तो तुम मालिक, मान लिया कि गुलाम हो। मान लिया तो हो गये।
सुणौ हो नरवै!
ऐ सम्राटो! सुनो।
सुधि बुधि का विचार।
थोड़ी समझ की, थोड़ी बोध की बात भी सुनो; कि दौड़ते ही रहोगे, कि भागते ही रहोगे? रुकोगे नहीं? रुक कर थोड़ा विचार न करोगे कि बहुत दौड़ लिये, कहां पहुंचे? एक दफा पुनर्निरीक्षण करो।
पंच तत ले उतपनां सकल संसार।
ये तुम जिन चीजों के पीछे दौड़े जा रहे हो, वहां कुछ भी नहीं है, पांच तत्वों का खेल है। मिट्टी, जल, वायु, अग्नि, आकाश--इनसे यह सारा खेल निर्मित हुआ है। इस खेल में कुछ भी नहीं है। और जिसकी तुम तलाश कर रहे हो वह तुम्हारे भीतर मौजूद है। इन पांच तत्वों के जो पार है, वह तुम्हारे भीतर मौजूद है। ये पांच तत्व तो बनते हैं और मिटते हैं; गिरते हैं और उठते हैं। ये तो लहरें हैं। इनके साथ तुम कभी आनंदित न हो सकोगे, क्योंकि ये बन भी नहीं पातीं कि मिट जाती हैं। इनके साथ तुम कैसे जी पाओगे? ये क्षणभंगुर हैं। और जो क्षणभंगुर है उससे दुख मिलता है। तुम जरा उसे खोजो जो शाश्वत है। और वह तुम्हारे भीतर बैठा है।
इस संसार को अगर देखो गौर से तो तुम्हें देखनेवाले का स्मरण आने लगे।
और अगर इसे मूर्च्छा से देखो तो देखनेवाला तो भूल ही जाता है; उलझ गए दृश्य में। जो उलझा दृश्य में वह भटका। और जो द्रष्टा में जागा वह पहुंच गया।
पहलै आरंभ घट परचा करौ निसपती।
नरवै बोध कथंत श्री गोरषजती।।
गोरख कहते हैंः ऐ सम्राटो, तुमसे चार बातें कहनी हैं। गोरख अपनी पूरी जीवन-चिंतना को इन चार बातों में ढाल देते हैं।
पहलै आरंभ घट परचा करौ निसपती।
चार बातें। पहला हैः आरंभ। आरंभ का अर्थ हैः अभी तुम बाहर ही दौड़ते रहे हो, तुमने अंतर्यात्रा का आरंभ भी नहीं किया। तुमने आंखें पीछे नहीं फेरी हैं। तुमने लौटकर नहीं देखा। जिसको महावीर ने प्रतिक्रमण कहा है। चित्त की दो दशायें हैं--आक्रमण...! आक्रमण यानी बाहर की तरफ, प्रतिक्रमण यानी भीतर की तरफ। आक्रमण यानी दूसरे पर, प्रतिक्रमण यानी अपने पर। या जिसको पतंजलि ने प्रत्याहार कहा है।
लौट आओ, अपने पर लौट आओ! इसी को जीसस ने कन्वर्सन कहा है। कन्वर्सन का अर्थ नहीं होता कि कोई हिंदू ईसाई हो जाए, कि कोई ईसाई हिंदू हो जाए। यह कोई कन्वर्सन है? कन्वर्सन का अर्थ होता हैः बहिर्यात्रा अंतर्यात्रा हो जाये। तुम मंदिर बाहर न खोजो, भीतर खोजो। तुम बाहर के तीर्थों पर मत जाओ, तुम भीतर स्नान करो। तुम ध्यान में डुबकी लो, तो जीवन में क्रांति शुरू होती है। उस क्रांति को गोरख कहते हैं आरंभ। तभी तुम्हारा मनुष्य होना शुरू हुआ; इसलिये कहते हैं आरंभ। पशु भी बाहर जीते हैं, पौधे भी बाहर जीते

हैं; सिर्फ एक मनुष्य है इस पृथ्वी पर जो भीतर भी जी सकता है। उसकी ही यह संभावना है, जो आत्म-साक्षात्कार कर सकता है।
बाहर तो सभी दौड़ते हैं, इसमें कुछ खूबी नहीं है। तुम्हारे जीवन में महिमा प्रारंभ होती है उस दिन, जिस दिन तुम भीतर लौटना शुरू होते हो। हुए गौरवान्वित। हुए महिमान्वित। हुए मनुष्य। तुम्हारे भीतर जन्म हुआ आत्मा का। तुम्हारे भीतर परमात्मा की तलाश शुरू हुई। और यह बड़ी से बड़ी क्रांति है। और कोई इतनी बड़ी क्रांति नहीं है। अंतरक्रांति है। उसको कहते हैं गोरख--आरंभ।
वे कहते हैं कि सुनो, ऐ सम्राटो! तुमने अभी अपने साम्राज्य का आरंभ भी नहीं किया। जिस संपत्ति के तुम मालिक हो, तुमने पहली कुदाली भी नहीं मारी उस खजाने को खोदने के लिए।
दूसराः घट। घट का अर्थ होता हैः घड़ा। यह जो शरीर है, यह घड़ा है। घट, मंदिर है। इसके भीतर मालिक छिपा है। इस घट के भीतर आकाश छिपा है। घट में ही मत उलझ जाना, क्योंकि जब तुम भीतर की तरफ मुड़ोगे, तब तुम्हें पता चलेगा कि शरीर इतनी छोटी चीज नहीं है जितनी तुमने समझी है। शरीर बड़ा रहस्यपूर्ण है। शरीर अपने-आप में एक संसार है।
वैज्ञानिक कहते हैं एक-एक शरीर में कम-से-कम सात करोड़ जीवाणु हैं। इसलिए हमने इसको पुरुष कहा है आत्मा को, क्योंकि शरीर को पुर कहा है, नगर, बसा हुआ नगर। बंबई भी छोटी है। कलकत्ता भी छोटा है। कलकत्ते की आबादी एक करोड़, तुम्हारे शरीर की आबादी पांच करोड़। पांच करोड़ जीवाणु। पांच करोड़ जीवंत कोष्ठ तुम्हारे शरीर का निर्माण करते हैं। यह कोई छोटी घटना नहीं है। सिर्फ शरीर की छोटी-सी सीमा को देखकर भ्रांति में मत पड़ जाना। अब तो तुम्हें जानना चाहिये कि वैज्ञानिकों ने अणु-शक्ति की खोज की--अणु, जो आंख से दिखाई नहीं पड़ता; लेकिन अणु का विस्फोट हो तो नब्बे सेकेंड में एक लाख आबादी वाला हिरोशिमा राख हो गया। जो आंख से नहीं दिखाई पड़ता, उसमें इतनी विराट ऊर्जा छिपी हो सकती है! तो देह तो बहुत बड़ी है। इसमें बड़ी विराट ऊर्जा छिपी है। इसके बड़े रहस्य हैं।
अगर तुम अंदर की तरफ मुड़ोगे तो पहला परिचय तो देह से होगा, क्योंकि देह मंदिर है। अगर मंदिर में जाओगे तो पहले मंदिर की सीढ़ियां चढ़ोगे, मंदिर की दीवालें पार करोगे, द्वार से गुजरोगे, तब अंतरगृह में पहुंच पाओगे। इसलिये पहले तो अंतर्यात्रा शुरू करो, फिर इस घर से परिचित होओ। नहीं तो मालिक से मिलना न हो सकेगा।
स्वाभाविक है, इस देह का विरोध मत करना। इसको सताने मत लग जाना। नहीं
तो समझ न पाओगे। यह प्रभु का बड़ा प्यारा वरदान है। इसको दबाना मत, सताना मत, परेशान मत करना; क्योंकि इसको दबाना, सताना, परेशान करना प्रभु का इनकार है, नास्तिकता है।
आस्तिक तो परमात्मा को धन्यवाद देगा कि कैसी प्यारी देह दी है! मिट्टी में भी कैसा रूप भरा है! पंच तत्वों में भी कैसा जादू है! परमात्मा जादूगर है। उसके जादू की सबसे बड़ी... सबसे बड़ा प्रमाण अगर कोई हो सकता है, तो तुम्हारी देह है।
वैज्ञानिक कहते हैंः जितना काम देह में होता है, अगर हमें किसी कारखाने में करना पड़े तो चार मील तक उसकी आवाज गूंजेगी। अभी तक हम उपाय नहीं खोज पाए। विज्ञान ने बहुत गति कर ली है। जमीन से आदमी को चांद पर उतार दिया। अणुबम का विस्फोट किया। और अब इतने अणुबम हमारे पास इकट्ठे हैं कि हम सारी पृथ्वी को भस्मीभूत कर सकते हैं, एक बार नहीं हजार बार। विज्ञान के इस परम विकास के बावजूद भी विज्ञान अभी इसमें सफल नहीं हो पाया है कि एक रोटी को खून में बदल दे। रोटी को खून में बदलना अभी संभव नहीं हो पाया। यह जादू तुम्हारी देह में घटता है। और इतना ही नहीं कि रोटी खून बनती है, मांस बनती है; रोटी तुम्हारा मस्तिष्क भी बनती है। रोटी तुम्हारा विचार भी बनती है। रोटी किसी अपूर्व द्वार से तुम्हारी चेतना को भी प्रज्वलित रखती है।
इसलिये तो कहा हैः भूखे भजन न होई गोपाला। भूखा आदमी भजन नहीं कर सकता। भूखे आदमी के पास भजन करने योग्य ऊर्जा नहीं होती। भजन के लिए पेट भरा होना चाहिए। इसलिये जो देश गरीब हो जाता है वहां भजन खो जाता है, या

भजन झूठा हो जाता है। इस देश में भजन कभी सच्चा था, क्योंकि देश संपन्न था। कम-से-कम रोटी-रोजी लोगों को मिल जाती थी, कोई भूखा नहीं मर रहा था। उन दिनों बुद्ध पैदा हुए, महावीर पैदा हुए, गोरख पैदा हुए, पतंजलि और कृष्ण और हमने बड़ी ऊंचाइयां लीं। कम-से-कम लोग भूखे नहीं थे। समृद्ध थे, ऐसा मैं नहीं कहता हूं, कि उनके पास कोई संपत्ति का अंबार था, ऐसा नहीं कहता हूं। लेकिन भूखे नहीं थे। देह तृप्त थी। भजन उठ सकता था।
जब कोई देश गरीब होता है तब वहां कम्युनिज्म उठता है, धर्म नहीं। तब लोग मारने-मरने को उतारू हो जाते हैं। तब घिराव होते हैं, हड़तालें होती हैं, दंगे-फसाद होते हैं, हत्यायें-हिंसायें होती हैं। तब भजन नहीं उठता। भूखा आदमी हिंसा कर सकता है, प्रेम नहीं। भूखा आदमी क्रुद्ध होता है। भूखा आदमी करुणावान नहीं हो सकता है।
इसलिए मैं तुमसे कहता हूं यह देश अगर ज्यादा दिन गरीब रह गया--जैसा कि
इस देश के नेताओं ने तय कर रखा है कि यह गरीब रहे--अगर यह देश ज्यादा दिन गरीब रह गया, तो इस देश में सिवाय कम्युनिज्म के और कोई संभावना न रह जायेगी। जाने-अनजाने यह देश कम्युनिज्म की तरफ ले जाया जा रहा है। ले जानेवाले शायद इस बात से परिचित भी न हों, होश भी न हो उन्हें, शायद वे तो यही कोशिश कर रहे हैं कि देश कम्युनिस्ट न हो जाये; मगर तुम्हारी कोशिशों का सवाल नहीं है, अगर देश गरीब रहता है तो कम्युनिज्म के सिवाय कुछ और हो नहीं सकता। भजन नहीं पैदा हो सकता।
जल्दी करो! इस देश की दीनता-दरिद्रता, इस की भुखमरी मिटानी ही होगी। नहीं तो एक बड़े गड्ढे में गिरेगा, जहां से निकलना मुश्किल हो जायेगा। अंग्रेजों की दासता से मुक्त हो जाना कठिन बात नहीं थी; एक बार यह देश अगर कम्युनिस्ट हो गया तो फिर ये गुलामी की जंजीरें तोड़ना असंभव है, करीब-करीब असंभव है। रूस जैसा देश नहीं तोड़ पा रहा है तो हम तो तोड़ ही नहीं पायेंगे। हम तो बड़ी आसानी से गुलाम हो गए थे और हम तो हजारों साल तक आसानी से गुलाम रहे। और कम्युनिज्म तो भयंकर गुलामी है। हां, रोटी मिल जायेगी, और आत्मा छिन जायेगी, मगर उस कीमत पर रोटी लेना बड़ी ग्लानि की बात होगी। रोटी पैदा की जा सकती है। थोड़ी समझ-बूझ की जरूरत है; रोटी पैदा करना कठिन नहीं है। लेकिन हमारी मूढ़ता इतनी पुरानी हो गई है कि जिन कारणों से हम गरीब हैं, उन्हीं कारणों को हम बढ़ाये चले जाते हैं; और जिन कारणों से हम गरीबी मिटा सकते हैं, उन्हीं कारणों के हम दुश्मन हैं।
इंदिरा की पराजय के पीछे यही कारण था--कुल कारण इतना था कि उसने बड़ी चेष्टा की इस बात की, कि किसी तरह देश की जनसंख्या पर नियंत्रण आ जाये। क्योंकि उसके अतिरिक्त यह देश कभी अमीर नहीं हो सकता। अमीर होना तो दूर भरपेट भी नहीं हो सकता। वही उसकी हार का कारण बना। इंदिरा की हार का कारण कुल जमा इतना था कि इस देश के ऊपर किसी तरह भी अनिवार्य-रूपेण संतति-नियमन थोपने की कोशिश की। संतति-नियमन थोपना ही होगा तो ही यह देश गरीबी से बच सकता है। साठ करोड़ आबादी हो गई है। इस सदी के पूरे होते-होते एक अरब आबादी होगी इस देश की। हमारी कोई सामर्थ्य नहीं है कि हम एक अरब आबादी का पेट भर पायेंगे। लोग रोज भूखे होते जायेंगे और जितने भूखे होते जायेंगे उतने क्रुद्ध होते जायेंगे। और जितने क्रुद्ध होते जायेंगे उतने कम्युनिस्ट होते जायेंगे। अपने-आप! यह अनिवार्य प्रक्रिया है।
इंदिरा की हार इसलिए हुई कि इंदिरा ने सचमुच ही कुछ ठीक काम करने की चेष्टा की थी। और वह काम ऐसा है कि जबर्दस्ती ही करना होगा, नहीं तो होनेवाला नहीं है। अगर तुम लोगों पर छोड़ दो तो लोग तो मानने को राजी नहीं हैं। लोगों को फिकिर ही नहीं है, लोगों को बोध ही नहीं है। वे कहते हैं, परमात्मा देता है बच्चे, हम कौन हैं रोकनेवाले? वे बच्चे पैदा करते जायेंगे--चूहों की तरह बच्चे पैदा करते जायेंगे। और देश रोज गरीब होता चला जाएगा। उनको पता नहीं है, वे क्या कर रहे हैं। जबर्दस्ती ही रोकनी पड़ेगी यह बात, तो ही रुकेगी, नहीं तो नहीं रुक सकती।
इसको अनिवार्यतः रोकना पड़ेगा। लोगों को बुरा भी लगेगा, क्योंकि उनकी पुरानी आदतों पर बाधा पड़ेगी। जिस आदमी को इसमें ही मजा था कि उसके कितने बच्चे हैं, उस पर अगर रोक डाल दोगे कि दो या तीन बस, तो वह नाराज हो जायेगा,

क्योंकि उसके पिता ने तो बारह बच्चे पैदा किये थे और वह दो या तीन बस। यह तो उसकी परंपरा में कभी होता ही नहीं रहा।
इससे पंडित-पुजारी भी नाराज होते हैं, मुल्ला-मौलवी भी नाराज होते हैं, क्योंकि उनकी संख्या कम हो रही है। उनको फिकिर इस बात की है कि मुसलमान कम न हो जायें। उनको फिकिर इस बात की है कि हिंदू कम न हो जायें। जैनियों को फिकर इस बात की है कि जैन कम न हो जायें। उनकी संख्या कम हो गई तो उनकी ताकत कम हो जायेगी। किसी को इस बात की फिकिर नहीं है कि तुम सब अपनी संख्या बढ़ा लोगे, मुसलमान भी ज्यादा, हिंदू भी ज्यादा, जैन भी ज्यादा, यह पूरा देश मर जायेगा।
ये सारे पंडित-पुरोहित, मौलवी, सब जुड़ कर इंदिरा को हराने में सहयोगी
हो गये। यह आकस्मिक नहीं था। इंदिरा का कसूर अगर कुछ था तो एक था कि उसने एक ठीक काम करने की चेष्टा की, जो इस देश की रूढ़िग्रस्त मनोदशा को अच्छा नहीं लगा। इंदिरा को हटाकर तुमने बुड्ढे-ठुड्डों को बिठाल दिया, जिनसे कोई आशा नहीं है; जिनकी कोई क्षमता नहीं है; जिनके साथ देश का कोई भविष्य नहीं हो सकता। लेकिन सब इकट्ठे हो गए--सारे प्रतिक्रियावादी, सारे प्रतिगामी। इस देश की सारी मूढ़ता इकट्ठी हो गई।
तुम देखते हो कि कैसा चमत्कार हुआ! सारी राजनैतिक पार्टियां, जिनके सिद्धांतों में कोई भी तालमेल नहीं है, जिनकी विचारधाराओं में कोई तालमेल नहीं है, सब राजी हो गए, इकट्ठे हो गए। इतने अवसरवादी दुनिया में तुम कहीं भी न पाओगे, जिन्होंने अपनी सिद्धांतवादिता, अपने सारे दर्शन, अपनी सारी बड़ी-बड़ी बातें एक क्षण में सत्ता के लिए उतार कर रख दीं। समाजवादी और कांग्रेसी और जनसंघी इकट्ठे हो गए, यह आश्चर्य की बात है। मगर आश्चर्य की नहीं भी है, क्योंकि मुसलमान, हिंदू सभी की पुराणवादिता, सभी की रूढ़िवादिता को चोट पड़ रही थी।
इस देश ने जैसे तय ही कर लिया है कि गरीब रहना है। अगर गरीब रहना है तो भजन के पैदा होने की अब कोई संभावना नहीं है। जो व्यक्ति के लिए सच है, समाज के लिए भी सच है, राष्ट्र के लिए भी सच है, पूरी मनुष्य-जाति के लिए भी सच है। तुम्हारी देह प्रसन्न होनी चाहिये, उत्फुल्ल होनी चाहिये, स्वस्थ होनी चाहिये।
इसलिये दूसरा काम योगी का है कि देह को प्रसन्न करे, स्वस्थ करे, प्रफुल्ल करे। देह फूल जैसी हो। मुस्कराती हो। आनंद-निमग्न हो। यह मंदिर प्रभु का है, इस मंदिर पर बंदनवार होने चाहिये।
लेकिन तुम्हारे तथाकथित साधु-संन्यासी तुम्हें उलटी बात सिखाते रहे हैं। उन्होंने जहर डाला है। उन्होंने सिखाया है कि देह दुश्मन है; अगर परमात्मा को पाना है तो देह को तोड़ो, सताओ, गलाओ, कांटों की सेज बिछा लो। मारो देह को; जितना मार सको उतने परमात्मा के करीब पहुंचोगे।
झूठी है यह बात। यह शत प्रतिशत झूठी है बात। तुम जितना देह को तोड़ डालोगे उतना ही मंदिर गिर जायेगा। और इसी मंदिर के गिरने में डर है कि कहीं देवता भी न दब जाये। यह मंदिर है, इसका सम्मान चाहिये। गोरख के मन में बड़ा सम्मान है देह का। इसलिये वे कहते हैंः पहले अंतर्यात्रा करो, फिर मंदिर को सम्हालो।
तो दूसरी बात घट। पहले आरंभ। घट। फिर इस घड़े को सम्हालो। इसी में तो कहीं वह छिपा है, उसकी संपदा छिपी है। योग की सारी प्रक्रियाएं इसको सम्हालने के लिए हैं। यम, नियम, प्राणायाम, प्रत्याहार... ये शरीर को तोड़ने के लिए नहीं हैं, शरीर को जोड़ने के लिए हैं, ये शरीर को सौंदर्य, स्वास्थ्य, शक्ति देने के लिए हैं। इनसे शरीर हरा होगा। उसमें फूल आयेंगे। इनके माध्यम से शरीर की जड़ें पृथ्वी में गहरी प्रविष्ट हो जायेंगी।
फिर तीसरी घटना घटती है परिचय कीः जब तुम्हारी देह सुंदर होगी, संगीतपूर्ण होगी, लयबद्ध होगी, जब तुम्हारी देह में एक छंद होगा, मस्ती होगी, तब तुम्हारा परिचय होगा चेतना से। तब तुम्हें पहली झलक मिलेगी उसकी जो इस मंदिर में छिपा है; तुम मंदिर में प्रवेश कर गए। उदास, रोते, भूखे, तुम इसमें प्रवेश न कर सकोगे। स्वास्थ्य की तरंग पर ही सवार होना होगा। पहलै आरंभ घट परचा करौ निसपती।

परिचय हो जाये तब फिर निष्कर्ष लेना, निष्पत्ति। उसके पहले मत कहना
कि ईश्वर है या नहीं। उसके पहले मत कहना कि निर्वाण है या नहीं। उसके पहले कोई निष्पत्ति मत लेना, न हां न ना, न तो आस्तिक बनना न नास्तिक बनना। क्योंकि उसके पहले ली गई निष्पत्तियां स्वानुभव पर आधारित नहीं हैं, उधार हैं, बासी हैं, दूसरों के द्वारा दी गई हैं। पता नहीं दूसरों ने ठीक दी हों, गैर-ठीक दी हों। पता नहीं दूसरे धोखेबाज रहे हों। पता नहीं दूसरे खुद धोखा खा गए हों, धोखेबाज न भी रहे हों! कौन जाने!
मनुष्य को ख्याल रखना चाहिये कि मैं अपने ही ज्ञान पर भरोसा करूंगा; मैं अपना ही आधार बनूंगा; मैं अपना दीया खुद बनूंगा। तो निष्पत्ति लेना। यह बड़ा प्यारा विचार हुआ। पहले अंतर्यात्रा, फिर देह का सुसमायोजन, फिर चेतना की प्रतीति, ध्यान, फिर समाधि निष्पत्ति।
नरवै बोध कथंत श्री गोरषजती।।
और गोरख कहते हैंः इतना तुम कर लो तो तुम्हें बोध हो जाये कि तुम सम्राट हो। मालिकों का मालिक तुम्हारे भीतर बैठा है। साहिबों का साहिब तुम्हारे भीतर बैठा है। मगर तुम दौड़े चले जाते हो। तुम न मालूम कहां-कहां दौड़ते हो--एक जगह छोड़कर तुम सब जगह दौड़ते हो।
मैंने सुनी है एक कथा कि ईश्वर ने जब पहली दफा दुनिया बनाई तो वह यहीं रहता था बीच बाजार में, एम. जी. रोड पर। स्वभावतः अपनी दुनिया बनाई थी, दुनिया के बीच में रहता था; लेकिन उसे लोग बड़ा परेशान करने लगे। शिकायतें और शिकायतें। यह ठीक नहीं, वह ठीक नहीं। और शिकायतें भी ऐसी विरोधाभासी कि उन्हें पूरा भी करना चाहे तो न कर सके। कोई कहे कि कल पानी मत गिराना, क्योंकि कल हमने कुछ कपड़े रंगे हैं, उन्हें सुखाना है। और कोई कहे कल पानी गिरा देना, क्योंकि हमने बीज बोये हैं, कहीं सूख न जायें। कोई कहे कल धूप निकाल देना, कोई कहे कल धूप न निकले; क्योंकि हम जरा यात्रा पर जा रहे हैं, छाया रहे तो अच्छा रहेगा। ईश्वर पगलाने लगा होगा। किसकी करो पूरी बात! एक की करो तो अनेक की नहीं होती। इसकी करो तो उसकी टूट जाती है। वह घबड़ा गया। उसे न दिन सोने दें लोग न रात सोने दें लोग। बीच रात में जाकर दरवाजा खटखटाने लगें कि ऐसा कर देना, कि वैसा कर देना, कि कल सुबह सूरज ही न निकले, कि जरा जल्दी निकाल देना सूरज क्योंकि खेत पर काम करना है, अंधेरे में दिक्कत होती है।
उसने अपने देवताओं को बुलाया, अपने वजीरों को बुलाया कि मुझे कुछ रास्ता बताओ, मैं पागल हो जाऊंगा। मैं कहां छिप जाऊं? मुझे मेरे लोगों से बचाओ। मैंने इन्हें बनाया, अब ये मेरी मुश्किल कर रहे हैं। मुझसे एक भूल हो गई कि मैंने आदमी बनाया।
इसलिये तुम्हें पता है, ईश्वर ने आदमी के बाद फिर कुछ नहीं बनाया। बुद्धि आ गई, अकल आ गई। उसके पहले बहुत कुछ बनाया, झाड़ बनाये, पशु-पक्षी बनाये, पहाड़-नदी, चांद-तारे, फिर आदमी; और वह जो आदमी बनाया, फिर कुछ नहीं बनाया। तब से करोड़ों साल बीत गए, ईश्वर बिल्कुल हाथ रोके बैठा है। बनाता ही नहीं कुछ। भूल ऐसी हो गई कि अब इस भूल से और आगे उसकी हिम्मत टूट गई है। तो उसने कहा, मुझे कुछ बनाना नहीं है; लेकिन जो बन गया बन गया। मैं कहां छिप जाऊं। किसी ने कहा हिमालय पर छिप जाएं, गौरीशंकर पर। उसने कहा कि जल्दी ही, तुम्हें पता नहीं है, अभी कुछ ही क्षण बीतेंगे और हिलेरी और तेनसिंग एवरेस्ट पर चढ़ जायेंगे। और एक दफा एक पहुंच गया, तो फिर पीछे बस आयेगी और होटल बनेगी और एम. जी. रोड... हेलिकाप्टर से लोग आने लगेंगे। तुमको पता नहीं है, थोड़े दिन की बात है। यह कोई हल नहीं है स्थायी।
तो किसी ने कहा चांद पर... तो उसने कहा, वह भी कुछ नहीं होगा। जल्दी ही आर्मस्ट्रांग पहुंच जायेगा। और फिर रूसी पहुंचेंगे और झंझटें खड़ी होंगी। तब एक बूढ़े देवता ने उसके कान में आकर कुछ कहा और वह प्रसन्न हो गया। उसने कहा, यह बात ठीक, यह जंचती है। उस बूढ़े ने कहा, आप ऐसा करो आदमी के भीतर छिप जाओ। आदमी चांद-तारों पर चला जायेगा, मगर अपने भीतर कभी नहीं जायेगा; उसे याद ही न आयेगी।
तब से ईश्वर तुम्हारे भीतर छिपा बैठा है--और बड़े मजे में है। कभी-कभार कोई गोरखजती पहुंच जाते हैं। मगर तब तक उनकी सब शिकायतें छूट जाती हैं। तो उनसे मिलकर परमात्मा आनंदित ही होता है। उनसे मिलकर नाचता ही है। ऐरे-

गैरे-नत्थूखैरे वहां पहुंच नहीं पाते। उनको दिल्ली जाने से फुरसत नहीं है। कोई गोरखजती, कोई गौतम बुद्ध, कोई वर्धमान महावीर... पर ऐसे लोगों से तो बैठकर उसे भी आनंद मिलता है। इनके संग-साथ में तो वह भी प्रसन्न होता है। महफिल जम जाती होगी, मधु का दौर चलने लगता होगा। रससिक्त बातें होती होंगी, कि गीत गाये जाते होंगे, कि नाच, कि मृदंग बजती होगी, कि वीणा का तार छेड़ा जाता होगा। पर परमात्मा तुम्हारे भीतर है। तुम परमात्मा हो।
नरवै बोध कथंत श्री गोरषजती।।
ऐसा अगर भीतर चलो, जरा-सा बोध ले आओ, ये चार काम पूरे कर लो, निष्पत्ति मिल जाए, जीवन को निष्कर्ष मिल जाए, जीवन को अर्थ मिल जाए।
पहलै आरंभ छांड़ौ काम क्रोध अहंकार।
और अगर आरंभ करना है इस यात्रा का तो छोड़ना होगा--काम। काम का अर्थ होता हैः दूसरे के बिना मेरा नहीं चलेगा। दूसरा चाहिए ही चाहिए। स्त्री हो तो पुरुष चाहिए, पुरुष हो तो स्त्री चाहिये। दूसरे की जरूरत है। विपरीत की जरूरत है। और विपरीत बाहर है तो पुरुष स्त्रियों के पीछे दौड़ रहे हैं, स्त्रियां पुरुषों के पीछे दौड़ रही हैं।
काम से मुक्त होने का अर्थ हैः पहले मैं यह तो देख लूं कि मैं कौन हूं? वस्तुतः मुझे दूसरे की जरूरत है या नहीं? अभी मुझे यही पता नहीं मैं कौन हूं, मैं दूसरे को खोजने चला! जो अपने से परिचय बना लेता है चकित हो जाता है, दूसरे की कोई जरूरत नहीं है। स्वयं होना पर्याप्त है।
छांड़ौ काम क्रोध अहंकार।
और जिसने काम छोड़ दिया, जिसे दूसरे की जरूरत न रही, उससे क्रोध अपने-आप छूट जाता है। क्रोध काम की छाया है। सिर्फ कामी क्रोधी होता है। क्यों? क्योंकि जिसकी कामना है उसकी कामना में अगर कोई बाधा डाल दे तो क्रोध पैदा होता है। जिसकी कोई कामना ही नहीं है, उसको तुम क्रोधित कैसे करोगे? तुम कुछ भी बाधा डालते रहो, उसकी कोई कामना नहीं है। इसलिये तुम्हारी बाधा से कोई पीड़ा नहीं होती। तुम्हारी बाधा भी बाधा नहीं मालूम होती।
जीसस ने कहा हैः जो एक गाल पर चांटा मारे, दूसरा उसके सामने कर देना।
और जो तुम्हारा कोट छीन ले, उसे कमीज भी दे देना। और जो तुमसे कहे एक मील बोझ ढो कर ले चलो, तुम दो मील चले जाना।
जिसकी कोई कामना नहीं उसे कोई अड़चन न रही। जिसे दूसरे की जरूरत ही न रही, दूसरा उसे परेशान भी नहीं कर सकता। यह बहुत समझने की बात है। तुम्हें दूसरा तभी तक परेशान कर सकता है जब तक दूसरे की तुम्हें जरूरत है। इसलिये बहुत उलझाव पैदा होता है। पति को पत्नी की जरूरत है, इसलिये पत्नी परेशान कर सकती है। पत्नी को पति की जरूरत है, इसलिये पति परेशान कर सकता है। इसलिये प्रेमी एक-दूसरे को प्रेम भी करते हैं और एक-दूसरे से नाराज भी रहते हैं और लड़ते भी हैं, झगड़ते भी हैं। क्यों? क्योंकि जिसके ऊपर हम निर्भर हैं, यह निर्भरता कष्ट देती है कि उसके हाथ में हमारी कुंजी है। हम अपने मालिक न रहे।
इसलिये प्रेमी संघर्ष करते रहते हैं इस बात का कि कौन मालिक है--मैं
कि तू? विवाह के बाद पति-पत्नी का एक ही संघर्ष है कि असली में मालिक कौन है। इसको वे कहें न स्पष्ट रूप से... स्पष्ट रूप से कहा भी नहीं जा सकता। ये तो राजनैतिक दांव-पेंच हैं। कहना नहीं पड़ता। पत्नी अपनी चालें चलती है। पति अपनी चालें चलता है। दोनों अपनी-अपनी गोटें बिठालते रहते हैं--कौन मालिक है? हर बहाने से यह सिद्ध करना है कि कौन मालिक है। पत्नी कुछ कहेगी तो पति उसका विरोध करता है, चाहे बात विरोध करने की हो या न हो। पति कुछ कहेगा तो पत्नी विरोध करती है। छोटी-छोटी बातें कि किस फिल्म को देखने चलना है, और झगड़ा।
एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन और उसकी पत्नी में बहुत झगड़ा हुआ। घंटे डेढ़ घंटे तक बड़ी गरमा-गरमी हो गई। फिर मुल्ला बाहर निकल गया। हालत ऐसी हो गई थी कि अब मारपीट की नौबत आ गई थी। बाहर निकल गया। ठंडी हवा में थोड़ा घूमा- फिरा, थोड़ा चित्त शांत हुआ। बात छोटी-सी थी--किस फिल्म में जाना? सोचा उसने कि इस छोटी-सी बात में क्या रखा है, चलो उसकी ही मान लो। थोड़ा बोध आया कि झगड़ा क्या करना। और फिर झगड़ा महंगा भी है। अभी भूख भी लगनी शुरू हो रही है। अभी वह खाना पकायेगी नहीं, अभी रात सोना भी है, वह रात सोने भी नहीं देगी।

तकिये फेंकेगी। उलटा-सीधा कुछ उपद्रव मचायेगी, कि रेडिओ जोर से लगा देगी। झंझटें एकदम आसान तो नहीं हैं, हल तो नहीं हो जातीं। तुमने जब पैदा कर दिया उपद्रव तो उसका सिलसिला चलेगा। सब सोच-समझकर, गणित बिठाकर उसने कहा, बेहतर है जिस फिल्म में जाने को कहती है उसी में चले जाना अच्छा है। अंदर आया और उसने कहा कि प्रसन्न हो जा, मैं तेरी माने लेता हूं, तू जिस फिल्म में चलने को कहती है वहीं जाते हैं। पत्नी ने उसकी तरफ देखा और उसने कहा, लेकिन अब मैंने अपना इरादा बदल दिया है। अब राजी होने से कुछ भी नहीं होगा। अब मुझे उस फिल्म में जाना ही नहीं है।
झगड़ा ही अगर मुद्दा है तो इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, यह तो निमित्त है। लेकिन प्रेमी झगड़ते हैं, मनोवैज्ञानिक कहते हैं, उसका मौलिक कारण यह है कि जैसे ही तुम किसी के प्रेम में पड़े, तुम्हें एक बात समझ में आनी शुरू हो गई कि तुम्हारा सुख दूसरे पर निर्भर है। तो दूसरा जब देगा तब देगा। दूसरा छीन ले तो छीन ले। तुम अपने मालिक न रहे। तुम गुलाम हो गये। गुलामी से पीड़ा होती है। पीड़ा से क्रोध पैदा होता है। क्रोध से संघर्षण।
काम-क्रोध साथ-साथ हैं। और जहां काम और क्रोध हैं, उन दोनों के मध्य में ही अहंकार खड़ा होता है। अगर तुम दूसरे पर जीत लिये तो अहंकार मजबूत होता है; अगर दूसरे से हार गए तो अहंकार छिप जाता है, भूमि के अंतर्गत हो जाता है। दूसरा रास्ता खोजता है कि कहीं और से जीतें।
जिसकी न कोई कामना है, न जिसका कोई क्रोध है, उसका अहंकार अपने-आप विलीन हो जायेगा। ये काम-क्रोध के दो पंख हैं, जो अहंकार के पक्षी को उड़ाते हैं।
पहलै आरंभ छांड़ों काम क्रोध अहंकार। मन माया विषै विकार।
छोड़ो यह सवाल कि बाहर से कभी कुछ मिल सकता है। कभी न किसी को कुछ मिला
है न मिलेगा। जितना मांगोगे उतना ही परेशान होओगे, उतना ही विषाद होगा।

मैंने चांद और सितारों की तमन्ना की थी
मुझको रातों की सियाही के सिवा कुछ न मिला
मैं वह नग्मा हूं जिसे प्यार की महफिल न मिली
वह मुसाफिर हूं जिसे कोई भी मंजिल न मिली
जख्म पाए हैं, बहारों की तमन्ना की थी
मैंने चांद और सितारों की तमन्ना की थी। किसी गेसू, किसी आंचल का सहारा भी नहीं रास्ते में कोई धुंधला-सा सितारा भी नहीं मेरी नजरों ने नजारों की तमन्ना की थी मैंने चांद और सितारों की तमन्ना की थी।
दिल में नाकाम उमीदों के बसेरे पाए
रोशनी लेने को निकला तो अंधेरे पाए
रंग और नूर के धारों की तमन्ना की थी
मैंने चांद और सितारों की तमन्ना की थी।
मुझको रातों की सियाही के सिवा कुछ न मिला।
किसी को भी कभी कुछ और मिला नहीं--रात की स्याही मिली है। मांगो चांद-सितारे, मांग के लिये तुम स्वतंत्र हो; लेकिन तुम्हारी मांग के अनुसार कभी कुछ होता नहीं है। मांगने के कारण तुम भिखारी हो जाते हो। भिखारी होने के कारण तुम्हारा मूल्य ही गिर जाता है। तुम परमात्मा से दूर छिटक जाते हो। तुम मालिक हो जाओ। उस मालिक से मिलना हो तो मालिक हो जाओ। मालिक से ही मालिक मिल सकता है। समानधर्माओं की मुलाकात होती है। भिखमंगे होकर तुम परमात्मा से न मिल सकोगे, मालिक होकर ही मिल सकोगे; उस जैसे ही होकर मिल सकोगे।
मालिक होने का क्या अर्थ है? कोई मांग न रही--न माया की, न काम की, न लोभ की, न धन की, न पद की, कोई मांग न रही। तुमने कहाः जैसा तूने मुझे बनाया, मैं राजी हूं। जैसा हूं उससे राजी हूं। बस ऐसा ही परिपूर्ण राजी हूं। ऐसी स्थिति में तुम्हारे भीतर सम्राट का जन्म हो जाता है। फिर तुम अगर भिखमंगे भी हो तो सम्राट हो गए। अभी तो अगर तुम सम्राट भी हो तो बस नाममात्र के, भीतर तुम भिखमंगे ही हो।

मन माया विषै विकार। हंसा पकड़ि घात जिनि करौ।

इन्हीं सबने मिलकर तुम्हारी आत्मा को पकड़कर मार डाला है। इन्होंने ही तुम्हारे भीतर के हंस की गर्दन दबा दी है।

हंसा पकड़ि घात जिनि करौ। तृस्नां तजौ लोभ परहरौ।

छोड़ो यह तृष्णा। छोड़ो यह लोभ। इन्होंने ही तुम्हें मारा। इन्हीं के जहर ने तुम्हें समाप्त किया हुआ है।

छांड़ौ दंद रहौ निरदंद।

यह दो की भाषा छोड़ो। मैं और तू की भाषा छोड़ो। निर्द्वंद्व हो जाओ। जहां तू गया, तू की आकांक्षा गई, वहां मैं भी चला जाता है। तब एक सन्नाटा रह जाता है। सन्नाटा--जैसे तूफान के बाद देखा हो। या सन्नाटा--जैसा तूफान के पहले होता है। या सन्नाटा--अगर समझ हो तो तूफान के मध्य में भी होता है। अगर बोध हो तो बाजार में भी सन्नाटा होता है। क्योंकि भीतर तो सन्नाटा सदा है, वहां तो शाश्वत शांति है। तुम्हें अगर भीतर डुबकी लगाना आ जाए तो बाहर की कोई अशांति उसे खंडित न कर पायेगी, बाहर का कोई विघ्न, विघ्न न बनेगा।

छांड़ौ दंद रहौ निरदंद। तजौ अल्यंगन रहौ अबंध।

यह दूसरे का आलिंगन छोड़ो, क्योंकि इसी आलिंगन में तुम बंध गये हो। दूसरे के कारण ही तुम्हारा जीवन कारागृह हो गया। दूसरे के कारण ही जीवन में जंजीरें पड़ गई हैं। दूसरों की ही दीवाल है, जिसमें तुम घिर गए हो।

तजौ अल्यंगन रहौ अबंध।

मुक्त होना है, स्वतंत्र होना है, आकाश जैसी स्वतंत्रता और असीमता चाहिए तो फिर निर्द्वंद्व होना सीखना पड़ेगा।

सहज जुगति ले आसण करौ।

सहज की साधना सीखो। सहज जुगति! वही है असली युक्ति। क्या है सहज की साधना? कुछ होना न चाहो। कुछ होने के कारण ही, कुछ होने की आकांक्षा से आदमी असहज होता है। जब तुम कुछ होना चाहते हो तो तुम्हारे सामने एक आदर्श हो जाता है--यह होना है!

जैसे समझो कि तुम बुद्ध होना चाहते हो, तो फिर क्या होगा? तुम अगर बुद्ध होना चाहते हो तो तुम बुद्ध का अनुकरण शुरू कर दोगे। तुम यह भूल ही जाओगे मैं कौन हूं; तुम बुद्ध का आचरण करने लगोगे। अगर तुम महावीर होना चाहते हो तो तुम महावीर जैसे नग्न खड़े हो जाओगे। यह तुम्हारी निजता न हुई। तुम कुछ होना चाहते हो, कोई आदर्श तुम्हारे जीवन में आया कि तुम झूठे हुए।

आदर्श के साथ आता है पाखंड। आदर्श का मतलब हैः भविष्य में कोई एक दूर सितारा है, वैसा मुझे होना है--कि महावीर, कि कृष्ण, कि बुद्ध। और तुम्हें पता है बुद्ध दुबारा नहीं हुए? कोई दूसरा व्यक्ति बुद्ध जैसा नहीं हो सकता, होने की जरूरत भी नहीं है। न कोई दूसरा महावीर कभी होता है। तुम तुम्हीं होने को पैदा हुए हो, कुछ और होने को पैदा नहीं हुए हो। और बुद्ध भी इसीलिये बुद्ध हो सके कि उन्होंने कृष्ण होने की चेष्टा नहीं की थी, न राम होने की चेष्टा की थी। बुद्ध बुद्ध हो सके, क्योंकि अपनी निजता में डूबे। तुम भी बस तुम ही हो सकते हो। अद्वितीय हो तुम। तुम्हारे जैसा न कोई व्यक्ति कभी हुआ है न होगा। परमात्मा पुनरुक्ति करता ही नहीं। परमात्मा कोई टूटा-फूटा ग्रामोफोन रिकार्ड नहीं है कि वही गाना, वही गाना, वही गाना चलता रहे।

परमात्मा नित्यनूतन है, प्रवाहमान है, गतिशील है। कोई गंदा डबरा नहीं है भरा हुआ कि सड़े और कीचड़ पैदा हो। बहाव है, प्रवाह है; गंगा है, बही जाती है।

असहजता पैदा होती है आदर्श से। मनुष्य पाखंडी हुआ, असहज हुआ, जटिल हुआ--आदर्शों के कारण। लोग सिखा रहे हैं एक-दूसरे को। मां-बाप सिखाते हैं बच्चों को--ऐसे हो जाओ... कि देखो तुम्हें बनना है बुद्ध जैसा, कि बनना है सिकंदर जैसा, कि बनना है ऐसा। कोई मां-बाप अपने बच्चों को नहीं कहते कि तुम्हें तुम्हीं बनना है। बचना बुद्धों से। बचना महावीरों से। वे हो गए। सुंदर थे, महिमापूर्ण थे, मगर उनसे कोई एक बात सीखनी हो तो यही सीखना कि वे अपनी निजता में जीये, तुम भी अपनी निजता में जीना। आचरण मत करना, अनुकरण मत करना। अनुकरण और आचरण आदमी को झूठा कर देते हैं, क्योंकि द्वंद्व पैदा हो जाता है। तुम कुछ हो, कुछ थोपते हो, तो दोहरी बात हो जाती है। हो कुछ, करते

कुछ हो। हो कुछ, बोलते कुछ हो। तुम्हारे कपड़े कुछ, तुम्हारी आत्मा कुछ।
तुम्हारे बाहर-भीतर के रंग में भेद पड़ जाता है। तुम्हारे भीतर खंड हो जाते हैं। और खंडित हो जाना असहज है।
सहज का अर्थ होताः अखंड जीना। तुम जैसे हो वैसे ही जीयो।
जरा सोचो इस बात को। यह बहुत बहुमूल्य बात है। तुम जैसे हो बस वैसे जीयो। बुरे तो बुरे, भले तो भले। तुम सारी दुनिया को अपनी वस्तुस्थिति से वाकिफ हो जाने दो। तुम अपने को उघाड़ दो। तुम कह दो कि ऐसा मैं हूं। यह मेरी नियति। ऐसा मुझे परमात्मा ने बनाया। उसकी ऐसी मर्जी। स्वीकार करे दुनिया तो ठीक, अस्वीकार करे तो ठीक।
जब तुम चाहोगे कि दुनिया मुझे स्वीकार करे ही, तब यह अड़चन शुरू होगी।
तब यह होगा कि दुनिया जैसा चाहेगी वैसा तुम्हें होना पड़ेगा। जब तुम चाहोगे कि दुनिया मुझे सम्मान दे तो अड़चन शुरू होगी, क्योंकि दुनिया सम्मान देगी अपनी शर्त के आधार पर। उसकी शर्तें पूरी करोगे तो सम्मान देगी। उसकी शर्तें अगर पूरी नहीं हुईं तो असम्मान करेगी।
जिस आदमी ने कुछ होना चाहा, वह भयग्रस्त हो जायेगा। जो भयग्रस्त हुआ, कमजोर हुआ, आत्मा खोई उसने। कुछ होना मत चाहना; तो तुम पर्याप्त हो। परमात्मा की दृष्टि में तुम अंगीकार हो, अन्यथा तुम होते ही नहीं। उसने तुम्हें स्वीकारा है।
जुन्नैद के जीवन में कथा है। नए गांव में आकर ठहरा जुन्नैद। सूफी फकीर था, बड़ा फकीर था। उसके पड़ोस में ही एक शरारती, उपद्रवी आदमी था। दो- चार दिन तो उसने देखा, फिर उसके बर्दाश्त के बाहर हो गया। एक सांझ प्रार्थना कर रहा था, नमाज में था, प्रार्थना के बाद उसने कहाः हे प्रभु, इस आदमी को समाप्त कर। इसकी क्या जरूरत है दुनिया में? यह मेरा पड़ोसी। यह सिवाय उपद्रव के और कुछ भी नहीं है। यह तेरे लोगों को सताता है, परेशान करता है, दुष्ट है।
जुन्नैद को कभी किसी प्रार्थना में परमात्मा का उत्तर न आया था, उस दिन आया। परमात्मा ने कहाः जुन्नैद, तू चार दिन से यहां है। मैं इस आदमी के साथ साठ साल से हूं। यह साठ साल से मेरा पड़ोसी है, क्योंकि मेरे तो सभी पड़ोसी हैं। मैं इसे साठ साल से बर्दाश्त कर रहा हूं, तू चार दिन न कर सका? और जब मैं इसे साठ साल से बर्दाश्त कर रहा हूं तो इसमें कुछ होगा, इसका कुछ राज होगा। तुझे यह तो सोचना था, कम-से-कम प्रार्थना करने के पहले, कि जो परमात्मा को स्वीकार है, उसमें तुझे क्या शिकायत हो सकती है।
यह बात प्रीतिकर है। जुन्नैद ने उस दिन से फिर किसी आदमी के सुधार की प्रार्थना भी नहीं की, क्योंकि जैसी परमात्मा की मर्जी। जैसा है ठीक है। हम कौन?
जीसस के पास कुछ लोग एक स्त्री को लाये और उन्होंने कहा कि इसने व्यभिचार किया है। और पुराने शास्त्र में लिखा है कि पत्थर मारकर इसकी हत्या कर देनी चाहिये। आप क्या कहते हैं?
जीसस नदी के किनारे बैठे थे। जीसस सोच में पड़े होंगे। पत्थर मारकर हत्या कर देना, अगर इसकी आज्ञा दें, तो हिंसा होगी। फिर जीसस के प्रेम के सिद्धांत का क्या होगा? और अगर कहें कि नहीं क्षमा कर दो, तो लोग नाराज होंगे। लोग कहेंगे, तुम हमारे पुराने धर्म का खंडन कर रहे हो, हमारे पुराने शास्त्रों का खंडन कर रहे हो। लोग यही चाहते थे असल में। लोग आये ही इसलिए थे कि अगर जीसस कहेंगे कि क्षमा कर दो इसको, तो हम ये पत्थर जीसस को ही मारेंगे, क्योंकि वे हमारे पुराने धर्मग्रंथ के खिलाफ बात कर रहे हैं। और अगर उन्होंने कहा कि मारो इसे पत्थर तो हम इस स्त्री की हत्या भी करेंगे और जीसस से कहेंगेः क्या हुआ तुम्हारे प्रेम का, तुम्हारी करुणा का? कहां गई तुम्हारी करुणा, कहां गया तुम्हारा प्रेम? सब धोखाधड़ी की बातें हैं।
मगर उन्हें पता नहीं था कि जीसस क्या उत्तर देंगे। जीसस ने कहा कि ठीक कहते हैं पुराने शास्त्र। ठीक ही कहते होंगे। उठा लो पत्थर, इस स्त्री की हत्या कर दो। लेकिन पत्थर वे ही लोग मारें, जिन्होंने कभी व्यभिचार न किया हो और कभी व्यभिचार का विचार न किया हो।

वे जो पंच गांव के आगे खड़े थे, मेयर रहा होगा और म्युनिसिपल कमेटी के मेंबर और सब, वे जल्दी से पीछे हट गए भीड़ में, कि कौन झंझट करे! गांव-भर जानता है। सबकी हरकतें जानता है। और अगर व्यभिचार न भी किया हो तो विचार तो किया ही है। ऐसा आदमी तो खोजना कठिन है जिसने व्यभिचार का विचार न किया हो; जो मोहित न हुआ हो, आकर्षित न हुआ हो। वे चुपचाच पीछे हट गए। धीरे-धीरे वे जो लोग आये थे, उनके हाथ में पत्थर थे, पत्थर उन्होंने वहीं गिरा दिये, और धीरे-धीरे लोग नदारद होने लगे। सांझ हो रही थी, सूरज ढल रहा था, सूरज के ढलते ही जैसे ही अंधेरा हुआ, लोग भाग गये वहां से। स्त्री अकेली छूट गई। उस स्त्री ने जीसस के चरणों पर सिर रखा और कहा कि आप मुझे जो भी सजा देना चाहें दें, मैं व्यभिचारिणी हूं। मैं स्वीकार करती हूं। मैं पापिनी हूं। और आपकी करुणा ने मेरे हृदय को गदगद कर दिया। आप जो भी सजा दें... ।
जीसस ने कहा कि मैं कौन हूं सजा देनेवाला? मैं तेरे और तेरे परमात्मा
के बीच कौन हूं? तू जान, तेरा काम जाने, और तेरा परमात्मा जाने। मैं कोई निर्णय नहीं लेता। अगर तुझे लगता हो कि कुछ गलत किया है तो अब मत करना। और तुझे लगता हो कि जो है वह ठीक है, तो जारी रखना। निर्णायक परमात्मा होगा। तेरे और परमात्मा के बीच अंतिम निर्णय होने वाला है, कोई बिचवइया नहीं है। तू जा।
ख्याल करते हो इस बात में? जीसस का प्रसिद्ध वचन हैः बुराई की भी निंदा मत करना। बुराई की भी! क्यों? इसलिये कि अगर परमात्मा चला रहा है तो कुछ कारण होगा। अपने भीतर जागना, जीना; लेकिन जीने का सूत्र निकलता हो निजता से।
सहज जुगति ले आसण करौ।
अगर तुम्हारा जीवन सहज हो जाये तो बस ठहर गए, आसन लग गया। यही असली आसन है। पालथी मारकर और सिद्धासन लगाना असली आसन नहीं है। वह तो कोई भी लगा ले। वह तो कवायद है। व्यायाम है, अच्छा है; करो तो शरीर के लिए स्वास्थ्य कर है; लेकिन उससे कोई आत्मा नहीं मिल जायेगी। सहजता में, निजता में जो आसन लग जाता है, तो आत्मा का अनुभव शुरू होता है।
तन मन पवना दिढ करि धरौ।।
फिर अपने-आप तन-मन, पवन, श्वास शांत होने लगती है, दृढ़ होने लगती है।
तुम सहज जीयो।
तुमने देखा, जब भी तुम झूठ बोलते हो तुम्हारी श्वास कंप जाती है।
देखना। जब भी तुम झूठ बोलोगे, तुम्हारी श्वास डांवांडोल हो जायेगी; उसकी सहजता, उसका छंद टूट जायेगा। जब भी तुम सच बोलोगे, छंद जारी रहेगा।
इसी आधार पर वैज्ञानिकों ने मशीन बना ली है--झूठ पकड़ने की मशीन। पश्चिम की अदालतों में उसका उपयोग भी शुरू हो गया है। आदमी को पता ही नहीं चलता कि उसके पैर के नीचे मशीन लगी है। उसे जब खड़ा करते हैं अदालत में तो उसके नीचे मशीन लगी है और मजिस्ट्रेट के सामने ग्राफ बनता जाता है। जैसे कार्डियोग्राम में ग्राफ बनता है, वैसे ही मजिस्ट्रेट के सामने ग्राफ बनता जाता है। उससे पूछा जाता है, इस समय घड़ी में कितने बजे हैं? वह कहता है सवा नौ। झूठ क्यों बोलेगा? घड़ी अदालत में लगी है, ग्राफ बन रहा है। उससे पूछा जाता है कि यहां कितने लोग हैं? वह गिनती कर देता है कहता है, कि पंद्रह। झूठ क्यों बोलेगा? झूठ बोल भी कैसे सकेगा? ग्राफ बन रहा है। ऐसी दो-चार बातें पूछते हैं, जिसमें वह झूठ बोल ही न सके। फिर उससे पूछते हैं, तुमने चोरी की? हृदय तो कहना चाहता है हां, क्योंकि की है तो हृदय को तो पता ही है। तो हृदय तो कहता है, हां! और वह दबाता है हां को। और खोपड़ी से कहता है कि नहीं। बस इसी में उसकी सांस डांवांडोल हो जाती है, ग्राफ डांवांडोल हो जाता है। पकड़ा गया। वह झूठ बोल रहा है।
कोई आदमी झूठ नहीं बोल सकता बिना श्वास को डांवांडोल किये। तो जो आदमी सच जीता है, सहज जीता है, उसकी श्वास अपने से थिर होती जाती है। तुम जानकर यह हैरान होओगे कि ध्यान में एक ऐसी घड़ी आती है सहजता की, कि जब श्वास बिल्कुल ठहर जाती है। बिल्कुल! अगर तुम ध्यानस्थ व्यक्ति के सामने आईना ले जाओ तो आईने पर भी श्वास की कोई छाया नहीं पड़ती, आईने पर भी कोई श्वास का धब्बा नहीं पड़ता। साधारणतः आईने को पास लाओगे नाक के तो भाफ निकल रही है, वह आईने को आच्छादित कर देगी। और इसलिये कभी-कभी ध्यान में जाता

हुआ व्यक्ति घबड़ा जाता है, कि कहीं मैं मर तो नहीं रहा हूं! घबड़ाने की कोई जरूरत नहीं। मर नहीं रहे हो, पहली बार तुम्हें जीवन का, परम जीवन का, स्पर्श हो रहा है। सब ठहर गया है, श्वास तक ठहर गई है। इतनी गहन शांति है कि हलन-चलन बंद हो गया है।
संजम चितओ जुगत अहार।
संयम का अर्थः मध्य में होना। न इस अति पर जाना न उस अति पर। न तो ज्यादा खाना न कम खाना। न ज्यादा सोना न कम सोना। मध्य में रहना।
संजम चितओ!
और जिसके चित्त में संयम आ गया, मध्य आ गया, सब सुधर गया।
जुगत आहार!
फिर युक्तिपूर्वक आहार करना। व्यर्थ का आहार मत करना। आहार शब्द बड़ा है। उसका अर्थ सिर्फ भोजन नहीं होता। आहार का अर्थ होता हैः जो भी तुम भीतर लेते हो। कोई आदमी आया और करने लगा गपशप। जो आदमी संयमी है, वह कहेगाः भाई, यह आहार मुझे मत करवाओ। मेरे कान में यह व्यर्थ की गपशप न डालो। क्या प्रयोजन? मुझे इसमें कुछ रस नहीं है। क्योंकि यह भोजन है कान का। जो आदमी युक्तिपूर्वक आहार करता है, वह कूड़ा-करकट नहीं पढ़ेगा। वह व्यर्थ की चीजें नहीं पढ़ता रहेगा। क्यों? क्योंकि वह भी आहार है। वह व्यर्थ के दृश्य भी नहीं देखेगा। वह टेलीविजन पर बैठकर मारकाट नहीं देखता रहेगा। वह फिल्म में जाकर नहीं बैठ जायेगा कि वही पिटी-पिटाई कहानियां, वही प्रेम, वही त्रिकोण और देख रहा है, फिर-फिर वही देख रहा है। इस कचरे को वह भीतर नहीं ले जायेगा। चूंकि जो भी तुम भीतर डालते हो, उससे तुम निर्मित हो रहे हो। भोजन ही नहीं है अकेली चीज आहार; सब चीजें जो तुम भीतर ले जाते हो, आहार हैं। न्यंद्रा तजौ जीवन का काल।
और ऐसा व्यक्ति मूर्च्छा छोड़ने लगेगा। निद्रा का अर्थ यह मत समझना कि
वह सोयेगा ही नहीं। सोयेगा, लेकिन अब निद्रित नहीं सोयेगा। यह जरा सोचने की बात होगी। अब निद्रित जागेगा भी नहीं। तुम तो जागे हुए भी सोये हुए हो। चले जा रहे रास्ते पर, हजार विचार चल रहे हैं, वहीं उलझे। न तो रास्ता दिखाई पड़ रहा है और न लोग दिखाई पड़ रहे हैं। चले जा रहे हैं। अगर तुमसे कोई अचानक पूछ बैठे कि तुम जिस रास्ते से गुजर कर आये हो उस रास्ते के किनारे जो वृक्ष है, उस पर फूल खिले हैं या नहीं? तुम कहोगे कि देखा ही नहीं। और वहीं से निकलते हो रोज। दफ्तर जाते रोज वहीं से, घर आते वहीं से, रोज... । फूल खिले हैं, देखा ही नहीं। देखोगे कैसे? तुम तो अपने विचारों में उलझे चले आ रहे हो।
लोग अपने विचारों में दबे चल रहे हैं। सोये चल रहे हैं। यही निद्रा है। जैसे-जैसे निर्विचार होओगे, जागरण आयेगा। तब तुम चकित होकर पाओगे कि जगत बहुत सुंदर है। आंख से धूल हट गई विचारों की तो जगत का प्रतिबिंब ठीक-ठीक बनने लगता है। विचारों की तरंगें भीतर बंद हो गईं तो झील शांत हो गई। शांत झील पर पूरा चांद उतर आता है। जगत अपूर्व रंगों से भर जाता है। लेकिन जब तक यह चित्त की धूल है तब तक जगत बासा-बासा मालूम होता है। ऐसा लगता है सब वही है।
यहां कुछ भी वही नहीं है। सब रोज नया हो रहा है। जो सूरज तुमने कल विदा किया था, ठीक सूरज आज वैसा ही विदा नहीं होगा; आज की सांझ कुछ नये रंग खिलायेगी। आज आकाश में नए बादल होंगे, नए रंग होंगे। आज के सूर्यास्त की आभा कुछ और होगी। आज का सूर्योदय भी कुछ और था। प्रतिपल सब बदल रहा है। यही तो जीवन का अर्थ है; नहीं तो सब मर गया होता। मुर्दा नहीं है अस्तित्व, अस्तित्व जीवंत प्रवाह है।
लेकिन तुम नींद में पड़े हो। तुम्हें पता ही नहीं चलता। तुम चले जा रहे हो, किसी तरह चले जा रहे हो। अभी तुम्हारा जागरण भी निद्रा है और एक ऐसी घड़ी आती है होश की, जब नींद भी होती है, शरीर सोया होता है, लेकिन भीतर एक छोटा-सा दीया होश का जलता रहता है। ऐसा कभी-कभी तुम्हारी जिंदगी में भी होता है।
जैसे किसी मां को बच्चा पैदा होता है। वर्षा है, खूब मेघ गरज रहे हैं, बिजली कौंध रही है। उसे सुनाई नहीं पड़ता। लेकिन बच्चा जरा कुनमुन करे और उसे सुनाई पड़ जाता है। मामला क्या है? आकाश में बादल गरज रहे हैं, बिजली

गिर रही है और मां को कुछ पता नहीं, वह मस्त घर्रा रही है, गहरी नींद में है। और बच्चा जरा कुनमुनाता है, तत्क्षण जग जाती है। उसके भीतर कोई जागा हुआ है, थोड़ा-सा हिस्सा जागा हुआ राह देख रहा है कि कहीं बच्चे को कोई अड़चन न हो जाए। उसका मातृत्व जागा हुआ है।
यहां तुम सारे लोग सो जाओ, फिर कोई आकर पुकारे राम, तो बाकी किसी को सुनाई नहीं पड़ेगा, लेकिन जिस आदमी का नाम राम है वह कहेगा, भाई क्यों सताते हो? सोने भी नहीं देते? किसी को नहीं सुनाई पड़ रहा है। कान में सबके पड़ा राम, लेकिन सबको इसका पता है, नींद में भी पता है, इतना पता है कि यह अपना नाम नहीं है, यह कोई और को सताने आया है। सुबह तुमसे कोई पूछे तो तुम बता भी न सकोगे कि तुम्हें सुनाई पड़ा था राम; तुम कहोगे, हमें कुछ पता नहीं है। लेकिन राम को सुनाई पड़ गया है।
मैंने सुना है, एक गांव में एक कंजूस आदमी मरा, तो उसकी पत्नी बैठी रही, रोयी नहीं। भीड़ इकट्ठी हो गई। लोग समझे कि पागल तो नहीं हो गई सदमे में। और तभी एक भिखमंगा आकर खड़ा हो गया, उसने जोर से अपना डब्बा बजाया उस मुर्दा के सामने, उसकी लाश रखी है। और जैसे ही उसने डब्बा बजाया कि वह औरत रोने लगी। मोहल्ले के लोग बड़े हैरान हुए, उन्होंने कहा, बात क्या है? उसने कहा कि अब मुझे पक्का हो गया कि वह मर गये। अगर भिखारी को देखकर घर के भीतर नहीं जा रहे हैं उठकर तो मर गए, निश्चित मर गए। अभी तक मुझे शक था कि हो सकता है मूर्च्छा में पड़े हों, मगर अब निश्चित है। कैसी ही मूर्च्छा हो, भिखारी को देखकर तो वह घर के भीतर चले जाते। अब निश्चित है कि आत्मा देह छोड़ चुकी।
तुम्हारे सामान्य जीवन में भी तुम्हें इस बात का ख्याल रहेगा कि कभी- कभी किन्हीं-किन्हीं क्षणों में कुछ चीजें तुम्हारे भीतर जागी रह जाती हैं। जैसे विद्यार्थी परीक्षा के दिनों में रात में पाता है कि थोड़ा-सा जागरण बना है, कई दफा आंख खोलकर देख लेता है कि घड़ी में कितना बजा है, सुबह तो नहीं हो गयी। परीक्षा सिर पर खड़ी है, कोई एक स्वर जागता रहता है। ये छोटे-छोटे अनुभव हैं।
योगी के भीतर सतत, सतत एक दीया जलता रहता है। इसलिये कृष्ण ने कहा है
कि और जब सब लोग सो जाते हैं... या निशा सर्व भूतायां तस्यां जागर्ति संयमी! जो सबके लिए नींद है, गहरी रात है, वह भी संयमी के लिये जागरण है। इसका मतलब यह नहीं है कि कृष्ण सोते ही नहीं थे, कि खड़े हैं रात-भर। पागल हो जाते।... कि बजा रहे हैं बांसुरी रात-भर, चाहे कोई सुननेवाला हो या न हो। खुद भी पागल हो जाते, पड़ोस के लोग भी पागल हो जाते। सोते हैं, मगर देह ही सोती है, चेतना जागती रहती है।
न्यंद्रा तजौ जीवन का काल।
यह मूर्च्छा ही तुम्हें वंचित किए है परम जीवन से। यही असली मृत्यु है। इसको छोड़ दो तो तुम्हें शाश्वत जीवन का अनुभव हो जाये।
छांड़ौ तंत मंत बैदंत।
कह रहे हैं अपने योगियों से, अपने शिष्यों से, अपने संन्यासियों से,
कि तंत्र-मंत्र, वैद्यक, इन सब उपद्रवों में मत पड़ो--कि बांध रहे ताबीज, कि दे रहे मंत्र लोगों को, कि बांट रहे जड़ी-बूटी, कि रसायन तैयार कर रहे! छांड़ौ तंत मंत बैदंत। जंत्रं गुटिका धात पाषंड।।
यह सब छोड़ो पाखंड! इस सब में मत उलझ जाओ। इसमें उलझा रहा है इस देश का साधु बहुत दिनों से। वह सब तरह के काम करता रहा है। बीमारों को दवाई भी बांटता है, चमत्कार भी करता है, खाली हाथ से विभूति निकालता है, राख बांटता है, ताबीज निकालता है, घड़ियां निकालता है। यह सब पाखंड है, क्योंकि यह सब हाथ की कलाबाजी है, ये सब जादू के काम हैं।
यह सड़क पर जादूगर करता है तो तुम एकदम उसके पैरों में नहीं गिर पड़ते
कि हे साईंबाबा! मिलन हो गया, आपकी तलाश थी! तब तुम जानते हो कि यह जादू है। जादू है, ऐसा मानकर, तुम समझते हो होगी कोई हाथ की कला। लेकिन यही कोई आदमी गैरिक वस्त्र पहन कर साधु-वेश में खड़ा हो जाए और करने लगे, बस गिरे तुम पैर पर। वही का वही है, कुछ फर्क नहीं है, कुछ भेद नहीं है।
गोरख अपने शिष्यों को कहते हैंः
छांड़ौ तंत मंत बैदंत। जंत्रं गुटिका धात पाषंड।।

जड़ी-बूटी का नांव जिनि लेहु। राज दुवार पाव जिनि देहु।।
और अगर तुम इस तरह के धंधों में पड़े, जड़ी-बूटी इत्यादि के उपद्रव में पड़े, तो आज नहीं कल तुम राजनीति में उलझ जाओगे, तुम राजद्वार में पहुंच जाओगे।
राजनीति का अर्थ होता हैः पद-प्रतिष्ठा, पद-लोलुपता। अगर इस तरह के धंधे में उलझे तो तुम पद-लोलुप हो जाओगे, नहीं तो तुम करोगे ही क्यों? यह सब आकांक्षा इसीलिये है, ताकि लोग समझें कि मैं कुछ हूं--महत्वपूर्ण, महान। साधु को तो सहज होना चाहिये। कि मैं नाकुछ हूं, कि मैं शून्यवत हूं। उसे कोई दावा नहीं होना चाहिये। चमत्कार कोई साधु कैसे दिखायेगा? चमत्कार तो केवल असाधु ही दिखा सकता है, क्योंकि चमत्कार के पीछे अहंकार को पुजवाने की आकांक्षा है।
थंभन मोहन बिसिकरन छा.ंडौ औचाट।
छोड़ो ये सब जादूगिरियां--थंभन, मोहन, सम्मोहन की कलाएं, वश में करने की कलाएं, बिसिकरन। छांड़ौ औचाट। भूत-प्रेत झाड़ना, उच्चाटन करना, यह सब व्यर्थ की बकवास छोड़ो।
सुणौ हो जोगेसरो जोगारंभ की बाट।
और कहते हैंः हे योगियो! सुनो, मैं तुमसे कहता हूं कि योगी की असली राह क्या है।
जोगारंभ की बाट!
योग के आरंभ की असली राह क्या है, मैं तुम्हें द्वार देता हूं।
और दसा परहरौ छतीस।
और सब छोड़ दो, सिर्फ उस एक को याद करो।
हर सुबह उठके तुझसे मांगूं हूं मैं तुझी को,
तेरे सिवाय मेरा कुछ मुद्दआ नहीं है।
और सब छोड़ दो, यह सब समय खराब करना है, शक्ति खराब करनी है। इस सारी ऊर्जा को एक ही प्रार्थना में डुबा दो। उसी को मांग लो, और कुछ मत मांगना।
हर सुबह उठके तुझसे मांगूं हूं मैं तुझी को,
तेरे सिवाय मेरा कुछ मुद्दआ नहीं है।
परमात्मा के अतिरिक्त तुम्हारी कोई और मांग न हो। मांग ऐसी होनी चाहिये कि उस मांग में तुम भी खो जाओ।
उसे ढूंढते मीर खोये गए,
कोई देखे इस जुस्तजू की तरफ!
यह मेरी खोज तो देखो, मीर कहते हैं। उसे खोजने निकले थे और खुद खो गए!
उसे ढूंढते मीर खोये गए,
कोई देखे इस जुस्तजू की तरफ!
यह मेरी खोज तो देखो। निकले थे खोजने और खुद खो गए!
हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराई।
बस वही एक रह जाए, तुम भी खो जाओ, तभी वह मिलेगा।
बहुत ढूंढा उसे फिर भी न पाया,
अगर पाया पता अपना न पाया।
बहुत खोजते रहे, वह नहीं मिला। तब तक नहीं मिला जब तक स्वयं न खो गए।
और जब वह मिला तो पीछे लौटकर देखा तो अपने को न पाया।
बहुत ढूंढा उसे फिर भी न पाया,
अगर पाया पता अपना न पाया।
ऐसे डूबो, एक ही आकांक्षा रह जाए, एक ही अभीप्सा रह जाए। सारी अभीप्साओं को उसी पर समर्पित कर दो। बहुत दिशाओं में यात्रा करोगे तो कहीं न पहुंचोगे। इक साधे सब सधे सब साधे सब जाये।
और दसा परहरौ छतीस। सकल विधि ध्यावो जगदीस।
बहु विधि नाटारंभ निबारि। काम क्रोध अहंकारहि जारि।।
और सब अभिनय छोड़ो। नाटारंभ! और सब नाटक बंद करो। ये सब काम-क्रोध के ही नये रूप हैं, ये अहंकार की ही नई कलायें हैं। इनसे सावधान रहो।
नैंण महा रस फिरौ जिनि देस।
आंखों में तो वासना भरी है और तुम तीर्थ-यात्राएं करते घूम रहे हो! इससे कुछ भी न होगा।

जटा भार बंधौ जिनि केस।
और कितनी ही जटायें बड़ी कर लो और कितना ही भार बांध लो जटाओं का, इससे कुछ निर्भार न हो जाओगे।
रूष बिरष बाड़ी जिनि करौ।
और चाहे कितने ही तथाकथित पुण्य करते रहो, कि वृक्ष लगवा दो रास्तों
के किनारे, बाड़ियां लगवा दो कि राहगीरों को छाया मिले... ।
कूवा निवांण शोदि जिनि मरौ।
कि कुएं खुदवा दो कि लोगों को पानी पीने मिल जायेगा; मगर ख्याल रखना, गोरख कहते हैंः
कूवा निवांण शोदि जिनि मरौ।
इन्हीं कुओं में गिर कर मरोगे। इस तरह के पुण्य से कुछ होने वाला नहीं है। ध्यान से रहित जो पुण्य है वह दो कौड़ी का है, क्योंकि वह अहंकार का ही विस्तार है। साधु भी अहंकार पकड़ लेते हैं। वे कहते हैं कि मंदिर बनवा कर रहेंगे, कि कुआं खुदवा कर रहेंगे। बैठ जाते हैं जिद करके। और जब तक उनका मंदिर न बन जाए और कुआं न खुद जाये, तब तक बैठे ही रहते हैं। आखिर लोग परेशान हो जाते हैं, उनकी छाती पर रोज खड़े हैं, किसी तरह कुछ दे-दवा कर के कुआं खुदवा देते हैं कि ठीक है भाई, मंदिर बनवा देते हैं कि ठीक है। मगर यह अहंकार का ही विस्तार है।
मैं पुण्य करूं, इसमें मैं ही भरेगा। एक और पुण्य है जो कृत्य नहीं है--जो ध्यान से जन्मता है। मैं ध्यान में लीन हो जाऊं परमात्मा में, फिर वह जो मुझसे करवा ले, मैं करने वाला नहीं हूं। उसको कुआं खुदवाना हो तो कुआं खुदवा ले, उसको झाड़ लगवाने हों झाड़ लगवा ले, स्कूल चलवाना हो स्कूल चलवा ले, अस्पताल बनवानी हो अस्पताल बनवा ले; लेकिन मैं करने वाला नहीं हूं, अब मैं केवल उपकरण मात्र हूं। पहले ध्यान। यह मत सोचना कि गोरख कह रहे हैं कि पुण्य के काम बुरे हैं। गोरख यही कह रहे हैं कि अहंकार जब तक है, तब तक पुण्य के कामों की आड़ में वही पलेगा, वही पुसेगा, वही बड़ा होगा। पहले अहंकार जाने दो, फिर पुण्य का कृत्य अपने आप आता है; तब उसमें बड़ी सुगंध है, बड़ा सौंदर्य है, बड़ा संगीत है!
जो रहीम मन हाथ है, तो तन कहु किन जाहि।
जल में जो छाया परे, काया भीजत नाहि।।
एक मन हाथ आ जाए, फिर शरीर की कोई फिकिर नहीं है। एक चैतन्य पकड़ में आ जाये, फिर शरीर की कोई फिकिर नहीं है।
जल में जो छाया परे...
जैसे कि तुम रास्ते से गुजरे और किनारे पर झील में तुम्हारी छाया पड़ी, उससे तुम्हारा कोई शरीर थोड़े ही भीग जाएगा। जल में जो छाया परे, काया भीजत नाहि। अब तुम्हारा शरीर थोड़े ही भीगता है। ऐसे ही जिसका मन वश में आ गया, मन ध्यान बन गया जिसका, अब वह कुछ भी करे, कैसा भी रहे, कहीं भी जाए, कोई परिणाम बुरा नहीं होता; उससे शुभ ही होगा, उससे अशुभ हो ही नहीं सकता। टूटै पवनां छीजै काया। आसण दिढ करि वैसो राया।।
यह शरीर तो टूट जायेगा, जल्दी श्वास उखड़ जायेगी।
टूटै पवनां!
श्वास उखड़ जायेगी।
छीजै काया!
यह काया जल्दी बूढ़ी हो जायेगी, मरण के करीब आ जायेगी। इसके पहले कि यह हो,
आसण दिढ करि वैसो राया।
ऐ राजा! ऐ सम्राट! सम्हाल लो। इसके पहले सम्हाल लो। पीछे बहुत पछताना होगा। मौत आती है, सिवाय पछतावे के हाथ कुछ नहीं रह जाता। क्योंकि जिंदगी हमने ऐसी चीजों में गंवा दी, जिनको हम साथ न ले जा सकेंगे। मौत सब छीन लेगी। सब ठाठ पड़ा रह जायेगा। और ध्यान तो कमाया नहीं, क्योंकि ध्यान मृत्यु में भी साथ जा सकता है।
ध्यान परम धन है। जिसको समाधि का अनुभव हो गया, मृत्यु उससे कुछ भी नहीं छीन सकती, क्योंकि समाधि को न शस्त्र छेद सकते हैं और न आग जला सकती है।

टूटै पवनां छीजै काया। आसण दिढ़ करि वैसो राया।।
अब तो सम्हल जाओ ऐ राजा! हो तो तुम राजा, अगर सम्हल जाओ तो अभी तुम्हें राज्य मिल जाये। जरा में, क्षणभर में घटना घट जाये।
तीरथ बर्त कदै जिनि करौ।
व्यर्थ के तीरथ-व्रतों में मत उलझे रहो। समय खराब न करो।
गिर परबतां चढ़ि प्रानमति हरौ।
और नाहक पर्वत चढ़-चढ़ कर अपने प्राणों को न सताओ, कि चले गिरनार, कि चले शिखरजी, कि चलो चढ़ें हिमालय, कि कैलाश, कि बद्रीनाथ, कि केदार। क्यों सता रहे हो प्राणों को?
गिर परबतां चढ़ि प्रानमति हरौ।
नाहक मत सताओ!
पूजा पाति जपौ जिनि जाप।
और कितना तो तुम पूजा-पाठ कर चुके। कितनी पूजा, कितना जप! कितने जाप कर चुके, हुआ क्या?
पूजा पाति जपौ जिनि जाप
जोग माहि विटंबौ आप।।
और योग भी तुम खूब कर चुके। कोई सिर के बल खड़े हैं, कोई शरीर को इरछा कर रहे हैं, कोई तिरछा कर रहे हैं। इस सबसे क्या होगा? यह सब विडंबना है। जोग माहि विटंबौ आप। नाहक विडंबनाओं में मत पड़ो।
छांड़ौ वैद बणज व्यौपार।
ये सब व्यवसाय हैं। इन व्यवसायों से सावधान हो जाओ।
पढ़िबा गुणिबा लोकाचार।
बड़ा क्रांति का सूत्र है! खूब तो पढ़ चुके, तोते तो हो गए पढ़-पढ़ कर, पंडित हो गये पढ़-पढ़ कर।
पढ़िबा गुणिबा लोकाचार।
और खूब तुमने आचरण सम्हाल कर अपने को ऊपर से रंग लिया, बड़े गुणवान हो गये और लोकाचार में भी बड़े कुशल हो। शिष्टाचार में बड़े योग्य हो, बड़े सभ्य हो गए। मगर इस सबसे कुछ भी न होगा; यह सब पड़ा रह जाएगा। यह पढ़ा-लिखा, ये गुण जो तुमने ऊपर से थोप लिये और यह लोकाचार, सब पड़ा रह जायेगा। जब जाओगे तो जो जाएगा पंछी, वह पंछी तो वैसा ही रहा, तुमने कभी उस पर कुछ ध्यान ही न दिया। बहुचेला का संग निबारि।
अभी खुद जागे नहीं हो और चेले इकट्ठे कर लिये! खुद तो जागो, फिर कोई आयेगा तो बांट देना। पहले हो तो! पहले खुद की ज्योति तो जले, फिर किसी बुझे दीये की ज्योति जला देना।
मेरे पास लोग आ जाते हैं। वे कहते हैंः हम जनता की सेवा करना चाहते हैं। मैं कहता हूंः तुम्हारी कृपा होगा, बड़ी कृपा यही होगी कि तुम सेवा न करो। अभी तुमने अपनी सेवा नहीं की।
नहीं, लेकिन वे कहते हैं कि हमने तो सुना है बिना सेवा के मेवा नहीं मिलता। मेवा पर नजर लगी है, इसलिये सेवा करना चाहते हैं! सेवा से कोई प्रयोजन नहीं है... कि सेवा करने से स्वर्ग मिलेगा। बात उल्टी हैः जिसको स्वर्ग मिल गया, उससे सेवा फलती है। जिसके भीतर स्वर्ग आ गया, उसका जीवन सेवा बन जाता है। और जिसके भीतर मेवा बरस गया, उसके कृत्यों में सेवा होती है। उलटी है बात।
आ गये पूछने कि जनता की सेवा करनी है। मैं उनसे कहता हूं कि तुम देख तो रहे हो जनता के कितने सेवक सेवा कर रहे हैं और जनता मरी जा रही है। जितने सेवक बढ़ते हैं, उतनी जनता की फांसी लगी जा रही है। कोई हाथ खींच रहा है, कोई पैर खींच रहा है, कोई गला। वे कहते हैं कि हम सब दबा रहे हैं। मगर इसकी कोई फिकिर नहीं है कि हाथ-पैर टूटे जा रहे हैं, कि जनता की गर्दन कटी जा रही है। मगर सेवक कहता हैः हम तो सेवा करके रहेंगे!
एक ईसाई पादरी ने अपने बच्चों को स्कूल में समझाया कि सेवा करनी ही चाहिये, कम से कम एक बार तो सेवा सप्ताह में करनी ही चाहिये। और तुम्हें एक सप्ताह का समय देता हूं, सेवा करके आना। अगले सप्ताह उसने पूछा कि सेवा की बच्चो? तीन बच्चों ने हाथ हिलाये। एक बच्चे ने कहा कि हां मैंने की। बहुत प्रसन्न हुआ पादरी। उसने कहाः क्या सेवा की बेटा? उसने कहा, जैसा आपने कहा

था कि कोई बूढ़ा आदमी या बूढ़ी औरत रास्ता पार करती हो तो करवा देना हाथ पकड़ कर, मैंने एक बुढ़िया को पार करवाया। प्रसन्न होकर पादरी ने कहाः शाबाश! इसी तरह सीखते रहोगे, स्वर्ग मिलेगा।
दूसरे से पूछाः तूने क्या सेवा की? उसने कहाः मैंने भी एक बुढ़िया को पार करवाया। तब थोड़ा पादरी को संदेह हुआ, मगर सोचा कि बुढ़ियों की कोई कमी तो है नहीं, मिल गई होगी। तीसरे से पूछाः तूने क्या किया? उसने कहाः मैंने भी एक बुढ़िया को सड़क पार करवाई। उसने पूछाः तुम तीनों को तीन बुढ़ियाएं मिल गईं? उन्होंने कहाः तीन नहीं थीं, थी तो एक, हम तीनों ने ही पार करवाई। तो उसने पूछा कि तीन की जरूरत थी पार करवाने में? उन्होंने कहा कि तीन की क्या, अगर छः भी होते तो बड़ा मुश्किल मामला था। बामुश्किल करवा पाये पार, क्योंकि वह पार जाना ही नहीं चाहती थी। हांफ गये। मारपीट हुई। मगर हम भी डटे रहे कि सेवा करनी है। आपने कहा कि किसी बूढ़े को रास्ता पार करवाना है और इसके बिना मेवा नहीं है। बुढ़िया ने भी बड़ी ताकत मारी। बुढ़िया भी हम धोखे में थे कि इतनी बुढ़िया है, बड़ी ताकतवर थी--और चिल्लाये और चीखे और मारे, मगर हमने करवा दिया। जब तक हम उसको उस तरफ न करवा दिये, हम भी भागे नहीं, करवा कर भाग खड़े हुए।
सेवा! तुम्हारे पास अभी मेवा नहीं है। तुम्हारे पास अभी आत्मा ही नहीं है। तुम सेवा के नाम पर कुछ न कुछ गलत करोगे। ऐसी है तुम्हारी हालत जैसे कि तुमने कभी चिकित्सा-शास्त्र तो पढ़ा नहीं और चले मरीजों की सेवा करने। तो वही हालत होगी न, मरीज मरेंगे! तुम न जाते तो शायद बच भी जाते। बीमारी से सभी नहीं मर जाते, मगर अगर कोई चिकित्सक जिसको चिकित्सा- शास्त्र का कोई अनुभव नहीं है, मरीजों की सेवा करने चला जाये और देने लगे प्रिस्क्रिप्शन और दवाइयां, तो मारेगा। बीमारी से तो बच जाते, मगर वैद्य से बचना मुश्किल हो जायेगा।
दुनिया सेवकों से बहुत परेशान हो गई है। सेवकों ने बड़ा उपद्रव कर दिया है। ख्याल रखना, असली घटना पहले स्वयं में घटनी चाहिये।
बहुचेला का संग निबारि। उपाधि मसांण बाद विष टारि।
और उपाधियों के चक्कर में मत पड़ो। संसार में उपाधियां हैं, कोई एम.ए.
है, कोई बी.ए. है, कोई बीएस.सी. है, कोई एलएल.बी. है, कोई एमड़ी. है, कोई पीएचड़ी., कोई डी.लिट, कोई डी.फिल। ये सांसारिक उपाधियां हैं। फिर साधुओं के जगत में भी उपाधियां चलती हैं--कोई महंत है, कोई मंडलाचार्य है, कोई शंकराचार्य है, कोई कुछ है, कोई कुछ है। कोई लिखता है एक सौ पांच श्री श्री, कोई लिखता है एक सौ आठ। करपात्री महाराज ने सबको मात किया, वे लिखते हैं अनंत श्री! अब इसके आगे तुम बढ़ ही नहीं सकते। जैसे छोटे बच्चे कहते हैं न, कि हम तुमसे एक ज्यादा, तुम जो भी कहोगे उससे एक ज्यादा। जिसने यह कह दिया उसने हरा दिया। अब तुम कोई भी संख्या बोलो, वह एक ज्यादा। अनंत श्री! उपाधियां... ।
तुम परमात्मा हो, तुम्हें किसी और उपाधि की जरूरत नहीं है। सब उपाधियां छोटी हैं। अब परमात्मा को और क्या उपाधि चाहिये? जिन्होंने जाना है उन्होंने तुम्हारी भगवत्ता की घोषणा की है। उन्होंने कहा, तुम भगवान हो! तुम परम हो! तुमसे पार और कुछ भी नहीं है। अब तुम क्या भगवान के बाद फिर जोड़ोगे एम.ए., एलएल.बी., पीएचड़ी.! बुद्धू मालूम पड़ोगे। सारा अस्तित्व परमात्मा से भरा है।
इसलिये कहते हैं गोरखः
उपाधि मसांण... ।
उपाधियों को तो तुम मरघट समझो।
बाद विष टारि... ।
और व्यर्थ के विवाद और शास्त्रार्थों में मत पड़ना। उनको विष की तरह त्याग दो।
येता कहिये प्रतच्छि काल... ।
अगर ऐसा न समझे, न माना, तो आखिरी समय में बहुत पछताओगे।
येता कहिये...
इसलिये कहता हूं तुमसे बार-बार।
... प्रतच्छि काल। एकाएकी रहौ भुवाल।

फिर अकेले जाना होगा न। न शिष्य साथ जायेंगे, न उपाधियां साथ जायेंगी,
न धन, न पद। अकेले जाओगे न! इसलिये अभी से जानो कि अकेले हो।
येता कहिये प्रतच्छि काल।
इसलिये कहता हूं, ताकि तुम्हें याद दिलाता रहूं बार-बार कि आखिरी समय में जैसे जाओगे वैसे ही अभी रहो। अभी से वैसे रहो। फिर तुमसे मौत कुछ भी न छीन पायेगी। फिर तुम मौत को हरा दोगे, मौत तुम्हें न हरा पायेगी।
एकाएकी रहौ भुवाल।
सभा देषि मांडौ मति ग्यांन।
लोग बड़े उत्सुक रहते हैं कि कहीं मौका मिल जाये ज्ञान दिखाने का। कोई पूछ भर ले कुछ, ज्ञान दिखाने का मौका मिल जाये। यह अज्ञानी का लक्षण है।
सभा देषि मांडौ मति ग्यांन।
देख कर कि कोई सुनने को उत्सुक है, कि कोई कुछ पूछ बैठा है, बेचारा फंस गया पूछ कर, एकदम उसकी गर्दन न पकड़ लो, एकदम अपना ज्ञान उसमें उंडेलने न लगो। जब तक कोई जिज्ञासु न हो, मुमुक्षु न हो, चुप ही रहना।
गूंगा गहिला होइ रहौ अजांण।
जब तक मुमुक्षु न मिल जाये तब तक तो बिल्कुल गूंगे हो जाओ, जैसे बोलना
ही नहीं आता। गहिला... पागल हो जाओ, कि लोग पूछें ही न अपने-आप, कि उस पगले से क्या पूछना।
गुरजिएफ के पास एक पत्रकार आया। वह उसका इंटरव्यू लेने आया था। गुरजिएफ चाय पी रहा था, पत्रकार को भी बिठाला पास में। और पास में बैठी एक शिष्या से गुरजिएफ ने कहाः आज दिन कौन-सा है? उस शिष्या ने कहाः आज रविवार है। गुरजिएफ ने जोर से मुक्का पटका टेबिल पर और कहा कि रविवार हो कैसे सकता है, कल ही तो शनिवार था! वह पत्रकार ने सुना तो उसके होश उड़ गये, कि यह आदमी है कैसा! और इतना गुस्से में आ गया कि मुक्का पीट दिया और कहा कि हो कैसे सकता है रविवार! किसको तू धोखा दे रही है? तूने समझा क्या है? कल ही शनिवार था, आज रविवार हो गया! वह पत्रकार तो उठ खड़ा हुआ। उसने कहाः नमस्कार! मैं जाता हूं!
जब वह चला गया, तब हंसी देखने जैसी थी। गुरजिएफ हंसा। शिष्य भी खूब आनंदित हुए। उन्होंने कहाः आपने भी गजब किया! उसने कहाः इस मूरख के सामने समय खराब करने से फायदा क्या है!
गहिला होइ रहौ!
यह कह रहे हैं गोरख। गोरख कहते हैं कि पागल हो जाओ अगर ऐसा दिखे कि कोई गड़बड़-सड़बड़ फालतू आदमी है... पत्रकार इत्यादि... पागल हो जाओ। वह अपने-आप ही रास्ता नाप जायेगा, फिर दुबारा आयेगा भी नहीं।
गूंगा गहिला होइ रहौ अजांण।
और बिल्कुल अज्ञानी हो जाओ। और जो जान लेते हैं वे अज्ञानी हो ही जाते हैं। और जो जान लेते हैं वे पागल हो ही जाते हैं। और जो जान लेते हैं वे गूंगे हो ही जाते हैं। क्योंकि जो जाना जाता है, कहने का कोई उपाय नहीं। गूंगे केरी सरकरा! जैसे गूंगे ने शक्कर खाई हो! जो जान लेते हैं वे पागल हो ही जाते हैं। क्योंकि जो जानते हैं वह इतना भिन्न है इस जगत के तर्क से कि इस जगत का तर्क उसे अंगीकार नहीं कर सकता। वे बावले हो ही जाते हैं। जो जान लेते हैं वे अज्ञानी हो ही जाते हैं, क्योंकि उन्हें पता चलता हैः जो जाना है, वह ऐसा है जो जाना जा ही नहीं सकता; जिसे जानकर भी जाना नहीं जा सकता। अनुभव हो जाता है, स्वाद छूट जाता है। सिद्धांत नहीं बनता।
तेरी आह किससे खबर पाइए,
वही बेखबर है जो आगाह है।
कहते हैं कि तेरे संबंध में पूछना हो तो किससे पूछें। कुछ हैं, जिन्हें पता नहीं; वे बताने को राजी हैं, मगर उनको पता नहीं। और कुछ हैं जिन्हें पता है, मगर वे बताने को राजी नहीं; वे खुद ही बेखबर हैं, क्या किसी को खबर दें!
तेरी आह किससे खबर पाइए,
वही बेखबर है जो आगाह है।
जिसको पता चल गया है वह खुद ही बेखबर हो गया है। वह बिल्कुल अज्ञानी
हो गया है।

सुकरात ने मरते वक्त कहा है कि मैं एक ही बात जानता हूं कि मैं कुछ भी नहीं जानता। यह ज्ञानी का लक्षण है।
छाड़व राव रंक की आस।
छोड़ो कुछ होने की चिंता। यहां बड़ी अजीब चिंतायें चल रही हैं; जो गरीब हैं वे अमीर होना चाहते हैं, और जो अमीर हैं वे सोचते हैं गरीब बड़े मजे में हैं। यह वचन बड़ा अदभुत है!
छाड़व राव रंक की आस।
जो रंक हैं वे राव होना चाहते हैं, जो राव हैं वे सोचते हैं रंक मजा ले रहे हैं। जो सम्राट हैं वे सोचते हैं; काश, छोड़-छाड़ कर यह सब झंझट, ले कर एक इकतारा और निकलते गांव-गांव! कैसा आनंद नहीं होगा साधु-संतों का! होती एक गुदड़ी और होता आकाश, कि मांग लेते दो टुकड़े और निश्चिंत सोते। पी लेते पानी सरोवर से, झाड़ के नीचे सो रहते। कैसा मजा नहीं होता!
जो राजा हैं, वे सोच रहे हैं कि भिखारी को बड़ा मजा है। और भिखारी सोच रहे हैं कि मारे गए, कि कब तक इसी झाड़ के नीचे पड़े रहें, कभी छप्पर बनेगा कि नहीं? कभी घी भी चुपड़ पायेंगे रोटी पर कि नहीं? कब गद्दी हासिल होगी? यहां सब परेशान हैं। जिसके पास है, वह सोचता है जिनके पास नहीं है वे आनंद में हैं। जिनके पास नहीं है, वे सोचते हैं कि जिसके पास है वह आनंद में है। गोरख कहते हैंः दोनों बातें छोड़ दो। जहां हो, जैसे हो, ठीक हो, आगे की आशा मत करो।
भिछ्या भोजन परम उदास।
जो मिल गया, जो परमात्मा ने दे दिया है--भिक्षा! जो परमात्मा ने दे दिया है, उसमें परम शांति रखो। और सब आशायें छोड़ दो। उदास का अर्थ तुम यह मत समझना कि तुम उदास हो गए, कि बैठे हैं रो रहे हैं, कि मक्खियां भिनभिना रही हैं, कि मक्खी मार रहे हैं। यह तो गोरख कह ही नहीं सकते, क्योंकि गोरख कहते हैंः
हंसिबा खेलिबा धरिबा ध्यानं। हंसै शेलै करिबा रंग!
यह तो कह ही नहीं सकते गोरख। और कोई कहे, गोरख का उदास कुछ और अर्थ रखता है। उद धन आस। जिसकी आशा छोड़ दी जिसने, वह है उदास। अब जिसको आगे की कोई आशा नहीं है। जो नहीं कहता कि कल मजा करेंगे, जब ऐसे हो जायेंगे। जो अभी मजा कर रहा है। जो कहता है कल की क्या फिक्र; कल आया न आया! कल आता कब! अभी मजा कर रहा है।
हंसै शेलै करिबा रंग!
जो अभी रंग में डूबा है। जिसकी होली अभी है। जिसकी दिवाली अभी है। जो प्रतीक्षा नहीं कर रहा कि कभी और आयेगी दीवाली।
उदास का अर्थ हैः जिसने और सब तरह की भविष्य से आशायें छोड़ दीं।
छाड़व राव रंक की आस। भिछ्या भोजन परम उदास।।
रस रसाइंन गोटिका निवारि।
छोड़ो रस रसायन। लोग सैकड़ों वर्षों से इस तरह के धंधे में लगे रहे हैं।
कोई बना रहा है साधु रसायन, कि अगर रसायन बन जाए तो लोहा सोना हो जाये; कि रसायन बन जाए तो मरणधर्मा आदमी को अमृत पिला दें, वह अमर हो जाए। यह सब छोड़ो।
रस रसाइंन गोटिका निवारि। रिधि परहरौ सिधि लेहु विचारि।।
ऋद्धि को तो छोड़ो, तो ही सिद्धि मिलेगी। यह ऋद्धि और सिद्धि का बड़ा प्यारा भेद है। ऋद्धि का अर्थः चमत्कार कर सकूं, अमृत मिल जाए, लोहे को सोना बना सकूं, आकाश में उड़ सकूं, दीवालों के पार जा सकूं। ये ऋद्धियां हैं। इन सबको छोड़ो तो सिद्धि मिले। सिद्धि तो एक है। सिद्धि का अर्थ होता हैः जो भीतर छिपा है उसमें डुबकी मार जाओ। न आकाश में उड़ने की जरूरत है, न दीवालों के पार जाने की जरूरत है। दरवाजे काफी हैं, और आकाश में पक्षी उड़ ही रहे हैं; वे कोई परमहंस नहीं हो गए हैं। और अगर तुम्हें बहुत ही दिल हो जाए तो हवाई जहाज हैं, बैठ गए।
रामकृष्ण के पास एक आदमी आया और उसने कहा कि मैं पानी पर चल सकता हूं,
आप क्या कर सकते हैं? रामकृष्ण ने कहा कि पानी पर चल सकते हो! कितना समय लगा इस कला को सीखने में?

उसने कहाः अट्ठारह साल लगे। रामकृष्ण हंसने लगे। उन्होंने कहाः रहे बुद्धू के बुद्धू! हम दो पैसा देकर नदी पार हो जाते हैं, तुम्हें अट्ठारह साल लगे, पानी पर चले, फायदा क्या है? जाओ चलो पानी पर, चलते रहो। पानी पर ही चलते हो न! नाव में बैठकर पार हो जाते हैं दो पैसा देकर। इसके लिए अट्ठारह साल गंवाये!
गोरख कहते हैंः छोड़ो इस तरह की बातें। ये सब अहंकार के ही नए-नए उपाय हैं।
परहरौ सुरापांत अरुभंग।
और छोड़ो नशे। नशा ध्यान का धोखा दे देता है। इस देश में साधु नशा करते रहे हैं सदियों से, भांग-गांजा। वेद से लेकर, सोमरस से लेकर, अब तक। अब एल. एस. डी. बन गया अमरीका में; वह सोमरस का नया वैज्ञानिक रूपांतरण है। वेद के ऋषियों से लेकर अब तक टिमोथी लीरे और अल्डुअस हक्सले तक यह आशा रही है कि नशा करने से समाधि लग जाती है। नशा करने से समाधि नहीं लगती, समाधि का धोखा पैदा हो जाता है। इतनी सस्ती अगर बात होती कि नशा कर लिया, समाधि लग गई... । हां, गांजा पी लोगे, भांग पी लोगे, शराब पी लोगे--थोड़ी मस्ती आ जायेगी, क्योंकि जीवन की चिंतायें थोड़ी देर के लिए भूल जायेंगी। मगर वे चिंतायें खड़ी हैं अपनी जगह। नशा उतरेगा; वापिस लौट आयेंगी--दुगने वेग से।
परहरौ सुरापांत अरुभंग। तातैं उपजैं नांनां रंग।
इसी सबके उपद्रव में तुम्हारे भीतर नाना प्रकार की कल्पनायें, सपने पैदा होते रहते हैं।
नारी, सारी, कींगुरी!
कामवासना छोड़ो। अगर नर हो तो नारी से मिलेगा कुछ, यह आकांक्षा छोड़ो; अगर नारी हो तो नर से कुछ मिलेगा, यह आकांक्षा छोड़ो।
नारी, सारी... ।
"सारी" कहते हैं मैना को। कई साधु यह धंधा करते रहते हैं। बैठाये हैं मैना को, मैना उठाती है कार्ड, लोगों का ज्योतिष खोलते हैं, हाथ देखते हैं, भविष्य पढ़ते हैं, जनम-कुंडली जांचते हैं। यह सब व्यर्थ की बकवास छोड़ो। कींगुरी होती है, सारंगी का नाम है। कुछ हैं जो इसी धंधे में लगे हैं
कि बस समझते हैं सारंगी बजा ली तो सब बज गया, कि सारंगी बजा ली तो सब आ गया। भीतर की सारंगी कब बजाओगे? बाहर की ही बजाते रहोगे? ये बाहर के ढोल पर ही थाप मारते रहोगे, भीतर का नृत्य कब? इसलिये कहते हैं कि बाहर के ये सब जाल छोड़ दो।
तीन्यूं सतगुर परहरी।
सदगुरुओं ने कहा हैः ये तीनों छोड़ दो।
आरंभ घट परचै निसपति।
फिर क्या करो? आरंभ करो अंतर्यात्रा का। घट! मंदिर को पहचानो। मंदिर
को सजाओ, स्वच्छ करो। शुद्ध करो। परचै! परिचय करो आत्मा का। कौन तुम्हारे भीतर विराजमान है! कौन है यह चैतन्य! कौन हूं मैं! मैं कौन हूं, इस प्रश्न को उठाओ गहरे से गहरे में। यही एक प्रश्न सार्थक प्रश्न है। और जिस दिन परिचय हो जायेगा, उस दिन तुम निष्पत्ति ले सकोगे। उस दिन तुम्हारे जीवन में निष्कर्ष आ गया। और जिसके जीवन में निष्कर्ष आ गया उसका मोक्ष आ गया। नरवै बोध कथंत श्री गोरषजती।
गोरख कहते हैंः हे सम्राटो! यही एक बोध मैं तुम्हें देना चाहता हूं।
यही एक याद देना चाहता हूं। जागो! यह जागरण तुम्हारी क्षमता है, तुम्हारी संभावना है। जैसे बीज में वृक्ष छिपा है, ऐसे ही तुममें परमात्मा छिपा है।
जु.ज मर्तबए कुल को हासिल करे है आखिर,
एक कतरा न देखा जो दरिया न हुआ होगा।
बूंद हो तुम, सागर हो सकते हो। बूंद में सागर छिपा है। और जब तक सागर न
हो जाओ, तब तक चैन मत लेना, तब तक विश्राम मत लेना। पकड़े वह अभीप्सा तुम्हें एक प्रज्वलित अग्नि की भांति। और सब भस्मिभूत हो जाये, और सब जल जाये, और सब मिट जाये--तो परम जीवन का अविष्कार हो जाता है।
मरौ हे जोगी मरौ, मरौ मरण है मीठा
तिस मरणी मरौ, जिस मरणी मरि गोरष दीठा।
आज इतना ही।

मरौ हे जोगी मरौ
दसवां प्रवचन

ध्यान का सुगमतम उपायः संगीत

पहला प्रश्नः शिष्य गुरु के साथ गद्दारी क्यों करते हैं? विजयानंद और महेश अभी आपके विरोध में कहते हैं। और एक संन्यासी, स्वामी चिन्मय ने करंट में लिखा है कि जब मेरे गुरु राजनीति के विरुद्ध में बोलते हैं तब वे धर्म से नीचे गिरते हैं; और साथ-साथ कि मैं जीवित शिष्य हूं इसलिए अपने गुरु के विरुद्ध कह सकता हूं।

मुकेश भारती! जीसस को सूली लगी, शिष्य जुदास के कारण। बुद्ध पर पहाड़
की चट्टान सरकाई गयी, शिष्य देवदत्त के कारण। महावीर को बहुत अपमान, बहुत निंदा, बहुत प्रताड़ना सहनी पड़ी, शिष्य गोशाला के कारण। यह स्वाभाविक है। जो हुआ है पहले, वही फिर भी होगा। रामलीला तो वही है, अभिनेता बदल जाते हैं। मंच भी वही है, खेल भी वही है; सिर्फ खेलनेवाले बदल जाते हैं। और जो हुआ पहले, और आज भी होगा और कल भी होता रहेगा, उसके विज्ञान को जरूर समझ लेना चाहिए।
शिष्यों की चार कोटियां हैं। पहली कोटि--विद्यार्थी की है, जो कुतूहलवश आ जाता है; जिसके आने में न तो साधना की कोई दृष्टि है, न कोई मुमुक्षा है, न परमात्मा को पाने की कोई प्यास है--चलें देखें, इतने लोग जाते हैं, शायद कुछ हो! तुम भी रास्ते पर भीड़ खड़ी देखो तो रुक जाते हो, पूछने लगते हो क्या है मामला? भीतर प्रवेश करना चाहते हो भीड़ में, देखना चाहते हो कुछ हुआ होगा... । नहीं कि तुम्हें कोई प्रयोजन है, अपने काम से जाते थे। आकस्मिक कुछ लोग आ जाते हैं। कोई आ रहा है, तुमने उसे आते देखा; उसने कहाः क्या करते हो बैठे-बैठे, आओ मेरे साथ चलो, सत्संग में ही बैठेंगे। खाली थे, कुछ काम भी न था, चले आये। पत्नी आयी, पति साथ चला आया; पति आया, पत्नी साथ चली आयी। बाप आया, बेटा साथ चला आया।
ऐसे बहुत-से लोग आकस्मिक रूप से आ जाते हैं। उनकी स्थिति विद्यार्थी
की है। वे कुछ सूचनाएं इकट्ठी कर लेंगे, सुनेंगे तो कुछ सूचनाएं इकट्ठी हो जायेंगी। उनका ज्ञान थोड़ा बढ़ जायेगा, उनकी स्मृति थोड़ी सघन होगी। ऐसे आनेवालों में से, सौ में से दस ही रुकेंगे; नब्बे तो छिटक जायेंगे। दस रुक जाते हैं यह भी चमत्कार है, क्योंकि वे आये न थे किसी सजग-सचेत प्रेरणा के कारण--ऐसे ही मूर्च्छित-मूर्च्छित किसी के धक्के में चले आये थे। पानी में बहती हुई लकड़ी की तरह किनारे लग गये थे, किनारे की कोई तलाश न थी। कितनी देर लगा रहेगा लकड़ी का टुकड़ा किनारे से? हवा की कोई लहर आयेगी, फिर बह जायेगा; उसका रुकना-न-रुकना बराबर है। लेकिन ऐसे लोगों में से भी दस प्रतिशत लोग रुक जाते हैं। जो दस प्रतिशत रुक जाते हैं, वे ही दूसरी सीढ़ी में प्रवेश करते हैं।
दूसरी सीढ़ी साधक की है। पहली सीढ़ी में सिर्फ बौद्धिक कुतूहल होता है--
एक तरह की खुजलाहट! जैसे खाज खुजाने में अच्छा लगता है, हालांकि लाभ नहीं होता, नुकसान होता है--ऐसे ही बौद्धिक-खुजलाहट से भी लाभ नहीं होता, नुकसान होता है; पर अच्छा लगता है, मीठा लगता है। यह पूछें, वह पूछें, यह भी जान लें, वह भी जान लें; अहंकार की तृप्ति होती है कि मैं कोई अज्ञानी नहीं हूं, बिना ज्ञान के ज्ञानी होने की भ्रांति पैदा हो जाती है। इसमें से दस प्रतिशत लोग रुक जायेंगे। ये दस प्रतिशत साधक हो जायेंगे।
साधक का अर्थ हैः जो अब सिर्फ सुनना नहीं चाहता, समझना नहीं चाहता, बल्कि प्रयोग भी करना चाहता है; प्रयोग साधक का आधार है। अब वह कुछ करके देखना चाहता है। अब उसकी उत्सुकता एक नया रूप लेती है, कृत्य बनती है। अब वह ध्यान के संबंध में बात ही नहीं करता, ध्यान करना शुरू करता है। क्योंकि बात से क्या होगा, बात में से तो बात निकलती रहती है। बात तो बात ही है, पानी का बबूला है, कोरी गर्म हवा है--कुछ करें! जीवन रूपांतरित हो कुछ, कुछ अनुभव में आये।

यह जो दूसरा वर्ग है, इसमें जितने लोग रह जायेंगे, इसमें से पचास प्रतिशत रुकेंगे पचास प्रतिशत खो जायेंगे। क्योंकि करना कोई आसान बात नहीं है, सुनना तो बहुत आसान है। तुम्हें कुछ करना नहीं है; मैं बोला, तुमने सुना, बात खत्म हुई। करने में तुम्हें कुछ करना होगा, सफलता सुनिश्चित नहीं है, जब तक कि त्वरा न हो, तीव्रता न हो, दांव पर लगाने की हिम्मत न हो, साहस न हो--सफलता आसान नहीं है। कुनकुने-कुनकुने करने से तो सफलता नहीं मिलेगी, सौ डिग्री पर उबलना होगा। उतना साहस कम ही लोग जुटा पाते हैं, जो नहीं जुटा पाते उतना साहस, वे सोचने लगते हैं कि कुछ है नहीं, करने में भी कुछ रखा नहीं है। यह अपने मन को समझाना है कि करने में कुछ रखा नहीं है। किया है ही नहीं, करने में ठीक से उतरे ही नहीं, उतरे भी तो किनारे-किनारे रहे, कभी गहरे गये नहीं, जहां डुबकी लगती। भोजन पकाया ही नहीं, ऐसे ही चूल्हा जलाते रहे, वह भी इतने आलस्य से जलाया कि कभी जला नहीं, धुआं इत्यादि तो उठा, लेकिन आग कभी बनी नहीं। तो धुएं में कोई कितनी देर रहेगा? जल्दी ही आंख आंसुओं से भर जायेगी। मन कहेगा, चलो भी, यहां क्या रखा है? धुआं ही धुआं है।
जहां धुआं है वहां आग हो सकती थी, क्योंकि धुआं जहां है वहां आग होगी ही। लेकिन थोड़ा और गहन प्रयास होना चाहिए था। थोड़ी और तपश्चर्या होनी थी! थोड़ा और श्रम, थोड़ा और प्रयास। जो नहीं इतना प्रयास कर पाते, पचास प्रतिशत लोग विदा हो जायेंगे; जो पचास प्रतिशत रह जायेंगे, वे तीसरी सीढ़ी में प्रवेश करते हैं।
तीसरी सीढ़ी शिष्य की सीढ़ी है। शिष्य का अर्थ होता हैः अब अनुभव में रस आया, अब सदगुरु की पहचान हुई। अनुभव से ही होती है, सुनने से नहीं होगी। सुनने से तो इतना ही पता चलेगा--कौन जाने, बात तो ठीक लगती है, लेकिन इस व्यक्ति का अपना अनुभव हो कि न हो, कि केवल शास्त्रों की पुनरुक्ति हो! कौन जाने सदगुरु सदगुरु है भी या नहीं, या केवल पांडित्य है? यह तो तुम्हें स्वाद लगेगा तभी स्पष्ट होगा कि जिसके पास तुम आये हो, वह पंडित नहीं है, या कि पंडित ही है? स्वाद में निर्णय हो जायेगा, तुम्हारा स्वाद ही तुम्हें कह देगा। अगर सदगुरु है तो तीसरी घड़ी आ गयी, तीसरी सीढ़ी आ गयी; तुम शिष्य बनोगे।
शिष्य का अर्थ हैः समर्पित। अब शंकाएं न रहीं। अब पुराना ऊहापोह न रहा। अब भटकाव न रहा। अब एक टिकाव आया जीवन में। अब नाव पर सवार हुए।
जो लोग शिष्य हो जाते हैं। इनमें से नब्बे प्रतिशत रुक जायेंगे, दस प्रतिशत इनमें से भी छिटक जायेंगे। क्योंकि जैसे-जैसे गहराई बढ़ती है साधना की, वैसे-वैसे कठिनाई भी बढ़ती है। शिष्य को अग्नि-परीक्षाएं देनी होंगी, जो कि साधक से नहीं मांगीं जातीं, और विद्यार्थी से तो मांगने का सवाल ही नहीं है। अग्नि-परीक्षा तो सिर्फ शिष्य की होती है। जो इतने दूर चला आया है, उसी पर गुरु अब कठोर होता है। कठोर होना पड़ेगा। चोट गहरी करनी होगी। अगर किसी पत्थर की मूर्ति बनानी हो तो छैनी उठाकर पत्थर को तोड़ना ही होगा। बहुत पीड़ा होगी, क्योंकि तुम्हारे ऊपर जो आवरण हैं, वे सदियों पुराने हैं। तुम्हारे ऊपर जो अज्ञान की पर्तें हैं, वे कपड़ों जैसी नहीं हैं कि निकालकर फेंक दीं और नग्न हो गये, वे चमड़ी जैसी हो गयी हैं। उन्हें उधेड़ना है, सर्जरी है।
तो दस प्रतिशत लोग तीसरी सीढ़ी से भी भाग जायेंगे। जो नब्बे प्रतिशत तीसरी सीढ़ी पर टिक जायेंगे, जो अग्नि-परीक्षा से गुजरेंगे, वे चौथी सीढ़ी पर प्रवेश करते हैं, जो कि अंतिम सीढ़ी है, वह भक्त की है। शिष्य और गुरु में थोड़ा-सा भेद रहता है। समर्पण तो होता है शिष्य की तरफ से, लेकिन समर्पण शिष्य की ही तरफ से होता है। अभी समर्पण में भी थोड़ा-सा अहंभाव जीवित होता है कि मैंने समर्पण किया, मेरा समर्पण! चौथी सीढ़ी पर "मैं" भाव बिल्कुल शून्य हो जाता है। अब भक्ति जगी, अब प्रेम जगा। अब गुरु और शिष्य अलग-अलग नहीं हैं। इस सीढ़ी से फिर कोई भी जा नहीं सकता। जो यहां तक पहुंच गया, उसका वापिस लौटना नहीं होता।
इसलिए बहुत आयेंगे, बहुत जायेंगे। जितने लोग आयेंगे उतनी ही अधिक संख्या में जाएंगे भी। इस समय मेरे कोई पचहत्तर हजार संन्यासी हैं सारी पृथ्वी पर। अब इनमें से दस-पांच छिटकेंगे, भागेंगे तो कुछ आश्चर्य की तो

बात नहीं है, कोई चिंता की बात भी नहीं है। ये पचहत्तर हजार कल पचहत्तर लाख हो जायेंगे तो और भी ज्यादा हटेंगे और छिटकेंगे। यह काम जितना बड़ा होगा, उतने ही बड़े काम के साथ उतने ही लोग छिटकेंगे। स्वाभाविक है यह अनुपात रहेगा। विद्यार्थियों में से नब्बे प्रतिशत भाग जायेंगे। साधकों में से पचास प्रतिशत भाग जायेंगे। शिष्यों में से दस प्रतिशत भाग जायेंगे। सिर्फ भक्तों में से जाना नहीं होता।
लेकिन भक्त तक आते-आते लंबी यात्रा है, जैसे कोई हिमालय चढ़े। ऊंची चढ़ाई है, बहुत पसीना होगा, बहुत थकान होगी, दम भर आयेगी। और जो भी भागेगा, उसकी भी मजबूरी है। जब वह भागता है तो उसकी मजबूरी भी समझो, मैं उसकी मजबूरी समझता हूं। जैसे तुमने पूछा है कि विजयानंद और महेश आपके विरोध में कहते हैं; कहना ही पड़ेगा। क्योंकि जो भाग गया वह यह तो नहीं कहेगा कि मैं भाग आया अपनी कमजोरी से; कि मैं योग्य नहीं था, कि मैं अपात्र था, कि मेरी क्षमता छोटी पड़ गयी, कि पहाड़ ऊंचा था; मैंने सोचा था कि छोटा टीला है, चढ़ जाऊंगा; और निकला गौरीशंकर। मैं नहीं चढ़ पाया, ऐसा तो कोई नहीं कहेगा भागा हुआ। उसको अपने अहंकार की रक्षा भी करनी होगी न! तो कोई यह तो नहीं कहेगा कि मैं हार गया इसलिए आ गया हूं। उस अहंकार की सुरक्षा के लिए मेरे विरोध में बोलना शुरू करना ही पड़ेगा। पीड़ा भी होगी, क्योंकि झूठ दिखाई पड़ेगा।
तो विजयानंद लोगों से मेरे पास खबर तो भेजते हैं कि भगवान को मेरे प्रणाम कह देना, लेकिन मेरे खिलाफ भी बोलते रहते हैं। एक द्वंद्व पैदा हो गया। भीतर से जानते हैं कि अपनी कमजोरी... नहीं चल सके साथ। तो मुझे प्रणाम भी भेजते रहते हैं और मेरे खिलाफ वक्तव्य भी देते रहते हैं। मेरे खिलाफ वक्तव्य देने पड़ेंगे, क्योंकि लोग पूछते हैं कि आपने छोड़ा क्यों? अब दो ही उपाय हैंः या तो गुरु गलत रहा हो या शिष्य गलत रहा हो। स्वाभाविक है, इतनी हिम्मत ही अगर होती कि मैं गलत हूं तो जाने की जरूरत ही न पड़ती, भागने का सवाल ही न उठता। इतनी हिम्मत नहीं थी, तो अब रक्षा तो करनी होगी।
इस बात को ख्याल में लेना। जब तुम संन्यास लेते हो तो तुम मेरे पक्ष में बोलना शुरू कर देते हो। जरूरी नहीं है कि तुम मेरे पक्ष में बोल रहे हो। संभावना यही है कि अब तुमने संन्यास लिया तो मेरे पक्ष में बोलना ही पड़ेगा। क्योंकि नहीं मेरे पक्ष में बोलोगे तो लोग कहेंगेः पागल हो, फिर संन्यास क्यों लिया? तुम्हें अपनी आत्मरक्षा के लिए बोलना पड़ेगा मेरे पक्ष में।
तो तुम जब मेरे पक्ष में बोलते हो तो जरूरी नहीं है कि मेरे पक्ष में
ही बोलते हो, बहुत संभावना तो यही है कि तुम अपने अहंकार की रक्षा के लिये बोलते हो... कि हां! मेरे सदगुरु पूर्ण सदगुरु हैं, कि वे परमात्मा को उपलब्ध हैं। तुम्हें कुछ पता नहीं है। तुम्हें क्या पता होगा अभी? जब तक तुम उपलब्ध न हो जाओ, तुम्हें कैसे पता हो सकता है? लेकिन तुम्हें मेरे पक्ष में बोलना ही पड़ेगा, मेरी स्तुति करनी पड़ेगी। उसी स्तुति में तुम अपने अहंकार की रक्षा कर सकते हो। तुम्हें सारे संदेह अपने भीतर से दबा देने होंगे, अचेतन में फेंक देने होंगे। नहीं कि संदेह नहीं उठेंगे, इतनी आसानी से संदेह थोड़े ही जाते हैं कि तुम आये, संन्यस्त हो गये और संदेह मिट गये! काश, इतना आसान होता! संदेह वर्षों तक पीछा करेंगे। संदेह लौट-लौटकर आ जायेंगे। मगर तुम किसी से कह न सकोगे; कहोगे तो भद्द होगी। अगर किसी से कहोगे कि मुझे शक है कि मेरा गुरु गुरु है भी या नहीं, तो लोग कहेंगे कि फिर तुम गुरु को स्वीकार क्यों किये हो? फिर किस लिये गैरिक वस्त्र धारण किये हैं, फिर क्यों यह माला, फिर क्यों यह स्वांग रचाया है? अब तुम बड़ी मुश्किल में पड़े, अब तुम बड़ी अड़चन में पड़े।
अगर सच-सच अपने संदेह कहो तो लोग कहेंगे तुम मूढ़ हो। इससे बचने के लिए तुम संदेहों को दबा दोगे और तुम खूब श्रद्धा की बातें करोगे। तुम चेष्टा करोगे कि मेरा जैसा गुरु कभी हुआ ही नहीं दुनिया में, क्योंकि तुम जैसा शिष्य कहीं हुआ है दुनिया में! तुम्हारे अहंकार की तृप्ति तुम्हारे गुरु की ऊंचाई से होगी। जितना ऊंचा तुम अपने गुरु को सिद्ध कर सकोगे, उतने ही बड़े तुम शिष्य हो। और तुमने जिसे गुरु चुना है वह बड़ा होना ही चाहिए; तुम जैसा आदमी छोटे-मोटे को चुनेगा!

तो यह तो जब तुम दीक्षा लोगे यह घटना घटेगी। फिर जब तुम दीक्षा छोड़ोगे, इससे उल्टी घटना घटेगी। घटनी ही चाहिए, ठीक तर्क है; एक सरणी है उसकी। अब तुम्हें बोलना पड़ेगा मेरे खिलाफ। अब तुमने जो-जो संदेह दबा लिये थे, वे सब उभरकर ऊपर आ जायेंगे। और जो-जो श्रद्धा तुमने आरोपित कर ली थी, वह सब तिरोहित हो जायेगी। अब तुम्हारे सारे संदेह अतिशयोक्ति से प्रगट होंगे। करने ही पड़ेंगे। क्योंकि जिसे तुमने छोड़ा, वह गलत होना ही चाहिये; जैसे तुमने जब पकड़ा था तो वह सही था।
तो विजयानंद पांच साल मेरे पक्ष में बोलते रहे, अब पचास साल मेरे खिलाफ बोलना पड़ेगा। वे सब जो पांच साल में दबाये हुए संदेह थे, सब उभरकर आयेंगे। और अब रक्षा करनी होगी, क्योंकि वे ही लोग जो कल कहते थे कि क्या तुम पागल हो गये हो संन्यास लेकर, अब कहेंगे कि हमने पहले ही कहा था ना कि तुम पागल हो गये हो! अब इनको जवाब देना होगा। तो अब बड़ी अड़चन खड़ी होगी। उस अड़चन से बचाव करना होगा। बचाव एक ही है कि हम भ्रांति में पड़ गये थे। या बचाव यह है कि कुछ-कुछ बातें ठीक थीं, उन्हीं बातों के कारण हम संन्यस्त हो गये थे। फिर जब संन्यस्त हुए तब धीरे-धीरे पता चला कि कुछ-कुछ बातें गलत हैं। फिर धीरे-धीरे जैसे-जैसे अनुभव बढ़ा, पता चला कि बिल्कुल गलत है। ऊपर-ऊपर की बातें ठीक हैं, भीतर-भीतर बिल्कुल गलत है।
यह आत्मरक्षा है। यह बिल्कुल स्वाभाविक है। इससे जरा भी चिंतित मत होना, इसे समझो जरूर।
महेश तो विद्यार्थी की हैसियत से आगे कभी बढ़े नहीं। कुतूहलवश आ गये थे। विजयानंद के साथ ही आ गये थे, साथ ही चले भी गये। आना एक संयोगमात्र था। न तो आये थे न गये, मेरे हिसाब में न तो कभी आये, न गये। मैंने हिसाब नहीं रखा महेश का। ऐसे लोगों का हिसाब नहीं रखना पड़ता; ये तो नदी में बहती हुई लकड़ियां हैं। लग गयीं किनारे तो कोई किनारा यह सोचने लगे कि मेरी तलाश में आकर लग गयी हैं तो गलती हो जायेगी। क्योंकि अभी आयेगा हवा का झोंका और लकड़ी बह जायेगी। विजयानंद के साथ ही आ गये थे। जब मैंने महेश को संन्यास दिया था तो विजयानंद मौजूद थे। महेश को संन्यास देने के पहले मैंने कहाः विजयानंद तुम भी पास आकर बैठ जाओ, ताकि सहारा रहे... । पास बिठा लिया था विजयानंद को, ठीक बगल में महेश के, और विजयानंद ने उनकी पीठ पर हाथ रख लिया था, तब मैंने उन्हें संन्यास दिया। क्योंकि मैं महेश को तो जानता नहीं कि इनका कोई मूल्य है, कि ये कोई जिज्ञासा से आये हैं। यह तो विजयानंद को कुछ हुआ है... ये तो विजयानंद के शिष्य हैं, मेरे नहीं।
तो स्वाभाविक था कि जब विजयानंद जायेंगे तो महेश भी जायेंगे। इनका कोई मूल्य नहीं है। विद्यार्थी की हैसियत से उनका आगे कभी जाना हुआ नहीं। विजयानंद ने जरूर चेष्टा की थी। और साधक की स्थिति आ गयी थी, थोड़ी और हिम्मत रखते तो शिष्य की घटना भी घटती। मगर अड़चनें आ गयीं, अड़चनें आती हैं। मानवीय अड़चनें हैं। समझना, तुमको भी आ सकती हैं, इसलिए उत्तर दे रहा हूं। सभी को आ सकती हैं। विजयानंद ख्यातिलब्ध हैं, बड़े फिल्म निर्देशक हैं, सारा देश उन्हें जानता है--वह अहंकार अड़चन बनता रहा। आकांक्षा थी कि उनको मैं ठीक उसी तरह व्यवहार करूं--एक विशिष्ट व्यक्ति की तरह-- वी.वी.आई.पी.। वह मुझे तोड़ना पड़ेगा, नहीं तो साधक कभी शिष्य न बनेगा। उसे मैंने तोड़ना शुरू कर दिया। रोज-रोज उन पर चोटें पड़ने लगीं। पहले वे जब भी आते थे, जिस क्षण चाहते थे मिलने को आ जाते थे। अब उनको भी समय लेना पड़ता-- दो दिन बाद, तीन दिन बाद, सात दिन बाद... । पीड़ा होने लगी, कष्ट होने लगा। अड़चन होने लगी कि उनके साथ भी और दूसरे संन्यासियों जैसा ही व्यवहार हो रहा है, विशिष्ट व्यवहार नहीं हो रहा है।
पहले मैं तुम्हारी बहुत चिंता लेता हूं। वह तो कांटे पर आटा है। मगर आटा ही आटा मछली को खिलाये जायेंगे तो मछली फंसेगी कब? जल्दी ही आटे के भीतर का छिपा कांटा प्रगट होगा। जब कांटा प्रगट होगा तब अड़चन होती है। जब मैं विजयानंद के साथ ठीक वैसा व्यवहार करने लगा जैसा सब के साथ--जो कि जरूरी था, यही सीढ़ी अगर वे गुजर गये होते, अगर उन्होंने स्वीकार कर लिया होता कि संन्यस्त जब हुआ तो विशिष्टता छोड़ देनी है, अपने को भिन्न मानने का कोई कारण नहीं है। किसी का नाम जाहिर है किसी का नाम नहीं जाहिर है, इससे कोई फर्क थोड़े ही पड़ता है, इससे कोई जीवन की अंतर्दशा थोड़े ही बदलती

है। तुम्हें कितने लोग जानते हैं इससे तुम्हारे पास ज्यादा आत्मा थोड़े ही होती है, न ज्यादा ध्यान होता है, न ज्यादा समाधि होती है। यह भी हो सकता है, तुम्हें कोई न जानता हो और तुम्हारे भीतर परम घटा हो। जानने न जानने से इसका कुछ लेना-देना नहीं है।
फिर जैसा मैंने कहा कि जैसे-जैसे तुम्हारी सीढ़ी आगे बढ़ेगी; वैसे-वैसे मैं कठोर होता जाऊंगा, वैसे-वैसे तुम्हें आग में डाला जायेगा, तभी तो निखरोगे, तभी तो कुंदन बनोगे। कुम्हार घड़े को बनाता है तो थापता है मिट्टी को, बड़ा सम्हालता है। ऊपर से चोट भी करता है, भीतर से हाथ का सहारा भी देता है। लेकिन अहंकारी को चोट ही दिखाई पड़ती है, भीतर हाथ का सहारा नहीं दिखाई पड़ता। निर-अहंकारी को भीतर हाथ का सहारा दिखाई पड़ता है, चोट की वह फिक्र नहीं करता। वह कहता है एक हाथ चोट मार रहा है कुम्हार का। दूसरा हाथ सहारा दे रहा है। यही तो रास्ता है घड़े के बन जाने का। फिर जब घड़ा बन जाता है तो कच्चे घड़े को तो कुम्हार सम्हालकर रखता है, फिर जल्दी ही आग में डालेगा। और घड़ा अगर चिल्लाने लगे कि इतना सम्हाला मुझे... इतना होशियारी से रखते थे सम्हाल-सम्हालकर कि टूट न जाऊं, फूट न जाऊं और अब आग में डालते हो? अगर कच्चे घड़ों में भी विजयानंद जैसे लोग होते, भाग खड़े होते। वे कहते हम चले... । मगर घड़े कहीं भाग नहीं सकते, इसलिये सुविधा है। मैं जिंदा घड़ों पर काम करता हूं, इसलिए कभी-कभी भाग भी जाते हैं। जब आग में डालने के दिन करीब आने लगे तो वे घबड़ा गये। साधक की हैसियत में ही भाग गये।
कुछ लोग शिष्य की हैसियत तक में जाकर भाग जाते हैं, क्योंकि जो आखिरी चोट है, वह तुम्हारे अहंकार का परिपूर्ण विसर्जन है। वह तुम्हारे व्यक्तित्व का पूरी तरह लीन हो जाना है गुरु में, जैसे बूंद सागर में लीन हो जाये। उतना दांव जो लगा सकता है लगा सकता है, अन्यथा कठिनाई हो जाती है। और, जो भी जायेगा छोड़कर, वह विरोध में बातें करेगा, निंदा भी करेगा। यह
सब स्वाभाविक है, इसकी चिंता मत लेना। जहां लाखों शिष्य होने वाले हैं, वहां इस तरह के हजारों लोग होंगे।
तुमने पूछा, कि आपके एक और संन्यासी स्वामी चिन्मय ने करंट में लिखा
है कि "जब मेरे गुरु राजनीति के विरुद्ध बोलते हैं तब वे धर्म से नीचे गिरते हैं।"
इन सज्जन को मैं जानता भी नहीं। ये मेरे शिष्य हैं भी नहीं। इन्होंने अपने को अपने ही आप शिष्य मान लिया है। ये मेरे पास आये भी नहीं। इन्होंने अपने को समझ लिया है कि ये एकलव्य जैसे शिष्य हैं। मगर एकलव्य द्रोण के पास आया था, द्रोण ने अंगीकार नहीं किया था। मगर ये तो मेरे पास आये भी नहीं, नाम भी इन्होंने अपना स्वयं ही रख लिया है। मैं इनकार करता तब भी ठीक था, ये आते तो, ये मेरी आंख के साथ आंख तो मिलाते! इनका यहां आगमन ही नहीं हुआ। इन्होंने अपने को शिष्य भी मान लिया है, और मेरे खिलाफ भी लिखना शुरू कर दिया!
इस तरह की बातें भी घटेंगी। क्योंकि देश में विक्षिप्त लोग भी हैं-- सारी दुनिया में हैं, इस तरह के पागल भी हैं। शिष्यत्व, एकतरफा बात नहीं है; दोतरफा बात है। तुम्हारे लेने से ही नहीं हो जाता शिष्यत्व, मैं दूंगा तभी होगा। तुम्हारे मानने से होने लगे तब तो बड़ी मुश्किल हो जायेगी। और तब इस तरह की दुर्घटना घटेगी।
ये सज्जन मुझे समझते भी नहीं। इनको कुछ पता भी नहीं है कि मैं क्या कह रहा हूं, यहां क्या हो रहा है? इन्होंने तो बस मान लिया। इस तरह की घटना भी घटेगी। क्योंकि जब मेरे संन्यासी बढ़ते जायेंगे और एक हवा पैदा होगी, तो इस हवा में, इस लहर में कई लोग कपड़े रंग लेंगे, मालाएं बना लेंगे, अपने को घोषणा कर देंगे। लोग तो उगते सूरज के साथ हो जाते हैं। उसमें से भी लाभ निकालने लगते हैं।
तो इन सज्जन का तो कोई मूल्य नहीं है। और इनके वक्तव्य का तो बिल्कुल
ही मूल्य नहीं है। क्योंकि इन्हें कुछ पता ही नहीं कि मेरी जीवन-दृष्टि क्या है!
धर्म कोई विषय थोड़े ही है। धर्म की कोई सीमा थोड़े ही है। धर्म तो समस्त जीवन का नाम है। जीवन में जो कुछ भी समाविष्ट है, धर्म उस सभी के संबंध में वक्तव्य देने का हकदार है। राजनीतिज्ञ धर्म के संबंध में

वक्तव्य नहीं दे सकता, क्योंकि राजनीति की सीमा है; लेकिन धार्मिक व्यक्ति राजनीति के संबंध में वक्तव्य दे सकता है, क्योंकि धर्म की कोई सीमा नहीं है। धर्म असीम है। धर्म तो पूरे जीवन को घेरता है, जैसे आकाश घेरता है... । धर्म से तो कोई भी चीज छोड़ी नहीं जा सकती। धार्मिक व्यक्ति की दृष्टि तो सब संबंधों में होगी।
मैं काव्य पर भी बोलूंगा, क्योंकि धर्म की एक काव्य-दृष्टि भी है। इसलिए हमने इस देश में कवियों को दो नाम दिये हैं--कवि और ऋषि। ऋषि हम उस कवि को कहते हैं जिसकी कविता में धर्म बोलता है; जिसकी कविता में ईश्वर का अनुभव बोलता है। जिसने काव्य को धर्म में रंग दिया, उसको हम ऋषि कहते हैं। जैसे रवीन्द्रनाथ को ऋषि कहना चाहिए, कवि नहीं। उनकी गीतांजलि का वही मूल्य होना चाहिए जो किसी भी उपनिषद का है। वे ऋषि हैं। उन्होंने जो कहा है वह सिर्फ मात्रा, छंद, व्याकरण और भाषा का ज्ञान नहीं है। उन्होंने जो कहा है उसमें एक अनुभव की धार है, एक रस बहा है। रस--जो उनका नहीं है! रस--जो उनके ऊपर से आ रहा है। वे तो केवल जैसे माध्यम हैं। जैसे बांसुरी किसी के ओंठ पर रखी बजती है। बांसुरी को यह भ्रांति पैदा हो जाये कि ये स्वर मेरे हैं, तो कवि। और बांसुरी को यह पता चलता रहे कि स्वर किसी और के हैं, मैं जिसके ओंठ पर रखी हूं उसके हैं, तो ऋषि। रवीन्द्रनाथ को यह बोध निरंतर रहा है कि जो मैं गा रहा हूं वह ओंठ पर मेरे है, मगर गीत किसी और का है। मैं सिर्फ उपकरण हूं, निमित्तमात्र हूं।
तो मैं तो काव्य पर भी बोलूंगा। मैं तो कला पर भी बोलूंगा, क्योंकि कला का भी एक धार्मिक आयाम है। जैसे अजंता, एलोरा, खजुराहो, कोणार्क, भुवनेश्वर के मंदिर, पुरी के मंदिर।
तुम जानकर हैरान होओगे कि ताजमहल भी सूफी आधारों पर निर्मित हुआ है। इतिहास में उसकी चर्चा नहीं की जाती, क्योंकि इतिहास जो लोग लिखते हैं उनको इतनी गहराई तक न समझ होती है, न चेष्टा करते हैं। उन्होंने तो समझा कि बस है किसी सम्राट की अपनी प्रेयसी के लिए बनाई गई याददाश्त, बात खत्म हो गयी। लेकिन इसकी खोज में कभी गये नहीं कि सम्राट ने बड़े सूफी संतों से सलाह-मश्विरा किया। ताजमहल को इस ढंग से बनाया गया है कि अगर पूरे चांद की रात में तुम घंटे-भर बैठकर उसको सिर्फ देखते रहे तो ध्यानस्थ हो जाओगे। वह अदभुत धार्मिक कला का नमूना है। एक विशिष्ट दशा में, एक विशिष्ट भाव से और एक विशिष्ट कोण से अगर तुम देखोगे तो ताजमहल मंदिर है, मकबरा नहीं। देखने- देखने की बात है।
बुद्ध की और महावीर की जो हमने प्रतिमाएं बनाई हैं, वे प्रतिमाएं केवल मूर्तिकला के सबूत नहीं हैं। मूर्तिकला गौण है; उन प्रतिमाओं में हमने बुद्धत्व को समाने की कोशिश की है। अगर तुम बुद्ध की प्रतिमा के सामने बैठकर उसे अपलक निहारते रहोगे, तो जल्दी ही तुम पाओगे तुम्हारे भीतर भी कोई चीज थम गई, ठहर गई। तुम्हारे विचार की प्रक्रिया रुक गयी, तुम्हारे भीतर धीरे से निर्विचार आ गया। उस प्रतिमा के रूप में, ढंग में, रंग में, तुम्हारे भीतर ध्यान को उपजाने की व्यवस्था है। वह प्रतिमा एक यंत्र है, जिससे तुम्हारे भीतर ध्यान को प्रेरणा दी जा सकती है।
तो मैं मूर्तिकला पर भी बोलूंगा। मैं तो जीवन के हर अंग पर बोलूंगा। क्योंकि मैं धार्मिक हूं, इसलिए मेरे लिये जीवन का कोई अंग अछूता नहीं है, अछूता नहीं छूटेगा। मैं किसी हिस्से को अछूत नहीं मानता। मैं राजनीतिज्ञ नहीं हूं, लेकिन राजनीति पर बोलूंगा। मैं धार्मिक हूं, इसलिये बोलूंगा।
क्योंकि राजनीति सिर्फ राजनीति ही तो नहीं है, उससे तुम्हारे जीवन का बहुत कुछ निर्धारित होगा। उस निर्धारण में तुम्हारा धर्म भी प्रभावित होगा।
अब जैसे समझो कि भारत ने एक राजनीति तय कर ली--धर्मनिरपेक्षता की। इसका परिणाम धर्म पर होने वाला है। यह बात गलत है। कोई राष्ट्र धर्मनिरपेक्ष नहीं होना चाहिए। हां, किसी विशिष्ट संप्रदाय का प्रभुत्व न हो यह ठीक है, लेकिन धर्मनिरपेक्ष तो कैसे कोई राज्य हो सकता है? हिंदू न हो, मुसलमान न हो, यह तो ठीक है। होना ही नहीं चाहिए हिंदू और मुसलमान। लेकिन एक अति है कि राष्ट्र हिंदू हो जाता है, कि मुसलमान हो जाता है; दूसरी अति है कि राज्य अधार्मिक हो जाता है कि हमें धर्म से कुछ लेना-देना

नहीं। आदमी के प्राण का इतना बहुमूल्य हिस्सा--और तुम कहोगे हमें उससे कुछ लेना-देना नहीं! उसके घातक परिणाम होंगे। राज्य को धर्म की तरफ सुविधा बनानी ही होगी। राज्य को धार्मिक नहीं होने की जरूरत है हिंदू-मुसलमान के अर्थ में; मगर धार्मिक होने की जरूरत है इस अर्थ में कि देश में ध्यान बढ़े, प्रेम बढ़े, शांति बढ़े। लोगों के जीवन में योग उतरे। लोगों के जीवन में एक अंतरंग अनुशासन जन्मे। लोगों के भीतर आत्मा पैदा हो।
तो मैं तो विरोध करूंगा धर्मनिरपेक्ष राज्य का। राज्य को तो धर्म को वैसे ही गति देनी चाहिए जैसे माली पानी सींचता है वृक्षों में, ताकि फूल खिलें; चेतना के फूल खिलेंगे नहीं अन्यथा। फिर लाख तुम उपाय करते रहो कि लोग नैतिक हो जायें, लोग सदाचारी हो जायें, सचरित्र हो जायें; वे सब उपाय असफल हो जायेंगे। क्योंकि फूल खिलेंगे ही नहीं, तुमने जड़ों को पानी ही न दिया।
धर्म जड़ है जीवन की सारी नीति की। और अगर राज्य धर्मनिरपेक्ष है तो राजनीति नीति तो बिल्कुल नहीं होगी, अनीति हो जायेगी। वही हुआ है।
तो मैं तो राजनीति की आलोचना करूंगा, समस्त बुद्धों ने की है। समस्त बुद्धों के वक्तव्य हैं। जीसस को सूली न लगाई गयी होती, अगर उन्होंने उस समय की राजनीति का विरोध न किया होता। राजनीति महत्वाकांक्षा से चलती है। राजनीति एक रोग है। और दुनिया को राजनीति से धीरे-धीरे मुक्त करना है। क्योंकि जितनी ऊर्जा राजनीति में लग जाती है, वही ऊर्जा धर्म में लगे तो लोगों के जीवन में बड़ा आनंद, बड़ा उत्सव फले।
तो जो व्यक्ति कहता है कि चूंकि मैंने राजनीति के विरोध में कुछ कह दिया, इसलिए धर्म से नीचे गिर गया, उसे न तो धर्म का पता है न राजनीति का पता है। और मेरा तो उसे बिल्कुल पता नहीं है। धर्म में पहुंचकर कोई गिरता थोड़े ही है! और जो गिर जाये वह पहुंचा ही नहीं। जो पहुंच गया, पहुंच गया, गिरने का कोई उपाय नहीं। मैं नर्क में भी चला जाऊं तो जो मैं हूं वही रहूंगा, गिरने का कोई उपाय नहीं है।
एक पंडित रमण के पास आया और बहुत सिर खाने लगा, शास्त्रों की बातें करने लगा। रमण ने उसे बार-बार कहा कि भाई मेरे, ध्यान करो। इस सब से कुछ भी नहीं होगा, यह सब बातचीत है और बेकार है। समय मत खराब करो, ऐसे ही तुम्हारी जिंदगी बीत गयी। मगर वह भी शास्त्री था, उसने कहाः "आप क्या कह रहे हैं, बेकार है? यह वेद का वचन है।" और प्रमाण देने लगा। और रमण ने कहा कि अच्छा है, सब ठीक है, मगर तुम ध्यान तो करो। उसने कहा कि पहले इस संबंध में बातचीत होगी तभी ध्यान करूंगा। वह जिद्द पकड़े ही रहा, रमण उससे कहते रहे कि ध्यान करो। वे एक ही बात कहते थे कि ध्यान करो, और कुछ कहने को है भी नहीं। जब वह नहीं माना तो उन्होंने उठा लिया अपना डंडा... । वह आदमी घबड़ाया। उसने कभी सोचा नहीं था कि रमण और डंडा उठायेंगे। और रमण उसके पीछे दौड़े।... जरा सोचो महर्षि रमण को डंडा लिये, एक पंडित के पीछे दौड़ते... । अनेक रमण के अनुयायियों में बड़ा संदेह पैदा हो गया कि रमण और डंडा उठायें और क्रोधित हो जायें! यह तो पतन हो गया! कहीं ऐसा होता है?
क्योंकि हमने धारणाएं बना ली हैं कि जो आदमी बुद्धत्व को उपलब्ध हो गया है वह डंडा थोड़े ही उठायेगा! हमें कुछ पता ही नहीं है। बुद्धत्व को उपलब्ध व्यक्ति भी डंडा उठाता है, हालांकि उसका डंडा उठाना तुम्हारे डंडा उठाने से बहुत भिन्न होता है... उठा सकता है वह। रमण उसे खदेड़कर भीतर आ गये, खूब खिलखिलाकर हंसने लगे... । किसी ने पूछाः यह आपने क्या किया? उन्होंने कहाः मैं और क्या करता? लातों की देवी बातों से मानती ही नहीं। वह सिर खाये ही जाता था। वह हटनेवाला था ही नहीं; वह डंडे की ही भाषा समझ सकता था। रमण क्रोधित नहीं हुए हैं। रमण और क्रोधित हों, यह संभव ही नहीं है। रमण अगर क्रोधित हो भी जायें, तुम्हें दिखाई पड़ें क्रोधित होते, तो भी क्रोधित नहीं होते।
तुमने जीसस की कहानी तो सुनी है न! कि उन्होंने उठा लिया था कोड़ा, घुस गये थे मंदिर में, और मंदिर में जिन लोगों ने ब्याज की दुकानें खोल रखीं थीं उनके तख्ते उलट दिये थे। कोड़े मार कर उनको खदेड़कर बाहर कर दिया था... । अब जरा सोचो कि जीसस और कोड़े उठा कर लोगों को खदेड़ दें यह बात तो जंचती

नहीं, फिर यह कैसा पहुंचा हुआ सिद्ध-पुरुष हुआ! तो यह भी क्रोधित हो गया तो धर्म से पतन हो गया।
मैं तुमसे कहता हूं कि जिसको डर है धर्म से पतित होने का, उसे तो धर्म
का पता ही नहीं है। वहां से कोई पतित थोड़े ही होता है। वह तो परम जागरण है, आत्यंतिक दशा है। वहां तो जो एक बार पहुंच गया, मिट ही गया। रमण ने डंडा हाथ में उठाया, यह बात ही कहना गलत है--परमात्मा ने ही डंडा हाथ में उठाया; रमण अब तो हैं ही नहीं। और जीसस ने कोड़े मारे यह बात भी गलत है। जीसस तो अब हैं ही नहीं, परमात्मा ने ही कोड़ा उठाया, जीसस के हाथों का उपयोग किया।
तो मैं अगर कभी कोई कठोर वक्तव्य दे देता हूं तो जो नहीं समझते वे कहेंगे अरे, इतनी कठोर बात कह दी! ऐसी बात किसी प्रज्ञापुरुष को कहनी चाहिए? उनकी धारणाएं हैं। और इस देश में तो बड़ी धारणाएं हैं। तुमने तो ऐसी धारणाएं बना ली हैं कि अगर तुम्हारी धारणा को मानकर कोई चले तो वह और कुछ हो सकता है, प्रज्ञापुरुष तो नहीं हो सकता। उसमें तो तुम इतनी जंजीरें डाल दोगे, उसका जीना ही मुश्किल कर दोगे।
अब थोड़ा सोचो, रमण अगर धोखेबाज होते तो सोचते वे, थोड़ी कूटनीति करते
कि डंडा उठाना कि नहीं उठाना? सोचते कि डंडा उठाऊंगा तो लोग क्या कहेंगे। ऐसा सोचकर डंडा न उठाते तो मैं कहता प्रज्ञापुरुष नहीं थे। लेकिन सहज छोटे बच्चे की भांति डंडा उठा लिया। जो जब जैसा जरूरी था, जिस परिस्थिति में उनके चैतन्य में जो भाव आविर्भूत हुआ, उसके अनुकूल जीये--न चिंता की कि तुम क्या सोचोगे, कि तुम क्या कहोगे।
मैं तुम्हारी चिंता नहीं करता कि तुम क्या सोचोगे, तुम क्या कहोगे। मुझे जो सहज है, उस ढंग से जीता हूं। जो मुझे सहज कहना है, कहता हूं। जो कहा जाता है, कहता हूं। जो होता है, होने देता हूं। तुम्हारी धारणाएं तुम समझो। तुम्हें ठीक लगे ठीक, तुम्हें गलत लगे गलत; मेरी तरफ से न कुछ अब गलत है, न कुछ अब ठीक है।
ये सज्जन जिन्होंने अपना नाम स्वामी चिन्मय रख छोड़ा है, मेरे शिष्य नहीं हैं, न उन्हें मैं क्या कह रहा हूं इसका कोई अनुभव है। मगर इस तरह की बातें होंगी। झूठे शिष्य भी पैदा हो जायेंगे, झूठे दावेदार भी पैदा हो जायेंगे। यहां से संन्यासियों की मालाएं चोरी चली जाती हैं। मालाएं कौन चुरा ले जाता है! बड़ी हैरानी की बात है--मालाओं को चुराकर करोगे क्या? लेकिन मालाएं चुराकर चले गये तो वे मेरे संन्यासी हो गये, मैंने उन्हें संन्यास दिया नहीं। गैरिक वस्त्र तो वे बना लेंगे, माला की दिक्कत थी वह उन्होंने चुरा ली। अब वे चले गांव-गांव... यहां खबरें आती हैं कि आपका संन्यासी इस गांव में आया और चंदा ले गया। उसने कहा कि आश्रम को बड़ी जरूरत है। यह भी होगा। अब उसके पास माला होती है तो लोग मान लेते हैं कि ठीक है, आश्रम के द्वारा आया होगा, संन्यासी उनका है। तो ऐसे कोई दस संन्यासियों की खबरें आयी हैं, जो पैसे इकट्ठे कर रहे हैं। एक ने तो हजारों रुपये इकट्ठे कर लिये हैं--कोई चालीस हजार रुपये--तब पकड़ में आया वह, कि वह मेरा संन्यासी ही नहीं है।
सावधान रहना, इस तरह की घटनाएं स्वाभाविक हैं। जहां इतना बड़ा आंदोलन उठेगा, वहां ये छोटी-मोटी चीजें भी अपने-आप पैदा होती हैं! जैसे फूल खिलते हैं तो थोड़े कांटे भी। उनको अंगीकार करना होता है। सजग रहना, सावधान रहना, गद्दार भी होंगे। धोखा भी देनेवाले लोग आयेंगे। झूठा प्रचार भी करेंगे। और इतना झूठा प्रचार कर सकते हैं कि आश्चर्य मालूम हो।
अभी जर्मनी के अखबारों में मेरे संबंध में बहुत तूफान उठा हुआ है, कोई महीने-भर से तूफान चल रहा है। करीब-करीब जर्मनी के सारे अखबार उसमें सम्मिलित हो गये हैं। ऐसा शायद ही कोई अखबार हो जर्मनी का, जिसने मेरे पक्ष या विपक्ष में वक्तव्य नहीं छापे हैं। जोर का घमासान है... । और जिस आदमी ने शुरू किया, उस आदमी का जो पहला वक्तव्य था, मैंने भी पढ़ा तो मैं भी आनंदित हुआ। उसने वक्तव्य दिया कि "साढ़े पांच बजे सुबह मैं आश्रम के द्वार पर पहुंचा"--जर्मन पत्रकार--"दरवाजा खटखटाया। नग्न एक सुंदर युवती ने दरवाजा खोला। साढ़े पांच बजे सुबह... । और इतना ही नहीं, पास के एक वृक्ष से एक फल तोड़कर, जो सेब जैसा मालूम पड़ता था, उसने मुझे दिया और कहाः इसे आप

भगवान का प्रसाद मानकर अंगीकार करें। मैंने उससे पूछा कि इससे क्या होगा? उसने कहा कि इससे मनुष्य में बड़ी काम-ऊर्जा पैदा होती है।"
अब तुम चकित होओगे जानकर कि पत्र आने शुरू हो गये। आस्ट्रेलिया से एक पत्र आया हुआ है। एक बूढ़े आदमी ने पत्र लिखा है कि मेरी सत्तर साल की उम्र है और मेरी पत्नी जवान है और आपके आश्रम में ऐसा फल है, तो मैं आ जाऊं? मुझ पर कृपा करो। यह सब भी होगा। मैंने उनको लिखवाया है कि आप आओ तो! फल इत्यादि की पीछे सोचेंगे। चलो इस बहाने ही आ तो जाओ। आ जायेंगे तो समझा- बुझा लूंगा कि चलो ध्यान तो करो।
जर्मनी से मेरे मित्रों ने लिखा है कि आप सावधान रहना, क्योंकि यहां इतना इस तरह का जो झूठा प्रचार चल रहा है, इसका परिणाम यह होगा कि सब तरह के रुग्णचित्त लोग, मानसिक रूप से विकृत लोग आश्रम पहुंचना शुरू हो जायेंगे। एक सज्जन आ गये हैं। आ ही गये! साठ वर्ष के हैं। उन्होंने आते ही से खबर की कि वे होमोसेक्सुअलिटी से पीड़ित हैं, तो कोई उपाय है मेरे लिये? यह दुनिया बड़ी अजीब है, इसके रास्ते बड़े अजीब हैं! भिन्न-भिन्न तरह के लोग यहां हैं। सब तरह के पागलपन हैं पृथ्वी पर... ।
इन पागलों के बीच जीना और होशपूर्वक जीना और पागलपन से मुक्त होकर जीना बड़ी कठिन बात है। पागलों के बीच जागकर जीना बड़ी कठिन बात है! वही कठिनाई सारे बुद्धों को रही है, क्योंकि पागल अपनी चीजें उन पर थोप देते हैं। उनका पागलों का भी कोई कसूर नहीं है, वे भी क्या करें? उनके पास जैसा चित्त है वही वे थोप देते हैं।
अब अगर इन सज्जन को कहा जाये कि आप पागल हो, आप किन अखबारों की बातें सुनकर आ गये हो, तो वे मानेंगे नहीं, वे समझेंगे कि उनकी तरफ ध्यान नहीं दिया जा रहा है। उनको कहलवाया कि आप फिजूल की बातें पढ़कर आ गये, आप यहां देखो, यहां कुछ हमें इस तरह के लोगों के इलाज करने की उत्सुकता नहीं है। यह कोई चिकित्सालय नहीं है इस तरह के लोगों के लिये।
तो उन्होंने खबर भेजी कि अगर संन्यास लेना जरूरी हो तो मैं संन्यास
भी ले सकता हूं, मगर अब जाऊंगा नहीं। अब तो कुछ हो ही जाये तो ही जाऊंगा। यह सब होगा। जो मेरे साथ हैं उन्हें सजग होकर इन सारी बातों पर ध्यान रखना होगा; न तो विचलित होने की जरूरत है, न परेशान होने की जरूरत है। झूठी बातें कही जायेंगी, झूठी बातें फैलाई जायेंगी और उन पर भरोसा करने वाले लोग मिल जायेंगे। और भीड़ उन पर भरोसा कर लेगी। भीड़ इसलिए भरोसा कर लेगी, क्योंकि मैं जो कह रहा हूं वह भीड़ की मान्यताओं के विपरीत है। इसलिए मेरे खिलाफ जो भी कहा जायेगा, भीड़ उस पर राजी हो जायेगी। और मेरे खिलाफ बोलने वाले लोग बढ़ेंगे, क्योंकि उससे उनको लाभ होगा। लोग उनकी मानेंगे, सुनेंगे, समझेंगे। लोग समझेंगे कि ये बड़े ज्ञानी हैं। मगर यह नाटक सदा से ऐसा ही चलता रहा है। कभी जीसस होते जो जुदास हो जाते, कभी बुद्ध होते तो देवदत्त हो जाता, और कभी महावीर हो जाते तो गोशाला हो जाता है। किसी न किसी को मेरे साथ भी जुदास तो होना ही पड़ेगा।

दूसरा प्रश्नः श्रद्धा क्या है?

श्रद्धा है भीतर आंख। जैसे ये दो आंखें हैं जगत को देखने के लिए, ऐसी
एक तीसरी आंख है तुम्हारे भीतर, जिसका नाम श्रद्धा है। श्रद्धा की आंख से परमात्मा देखा जाता है। श्रद्धा की आंख का अर्थ है प्रेम की आंख। कुछ बातें हैं जो प्रेम ही जान पाता है। और कोई उपाय जानने का नहीं है।
तुम अगर किसी व्यक्ति को प्रेम करते हो तो तुम्हें उसमें कुछ बातें दिखाई पड़ेंगी जो किसी और को दिखाई नहीं पड़ेंगी। तुम्हें उसमें कुछ माधुर्य दिखाई पड़ेगा जो और किसी को दिखाई नहीं पड़ेगा। वह माधुर्य नाजुक है; उसके लिए प्रेम का स्पर्श चाहिए, तो ही प्रकट होता है। तुम्हें उस व्यक्ति में एक गीत की अनुगूंज सुनाई पड़ेगी, जो किसी और को सुनाई नहीं पड़ेगी। उसके लिए जितने करीब आना जरूरी है, उतना कोई करीब नहीं है; तुम्हीं उतने करीब हो।
इसलिए जिसको हम प्रेम करते हैं, उसमें सौंदर्य प्रगट होने लगता है। लोग सोचते हैं कि जिसमें सौंदर्य होता है हम उसके प्रेम में गिरते हैं, वे

गलत सोचते हैं। तुम जिसके प्रेम में पड़ जाते हो उसमें सौंदर्य दिखाई पड़ता है। उसमें जीवन की सारी महत्ता, सारी गरिमा प्रगट होने लगती है। और ऐसा नहीं है कि तुम कल्पना कर रहे हो; प्रेम की आंख खुलते ही तुम्हें अदृश्य दृश्य होने लगता है, अगोचर गोचर होने लगता है। जो छिपा है उसकी उपस्थिति अनुभव होने लगती है। बिना द्वार खुले कोई तुम्हारे भीतर आ जाता है। खुलता नहीं दिल बंद ही रहता है हमेशा।
क्या जाने कि आ जाता है तू इसमें किधर से।।
श्रद्धावान को पता चलता है कि बड़े आश्चर्य की बात है कि कहां से, किस अज्ञात द्वार से परमात्मा भीतर प्रवेश कर जाता है!
देख्यौ जागत वैसिये, सांकरि लगी कपाट।
कित है आवत जात भजि, को जाने किहिं बाट।।
बिहारी का यह दोहा है, बड़ा प्यारा है! चारों ओर से किवाड़ बंद करके प्रेमिका सो रही है। स्वप्न में उसके प्रिय आ जाते हैं, इतने में वह जाग जाती है। जागकर देखती है कि किवाड़ तो वैसे ही बंद हैं, उसमें सांकल भी उसी प्रकार से लगी हुई है। न जाने वह किधर से आते हैं और किस रास्ते से भाग जाते हैं!
देख्यौ जागत वैसिये, सांकरि लगी कपाट।
कित है आवत जात भजि, को जाने किहिं बाट।।
कहां से तुम आ जाते हो, कहां से तुम विदा हो जाते हो! कौन-से झरोखे से झांक जाते हो! उस झरोखे का नाम श्रद्धा है।
जो तर्क में ही जीता है वह पदार्थ से ज्यादा गहरा कुछ भी न जान पायेगा। उसका जीवन व्यर्थ ही होगा। धन भला इकट्ठा कर ले, मगर सब धन पड़ा रह जायेगा। ध्यान से वंचित रह जायेगा। और ध्यान ही मृत्यु में भी साथ जाता है। परम धन उसे न मिलेगा। धन तो उसी को मिलता है जिसके भीतर श्रद्धा की आंख है।
मैंने तुमसे कहा कि चार कोटियां हैं जिज्ञासुओं की। विद्यार्थी, वह तर्क से चलता है। साधक, वह कृत्य से चलता है। शिष्य, प्रेम से चलता है। और भक्त, श्रद्धा से।
प्रेम की पराकाष्ठा है श्रद्धा। श्रद्धा का अर्थ हैः जो अब तक नहीं हुआ है वह भी होगा, उस पर भरोसा है। क्योंकि जो हुआ है उससे भरोसा जगता है। इस जगत में इतना सौंदर्य है, इस जगत में इतनी रोशनी है, इतना संगीत है... पक्षियों के कंठ-कंठ में संगीत भरा है! पत्ते-पत्ते में सौंदर्य है, तारों-तारों में रोशनी है। यह जगत इतना महिमापूर्ण है, इसके पीछे कोई न कोई चितेरा होना ही चाहिए।
श्रद्धा का अर्थ हैः इतने रंगों के पीछे कोई चितेरा होना ही चाहिए। श्रद्धा का अर्थ हैः इतनी सौंदर्य की जहां वर्षा हो रही है, वहां इस सौंदर्य का कोई मूलस्रोत भी होना ही चाहिए।
यह तर्क नहीं है, यह कोई कार्य-कारण का सिद्धांत नहीं है--यह प्रतीति है। जैसे तुम जब बगीचे के करीब आने लगते हो तो हवाओं में थोड़ी-सी शीतलता मालूम होने लगती है। अभी बगीचा दिखाई नहीं पड़ा, लेकिन हवा शीतल होने लगी। तो एक बात तय है कि तुम बगीचे के करीब आ रहे हो। जाने-अनजाने तुम्हारे पैर ठीक रास्ते पर पड़ रहे हैं, कि दूरी कम हो रही है, कि निकटता बढ़ रही है। फिर धीरे-धीरे हवाओं पर सवार फूलों की सुगंध भी आने लगी... यह बेले की सुगंध, यह रातरानी की सुगंध, यह गुलाबों की सुगंध... । अब तुम जानते हो कि करीब, और भी करीब आने लगे। अभी भी बगीचा दिखाई नहीं पड़ा है, लेकिन अब तुम निश्चिंत हो कि बगीचा है, नहीं तो यह सुगंध कहां से? सुगंध का स्रोत कहीं होगा, फूल कहीं खिले होंगे! फिर तुम और करीब आते हो, पक्षियों के गीत भी सुनाई पड़ने लगे। अब तुम जानते हो कि घनी छाया होगी, घने वृक्ष होंगे; नहीं तो इतने पक्षियों के गीत... यह कोयल पुकारने लगी तो अमराई होगी।
श्रद्धा का अर्थ हैः जो सूक्ष्म-सूक्ष्म संकेत मिलते हैं, उनके द्वारा स्रोत को स्वीकार कर लेना। गुरु के पास बैठे और चित्त मगन होने लगा, कुछ बूंदाबांदी होने लगी, हृदय में कोई कमल खिलने लगा, तो तुम जानते हो कि जिसके पास बैठने से ऐसा हो रहा है, अब कुछ और भी होगा; भरोसा बढ़ा।

तुम मिलोगे ही कभी सुधि की डगर में,
मैं तुम्हारी याद को अपना बना लूं!

तुम मिलोगे ही कभी... ऐसी भाव दशा का नाम श्रद्धा है।

तुम मिलोगे ही कभी सुधि की डगर में
मैं तुम्हारी याद को अपना बना लूं!
तुम मिटा दोगे कभी मन की घुटन को
मैं तुम्हारी ज्योति को अपना बना लूं!
सुबह-सी मुस्कान, चंदन-सा हृदय-धन,
ओस-सा पावन नयन का नीर ढाला;
सुमन को सौरभ, भ्रमर को गूंज देकर, स्वयं को छलती रही, पी मदिर हाला
तुम सजा दोगे कभी बिखरे सपन को
मैं तुम्हारी नींद को अपना बना लूं! तुम मिलोगे ही कभी सुधि की डगर में, मैं तुम्हारी याद को अपना बना लूं! मैं अकिंचन-सी किनारे पर खड़ी हूं, और उफनाता जलधि ललकारता है;
साथ देने को लहर बेकल बढ़ी है,
और तट का धैर्य भी हुंकारता है;
तुम मिलोगे ही कभी स्नेहिल लहर में; मैं विकल मंझधार को अपना बना लूं! तुम मिटा दोगे कभी मन की घुटन को, मैं तुम्हारी ज्योति को अपना बना लूं! रात लंबी है, मगर तारों-भरी है,
हर दिशा का दीप पलकों ने जलाया;
सांस छोटी है, मगर आशा बड़ी है, जिंदगी ने मौत पर पहरा लगाया;
तुम मिलोगे ही कभी पिछले पहर में,
मैं सिसकती मांग शबनम से सजा लूं!
तुम मिलोगे ही कभी सुधि की डगर में!
मैं तुम्हारी याद को अपना बना लूं!
तुम मिटा दोगे कभी मन की घुटन को,
मैं तुम्हारी ज्योति को अपना बना लूं!
इशारे हैं चारों तरफ, संकेत हैं चारों तरफ। श्रद्धा उन संकेतों को समझने का नाम है।
तर्क अंधा है, क्योंकि तर्क स्थूल मांगता है। जैसे गुलाब खिला और अगर तुम तार्किक को कहो कि देखो कितना सुंदर, कितना अप्रतिम! तो तार्किक कहे कि "कहां है सौंदर्य, दिखाओ मुझे। मैं सौंदर्य को हाथ में लेकर देखना चाहता हूं, मैं उसे छूना चाहता हूं। मैं उसे तौलना चाहता हूं। मैं विज्ञान के तराजू पर उसे तौलना चाहता हूं। मैं गणित की कसौटी पर कसना चाहता हूं। मैं तर्क के हिसाब में उसे लाना चाहता हूं। तभी स्वीकार करूंगा।" अब तुम क्या करोगे?
और ऐसा नहीं है कि फूल सुंदर नहीं है। फूल सुंदर है। मगर सौंदर्य कोई स्थूल वस्तु नहीं है कि तुम उठा कर दे दो इस तार्किक को, कि ले जा, नाप ले; कि ले जा, जांच ले।
मैंने सुना है कि बाउलों का एक प्यारा गीत है। किसी बाउल फकीर को पूछा किसी दार्शनिक ने कि तुम बहुत परमात्मा के गीत गाते हो, दीवाने हुए घूमते हो; मुझे तो कुछ दिखाई नहीं पड़ता। तुम किसके लिए यह एकतारा और डुग्गी लिये घूमते हो, किसके लिए बजाते हो यह गीत, किसके लिए नाचते हो? मुझे तो सब कोरा- कोरा मालूम पड़ता है। मुझे तो कहीं कोई परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता। और तुम्हारी आंख से आंसू बहते हैं! और तुम मग्न हो जाते हो! तुम पागल हो?

इसीलिए तो उनका बाउल नाम पड़ गया--बाउल का अर्थ होता है पागल, बावले। वह फकीर एकतारा बजाने लगा, और उसने एक गीत गाया। गीत बड़ा अदभुत है। गीत का अर्थ है, कि ऐसा हुआ, एक बार एक सुनार एक बगीचे में पहुंच गया और माली से कहने लगा कि मैंने बड़ी चर्चा सुनी है तेरे फूलों की, कि बड़े सुंदर तू फूल उगाता है। तो आज मैं अपने सोने के कसने के पत्थर को लेकर आ गया हूं। आज जांच-जांचकर देखूंगा कि कौन-कौन फूल असली, कौन-कौन नकली?
तो बाउल कहने लगाः सोचते हो क्या दशा हो गयी होगी उस माली की! उसके फूलों को अगर पत्थर पर घिसोगे... । सोने को परखने वाला पत्थर, फूलों के सौंदर्य को नहीं परख पायेगा। सोना स्थूल है, और सोना स्थूल लोगों की बुद्धि को ही प्रभावित करता है। जड़ता जिनमें बहुत है, उनके लिए सोना सबसे मूल्यवान है। लेकिन और भी हैं, जिनकी संवेदनशीलता गहन है। उनके लिए फूल, सारे जगत का सोना भी दे दिया जाये तो भी एक फूल की कीमत नहीं चुक सकती, क्योंकि फूल जीवंत सौंदर्य है।
तो फकीर कहने लगाः जो दशा उस माली की हो गयी थी, वही दशा तुमने मेरी कर दी। तुम कहते होः "परमात्मा कहां है? तर्क से सिद्ध करो।" न तो फूल कसे जा सकते हैं सोने को कसने की कसौटी पर, और न तर्क की कसौटी पर परमात्मा कसा जा सकता है।
जीवन स्थूल नहीं है; तर्क स्थूल को ही पकड़ता है। सूक्ष्म को जो पकड़ लेता है उसका नाम श्रद्धा है। श्रद्धा एक अनूठा आयाम है।
तुम मिलोगे ही कभी सुधि की डगर में!
यह जो बोध का रास्ता है, इस पर कभी न कभी तुम मिल जाओगे--यह भरोसा! क्योंकि तुम हो! क्योंकि फूलों ने खबर दी कि तुम हो। क्योंकि वृक्षों से छनती हुई इस सूरज की रोशनी ने खबर दी कि तुम हो। क्योंकि रात तारे नाचने लगे और खबर मिली कि तुम हो। कि यह जो जीवन और अस्तित्व में इतनी रंग-गुलाल उड़ी है, यह जो होली मची है, यह जो दीवाली सजी है--इस सबने खबर दी कि तुम हो। इतना जहां उत्सव हो रहा है वहां मालिक कहीं छिपा होगा, अन्यथा यह उत्सव कभी का बंद हो जाता। जहां इतना नर्तन चल रहा है, इस नर्तन के केंद्र पर कोई होगा।
तुम मिलोगे ही कभी सुधि की डगर में,
मैं तुम्हारी याद को अपना बना लूं!
श्रद्धा मनुष्य के जीवन की सर्वाधिक मूल्यवान वस्तु है। जिसके जीवन में श्रद्धा, उसके जीवन में सब कुछ है। क्योंकि उसके जीवन में परमात्मा की छाया पड़ेगी। उसे अदृश्य आंदोलित करेगा। उसके हृदय में काव्य उठेगा। उसके प्राणों में बांसुरी बजेगी। उसे ध्यान भी फलेगा, उसे समाधि भी मिलेगी। उसका जीवन सार्थक होगा। और जिसके जीवन में श्रद्धा नहीं है उसका जीवन व्यर्थ होगा।
तर्क के सहारे अगर चले तो आज नहीं कल सिवाय आत्महत्या करने के और कुछ बचता नहीं है। इसलिए पश्चिम के विचारक जो तीन सौ साल से तर्क के सहारे चल रहे हैं, आत्महत्या पर पहुंच गये हैं। पश्चिम के बहुत बड़े विचारक अलबर्ट कामू ने लिखा है कि मुझे तो आत्महत्या ही सबसे महत्वपूर्ण दार्शनिक समस्या मालूम पड़ती है। कि आदमी अपने को मिटा क्यों न ले, होने में सार क्या है? उठे रोज, नाश्ता किया, गये दुकान, कि दफ्तर, कि दिन-भर मेहनत की, कि सांझ फिर आ गये पिटे-कुटे। फिर भोजन कर लिया, फिर सो गये, फिर सुबह उठे। अगर यही- यही है तो देख लिया बहुत, तो हो गया बहुत। एक सीमा होती है, अब इसी-इसी को क्यों दोहराए जाना? इसमें सार क्या है? अगर यही है तो सार बिल्कुल नहीं है। और तर्क कहता है कि बस यही है।
तर्क की अंतिम निष्पत्ति आत्मघात है, और श्रद्धा की अंतिम निष्पत्ति अमृत जीवन है। चुन लो, जो रुचे चुन लो। तुम अपने मालिक हो। जब तुम श्रद्धा छोड़कर तर्क चुनते हो तो तुम यह मत सोचना कि तुम परमात्मा का विरोध कर रहे हो; तुम अपना आत्मघात कर रहे हो।
जिस दिन फ्रेडरिक नीत्शे ने यह घोषणा की कि ईश्वर मर गया है, उस दिन ईश्वर नहीं मरा, लेकिन उसी दिन फ्रेडरिक नीत्शे पागल हो गया। ईश्वर कहीं मरता है किसी की घोषणा करने से? लेकिन एक घटना जरूरत घटती हैः अगर ईश्वर मर गया तो जीवन में अर्थ क्या रह गया?

जरा सोचो, ईश्वर को हटा दो, तो उसी के साथ सारा सौंदर्य हट गया, सारा प्रेम हट गया, सारी प्रार्थना हट गयी। मंदिरों की घंटियां फिर न बजेंगी, पूजा के थाल फिर न सजेंगे, अर्चना फिर न हो सकेगी--सब हट गया। जीवन में जो भी मूल्यवान था, "ईश्वर" एक शब्द को हटा देने से सब हट जाता है। फिर बचा क्या? कूड़ा-करकट! फिर बैठे हो तुम रद्दी के ढेर पर। फिर सार कहां है? फिर तुम्हारा जीवन एक दुर्घटना मात्र है। फिर अभी मरे कि कल मरे, क्या फर्क पड़ता है? फिर जीना कायरता है। फिर कोई सार नहीं। फिर क्यों जीते रहना, फिर क्यों दुख झेलना? फिर अपने ही हाथ से समाप्त क्यों न कर लें?
नीत्शे पागल हुआ और यह पूरी सदी पागल हो जा रही है। क्योंकि इस पूरी सदी ने नीत्शे पर भरोसा कर लिया है। यह पहली बार मनुष्य-जाति के इतिहास में घटना घटी है कि लोग श्रद्धा का अर्थ पूछने लगे हैं। श्रद्धा का अनुभव नहीं रहा, इसलिए अर्थ पूछना पड़ता है। लोग पूछने लगे हैं, प्रेम क्या है? क्योंकि प्रेम का अनुभव नहीं रहा।
जिस दिन लोग पूछने लगें प्रकाश क्या है, समझ लेना कि लोग अंधे हो गये। जिस दिन लोग पूछने लगें संगीत क्या है, समझ लेना कि बहरे हो गये। और क्या होगा इसका अर्थ? श्रद्धा हमारी सूख गयी है। हम बिल्कुल बिना श्रद्धा के जी रहे हैं।
और मैं तुमसे कहता हूंः तुम मंदिर भी जाते हो, मस्जिद भी, गुरुद्वारा
भी और बिना श्रद्धा के जाते हो; इसलिए तुम्हारे जाने में कुछ अर्थ नहीं है। तुम जाते हो, वह भी एक उपक्रम हो गया है जीवन की व्यवस्था का। और सब जाते हैं, तुम भी जाते हो। न जाओ तो अड़चन आती है, जाते रहो तो सुविधा रहती है, समाज में प्रतिष्ठा रहती है कि बड़े धार्मिक हो। धार्मिक का आभास बना रहे तो कई तरह की सुविधाएं बनी रहती हैं; धार्मिक का आभास टूट जाये तो लोग नाराज होने लगते हैं, लोग अड़चनें देने लगते हैं। चलो एक नाटक है, करते रहो; मगर श्रद्धा नहीं है। क्योंकि जब तुम मंदिर की तरफ जाते हो तब मैं तुम्हारे पैरों में नर्तन नहीं देखता। जब तुम मंदिर से लौटते हो तो तुम्हारी आंखों में झलकते आनंद के आंसू नहीं देखता। जब तुम मंदिर में हाथ जोड़ते हो तो मैं तुम्हारा हृदय जुड़ा हुआ नहीं देखता।
श्रद्धा खो गयी है। और श्रद्धा खो गयी तो आंख खो गयी--परमात्मा को देखने वाली आंख खो गयी। लेकिन जो खो गया है, वह अब भी तुम्हारे भीतर मौजूद है। बंद पड़ा है, उसे खोला जा सकता है। जहां श्रद्धा खुल जाये, जिस आघात से, उसका नाम ही सत्संग है। जिसकी मौजूदगी में श्रद्धा की कली खिले और फूल बन जाये उसी का नाम सदगुरु है।

तीसरा प्रश्नः प्रेम की अग्नि-परीक्षा क्यों ली जाती है?

प्रेम की ही ली जा सकती है। सोने को ही आग में डाला जाता है, क्योंकि कचरा जलेगा, सोना बच रहेगा; कुंदन बनेगा। प्रेम की अग्नि-परीक्षा ली जाती है, क्योंकि प्रेम अग्नि में जलता नहीं; जो जल जाये वह प्रेम नहीं। जो अग्नि के पार बच रहता है वही प्रेम है। और फिर शुद्ध होकर बचता है; उसमें जो भी कूड़ा-करकट था... । और तुम्हारे प्रेम में बहुत कूड़ा-करकट है। अक्सर तो ऐसा है, प्रेम तो नाममात्र को, कूड़ा-करकट ज्यादा है। तुम्हारे प्रेम में घृणा भी मिश्रित है। इसलिए तुम्हारा प्रेम क्षण में घृणा हो जाये; अभी प्रेम था अभी घृणा हो जाये। तुम जिस पत्नी के लिए जान देने को तैयार थे, उसी पत्नी की जान ले सकते हो क्षण भर में।
समझ लो कि क्षण-भर पहले तुम बिल्कुल मरने को तैयार थे और पत्नी से कह रहे थे कि "तेरे बिना मैं जी न सकूंगा। तू मर गयी तो मैं मर जाऊंगा! तू मेरा प्राण है!" और तुम उठे और अपने पुराने कागज-पत्रों को खोजते थे कि पुराना पत्र मिल गया, किसी के द्वारा पत्नी को लिखा हुआ। और उसमें झलक मिल गयी कि कुछ प्रेम का मामला है। भूल गये सब प्रेम-व्रेम, उठाकर बंदूक पत्नी को मार डालोगे। इसी के लिए मरते थे, इसी को मार डाला। प्रेम को घृणा बनने में देर कितनी लगी? एक जरा-सा पत्र, कुछ शब्द, कागज पर खिंची कुछ लकीरें--बस इतना काफी हो गया और गया प्रेम!

तुम्हारा प्रेम कितनी जल्दी ईर्ष्या बन जाता है! तुम्हारी पत्नी किसी से हंसकर बात करती थी, बस आग लग गयी। तुम्हारा प्रेम नाममात्र को ही प्रेम है। प्रेम के नाम पर भी तुम दूसरे पर मालकियत सिद्ध करने की कोशिश में लगे रहते हो। पति चाहता है कि पत्नी बिल्कुल मेरे कब्जे में हो। सदियों से कोशिश कर रहा है, समझाता है कि पति परमात्मा है। पति ही समझा रहे हैं पत्नियों को कि पति परमात्मा है। अब यह मूढ़ता देखते हो?
मुल्ला नसरुद्दीन ने एक दिन बाजार में जाकर कहा कि मेरी स्त्री से ज्यादा सुंदर इस दुनिया में कोई भी स्त्री नहीं है। लोग थोड़े चौंके। लोगों ने कहाः तुमको यह बताया किसने? उसने कहाः मेरी स्त्री ने ही बताया। अब इसका क्या मूल्य है? पति ही समझा रहे हैं! और चूंकि स्त्री शारीरिक रूप से कोमल है तो पतियों ने थोप दिया उसके ऊपर। डंडे के बल पर थोपी गयी है यह बात।
स्त्रियां पत्रों में लिखती हैं--आपकी दासी! बस पत्रों में ही लिखती हैं, लेकिन मजा चखाती रहती हैं चौबीस घंटा। और असलियत में मामला कुछ और ही है। क्योंकि स्त्रियां शारीरिक रूप से मल्लयुद्ध नहीं कर सकतीं पुरुष से, तो उन्होंने सूक्ष्म रास्ते खोजे युद्ध करने के। बड़े सूक्ष्म रास्ते! खोजने ही पड़े।
तुम देखते हो, आदमी ने बहुत से रास्ते खोजे हैं। तलवार खोजी, बंदूक खोजी, बम खोजा, भाले खोजे, क्यों? वैज्ञानिक कहते हैंः क्योंकि आदमी के पास पशुओं जैसी शारीरिक शक्ति नहीं है। अगर सिंह तुम से सीधा जूझ जाये तो सब राजपूती रखी रह जायेगी। सिंह को तो छोड़ दो, जरा एक अल्सेशियन कुत्ता ही पीछे पड़ जाये तो सब भूल जायेगी, चौकड़ी भूल जायेगी। छठी का दूध याद दिला देगा।
आदमी तो असहाय है पशुओं के मुकाबले में। न तो वैसे नाखून हैं कि चीर-फाड़ कर दें, न वैसे दांत हैं कि कच्चा मांस चबा जायें, कि हड्डियां चरमरा दें। तो इस मजबूरी के कारण आदमी ने अस्त्र-शस्त्र खोजे हैं। वे परिपूरक हैं। पशुओं के पास नाखून हैं; हमने बड़े भाले खोजे हैं। हमने बड़ी छुरियां खोजी हैं, तलवारें खोजी हैं। फिर भी हम डरे रहे, क्योंकि तलवार लेकर भी शेर के सामने खड़े होओ तो कंपकंपी आयेगी। उस कंपकंपी में तलवार गिर जाये... । मुल्ला नसरुद्दीन शिकार करने गया था। झाड़ पर बैठा है मचान बांध कर।
और जब शेर आया तो होश खो गये। थे झाड़ पर, मगर होश खो गये। एकदम बेहोश हो गया। मित्रों ने बामुश्किल मचान से उतारा, पानी छिड़का, शराब पिलाई, तब कहीं थोड़ा-बहुत होश आया। पूछा कि नसरुद्दीन तुम इतने घबड़ा क्यों गए? अरे, तुम्हारे पास तो बंदूक थी।
उसने कहाः बंदूक क्या करेगी! घबड़ाहट पहले आयी। बंदूक तो हाथ से छूट गयी। जब बंदूक छूट गयी, तभी तो मैं बेहोश हुआ।
तो आदमी ने तीर खोजे, दूर से... । फिर बंदूक खोजी, गोली मार दें दूर से, पास जाने की नौबत ही न रहे। और इसको लोग शिकार करना कहते हैं, आखेट करने जाते हैं। बैठ जाते हैं झाड़ पर मचान बांधकर, वहां से गोली मार देते हैं एक निरीह निहत्थे जानवर को। शरम भी नहीं खाते और इसको कहते हैं--आखेट, शिकार का खेल! और कभी अगर शेर धर दबोचे तो इसको नहीं कहते कि शेर ने शिकार की। आदमी कमजोर था तो उसने शस्त्र खोजे। ठीक वैसी ही हालत स्त्री और पुरुष के बीच घटी। पुरुष मजबूत है। ऊंचाई उसकी थोड़ी ज्यादा है। शरीर में उसके ज्यादा मसल हैं, मजबूत है, हड्डी उसकी मोटी है, स्त्रियों को सता सकता है। तो स्त्रियों को सूक्ष्म उपाय खोजने पड़े, ऐसे उपाय खोजे जिनसे पुरुष लड़ न सके। जैसे कि तुम घर आये कि स्त्री ने एकदम बाल फैला दिये और रोने लगी, अब क्या करोगे? अब रोती स्त्री को मारो तो भी ठीक नहीं। उसका रोना उपाय है, सूक्ष्म उपाय है कि अब देखें क्या करते हो, अब झुकना पड़ेगा! अब चले आइसक्रीम खरीदने। कि कुछ लोग तो पहले से ही लेकर आते हैं आइसक्रीम, गुलदस्ता, फूल। पहले से ही इंतजाम करके आते हैं।
एक सम्राट ने घोषणा की, क्योंकि दरबारियों से उसने पूछा कि ऐसा भी कोई दरबारी है तुम में जो इस बात का उत्तर दे सके; मगर ईमानदारी से उत्तर देना। मैं चाहता हूं कि जो आदमी पत्नियों से डरते हैं एक तरफ खड़े हो जायें; और जो अपनी पत्नियों से नहीं डरते, वे दूसरी तरफ खड़े हो जायें। सारे दरबारी खड़े

हो गये, सिर्फ एक आदमी को छोड़कर। और उस आदमी को तो सम्राट ने कभी सोचा ही नहीं था। वह तो बिल्कुल सूखा, गया-बीता आदमी था, सबसे आखिरी था। वह एक तरफ खड़ा हो गया। सम्राट ने पूछा कि मुझे बहुत हैरानी होती है, मगर फिर भी कोई बात नहीं, कम-से-कम मेरे दरबार में एक आदमी तो है जो अपनी पत्नी से नहीं डरता।
उस आदमी ने कहाः क्षमा करिये, आप गलत समझ रहे हैं। असल में जब मैं घर
से चलने लगा तो पत्नी ने कहाः देखो, भीड़-भाड़ में खड़े मत होना। सब लोग उस तरफ खड़े हैं। अगर मैं उस तरफ खड़ा होऊं और पत्नी को पता चल जाये, झंझट होगी, इसलिए इस तरफ खड़ा हूं।
तो सम्राट ने अपने एक आदमी को कहा कि अब हमें पता लगाना होगा कि पूरे राज्य की क्या हालत है? जब दरबार की यह हालत है, पूरे राज्य की क्या हालत है? तो उसने एक आदमी को भेजा कि तू जा और हर घर में पूछ राजधानी में कि कौन अपनी पत्नी से डरता है और कहना कि झूठ बोले तो बहुत सजा मिलेगी। सच बोले तो ठीक। और जब तुझे पक्का भरोसा हो जाये कि कोई आदमी ऐसा है जो अपनी पत्नी से नहीं डरता, तो वह सुंदर घोड़ा ले जा। एक सफेद काबुली घोड़ा--बहुत बहुमूल्य, कीमती, राज्य के दरबार में जो घोड़ा था--यह ले जा, यह उसको भेंट दे देना। यह मेरी तरफ से भेंट।
वह आदमी गया। उसने जिससे भी पूछा उसी ने कहा कि भाई, अब हम झूठ-सच में
तो पड़ना नहीं चाहते, क्योंकि झंझट में कौन पड़े, सच बात यह है कि हम डरते हैं। मगर किसी से कहना मत भइया! राजा ने पूछा है तो सच ही कह देते हैं, हम डरते हैं।
थक गया वह वजीर खोजते-खोजते कि एक-आध आदमी भी न मिलेगा जो यह घा.ेडा ले
जा सके! मगर उसको भी बात सोच में तो आयी कि मैं खुद ही नहीं ले सकता यह घोड़ा, तो आदमी और क्या मिलेगा? और उसने सोचा कि खुद सम्राट भी नहीं ले सकता यह घोड़ा, क्योंकि सबको पता है वह खुद ही डरता है। कि असली राज्य तो रानी कर रही है, राजा तो बस उसके हाथ की कठपुतली है। रानी को राजी कर लो, बस राजा राजी हो जाता है। क्या एक भी आदमी न मिलेगा, क्या यह मनुष्य-जाति इतनी पतित हो गयी है? क्या एक भी पुरुष, पुरुष नहीं है।
आखिर उसने एक झोपड़े में जाकर एक आदमी देखा, जो बिल्कुल मोहम्मद अली जैसा मालूम होता था। बड़े-बड़े मसल थे उसके, बड़े-बड़े पंजे थे। सात फीट ऊंचाई थी उसकी। और उसकी एक बिल्कुल दुबली-पतली पत्नी। उसने कहा, यह आदमी है! उसने कहाः भाई तूने मार दिया हाथ, तू अपनी पत्नी से डरता तो नहीं? उसने अपने मसल दिखाये। उसने कहाः ये देखे!
उसने कहाः मसल तो ऐसे हैं कि मुझे डर लग रहा है देखकर।
उसने अपना पंजा खोलकर बताया और बंद करके बताया। उसने कहा कि जिसकी गर्दन पर कस जाये--खत्म! तो उसने कहाः भाई ठीक। तो राजा ने कहा है कि जो ऐसा आदमी मिल जाये उसे घोड़ा भेंट कर देना। दो घोड़े हैं राजा के पास एक काला और एक सफेद। दोनों श्रेष्ठ घोड़े हैं, एक कीमत के घोड़े हैं। तो तू सफेद घोड़ा चाहता है कि काला? तो उसने कहा कि लल्लू की मां, सफेद कि काला? तो लल्लू की मां ने कहाः काला। तो उस वजीर ने कहाः अब नहीं मिलता।
लल्लू की मां ने तय किया! वे मसल वगैरह, वह सब पंजा वगैरह सब पड़ा रह गया।
स्त्रियों ने कुछ सूक्ष्म उपाय खोजे हैं आदमी से लड़ने के। पुरुष को गुस्सा आ जाये, स्त्री को मारता है; स्त्री को गुस्सा आ जाये, खुद को पीटती है, खुद दीवाल से सिर मार लेती है। उसका उपाय बड़ा गांधीवादी है, अहिंसात्मक! बच्चे की पिटाई कर देती है, लल्लू पिट जाते हैं। लल्लू के बाप सोचने लगते हैं कि अब सार क्या है, बच्चा नाहक पिट रहा है, पहले ही चुप रहे होते तो अच्छा था।
तुम्हारा प्रेम सतत कलह है; उसमें स्त्री कोशिश कर रही है पुरुष पर हावी हो जाने की, पुरुष कोशिश कर रहा है स्त्री पर हावी हो जाने की। इसलिए प्रेम की बगिया बस ही नहीं पाती। प्रेम को अग्नि से गुजरना ही होगा। और प्रेम जब शुद्ध होता है तो वही श्रद्धा बनता है।
इसलिए जब तुम सदगुरु के पास जाओगे तो वह तुम्हारे प्रेम की बहुत परीक्षाएं लेगा। और जैसा मैंने कहा इन्हीं परीक्षाओं में बहुत लोग भाग

जायेंगे। इतनी परीक्षाएं देने की उनकी तैयारी न होगी। इतनी आग से गुजरने का साहस थोड़े ही लोगों में होता है। और जो अग्नि से नहीं गुजर सकते, वे निखर भी नहीं सकते, शुद्ध भी नहीं हो सकते। वे परमात्मा के पात्र भी नहीं हो सकते।

नहीं निर्दयी तुम, नहीं बेरहम तुम!
तुम्हारी हंसी, और मेरे रुदन को,
न जाने नियति आज क्यों तोलती है?
उधर झिलमिलाते हैं तारे गगन में,
इधर ओस के बिंदु भू पर बरसते;
उधर केलि करते विहरते हैं बादल; इधर बूंद को भी हैं चातक तरसते; तुम्हारा परस प्राप्त करने विकल-सी, हवा कुंज में कांपती-डोलती है! तुम्हारी हंसी, और मेरे रुदन को,
न जाने नियति आज क्यों तोलती है? तिमिर-आवरण को जरा चीरकर तुम,
कभी मन-हरन निज झलक तो दिखाओ; कुसुम की जो भीगी हुई पत्तियां हैं, उन्हें अपने हाथों से पोंछो, सजाओ; ये मोती के दाने तुम्हारे लिए हैं, सदा जग की आंखें जिन्हें रोलती हैं! तुम्हारी हंसी और मेरे रुदन को,
न जाने नियति आज क्यों तोलती है? न जाने तुम्हारे श्रवण के पुटों तक, पहुंच पायेगी कब दबी आह मेरी;
न जाने कि किस दिन तुम्हारे नगर तक,
मुझे प्राण! पहुंचायेगी राह मेरी;
नहीं निर्दयी, तुम नहीं बेरहम तुम,
क्षितिज पर से कोई किरण बोलती है!
तुम्हारी हंसी, और मेरे रुदन को,
न जाने नियति आज क्यों तोलती है?
भरोसा रखोगे, श्रद्धा से बढ़ते रहोगे, तो कोई किरण आकाश से कहती ही रहेगी कि घबड़ाओ मत, चले चलो। यह अनिवार्य है प्रक्रिया शुद्ध होने की, परिशुद्ध होने की।
नहीं निर्दयी तुम, नहीं बेरहम तुम!
परमात्मा न तो निर्दयी है और न बेरहम है। लेकिन प्रेम की अग्नि- परीक्षा लेनी ही होगी। क्योंकि अग्नि-परीक्षा से ही प्रेम श्रद्धा बनेगा।
प्रेम ऐसे है जैसे फूल और श्रद्धा ऐसे है जैसे फूल की सुवास। फूल में
जो थोड़ी और मिट्टी थी, वह भी गयी; अब सुवास शुद्ध हो गयी। जैसे सुवास ऊपर की तरफ उठती है--आकाश की तरफ। जैसे धूप का धुआं आकाश की तरफ उठता है; फूल की सुवास आकाश की तरफ उठती है। फूल तो गिरेगा तो जमीन की तरफ गिरेगा, सुवास ऊपर की तरफ जाती है। धूप गिरेगी तो जमीन पर गिर जायेगी, लेकिन धूप का सुगंधित धुआं आकाश की तरफ जाता है।
प्रेम तो गिर जाता है जमीन की तरफ; श्रद्धा आकाश की तरफ उठती है। इसलिए हम कहते हैंः फलां आदमी प्रेम में गिर गया। सारी दुनिया की भाषाओं में--फालिंग इन लव। प्रेम में हम गिर जाते हैं जमीन की तरफ। प्रेम का प्रवाह अधोगामी है, नीचे की तरफ है। प्रेम ऐसे है जैसे जलधार, गड्ढे से और गड्ढे की तरफ जाता है जल, नीचे से नीचे, नीचे से नीचे... । श्रद्धा ऐसे है जैसे वाष्पीभूत हो गया है जल, उठने लगा ऊपर, घिरने लगे मेघ आकाश में। जैसे ही भाप पानी बनेगी, जमीन पर उतर आयेगी। और जैसे ही पानी भाप बनेगा, आकाश में उठ जायेगा।

प्रेम अग्नि से गुजरे तो भाप बनता है। जैसे पानी अग्नि से गुजरता है
तो भाप बन जाता है, ठीक ऐसे ही प्रेम की अग्नि-परीक्षा है।
आगाजे-मुहब्बत से अंजामे-मुहब्बत तक!
गुजरा है जो कुछ हम पर तुमने भी सुना होगा।
बहुत कुछ गुजरता है।
आगाजे-मुहब्बत से अंजामे-मुहब्बत तक!
प्रेम की शुरुआत से और प्रेम की पूर्णता तक बहुत कुछ गुजरता है। आगाजे-मुहब्बत से अंजामे-मुहब्बत तक!
गुजरा है जो कुछ हम पर तुमने भी सुना होगा।
तो भक्तों की कथाएं पढ़ो, भक्तों की गाथाएं पढ़ो, तो तुम समझोगे--कैसी पीड़ा है, कितने आंसू, कितना रोना, कितना विरह है, कितनी आग... ! लेकिन उन्हीं अंगारों में से चलकर कोई परमात्मा के मंदिर तक पहुंचता है। वह शर्त पूरी करनी ही होती है।
और ध्यान रखना, परमात्मा न तो निर्दयी है और न बेरहम है। सच तो यह है, उसकी अनुकंपा है जो तुम्हारी परीक्षा लेती है। और तुम्हारी जितनी कठोर परीक्षा ली जाये उतना ही खुश होना, धन्यवाद देना, क्योंकि तुम पर बहुत भरोसा किया जा रहा है।
सदगुरु उसी शिष्य की सर्वाधिक परीक्षा लेगा, जिस शिष्य से भरोसा है
कि उसके भीतर से कुछ हो सकता है। जिससे भरोसा नहीं है, उसकी कोई परीक्षा नहीं ली जाती। इसलिए धन्यभागी हैं वे जिनके प्रेम की परीक्षा ली जाती है।

नहीं निर्दयी तुम, नहीं बेरहम तुम!
क्षितिज पर से कोई किरण बोलती है!
तुम्हारी हंसी और मेरे रुदन को
न जाने नियति आज क्यों तोलती है?
नियति को तौलना ही होगा। प्रेम के आंसू भी तौले जायेंगे, प्रेम की हंसी भी तौली जायेगी। प्रेम तौला जायेगा।
और हजार-हजार कठिनाइयां प्रेम के रास्ते पर हैं, हजार-हजार चट्टानें हैं; पर उन्हीं को चढ़ोगे, तो एक दिन हिमालय के शिखर पर पहुंच जाओगे, जीवन के शिखर पर--जहां शिखर चांद-तारों से बात करता है; जहां शिखर बादलों से गुफ्तगू करता है! उन्हीं शिखरों पर उपनिषद पैदा होते हैं। उन्हीं शिखरों पर गोरख के ये शब्द पैदा हुए हैं, बुद्ध की वाणी पैदा हुई, वेद जन्मे, कुरान गाया गया--उन्हीं शिखरों पर! वे प्रेम के ही शिखर हैं। वे प्रेम के शुद्धतम रूप हैं। उनका नाम ही श्रद्धा है।
घबड़ाना मत, भयभीत न होना, बढ़े जाना।

तुम्हारे प्यार का वरदान ले करके रहूंगी ही!
अवज्ञा तुम करो मेरी, भुलाया कब तुम्हें उर से।
जलन का छोर ही पकड़ा सदा ही प्यास के डर से
दुखी हो बीन को छेड़ा करुण-सी रागिनी भर के तुम्हारे राग का अभिमान बन करके रहूंगी ही! तुम्हारे प्यार का वरदान ले करके रहूंगी ही! अधर पर आ न पाई जो नयन को छोड़कर चल दी
लहर मंझधार में पड़कर किनारे तोड़कर चल दी शलभ को क्या जलाएगी, तड़पकर लौ स्वयं जल दी उसी अभिशाप का अवदान बन करके रहूंगी ही! तुम्हारे प्यार का वरदान ले करके रहूंगी ही! उमगकर फूल के मिस यों लता ने शूल को चूमा कसकती याद कांटे-सी उधर हंस शूल भी झूमा दुखों के शूल-उपवन में कहां सुख फूल-सा खिलता उसी तव ज्ञान का अनुमान बन करके रहूंगी ही! तुम्हारे प्यार का वरदान ले करके रहूंगी ही! वियोगी की व्यथाओं में मिलन चुपचाप ही जलता मुखर हो अश्रु के कण से सुखद वह आह में पलता

कसक बीते हुए युग की मिटाए से नहीं मिटती
उन्हीं मादक क्षणों का ध्यान बन करके रहूंगी ही!
तुम्हारे प्यार का वरदान ले करके रहूंगी ही!
आयें अग्नि-परीक्षाएं, आने दो। आयें चुनौतियां, आने दो। अंगीकार करना। उठें तूफान, स्वीकार करना। और एक बात अडिग भीतर गूंजती रहेः

उन्हीं मादक क्षणों का ध्यान बन करके रहूंगी ही!
तुम्हारे प्यार का वरदान ले करके रहूंगी ही!

चौथा प्रश्नः मैं शास्त्रीय संगीत का शौक रखता हूं। यह न तो मेरे पड़ोसियों को पसंद है, न मेरे पत्नी-बच्चों को, न परिवार के अन्य लोगों को ही। मैं क्या करूं?

शास्त्रीय संगीत सभी की समझ में नहीं पड़ सकता। ऐसी अपेक्षा रखना भी गलत है। शास्त्रीय संगीत के लिए एक अलग तरह की संवेदनशीलता चाहिए, एक अलग तरह की ग्राहकता चाहिए। एक बड़ा ही कोमल, स्वरमंजा, छंदबद्ध हृदय चाहिए। शास्त्रीय संगीत कोई फिल्मी संगीत नहीं है कि तुम जैसे हो वैसे ही रहते समझ में आ जाये।
शास्त्रीय संगीत तो एक साधना है। तुम जैसे हो वैसे ही समझ में नहीं आयेगा; तुम्हें अपने को रूपांतरित करना होगा। शास्त्रीय संगीत तो एक चुनौती है; वर्षों की श्रम और साधना से समझ पाओगे, सुन पाओगे। मुहल्ले के लोगों का कसूर नहीं है, न परिवार का कसूर है, न पत्नी का। तुमने बात ही झंझट की चुन ली है।
मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन ने अपने एक मित्र संगीतज्ञ को घर भोजन पर बुलाया और कहा कि साथ में तबलची को भी ले आना और अपना साज-सामान भी ले आना, क्योंकि भोजन इत्यादि के बाद महफिल जमेगी।
संगीतज्ञ मित्र जरा हैरान था, क्योंकि मुल्ला को कोई शास्त्रीय संगीत
की समझ है, ऐसा उसे कभी सपने में भी आभास नहीं मिला था। मुल्ला ने कभी रुचि भी न दिखायी थी, आज अचानक शास्त्रीय संगीत पर प्रेम उमड़ आया है! तो आया, बड़ी तैयारी से आया। साज-सामान लाया, अपने सब संगी-साथी लाया। भोजन हुआ, शराब चली। बड़ी देर तक बातें चलती रहीं। संगीतज्ञ थोड़ा हैरान भी हुआ कि अब संगीत कब होगा! आधी रात होने लगी और मुल्ला है कि इधर-उधर की बातों में लगाये हुए है। उसने दो-चार दफे कहा भी कि भाई, संगीत... । मुल्ला ने कहाः ठहरो जी, ठीक समय पर होगा; हर चीज का समय होता है। जब आधी रात हो गयी और सब सन्नाटा हो गया और सारा मुहल्ला-पड़ोस सो गया और रास्ते पर राहगीर चलने बंद हो गये, मुल्ला ने कहाः अब आ गयी घड़ी, अब हो जाये, अब दिल खोलकर शास्त्रीय संगीत हो जाये।
संगीतज्ञ ने कहाः लेकिन अब मुहल्ले के लोग सो गये हैं, तुम्हारी पत्नी भी सो गयी है, बच्चे भी सो गये, परिवार के लोग भी सो गये; अब शास्त्रीय संगीत झंझट होगी। उसने कहाः तुम बिल्कुल फिक्र न करो। झंझट क्या होगी? उनके कुत्ते भौंकते रहते हैं, तब मैं कुछ नहीं बोलता; अपने पास तो कुत्ता है नहीं, इसलिए तो तुम्हें बुलाया है। हो जाये संगीत, दिल खोलकर हो जाये। लाज-संकोच मत करना। जो सीखा हो जिंदगी में... । आज लग जाये एक-एक को पता कि कुत्ता नहीं है तो क्या हुआ, शास्त्रीय संगीतज्ञ से दोस्ती तो है! ऐसे-ऐसे लोग भी हैं! मुल्ला गया था एक संगीत की बैठक में और जब संगीतज्ञ आऽऽ... आऽऽ आऽऽ... आऽऽ... करने लगा तो मुल्ला रोने लगा, उसके आंसू टप-टप गिरने लगे। पड़ोस में बैठे आदमी ने कहा कि नसरुद्दीन, हमने कभी सोचा भी नहीं था कि तुम्हारा और शास्त्रीय संगीत से ऐसा लगाव! एकदम आंसू गिरने लगे... । उसने कहाः शास्त्रीय संगीत का सवाल नहीं है, ऐसे ही मेरा बकरा मरा था। यह आदमी मरेगा, ऐसे ही बकरा आऽऽऽ... आऽऽऽ... । तब हम भी समझे थे कि शास्त्रीय संगीत कर रहा है। सुबह मरा पाया गया।
तुमने जरा बात ही झंझट की चुन ली है।

फायर ब्रिगेडवालों ने पूछा

घर में आग लगने का
क्या कारण है?
घर के मालिक ने
मूंछों पर ताव देकर कहा-- यह हमारी
दीपक राग की
गायकी का
ज्वलंत उदाहरण है
उन्होंने प्रश्न किया--
यह सितार
क्यों टूटी पड़ी है निगोड़ी? उत्तर मिला--
राग तोड़ी के तोड़े ने तोड़ी इतने बिलौटे
यहां शोर
क्यों मचा रहे हैं?
इसे आप शोर कहते हैं,
अजी,
ये राग बिलावल गा रहे हैं वे इतने धीमे-धीमे
क्यों चल रहे हैं,
क्या बिचारे बहुत वृद्ध हैं? नहीं, उनकी चाल
विलंबित ख्याल में निबद्ध है जिज्ञासा हुई
कि गांव के लोग
अपने घर छोड़ कर
क्यों जा रहे हैं?
पता चला--
गांव में
संगीत सम्मेलन के लिए
संगीतकार आ रहे हैं

अब तो एक ही उपाय है कि तुम सक्रिय ध्यान या कुंडलिनी ध्यान शुरू कर दो। तो तुम्हारे पड़ोस के लोग खुद ही कहेंगेः भइया, शास्त्रीय संगीत ही बेहतर है। तुम वही करो; यह तुम और कहां की झंझट ले आये!
अब तुम मुझसे पूछ रहे हो तो मैं तुमसे कहता हूं। और यह नुस्खा काम कर चुका है पहले भी, इसलिए तुम्हें देता हूं। तुम एकदम से हूं-हूं, हां-हां और एकदम सक्रिय ध्यान शुरू कर दो; न तुम्हारे पड़ोस के लोग हाथ जोड़कर कहें तुमसे कि भइया, शास्त्रीय संगीत ही बेहतर है... । और तो कोई उपाय सूझता नहीं है। तुमने बात ही झंझट की ले ली है।
यह कोई जमाना शास्त्रीय संगीत का है? या तो मोहल्ला छोड़ दो, कहीं एकांत में चले जाओ। कहीं एकांत में बैठे रहो, वहां सीखो। और अगर छोड़ना ही हो तो मुहल्ला छोड़ देना, क्योंकि संगीत महत्वपूर्ण चीज है; उसके लिए कुछ दांव पर लगाना पड़े तो लगा देना। परिवार भी छोड़ना पड़े तो छोड़ देना, मगर संगीत मत छोड़ना। क्योंकि संगीत, अगर तुम्हारा सच में रस है उसमें तो तुम्हारे लिए ध्यान बनेगा, समाधि बनेगी।
संगीत ध्यान का सुगमतम उपाय है। जो संगीत में डूब सकते हैं उन्हें डूबने के लिए और दूसरी चीज को खोजने की कोई आवश्यकता नहीं है। संगीत अदभुत मादकता है। संगीत परम सुरा है। उसमें डूबते-डूबते तुम्हारे विचार चले जायेंगे, तुम्हारा अहंकार चला जायेगा। संगीत को ध्यान समझो।
मगर दूसरों को सताओ भी मत। क्योंकि तुम्हारे ध्यान के लिए दूसरों की बलि दी जाये, यह भी उचित नहीं है। हट जाओ। और अगर पत्नी को तुमसे प्रेम है और बच्चों को तुमसे प्रेम है तो धीरे-धीरे तुम्हारे संगीत से भी प्रेम

जन्मेगा, उनको धीरे-धीरे संगीत के पाठ पढ़ाओ। एकदम से नहीं, आहिस्ता- आहिस्ता संगीत की रुचि जगाओ। क्योंकि ऐसा मनुष्य तो खोजना बहुत कठिन है जिसके भीतर कहीं-न-कहीं संगीत के प्रति रस पड़ा न हो। क्योंकि संगीत का रस अनिवार्य है। इसलिए तो हमने परमात्मा को शब्द कहा है, स्वर कहा है, ओंकार कहा है; क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति ध्वनि से निर्मित है। हमारे प्राणों के प्राण में ध्वनि गूंज रही है, अनाहत नाद गूंज रहा है, ओऽम का नाद हो रहा है। इसलिए ऐसा व्यक्ति तो खोजना कठिन है, बिल्कुल कठिन है जिसके भीतर संगीत की कहीं-न-कहीं संभावना न पड़ी हो। मगर आहिस्ता-आहिस्ता जगाओ, धीरे-धीरे राजी करो। पर संगीत छोड़ मत देना।
संगीत में रस हो तो सब छोड़ा जा सकता है, संगीत नहीं छोड़ा जा सकता। अगर संगीत ही तुम्हारा संन्यास बने तो बन जाने देना। इतना साहस तो होना चाहिए। इतना दांव पर लगाने की हिम्मत तो होनी चाहिए। तभी जीवन में कुछ फलता है। तभी जीवन में कुछ उपलब्ध होता है। बाकी सब चीजें गौण हैं। तुम्हारी आत्मा की यही आवाज है अगर, तो इसी आवाज के साथ चलो।
इसीलिए मुझे हर चीज पर बोलना पड़ता है। संगीत पर भी बोलना पड़ेगा, हालांकि मैं कोई संगीतज्ञ नहीं हूं। न तो मुझे दीपक राग आता है, न राग तोड़ी, न राग बिलावल, न विलंबित, कुछ भी नहीं आता। लेकिन एक संगीत मैंने सुना है जो परम-संगीत है। जहां सब राग खो जाते हैं। मैंने एक संगीत सुना है जिसे नानक ने कहा हैः एक ओंकार सतनाम। इसलिए संगीत पर भी बोलना होगा। कोई संगीत-प्रेमी आ जायेगा तो मुझे उसके ही प्रेम से उसे परमात्मा की तरफ ले चलना होगा।
मैं तुम्हें तुम्हारे स्वभाव से च्युत नहीं करना चाहता। मैं तुम पर कुछ आरोपित नहीं करना चाहता। मैं तो चाहता हूं जो तुम्हारे भीतर सहज स्वाभाविक है, वही फूले, वही खिले।

आखिरी प्रश्नः मैं हर चीज से असंतुष्ट हूं। क्या पाऊं जिससे कि संतोष मिले?

जब तक पाने की भाषा में सोचोगे, तब तक संतोष न मिलेगा। पाने की भाषा से
ही तो असंतोष पैदा हो रहा है। जब तक कहोगे क्या पाऊं, तब तक असंतुष्ट रहोगे। संतोष "जो है" उसका उत्सव मनाने में है। असंतोष "जो नहीं है" उसको पाने की वासना में है, तृष्णा में है। और बहुत है जो तुम्हारे पास नहीं है। अगर तुम उसको पाने चले जो नहीं है, तो तुम चलते ही रहोगे, चलते ही रहोगे, पूरा तो तुम कभी पा न पाओगे। संतुष्ट कभी न हो पाओगे। असंतोष ही तुम्हारे जीवन की कथा और व्यथा रहेगी।
नहीं; जो है, वह कम नहीं है। तुम्हें जीवन मिला है, इस जीवन के लिए धन्यवाद दिया परमात्मा को? और यह जीवन अगर तुम्हें खरीदने जाना पड़े तो तुम कितना मूल्य चुकाने को राजी न हो जाओ। ये आंखें दीं, ये जलते हुए दीये दिये! इन आंखों से तुमने इतना सौंदर्य देखा जगत का! सुबह का सूरज देखा, रात के तारे देखे। कभी परमात्मा को धन्यवाद दिया कि कैसी अदभुत आंखें तूने दीं, कैसा चमत्कार--आंख! मगर धन्यवाद नहीं दिया। कानों से कितना संगीत सुना, कभी झुके कृतज्ञता में? यह संवेदनशील हृदय दिया है, इसके लिए कभी दो आंसू गिराये उसके चरणों में--प्रार्थना के, पूजा के?
संतोष का अर्थ होता हैः जो है वह मेरी पात्रता से अभी ही ज्यादा है, मेरी योग्यता से अभी ही ज्यादा है। न मेरी योग्यता है, न मेरी पात्रता है, और परमात्मा बरसाता चला गया है--ऐसी जो प्रतीति है, उसका नाम संतोष है। और जिसके पास संतोष है उसे और मिलेगा।
जीसस का एक बहुत प्यारा वचन है जो मुझे बार-बार याद आता है--और अनूठा है, अद्वितीय है और बड़ा तर्कातीत! जीसस कहते हैंः जिसके पास है, उसे और दिया जायेगा; और जिसके पास नहीं है, उससे वह भी छीन लिया जायेगा जो उसके पास है। बड़ा उल्टा वचन है। उलटबांसी है। यह कोई बात हुई? यह कोई न्याय हुआ कि जिसके पास है उसे और दिया जायेगा, और जिसके पास नहीं है उससे और छीन लिया जायेगा! यह तो बड़ा अन्याय मालूम होता है। लेकिन नहीं, यह अन्याय नहीं है; यह जीवन का परम नियम है। क्योंकि जिसके पास है उसकी ही क्षमता बढ़ती है

और लेने की। वह और द्वार खोलता है, वह और आतुर हो जाता है। वह और उत्सुक हो जाता है, वह और अभीप्सु हो जाता है। और जिसके पास नहीं है वह और सिकुड़ जाता है। वह इतना सिकुड़ जाता है कि जो है वह भी उसके भीतर से निकल जाने के लिए आतुर हो जाता है।
तुम्हारे पास अगर संतोष है तो तुम्हें और-और वरदान मिलेंगे, रोज-रोज वरदान मिलेंगे। और तुम्हारे पास अगर संतोष नहीं, सिर्फ असंतोष और शिकायत और रोना और हमेशा दुख की कथा है तो तुम सिकुड़ जाओगे, संकुचित हो जाओगे। तुम्हारे भीतर जो है वह भी खो जायेगा।
तुम पूछते होः मैं हर चीज से असंतुष्ट हूं।
स्वाभाविक है। सभी हैं। ऐसा ही मनुष्य है। ऐसा मनुष्य का मन है--हर चीज से असंतुष्ट!
अब इसे समझो। इसका अर्थ यह हुआ कि इतने दिन तुम असंतुष्ट रहे, इससे लाभ हुआ कुछ? असंतोष बढ़ता चला गया। आगे भी असंतुष्ट रहोगे। मौत आ जायेगी एक दिन और असंतुष्ट ही जीयोगे और असंतुष्ट ही मर जाओगे। अब दूसरी कला सीखो, उस कला का नाम ही संतोष है या संन्यास। पर्यायवाची हैं दोनों। संन्यास का अर्थ हैः संतोष। जो है, इतना भी बहुत है। इतना भी क्यों है,
यह आश्चर्य होना चाहिए। जितना मिला है इतना मुझे क्यों मिला, मैंने अर्जित तो किया नहीं; मेरी कोई योग्यता नहीं, पात्रता नहीं। तूने दिया है, तेरी भेंट है! मैं धन्यवादी हूं! मैं कृतज्ञ हूं!
नाचो, बांध लो पैरों में घुंघरू, पड़ने दो थाप मृदंग पर! नाचो! अहोभाव में नाचो! और तब तुम पाओगे रोज-रोज और-और भेंटें आने लगीं। जितना तुम्हारा धन्यवाद गहरा होगा, उतनी ही परमात्मा की अनुकंपा तुम पर बरसने लगेगी। अभी अगर बूंदाबांदी हुई है तो फिर मूसलाधार वर्षा होगी आनंद की।

धरती का बिछौना, नीलांबर का ओढ़ना,
और चाहिए क्या? ओ बैरागी मन!
सूर्य शीश पर सोना-छत्र-सा लगे,
चंद्रमा पिन्हा जाये चांदी के हार,
ऊषा ज्योति कलश धरे अगवानी में,
संध्या कर जाये तारों से शृंगार सूर्य-चंद्र का गहना, तारों का कंगना और चाहिए क्या? ओ बड़भागी मन!
मधु ऋतु कोकिल के स्वर में गुन गाये, ग्रीष्म की दुपहरी कर जाये अभिसार, पावस में पपीहा रटे पिया-पिया,
शरद जुन्हैया बरसाये मीठा प्यार। ऋतुओं का झूलना, समय का हिंडोलना, और चाहिए क्या? ओ अनुरागी मन! कोंपले हिलायें रेशम का रूमाल, कलियां भर जायें जीवन में उल्लास, फूलों से रंग झरे उड़े तरल गंध,
मन को लहराये केसर का वातास। मधुवन का फूलना, दिगंतों का महकना, और चाहिए क्या? ओ मधुरागी मन! रंग-बिरंगे पंखोंवाली चिड़िया, कानों में कह जाये भेद-भरी बात, ताल कटोरे में फूलसुंघी उतरे, कांप-कांप जायें जलकुंभी के पात। चिड़िये का उड़ना, जलकुंभी का कांपना, और चाहिए क्या, ओ रे बागी मन!
धरती का बिछौना, नीलांबर का ओढ़ना, और चाहिए क्या? ओ बैरागी मन! बड़भागी हो तुम! और चाहिए क्या?

सूर्य-चंद्र का गहना, तारों का कंगना,
और चाहिए क्या? ओ बड़भागी मन!
इतना मिला है, मगर अहंकार के कारण दिखाई नहीं पड़ता। अहंकार को जाने दो अब।
तुम पूछते होः मैं क्या करूं?
अहंकार को मर जाने दो
मरौ हे जोगी मरौ, मरौ मरन है मीठा।
तिस मरणी मरौ, जिस मरणी मरि गोरष दीठा।।
आज इतना ही।

मरौ हे जोगी मरौ
ग्यारहवां प्रवचन

खोल मन के नयन देखो

कथनी कथै सो सिष बोलिये, वेद पढ़ै सो नाती।
रहणी रहै सो गुरु हमारा, हम रहता का साथी।।
रहता हमारे गुरु बोलिये, हम रहता का चेला।
मन मानै तो संगि फिरै, निहतर फिरै अकेला।।
अवधू ऐसा ग्यांन बिचारी, तामै झिलमिल जोति उजाली।
जहां जोग तहां रोग न ब्यापै, ऐसा परषि गुरु करनां।
तन मन सूं जे परचा नांही, तौ काहे कौ पचि मरनां।।
काल न मिट्या जंजाल न छूट्या, तप करि हूवा न सूरा।
कुल का नास करै मति कोई, जै गुरु मिला न पूरा।।
सप्त धात का काया पींजरा, ता महिं जुगति बिन सूवा।
सतगुरु मिलै तो ऊबरै बाबू, नहीं तो परलै हूवा।।
कंद्रप रूप काया का मंडण, अंबिरथा कांइ उलींचौ।
गोरष कहै सुणौ रे भौंदू, अरंड अंमीं कत सींचौ।।
चकमक ठरकै अगनि झरै त्यूं, दधि मथि घृत कर लीया।
आपा मांहीं आपा प्रगट्या, तब गुरु संदेसा दीया।।
दरपन मांहीं दरसन देष्या, नीर निरंतरि झांइ।
आपा मांहीं आपा प्रगट्या, लखै तो दूर न जाइ।।
गोरष बोलै सुणि रे अवधू पंचौ पसर निवारी।
अपणी आत्मा आप बिचारी, तब सोवौ पान पसारी।।

हाथ पकड़े आस्था का
चल रहा हूं!
कौन जाने,
पहुंच पाऊंगा
सरे मंजिल,
कि भटका ही करूंगा!
आज क्या है?
दुख-भरी लंबी कहानी
कल न जाने
क्या लिये
बैठा हुआ हो--
दर्द ही,
या चैन भी कुछ,
शांति भी कुछ,
अनवरत अनुराग का
प्रतिदान भी कुछ!
श्रमित तन कहता,
कि रुक जाओ,
तनिक विश्राम कर लो,
हरे हो लो!
किंतु--
ढलता जा रहा है दिन,
उतरती आ रही है रात,
मंजिल का पता
अब भी नहीं है!
चलो पग,
चलते चलो पग!

यात्रा लंबी है, यात्रा कठिन भी। अनंत-अनंत जन्मों के बाद भी पहुंचना हुआ नहीं है। निश्चित ही उलझाव है। और उलझाव कुछ ऐसा है कि बाहर होता तो शायद सुलझ भी जाता। उलझाव यात्री के भीतर है। रास्ता कितना ही लंबा होता, पार कर लिया जाता। लेकिन पैरों में ही कुछ भूल है। चलने में ही कुछ भूल है। पहले कदम से ही भ्रांति शुरू हो जाती है, तो फिर मंजिल कैसे मिले!
इस सत्य को खूब विचारना। यहां तुम नये नहीं हो; कोई भी नया नहीं। अनंत-अनंत जन्मों की यात्रा पीछे पड़ी है। पर अब तक पहुंचना नहीं हुआ है, अब तक भटकना ही हुआ है। और बात और भी उलझन की हो जाती है, क्योंकि जो जानते हैं वे कहते हैं कि चाहो तो अभी मिलन हो जाये, चाहो तो अभी मंजिल मिल जाये। जिन्होंने जाना उन्होंने कहाः जिसे तुम खोजते हो, तुम्हारे भीतर मौजूद है; जरा आंख फेरने की बात है। मगर आंख फिरती नहीं। भीतर कुछ सूझता नहीं। जो भी दिखाई पड़ता है, बाहर; और बाहर मिलन होता नहीं।
आदमी बाहर है और परमात्मा भीतर; इससे वियोग है। योग का एक ही अर्थ होता हैः जहां परमात्मा है वहीं हम भी हो जायें। अपने घर लौट आओ तो योग हो जाये।
यात्रा कठिन और लंबी हो गयी है, क्योंकि तुम बाहर खोज रहे हो। और बाहर उसे खोया नहीं है। वह खोजनेवाले में बैठा है। तुम कहां जा रहे हो? तुम्हारा सब जाना व्यर्थ है। आओ, घर आओ; अपने पर लौट आओ। यह दौड़ की बात नहीं; रुक जाने की बात है; ठहर जाने की बात है; शांत, निश्चल हो जाने की बात है। और यह बात हो सकती है। हुई है, तो हो सकती है। एक मनुष्य को हुई है, तो सभी मनुष्यों को हो सकती है। बुद्ध को हुई, कृष्ण को हुई, कबीर को, गोरख को, तो तुम अपवाद नहीं हो। हड्डी-मांस-मज्जा से जैसे गोरख बने, कबीर बने, नानक बने, वैसे ही तुम भी बने हो। और जैसे तुम भटक रहे हो, वैसे ही कबीर भी भटके और गोरख भी भटके। जरा भी भेद नहीं है; भेद है तो अंतिम घड़ी में कि गोरख पहुंच गये, तुम अभी नहीं पहुंचे।
कहावत है कि हर संत का अतीत है और हर पापी का भविष्य। गोरख का अतीत और तुम्हारा अतीत तो एक जैसा है। जरा-सा भेद है, कि गोरख का पैर ठीक मंजिल पर पड़ गया है। तुम्हारा भी पड़ सकता है। तुम भी उतने ही समर्थ हो।

आदमी हो?
तो उठो, कुछ कर दिखाओ!
क्यों विवशता?
बेबसी क्या चीज
श्रम के सामने?
जो श्रमिक है, वीर है,
वीरत्व का वरदान उसको,
जय-तिलक उसके लिए!
दुनिया उसी की,
बाहु-बल हो जिस किसी में, शक्ति हो शृंगार जिसका,
हौसला हो साथ चलता,
पथ दिखाता, श्रम मिटाता,
पथ उसी का,
चल रहा जो
धीर गति से,
शांत मन से,
लक्ष्य पर आंखें जमाये!
आदमी हो?
तो उठो, कुछ काम आओ!
सामने लंबी डगर है,
पास में संबल नहीं है,
साथ में साथी नहीं है
क्या हुआ, तो क्या हुआ?
श्रम तुम्हारा

आप ही संबल बनेगा,
शक्ति अंतर की
तुम्हारा साथ देगी,
लक्ष्य की महिमा
तुम्हारा श्रम हरेगी,
वृक्ष पथ के
झूमकर पंखा झलेंगे,
वन-पखेरू
विहंसकर बातें करेंगे!
पथ तुम्हारा साथ देगा,
वन तुम्हारा साथ देगा,
साथ अपना दे सको,
तो सब तुम्हारा साथ देंगे!
आदमी हो?
तो उठो, कुछ कर दिखाओ!

सोये हो, इसलिए मंजिल नहीं मिलती; जागो तो मिल जाये; आंख खोलो तो मिल जाये। तुम जिसे आंख का खोलना कहते हो, वह आंख का खोलना नहीं है। बाहर आंख खुलती है तो भीतर आंख बंद हो जाती है। आंख एक तरफ ही खुल सकती है। तुम दो दिशाओं में एक साथ थोड़े ही चल सकोगे! दृष्टि की ऊर्जा भी दो दिशाओं में एक साथ नहीं बह सकती। बाहर से आंख बंद हो जाती है तो भीतर खुल जाती है। जिसे तुमने आंख का खुला हुआ होना समझा है, वही तुम्हारी आंख का बंद होना है। बाहर चलते हो तो भीतर नहीं चल पाते। बाहर की चाल ठहरे तो भीतर गति अपने से हो जाती है।
गोरख के जिन सूत्रों में हम आज प्रवेश करते हैं, वे सभी अंतर्यात्रा
के सूत्र हैं।
मरौ हे जोगी मरौ, मरौ मरण है मीठा।
तिस मरणी मरौ, जिस मरणी गोरष मरि दीठा।।
गोरख कहते हैंः मर जाओ, बिल्कुल मर जाओ। बाहर के प्रति बिल्कुल मर जाओ। अन्य के प्रति बिल्कुल मर जाओ। संसार के प्रति बिल्कुल मर जाओ।
मरौ हे जोगी मरौ, मरौ मरण है मीठा।
कैसी अदभुत बात कहते हैं, कि मरो, मृत्यु बड़ी मीठी है! क्योंकि बाहर तुम मरे, कि भीतर का जीवन मिला!
तिस मरणी मरौ... ।
एक खास मरण की बात कर रहे हैं। एक खास मरने की कला की बात कर रहे हैं।
तिस मरणी मरौ, जिस मरणी गोरष मरि दीठा।
गोरख कहते हैंः मैं भी मरा, बाहर के प्रति मरा। और फिर बड़ी मिठास उपलब्ध हुई, बड़ी मधुरिमा उतरी, बड़ा प्रसाद बरसा। मैं बाहर के प्रति मरा, तो भीतर के प्रति जागा और जीया। और वहां मैंने देखा, वहां दर्शन हुआ। जब तक वह दर्शन नहीं हुआ तब तक अंधा था।
हम आंख के अंधे हैं अगर स्वयं को न जान लें! और फिर आंखें न भी हों तो कोई फिक्र नहीं; जिसने स्वयं को जाना उसकी आंख खुल गयी, उसके अंतस-च्रु खुल गये। और वही असली च्रु हैं। जो स्वयं से ही परिचित नहीं है, उससे ज्यादा दयनीय, दीन और दरिद्र और कौन होगा? कैसे हो यात्रा शुरू, कहां से हो यह यात्रा शुरू?
कथनी कथै सो सिष बोलिये, वेद पढ़ै सो नाती।
रहणी रहै सो गुरु हमारा, हम रहता का साथी।।
यह यात्रा गुरु के मिलन से शुरू होगी। गुरु शब्द बड़ा प्यारा है। दो प्रतीक-शब्दों से बना है। "गु" का अर्थ होता हैः अंधकार। "रु" का अर्थ होता हैः प्रकाश। जो अंधकार से प्रकाश की तरफ ले चले--वह गुरु। "तमसो मा ज्योतिर्गमय! अंधकार से प्रकाश की ओर ले चलो!" जब तुम्हें कोई व्यक्ति मिल जाये जिसने प्रकाश चखा हो; तुम्हें तो प्रकाश का कुछ पता नहीं, जिसने प्रकाश देखा हो--तो उसकी आंखों में तुम थोड़ी झलक उस प्रकाश की पाओगे जो उसने देखी है। जो हिमालय होकर लौटा हो, उसकी तरंग में तुम्हें हिमालय की

थोड़ी-सी शांति का अनुभव होगा। जो अभी-अभी बगिया से भ्रमण करके आया हो, उसके वस्त्रों में भी फूलों की गंध थोड़ी अटकी-अटकी रह गयी होगी। जो अभी-अभी स्नान करके आया है, तुम उसके पास एक ताजगी अनुभव करोगे।
ठीक ऐसा ही, जिसने भीतर को देखा है, जागा है, जीया है, उसकी आंखों की झलक, उसके व्यक्तित्व का भाव, उसके चेहरे की महिमा, उसकी मौजूदगी की तरंग बदल जाती है। तुम उसके पास बैठोगे तो प्रकाश की यात्रा शुरू हो जायेगी। कथनी कथै सो सिष बोलिए!
लेकिन कैसे पहचानोगे? यहां बड़े पंडित हैं संसार में, उन्हें वेद कंठस्थ हैं। वे उपनिषदों पर टीकाएं करते हैं। उन्होंने गीता की मात्रा- मात्रा, शब्द-शब्द का विश्लेषण किया है। कुरान उनकी जबान पर है, कि बाइबिल पढ़ने की उन्हें जरूरत नहीं है, कंठस्थ है। बहुत पंडित हैं। पंडित की वाणी में जीवन नहीं होता। पंडित से गुरु का धोखा मत खा जाना। जो पंडित के चक्कर में पड़ गया, वह तो बुरी तरह भटकेगा। अंधा अंधा ठेलिया, दोनों कूप पड़ंत। वह तो ऐसा ही है जैसा कि अंधे आदमी ने किसी दूसरे अंधे आदमी को राह दिखायी, हाथ पकड़ा, मार्ग सुझाया। दोनों कुएं में गिरेंगे। इससे तो अंधा अकेला ही चलता तो शायद टटोल-टटोल कर चलता, सम्हल कर चलता, कुएं में गिरने से बच जाता। लेकिन अब तो अकड़ कर चलेगा, सोचेगा कि कोई तो मेरा हाथ पकड़े है; किसी आंख वाले का साथ है।
इस दुनिया में अगर पंडित विदा हो जायें तो इतना अधर्म न रहे जितना है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति खुद ही सोच-समझ कर चलने लगे। अब कोई सहारा नहीं है। अब किसी आंखवाले का हाथ में हाथ नहीं है। तो अपनी ही लाठी टेको, टटोलो। इतनी भूल-चूकें न हों दुनिया में, इतना अधर्म न हो। लेकिन जब यह भरोसा होता है अंधे को कि कोई तो हाथ पकड़े है, फेंक देता है अपनी लकड़ी। वही उसकी आंख थी, वह भी फेंक बैठा! अब तो चल पड़ता है इस अंधे का हाथ पकड़ कर। और यह जो उसे ले चला है, नेतृत्व दे रहा है, अगर खुद भी अंधा है तो बड़े खतरे में है। और खतरा ऐसा है कि जो पीछे चल रहा है वह सोचता है कि मैंने आंख वाले का हाथ पकड़ा है। और जिसका हाथ पकड़ा है वह सोचता है जब इतने लोग मेरे पीछे चल रहे हैं, तो जरूर ही मैं आंख वाला होऊंगा; अन्यथा इतने लोग धोखा खा सकते थे? जब तुम पर कोई भरोसा कर लेता है तो तुम्हें अपने पर भरोसा आ जाता है। तुम्हारा भरोसा, अपने पर भरोसा भी उधार होता है। चार लोग तुम्हें मानने लगते हैं कि तुम ज्ञानी हो तो तुम भी अपने को ज्ञानी मानने लगते हो। इतने लोग गलत थोड़े ही मानते होंगे, इतने अंधे थोड़े ही होंगे दुनिया में? तो मेरी भ्रांति ही थी कि मैं सोचता था कि मुझे पता नहीं है; मुझे पता है, दूसरे लोग तक मानने लगे हैं। इस तरह बड़ी उपद्रव की बात हो गयी है। पीछे चलनेवाला सोचता है तुम्हारे शब्दों की बात, जिनमें कि वेदों का उच्चार है, तो सोचता है जानते होओगे। तुम सोचते हो कि पीछेवाला जब मेरा हाथ पकड़े है, तो जरूर मेरे पास आंख होगी; तुम भी लकड़ी फेंक देते हो। यह भयंकर स्थिति मनुष्य की है।
तो कसौटी देते हैं गोरखः कथनी कथै सो सिष बोलिये।
जिसे वेद कंठस्थ हों, जो सुंदर वचन दोहरा रहा हो, पुनरुक्त कर रहा हो, उसे शिष्य से ज्यादा मत समझना। अभी गुरु होना तो बहुत दूर है। अभी तो वह शिष्य स्वयं है। जिसके पास उधार ज्ञान हो वह तो अभी स्वयं ही विद्यार्थी है। अभी तो उसके पास अपना दीया नहीं जला। अभी तो उसने अपनी ज्योति नहीं पायी। अभी तो जो भी बोल रहा है, सब उद्धरण है, सब उधार है, उच्छिष्ट है। कथनी कथै सो सिष बोलिए।
जैसे विद्यार्थी दोहरा देते हैं, जा कर परीक्षा में लिख आते हैं; कुछ
भी उन्हें पता नहीं है कि क्या लिख रहे हैं। जो उनके शिक्षकों ने कहा है, वही लिख आते हैं। जैसा कहा है, वैसा ही लिख आते हैं। इसकी चिंता भी नहीं करते हैं कि ठीक भी है या गलत है।
मैं विद्यार्थी था। मेरे जो शिक्षक थे, उनका मुझसे अति प्रेम था। एम.
ए. की अंतिम परीक्षा, उन्होंने मुझे कहा कि ख्याल रखना, जो किताबों में लिखा है वही लिखना; रत्ती-भर इधर-उधर की बात मत करना। तुम्हें गलत भी मालूम पड़े, तो भी वही लिखना जो किताबों में लिखा है।

मुझे जानते थे कि मैं वही लिखूंगा जो मुझे ठीक लगता है। मैंने वही लिखा भी जो मुझे ठीक लगता है। मगर परीक्षा में जो लिखा गया था, वह तो उन्होंने किसी तरह सम्हाल लिया। फिर एक मुखाग्र परीक्षा भी थी अंतिम। उसमें तो उन्होंने मुझे बहुत समझाया, कि अब तो दूसरे विश्वविद्यालय के शिक्षक आ रहे हैं; अब मेरे हाथ में बात नहीं है। अब तो तुम ठीक वही कहना जो किताब में लिखा है, नहीं तो मैं भी कुछ सहायता नहीं कर सकूंगा।
वे शिक्षक आये; अलीगढ़ विश्वविद्यालय के दर्शनशास्त्र के प्रधान थे, बुजुर्ग थे। उन्होंने मुझसे पहला ही प्रश्न पूछा कि भारतीय दर्शन की क्या विशिष्टता है? मैंने उनसे कहा कि दर्शन भी भारतीय और अभारतीय हो सकता है? मेरे प्रोफेसर मेरे पास ही बैठे थे, वे मेरी टांग में टांग मारने लगे कि तुम्हें जवाब देना है, तुम्हें सवाल नहीं पूछना है। जब मैंने उनकी टांग की कोई फिक्र न की तो वे मेरा कुर्ता खींचने लगे। तो मैंने अलीगढ़ से आये हुए प्रोफेसर को कहा कि मैं बहुत अड़चन में हूं; मैं आपका उत्तर दूं कि मेरे प्रोफेसर टांग में टांग मारते हैं, मेरा कुर्ता खींचते हैं, मैं इनकी फिक्र करूं? मेरे शिक्षक तो बहुत घबड़ा गये। उन्होंने कहाः यह भी कोई कहने की बात थी! मैंने कहा कि भारतीय दर्शन और गैर-भारतीय दर्शन, ऐसा भेद हो नहीं सकता; दर्शन तो दर्शन है। दर्शन का अर्थ है दृष्टि। तो फिर जीसस की हुई कि कृष्ण की, भेद क्या होगा? सफेद चमड़ीवाला देखे कि काली चमड़ीवाला देखे, भेद क्या होगा? चमड़ी से कुछ आंखों के रंग बदल जायेंगे, देखने के ढंग बदल जायेंगे? जिन्होंने पश्चिम में भी देखा है उन्होंने वही देखा है जो पूरब में देखा है। हेराक्लाइटस ने वही देखा जो बुद्ध ने देखा। पाइथागोरस ने वही देखा जो पार्श्वनाथ ने देखा; जरा भी भेद नहीं है। और जिन्होंने भिन्न-भिन्न देखा, वे सब अंधे हैं। आंखवालों ने एक ही देखा। तो मैंने उनसे पूछाः अगर दर्शनशास्त्र में आंखवालों की ही गिनती करो तो कभी भी, कहीं भी, किसी ने देखा हो तो एक ही बात देखी है। और अगर अंधों की भी गिनती करते हो, तब तो फिर हिसाब लगाना बहुत मुश्किल हो जायेगा। पर अंधों की गिनती दर्शनशास्त्र में होनी ही नहीं चाहिए, दर्शनशास्त्र में तो सिर्फ द्रष्टाओं की गिनती होनी चाहिए।
मेरे प्रोफेसर को तो पक्का हो गया कि यह परीक्षा गयी! मगर अलीगढ़ से आये उन बुजुर्ग को बात बहुत जमी। उन्होंने कहाः मैंने कभी सोचा ही नहीं था इस तरह कि यह भेद ठीक नहीं है। हमने तो मान ही लिया है कि भारतीय दर्शन, पाश्चात्य दर्शन... । तुम्हारा उत्तर किताब का तो नहीं है, मगर उत्तर सही है।
उन्होंने मुझे निन्यान्नबे अंक दिये सौ में से। मैंने पूछाः एक आपने कैसे काटा? कुछ गलती हो तो मुझे आप बता दें। उन्होंने कहाः नहीं, तुम्हारी गलती के लिए नहीं काटा है, यह तो केवल अपनी रक्षा के लिए कि लोग सोचेंगे कि मैंने पक्षपात किया है, सौ के सौ दे दिये! सौ ही देने चाहिए। मुझे क्षमा करो, दिये नहीं जाते। सौ ही दिये जाने चाहिए, मगर दिये नहीं जाते नियम से। अगर मैं सौ के सौ दे दूं तो ऐसा लगेगा कि कुछ पक्षपात किया है, इसलिए निन्यान्नबे दे रहा हूं।
एक पंडित है, लकीर का फकीर है। जैसा किताब में लिखा है, तोते की तरह दोहरा देता है। न सोचता, न विचार करता; न मनन है, न चिंतन है, न ध्यान है। वह विद्यार्थी है। विद्यार्थियों से सावधान रहना; उन्हें तो अभी स्वयं ही पता नहीं है।
कथनी कथै सो सिष बोलिए, वेद पढ़ै सो नाती।
और जो अभी वेद पढ़ ही रहा है, वह तो शिष्य से भी गया-बीता है। शिष्य को
तो कहते हैं बेटा, गुरु का बेटा, पुत्र। और वेद पढ़ै सो नाती। वह तो बेटे का बेटा है। उसकी तो गिनती ही मत करना, अभी पढ़ ही रहा है। एक तो तोता बन गया है, एक अभी तोता बन ही रहा है। उसकी तो कोई गिनती ही मत करना।
रहणी रहै सो गुरु हमारा।
फिर कौन गुरु है? रहणी रहै सो गुरु हमारा। यह प्रश्न शास्त्रों का नहीं है, जीवन का है। जो परमात्मा को जी रहा हो, वही हमारा गुरु है।
परमात्मा को जी रहा हो! फिर तो वेद, कुरान और बाइबिल से कोई संबंध न रहा।
फिर तो फूलों से, वृक्षों से, चांद-तारों से कहीं ज्यादा संबंध हो गया।

परमात्मा फैला है चारों तरफ। यह महोत्सव उसकी ही आनंद-लीला है। जो इस उत्सव में मग्न हो, जो इस उत्सव में लवलीन हो, जो जी रहा हो इस उत्सव को, जो परमात्मा से मिले जीवन को प्रसाद की तरह स्वीकार करके नृत्यमग्न हो, जो डूबा हो इस अहर्निश नाद में, यह जो ओंकार व्याप्त है, यह जो कण-कण अस्तित्व का नृत्यमग्न है, लीन है--ऐसा जो लीन हो, इसमें जो लीन हो; ऐसे जिसके जीवन के पास उत्सव की आभा हो; जिसके पास पहुंचकर नाचने का मन होने लगे; जिसके पास बैठकर झर-झर आनंद के आंसू बहें, हृदय गदगद हो--बस उसे ही!
रहणी रहै सो गुरु हमारा।
जिसके रहने में वेद हो; जिसके उठने-बैठने में गीता हो; जिसके खाने- पीने में पूजा हो, प्रार्थना हो, आराधना हो, अर्चना हो; जिसकी आंखों में, आंखों की झलक में कुरान हो--उसे गुरु मानना। यह बात शब्दों की नहीं है, शब्दों के दोहराने की नहीं; अस्तित्वगत हो।
जिनसे वेद पैदा हुआ था, उन्हें तो कुछ वेद पता नहीं था। उसके पहले तो वेद था ही नहीं। जिनसे वेद बहा, उन्हें तो वेद कंठस्थ नहीं था। कंठस्थ होता भी कैसे? उसके पहले तो वेद था ही नहीं। जिनसे वेद बहा, बिना वेद को जाने, वैसी ही घटना फिर क्यों नहीं हो सकती? फिर भी हो सकती है, क्योंकि परमात्मा पक्षपाती नहीं है। अगर वेद के ऋषियों से बह सका था और वेद की अपूर्व ऋचाओं का जन्म हुआ था, तुम से भी बहेगा--द्वार दो, राह दो। मार्ग के पत्थर न बनो, अवरोध न बनो। हट जाओ, रिक्त कर दो स्थान। सिंहासन खाली करो, विराजेगा वह। तुम से भी ऋचा जन्मेगी। तुमसे भी ऋतंभरा बहेगी। तुमसे भी मंत्र पैदा होंगे। वही गाया था वेद के ऋषियों से। वही बोला कृष्ण से। वही गुनगुनाया मुहम्मद से। वही क्यों तुम्हारे साथ अन्याय करेगा? तुम्हारे साथ वही व्यवहार होगा जो सबके साथ हुआ है, सिर्फ तुम तैयारी दिखाओ।
रहणी रहै सो गुरु हमारा।
गोरख कहते हैंः हमने तो खोज लिया ऐसा एक आदमी, तुम भी खोज लेना। गोरख
ने खोज लिया था मच्छिंद्रनाथ को।
रहणी रहै सो गुरु हमारा, हम रहता का साथी।
और अगर साथ ही जोड़ना हो तो बस उससे जोड़ना, जिसके अस्तित्व में, जिसके होने में प्रमाण हो परमात्मा का। जो स्वयं प्रमाण हो परमात्मा का। जिसे देखकर भरोसा आये कि ईश्वर है, कि ईश्वर होना ही चाहिए। जिसकी बांसुरी सुनो, तो ओंकार का नाद स्मरण आये। जिसका मौन सुनो, तो सारे अस्तित्व की शांति तुम पर बरस उठे। जिसके पास घड़ी-भर बैठ जाओ तो स्नान हो जाये। तुम ताजे होकर लौटो, नये होकर लौटो, युवा होकर लौटो। तुम्हारी धूल झड़ जाये। तुम्हारा दर्पण स्वच्छ हो जाये।
हम रहता का साथी!
जिसके कहने में और जिसके करने में भेद न हो। जिसके कथन में और जिसके जीवन में भेद न हो। जिसका कथन और जिसका जीवन एक ही रस से ओतप्रोत हो। जहां पाखंड न हो।
लेकिन मनुष्य को पाखंड की बहुत शिक्षा दी गयी है। तुम्हें कहा ही नहीं गया कि तुम अपनी निजता को स्वीकार करो। तुमसे कहा गया है कि तुम तो गलत हो। तुम्हें तो आदर्श दिये गये हैं, जिनके अनुसार तुम्हें चलना है। और स्वभावतः वे सारे आदर्श असंभव हैं। उन असंभव आदर्शों का एक ही परिणाम होता है कि तुम पाखंडी हो जाते हो। तुमसे कहा गया हैः संसार छोड़ दो, त्यागी हो जाओ। यह आदर्श इतनी बार दोहराया गया है कि इसका एक ही परिणाम हुआ है कि जब तक तुम संसार में हो, तब तक तुम आत्मनिंदा से भरे रहोगे--कि तुम कुछ गलत कर रहे हो, तुम पाप कर रहे हो, तुम नरक जाने का आयोजन कर रहे हो!
और संसार को छोड़ोगे कैसे? संसार को परमात्मा ने भी छोड़ा नहीं है, तुम कैसे छोड़ोगे? तुम असंभव करना चाहते हो, जो परमात्मा ने नहीं किया वह करना चाहते हो? छोड़कर जाओगे कहां? जहां जाओगे वहीं संसार है। तुम सोचते हो हिमालय पर संसार नहीं, तो क्या है? यह सारा विस्तार उसी का है। चांद-तारों पर भी चले जाओगे तो भी तुम उसी के संसार में हो। और हिमालय पर भी भूख लगेगी और प्यास लगेगी। और हिमालय पर भी छाया की जरूरत होगी। जब धूप आयेगी और वर्षा होगी तो गुफा खोदोगे। चलो, थोड़ा आदिम किस्म का मकान होगा, मगर होगा तो मकान ही! खुद न कमाओगे तो भीख मांगोगे। अर्थ हुआः कोई और कमायेगा, तुम

उसकी कमाई खाओगे। भेद क्या पड़ा, अंतर कहां है? तुम कभी भी इस त्याग के आदर्श को पूरा न कर पाओगे।
परमात्मा ही त्यागी नहीं है, परमात्मा परम भोगी है; इस सारे अस्तित्व
के भोग में लीन है। परमात्मा स्वयं त्यागी नहीं है, लेकिन तुम्हारे तथाकथित महात्माओं ने तुम्हें त्याग समझा दिया है। इस त्याग के कारण या तो तुम दीन हो जाते हो--एक परिणाम, कि तुम्हें लगता है मैं गर्हित, मैं निंदित, मैं पापी, मैं नारकीय; मुझसे त्याग नहीं होता! या, अगर तुम चालबाज हुए, चालाक हुए... यह तो सीधे-सादे आदमी की बात है कि वह समझेगा कि मैं निंदित हो गया। मैं अभी इस योग्य नहीं, मेरी आत्मा अभी इतनी ऊंची नहीं कि मैं त्याग कर सकूं। यह तो सीधे-सादे आदमी की बात है।... जो चालबाज है, चालाक है, होशियार है, वह तरकीब निकाल लेगा। वह त्याग का आवरण खड़ा कर लेगा। घर छोड़ देगा, आश्रम बना लेगा। लेकिन आश्रम घर का ही दूसरा ढंग है। बाल-बच्चे छोड़ देगा, शिष्य बना लेगा। लेकिन शिष्य बाल-बच्चे ही हैं। यह पाखंड शुरू हुआ। अब इसके कहने और रहने में बड़ा भेद हो जायेगा। यह कहेगा कुछ, रहेगा कुछ।
अगर तुम सच में ही वैसे रहना चाहते हो जैसे तुम जीते हो, तो तुम्हें एक बड़ी महत्वपूर्ण बात समझ लेनी पड़ेगी--तुम्हें आदर्शों से मुक्त हो जाना पड़ेगा। आदर्श या तो दीन बनाते हैं या पाखंडी। तुम्हें सरल होना पड़ेगा, सहज होना पड़ेगा। तुम्हें जीवन की प्राकृतिक गति के साथ बहना पड़ेगा। परमात्मा ने तुम्हें जन्म दिया है, स्वीकार करो। उसने तुम्हें संसार दिया है, अंगीकार करो। उसने जो दिया है उसे अस्वीकार करना, उसका अपमान है। तुम जहां हो, वहीं जीयो। छोड़ने-छाड़ने, भागने-भूगने की बातें छोड़ो। सरलता से, सहजता से... ।
और ख्याल रखो, वही कहो जो तुम जीते हो, उससे अन्यथा मत कहो। जो तुम हो, उसे वैसा ही प्रगट कर दो--नग्न; उसे छिपाओ मत। आदमियों से तो छिपा लोगे, परमात्मा से तो नहीं छिपेगा न। और जो उससे न छिपा, उसे छिपाने का फायदा भी क्या है? उसके सामने सब प्रगट है। तुम जैसे हो अपनी नग्नता में, अत्यंत नग्नता में, वैसे प्रगट होओ; वैसे ही तुम अपने को स्वीकार करो, अंगीकार करो। तत्क्षण दीनता भी चली जायेगी, और तत्क्षण पाखंड भी गिर जायेगा। रहणी रहै सो गुरु हमारा, हम रहता का साथी।
गोरख कहते हैं कि बस हमने तो उसका साथ खोजा, जिसने धर्म को रहना जाना है।
रहता हमारे गुरु बोलिये, हम रहता का चेला।
चेला शब्द बड़ा प्यारा है। एक तो होता है विद्यार्थी, विद्यार्थी का अर्थ होता हैः जो आया है ज्ञान सीखने। किसी भी तरह का ज्ञान--गणित हो, भूगोल हो, इतिहास हो, विज्ञान हो। किसी भी तरह का ज्ञान सीखने जो आया है, वह विद्यार्थी। सामान्य सीखने की जिसकी आकांक्षा है, वह विद्यार्थी।
शिष्य कहते हैं उसे, जो धर्म सीखने आया है। उसके सीखने की एक विशेष आकांक्षा है। गणित नहीं, भूगोल नहीं, रसायन नहीं, भौतिकी नहीं; धर्म सीखने आया है--वह शिष्य। मगर आया है सीखने ही। उसका सीखना विशिष्ट है, लेकिन है तो सीखना ही। गणित-शास्त्र नहीं सीखता, धर्मशास्त्र सीखता है। फिर चेला कौन है? चेला वह है जो सीखने ही नहीं आया, होने आया है।
अगर गुरु वह है जो हो गया है, तो चेला वह है जो होने आया है। अगर गुरु
वह है जो परमात्मा को जी रहा हैः परमात्मा को ही लेता है श्वास में भीतर और परमात्मा को ही छोड़ता है श्वास में बाहर। जिसकी हृदय की धड़कन-धड़कन परमात्मा से ही परिपूर्ण है। अगर गुरु वह है, तो चेला कौन? चेला वह है, जो ऐसा हो जाना चाहता है। जो अपने सब पाखंड को छोड़ने को राजी है--फिर चाहे कुछ भी कीमत हो; चाहे जीवन ही क्यों न खोना पड़े। सब दांव पर लगाने को तैयार है। आकांक्षा सिर्फ ज्ञान की नहीं है, जीवंत अनुभव की है। उसे कहते हैं चेला। रहता हमारे गुरु बोलिये, हम रहता का चेला।

ज्योति तमहर फूट निकले,
दीप बालो, दीप बालो!
आस्था, आराधना के,

प्रेरणा के दीप बालो!
अल्पना रच दो, सजनि,
प्रांगण सुचित्रित मुस्कराए, अल्पना के मध्य मंगल
घट सुशोभित हो सुहाए!
दीप घट पर बाल दो,
चिर-ज्योति का आह्वान कर लो,
व्याप्त, आगत तम-निवारण
का, सुमुखि, सामान कर लो!
ज्योति आकुल फूटने को
दीप बालो, दीप बालो!
चेला वह है जो दीया जलाने आया है। विद्यार्थी वह है जो ज्योति के संबंध में समझने आया है। चेला वह है जो ज्योति बनने आया है।

ज्योति तमहर फूट निकले,
दीप बालो, दीप बालो
आस्था, आराधना के
प्रेरणा के दीप बालो!
विद्यार्थी का काम परीक्षा पर पूरा हो जाता है। चेले का काम जीवन की अग्नि-परीक्षा है, जीवन से गुजर कर पूरा हो जाता है; तभी पूरा होता है।
विद्यार्थी सूचनाएं इकट्ठी कर लेता है; स्मृति थोड़ी समृद्ध हो जाती है।
चेला स्मृति के लिए चिंतित नहीं है, अनुभव के लिए आतुर है।
रहता हमारे गुरु बोलिये, हम रहता का चेला।
मन मानै तो संगि फिरै, निहतर फिरै अकेला।
गोरख सहजता के पक्षपाती हैं। सहज-योग उनका योग है। वे कहते हैंः
मन मानै तो संगि फिरै।
जब तक सहजता से अच्छा लगता है, तो गुरु के साथ-साथ घूमते हैं, उसका रसपान करते हैं, उसका जीवन पीते हैं।
मन मानै तो संगि फिरै, निहतर फिरै अकेला।
और फिर कभी-कभी मन नहीं मानता तो फिर अकेले हो जाते हैं। फिर अकेले ही घूमने लगते हैं।
इस बात को समझना। गुरु के पास होना सामान्य घटना नहीं है। गुरु के पास होने का अर्थ है, उसे निरंतर पचाना भी होगा। फिर कभी-कभी ऐसा भी हो जायेगा कि सीमा के बाहर होने लगेगी वर्षा... और शिष्य को अकेले में चला जाना होगा। थोड़े दिन गुरु से अलग रहना होगा, ताकि जितना दिया है वह पच जाये, रक्त-मांस-मज्जा बन जाये। फिर जब लगेगी भूख, तो फिर लौट आयेगा शिष्य। ऐसा बहुत बार होगा। गुरु के पास तो निरंतर रहना तभी संभव हो पायेगा, जब पाचन की क्षमता बड़ी प्रगाढ़ हो जायेगी। वह भी हो जाता है धीरे-धीरे।
लेकिन गोरख यह कह रहे हैंः ध्यान रखना, जबर्दस्ती मत करना। क्योंकि सत्य भी दुष्पाच्य हो सकता है। लोभ मत करना, सुनना अपनी प्रकृति की। जब तक गुरु के साथ सहजता से, सरलता से, निर्बोझ हुए रहने का रस आता रहे, रहना; अन्यथा एकांत में चले जाना। फिर भूख जगेगी। जैसे कभी-कभी बहुत दिन भोजन के बाद कुछ दिन का उपवास सुंदर होता है, फिर से पाचन-शक्ति लौट आती है, फिर भूख जगती है, फिर भोजन में रस आता है। ऐसे ही कभी-कभी गुरु से दूर चले जाने में कुछ हर्ज नहीं है।
मन मानै तो संगि फिरै, निहतर फिरै अकेला।
अवधू ऐसा ग्यांन बिचारी, तामै झिलमिल जोति उजाली।
कहते हैं कि जब से यह बात समझ में आ गयी... ।
... तामै झिलमिल जोति उजाली... ।
तब से एक ज्योति झिलमिल होने लगी है भीतर। उतना ही ले लेते हैं जितनी अपनी आवश्यकता है, लोभ नहीं करते।
ख्याल करना, बुरी ही चीजों का लोभ नहीं होता, व्यर्थ की चीजों का ही लोभ नहीं होता, सार्थक चीजों का भी लोभ हो जाता है।

मेरे पास आकर संन्यासी कहते हैं कि आप सुबह तो बोलते ही हैं, सांझ भी बोलें तो अच्छा हो। बोलता था सांझ भी कभी; सुबह, सांझ, दोपहर तीन बार बोलता था कभी। मगर वह उन दिनों की बात है जब मेरे पास विद्यार्थी थे। फिर जैसे- जैसे शिष्य आने लगे, तीन बार बोलने की जगह दो बार बोलना शुरू कर दिया। अब चेले इकट्ठे हो गये हैं, अब एक ही बार बोलना काफी है। तुम्हें समय भी तो मिलना चाहिए कि तुम उसे पचा लो, तुम उसे आत्मसात कर लो। फिर कभी-कभी देखता हूं किसी संन्यासी को ज्यादा बोझ हुआ जा रहा है, तो उसे दूर भेज देता हूं, कोई भी बहाना लेकर दूर भेज देता हूं। उसे ऐसा ही लगता है कि किसी काम से भेज रहा हूं, लेकिन वास्तविक जरूरत यह होती है कि वह दूर थोड़े दिन रह आये तो हलका हो जाये। फिर योग्य हो जाये। फिर नया दान उसे दिया जा सके।

हे देवि, तुम्हारा दिव्य राग!
मूर्च्छना बिंदु से नाद सिंधु
रसगर्भ लहर के रूप ढले।
आकाश वायु परिरंभन में,
मधुगंध स्पर्श बन अंध मिले।
झरता निरवधि प्रीणन पराग!
हे देवि, तुम्हारा दिव्य राग! रच लिये कलेवर सीमित कर,
इच्छा प्रतीक परमाणु बने।
बांधे सीमायें दिशा काल,
संसृतियों के नीहार घने।
सोये स्पंदन सब उठे जाग!
हे देवि, तुम्हारा दिव्य राग!
रहोगे गुरु के साथ, तो दिव्य राग जगेगा। प्राण झंकृत होंगे। जीवन नयी तरंगें लेगा, नयी करवटें लेगा। नये आयाम खुलेंगे। नयी ऊंचाइयां छुओगे।
नयी गहराइयों में डुबकियां मारोगे। यह अति जल्दी में नहीं होना चाहिए।
धीरे-धीरे, ताकि साथ-साथ पकते भी चलो।
अवधू ऐसा ग्यांन बिचारी, तामै झिलमिल जोति उजाली।
जहां जोग तहां रोग न ब्यापै, ऐसा परषि गुरु करनां।
रोग का अर्थ एक ही होता हैः तृष्णा, वासना। रोग का अर्थ होता हैः जो तुम्हें दौड़ाये रखे, भटकाये रखे, भरमाये रखे। रोग का अर्थ होता हैः जो तुम्हें निश्चिंत न होने दे, शांत न होने दे।
स्वस्थ शब्द का अर्थ समझ लो तो रोग का अर्थ समझ में आ जायेगा। स्वस्थ
का अर्थ होता है स्वयं में स्थित हो जाना। यह शब्द बड़ा प्यारा है। स्वस्थ का अर्थ होता है स्वयं में ठहर जाना। जो चीज भी तुम्हें स्वयं से दूर ले जाये, वही रोग। जो तुम्हें स्वयं से भटकाये, अलग करे, तोड़े, अस्वस्थ करे-- वही रोग। कौन करता है तुम्हें अपने से दूर? तुम्हारी वासना, तुम्हारी तृष्णा तुम्हें भविष्य में भटकाती है। तुम्हारी तृष्णा कहती हैः कल, कल होगा धन, कल बनेगा भवन, कल मिलेगी सुंदर स्त्री कि सुंदर पुरुष, कि कल होगा एक बेटे का जन्म। कल सब ठीक हो जायेगा; आज थोड़ी ही देर की बात है, गुजार दो। आता है कल, लायेगा स्वर्ग। आता है कल, सब ठीक हो जायेगा। जरा-सी देर और कर लो प्रतीक्षा। थोड़ी और आशा को सम्हालो। बुझ मत जाने दो आशा का दीया--जलाये रखो, उकसाये रखो बाती को। डालते रहो थोड़ा तेल और। बस थोड़ी ही देर और, कल आता ही होगा।
और कल कभी आता नहीं, कल कभी आया नहीं। कल का कोई अस्तित्व ही नहीं है। फिर आयेगा आज और तब भी तुम यही करोगे कि कल बनेगा भवन, कल होगा उत्सव। ऐसे टालते रहोगे, टालते रहोगे और एक दिन आयेगी मौत... । कल कभी न आयेगा, एक दिन आयेगी मौत! कल तो न आयेगा, एक दिन आयेगा काल और उस काल के आते ही सब कल समाप्त हो जायेंगे। और आज तो तुम बरबाद ही करते रहे। यह है रोग की दशा।
रोग का अर्थ हैः तना हुआ चित्त, खिंचा हुआ चित्त।
नीरोग का अर्थ हैः शांत, स्वस्थ, अभी, यहां। न कोई कल है बीता, न कोई कल
है आनेवाला; आज सब कुछ है।

जीसस ने कहा अपने शिष्यों सेः देखते हो खेत में खिले लिली के सफेद फूल, कितने गरीब और कितने धनी! गरीब लिली के फूल कहीं भी उग आते हैं। कोई बड़ी हिफाजत भी नहीं करनी पड़ती। और कितने समृद्ध कि सम्राट सोलोमन भी अपने स्वर्ण-आभूषणों से लदे हुए, हीरे-जवाहरातों से टंके हुए आभूषणों और वस्त्रों में भी इतना सुंदर नहीं था, इतना महिमावंत नहीं था, जितना ये लिली के सफेद फूल! देखते हो लिली के सफेद फूल! इनका रहस्य क्या है, जीसस ने पूछा शिष्यों से। शिष्य तो चौंके खड़े रह गये, क्या रहस्य बतायें, उनकी कुछ समझ में न आया। और जीसस ने कहाः इनका रहस्य बड़ा छोटा है। ये कल की चिंता नहीं करते; ये बस अभी हैं, आज हैं। ये वर्तमान में जीते हैं। जो वर्तमान में जीता है, वह स्वस्थ। जो भविष्य में जीता है, वह अस्वस्थ।
जहां जोग तहां रोग न ब्यापै।
और योग का अर्थ होता है परमात्मा से मिलन। योग का अर्थ नहीं होता कि खड़े हैं सिर के बल। ये सब कवायदें हैं। योग का अर्थ नहीं होता कि बैठे हैं सांस रोक कर। योग का अर्थ नहीं होता कि बैठे हैं सांस रोक कर। योग का अर्थ नहीं होता कि उलटे-सीधे, शरीर को इरछा-तिरछा किये सता रहे हैं। योग का सीधा-सीधा अर्थ है--मिलन। योग यानी जुड़ना। परमात्मा से जो जुड़ गया वही योगी है। ये जिनको तुम योगी समझते हो, ये सब सरकसों में भर्ती करने योग्य हैं। इनका कोई भी मूल्य नहीं। अच्छा है, शरीर के स्वास्थ्य के लिए ठीक है, पर इससे कुछ परमात्मा के मिलने का लेना-देना नहीं है। परमात्मा से कौन मिलता है? जो स्वस्थ है। जो स्वयं में स्थित है। जो वर्तमान में आरूढ़ है। क्योंकि परमात्मा का द्वार वर्तमान है।
अतीत है नहीं अब, न हो चुका; भविष्य अभी आया नहीं, वह भी नहीं है। है क्या? यह क्षण! इस क्षण से ही तुम प्रवेश करो तो परमात्मा में पहुंच सकते हो। क्योंकि यही क्षण वास्तविक है, अस्तित्ववान है। और परमात्मा है महा अस्तित्व। इसी क्षण के द्वार से सरको और परमात्मा में पहुंच जाओगे। ध्यान की सारी प्रक्रियाएं इसी क्षण में उतर जाने की प्रक्रियाएं हैं। जब चित्त में कोई विचार नहीं होता, तो स्वभावतः समय मिट जाता है। क्योंकि विचार या तो अतीत के होते हैं या भविष्य के होते हैं। वर्तमान का तो विचार कभी होता ही नहीं। तुम करना भी चाहो तो न कर सकोगे; बैठ कर कोशिश करना। वर्तमान का कोई विचार संभव नहीं है; वह असंभावना है। तुम जब भी विचार करोगे तो अतीत का होगा। यह भी हो सकता है कि सामने गुलाब का फूल खिला है और जैसे ही तुमने कहा, "अहा, कितना सुंदर फूल!" यह अतीत हो गया। यह तुम्हारी जो प्रतीति हुई थी सौंदर्य की, उसकी स्मृति है अब। यह अतीत हो गया, यह अब वर्तमान न रहा। तुम बोले कि अतीत में गये, या भविष्य में गये। विचार उठा, कि अतीत या भविष्य। तुम डोल गये दायें या बायें, मध्य खो गया। मध्य तो निर्विचार में होता है।
ध्यान का अर्थ होता हैः चुप, मौन, कोई विचार नहीं उठता, कोई विचार की तरंग नहीं उठती, झील शांत है... । यह शांत झील वर्तमान से जोड़ देती है। और जो वर्तमान से जुड़ा, वही योगी है। ध्यानी योगी है। और जो वर्तमान से जुड़ गया, वह परमात्मा से जुड़ गया; क्योंकि वर्तमान परमात्मा का द्वार है।
कैसे खोजोगे गुरु को? इस तरह खोजनाः
अवधू ऐसा ग्यांन बिचारी, तामै झिलमिल जोति उजाली।
जिसमें तुम्हें ज्योति का दर्शन हो।
जहां जोग तहां रोग न ब्यापै।
जहां तुम्हें लगे कि परमात्मा से मिलन हो गया इसका। जहां तुम्हें कोई तृष्णा, वासना, भविष्य न दिखाई पड़े।
ऐसा परषि गुरु करनां।
ऐसा परख लेना, फिर झुक जाना चरणों में। फिर उठना ही मत।
ऐसा परषि गुरु करनां।

गरजते घन,
कौंधती विद्युत,
पवन का हास
हाहाकार-सा,

मन-प्राण आकुल, भीत!
क्या विध्वस्त
हो कर ही रहेगा नीड़,
जिसके सजग
तृण-तृण में समाहित
स्नेह की उपलब्धियां,
श्रम रागमय,
परिकल्पनाएं, स्वप्न
रसमय, मदिर, मादक
आज के,
कल के,
अजाने काल के?
पर सत्य
क्या भय?
वज्र जो
नभ से गिरे,
वह नीड़ ही
खोजे हमारा?
और यह
आसन्न झंझावात
क्या अपने लिये ही?
हर विकट
तूफान क्या उठता
हमें संत्रस्त करने के लिए ही? कौन जाने?
किंतु मन
ऐसा, कि जो
संभाव्य,
सब लगता
उसे अपने लिये ही!
मोह, अतिशय मोह,
जो शंकित सदा,
संत्रस्त
अपनी सजगता से,
हानि-क्षति की
कल्पना से!
किंतु ऐसा
मोह क्या,
जो ब्याधि बन,
अविरत सताये?
उठो, झंझावत!
तुम में ही
अभय अब
खोजना है!

झंझावत उठते हैं। लेकिन सब झंझावात अतीत के हैं या भविष्य के हैं। भविष्य और अतीत के मोह ही व्याधियां बन जाते हैं।
उठो झंझावत!
तुम में ही
अभय अब
खोजना है!
चिंता न करना मन के विचारों की, मन के तूफानों की। कहना, उठो! आने दो विचारों के तूफान। तुम सजग होकर देखना उन तूफानों को। उठने देना विचारों की आंधियां। तुम साक्षी बन कर देखना उन आंधियों को। और उसी साक्षी होने

में तुम उस मध्य-बिंदु को पा जाओगे, जो सदा ही सभी झंझावातों के पार है; जहां तक कोई झंझावात न कभी पहुंचा न पहुंच सकेगा। उस मध्य-बिंदु पर व्याधियां मिट जाती हैं, रोग मिट जाते हैं। उसी मध्य-बिंदु पर... तामै झिलमिल जोति उजाली... ज्योति का दर्शन होता है--ऐसी ज्योति का जो जलानी नहीं पड़ती। बिन बाती बिन तेल! जो सदा से जल ही रही है। मगर तुम इतने उलझ गये बाहर-बाहर, कि भूल ही गये अपने घर का द्वार।
जहां जोग तहां रोग न ब्यापै, ऐसा परषि गुरु करनां।
तन मन सूं जे परचा नांही, तौ काहे कौ पचि मरनां।।
शास्त्रों को जाननेवालों के चक्कर में मत पड़ जाना; क्योंकि न तो उन्हें अपने तन का परिचय है, न अपने मन का परिचय है। उनकी बातों में पड़ोगे तो व्यर्थ पच-पच मरोगे।
तौ काहे कौ पचि मरनां।
वे तुम्हें जो बतायेंगे, उन्होंने स्वयं भी जाना नहीं है।
ऐसे बहुत लोग हैं इस देश में, जो दूसरों को ध्यान करा रहे हैं। उन्हें स्वयं ध्यान हुआ नहीं है। मेरे पास आते हैं तो पूछते हैं ध्यान कैसे करें? मैं चकित होता हूं। मैं उनसे कहता हूंः आप तो दूसरों को ध्यान करा रहे हैं! वे कहते हैंः हां, दूसरों को करा देता हूं। शास्त्र तो उपलब्ध हैं, तो पढ़ लेता हूं। विधियां भी सब शास्त्र में लिखी हैं, तो बता देता हूं। इसमें कुछ बुराई तो नहीं है? दूसरों का हित ही होता है।
हित नहीं हो सकता। तुमने स्वयं न जाना हो ध्यान, तो तुम जो भी बताओगे उससे अहित होगा। अपने अनुभव से अन्यथा कुछ भी बताओगे तो तुम खतरा दूसरे के लिए पैदा कर रहे हो। ध्यान कोई ऐसी बात नहीं कि किताब से पढ़ ली और बता दी। चूकें हो जायेंगी; ऐसी चूकें हो जायेंगी कि लोग जीवन-भर चेष्टा करते रहेंगे, तो भी ध्यान उपलब्ध न होगा। और चूंकि तुम दूसरों को बताने चले हो ध्यान, तुम धीरे-धीरे यह बताना बंद ही कर दोगे कि मुझे ध्यान नहीं आता। कैसे बताओगे यह कि मुझे ध्यान नहीं आता, किस मुंह से बताओगे कि मुझे ध्यान नहीं आता? शर्म भी तो कुछ खाओगे! ऐसे बहुत लोग हैं जो ध्यान पर किताबें लिखते हैं और जिन्हें ध्यान का कोई पता नहीं! उनकी किताबें पढ़कर लोग ध्यान करते हैं। सावधान रहना, जिनका अपने मन से परिचय नहीं, अपने तन से परिचय नहीं, जिन्होंने अपने भीतर झांका नहीं, उनसे सावधान रहना!
तन मन सूं जे परचा नांही, तौ काहे कौ पचि मरनां!
काल न मिट्या जंजाल न छूट्या, तप करि हूवा न सूरा।
कुल का नास करै मति कोई, जै गुरु मिला न पूरा।।
ध्यान रखना, जब तक पूर्ण गुरु न मिल जाये, तब तक कुछ भी न हो सकेगा।
काल न मिट्या जंजाल न छूट्या... ।
न तो मौत से मुक्ति होगी, न समय मिटेगा, न वासना और तृष्णा का जंजाल मिटेगा।
तप करि हूवा न सूरा।
और लाख तुम तप करते रहो, तपश्चर्या करते रहो--धूप में, सर्दी में खड़े रहो, नग्न रहो, उपवास करो, व्रत करो; कितनी ही बहादुरी दिखाओ और कितना ही अपने को सताओ, कुछ भी न होगा।
कुल का नास करै मति कोई, जै गुरु मिला न पूरा।
और फिर-फिर तुम्हें आना पड़ेगा, कुल का नाश न होगा। फिर-फिर लौटोगे। वापिस नये-नये जन्म होंगे। फिर गर्भ, फिर वही दौड़, फिर वही अज्ञान, फिर वही जंजाल... । यह छूटता ही तब है,
जै गुरु मिला न पूरा।
तब तक नहीं जब तक गुरु न मिल जाये। और कौन है पूरा गुरु?
रहता हमारे गुरु बोलिये, हम रहता का चेला!
कहीं कोई व्यक्ति मिल जाये, जिसके जीवन में तुम्हें अज्ञात की गंध का एहसास हो। जिसकी मौजूदगी में तुम्हें अनाहत का नाद अनुभव में आये। जिसके पास बैठकर हृदय मौन होने लगे, शांत होने लगे, ध्यान अपने से फलित होने लगे।
तो फिर डुबकी मार लेना। फिर आगा-पीछा न करना। फिर सोच-विचार में मत उलझना।
फिर क्षण-भर भी न गंवाना।
सप्त धात का काया पींजरा, ता महिं जुगति बिन सूवा।

अभी तो तुम सात धातुओं से बने हुए पींजड़े में बंद तोते की तरह हो। सात धातुएं हैं--रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, वीर्य।
सप्त धात का काया पींजरा, ता महिं जुगति बिन सूवा।
और तुम बंद हो तोते की तरह और तोता बिल्कुल अज्ञानी है। उसे जुगति भी पता नहीं कि कैसे बंद हो गया, कहां द्वार है? कैसे निकल जाये, कैसे उड़ जाये? आकांक्षा है उड़ने की। खुला आकाश दिखाई पड़ता है। और उड़ते हुए तोते भी दिखाई पड़ते होंगे। उड़ते हुए तोतों को देखकर उसके प्राणों में भी पीड़ा उठती होगी। मगर उसे कुछ पता नहीं कैसे बंद हो गया। कैसे निकले, यह भी पता नहीं। और जरूरी भी नहीं है कि वह कोई तपश्चर्या करे तो निकल जाये। क्या तुम सोचते हो तोता तपश्चर्या करे पींजड़े में तो निकल सकेगा? कि व्रत-उपवास करे, कि उल्टा लटका रहे, शीर्षासन करे... । इस सब से क्या होगा, यह सब तो पींजड़े के भीतर ही हो रहा है। इससे द्वार नहीं खुल जायेंगे। कोई जो बाहर है, जो बाहर है, वही द्वार खोल सकता है।
गुरजिएफ अपने शिष्यों को कहता थाः अगर कारागृह से छुटकारा पाना हो,
तो सबसे पहला काम यह है, कारागृह के बाहर किसी से नाता जोड़ो। कोई दोस्ती बनाओ कारागृह के बाहर। तो शायद कोई रस्सी फेंक सके दीवाल से, कि औजार फेंक सके कि तुम सींकचे काट सको, कि बाहर से दीवाल में सेंध लगा सके, कि पहरेदारों को रिश्वत दे सके, कि पहरेदारों को शराब पिला सके, कि एक रात वे मूर्च्छित हों और तुम निकल भागो... । बाहर दोस्ती करो।
कारागृह के भीतर से निकलना हो तो बाहर से सूत्र जोड़ना पड़ेगा। थोड़ा-सा
भी सूत्र बाहर से जुड़ जाये, तो कारागृह से निकलना आसान है, अन्यथा असंभव है।
गुरु का इतना ही अर्थ है--जो जंजाल के बाहर हो गया है। उससे थोड़े संबंध जोड़ने से तुम भी जंजाल के बाहर हो सकते हो।
काल न मिट्या जंजाल न छूट्या, तप करि हूवा न सूरा।
कुल का नास करै मति कोई, जै गुरु मिला न पूरा।।
पूरे गुरु से अर्थ है जो पूरा-पूरा जेल के बाहर हो गया है, कारागृह के बाहर हो गया है। और पहचानने में कठिनाई न होगी। तुम पहचानना ही न चाहो तो बात दूसरी है, अन्यथा पहचानने में कभी कठिनाई न होगी। तुम्हारा अंतरतम तत्क्षण गवाही दे देगा कि आ गयी जगह। हां, अगर तुमने न पहचानने की जिद्द कर रखी हो, तो दूसरी बात है। लेकिन न पहचानने की जिद्द में तुम्हारी हानि है, किसी और की हानि नहीं है।
जब तुम किसी को गुरु स्वीकार करते हो तो भूल कर भी यह मत सोचना कि गुरु
पर तुमने कोई अनुग्रह किया है। गुरु को तुम्हारी या तुम्हारे अनुग्रह की कोई भी आवश्यकता नहीं है। जिसकी कोई वासना नहीं है, उसकी क्या आवश्यकता हो सकती है? तुम रहो शिष्य कि न रहो शिष्य, कुछ भेद नहीं पड़ता। लाभ है तो तुम्हारा, हानि है तो तुम्हारी। मगर लोग बहुत अदभुत हैं, उन्होंने लाख बाधाएं खड़ी कर रखी हैं। उन्होंने पहले से ही अपेक्षाएं बना रखी हैं। पूर्व-धारणाएं निश्चित कर ली हैं। उन पूर्व-धारणाओं के अनुसार वे जांच-परख करते हैं।
गोरख सीधा सूत्र दे रहे हैं। वे कह रहे हैंः जांच-परख बौद्धिक धारणाओं से नहीं हो सकती, जांच-परख तो केवल हार्दिक हो सकती है। हृदय की तरंग ही एकमात्र गवाही दे सकती है। गुरु के साथ संबंध तो ऐसा है जैसे प्रेम में पड़ना। प्रेम में पड़े हो कभी? फिर बुद्धि काम नहीं आती। बुद्धि का कोई संबंध भी नहीं है। हृदय उमंग से भर जाता है, हृदय उत्साह से भर जाता है। हृदय "हां" कह देता है, बुद्धि से पूछता ही नहीं। जिसने बुद्धि से पूछा, वह तो शायद कभी प्रेम कर भी न पायेगा। क्योंकि बुद्धि को तो प्रेम की भाषा ही समझ में नहीं आती। बुद्धि के गणित में प्रेम नहीं समाता। बुद्धि धन के संबंध में सोचती है, पद के संबंध में सोचती है, प्रतिष्ठा के संबंध में सोचती है। लेकिन प्रेम, प्रेम बुद्धि का क्षेत्र नहीं है।
सप्त धात का काया पींजरा, ता महिं जुगति बिन सूवा।
तुम बंद हो सात धातुओं के पींजड़े में, युक्ति तुम्हें पता नहीं।
सतगुरु मिलै तो ऊबरै बाबू।
और हे बाबू, जब तक सतगुरु न मिल जाये, तुम उबर न सकोगे।

सतगुरु मिलै तो ऊबरै बाबू, नहीं तो परलै हूवा।
फिर बिना सतगुरु के तो तुम प्रतीक्षा करते रहो, तो प्रलय तक प्रतीक्षा होगी!
सुनते हो यह प्यारा वचनः
सतगुरु मिलै तो ऊबरै बाबू!
उबर सकते हो, एक ही उपाय है--कारागृह के बाहर किसी से दोस्ती बन जाये। कोई तुम्हारा हाथ पकड़ ले कारागृह के बाहर है जो। तो फिर उपाय हो सकते हैं। कभी-कभी छोटे-से उपाय, बड़ी छोटी युक्ति... ।
मैंने सुना है, एक सम्राट अपने वजीर पर नाराज हो गया। उसने उसे एक मीनार पर कैद करवा दिया। मीनार इतनी ऊंची कि अगर भागने की कोशिश करे, तो मौत हो जाये। गिरे उससे तो मर ही जाये। कूद सकता नहीं... । बड़ी मुश्किल, बड़ी कठिनाई, क्या करे क्या न करे? उसकी पत्नी एक फकीर के पास गयी। उसने फकीर से कहाः अब हमारी कुछ समझ में नहीं आता, आप ही कुछ कहो। आप तो बड़ी कारागृह से निकल आये हो! यह तो छोटी-मोटी कारागृह है। जरूर आप कोई उपाय बता सकोगे। हमने तो सुना है कि गुरु संसार के कारागृह से निकाल लेता है, तो मेरे पति तो एक छोटी-सी मीनार पर बंद हैं।
उस फकीर ने कहा कि रास्ता है। तू जाकर जंगल से शृंगी नाम के एक कीड़े को पकड़ ला। उसने कहाः शृंगी नाम के कीड़े को! उसका क्या करेंगे? फकीर ने कहाः तू पहले कीड़ा ला। ज्यादा बातचीत में समय खराब मत कर। समय ज्यादा पास में भी नहीं है। तेरा पति कहीं बचने की कोशिश में कूदने की झंझट न कर ले, अन्यथा समाप्त हो जायेगा। तू शृंगी नाम का कीड़ा पकड़ ला।
उसने कहाः मगर शृंगी नाम के कीड़े को पकड़ लाने से मेरे पति के छूटने का क्या नाता? उस फकीर ने कहाः अगर बौद्धिक विचार करना हो तो तू जान।
कोई और उपाय न था, तो बुद्धि तो गवाही नहीं देती थी--यह शृंगी नाम का कीड़ा... इसका क्या होगा? मगर ले आयी। फकीर नहीं मानता, और कोई उपाय है भी नहीं। तो ले आयी, बुद्धि के विपरीत ले आयी। उस फकीर ने कहा कि इस शृंगी को ले जा। इसको दीवार पर छोड़ देना; इसकी मूंछ पर दो बूंद शहद की रख देना।
उस वजीर की पत्नी ने कहा कि आप होश में हैं या पागल हैं? और मुझको भी पागल बना रहे हैं! अब शृंगी नाम के कीड़े की मूंछ पर शहद की बूंद रखने से क्या होगा? उसने कहाः यह तू बात ही मत कर। और इसकी पूंछ में एक पतला धागा बांध देना और बस राह देखना।
किया। परिणाम आये। शृंगी कीड़ा की मूंछ पर लगी हुई शहद, शहद का प्रेमी... शहद की बास आ रही बिल्कुल नाक के पास; चला कि बिल्कुल पास ही कहीं शहद है। चल पड़ा। मूंछ पर रखी शहद मिल तो सकती नहीं--ऐसी ही शायद सब की मूंछों पर रखी है--पास बिल्कुल, अभी मिली, अभी पहुंचे-पहुंचे। चल पड़ा गरीब कीड़ा। बास आती ही गयी और आती ही गयी और कीड़ा चलता ही गया और चलता ही गया। वह ठीक मूंछ पर रखी थी तो नाक की सीध में चलता चला गया, कोई उपाय भी नहीं था यहां-वहां जाने का। बास बिल्कुल साफ आ रही थी कि इसी दिशा में शहद है। और उसकी पूंछ में बंधा हुआ पतला धागा भी उसके साथ शिखर पर चढ़ने लगा।
जब शृंगी कीड़ा ऊपर पहुंचा, वजीर तो आतुर होकर प्रतीक्षा करता ही था कि कोई उपाय करे, कोई उपाय करे; शायद पत्नी कुछ करे, मित्र कुछ करें। तो राह देख ही रहा था, जागा हुआ बैठा था। देखा एक कीड़े को आते। थोड़ा चौंका, इतनी लंबी मीनार कीड़ा चढ़ आया! फिर देखा मूंछ पर रखी दो बूंदें शहद की, तो और भी चौंका। फिर देखा कि कीड़े की पूंछ में बंधा हुआ धागा। फिर सूत्र खुल गया। धागे में सूत्र था। धागा पकड़ लिया, धागा खींचता चला गया।
फकीर ने कहा था, फिर धागे में थोड़ी-सी रस्सी बांध देना। फिर रस्सी में मोटी रस्सी बांध देना, फिर उसमें और मोटी रस्सी बांध देना; फिर मामला हल हो जायेगा। सुबह होते-होते वजीर मोटी रस्सी को पा गया, मोटी रस्सी से उतर गया; जीवन बच गया।
युक्ति का अर्थ होता हैः कोई विधि। लेकिन विधि तो बाहर से ही काम में लायी जा सकती है, भीतर से काम में नहीं लायी जा सकती। और जो भीतर बंद है जनम-जनम से, जिसने बाहर जाना ही नहीं है, उसकी तो और भी कठिनाई है। यह वजीर तो जानता था कि बाहर क्या है। लेकिन तुम्हें तो बाहर का कोई पता ही नहीं

है। तुमने तो पींजड़े में रहने को ही अपना जीवन का सार-सर्वस्व समझ लिया है।
कुल का नास करै मति कोई, जै गुरु मिला न पूरा।
इसलिए गुरु खोजे बिना कोई उपाय नहीं है।
सतगुरु मिलै तो ऊबरै बाबू, नहीं तो परलै हूवा।

बजती देव, तुम्हारी वीणा!
दिवस निशा के कोण फिसलते,
खिंचे किरण के तार चमकते,
युग मीड़ों औ" कल्प मूर्च्छना से कल्पित अंबर यह झीना। बजती देव, तुम्हारी वीणा!

संवृति में अवरोह तिरोहित,
लिये विवृति आरोह विमोहित,
संचारी आभोग भुक्त अविमुक्त कोण घातित स्वन हीना
बजती देव, तुम्हारी वीणा!

निस्तरंग आलोक सिंधु के,
छवि अभंग में नाद बिंदु के,
एक चिरंतन स्पंद छिपाये कोटि-कोटि रागिणि लयलीना।
बजती देव, तुम्हारी वीणा!

जैसे ही सदगुरु से संबंध हो जाये, उसकी वीणा बजने लगती है--बाहर ही नहीं, तुम्हारे भीतर भी। वह तो बाहर ही वीणा बजाता है, लेकिन उसकी बाहर की वीणा के तार तुम्हारे भीतर की सोई वीणा के तारों को झंकृत कर देते हैं, हिला देते हैं। वह तो बाहर से पुकारता है, लेकिन जल्दी ही पुकार भीतर सुनाई पड़ने लगती है--समानांतर।
सदगुरु का काम क्या है? इतना ही कि तुम्हारे भीतर जो तुम्हारा चैतन्य सोया पड़ा है उसे जगा दे। यह तो कोई जागा हुआ आदमी ही कर सकता है। सोये आदमी को जगाना हो तो जागा हुआ आदमी ही जगा सकता है; वही उसे हिलायेगा-डुलायेगा, ठंडा पानी लेकर उसकी आंखों पर छिड़केगा। मगर बाहर का जागा हुआ आदमी उपाय करे तो तुम्हारी भीतर की चेतना को भी जाग्रत कर सकता है। ठीक ऐसी ही घटना घटती है सदगुरु के सत्संग में।
सतगुरु मिलै तो ऊबरै बाबू, नहीं तो परलै हूवा।
कंद्रप रूप काया का मंडण, अंबिरथा कांइ उलींचौ।
गोरष कहै सुणौ रे भौंदू, अरंड अंमीं कत सींचौ।
यह शरीर तो कामवासना से बना है। यह शरीर तो वासना का पुतला है। इस शरीर के भीतर तुम्हें कोई पहचान करवा दे उसकी जो इस शरीर के पार है, तो ही द्वार मिले, तो ही राह मिले।
कंद्रप रूप काया का मंडण, अंबिरथा कांइ उलींचौ।
यह तो कामवासना से ही निर्मित है पूरी देह, यह मन भी वासना से ही निर्मित है। अगर इसी के काम में उलझे रहे, तो यह तुम व्यर्थ के काम में लगे हो। यह तो ऐसा है जैसे कि फूटी नाव में से कोई पानी उलीचता हो। ऊपर से पानी उलीचते जाते हो, नीचे से पानी चला आता है। व्यर्थ ही उलीच रहे हो। पहले नाव के छिद्र बंद करो।
गोरष कहै सुणौ रे भौंदू!
गोरख कहते हैंः तुम्हारी हालत बड़ी बुद्धओं की है।
सुणौ रे भौंदू... अरंड अंमीं कत सींचौ।
तुम अरंडी के वृक्ष को, व्यर्थ का वृक्ष जो घूरे पर उग आता है, अरंड का वृक्ष--जिसके लिए न माली की जरूरत है न पानी की जरूरत है, जो कहीं भी कूड़ा- कबाड़ इकट्ठा हो जाये तो उग आता है--अरंड के वृक्ष को तुम जीवन के अमृत से सींच रहे हो! व्यर्थ की वासनाओं को... कोई आदमी धन इकट्ठा करने में लगा है, दीवाना हो कर लगा है। धन ही बस सब कुछ है।

मैंने सुना है एक भिखारी सैकड़ों मील चलकर दूर मरुस्थल से जयपुर पहुंचा। जाकर एक बड़े मारवाड़ी धनिक के चरणों में पगड़ी रखी और कहाः मेरी बेटी जवान हो गयी, उसका विवाह करना है। और मैंने आपकी बड़ी प्रशंसा सुनी है, आपके दान की बड़ी प्रशंसा सुनी है। आप जैसा कोई दानवीर है ही नहीं इस समय देश में। आप अपूर्व दान-दाता हो! इसी आशा में, इसी भरोसे सैकड़ों मील की पैदल यात्रा करके आया हूं।
मालूम है, मारवाड़ी ने क्या कहा? कहाः बिल्कुल ठीक किया जो आ गये। अब क्या इसी रास्ते से वापिस भी जाओगे? उसने कहाः हां मालिक, इसी रास्ते से वापिस भी जाऊंगा। तो उसने कहाः एक काम करते जाना, जाते समय लोगों से कहते जाना कि वह अफवाह झूठी है। मेरे संबंध में जो दाता होने का ख्याल है, वह बात गलत है। जाते वक्त लोगों से यह कहते जाना।
एक पैसा भी छोड़ना मुश्किल है। एक-एक पैसे को लोग पकड़कर बैठे हैं!
एक सिपाही एक मारवाड़ी और सिंधी को पकड़ कर ले गया थाने में। और उसने कहा जा कर थानेदार को कि इन दोनों ने खूब शराब पी रखी है। पर दोनों ने कहा कि यह बात झूठ है, हमने शराब नहीं पी है। तो थानेदार ने पूछा सिपाही को कि क्या तेरे पास कारण हैं, किस कारण तू कहता है इन्होंने शराब पी है? उसने कहा कि निश्चित शराब पी है, क्योंकि मारवाड़ी सौ-सौ रुपये के नोट फेंक रहा था निकाल कर खीसे से और सिंधी उठा-उठा कर इसको वापिस दे रहा था, कि भाई, यह रुपया तेरा रख। इन दोनों ने शराब पी रखी है, नहीं तो ऐसी असंभव घटना कहीं घट सकती है! एक तो मारवाड़ी निकाल-निकाल फेंके और फिर सिंधी वापिस दे!
कुछ हैं जो धन ही इकट्ठा करने में लगे हैं। कुछ हैं जो पद की ही दौड़ में लगे हैं। जीवन का यह बहुमूल्य अमृत तुम अरंड के वृक्षों पर सींच रहे हो!
सतगुरु मिलै तो ऊबरै बाबू, नहीं तो परलै हूवा।
नहीं तो प्रलय तक तुम यही करते रहोगे।
कंद्रप रूप काया का मंडण, अंबरिथा कांइ उलींचौ।
ये व्यर्थ की कामवासनाओं की जो भीड़ तुम्हारे भीतर है, इसी में उलझे रहोगे?
गोरष कहै सुणौ रे भौंदू, अरंड अंमीं कत सींचौ।।
और कब तक पागलो, व्यर्थ के घास-फूस को जीवन के महा-मूल्यवान अमृत से सींचते रहोगे!
चकमक ठरकै अगनि झरै त्यूं, दधि मथि घृत कर लीया।
जैसे चकमक पत्थर को रगड़ने से आग पैदा हो जाती है, ऐसे ही जरा भीतर रगड़
को जगाओ, युक्ति सीखो और तुम्हारे भीतर भी ज्योति जल उठे!
चकमक ठरकै अगनि झरै त्यूं, ... दधि मथि घृत कर लीया।
और जैसे दही को मथ कर...
तुम दूध से दही बनाते, दही को मथ कर तुम घी बना लेते, ऐसे ही थोड़े-से मंथन की जरूरत है कि तुम्हारे भीतर जीवन का सार, तुम्हारे भीतर जीवन की परम उपलब्धि फलित हो जाये। तुम्हारे भीतर स्वर्ण-फूल खिले।
आपा मांहीं आपा प्रगट्या, तब गुरु संदेसा दीया।
और तुम्हारे भीतर ही छिपा है जिसे तुम खोजने चले हो।
आपा मांहीं आपा प्रगट्या।
वहीं प्रगट हो जायेगी आत्मा, वहीं परमात्मा।
तब गुरु संदेसा दीया।
और जब तुम्हारे भीतर प्रगट हो जायेगी आत्मा तभी गुरु कहेगा, जो कहने योग्य है। उसके पहले तो सिर्फ जगा रहा है। उसके पहले तो पुकार रहा है कि उठो भौंदू! उसके पहले तो सिर्फ चिल्ला रहा है कि जग जाओ! कहने योग्य बात तो तभी कही जायेगी जब तुम जाग जाओगे। सोए हुए आदमी से क्या कोई खास बात कही जा सकती है, क्या कहा जा सकता है? पहले तो उसे जगाना होगा।
तो गुरु जो बोलता है उसमें दो तरह की बातें हैं। निन्यान्नबे प्रतिशत
तो जगाने के सूत्र हैं, एक प्रतिशत सिर्फ वे बातें हैं जो जागे हुओं को कही गयी हैं। और वे एक प्रतिशत बातें शब्दों से नहीं कही जातीं, वे तो चुपचाप मौन में ही कह दी जाती हैं। जगाने के लिए तो खूब शोरगुल करना पड़ता है। लेकिन एक बार कोई जग गया तो उसकी आंख में देख लेना ही काफी है। उसका हाथ

हाथ में ले लेना काफी है। उसको पास बिठा लेना काफी है। फिर तो चुप्पी में ही संवाद हो जाता है। यही उपनिषद शब्द का अर्थ है।
उपनिषद का अर्थ होता हैः गुरु के पास बैठ कर जो मिला, सिर्फ पास बैठकर
जो मिला। कहा नहीं गया, बोला नहीं गया, बस पास बैठ कर जो मिला।
आपा मांहीं आपा प्रगट्या, तब गुरु संदेसा दीया।

खोल मन के नयन देखो
मैं तुम्हारे साथ ही हूं।
आस्था हूं,
साधना हूं,
अर्चना,
आराधना हूं,
खोल मन के द्वार देखो,
मैं तुम्हारी आत्मा हूं!

अनल हूं मैं
अनिल हूं मैं,
व्योम हूं,
जल-स्रोत हूं मैं
श्वास हूं
उच्छवास हूं मैं,
प्राण बन
तुम में निहित हूं!
रम रहा
तुम में अहर्निश,
मैं कहां
तुम से अलग हूं?
वेदना की चोट से
तुम
जब व्यथित हो
क्षुब्ध होते,
सांत्वना की रागिनी
मन में तुम्हारे
छेड़ता हूं!
अंश तुम हो,
सर्व मैं हूं,
भ्रांति-पट
है बीच में,
उस ओर तुम,
इस ओर मैं हूं!
गहन अंतर में तुम्हारे
जल रहा जो
धीर गति से,
मैं वही हूं दीप,
उसकी ज्योति भी मैं हूं!
खोल मन के नयन देखो
मैं तुम्हारे साथ ही हूं!

जिस दिन जाग जाता है शिष्य, गुरु बिन बोले बोल जाता है, संदेशा दे जाता है।
दरपन मांहीं दरसन देष्या, नीर निरंतरि झांइ।
आपा मांहीं आपा प्रगट्या, लखै तो दूर न जाइ।।
गुरु तो एक दर्पण है।
दरपन मांहीं दरसन देष्या... ।

गुरु के दर्पण में तुमने जो देखा, वह तुम्हीं हो।
दरपन मांहीं दरसन देष्या, नीर निरंतरि झांइ।
जैसे कोई जल में अपनी ही छाया देख लेता है। गुरु तुम्हें कुछ और देने
को भी नहीं है, सिर्फ तुम्हीं को दिखा देना है तुम्हें।
दरपन मांहीं दरसन देष्या, नीर निरंतरि झांइ।
आपा मांहीं आपा प्रगट्या, लखै तो दूर न जाइ।।
और जब एक दफे यह समझ में आ गयी बात कि मैं कौन हूं; गुरु के दर्पण में देखकर पहचान ली यह बात कि मैं कौन हूं--फिर तो गुरु के दर्पण की भी कोई जरूरत नहीं। फिर तो आंख बंद करके भी तुम देख पाओगे कि तुम कौन हो। फिर तो दूर नहीं जाना है। लखै तो दूर न जाइ।
गोरष बोलै सुणि रे अवधू, पंचौ पसर निवारी।
अगर एक बार गुरु के दर्पण में तुम्हारी झलक तुम्हें मिल गयी तो, पांचों इंद्रियों का जो पसारा था उसका निवारण हो गया।
अपणी आत्मा आप बिचारी, तब सोवौ पान पसारी।।
और जिसकी अपने से पहचान हो गयी, अब कुछ करने को न बचा। अब फैला लो पैर... पसार कर पैर सो जाओ! अब विश्राम की घड़ी आ गयी। अब विराम का क्षण आ गया। यही मोक्ष है, यही निर्वाण है।

संचय कर लो सखि किंचित रस,
क्यों रिक्त रहे मन की गागर,
अवसाद विगत का दूर करो,
कुछ रिक्त नहीं रस का सागर!
अमराई में कोयल कूकी,
बगिया में फूल खिले हंस-हंस, गुन-गुन करते उन्मत्त भ्रमर, सुमनों के मृदु रस में फंस-फंस! परिव्याप्त चतुर्दिक अति मोहक
सुषमा नैसर्गिक ज्योतिर्मय,
छाया मधु-ऋतु का जादू-सा,
जीवनमय, रसमय, सौरभमय!
खोलो अंतर-पट रस भर लो,
क्यों रिक्त रहे मन की गागर!
जिन्होंने जाना है, यही पुकार-पुकार कर कहते रहे हैंः

संचय कर लो सखि किंचित रस,
क्यों रिक्त रहे मन की गागर,
अवसाद विगत का दूर करो,
कुछ रिक्त नहीं रस का सागर!
धनी हो तुम और निर्धन बने बैठे हो! सम्राट हो तुम और भिखारी बने बैठे हो! गुरु के दर्पण में थोड़ी अपनी परछाईं देख लो। थोड़ी अपने से पहचान करो। फिर जीवन रूपांतरित हो जाता है। फिर नहीं भटकन रह जाती, नहीं विषाद, नहीं संताप, नहीं आपा-धापी।

लो, कूक उठी मन की वंशी,
विहंसी वन-श्री अंतर्तम की!
खिल-खिल झूमीं कुसुमावलियां,
झूमीं कुसुमित हो वल्लरियां
मानस उपवन की सुंदरियां
गातीं सत की विरदावलियां! मदमत्त बयारें झूम उठीं, तरु-शाखाएं झुक झूम उठीं, पिक, शुक, मैनायें कूक उठीं, कुंजों में कोकिल कूक उठीं! किस कर का मृदु स्पर्श हुआ,

जागी, कूकी मन की वंशी!
तम की अति विकट निशा बीती, रज की मोहक तंद्रा टूटी,
सत ने जग कर अंगड़ाई ली,
जीवन को नई दिशा दे दी!
नव ज्योति जगी मन-मंदिर में,
अंतर्तम के हर कोने में,
तम की छायाएं सिमट गईं,
आलोक-पुंज के गह्वर में!
आलोक-वृष्टि हर ओर हुई,
जागी, कूकी मन की वंशी!
एक है मनुष्य--अंधकार में डूबा हुआ, विषाद के गह्वर में पड़ा हुआ। एक है मनुष्य, अमावस ही जिसका अनुभव है। और एक है ऐसा मनुष्य भी, जो पूर्णिमा को पहचान लेता है और पूर्णिमा जिसकी सदा के लिए हो जाती है। और अमावस में भटके मनुष्य में और पूर्णिमा को पा गये मनुष्य में कोई स्वभावगत भेद नहीं है, जरा-सा भेद है, किंचित-सा। अमावस में जो भटका है, उसने आंख नहीं खोली अपने स्वभाव के प्रति। और जिसके जीवन में पूर्णिमा का चांद उगा है, उसने आंख खोल ली है अपने स्वभाव के प्रति।
तुम बुद्ध हो, कृष्ण हो, महावीर हो, कबीर हो, नानक हो, गोरख हो। तुम में उनमें जरा भी भेद नहीं है, रत्ती-भर भेद नहीं है। तुम्हारा स्वभाव वही है जो उनका स्वभाव है। तुम्हारे भीतर वही ज्योति जल रही है जो उनके भीतर जल रही है। मगर तुम अपरिचित हो। तुम अपने से ही अपरिचित हो। इतना-सा, छोटा-सा काम करोः

खोल मन के नयन देखो
मैं तुम्हारे साथ ही हूं।
आस्था हूं,
साधना हूं,
अर्चना,
आराधना हूं,
खोल मन के द्वार देखो,
मैं तुम्हारी आत्मा हूं!

अनल हूं मैं
अनिल हूं मैं,
व्योम हूं,
जल-स्रोत हूं मैं
श्वास हूं
उच्छवास हूं मैं
प्राण बन
तुम में निहित हूं!
रम रहा
तुम में अहर्निश,
मैं कहां
तुम से अलग हूं?
वेदना की चोट से
तुम
जब व्यथित हो
क्षुब्ध होते,
सांत्वना की रागिनी
मन में तुम्हारे
छेड़ता हूं!
अंश तुम हो,
सर्व मैं हूं,

भ्रांति-पट
है बीच में,
उस ओर तुम,
इस ओर मैं हूं!
गहन अंतर में तुम्हारे
जल रहा जो
धीर गति से,
मैं वही हूं दीप,
उसकी ज्योति भी हूं!
आज इतना ही।

मरौ हे जोगी मरौ
बारहवां प्रवचन

इहि पस्सिको

पहला प्रश्नः प्यारे ओशो! कल प्रथम बार मैंने शिविर में विपस्सना ध्यान किया। इतनी उड़ान अनुभव हुई! कृपया विपस्सना के बारे में और प्रकाश डालें।

ईश्वर समर्पण! विपस्सना मनुष्य-जाति के इतिहास का सर्वाधिक महत्वपूर्ण ध्यान-प्रयोग है। जितने व्यक्ति विपस्सना से बुद्धत्व को उपलब्ध हुए उतने किसी और विधि से कभी नहीं। विपस्सना अपूर्व है! विपस्सना शब्द का अर्थ होता हैः देखना, लौटकर देखना।
बुद्ध कहते थेः इहि पस्सिको, आओ और देखो! बुद्ध किसी धारणा का आग्रह नहीं रखते। बुद्ध के मार्ग पर चलने के लिए ईश्वर को मानना न मानना, आत्मा को मानना न मानना आवश्यक नहीं है। बुद्ध का धर्म अकेला धर्म है इस पृथ्वी पर जिसमें मान्यता, पूर्वाग्रह, विश्वास इत्यादि की कोई भी आवश्यकता नहीं है। बुद्ध का धर्म अकेला वैज्ञानिक धर्म है।
बुद्ध कहतेः आओ और देख लो। मानने की जरूरत नहीं है। देखो, फिर मान लेना। और जिसने देख लिया, उसे मानना थोड़े ही पड़ता है; मान ही लेना पड़ता है। और बुद्ध के देखने की जो प्रक्रिया थी, दिखाने की जो प्रक्रिया थी, उसका नाम है विपस्सना।
विपस्सना बड़ा सीधा-सरल प्रयोग है। अपनी आती-जाती श्वास के प्रति साक्षीभाव। श्वास जीवन है। श्वास से ही तुम्हारी आत्मा और तुम्हारी देह जुड़ी है। श्वास सेतु है। इस पार देह है, उस पार चैतन्य है, मध्य में श्वास है। यदि तुम श्वास को ठीक से देखते रहो, तो अनिवार्य रूपेण, अपरिहार्य रूप से, शरीर से तुम भिन्न अपने को जानोगे। श्वास को देखने के लिए जरूरी हो जायेगा कि तुम अपनी आत्मचेतना में स्थिर हो जाओ। बुद्ध कहते नहीं कि आत्मा को मानो। लेकिन श्वास को देखने का और कोई उपाय ही नहीं है। जो श्वास को देखेगा, वह श्वास से भिन्न हो गया, और जो श्वास से भिन्न हो गया वह शरीर से तो भिन्न हो ही गया। क्योंकि शरीर सबसे दूर है; उसके बाद श्वास है; उसके बाद तुम हो। अगर तुमने श्वास को देखा तो श्वास के देखने में शरीर से तो तुम अनिवार्य रूपेण छूट गए। शरीर से छूटो, श्वास से छूटो, तो शाश्वत का दर्शन होता है। उस दर्शन में ही उड़ान है, ऊंचाई है, उसकी ही गहराई है। बाकी न तो कोई ऊंचाइयां हैं जगत में, न कोई गहराइयां हैं जगत में। बाकी तो व्यर्थ की आपाधापी है।
फिर, श्वास अनेक अर्थों में महत्वपूर्ण है। यह तो तुमने देखा होगा, क्रोध में श्वास एक ढंग से चलती है, करुणा में दूसरे ढंग से। दौड़ते हो, एक ढंग से चलती है; आहिस्ता चलते हो, दूसरे ढंग से चलती है। चित्त ज्वरग्रस्त होता है, एक ढंग से चलती है; तनाव से भरा होता है, एक ढंग से चलती है; और चित्त शांत होता है, मौन होता है, तो दूसरे ढंग से चलती है।
श्वास भावों से जुड़ी है। भाव को बदलो, श्वास बदल जाती है.। श्वास को बदल लो, भाव बदल जाते हैं। जरा कोशिश करना। क्रोध आये, मगर श्वास को डोलने मत देना। श्वास को थिर रखना, शांत रखना। श्वास का संगीत अखंड रखना। श्वास का छंद न टूटे। फिर तुम क्रोध न कर पाओगे। तुम बड़ी मुश्किल में पड़ जाओगे, करना भी चाहोगे तो क्रोध न कर पाओगे। क्रोध उठेगा भी तो भी गिर-गिर जायेगा। क्रोध के होने के लिए जरूरी है कि श्वास आंदोलित हो जाये। श्वास आंदोलित हो तो भीतर का केंद्र डगमगाता है। नहीं तो क्रोध देह पर ही रहेगा। देह पर आये क्रोध का कुछ अर्थ नहीं है, जब तक कि चेतना उससे आंदोलित न हो। चेतना आंदोलित हो, तो ज.ुड गये।
फिर इससे उल्टा भी सच हैः भावों को बदलो, श्वास बदल जाती है। तुम कभी बैठे हो सुबह उगते सूरज को देखते नदी-तट पर। भाव शांत हैं। कोई तरंगें नहीं चित्त में। उगते सूरज के साथ तुम लवलीन हो। लौटकर देखना, श्वास का

क्या हुआ? श्वास बड़ी शांत हो गयी। श्वास में एक रस हो गया, एक स्वाद... छंद बंध गया! श्वास संगीतपूर्ण हो गयी।
विपस्सना का अर्थ है शांत बैठकर, श्वास को बिना बदले... ख्याल रखना प्राणायाम और विपस्सना में यही भेद है। प्राणायाम में श्वास को बदलने की चेष्टा की जाती है, विपस्सना में श्वास जैसी है वैसी ही देखने की आकांक्षा है। जैसी है--ऊबड़-खाबड़ है, अच्छी है, बुरी है, तेज है, शांत है, दौड़ती है, भागती है, ठहरी है, जैसी है!
बुद्ध कहते हैं, तुम अगर चेष्टा करके श्वास को किसी तरह नियोजित करोगे, तो चेष्टा से कभी भी महत फल नहीं होता। चेष्टा तुम्हारी है, तुम ही छोटे हो; तुम्हारी चेष्टा तुमसे बड़ी नहीं हो सकती। तुम्हारे हाथ छोटे हैं; तुम्हारे हाथ की जहां-जहां छाप होगी, वहां-वहां छोटापन होगा।
इसलिए बुद्ध ने यह नहीं कहा है कि श्वास को तुम बदलो। बुद्ध ने प्राणायाम का समर्थन नहीं किया है। बुद्ध ने तो कहाः तुम तो बैठ जाओ, श्वास तो चल ही रही है; जैसी चल रही है बस बैठकर देखते रहो। जैसे राह के किनारे बैठकर कोई राह चलते यात्रियों को देखे, कि नदी-तट पर बैठ कर नदी की बहती धार को देखे। तुम क्या करोगे? आई एक बड़ी तरंग तो देखोगे और नहीं आई तरंग तो देखोगे। राह पर निकली कारें, बसें, तो देखोगे; नहीं निकलीं, तो देखोगे। गाय-भैंस निकलीं, तो देखोगे। जो भी है, जैसा है, उसको वैसा ही देखते रहो। जरा भी उसे बदलने की आकांक्षा आरोपित न करो। बस शांत बैठ कर श्वास को देखते रहो। देखते-देखते ही श्वास और शांत हो जाती है। क्योंकि देखने में ही शांति है।
और निर्चुनाव--बिना चुने देखने में बड़ी शांति है। अपने करने का कोई प्रश्न ही न रहा। जैसा है ठीक है। जैसा है शुभ है। जो भी गुजर रहा है आंख के सामने से, हमारा उससे कुछ लेना-देना नहीं है। तो उद्विग्न होने का कोई सवाल नहीं, आसक्त होने की कोई बात नहीं। जो भी विचार गुजर रहे हैं, निष्पक्ष देख रहे हो। श्वास की तरंग धीमे-धीमे शांत होने लगेगी। श्वास भीतर आती है, अनुभव करो स्पर्श... नासापुटों में। श्वास भीतर गयी, फेफड़े फैले; अनुभव करो फेफड़ों का फैलना। फिर क्षण-भर सब रुक गया... अनुभव करो उस रुके हुए क्षण को। फिर श्वास बाहर चली, फेफड़े सिकुड़े, अनुभव करो उस सिकुड़ने को। फिर नासापुटों से श्वास बाहर गयी। अनुभव करो उत्तप्त श्वास नासापुटों से बाहर जाती। फिर क्षण-भर सब ठहर गया, फिर नयी श्वास आयी।
यह पड़ाव है। श्वास का भीतर आना, क्षण-भर श्वास का भीतर ठहरना, फिर श्वास का बाहर जाना, क्षण-भर फिर श्वास का बाहर ठहरना, फिर नयी श्वास का आवागमन, यह वर्तुल है--वर्तुल को चुपचाप देखते रहो। करने की कोई भी बात नहीं, बस देखो। यही विपस्सना का अर्थ है।
क्या होगा इस देखने से? इस देखने से अपूर्व होता है। इसके देखते-देखते
ही चित्त के सारे रोग तिरोहित हो जाते हैं। इसके देखते-देखते ही, मैं देह नहीं हूं, इसकी प्रत्यक्ष प्रतीति हो जाती है। इसके देखते-देखते ही, मैं मन नहीं हूं, इसका स्पष्ट अनुभव हो जाता है। और अंतिम अनुभव होता है कि मैं श्वास भी नहीं हूं। फिर मैं कौन हूं? फिर उसका कोई उत्तर तुम दे न पाओगे। जान तो लोगे, मगर गूंगे का गुड़ हो जायेगा। वही है उड़ान। पहचान तो लोगे कि मैं कौन हूं, मगर अब बोल न पाओगे। अब अबोल हो जायेगा। अब मौन हो जाओगे। गुनगुनाओगे भीतर-भीतर, मीठा-मीठा स्वाद लोगे, नाचोगे मस्त होकर, बांसुरी बजाओगे; पर कह न पाओगे।
ईश्वर समर्पण, ठीक ही हुआ। कहा तुमनेः इतनी उड़ान अनुभव हुई! अब विपस्सना के सूत्र को पकड़ लो। अब इसी सूत्र के सहारे चल पड़ो। और विपस्सना की सुविधा यह है कि कहीं भी कर सकते हो। किसी को कानों-कान पता भी न चले। बस में बैठे, ट्रेन में सफर करते, कार में यात्रा करते, राह के किनारे, दुकान पर, बाजार में, घर में, बिस्तर पर लेटे... किसी को पता भी न चले! क्योंकि न तो कोई मंत्र का उच्चार करना है, न कोई शरीर का विशेष आसन चुनना है। धीरे- धीरे... इतनी सुगम और सरल बात है और इतनी भीतर की है, कि कहीं भी कर ले सकते हो। और जितनी ज्यादा विपस्सना तुम्हारे जीवन में फैलती जाये उतने ही एक दिन बुद्ध के इस अदभुत आमंत्रण को समझोगेः इहि पस्सिको! आओ और देख लो!

बुद्ध कहते हैंः ईश्वर को मानना मत, क्योंकि शास्त्र कहते हैं; मानना तभी जब देख लो। बुद्ध कहते हैंः इसलिए भी मत मानना कि मैं कहता हूं। मान लो तो चूक जाओगे। देखना, दर्शन करना। और दर्शन ही मुक्तिदायी है। मान्यताएं हिंदू बना देती हैं, मुसलमान बना देती हैं, ईसाई बना देती हैं, जैन बना देती हैं, बौद्ध बना देती हैं; दर्शन तुम्हें परमात्मा के साथ एक कर देता है। फिर तुम न हिंदू हो, न मुसलमान, न ईसाई, न जैन, न बौद्ध; फिर तुम परमात्ममय हो। और वही अनुभव पाना है। वही अनुभव पाने योग्य है।

दूसरा प्रश्नः शरीर ही स्वस्थ नहीं है तो शरीर के पार, फिर मन के पार कैसे जा सकूंगी? ओशो, मैं बहुत निराश हो गयी हूं, कुछ मार्गदर्शन करें।

समाधि! शरीर तो सदा ही अस्वस्थ है। शरीर तो कभी स्वस्थ हो ही नहीं सकता। इसीलिए तो ज्ञानियों ने शरीर को व्याधि कहा है। ऐसा नहीं है कि जो अस्पताल में भर्ती हैं उन्हीं के शरीर को व्याधि कहा है, शरीर-मात्र को व्याधि कहा है। व्याधि इसलिए कहा है कि शरीर तो जन्मा है और मरेगा।
तो शरीर तो जन्म के बाद मर ही रहा है। जन्म के बाद कुछ और तुमने किया क्या है सिवाय मरने के? जन्म के बाद मरना शुरू हो गया। एक दिन का बच्चा एक दिन मर चुका। एक श्वास जिस बच्चे ने ली है जमीन पर मां के गर्भ से निकलकर, उसकी उतनी मौत हो गयी, उतनी मौत चल चुका। जन्म के बाद तो मृत्यु ही होनी है।
और जिसकी मृत्यु होनी है, उसका कैसा स्वास्थ्य? स्वास्थ्य तो सिर्फ अमृत का होता है। स्वस्थ तो जो होता है वह अमृत को जान लेता है। शरीर तो मरणधर्मा है। मरण तो उसके रोएं-रोएं में छिपा पड़ा है, देर-अबेर की बात है। शरीर तो मरघट है।
इसलिए चिंता न करो। शरीर स्वस्थ है कि अस्वस्थ, इससे तुम्हारे ध्यान
का कोई खास संबंध नहीं। क्या समाधि, तू सोचती है जिनके शरीर स्वस्थ हैं, वे ध्यान को उपलब्ध हो रहे हैं? हालतें तो अक्सर उल्टी हैं। जिनके शरीर स्वस्थ हैं वे तो ध्यान की शायद सोचेंगे भी नहीं। वे कहेंगेः देखेंगे बुढ़ापे में, अभी क्या जल्दी पड़ी है? अभी तो चार दिन की जिंदगी मिली है; लूट लो, खा लो, मजा कर लो, मौज कर लो। आयेगी मौत, तब देखेंगे; जिनकी आती होगी, वे करें ध्यान। अभी तो हम मजबूत हैं, अभी तो हम जवान हैं।
शरीर के स्वस्थ होने से ध्यान का कोई संबंध नहीं है। लेकिन शरीर स्वस्थ कभी होता ही नहीं। स्वस्थ से स्वस्थ शरीर भी बस स्वस्थ दिखायी पड़ता है। क्षण-भर में सब टूट जाये, क्षण-भर में सब बिखर जाये। शरीर का स्वास्थ्य तो ऐसा ही है जैसे पानी की थिरता; जरा हवा का झोंका आयेगा, सब अथिर हो जायेगा। लेकिन इससे कुछ बाधा नहीं पड़ती।
सच तो यह है, यदि मृत्यु न होती तो कोई ध्यान करता ही न। बुद्ध को भी मृत्यु को देखकर ही स्मरण आया था कि मैं जीवन कब तक गंवाऊंगा? उसे खोज लूं, जल्दी खोज लूं, जिसकी कोई मृत्यु न होती हो। राह के किनारे देखकर आदमी की लाश को ले जाते, बुद्ध ने अपने सारथी को पूछा थाः इसे क्या हो गया? सारथी ने कहा थाः यह आदमी मर गया। बुद्ध ने पूछाः क्या मैं भी मर जाऊंगा इसी तरह? सारथी ने कहा? कैसे कहूं, किन शब्दों में कहूं? आप ऐसा प्रश्न उठाते हैं कि मुझे अड़चन में डालते हैं। लेकिन झूठ भी नहीं कह सकता हूं। अभी आप सुंदर हैं, युवा हैं, स्वस्थ हैं, लेकिन मौत तो होगी; मौत सबकी होती है। मौत अपरिहार्य है। उससे कभी कोई बचा नहीं है।
बुद्ध जाते थे महोत्सव में भाग लेने। उन्होंने सारथी को कहाः रथ वापिस लौटा लो। अब महोत्सव में जाने का समय नहीं। सारथी ने कहाः क्या कहते हैं आप! प्रतीक्षा करते होंगे महोत्सव में लोग। आपके ही हाथ उदघाटन होना है।
बुद्ध ने कहाः हो चुका उदघाटन। अब मुझे महोत्सव में कोई रस नहीं। मेरे सामने अब एक प्रश्न खड़ा हो गया है कि अगर मौत होनी है तो मौत के पहले मुझे उसे जान लेना जरूरी है, जो अमृत हो। और जब तक अमृत को न जाना तब तक अब चैन नहीं।
उसी रात बुद्ध ने घर छोड़ दिया। उसी रात यात्रा पर निकल गये।

मृत्यु है, इसलिए तो ध्यान की खोज शुरू होती है।
देह अस्वस्थ है, इसे दुर्भाग्य न समझो; इसे सौभाग्य में बदल लो। फिर देह का अस्वस्थ होना बाधा नहीं बनेगा। अभी मैंने विपस्सना की बात कही। देह स्वस्थ हो कि अस्वस्थ, जवान हो कि वृद्ध, सुंदर हो कि कुरूप, स्त्री की हो कि पुरुष की, कोई भेद नहीं पड़ेगा। श्वास तो चल ही रही है न? समाधि, तू इतनी अस्वस्थ तो नहीं कि श्वास न चलती हो? इतनी अस्वस्थ होती तो प्रश्न ही कौन पूछता? तो जा ही चुकी होती! श्वास तो चल ही रही है न, बस इतना ही तो चाहिए, और कुछ चाहिए भी नहीं। इसी श्वास के प्रति जागो; बैठ कर जागो, खड़े होकर जागो, चलते हुए जागो, सोकर-लेटकर जागो--इस श्वास के प्रति जागो। यह तो बीमार से बीमार आदमी भी कर सकता है। यह तो जो अस्पताल में भरती होते हैं उनको भी मैं कहता हूं यही करो!
और सच तो यह है कि दिन-भर की घर की आपाधापी में समय भी नहीं मिलता। कभी अस्पताल में सौभाग्य से कोई महीने-पंद्रह दिन रह जाता है तो ध्यान का समय मिल जाता है। वहां कुछ और करने को भी नहीं। बिस्तर पर लेटे-लेटे और करोगे क्या? श्वास तो देख ही सकते हो न! आती श्वास, जाती श्वास। श्वास पर ध्यान तो आरोपित कर ही सकते हो न। बस उतने से ही हो जायेगा।
तू इसकी चिंता मत कर कि शरीर स्वस्थ नहीं है। न रहने दे शरीर को स्वस्थ, इसी अस्वास्थ्य को वरदान बना लेंगे। यही अभिशाप परम वरदान बन जायेगा। तू विपस्सना में लग।

तीसरा प्रश्नः विरह क्या है?

पूछते हो तो समझ न पाओगे; समझते तो पूछते नहीं। समझ सकते, तो भी पूछते नहीं। क्योंकि विरह कोई सिद्धांत तो नहीं है, दर्शनशास्त्र की कोई धारणा तो नहीं है--प्रीति की अनुभूति है।
जैसे किसी ने प्रेम नहीं किया और पूछे कि प्रेम क्या है? अब कैसे समझाएं उसे, कैसे जतलाएं उसे? ऐसे जैसे अंधे ने पूछा, प्रकाश क्या है? अब क्या है उपाय बतलाने का? और जो भी हम बताने चलेंगे, अंधे को और उलझन में डाल जायेगा। अंधा समझेगा तो नहीं, और चक्कर में, और बिबूचन में पड़ जायेगा। विरह अनुभूति है; प्रेम किया हो तो जान सकते हो। और जिसने प्रेम किया है, वह विरह जान ही लेगा। प्रेम के दो पहलू हैं। पहली मुलाकात जिससे होती है वह विरह और दूसरी मुलाकात जिससे होती है वह मिलन। प्रेम के दो अंग हैं-- विरह और मिलन। विरह में पकता है भक्त और मिलन में परीक्षा पूरी हो गयी, पुरस्कार मिला। विरह तैयारी है, मिलन उपलब्धि है। आंसुओं से रास्ते को पाटना पड़ता है मंदिर के, तभी कोई मंदिर के देवता तक पहुंचता है। रो-रो कर काटनी पड़ती है यह लंबी रात, तभी सुबह होती है। और जितनी ही आंखें रोती हैं, उतनी ही ताजी सुबह होती है! और जितने ही आंसू बहे होते हैं, उतने ही सुंदर सूरज का जन्म होता है।
तुम्हारे विरह पर निर्भर है कि तुम्हारा मिलन कितना प्रीतिकर होगा, कितना गहन होगा, कितना गंभीर होगा। सस्ते में जो हो जाये, वह बात भी सस्ती ही रहती है। इसलिए परमात्मा मुफ्त में नहीं मिलता, रो-रो कर मिलना होता है। और आंसू भी साधारण आंसू नहीं, हृदय ही जैसे पिघल-पिघल कर आंसुओं से बहता है! जैसे रक्त आंसू बन जाता है। जैसे प्राण ही आंसू बन जाते हैं। विरह है अवस्था पुकार की, कि लगता तो है कि तुम हो, मगर दिखाई नहीं पड़ते। लगता तो है कि तुम जरूर ही हो, क्योंकि तुम्हारे बिना कैसे यह विराट होगा? कैसे चलेंगे ये चांद-तारे? कैसे वृक्षों में बाढ़ होगी? कैसे वृक्षों में हरे पत्ते ऊगेंगे? कैसे फूल खिलेंगे? कैसे पक्षी गीत गायेंगे? कैसे जीवन का यह रहस्य जन्मेगा? तुम हो तो जरूर; छिपे हो, अवगुंठन में हो, किसी आवरण में हो।
विरह का अर्थ हैः हम तुम्हारा घूंघट उठाएंगे, तलाशेंगे, कितनी ही हो कठिन यात्रा और कितनी ही दुर्गम, हम सब दांव पर लगायेंगे; मगर घूंघट उठायेंगे। हम तुम्हें जानकर रहेंगे, क्योंकि तुम्हें न जाना तो कुछ भी न जाना। अपने मालिक को न जाना, तो कुछ भी न जाना। जिससे आये उसे न जाना, तो कुछ भी न जाना। स्रोत को न जाना तो गंतव्य को कैसे जानेंगे? इसलिए तुमसे

पहचान करनी ही होगी। तुम जो अदृश्य हो तुम्हें दृश्य बनाना ही होगा। तुम जो दूर हो, स्पर्श के पार, तुमसे आलिंगन करना ही होगा।
अदृश्य से आलिंगन की आकांक्षा विरह है। अदृश्य को आंखों में भर लेने
की आकांक्षा विरह है। जो पकड़ में नहीं आता उसे पकड़ लेने की अदम्य आकांक्षा विरह है। और स्वभावतः बात आसान नहीं, बात अति दुर्गम है। खूब कसौटी होगी, बड़ी अग्नि-परीक्षा होगी। बहुत रोओगे, बहुत तड़फोगे। तुम्हारी तड़फ ही तुम्हारी परीक्षा होगी। विरह में गलोगे, जलोगे, मिटोगे। और जिस दिन राख-राख हो जाओगे, उस दिन उसी राख से मिलन का प्रारंभ होता है।

रेणु जलते ढांपने को
तुहिन से अवदात शीतल,
सखि, दुखों के पांवड़े तू
आज उनके पथ बिछा ले;
वेदना के गीत गा ले।
अग्नि झंझा-सी लगेगी
प्राण से उठती तुम्हारी
बाड़वी प्यासी लपट की
राह, सांसों से छिपा ले;
वेदना के गीत गा ले।
राग तारों के निकलती
मूर्छना ओ" मींड़ तेरी;
बीन से उठती कसक यह,
आज हाथों से दबा ले;
वेदना के गीत गा ले।
कल्प के अंतिम निमिष तकयदि तुम्हारे "वे" न आवें, साध की अंगारिका सेचेतना की सुधि जला ले; वेदना के गीत गा ले।
जलना होगा। विरह जलन है। विरह उत्तप्त, विदग्ध प्रीति की दशा है, पुकार है, प्रार्थना है।
नहीं, तुम्हें मैं न समझा सकूंगा कि विरह क्या है? तुम्हें प्रेम में पड़ना होगा। यह तो स्वाद है, लोगे तो जानोगे। इहि पस्सिको! आओ और जानो।
यहां हम प्रभु के प्रेमियों और दीवानों को ही तो पैदा कर रहे हैं।
दूर-दूर से खड़े होकर जानने की कोशिश न करो। तमाशबीन न बनो। भागीदार बनो।
यह जो महफिल बैठी है दीवानों की, इसके हिस्सेदार बनो। नाचो, ध्यान करो, गाओ। डोलो मस्ती में।
शुरू-शुरू पागलपन लगेगा, जल्दी ही और शेष सब पागलपन लगने लगेगा उसको छोड़कर। शुरू-शुरू लगेगा, यह तुम्हें क्या होने लगा! पहली दफा जब कोई शराब पीता है तो पैर बहुत डांवाडोल होते हैं। फिर धीरे-धीरे बात जम जाती है। फिर असली शराबी का तो तुम्हें पता ही न चलेगा कि उसने शराब पी रखी है। मैंने तो सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन एक रात घर आया, बड़ा झगड़ा मचा। विवाह हुए भी बीस वर्ष हो चुके हैं। और पत्नी बहुत शोरगुल करने लगी। भीड़ इकट्ठी हो गयी। लोगों ने पूछा, बात क्या है? पत्नी ने कहा कि ये अब तक शराब पीते रहे। पर लोगों ने कहा, बीस साल हो गये, अब झगड़ा! पत्नी ने कहा, आज तक पता ही न चला, क्योंकि ये रोज पी कर आते रहे, आज बिना पीये आ गये हैं।
ढंग से कोई पीनेवाला होगा, रोज पीता होगा, तो पता ही न चलेगा; न पीयेगा
तो पता चल जायेगा। शुरू-शुरू पीयोगे तो लड़खड़ाओगे भी, डगमगाओगे भी। भयभीत न होना, ऐसे ही डगमगाते-डगमगाते पैर ठीक पड़ने लगते हैं।

चमकते हीरे लगाये
डाल तम का सजल गुंठन,
मैं गगन में बिलखती
काली क्षपा की पीर-सी हूं।
श्याम अंजन कूट वाली
अंध मारुत बंदिनी-सी
अनुतर्षिका अनुरागवाली

मैं क्षितिज दृग नीर-सी हूं। चिर व्यथा भर लोचनों में नील यमुना के किनारे,
मलय से आवेग में
झुक झूमते वानीर-सी हूं।
नील अंबर में संजोये
पीत हिमकर को छिपाती,
मैं अमा के प्रात की
उन्मत्त श्वास अधीर-सी हूं।
बनो एक अधीर श्वास! मैं अमा के प्रात की उन्मत्त श्वास अधीर-सी हूं! पूछते होः विरह क्या है? यह कुछ गणित तो नहीं कि समझा दिया जाये, जैसे दो और दो चार होते हैं। यह तो एक प्रीति की अनुभूति है। और प्रेम के बिना विरह नहीं जाना जा सकता। प्रेम की छाया है विरह।
तो पहले प्रेम में पड़ो। और आश्चर्य तो यही है कि लोग प्रेम में पड़े बिना कैसे बच जाते हैं! आश्चर्य यह नहीं है कि तुम पूछते हो कि विरह क्या है, आश्चर्य यह है कि तुम्हें अब तक प्रेम का पता नहीं!
लेकिन एक उलझन हो गयी है, उस उलझन में ही तुम्हारी सारी व्यथा-कथा है। सदियों-सदियों से तुम्हें समझाया गया है कि परमात्मा को प्रेम करना है तो आदमी को प्रेम करना छोड़ना पड़ेगा। आदमी को प्रेम करना छोड़ दो तो मैं तुमसे कहता हूं, तुम परमात्मा को कभी प्रेम कर ही न पाओगे। आदमी तो सीढ़ी है; सीढ़ी ही तोड़ दी... !
मैं तुमसे कहता हूंः आदमी को प्रेम करो। वहीं तुम प्रेम का पहला पाठ सीखोगे। और वही पाठ तुम्हें इतना मदमस्त कर देगा कि तुम जल्दी ही पूछने लगोगेः और बड़ा प्रेमपात्र कहां खोजूं? मनुष्य से प्रेम करने से ही तुम्हें अनुभव होगा कि मनुष्य छोटा पात्र है; प्रेम को जगा तो देता है, लेकिन तृप्त नहीं कर पाता। प्रेम को उकसा तो देता है, लेकिन संतुष्ट नहीं कर पाता। प्रेम की पुकार तो पैदा कर देता है; खोज शुरू हो जाती है। लेकिन पुकार इतनी बड़ी है और आदमी इतना छोटा कि फिर पुकार पूरी नहीं हो पाती। फिर वही बड़ी पुकार, जो आदमी तृप्त नहीं कर सकता, परमात्मा की तलाश में निकलती है।
आदमी तो छिछला-छिछला पानी है। तैरना सीख लो वहां, फिर बड़े सागर हैं! मगर छिछले पानी से ही बचते रहे, तो बड़े सागरों में कब तैरोगे, कब तिरोगे; कैसे तैरोगे, कैसे तिरोगे?
मुल्ला नसरुद्दीन जाता था नदी पर तैरना सीखने। पहले ही दिन, पुराना घाट, जमी हुई काई पत्थर पर। डरा-डरा गया था। उस्ताद सिखाने जो ले गये थे, वे तो अपना कपड़ा ही उतार रहे थे कि मुल्ला का पैर फिसल गया काई पर। चारों खाने चित्त गिर पड़ा। उठा और एकदम घर की तरफ भागा। उस्ताद ने पूछा कि नसरुद्दीन कहां जाते हो, तैरना नहीं सीखना?
नसरुद्दीन ने कहाः अब जब तैरना सीख लूंगा, तभी नदी के पास आऊंगा। यह
तो खतरनाक मामला है। यह तो भगवान की कृपा कहो कि घाट पर ही फिसला पैर, और पत्थर पर ही गिरा। चोट तो खायी है खूब, ठीक है दो-चार दिन में सब ठीक हो जायेगी; अगर पानी में पड़ गया होता तो आज जान गंवा दी होती! और उस्ताद! तुम तो कपड़े ही उतार रहे थे, तुम्हें तो पता ही न चलता। आऊंगा, एक दिन जरूर आऊंगा; लेकिन अब जब तैरना सीख लूंगा तभी आऊंगा।
मगर तैरना कहां सीखोगे? बैठकखाने में गद्दी इत्यादि बिछा के तैरना सीखोगे! ऐसे कहीं तैरना सीखा जाता है? लेकिन तर्क तो ठीक है नसरुद्दीन का कि बिना तैरे नदी मत जाना। तर्क तो बिल्कुल ठीक है, सौ प्रतिशत ठीक है। रत्तीभर भूल तुम तर्क में न निकाल सकोगे, कि तैरना सीख लो तो ही नदी जाना, नहीं तो खतरा है। तर्क तो ठीक है मगर जीवन विपरीत है। नदी न जाओगे; तो तैरना सीखोगे कैसे? जोखिम तो लेनी ही होगी। हां, जरूरी नहीं है कि तुम बड़े सागरों में सीखने जाओ; नदी पर सीख लो, तट पर सीखो, उथले-उथले सीख लो। फिर जब सीखना आ जाये तो फिर सारे सागर तुम्हारे हैं।
ऐसा ही मैं तुमसे कहता हूंः पत्नी को प्रेम किया है, यह परमात्मा के विपरीत नहीं। बच्चे को प्रेम किया है, यह परमात्मा के विपरीत नहीं। मित्र

को चाहा है, यह परमात्मा के विपरीत नहीं। यह नदी की उथली- उथली धार है; यहां सीख लो। यह सब परमात्मा के पक्ष में है। ये परमात्मा के पहले पाठ हैं। और इनसे तृप्ति नहीं मिलेगी, इसलिए आश्वस्त रहो। ये अतृप्त करेंगे, यही तो मजा है इनका। यही इनका राज है।
किस मनुष्य को मनुष्य से तृप्ति मिली है, कब मिली है? इतिहास में कोई उल्लेख नहीं। इससे कुछ सीखो। इसका क्या अर्थ हुआ? इसका अर्थ हुआ कि मनुष्य के साथ प्रेम में अतृप्ति सघन होती है। प्यास तो जग जाती है, जल नहीं मिलता। फिर जल की तलाश शुरू होती है। वही तलाश विरह है। फिर तुम परमात्मा को खोजने निकलते हो। तुम कहते होः इतने प्रेम की आकांक्षा दी है, तो कहीं सरोवर भी होगा जो इस आकांक्षा को तृप्त करता होगा।
ज्ञानियों ने कहा हैः इसके पहले कि वह तुम्हें जीवन देता, वह तुम्हारे जीवन की तृप्ति के आयोजन कर देता है। देखते नहीं हो, मां के पेट से एक बच्चे का जन्म होता! बच्चे का जन्म होते-होते या होने के पहले ही मां के स्तन दूध से भर जाते हैं। अभी बच्चा आया नहीं, लेकिन भोजन का आयोजन तैयार हो गया। चिड़िया घोंसला बनाने लगती है, अभी अंडे रखे नहीं हैं; लेकिन कोई अचेतन हाथ चिड़िया को घोंसला बनाने में संलग्न कर देता है। उसके पास कुछ गणित भी नहीं है, कोई हिसाब-किताब भी नहीं है कि कब बनाये घोंसला। लेकिन कुछ अचेतन ऊर्जा, कोई सहज प्रतीति गहन में, उसे घोंसला बनाने में रत कर देती है। देखते हो, दीवाने की तरह भागी-भागी लाती है घास-पात, फूल-पत्ते, बना लेती है घोंसले को। इसके पहले कि अंडे रखने का क्षण आये, घोंसला तैयार हो जाता है।
इस जगत को अगर तुम गौर से देखोगे, तो यहां भूख के पहले भोजन है, प्यास
के पहले जल है। इसका ही नाम श्रद्धा है। इसको देख लेने का नाम श्रद्धा है। तो अगर तुम्हारे भीतर परमात्मा को पाने की आकांक्षा उठे, तो मान ही लेना, जान ही लेना कि परमात्मा भी होगा। नहीं तो प्यास उठ नहीं सकती थी। फिर प्यास तड़फायेगी बहुत; जब तक मिलन न हो जायेगा तब तक रुलायेगी बहुत। उस अदभुत रुदन की यात्रा का नाम विरह है। विरह दुख नहीं है; या अगर कहना चाहो ठीक से तो बड़ा मधुर दुख है, बड़ा मीठा दुख है। सौभाग्यशालियों को ही उपलब्ध होता है। अभागे तो उससे वंचित रह जाते हैं।

चौथा प्रश्नः मैं बड़ी उलझन में हूं। तीस अक्टूबर को मेरी प्यारी छोटी बहन ज्योति का देहांत हो गया। मैं बहुत दुख और परेशानी महसूस कर रहा हूं। ध्यान तथा प्रवचन सुनने से थोड़ी-सी शांति की अनुभूति होती है, परंतु इतने सालों से प्रेम एवं ममत्व होने के कारण रोम-रोम में उसकी याद सताती है। ऐसे संयोग में मुझे क्या करना चाहिए? ओशो, आप कृपया कुछ मार्गदर्शन देने की अनुकंपा करें।

कबीर! जाना है और सबको जाना है। हम सब पंक्तिबद्ध जाने को तैयार खड़े हैं--कब किसका बुलावा आ जाये! बहन गयी तुम्हारी, चोट लगी तुम पर। चोट इसीलिए लगी कि तुमने यह मानकर जिंदगी चलायी थी कि बहन कभी जायेगी नहीं। बहन के जाने से चोट नहीं लगी, तुम्हारी मान्यता भ्रांत थी; मान्यता के टूटने से चोट लगी। काश, तुमने जाना ही होता कि सब को जाना है, तो चोट न लगती! तुमने झूठी मान्यता बना रखी थी कि बहन कभी न जायेगी। किसी अचेतन में चुपचाप तुम इस भाव को पालते-पोसते रहे थे कि बहन कभी न जायेगी। इतनी प्यारी बहन कहीं जाती है!
लेकिन सबको जाना है। अब तुम सोचते हो कि बहन के जाने के कारण तुम विक्षुब्ध हो, तो फिर गलत सोच रहे हो। धारणा टूट गयी, इसलिए विक्षुब्ध हो। तुम्हारी मान्यता उखड़ गयी, इसलिए विक्षुब्ध हो। यह बहन का जाना तुम्हारे सारे तारतम्य को तोड़ गया, इसलिए विक्षुब्ध हो। अब भी सोचो, अब भी जागो। तुम्हें भी जाना है। पिता भी जायेंगे, मां भी जायेगी, भाई भी जायेंगे, मित्र भी जायेंगे; सभी को जाना है। बहन तो जैसे राह दिखा गयी। धन्यवाद मानो उसका, अनुग्रह स्वीकार करो कि अच्छा किया कि तू गयी और हमें चेता गयी। तो जाने की तैयारी हम करें।

दुनिया में दो तरह की शिक्षाएं होनी चाहिए, अभी एक ही तरह की शिक्षा है। और इसलिए दुनिया में बड़ा अधूरापन है। बच्चों को हम स्कूल भेजते हैं, कालेज भेजते हैं, युनिवर्सिटी भेजते हैं, मगर एक ही तरह की शिक्षा है वहां--कैसे जीयो? कैसे आजीविका अर्जन करो? कैसे धन कमाओ! कैसे पद-प्रतिष्ठा पाओ। जीवन के आयोजन सिखाते हैं। जीवन की कुशलता सिखाते हैं। दूसरी इससे भी महत्वपूर्ण शिक्षा है और वह है--कैसे मरो? कैसे मृत्यु के साथ आलिंगन करो? कैसे मृत्यु में प्रवेश करो? वह शिक्षा पृथ्वी से बिल्कुल खो गयी है। ऐसा अतीत में नहीं था। अतीत में दोनों शिक्षाएं उपलब्ध थीं।
इसलिए जीवन को हमने चार हिस्सों में बांटा था। पच्चीस वर्ष तक विद्यार्थी का जीवन, ब्रह्मचर्य का जीवन। गुरु के पास बैठना। जीवन को कैसे जीना है, इसकी तैयारी करनी है। जीवन की शैली सीखनी है। फिर पच्चीस वर्ष तक गृहस्थ का जीवनः जो गुरु के चरणों में बैठकर सीखा है उसका प्रयोग, उसका व्यावहारिक प्रयोग। फिर जब तुम पचास वर्ष के होने लगो तो तुम्हारे बच्चे पच्चीस वर्ष के करीब होने लगेंगे। उनके गुरु के गृह से लौटने के दिन करीब आने लगेंगे। अब बच्चे घर लौटेंगे गुरु-गृह से। अब उनके दिन आ गये कि वे जीवन को जीयें। और जब बच्चे घर आ गये, फिर भी पिता और बच्चे पैदा करता चला जाये, तो यह अशोभन समझा जाता था; यह अशोभन है। अब बच्चे बच्चे पैदा करेंगे। अब तुम इन खिलौनों से ऊपर उठो।
तो पच्चीस वर्ष वानप्रस्थ। वानप्रस्थ का अर्थ बड़ा प्यारा है; जंगल की तरफ मुंह--इसका अर्थ होता है। अभी जंगल गये नहीं; अभी घर छोड़ा नहीं; लेकिन घर की तरफ पीठ और जंगल की तरफ मुंह--यह वानप्रस्थ का अर्थ होता है। चले-चले, तैयार... जैसे कभी तुम यात्रा पर जाते हो, बिस्तर-बोरिया सब बांध कर बस बैठे हो कि कब आ जाये बस, कि कब आ जाये गाड़ी--यह वानप्रस्थ। पच्चीस वर्ष तक वानप्रस्थ, ताकि अगर तुम्हारे बेटों को तुम्हारी कुछ सलाह की जरूरत हो तो पूछ लें। अपनी तरफ से सलाह मत देना। वानप्रस्थी स्वयं सलाह नहीं देता, लेकिन बेटे अभी नये-नये गुरुकुल से लौटे हैं, अभी उन्हें बहुत-सी व्यावहारिक बातें पूछनी होंगी, तांछनी होंगी। तुम्हारा मार्गदर्शन शायद जरूरी हो। तो अब पीठ कर के घर की तरफ रुके रहना कि ठीक है, कुछ पूछना हो तो पूछ-पांछ लो।
फिर पचहत्तर वर्ष के तुम जब हो जाओगे, तो सब छोड़ कर जंगल चले जाना। वे शेष अंतिम पच्चीस वर्ष मृत्यु की तैयारी थे। उसी का नाम संन्यास था। पच्चीस वर्ष जीवन के प्रारंभ में, जीवन की तैयारी; और जीवन के अंत में पच्चीस वर्ष, मृत्यु की तैयारी।
आज दुनिया से मृत्यु की तैयारी खो गयी है। लोग मृत्यु की बात ही नहीं करना चाहते। मृत्यु की बात से ही मन तिलमिला जाता है, मन डरने लगता है। रास्ते पर निकलती अर्थी देखकर तुम बेचैन नहीं हो गये हो? वह बेचैनी इस बात की खबर है कि तुम्हें याद आ रही है, कि आज नहीं कल मेरी अर्थी भी उठेगी! यही लोग जो दूसरे को लिये जा रहे हैं, कल मुझे भी मरघट पहुंचा आयेंगे। आज कोई और चढ़ा है चिता पर, कल मैं भी चढूंगा। ऐसा अगर तुम्हें दिखाई पड़ जाये, तो क्रांति हो जाये! मगर हम बड़े चालबाज हैं। हम इसको छिपा लेते हैं। हम धुआं खड़ा कर लेते हैं। अब कबीर, तुम धुआं खड़ा कर रहे हो।
तुम कहते होः ज्योति, मेरी बहन का देहांत हो गया। मैं बहुत दुख में हूं, बहुत परेशानी में हूं। सालों से प्रेम एवं ममत्व होने के कारण रोम-रोम में याद सताती है।
तुम झुठला रहे हो। तुम अपनी सारी बात को ज्योति पर आरोपित कर रहे हो
कि न तू गयी होती, न मैं दुखी होता। तू क्या चली गयी, मुझे दुख में छोड़ गयी। तुम यह बात भुलाने की कोशिश कर रहे हो कि दुख ज्योति के जाने का नहीं है, दुख इस बात का है कि जाना पड़ेगा। दुख इस बात का है कि यह ज्योति सजग कर गयी तुम्हें कि मौत आती है; मेरी आ गयी, तुम्हारी भी आती होगी। देखो, मेरी आ गयी--और मैं तो तुमसे कम उम्र की थी!
अब तुम इसको झुठलाओ मत।
तुम कहते हो कि प्रवचन सुनता हूं, ध्यान करता हूं, थोड़ी शांति अनुभव होती है।

वह शांति नहीं है, सांत्वना है। प्रवचन सुनने में भूल जाते होओगे, याद
न रह जाती होगी। यह शांति नहीं है, यह तो विस्मरण है। यह तो वैसे ही है जैसे कोई सिनेमा में जाकर बैठ गया, तो दो घड़ी के लिए उलझ गया सिनेमा की कहानी में, तो अपनी कहानी भूल गयी; कि पढ़ने लगा कोई उपन्यास, जासूसी, सनसनीखेज, कि लग गया चित्त उसमें, तो अपनी चिंता भूल गयी; कि पी ली शराब, कि डूब गये थोड़ी मूर्च्छा में, कि भूल गयी अपनी आपाधापी। मगर कितनी देर? फिर लौट आओगे। आना ही पड़ेगा।
नहीं, इस तरह सांत्वना देने से कुछ भी न होगा। जागो! जागने से शांति मिलेगी। स्वीकार करो कि मौत है। और स्वीकार करो कि सब संयोग यहां नदी-नाव संयोग हैं; अभी हैं, अभी बिछड़ जायेंगे। कितनी देर हमारा साथ है, कुछ भी कहा नहीं जा सकता। दूसरे ही क्षण रास्ते अलग हो जायेंगे।
तुम इस ज्योति के साथ, तुम्हारी बहन के साथ कितने दिन से थे? तुम्हारे पहले भी तुम्हारी बहन रही होगी, तुम भी रहे होओगे; जन्मों-जन्मों में कभी मिलना न हुआ था! अनंत जन्मों की कथा है! फिर थोड़ी देर राह पर साथ हो लिए दो राहगीर। तुम किसी और राह से आये, मैं किसी और राह से आया, घड़ी-भर को साथ हो लिया--संयोगवश। फिर मेरी राह अलग हो गयी, तुम्हारी राह अलग हो गयी; न तो कभी पहले साथ थी, न शायद अब दुबारा कभी मिलना हो। मगर ये थोड़े-से क्षण जो राह पर साथ-साथ गुजरे हैं, इनको इतना मूल्य मत दो। इनका कोई भी मूल्य नहीं है। स्मरण रखो--नदी-नाव संयोग! स्मरण रखो, जैसे वृक्ष पर एक ही रात बहुत-से पक्षियों ने बसेरा ले लिया; सुबह हुई, उड़ गये! स्मरण रखो कि रात सराय में रुके, सुबह हुई, विदा हो गये! रात थे साथ, तो परिचय भी बनाये, अपरिचितों के साथ बैठकर ताश भी खेले, शतरंज भी फैलाई, गपशप भी की; सुबह हुई, नमस्कार किया और विदा हो गये। बस, इससे ज्यादा मूल्य इस जीवन के संबंधों का नहीं है। लेकिन चोट लगती है। चोट लगती है गलत धारणाओं के कारण। चोट लगती है हमारे अहंकार को कि मैं कुछ भी न कर सका, कि मेरी बहन मर गयी और मैं बचा न सका! तो मेरा बल क्या, तो मेरी सामर्थ्य क्या, तो मैं कौन हूं? तुम तिलमिला गये हो।
चाहता हूं, पुष्प यह
गुलदान का मेरे
न मुर्झाये कभी,
देता रहे
सौरभ सदा
अक्षुण्ण इसका
रूप हो!
पर यह कहां संभव,
कि जो है आज,
वह कल को कहां?
उत्पत्ति यदि,
अवसान निश्चित!
आदि है
तो अंत भी है!
यह विवशता!
जो हमारा हो,
उसे हम रख न पायें!
सामने अवसान हो
प्रिय वस्तु का,
हम विवश दर्शक
रहे आयें!
नियम शाश्वत
आदि के,
अवसान के,
अपवाद निश्चय ही
असंभव--
शूल-सा यह ज्ञान

चुभता मर्म में,
मन विकल होता!
प्राप्तियां, उपलब्धियां क्या दीन मानव की,
कि जो
अवसान-क्रम से,
आदि-क्रम से
हार जाता
काल के
रथ को
न पल भर
रोक पाता!
क्या अहं मेरा
कि जिसकी तुष्टि
मैं ही कर न पाता!

अड़चन वहां है, कठिनाई वहां है; तुम्हारी ही नहीं कबीर, सभी की, प्रत्येक की।

प्राप्तियां, उपलब्धियां क्या
दीन मानव की,
कि जो
अवसान-क्रम से,
आदि-क्रम से,
हार जाता,
काल के
रथ को
न पल भर
रोक पाता!

इतने हम असहाय, इतने हम निर्बल! मगर हमारी अकड़ है गहरी! जब तक सब ठीक चलता है, तब तक तो अकड़ बनी रहती है; जब चीजें बिखरती हैं तो अड़चन आती है। इसको तुम सौभाग्य बनाओ। यह जो घड़ी घटी, इसे रो-रो कर भुलाने की चेष्टा न करो। समय घाव भर देता है; इसके पहले कि घाव भर जाये--जागो। अभी घाव हरा है, इस हरे घाव का लाभ ले लो। समझो कि जो हुआ, वही होना है, देर-अबेर की बात है। एक सुबह बुद्ध एक गांव में आये। उस गांव में एक विधवा स्त्री का इकलौता बेटा मर गया। वही उसका सहारा था, वही उसकी आंख का तारा! वही सब कुछ था। पति तो चल बसा था, इसी बेटे के सहारे जी रही थी। उसकी पीड़ा तुम समझो, पागल हो गयी। बेटे की लाश को लेकर गांव में घूमने लगी--वैद्यों के, चिकित्सकों के द्वार-द्वार, तांत्रिकों-मांत्रिकों के द्वार-द्वार... । मगर कौन जगाये उसे; सब तंत्र, सब मंत्र, सब ज्योतिष, सब वैद्य, सब चिकित्सक मृत्यु के सामने असहाय हैं। किसी ने कहाः पागल औरत, अब इस लाश को ढोने-रखने से कुछ भी लाभ नहीं है। अब तू व्यर्थ ही दीवानी हो रही है! जो हुआ हुआ, मृत्यु तो हो गयी। अब तो कोई चमत्कार ही हो तो यह बच सकता है।
उस स्त्री को तो जैसे डूबते को तिनके का सहारा... उसने कहाः चमत्कार! क्या कोई चमत्कार हो सकता है? उस आदमी ने यह सोचकर कहा भी न था। उसने तो यूं ही बात में ही बात कह दी थी, बात में बात निकल गई थी--कह दिया था कि कोई चमत्कार हो, तो ही बच सकता है। चमत्कार कहीं होते हैं! मगर स्त्री पीछे पड़ गयी उसके कि चमत्कार हो सकता है, तो बोलो कहां, कैसे?
पिंड छुड़ाने को उसने कहाः गांव में गौतम बुद्ध का आगमन हुआ है, तू उनके पास जा। वे तो भगवान हैं। वे तो परम ज्ञान को उपलब्ध हैं। उनके चरणों में ही रख दे इस लाश को। अगर चमत्कार हो सकता है तो वहीं हो सकता है, और कहीं भी नहीं।

भागी स्त्री, जाकर लाश को बुद्ध के चरणों में रख दिया। और मालूम है, बुद्ध ने क्या कहा? बुद्ध ने कहाः ठीक, तो तू चाहती है कि तेरा बेटा वापिस जिंदा हो जाये?
उसने कहाः बस यही चाहती हूं, और कुछ भी नहीं चाहती। इतना ही कर दो। अनुकंपा करो, मुझ दीन पर दया करो।
बुद्ध ने कहाः होगा, जरूर होगा, लेकिन कुछ शर्तें पूरी करनी होंगी। तू
जा गांव में और किसी भी घर से मेथी के थोड़े-से दाने मांग ला। वह गांव तो मेथी की ही खेती करता था। उस स्त्री ने कहाः यह भी कोई शर्त हुई? सारा गांव मेथी ही मेथी से भरा है। यही तो हमारी खेती है। अभी ले आती हूं।
बुद्ध ने कहाः लेकिन ख्याल रख, उसके पीछे एक शर्त और है--मेथी उस घर से लाना जिसके घर में कभी कोई मृत्यु न घटी हो, तो चमत्कार हो जायेगा। बस मेथी के चार दाने काम कर जायेंगे।
वह भागी स्त्री... पागलपन में आदमी तो कुछ भी भरोसा कर लेता है। होश में न हो तो गणित बिठालने का समय भी कहां पाता है! और फिर मन जब मानना ही चाहता हो तो सब तर्कों के विपरीत मान लेता है। छोटी-सी बात थी, साफ हो गयी थी बात वहीं कि ऐसा कौन-सा घर होगा जहां मृत्यु न हुई हो! लेकिन कौन जाने! आशाएं हैं, बड़े सपनों में डूब जाती हैं। वह भागी, एक-एक द्वार खटखटाया। लोगों ने कहा कि जितनी मेथी चाहिए ले जा; बोरे के बोरे भरवा दें, गाड़ियों की गाड़ियां भरवा दें। मेथी ही मेथी है, गांव मेथी की ही खेती करता है। तेरे घर भी मेथी है, तू क्यों दूसरे घरों में मांगती फिरती है?
उसने कहाः लेकिन ऐसे घर की मेथी चाहिए जिसके घर कोई मरा न हो। सांझ होते-होते बात साफ हो गयी कि गांव में एक भी घर ऐसा नहीं है जहां कोई मरा न हो। और यह बात साफ होते-होते कुछ और भी साफ हो गया। जब वह लौटी सांझ, बुद्ध ने कहाः तू ले आयी मेथी के चार दाने? वह स्त्री हंसने लगी। वह बुद्ध के चरणों पर गिर पड़ी। उसने कहाः मुझे दीक्षा दो। इसके पहले कि मेरी मौत आये, मैं कुछ कर लूं। मैं जीवन का कुछ अर्थ जान लूं, मैं जीवन का अभिप्राय जान लूं। बेटा तो गया, मेरा जाना भी ज्यादा दूर नहीं है। और आपने ठीक ही किया कि मुझे भेज दिया गांव की यात्रा पर। एक-एक घर में पूछ कर मुझे पता चल गया कि मृत्यु तो सुनिश्चित है; सभी घर में हुई है; सभी घरों में होती रहेगी। हम मौत के द्वार पर ही खड़े हैं। तो मेरा बेटा आज गया, कल मैं जाऊंगी। इसके पहले कि मैं जाऊं... मेरा बेटा तो गया, बिना कुछ जाने गया, मैं बिना कुछ जाने नहीं जाना चाहती।
कबीर, यही मैं तुमसे कहता हूं। मौत तो होती ही है--किसी की आज, किसी की कल--आज बहन, कल भाई। हम सब विदा होने को हैं यहां। यह घर नहीं है, सराय है। रोने में समय मत गंवाओ। आंसू पोंछ डालो! क्योंकि आंसुओं से भरी आंखें देखने में समर्थ न हो सकेंगी। आंसू बिल्कुल पोंछ डालो! यह देखने की घड़ी है।
मृत्यु से बड़ी महत्वपूर्ण कोई घड़ी नहीं है। और जब तुम्हारा कोई प्यारा मर जाये तब तो बड़ा बहुमूल्य अवसर है। क्योंकि प्यारे का अर्थ होता है जो तुम्हारे बहुत करीब था, हृदय के बहुत करीब था। प्यारे का अर्थ होता है जिसकी मृत्यु तुम्हें अपनी मृत्यु जैसी मालूम होती है। यही तो मौका है, यही तो ध्यान में प्रवेश का मौका है।
और मुझसे तुम सांत्वना न मांगो; मैं तुम्हें सत्य ही दे सकता हूं। और सत्य यह है कि कबीर, तुम्हें भी मरना होगा, मुझे भी मरना होगा, सभी को मरना होगा। मरने के पहले लेकिन एक उपाय हैः काश! हम अपनी चेतना से थोड़ा परिचय बना लें! थोड़ा हमारे भीतर जो अमृत का दीया जल रहा है, उसका अनुभव हो जाये। फिर मृत्यु नहीं होती। फिर देह गिर जाती है और हम और लंबी यात्रा पर निकल जाते हैं। फिर केवल परिधान बदलते हैं। न हन्यते हन्यमाने शरीरे! फिर शरीर के मरने से वह जो भीतर छिपा है, वह नहीं मरता है!
और जिस दिन तुम अपने अमृत को देख पाओगे, उसी दिन तुम्हें सबके भीतर अमृत दिखायी पड़ जायेगा। न तुम्हारी बहन मरी है, न कोई कभी मर सकता है। अब तुमसे मैं ये दो विरोधाभासी वक्तव्य दे रहा हूं। एक--सभी मरते हैं। सभी को मरना पड़ेगा। जो देहग्रस्त हैं, मृत्यु के सिवाय वे कुछ भी अनुभव नहीं कर सकते। और दूसरा--कोई न कभी मरा है, और कोई न कभी मर सकता है। लेकिन यह तो

उनका अनुभव है, जिन्होंने अमृत की पहचान की हो, जिन्होंने आत्म-साक्षात्कार किया हो।

चाहता हूं,
पुष्प यह
गुलदान का मेरे
न मुर्झाये कभी,
देता रहे
सौरभ सदा,
अक्षुण्ण इसका
रूप हो!
पर यह कहां संभव,
कि जो है आज,
वह कल को कहां?
उत्पत्ति यदि,
अवसान निश्चित!
आदि है,
तो अंत भी है!

देह तो बस फूल है। देखते हो न, जब कोई मर जाता है और उसे हम जला आते हैं, फिर तीसरे दिन हम इकट्ठा करने जाते हैं, तो कहते हैं--फूल इकट्ठे करने जा रहे हैं! क्यों कहते हैं फूल इकट्ठे करने जा रहे हैं? बस, फूल जैसा ही सब है यहां क्षणभंगुर! प्यारा शब्द है फूल! क्षणभंगुरता का प्रतीक है फूल। हड्डियां इकट्ठी करने जाते हैं, कहते हैं--फूल इकट्ठे करने जा रहे हैं! मगर अब तुम कह रहे हो कि फूल इकट्ठे करने जा रहे हैं। काश, जिसकी हड्डियां हैं उसने ही जागकर देख लिया होता कि ये सब फूल हैं--अभी हैं, अभी कुम्हला जायेंगे; सुबह हैं, सांझ पंखुड़ियां झड़ जायेंगी। तो शायद कब्र न बनती, समाधि बनती। तो शायद मृत्यु तो होने ही वाली थी, लेकिन भीतर कोई अमृत को जानता हुआ विदा होता।
उस क्रांति की तलाश करो कबीर। मुझसे सांत्वना न खोजो, मैं सत्य ही दे सकता हूं।

यह विवशता!
जो हमारा हो,
उसे हम रख न पायें!
सामने अवसान हो
प्रिय वस्तु का,
हम विवश दर्शक
रहे आयें!

मैं तुम्हारी पीड़ा समझता हूं। अपनों को भी नहीं बचा पाते। अपने को ही नहीं बचा पायेंगे।

नियम शाश्वत
आदि के,
अवसान के,
अपवाद निश्चय ही
असंभव--
शूल-सा यह ज्ञान
चुभता मर्म में,
मन विकल होता!

मैं तुम्हारा दुख समझता, तुम्हारी पीड़ा समझता, तुम्हारे मन की विकलता समझता। लेकिन यह सब स्वाभाविक है। जागो! मृत्यु से, प्रियजन की मृत्यु के क्षण से जागने का और कोई शुभ अवसर नहीं है।

लेकिन हम जागते नहीं। हम नये-नये सपनों में खो जाते हैं।

एक मित्र कुछ दिन पहले आये। पत्नी उनकी चल बसी है। साधारण, गैर-पढ़े-लिखे व्यक्ति भी नहीं हैं; सुप्रीम कोर्ट के जस्टिस हैं। मगर जहां तक मनुष्य के आंतरिक अज्ञान का संबंध है, कुछ भेद नहीं होता। वह जो पत्थर तोड़ता है राह पर उसमें, और वह जो सुप्रीम कोर्ट में बैठकर निर्णय देता है उसमें, कुछ भेद नहीं होता। मूढ़ से मूढ़ में और तथाकथित पंडित में, जरा भी अंतर नहीं होता! सुप्रीम कोर्ट के जस्टिस हैं, रोने लगे विह्वल, बच्चे की भांति! पत्नी को मरे भी दो साल हो चुके, मगर है कि पीड़ा नहीं जाती। दिल्ली से चल कर इतनी दूर आये थे, मुझसे सिर्फ यही पूछने कि क्या एक बात का मुझे भरोसा दिला सकते हैं कि कभी भविष्य में किसी और जन्म में मेरी पत्नी से मेरा मिलना होगा कि नहीं? और एक प्रार्थना है--कहने लगे--एक बार उसका दर्शन करा दें। स्वप्न में ही सही, एक बार उसे फिर देख लूं।

कैसा हमारा मोह है! फिर तो जैसे भूल ही गये मुझसे बात करते समय कि मैं भी वहां हूं। याद करने लगे कि हमने कैसे दिन बिताये--कैसे सुख के दिन! हमने सारी दुनिया की यात्रा दो बार की। हम पेरिस गये, हम लंदन गये, हम न्यूयार्क गये, हम पेकिंग गये... । एक क्षण को तो वह भूल ही गये कि पत्नी मर चुकी है! पेरिस का वर्णन करने लगे, लंदन का--कैसे हम ठहरे, कहां क्या घटना घटी... । मैं देखता था उनको और सोचता था कि बच्चों में और बूढ़ों में जरा भी भेद नहीं। बूढ़े हो गये हैं। अब कुल एक साल और बचा है रिटायर होने को। यह सब हमारे मन की जालसाजियां हैं।

मैंने उनको बार-बार कहा कि इस जन्म के पहले इस पत्नी से कभी मिलना हुआ था? उन्होंने कहाः नहीं, मुझे तो कुछ इस जन्म के पहले की याद ही नहीं। तो मैंने कहाः अगले जन्म में तुम्हें पत्नी की याद रहेगी? पिछले जन्म में कोई तुम्हारी पत्नी रही होगी?

कहा कि हां, जरूर रही ही होगी।

याद कुछ है? पिछले जन्म में भी पत्नी मरी होगी? पिछले जन्म में भी तुमने किसी से जाकर कहा होगा कि इसी पत्नी से फिर दोबारा मिलना हो जाये। याद है कुछ? आज तुम कह रहे हो, कल मर जाओगे; याद रह जायेगी? छोड़ो मरने की बात, रात जब सो जाओगे आज, तब याद रह जायेगी?

उनकी आंखें गीली हो आयीं। उन्होंने कहाः वही तो मेरा दुख है; दो साल हो गये, सपने में भी नहीं देखा!

रात रोज सो जाते हो तब भी याद भूल जाती है, तो जब मरोगे, मृत्यु जैसी बड़ी घटना घटेगी, देह भी छूट जायेगी, मन भी छूट जायेगा--तब तुम्हें याद रह जायेगी पत्नी की? कहीं मिल भी जायेगी भूल-चूक से, पहचान पाओगे? क्यों व्यर्थ की बातों में पड़े हो? और कुछ कमी थी इस जन्म के पहले, जब यह पत्नी तुम्हारी पत्नी न थी? कभी कमी थी कुछ, आगे भी कुछ कमी होगी? और यह पत्नी भी मिल गयी थी, यह भी सांयोगिक ही था।

कहने लगेः आपको कैसे पता चला--सांयोगिक?

मैंने कहाः मुझे आपकी कथा का कुछ पता नहीं है, मगर सभी सांयोगिक है। मैंने उन्हें एक यहूदी लेखक की कहानी बताई। उसके जीवन की घटना है। वह एक स्टेशन पर उतरा। चारों तरफ देखा, कुली नहीं था। सामान ज्यादा था। उसके पास ही एक और स्त्री उतरी थी, बगल के डिब्बे से। उसके पास बिल्कुल सामान न था। भली महिला, उसने कहा कि आप चिंतातुर दिखते हैं। कुली कोई दिखाई पड़ता नहीं, रात सर्द है, बर्फ पड़ रही है। लाइये कुछ सामान मैं आपका बंटा लूं, जो भी बन सके।

तो कुछ झोले उसने भी ले लिये। दोनों चले स्टेशन की तरफ। अब जिसने झोले लिये थे, उससे बात भी होने लगी। बाहर आये। पहचान हो गयी तब तक; बात-चीत भी हुई, मित्रों की बात चली, कहां से आयी, क्या हुआ? टैक्सी में बैठने के पहले, रात सर्द थी, दोनों ने बैठकर होटल में काफी पी--थोड़ी गरमा लें अपनी देहों को। फिर तब तक इतनी पहचान हो गयी थी कि अब दो टैक्सी क्यों करनी, एक ही टैक्सी कर लें। फिर पहचान बढ़ती ही चली गयी; टैक्सी में कोई घंटे-भर की

यात्रा थी, दोनों पास बैठे रहे, और भी मैत्री घनी हो गयी। फिर होटल में सोचा कि अब दो कमरे क्यों लें, एक ही ले लें। फिर ऐसे विवाह हुआ।
उस लेखक ने लिखा हैः ऐसे मेरे पिता और मेरी मां का मिलना हुआ। संयोग
की ही बात थी कि उस दिन कोई कुली नहीं था। बस, उस नासमझ कुली की वजह से यह उपद्रव हुआ।
तुम भी देखना, कैसे तुम्हें अपनी पत्नी मिल गयी। एक ही स्कूल में पढ़ते थे, कि बस्ता टांगे एक ही स्कूल की तरफ रोज-रोज जाते थे, कि संयोग की बात वह भी पड़ोस में रहती थी। हमारी दौड़ ही कितनी है! अब थोड़ी कार वगैरह युवकों के पास हो गयी है तो थोड़ी दौड़ ज्यादा है। दूसरे मुहल्ले तक चले जाते हैं, नहीं तो मुहल्ले में ही होने वाली थी! सांयोगिक है सब मिलना।
वे तो बड़े हैरान हुए; उन्होंने कहाः आप कहते क्या हैं! बात सच है, मेरा मिलना उससे सांयोगिक ही था। हम ऐसे ही एक कांफ्रेंस में मिले थे। और फिर बात बन गयी (कि बात बिगड़ गयी--एक ही है मतलब) अब रो रहे हैं। अब सोच रहे हैंः आगे फिर मिलना इसी से हो जाये! और अब सोच रहे हैंः काश, वह होती तो कैसा अच्छा होता!

जो न गल जाती हिमानी विरह-दिनकर की कला से,
आज इस ज्वाला-तरी के हिम-जड़े पतवार होते।
हास औ" सुख से भरे, आनंद का व्यापार करने,
प्राण-जलनिधि में प्रणय के पोत चलते पार होते।
पलक के प्यासे चषक में भर मिलन की माधवी को, स्निग्ध चंद्रासव पीये-से नयन ये रतनार होते।
अंगुलियां जो उलझ जातीं नीलमणि के कोण पहने,
बंक बरुनी के कसे मुखरित सुरीले तार होते।
सिहरकर अंबर उतरता अंक में भरती उन्हें जो,
तो सजीली मोतियों के कंठ में विधुहार होते।
छांह हिमकर चांदनी का तान ताराजटित आतप,
आज इस ज्वाला भरी के मान औ" मनुहार होते।

और फिर कल्पनाएं कि ऐसा होता, कि ऐसा होता... । मत खोओ कल्पनाओं में। जीवन जैसा है वैसा है। उसे वैसा ही जानो--उसकी नग्नता में। तथ्यों को झुठलाओ मत। तथ्यों को कल्पना के घूंघट मत पहनाओ। तथ्यों को बुर्के मत ओढ़ाओ।
मृत्यु है; इसे तुम कितना ही शृंगार करो और कितना ही सजाओ, तुम झुठला न सकोगे। इसे झुठलाने में जितने तुम सफल हो जाओगे, उतने ही तुमने जीवन को चूकने का उपाय कर लिया।
कबीर, धन्यवाद करो अपनी बहन का, ज्योति का। गयी, अंधेरा छोड़ गयी पीछे ज्योति। अब इस अंधेरे में अपनी ज्योति की तलाश करो। वही ज्योति भीतर जलेगी, तो ही शांति, तो ही सत्य, तो ही मुक्ति।

पांचवां प्रश्नः बुद्ध हुए और महावीर हुए और गोरख हुए, नानक हुए और कबीर हुए--इतनी रोशनियां जलीं, फिर भी संसार में अंधेरा क्यों है?

आप सब की कृपा से! रोशनी जलती रहने दो तब न! अब बुद्ध हुए कुछ पहरा तो देते न रहे; जली रोशनी और गये। वे जा भी नहीं पाते कि हजारों रोशनी को फूंकने को तैयार बैठे हैं।
लोग रोशनी के दुश्मन हैं। लोग दीयों के पुजारी हैं, रोशनियों के दुश्मन हैं। रोशनी को बुझा देते हैं, दीये की पूजा करते हैं! जिंदगी को मेट देते हैं, पत्थरों की पूजा करते हैं! पत्थरों की पूजा चल रही है! बुद्ध की कितनी मूर्तियां बनीं, इतनी किसी और की नहीं बनीं। मूर्तियों की पूजा चल रही है। बुद्ध ने जो कहा था उससे किसको लेना-देना है, उससे किसको प्रयोजन है? वह तो झंझट की बात है। उस पर चलना तो कंटकाकीर्ण मार्ग पर चलना है। उस पर चलना तो जीवन को बदलना होगा। पत्थर की पूजा करने में क्या लेना-देना है; सस्ता काम है।

तुम पूछते हो कि इतनी रोशनियां जलीं, फिर भी संसार में अंधेरा क्यों है? रोशनियों को तुम बचने ही नहीं देते। कभी-कभी तो ऐसा है कि रोशनी खुद भी नहीं बुझ पाती और तुम बुझा देते हो। तुमने जीसस की रोशनी जिंदा-जिंदा में बुझा दी। तुमने सुकरात की रोशनी जिंदा-जिंदा में बुझा दी। तुमने मंसूर की रोशनी जिंदा-जिंदा में बुझा दी। बुद्ध और महावीर के साथ तो तुमने थोड़ी कृपा भी की। पत्थर इत्यादि फेंके, गाली-गलौज भी दी, अपमान भी किया। तुम इस तरह के कामों में बड़े कुशल हो, बड़े निष्णात!
महावीर नग्न थे तो तुम नाराज हुए, अब नग्नता में कुछ नाराजगी की बात न थी। नग्न ही तो आते हैं हम संसार में और नग्न ही हमें जाना है। वस्त्र तो हमने बीच में ओढ़ लिये हैं, बीच का धोखा है। लेकिन हम धोखों को सत्य मान लेते हैं।
कल मैं पढ़ रहा था--बंबई की किसी होटल में, नयी बनती होटल में, किसी ने
एक जैन तीर्थंकर की प्रतिमा सामने खड़ी कर दी है--बीस फीट ऊंची! अब जैन प्रतिमा, नग्न तीर्थंकर की प्रतिमा... बड़ी सनसनी फैल गयी है। जो जैन नहीं हैं वे नाराज हैं कि नंग-धड़ंग आदमी को यहां क्यों खड़ा किया? जो जैन हैं वे भी नाराज हैं, कि होटल और हमारे भगवान! बात यहां तक बढ़ गयी कि कुछ भक्तगण उनको चड्ढी पहना आये।
क्या पागल हो तुम! ... चड्ढी! तुम्हें कुछ और न सूझा? वैसे दिन भी चड्ढीवालों के चल रहे हैं। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ--चड्ढी दल! गुजराती में तो जैसे राजकरण, ऐसे अब उन्होंने नाम रख लिया है चड्ढी-करण।
चड्ढी, महावीर को चड्ढी पहनाओगे! तुम्हें शर्म भी न आयी! फिर किन्हीं
को गुस्सा आ गया कि हमारे भगवान को चड्ढी! उन्होंने चड्ढी फाड़ दी। अब विदेशी पर्यटक हैं, उनको तो कुछ पता नहीं कि कौन तीर्थंकर, क्या? वे कहते हैंः "मिस्टर तीर्थंकर!"... "मिस्टर तीर्थंकर नंगे क्यों खड़े हैं?" और उनको सारा रस उनकी नग्नता में है। वे फोटो पर फोटो उतार रहे हैं।
अब यह बात बेचैनी की है, क्योंकि इससे भारत की प्रतिमा का पश्चिम में बहुत खंडन होगा। तो कोई और ज्ञानी जाकर मूर्ति की जननेंद्रिय पर मिट्टी थोप आये! अब और भद्दी लगती है। मिट्टी थुपी संगमरमर की प्रतिमा पर... मामला क्या है? अब किन्हीं समझदारों ने कुछ रास्ता निकाला, उन्होंने एक बड़ा तख्ता लगा दिया है, जिसमें कि सिर्फ ऊपर की प्रतिमा दिखाई पड़ती है। मगर लोग इतनी आसानी से थोड़े ही छोड़ते हैं। जब से तख्ता लगा है, लोगों की उत्सुकता बढ़ गयी कि तख्ते के पीछे क्या है? तो लोग तख्ते के पीछे जा-जाकर फोटो ले रहे हैं। अब ऊपर की प्रतिमा का फोटो कोई लेता ही नहीं।
महावीर नग्न थे तो तुमने पत्थर मारे, बुद्ध को तुमने गांव-गांव से खदेड़ा--और तुम पूछते हो कि दुनिया में रोशनी कम क्यों है? तुम रोशनी के दुश्मन हो! जिसने भी रोशनी इस दुनिया में लाने की कोशिश की, तुम उससे नाराज हुए। तुम उसे सदियों तक क्षमा नहीं कर पाते। क्यों? कारण है। जो भी रोशनी लाता है उससे तुम्हारी जिंदगी का अंधेरा साफ होता है।
और कोई यह मानने को राजी नहीं कि मैं अंधेरे में जी रहा हूं। जो आदमी आंखवाला है, वह अंधे को नाराज कर देता है, क्योंकि कोई अंधा यह मानने को राजी नहीं कि मैं अंधा हूं। जो पक्षी उड़ नहीं सकते, वे अगर उड़नेवाले पक्षी के पंख तोड़ दें, तो कुछ आश्चर्य है? क्योंकि उड़नेवाला पक्षी उनके अहंकार को चोट पहुंचाता है।
कफस में गुफ्तगू यह सुनकर दिल का खून होता है
न छेड़ो बाजुओं के तजकिरे, परवाज की बातें।
जो नहीं उड़ सकते, वे कहते हैंः हमारे दिल का खून न करो। बाजुओं की बातें मत करो, परवाज की बातें मत करो, उड़ने की बातें मत करो; क्योंकि इससे हमें बेचैनी होती है। तुम उड़ने की बातें करते हो, हमें हमारी नपुंसकता का बोध होता है। और ये सारे लोग परवाज की बातें करते हैं। ये कहते हैं कि परमात्मा हुआ जा सकता है। और तुम तो आदमी होना मुश्किल पा रहे हो--और ये कहते हैं परमात्मा हुआ जा सकता है। और ये कहते हैं कि तुम भी परमात्मा हो सकते हो। ये तुम्हें इतनी विराट ऊंचाई का स्मरण दिलाते हैं कि तुम चक्कर खाने लगते हो। तुम कहते होः ये बातें ही बंद करो। हम भले हैं, जमीन पर सरकते, घसिटते, हम भले हैं। हम अपने जैसे सरकते-घसिटते लोगों के साथ भले

हैं। तुम हमारे बीच में न आओ। तुम हमारी नींद न तोड़ो। हम मधुर सपने ले रहे हैं, तुम हमें ज्यादा न पुकारो।

चिराग तो जल गये हैं, यह बुझ न जायें कहीं
हवाएं तुंद हैं, हर लौ में थर-थराहट है
यह लौ तो क्या है, लरजता है मेरा दिल ऐ दोस्त!
कि लरजा-खेज फजाओं की सनसनाहट है
चिराग जल तो गये हैं, नजर न लग जाये
नजर भी उनकी कि जिनके यहां अंधेरा है निगाहे-बद से बचाना है इन चिरागों को
अभी है पिछला पहर दूर अभी सवेरा है
चिराग जल तो गये हैं, मगर शरीर इतफाल उलट न दें कहीं जलते हुए चिरागों को सलामती जो है मंजूर इन चिरागों की
करो दुरुस्त इन इतफाल के दिमागों को
चिराग जल तो गये, हां चिराग जल तो गये
मजा तो तब है अंधेरा न हो चिराग तले
चिराग बाम पे हों, फर्शो-आस्मां पे चिराग
बुलंदो-पस्त में सब कह उठें "चिराग जले"
चिराग जल तो गये हैं, यह बुझ न जायें कहीं!
जलते रहे हैं, बुझते रहे हैं। जलाने वाले बहुत कम, बुझाने वाले बहुत ज्यादा। अंधेरे में तुमने बहुत-से स्वार्थ जोड़ रखे हैं। अंधेरे में तुम्हारा न्यस्त स्वार्थ है।
अब जैसे चोरों की बस्ती हो और वहां कोई चिराग जलाये, तो चोर बुझा न देंगे? चोर तो जी ही सकते हैं अंधेरे में। चोरों को चांदनी रात बुरी लगती है, अमावस की रात बड़ी प्यारी लगती है। उनका स्वार्थ है, न्यस्त स्वार्थ है।

चिराग जल तो गये हैं, यह बुझ न जायें कहीं
हवाएं तुंद हैं, हर लौ में थरथराहट है
यह लौ तो क्या है, लरजता है मेरा दिल ऐ दोस्त!
कि लरजा खेज फजाओं की सनसनाहट है
चारों तरफ कंपकंपा देने वाली आंधियां हैं! चारों तरफ हवाओं का जोर है! चिराग जल तो गये हैं... कभी कोई बुद्ध, कभी कोई बहाऊद्दीन, कभी कोई महावीर, कभी कोई मुहम्मद, कभी कोई कबीर, कभी कोई गोरख... चिराग जल तो गये हैं, मगर बड़ी तूफानी हवाएं हैं जो बुझा देने को आतुर हैं! और वे हवाएं तुम्हारी हैं, वे तुम हो! तुमने बुझाए हैं चिराग! और अब तुम पूछते हो कि इतनी रोशनियां जलीं, फिर संसार में अंधेरा क्यों है?
आपकी कृपा, आपका अनुग्रह! हां, जब चिराग बुझ जाता है, और बुझा हुआ दीया
रह जाता है, तो तुम बड़े मंदिर बनाते हो, तुम बड़ी पूजा करते हो! फिर तुम्हारी स्तुतियां सुनने जैसी हैं! तुम मुर्दे की पूजा करने में कुशल हो, क्योंकि तुम मुर्दे हो! मुर्दों से तुम्हारी दोस्ती बन जाती है, जिंदों से तुम्हारी दोस्ती टूट जाती है। जीसस, जिंदा तो मारो। हां, मर जायें तो फिर पूजो। आज एक तिहाई दुनिया जीसस को मानती है। और जिस दिन जीसस को सूली लगी थी उस दिन तुम्हें पता है, तीन आदमी भी स्वीकार करने को राजी नहीं थे कि हम जीसस को मानते हैं! और जब जीसस को गोलगोथा की पहाड़ी पर, उनके कंधे पर वजनी सूली को लेकर चढ़ाया गया, तो वे तीन बार रास्ते में गिरे। लेकिन एक भी आदमी ने यह न कहा कि लाओ मैं साथ दे दूं, कि चलो मैं तुम्हारी सूली ढो दूं। कौन हिम्मत करे!
जब जीसस को सूली लगी... और उन दिनों जैसी सूली लगती थी जेरुसलम में, आदमी एकदम नहीं मर जाता था, छह घंटे, आठ घंटे, दस घंटे, बारह घंटे, कभी-कभी चौबीस घंटे लग जाते थे मरने में, क्योंकि सूली का ढंग बड़ा बेहूदा था। हाथ-पैर में खीले ठोंक देते थे, लटका देते थे आदमी को। अब हाथ-पैर से खून बहेगा, बहेगा, बहेगा... घंटों लगेंगे। भरी दोपहरी सूली को ढो कर लाना, पहाड़ी पर

चढ़ना। जीसस प्यासे हैं। उनके हाथ में खीले ठोंक दिये गये हैं। वे कहते हैं कि मुझे प्यास लगी है, कोई पानी दे दो। मगर उन एक लाख इकट्ठे लोगों में, किसी एक आदमी ने हिम्मत न की कि कह देता कि लो मैं पानी ले आऊं तुम्हारे लिए। मरते जीसस को तुम पानी न दे सके! लोगों ने पत्थर फेंके, सड़े छिलके फेंके। गालियां दीं, सब तरह के अपमान किये। मरते जीसस को तुमने शांति से भी न मरने दिया। मरते जीसस को भाले चुभा-चुभा कर लोगों ने पूछा कि क्या हुआ चमत्कारों का? क्या हुआ तुम्हारे परमात्मा का? तुम तो कहते थे कि तुम ईश्वर के बेटे हो, अब कहां है तुम्हारा पिता? आये और प्रमाण दे!
यह तो तुमने जीसस के साथ व्यवहार किया। और फिर... तुमने कितने चर्च बनाये जीसस के लिए! इतने तुमने किसी के लिए नहीं बनाये। और कितने पुजारी हैं आज! बारह लाख तो सिर्फ पादरी-पुजारी हैं दुनिया में। फिर प्रोटेस्टेंट अलग हैं, और-और दूसरे चर्च अलग हैं। दुनिया का सबसे बड़ा धर्म बन गया है ईसाइयत! कारण क्या हुआ? जिंदा को तो तुम स्वीकार न कर सके, मुर्दा का सम्मान कर रहे हो! शायद इसीलिए। जिंदा का तुमने इतना अपमान किया कि मनुष्य-जाति के प्राण अपराध-भाव से भर गये। अब अपराध-भाव को किसी तरह पोंछने के लिए तुम स्तुति कर रहे हो, पूजा कर रहे हो, शोरगुल मचा रहे हो; मगर अपराध-भाव मिटता नहीं।
चिराग जल तो गये हैं, नजर न लग जाये
नजर भी उनकी कि जिनके यहां अंधेरा है।
जिनके यहां अंधेरा है वे नाराज होते हैं रोशनी देखकर। तुमने कभी यह ख्याल किया, कि तुम अपनी गरीबी से उतने परेशान नहीं होते जितना पड़ोसी की अमीरी से परेशान होते हो। गरीबी से तो बहुत कम लोग परेशान हैं, अमीरी से परेशान हो जाते हैं। तुम्हें ख्याल ही नहीं था कि तुम्हारे पास कार नहीं है। तुम परेशान ही नहीं थे। फिर पड़ोसी एक कार ले आया। बस, अब परेशानी शुरू हुई। अब तुम गरीब हुए। अब तक तुम गरीब न थे, अब तक सब ठीक चल रहा था। अब पड़ोसी कार ले आया, अब गरीबी शुरू हुई। अब तुम्हें बेचैनी हुई। अब कार तुम्हारे पास भी होनी चाहिए।
दुनिया में इतनी गरीबी नहीं है, जितने लोग परेशान हैं। और परेशान गरीबी से तो कोई भी नहीं है। इसलिए रूस में परेशानी कम है; उसका कारण है कि सभी समान रूप से गरीब हैं! अमरीका का गरीब-से-गरीब आदमी रूस के अमीर-से- अमीर आदमी से आठ गुना ज्यादा अमीर है। लेकिन अमरीका में बड़ी परेशानी है, रूस में परेशानी नहीं है। तो निश्चित ही बात साफ है कि गरीबी से कोई परेशानी नहीं होती, परेशानी अमीरी से होती है। तुलना पैदा हो जाती है। तुम्हारे पास है और मेरे पास नहीं, इससे बेचैनी, इससे कांटा चुभता है।
इस देश में भी यही होगा। इस देश में थोड़े-से अमीर हैं; उनको बांटा जा सकता है। जिस दिन वे बंट जायेंगे, लोग बड़े प्रसन्न हो जायेंगे। ऐसा नहीं है कि लोग अमीर हो जाएंगे। उनके बंटने से कुछ नहीं होने वाला है। उनका बंटना ऐसे है जैसे कि कोई जाकर चम्मच-भर शक्कर और सागर में डाल दे! उनके बंटने से कुछ नहीं होने वाला है। वे बंट भी जाएंगे तो कोई फर्क नहीं पड़ने वाला है। तुम्हारी जिंदगी की मिठास न बढ़ेगी, लेकिन तुम्हारी खटास कम हो जायेगी। अगर सभी गरीब हैं तो फिर कोई अड़चन न रही। फिर तुम्हारे गरीब होने में कोई पीड़ा न रही, तुम्हारे अहंकार को चोट न रही।
यह बड़ी अजीब दुनिया है! यहां लोग अपनी गरीबी से परेशान नहीं हैं, दूसरे की अमीरी से परेशान हो जाते हैं। और जो सामान्य अमीरी-गरीबी के तल पर होता है, वह और भी बड़े पैमाने पर आध्यात्मिक तल पर होता है। तुम्हें अपने आध्यात्मिक अंधेपन की कोई पीड़ा नहीं है, लेकिन बुद्ध को देखकर तुम नाराज हो जाते हो--यह आंखवाला आदमी है।
चिराग जल तो गये हैं, नजर न लग जाये
नजर भी उनकी कि जिनके यहां अंधेरा है
निगाहे-बद से बचाना है इन चिरागों को
अभी है पिछला पहर, दूर अभी सवेरा है
चिराग तो जलते रहे, लेकिन सवेरा बहुत दूर है। सूरज अभी तक नहीं निकला है। बुद्ध जले, महावीर जले, कृष्ण, क्राइस्ट... ये चिराग हैं। सवेरा अभी नहीं हुआ। सवेरा कब होगा? सवेरा तब होगा, जब सारी मनुष्यता में एक धार्मिक

प्रकाश फैल जाये। सवेरा तब होगा जब सभी के चेहरों पर ध्यान की आभा होगी। वह तो अभी बड़ी दूर है बात। और जो उसे करीब ला सकते थे, तुम उन्हें बुझा देते हो; तुम उनसे नाराज हो जाते हो; तुम उनके दुश्मन हो जाते हो।
चिराग जल तो गये हैं, मगर शरीर इतफाल
उलट न दें कहीं जलते हुए चिरागों को
शरारती लोगों से जरा सावधान रहना!
चिराग जल तो गये हैं, मगर शरीर इतफाल
बहुत शरारती लोग हैं दुनिया में; वे चिरागों का जलना पसंद नहीं करते।
वे तत्क्षण उन चिरागों को उलट देने को तैयार हो जाते हैं।
बुद्ध पर पागल हाथी छोड़ा गया। पागल हाथी भी इतना पागल नहीं था जितने पागल आदमी हैं। क्योंकि कहानी यह है कि पागल हाथी भी बुद्ध के पास आकर रुक गया। ऐसा हुआ हो या न हुआ हो, लेकिन बात मुझे जंचती है। कोई हाथी इतना पागल नहीं होता जितने आदमी पागल होते हैं! पागल हाथी को भी लगा होगा कि बेचारा सीधा-सादा आदमी है, इस पर हमला क्यों करना? पागल रहा होगा, मगर इतनी बुद्धि उसमें भी अभी शेष थी कि वह आकर रुक गया। लेकिन जिसने छोड़ा था पागल हाथी-- देवदत्त--वह बुद्ध का चचेरा भाई था। चचेरा भाई! साथ-साथ बड़े हुए थे। साथ-साथ पढ़े थे। एक ही उम्र के थे। एक-सी प्रतिभा के थे। और बचपन से ही उनमें एक कशमकश थी, एक प्रतियोगिता थी। फिर जब बुद्ध बुद्धत्व को उपलब्ध हो गये तो देवदत्त को बड़ी बेचैनी होने लगी कि वह पीछे छूट गया। उसे भी बुद्धत्व सिद्ध करके दिखाना है। अब बुद्धत्व कोई ऐसी चीज तो है नहीं कि तुम सिद्ध करके दिखा दोगे। तो वह झूठा ही अपने को बुद्ध घोषित करने लगा। लेकिन झूठा बुद्ध सच्चे बुद्ध के सामने फीका लगता। तो फिर एक उपाय था कि सच्चे बुद्ध को खत्म करो। तो पागल हाथी छुड़वा दिया।
यह भी जानकर हैरानी होती है कि अपना ही भाई, चचेरा भाई, पागल हाथी छुड़वायेगा! ऐसा अक्सर हुआ है। जो निकटतम हैं, वे ही सर्वाधिक नाराज हो जाते हैं, क्योंकि उनके ही अहंकार को सबसे ज्यादा चोट पहुंचती है।
जीसस ने कहा हैः पैगंबर का अपने ही गांव में सम्मान नहीं होता। क्योंकि गांव के लोग निकट होते हैं। वे कैसे बर्दाश्त कर सकते हैं कि एक छोकरा हमारे ही बीच से उठा। यहीं हमने उसे बड़े होते देखा, इन्हीं गलियों में खेलते देखा--और वह पैगंबर हो गया! तो हम सब दो कौड़ी के! नहीं, यह बर्दाश्त नहीं हो सकता।
जीसस अपने गांव में एक ही बार गये ज्ञान को उपलब्ध होने के बाद; दोबारा जाने की नौबत ही गांव के लोगों ने न दी! गांव के लोगों ने जीसस पर इतनी नाराजगी जाहिर की कि सारा गांव उनके पीछे पड़ गया। उन्हें पहाड़ पर ले जा कर उनको पहाड़ से गिरा देने की कोशिश की, मार डालने की कोशिश की। क्या नाराजगी थी जीसस जैसे प्यारे आदमी से? इसका प्यारा होना ही नाराजगी का कारण है। शरारती लोग हैं, दुनिया शरारतियों से भरी है।
चिराग जल तो गये हैं, मगर शरीर इतफाल
उलट न दें कहीं जलते हुए चिरागों को
इसलिए सावधानी रखनी होती है। जो जानते हैं, जो पहचानते हैं, उन्हें बड़ी सावधानी रखनी होती है, कि जब कोई चिराग जले, तो उसे अपने आंचल में छिपा लें--कि उसकी रोशनी काम आ जाये लोगों के, कि उस चिराग से कुछ और बुझे चिराग जल जायें।
सलामती जो है मंजूर, इन चिरागों की
करो दुरुस्त इन इतफाल के दिमागों को
अगर चाहते हो कि दुनिया में चिराग जलते रहें, तो शरारती लोगों के दिमाग को जरा ठीक करो। मगर शरारतें नये-नये ढंग लेती जाती हैं, शरारतें नये-नये रंग लेती जाती हैं। और शरारतें बहुत तर्कपूर्ण हैं। शरारतें शास्त्रों का उल्लेख करती हैं, शरारतें शास्त्रों में आधार खोज लेती हैं। चिराग जल तो गये, हां चिराग जल तो गये!
मजा तो तब है अंधेरा न हो चिराग तले
और फिर एक और बड़ी अड़चन है, अगर शरारतियों से चिराग बच जायें, आंधियों
और तूफानों से चिराग बच जायें, लोगों की नजरों से चिराग बच जायें, लोगों की बदनजरों से चिराग बच जायें--तो फिर एक और बड़ा खतरा है, कि हर चिराग के तले

ही अंधेरा इकट्ठा हो जाता है। तथाकथित शिष्य इकट्ठे हो जाते हैं, जिनमें शिष्यत्व की कोई क्षमता और बोध नहीं होता। अगर उनमें शिष्यत्व की क्षमता और बोध हो, तब तो चिराग के नीचे भी रोशनी हो जाये। क्योंकि चिराग के नीचे और चिराग हो जायें!
लेकिन अक्सर यह हो जाता है कि जब भी कोई सदगुरु पैदा होता है, तो उसके विदा होते ही उसकी ही छाया में राजनीतिज्ञों के अड्डे जम जाते हैं, शरारतियों के अड्डे जम जाते हैं। वहीं आपाधापी शुरू हो जाती है कि कौन प्रथम हो?
अब यह तुम जानकर हैरान होओगे कि शंकराचार्यों के मुकदमे अदालतों में चलते हैं, तय करने के लिए कि कौन असली शंकराचार्य है! अदालत तय करेगी कि कौन असली शंकराचार्य है! एक सम्मेलन में एक ऐसे शंकराचार्य से मेरा मिलना हुआ, जिनके ऊपर इलाहाबाद के हाईकोर्ट में मुकदमा चलता है। दो शंकराचार्य हैं, दोनों घोषणा करते हैं कि हम असली हैं। एक ही पीठ पर दोनों का कब्जा है। उन्होंने मुझसे पूछा कि आपका इस संबंध में क्या मंतव्य है?
मैंने कहा कि मेरा एक मंतव्य है कि तुम दोनों नकली, इतना तय है। यह भी कोई बात है कि अदालत से तुम मुकदमे का फैसला लेने चले हो! तो तुम सोचते हो कि अदालत का जो मजिस्ट्रेट है, हजार-पांच सौ रुपये तनखाह पाने वाला, वह पहचान सकेगा कि असली शंकराचार्य कौन है? वह तो बेचारा सिर्फ अदालती ढंग से देख रहा है। वह तो इसकी जांच-पड़ताल करवा रहा है कि इसके पहले जो शंकराचार्य था, उसने जो वसीयत लिखी है वह असली है कि नकली है? किसके नाम लिखी... ? दोनों के पास वसीयत है। जहां तक संभावना यह है कि दोनों के नाम लिखी हो। पहले एक के नाम लिखी हो, फिर मरते वक्त आधी मूर्च्छा में, बेहोशी में, दूसरे ने भी दस्तखत करवा लिए हों।
तो मैंने कहा कि तुम दोनों तो शंकराचार्य नहीं हो, इससे यह भी तय होता
है कि तुम्हारा गुरु भी शंकराचार्य नहीं था। चिराग के तले अंधेरा इकट्ठा हो जाता है।
चिराग जल तो गये, हां चिराग जल तो गये!
मजा तो तब है अंधेरा न हो चिराग तले
हर सदगुरु के पीछे लोग इकट्ठे हो जाते हैं, जो राजनीति चलाने लगते हैं। उनसे सावधान होना जरूरी है। नहीं तो फिर पोप पैदा होते हैं, और शंकराचार्यों के मठ खड़े होते हैं, और सब उपद्रव शुरू हो जाता है।
चिराग बाम पे हों, फर्शो-आस्मां पे चिराग!
चिराग जलें ऊंचाइयों पर, शिखरों पर, आसमानों पर... ।
बुलंदो-पस्त में सब कह उठें, चिराग जले।
और उत्थान हो कि पतन, लेकिन चिराग जलते रहें। लेकिन हमें सहारा देना होगा। ये चिराग कुछ ऐसे नहीं हैं कि अपने-आप जलते रहेंगे; इन्हें हमें प्राणों के द्वारा जलाना होगा। प्राणों की आहुति देंगे तो ये चिराग जलेंगे।
बुद्धों के चिराग जल सकते हैं। इस जगत की सुबह भी करीब आ सकती है। लेकिन बहुत-बहुत लोगों को अपने प्राणों का स्नेह इन चिरागों को जलाने में लगाना होगा।
अब तक यह नहीं हो पाया है। इसलिए आदमी अंधेरे में है। रात गहरी है, पर सुबह हो सकती है। और अब ऐसी घड़ी आयी है कि अगर सुबह न हो सकी तो आदमी बच न सकेगा। अब सुबह होनी ही चाहिए। अब आदमी का भाग्य ही इस बात पर निर्भर है कि सुबह होनी चाहिए। आदमी उस जगह पहुंच गया है कि जैसा है ऐसा ही अब ज्यादा देर जिंदा न रह सकेगा। गये वे दिन जब तुम तीर-कमान चला कर एक-दूसरे को मारा करते थे। अब हमारे पास अणु-अस्त्र हैं। पृथ्वी पर इतने अणु-अस्त्र हैं कि एक-एक आदमी एक-एक हजार बार मारा जा सकता है! हालांकि आदमी एक ही बार में मर जाता है। इतना आयोजन करने की कोई जरूरत नहीं है। मगर भूल-चूक क्यों करनी! राजनीतिज्ञों ने पूरा, शरारतियों ने पूरा इंतजाम कर रखा है। कितनी दफे बचोगे? एक हजार पृथ्वियां नष्ट हो सकें, इतना आयोजन है। अब अगर आदमी न बदला और सुबह न हुई तो आदमी समाप्त होगा।
इन आने वाले पच्चीस वर्ष में बड़ी निर्णायक घड़ी है। या तो आदमी नष्ट होगा और यह पृथ्वी आदमी से शून्य हो जायेगी; या फिर एक नये आदमी का जन्म

होगा--एक नयी सुबह! लेकिन ये जो छोटे-छोटे चिराग जले हैं, इन्हीं से आशा बनी है।
गुलों की कसरत हो, या कमी हो, बहार फिर भी बहार है
दीये जले, बुझे, मिट गये; उनकी छाया में अंधेरा पनपा--यह सब ठीक। गुलों
की कसरत हो... फूल ज्यादा हों कि कम।
गुलों की कसरत हो, या कमी हो, बहार फिर भी बहार हैकली हो चुप या चटक रही हो, बहार फिर भी बहार हैतुम्हें शऊरे-नजर नहीं है, बहार को हेच कहने वालो! घटा घिरी हो कि चांदनी हो, बहार फिर भी बहार हैतयूर की नग्मा-साजियां हैं, कहीं है कू-कू, कहीं है पी-पीअगर खरोशे-जगन कभी हो, बहार फिर भी बहार हैहवा में तुंदी भी हो अगर कुछ, उसे नमू का पयाम समझोजो चंद पत्तों में बरहमी हो, बहार फिर भी बहार है
थोड़े पक्षी गीत गायें, कोई कोयल कूके एक-आध बार, कि कोई पपीहा बोले पी-
पी और कौओं का बड़ा शोरगुल हो, तो भी बहार तो बहार ही है। तयूर की नग्मा- साजियां हैं... पक्षियों की गुनगुनाहट... कहीं है कू-कू, कहीं है पी-पी। अगर खरोशे-जगन कभी हो... लेकिन अगर बहुत कौओं की कांव-कांव भी हो, तो भी ख्याल रखना, बहार फिर भी बहार है।
हवा में तुंदी भी हो अगर कुछ, उसे नमू का पयाम समझो
जो चंद पत्तों में बरहमी हो, बहार फिर भी बहार है।
ये छोटे-छोटे दीये जो जले और बुझ भी गये हैं--हमारे कारण। जले तो हमारे कारण नहीं, बुझे हमारे कारण हैं। तो भी इन्होंने आने वाले महावसंत की प्राथमिक सूचनाएं दी हैं। इन्होंने आने वाले सुबह की पहली खबरें दी हैं। कदम बढ़ाके तुम चले, मगर यह इक कसर रहीकदम जरा मिले नहीं
अगर कदम मिले रहें, तो चाहे सुस्त-रौ भी होंरसाई होगी एक दिन
फिर दूसरी कठिनाई यह हुई कि दीये तो बहुते जले, लेकिन दीये के पीछे चलनेवाले लोग कभी इकट्ठे होकर न चल सके। हिंदू अलग, मुसलमान अलग, जैन अलग, ईसाई अलग! रोशनियों को प्रेम करने वाले लोग भी इकट्ठे न हो सके! अंधेरे में लोग लड़ते रहे, ठीक था, क्षमा के योग्य हैं; रोशनियों के नाम पर लोग लड़ने लगे, यह अक्षम्य है।
कदम बढ़ाके तुम चले, मगर यह इक कसर रही
कदम जरा मिले नहीं
अगर कदम मिले रहें,
तो चाहे सुस्त-रौ भी हों
रसाई होगी एक दिन
और अगर कदम मिल कर चलें तो चाहे धीमे भी चलें, तो भी एक दिन पहुंचना निश्चित है। मंजिल दूर नहीं। सुबह करीब है।
आज इतना ही।

मरौ हे जोगी मरौ
तेरहवां प्रवचन

मारिलै रे मन द्रोही

अवधू मांस भषंत दया धरम का नास। मद पीवंत तहां प्राण निरास।
भांगि भषंत ज्ञानं ध्यानं शोवंत। जम दरवारी ते प्राणी रोवंत।।
जीव क्या हतिये रे प्यंडधारी। मारिलै पंचभू मृगला।
चरै थारी बुधि बाड़ी। जोग का मूल है दया-दाण।।
कथंत गोरख मुकति लै मानवा, मारिलै रे मन द्रोही।
जाके बप वरण मांस नहीं लोही।।
पावड़ियां पग फिलसै अवधू, लोहै छीजंत काया।
नागा मूनी दूधाधारी, एता जोग न पाया।।
हिरदा का भाव हाथ में जाणिये, यह कलि आई शोटी।
बदंत गोरख सुणौ रे अवधू, करवै होइ सु निकसै टोटी।।
कोई बादी कोई विवादी, जोगी कौं बाद न करनां।
अठसठि तीरथि समंदि समावै, यूं जोगी को गुरुमुषि जरनां।।
अवधू मन चंगा तौ कठौती ही गंगा। बांध्या मेला तो जगत्र चेला।
बदंत गोरख सति सरूप। तत विचारै ते रेख न रूप।।
यहु मन सकती यहु मन सीव। यहु मन पांच तत्त का जीव।
यहु मन ले जे उनमन रहै। तौ तीनि लोक की बातां कहै।।
दाबि न मारिबा खाली न राषिबा, जानिबा अगनि का भेवं।
बूढ़ी ही थै गुरबाणी होइगी, सति सति भाषंति श्री गोरख देवं।।
राति गई अधराति गई, बालक एक पुकारै।
है कोई नगर मैं सूरा, बालक का दुख निबारै।।
देवल जात्रा सुंनि जात्रा, तीरथ जात्रा पाणीं।
अतीत जात्रा सुफल जात्रा, बोलै अमृत वाणी।।

थका सूरज, प्रतीची की सजीली गोद में सोया,
किसी से नीड़ में बिछुड़ा हुआ पंछी मिला, खोया; मगर मैं हूं कि सूनी राह पर चुपचाप चलता हूं, थके पग, पर परिश्रम के प्रहर का अंत कब आया? दिवस का अंत आया, पर डगर का अंत कब आया?
लिये प्रतिबिंब कूलों का, अंधेरे में नदी सोई, भ्रमर के प्यार की तड़पन कमल के अंक में खोई! थकी लहरें हुईं खामोश गिर करके किनारों पर, दृगों में, किंतु, आंसू की लहर का अंत कब आया? दिवस का अंत आया, पर डगर का अंत कब आया?
पवन ने पी लिया आसव कुमुद की स्निग्ध पांखों का।
किसी ने भी न पोंछा नीर मेरी क्षुब्ध आंखों का
तिमिर का विष गई पी रात चांदी के कटोरे से
मगर मेरी निराशा के जहर का अंत कब आया?
दिवस का अंत आया, पर डगर का अंत कब आया?
डगर का अंत भी आता है; लेकिन जब तक मन है, तब तक नहीं आता। मन ही डगर है।
और सब राहें तो बस नाममात्र की राहें हैं, असली राह तो मन की राह है। दिन आयेंगे और जायेंगे। जन्म होंगे और मृत्युएं होंगी। लेकिन मन अगर शेष रहा, तो दिवस का अंत तो आता रहेगा बार-बार, लेकिन डगर का अंत न आयेगा। डगर बाहर नहीं है। डगर है भीतर। डगर है वही जिस पर विचार चलते हैं, वासनाएं चलती हैं, कल्पनाएं-कामनाएं चलती हैं, स्मृतियां चलती हैं, भविष्य के स्वप्न चलते हैं। डगर है वही, पहचान लेना ठीक से। बाहर के रास्तों पर असली डगर नहीं है। बाहर के रास्तों पर भी लोग चल रहे हैं, क्योंकि भीतर की डगर ने उन्हें बाहर के रास्तों पर चलाया है।
चीन की एक बड़ी प्रसिद्ध कथा है। एक फकीर को सम्राट ने आमंत्रित किया
था अपने महल पर। वे दोनों छत पर खड़े होकर सांझ डूबते सूरज को देखते थे।

सामने ही सागर है। उत्ताल उसकी तरंगें हैं। सागर में डूबता हुआ सूरज का अग्नि का गोला है। और सैकड़ों जहाज आ रहे, जा रहे हैं। सम्राट ने कहा फकीर कोः देखते हैं, कितने जहाज आते हैं, कितने जहाज जाते हैं! वह फकीर बोला कि नहीं, कितने नहीं देखता, बस दो ही देखता हूं। दो ही जहाज हैं।
सम्राट ने कहाः आप होश में हैं? मुझे गिनती नहीं आती? सैकड़ों जहाज हैं; गिने भी न जा सकें, इतने जहाज हैं।
लेकिन फकीर फिर भी बोला कि नहीं, दो ही जहाज हैं। एक धन की यात्रा पर निकला है, एक पद की यात्रा पर निकला है। बाकी सब बहाने हैं। बाकी फिर उन्हीं के रूपांतरण हैं; उन्हीं के रूप हैं; उन्हीं की आकृतियां हैं। जहाज तो दो हैंः एक धन की यात्रा, एक पद की यात्रा। लेकिन अगर इन दोनों को भी ठीक से समझो, तो ये दोनों जहाज भी एक ही लकड़ी से बने हैं; वह लकड़ी है अहंकार की लकड़ी। और अगर बहुत खोज करो, तो ये जहाज बाहर नहीं चलते, ये भीतर तुम्हारे मन के सागर में चलते हैं। मन की डगर है। मन ही डगर है। और जब तक मन चल रहा है, तब तक थको, गिरो; फिर-फिर उठोगे, फिर-फिर चलोगे--मन चलाता ही रहेगा। दिवस का अंत आया, पर डगर का अंत कब आया!
साधारणतः नहीं आता। कभी-कभी आता है। किसी बुद्ध को, कबीर को, गोरख को, नानक को... कभी-कभी आता है। आ सबका सकता है। पर इतना हम होश ही नहीं सम्हालते। हमें यह पता ही नहीं कि हमारी असली यात्रा बाहर नहीं हो रही है, भीतर हो रही है। और जिन यात्रियों से हम बाहर मिल रहे हैं, वे असली यात्री नहीं हैं; जिनसे हम मन की डगर पर मिलते हैं, वे ही असली यात्री हैं। वहां तुम किस-किससे मिलते हो? मिलते हो अतीत की स्मृतियों से, भविष्य की कल्पनाओं से, न मालूम कितनी वासनाओं से, न मालूम कितने विचारों से!
भीड़ वहां इकट्ठी है। राह चलती ही रहती है। जागो तो चलती है, सोओ तो चलती है। राह चलती ही रहती है। जन्मते हो तो चलती है। मरते हो तो चलती रहती है। मरते-मरते भी मन की राह बंद नहीं होती। देह छूट जाती है, मन नयी देह पर सवार हो जाता है। एक वाहन टूट गया, मन नये वाहन निर्मित कर लेता है; मगर यात्रा जारी रहती है। इस यात्रा का नाम ही संसार है।
संसार से तुम अर्थ मत समझना, वह जो बाहर फैला हुआ है। वैसा अर्थ समझा
तो भूल हो जायेगी। फिर तो संसार को छोड़ न सकोगे कभी। जहां भी जाओगे, वहीं बाहर कुछ होगा। पहाड़ पर भी होगा, वन-कंदराओं में भी होगा। संसार से अर्थ है, वह जो भीतर चलता है। उसे तोड़ा जा सकता है। उसे रोका जा सकता है। और मन गिर जाये तो संसार गिर जाता है। और मन गिर जाये तो फिर और जन्म नहीं है। मन गिर जाये तो फिर कोई मृत्यु नहीं है। फिर अमृत से मिलन है।
सूत्र--
अवधू मांस भषंत दया धरम का नास। मद पीवंत तहां प्राण निरास।
भांगि भषंत ज्ञानं ध्यानं शोवंत। जम दरवारी ते प्राणी रोवंत।।
एक दिन मृत्यु के द्वार पर रोओगे, बुरी तरह रोओगे, जार-जार रोओगे! लेकिन तब बहुत देर हो चुकी होगी। इसके पहले कि मृत्यु के द्वार पर रोना पड़े, सम्हल जाओ। सम्हलने के सूत्र ये रहे। पहला सूत्रः करुणा।
जीवन में इतना उपद्रव क्यों है, इतनी हिंसा क्यों है, इतना वैमनस्य क्यों है, इतना विद्वेष क्यों है? करुणा खो गयी है। और ऐसा नहीं है कि करुणा दूसरे के हित में है। करुणा तुम्हारा हित है, स्व-हित है।
एक बुनियादी सूत्र समझ लेनाः जो तुम दूसरे के साथ करते हो, वही तुम पाओगे। जो बोओगे, वही काटोगे। अगर चाहते हो कि अमृत को काटो, तो मौत को मत बोओ। अगर चाहते हो शाश्वत जीवन मिले, तो फिर जीवन का विनाश न करो। अगर चाहते हो कि प्रेम तुम पर बरसे, तो घृणा के कांटे दूसरों के रास्तों पर मत डालो। जो गड्ढे तुमने दूसरों के लिए खोदे हैं, वे अपने लिए ही खोदे हैं। सब तुम्हीं पर वापिस लौट आता है।
यह जगत तो ऐसा है जैसे कोई पहाड़ों में जा कर, घाटियों में जोर से आवाज लगाये, और सारी घाटियों से आवाज लौट कर उसी पर बरस जाये। यह जगत एक प्रतिध्वनि है।
करुणा का अर्थ होता हैः दो प्रेम, ताकि पा सको प्रेम। और प्रेम पाने
की सभी की आकांक्षा है। ऐसा कौन है जो प्रेम नहीं पाना चाहता? पाना तो सभी प्रेम चाहते हैं, लेकिन कीमत कोई भी चुकाना नहीं चाहता। इसलिए छीना-झपटी

बहुत, मिलता कुछ भी नहीं। प्रेम दो और प्रेम मिलता है, और हजार गुना होकर मिलता है।
अवधू मांस भषंत दया धरम का नास।
यह तो असंभव है, थोड़े-से समझदार, बोधपूर्ण व्यक्ति को, जो जीवन को समझने की चेष्टा में संलग्न है, कि अपने स्वाद के लिए लोगों की, पशुओं की हत्या कर सके। आदमियों को खानेवाले कबीले हुए हैं। अभी भी कुछ लोग हैं, अमेजान के कछार में, जो आदमियों को खा जाते हैं। उनकी संख्या खुद ही कम होती जाती है, क्योंकि कबीला अपने को ही खाता जाता है। मनुष्य को खानेवाले लोग जमीन पर थे। वे हमारे ही पूर्वज थे। फिर किसी तरह समझाया-बुझाया; पशुओं को खाने लगे। और समझाया-बुझाया। बामुश्किल आदमी को आदमी बनाने की चेष्टा की जा सकी है, फिर भी आदमी अभी पूरा आदमी नहीं बन पाया।
हिंसा जब भी तुम कर रहे हो, फिर किसी भी कारण से कर रहे हो, तुम इस हिंसा के माध्यम से कभी भी आनंद को उपलब्ध न कर सकोगे। दुख दोगे, दुख पाओगे। वैर बोओगे, वैर काटोगे।
महावीर ने कहा हैः वैरं मज्झि न केव। जिसने शत्रुता बांधी, उसने शत्रुता के अतिरिक्त और कभी कुछ न पाया। तो महावीर कहते हैंः मैं किसी से वैर नहीं करता। बुद्ध ने कहा हैः शत्रुता से शत्रुता नहीं मिटती। हिंसा से हिंसा नहीं मिटती। हिंसा से हिंसा और बढ़ती है।
जीवन जहां तक बन सके, हिंसा से विमुक्त करो। और किन छोटी-छोटी बातों
पर हिंसा में लगे हो? स्वाद है, स्वाद जैसी छोटी बात के लिए जीवन के परम धन को खो रहे हो? स्वाद क्षणभंगुर है। परिणाम बहुत लंबे होंगे। जन्मों- जन्मों तक कष्ट भोगना पड़ सकता है। कष्ट दिया है, कष्ट भोगना ही पड़ेगा। और ऐसा मत सोचना कि यह बात सिर्फ मांसाहार के लिए की जा रही है, किसी भी तरह की हिंसा, किसी भी तरह का दुख। और ऐसा ही नहीं है कि दूसरों को मत देना, अपने को भी मत देना। दुख देना ही मत। क्योंकि तुम किसी को भी दुख दो, तुमने परमात्मा को ही दुख दिया। तुम एक वृक्ष को दुख दो, तो भी तुमने "उसी" को दुख दिया। क्योंकि "वही" था हरा वृक्ष में। और तुमने एक पक्षी मार डाला, तुमने "उसी" को मारा। क्योंकि वही उड़ता था पक्षी में। और तुमने अपने को दुख दिया तो भी तुम ने "उसी" को दुख दिया, क्योंकि "वही" तुम्हारे भीतर भी विराजमान था। उस एक का ही विस्तार है। उस एक के ही सागर की हम सब अनंत तरंगें हैं। वह जो तरंग दूसरी मालूम पड़ रही है, वह भी दूसरी नहीं है; जुड़ी है हम से। हम सब संयुक्त हैं; हम सब एक अस्तित्व हैं--इस घोषणा का नाम अहिंसा है।
अवधू मांस भषंत दया धरम का नास! मद पीवंत तहां प्राण निरास।
और ऐसे भी लोग हैं जो जीवन के इस अमूल्य अवसर को बेहोशी में गंवा रहे हैं। और साधारण बेहोशी भी उन को काफी नहीं मालूम पड़ती; उन्हें शराब चाहिए।
ऐसे ही बेहोश हैं, लेकिन इस बेहोशी को और घना करने की कोशिश में लगे हैं।
होश जगाओ, कौन तुम्हारे भीतर बैठा है! होश में ही उससे पहचान होगी। ध्यान की तरफ चलो। थोड़ी जागृति की बेला आये। प्रभात हो। जागे तुम्हारे भीतर का सूरज। तुम रोशनी से भरो। उल्टे तुम बेहोशी की तरफ जा रहे हो।
लेकिन लोगों ने तरह-तरह की शराबें खोज ली हैं। शराब से इतना ही मत समझना कि जो शराबखाने में बिकती है। और भी सूक्ष्म शराबें हैं। वह तो सब से सस्ती शराब है जो शराबखाने में बिकती है; और मंहगी शराबें हैं--धन का मद है, पद का मद है।
देखते हो, एक आदमी पद पर पहुंच जाता है, तो उसकी चाल ही बदल जाती है, उसकी अकड़ ही बदल जाती है! उसके पैर जमीन पर नहीं पड़ते। शराबी तो लड़खड़ाता है, मगर तुमने पद के मद से भरे लोगों को देखा, कोई शराबी इतना नहीं लड़खड़ाता। पद में पहुंचते ही सारी बात बदल जाती है। धन पाते ही सारी बात बदल जाती है। ये सब नशे हैं। ज्ञान का भी नशा है, थोड़ा-सा ज्ञान हो जाये तो सिर भारी हो उठता है, फूल जाता है। त्याग का भी नशा है, थोड़ा-सा त्याग हो जाये तो उसकी भी अकड़ आ जाती है।
नशे का सार समझ लो। नशे का सार हैः जहां भी अहंकार अकड़ जाये वहीं नशा।
और जहां भी तुम होश खोकर काम करने लगो वहीं नशा। जहां तुम्हारे जीवन में मूर्च्छा और तंद्रा सघन होने लगे वहीं नशा।

एक तो ऐसे लोग हैं जो जागे भी जागे नहीं हैं। और इसी पृथ्वी पर ऐसे भी लोग हुए हैं जो सोये थे तो भी जागे थे। ये दो छोर हैं। चुन लो, जो तुम्हें चुनना हो। जो नींद को चुनेगा वह मौत के दरवाजे पर बहुत बुरी तरह तड़फेगा और रोयेगा, लेकिन तब कुछ किया नहीं जा सकता। अवसर बीत गया।
रवींद्रनाथ की एक कथा हैः एक भिक्षु सुबह-सुबह घर से निकला। और जैसे भिखारी अपनी झोली में थोड़े से दाने डाल लेते हैं घर से निकलते समय, उसने भी चावल के थोड़े दाने डाल लिये थे। क्योंकि झोली खाली हो तो कोई देता नहीं। झोली भरी हो तो लोगों को थोड़ा लाज-संकोच आता है। तुम्हारे द्वार पर भिक्षु दस्तक देता है और तुम देखते हो उसके पात्र में, उसकी झोली में कुछ है, तो तुम्हें ऐसा लगता है कि पड़ोसी ने दिया है, अब मैं न दूं तो जरा अहंकार को चोट लगती है। तुम दया के कारण तो भिक्षु को देते नहीं, अहंकार के कारण देते हो। तो सभी भिखारी अपने पात्र में थोड़े-से दाने, थोड़े पैसे, घर से डालकर चलते हैं। पैसा पैसे को खींचता है, दाना दाने को खींचता है।
उस भिखारी ने भी अपनी झोली में डाल लिये हैं कुछ चावल के दाने और चला, लेकिन चौंक गया। राह पर आया नहीं था कि राजा का रथ आकर रुका। उसके आनंद का तो पारावार न रहा। बहुत बार राजद्वार तक गया था, लेकिन पहरेदार भीतर ही न जाने देते थे। राजा के सामने झोली फैलाने का अवसर ही न मिला था। आज मिल गया अवसर। उसके आनंद का तो पारावार नहीं। वह तो भूल ही गया, ठगा ही खड़ा रह गया। तभी उतरा राजा और राजा ने अपनी झोली उस भिखारी के सामने कर दी। और भिखारी तो बहुत घबड़ा गया। देने की तो उसे आदत ही न थी, दिया तो उसने कभी था ही नहीं, मांगा ही मांगा था। और सम्राट ने कहा कि सुन भाई, माना कि तू भिखारी है और तुझसे मैं मांगूं, यह योग्य भी नहीं, लेकिन ज्योतिषियों ने कहा है कि राज्य पर बड़ा संकट है। संकट टल सकता है, अगर मैं आज निकलूं सुबह-सुबह सूरज के उगने के समय, जो भी व्यक्ति पहली बार रास्ते पर मुझे मिल जाये उसी से भीख मांग लूं, तो राज्य का संकट टल सकता है। ना मत कर देना। चार दाने भी देगा तो चलेगा। नाममात्र को कुछ भी दे दे। यह भी कैसी अड़चन हो गई कि मैं एक भिखमंगे के सामने पड़ गया हूं!
अब भिखमंगा खड़ा है हतप्रभ। सोचा था कि राजा से मांग लूंगा, सोने से भर जायेगी झोली, यह तो उल्टा हो गया, और पास के दाने भी चले। मुट्ठी भरता है और नहीं निकाल पाता झोली से। आदतें पुरानी हैं; लिया ही है, दिया तो कभी नहीं। बामुश्किल, बड़ी हिम्मत करके, एक दाना, सिर्फ एक दाना चावल का राजा की झोली में डाल दिया। पर औपचारिकता पूरी हो गई, राजा तो बैठा रथ पर, स्वर्ण-रथ जा भी चुका, धूल उड़ती राह पर रह गई और भिखारी के मन में पश्चात्ताप रह गया। कुछ मिलता, वह तो मिला नहीं; पास था कुछ, वह भी गया। गांठ का भी कुछ गया!
उस दिन उसे बहुत दान मिला, इतना कभी न मिला था। देनेवाले को मिलता है।
यह जगत चारों तरफ से बांटता है, अगर हम देने को तैयार हों। ज्यादा दिया नहीं था उसने, मगर जितना दिया था वह भी भिखारी के मन से बहुत था। साम्राज्य ही दे दिया था भिखारी ने। बहुत मिला, झोली भर गई, मगर चित्त में पश्चात्ताप था उस एक दाने का जो कम था। कहीं राजा न मिला होता तो एक दाना और ज्यादा होता।
हम ऐसे ही हैंः जो मिल जाता है उसके लिये धन्यवाद नहीं देते, जो नहीं मिलता उसके लिये शिकायत जरूर करते रहते हैं। तुम्हें कितना मिला है, तुमने कभी मंदिर में जाकर परमात्मा को धन्यवाद दिया है? नहीं, लेकिन जो नहीं मिला है, उसकी शिकायत तो हर घड़ी तुम्हारी श्वास-श्वास में भरी है। कहो या न कहो, तुम्हारे प्राण शिकायतों से भरे हैं। वह आदमी भी थका-मांदा लौटा और आकर झोली पटक दी। पत्नी ने कहाः उदास दिखते हो! इतनी झोली तो कभी न भरी थी। उसने कहा कि क्या खाक भरी, आज जैसा दुर्दिन कभी नहीं आया! सुबह ही सुबह, बोहनी ही बिगड़ गई। कभी मैंने दिया न था, आज देना पड़ा। खुद सम्राट मांगने खड़ा था। आज इस झोली में एक दाना कम है। आज चित्त मेरा पश्चात्ताप से भरा है।
पत्नी ने झोली उंडेली, दोनों चौंक कर खड़े रह गये! चावल के दाने गिरे ढेर, उसमें एक दाना सोने का था। एक ही दाना उसने दिया था, वही सोने का हो गया था। यह कथा प्यारी है। जो हम देते हैं वही सोने का हो जाता है, जो हम बचा लेते हैं वही मिट्टी हो जाता है। जीवन में जितना जो देता है उतना ही

उसका जीवन स्वर्णिम हो जाता है। मगर अब तो बहुत देर हो गई थी। अब तो बहुत पछताने लगा, छाती पीट-पीट कर भिखारी पछताने लगा कि काश मैंने पूरी मुट्ठी भर कर दे दी होती, तो सब दाने सोने के हो गये होते! मैं भी कैसा अभागा हूं! लेकिन अब तो अवसर बीत चुका था। यह जो कथा रवींद्रनाथ ने एक कविता में लिखी है, उसका शीर्षक हैः अवसर बीत गया!
जीवन के बीतने पर बहुतों के जीवन का शीर्षक यही होता हैः अवसर बीत गया!
मत ऐसा करना। तुम्हारी झोली सोने से भर सकती है; मगर दोगे तो भरेगी, बांटोगे तो भरेगी। जोड़ोगे तो मिट्टी ही हाथ रह जायेगी। और जो भी अहंकार से भरे हैं, वे जोड़ते हैं--धन जोड़ते, पद जोड़ते, प्रतिष्ठा जोड़ते, ज्ञान, त्याग, जो भी मिल जाये हर चीज को संपदा बना लेते हैं; हर चीज के ऊपर अकड़ कर, फन मारकर बैठ जाते हैं।
और फिर बहुत तरह के मद हैं--धन का मद है, पद का मद है, ज्ञान-मद है, त्याग-मद भी है। देखते हो त्यागी को अकड़ा हुआ! जहां अकड़ है वहां नशा है। जहां नशा है वहां आत्मज्ञान संभव नहीं।
इसलिये कहा है कि अहंकार हो तो आत्मज्ञान संभव नहीं, क्योंकि अहंकार
ही असली मदिरा है। अंगूरों से नहीं निकलती असली शराब, असली शराब तो अहंकार से निचुड़ती है। और घर-घर में लोगों ने भट्टियां खोल रखी हैं--अहंकार से शराब निचोड़ने की भट्टियां।
अवधू मांस भषंत दया धरम का नास। मद पीवंत तहां प्राण निरास।
और जो-जो भी मद से भरेंगे, उनके प्राण सिवाय निराशा के और कुछ भी न जानेंगे। उनके प्राणों में कभी सुबह न होगी, सदा रात ही रहेगी। वे निद्रा जानेंगे, तंद्रा जानेंगे, जागरण का उन्हें कभी कोई अनुभव न होगा। सूरज से उनका मिलन न होगा। उनके जीवन में कभी प्रभात न होगा, कभी प्रभाती के स्वर न गूंजेंगे।
भांगि भषंत ज्ञानं ध्यानं शोवंत।
और लोग हैं कि खोज में लगे हैं, ऐसी खोज में लगे हैं कि किसी तरह सस्ता ध्यान हो जाये। वेदों से लेकर अब तक आदमी ने बड़े सस्ते ध्यानों की खोजें की हैं। सोमरस से लेकर एल. एस. डी. तक आदमी की तलाश यह रही कि कोई रासायनिक तत्व मिल जाये, जिससे ध्यान लग जाये--कि गांजे की दम मार लें, कि भांग पीसकर पी जायें, कि एल. एस. डी. की टिकिया गटक लें, कि किसी रासायनिक द्रव्य का इंजेक्शन लगा लें। कोई ऐसी सस्ती तरकीब मिल जाये कि यात्रा बिना किये पूरी हो जाये। यह कोई नई खोज नहीं है, यह सदियों पुरानी खोज है। और आदमी ने इस तरह के बहुत-से रासायनिक द्रव्य खोज निकाले हैं, जिनके माध्यम से झूठे ध्यान का धोखा पैदा हो जाता है। जो ध्यान जैसे ही मालूम पड़ते हैं।
तुमने अगर भंग पी ली है तो तुम आकाश में उड़ते मालूम होने लगते हो; हो जमीन पर ही, मगर आकाश में उड़ते मालूम होने लगते हो। ध्यान में भी वैसी उड़ान होती है--बड़ी ऊंची उड़ान होती है! तुमने अगर एल. एस. डी. लिया तो सारा जगत तुम्हें ऐसा रंगीन मालूम होने लगता है जैसा कभी नहीं था। हरे वृक्ष खूब हरे मालूम होते हैं। गुलाब के फूल खूब गुलाबी मालूम होते हैं। पक्षियों की आवाजें अति मधुर हो जाती हैं। छोटे-छोटे रास्ते के किनारे पड़े हुए कंकड़-पत्थर हीरे-जवाहरातों जैसे चमकने लगते हैं। सारा अस्तित्व एक अपूर्व सौंदर्य से भर जाता है।
ऐसी ही घटना ध्यान में भी घटती है। मगर जो ध्यान में घटती है घटना, वह
तो थिर हो जाती है; और जो एल. एस. डी. से घटती है वह घड़ी-भर को है, और फिर गई। और जब जाती है तो बहुत अंधेरे में छोड़ जाती है। आंखें बिल्कुल फीकी हो जाती हैं। एल.एसड़ी. के प्रभाव में तो हर चीज रोशन मालूम होती है, पत्ते- पत्ते में रोशनी झरती मालूम पड़ती है।
सोमरस से लेकर एल.एसड़ी. तक आदमी ने जितने रासायनिक द्रव्य खोजे हैं-- गांजा है, भांग है, मारिजुआना है, और-और न मालूम क्या-क्या अलग-अलग देशों में अलग-अलग चीजें खोज ली हैं--इन सबके पीछे तलाश है इस बात की कि कोई शार्ट-कट, कोई सीधा-सा रास्ता, बिना श्रम किये, बिना साधना किये, परमात्मा के अनुभव का मिल जाये। जगत के सत्य को और सौंदर्य को हम देख लें, जान लें। रास्ते मिल भी गये हैं, मगर वे सब रास्ते झूठे हैं, और उनमें गंवाया गया

समय सिर्फ गंवाया गया समय है। तुम कल्पना-जाल में खो जाते हो। और छोटे- मोटे लोगों की बात छोड़ दो, बड़े-बड़े विचारशील लोग तक धोखे में आ जाते हैं। पश्चिम का बहुत बड़ा विचारक अल्डुअस हक्सले जब पहली दफा एल.एसड़ी. लिया,
तो एल.एसड़ी. के बाद उसने अपनी डायरी में लिखा कि अब मैं जानता हूं कि यही बुद्ध को हुआ, यही कबीर को हुआ। अल्डुअस हक्सले जैसा विचारशील आदमी, इस सदी के दो-चार इने-गिने विचारशील लोगों में एक, मगर उसको भी भ्रांति हो गई कि यही कबीर को हुआ था। क्योंकि कबीर ने भी खूब बात कही नः "अमी रस बरसे! खूब घनघोर आनंद के मेघ घिरे हैं और आनंद की वर्षा हो रही है! और भीतर दीयों पर दीये जले हैं, जैसे हजार-हजार सूरज एक साथ उगे हों!" ऐसा ही अल्डुअस हक्सले को हुआ एल.एसड़ी. के प्रभाव में--खूब अमृत की वर्षा होने लगी, दीये पर दीये जलने लगे! स्वभावतः लौटकर उसने प्रभाव से कहा कि अब मैं जानता हूं कि यही कबीर को हुआ था।
और उसने यह भी लिखा कि अब जैसे पुराने दिनों में आदमी बैलगाड़ी से चलता
था और सौ मील चलने के लिये कितना समय लग जाता था। और अब तो सौ मील ऐसे पहुंच जाते हो क्षण में हवाई जहाज से। जैसे बैलगाड़ी और हवाई जहाज का फर्क है ऐसा ही अल्डुअस हक्सले ने लिखा कि बुद्ध ने जो ध्यान की प्रक्रिया की वह बैलगाड़ी जैसी थी, छह साल लगे। महावीर की और भी पुरानी रही होगी बैलगाड़ी, बारह साल लगे। अब एल. एस. डी. हमें मिल गया है। अब यह जेट-युग की चीज है। अब इसकी तो जरा-सी, जरा-सी मात्रा, आंख से भी दिखाई न पड़े ऐसी जरा-सी मात्रा ले लेने से समाधि लग जाती है। तो हमने खोज लिया राज। और उसने लिखा कि जल्दी ही हम उस परम औषधि को खोज लेंगे जिसकी तलाश सदा से चलती रही है।
ऋग्वेद के स्मरण में उसने उस परम औषधि को सोमा नाम दिया। इस सदी के पूरे होते-होते उसकी आशा थी कि सोमा की खोज हो जायेगी। वैज्ञानिक इंजेक्शन निकाल लेंगे, जिसको जब चाहिये समाधि तब समाधि ले ले।
पर ऐसी समाधि दो कौड़ी की है। अल्डुअस हक्सले कितना ही बड़ा विचारक रहा
हो, समाधि और ध्यान के जगत का उसे कोई अनुभव नहीं था, इसलिये धोखा खा गया। शब्दों का तालमेल बैठ गया और उसने सोचा कि हो गई बात। शब्दों का तालमेल तो स्वप्न और यथार्थ में भी कभी-कभी बैठ जाता है। कभी तो तुम स्वप्न में भी ऐसे सौंदर्य का अनुभव कर लेते हो कि जाग कर सारा जगत फीका लगे, तो भी तुम यह तो नहीं कहते कि वह सत्य था। तुम जानते हो कि सपना आखिर सपना था। रासायनिक द्रव्यों से तो शरीर की भीतर की रासायनिक प्रक्रियाएं बदली
जा सकती हैं, लेकिन चेतना का आरोहण नहीं होता। चेतना पर तो रासायनिक द्रव्यों का कोई प्रभाव ही नहीं पड़ता। चेतना तो वही है जो रासायनिक द्रव्यों के पार है। उसे पाने के लिये तो कुछ और करना होगा।
भांगि भषंत ज्ञानं ध्यानं शोवंत।
और जो लोग रासायनिक द्रव्यों में पड़ गये हैं वे ध्यान खो देते हैं, ज्ञान खो देते हैं; और इस मजे में रहते हैं कि मिल गया, पा लिया। इस देश में हजारों साधु हैं--दम मारो दम... और यह कोई नई बात नहीं है इस देश में। इस देश में साधु और गांजा न पीये तो साधु ही क्या--सधुक्कड़ा! साधु तो वही है जो दिल भर कर पीये। असली साधु तो वही--जो पीता ही रहे! नब्बे प्रतिशत साधु इस देश के गांजा, भांग, अफीम, और न मालूम क्या-क्या। रासायनिक द्रव्यों में उलझे रहे हैं। और तुम इन्हें साधु की तरह पूजते भी रहे हो।
पश्चिम में तो यह रोग नया है। पूरब में तो यह रोग बड़ा प्राचीन है। पश्चिम को तो लोग गालियां देते हैं। अगर गोआ में जाकर हिप्पी आकर और मारीजुआना और एल. एस. डी. लेते हैं तो सारी भारतीय संस्कृति को धक्का लगता है। और तुम्हारे साधु-संन्यासी पांच हजार साल से यही कर रहे हैं और तुम्हारी संस्कृति को धक्का नहीं लगा! तुम्हारे साधुओं के अखाड़ों में हो क्या रहा है? मगर गांजा, भांग पीकर राम की धुन लगा दी उन्होंने, बस चित्त प्रसन्न हो गया। तुम भी प्रसन्न हुए कि देखो कैसे राम की धुन लगी है! गांजे के नशे में बकवास चल रही है; तुम समझ रहे हो राम की धुन लगी है। राम-राम जपने की आदत बन गई तो जब गांजा पी लेते हैं तब भी राम-राम जपने की आदत जारी रहती है, और जोर-जोर से जपने लगते हैं। और उछलने-कूदने लगते हैं। मगर यह कोई समाधि की अवस्थायें तो नहीं हैं।

समाधि की अवस्था तो बड़ी शांति की अवस्था है। उसमें नृत्य भी होता है
तो उस नृत्य में भी एक समता होती है, एक संतुलन होता है। उसमें गीत भी पैदा होते हैं तो सम स्वर होते हैं। समवेत होते हैं। उसके गीत भी ध्यान-आपूरित होते हैं। वह नृत्य भी कोई तांडव नृत्य नहीं होता। मगर लोगों ने तो अपने हिसाब से इंतजाम कर लिये हैं; खुद ही नहीं पीते, वे तो शिवजी तक को पिला रहे हैं! भंगेड़ी, गंजेड़ी, उनकी जमातें... वे सोचते हैं कि शिवजी से चल रही है यह परंपरा, कोई नई थोड़ी है। इसलिये बम भोले... ! भोले का स्मरण करते हैं, फिर दम लगती है।
धर्म के नाम पर चलता रहा तो किसी को कोई अड़चन नहीं है, तो हमने बिल्कुल स्वीकार कर लिया है। हम ऐसे अंधे हैं कि धर्म के नाम पर कुछ भी चलता हो तो हम स्वीकार कर लेते हैं, बस धर्म की आड़ होनी चाहिये। धर्म की आड़ हो तो सब ठीक है।
तुम्हारे देश के निन्यानबे प्रतिशत साधु साधु नहीं हैं, साधु कहे जाने के हकदार भी नहीं हैं। मगर उनकी पूजा चल रही है, तुम उनके पैरों पर गिर रहे हो। तुम कभी कुंभ के मेले में अपने साधुओं की जमातें तो जाकर देखो! तुम्हें देशभर के और सब दादा इत्यादि छोटे मालूम पड़ेंगे। इन्हीं की जमात इकट्ठी हो जाती है तो तुम इसको साधुओं की जमात कहते हो। चित्रकूट के घाट पर भई लुच्चन की भीर! मगर धर्म की आड़ है, तो तुम कहते होः संतन की भीड़ लगी है। आंखें खोलो। गोरख वही कह रहे हैं, नहीं तो फिर आखिरी घड़ी में बहुत पछताओगे।
जम दरवारी ते प्राणी रोवंत।
धोखे आसानी से हो जाते हैं। धोखे सस्ते होते हैं।

नागहां शोर हुआ
लो शबे-तार गुलामी की सहर आ पहुंची
उंगलियां जाग उठीं
बरबत-ओ-ताऊस ने अंगड़ाई ली
और मुतरब हथेली से शुआएं फूटीं
खिल गये साज में नग्मों के महकते हुए फूल लोग चिल्लाये कि फरियाद के दिन बीत गये राहजन हार गये
राहरव जीत गये
काफिले दूर थे मंजिल से बहुत दूर, मगर खुद-फरेबी की घनी छांव में दम लेने लगे चुन लिया राह के रोड़ों को, खजफ-रेजों को
और समझ बैठे कि बस लालो-जवाहर हैं यही
राहजन हंसने लगे छुप के कमींगाहों में
हमने आजुर्दगीए-शौक को मंजिल जाना
अपनी ही गर्द-सरे-राह को महमिल जाना
अब जिधर देखो उधर मौत ही मंडराती है।

धोखा खाना बड़ा आसान है। जरा-सी बात को तूल दे देना बहुत आसान है। झूठ
को सच के आवरण पहना देना बहुत आसान है।
काफिले दूर थे मंजिल से बहुत दूर, मगर
खुद-फरेबी की घनी छांव में दम लेने लगे
आदमी आत्मवंचक है।
खुद-फरेबी की घनी छांव में...
अपने को ही धोखा देने के लिये छांव बना लेता है। अपने ही धोखे में डूब जाता है।
चुन लिया राह के रोड़ों को, खजफ-रेजों को!
कंकड़-पत्थर बीन लेता है रास्ते के किनारे के--
और समझ बैठे कि बस लालो-जवाहर हैं यही।
राहजन हंसने लगे छुप के कमींगाहों में
हमने आजुर्दगीए-शौक को मंजिल जाना

अपनी ही गर्द-सरे-राह को महमिल जाना
अब जिधर देखो उधर मौत ही मंडराती है
जो व्यक्ति सत्य की खोज में निकला है, उसे बहुत सावधानियां बरतनी पड़ती हैं। सत्य के मार्ग पर बड़े धोखे हैं। सत्य के मार्ग पर बहुत पगडंडियां हैं, जो भटका ले जाती हैं। उनकी तरफ सचेत कर रहे हैं गोरख।
जीव क्या हतिये रे प्यंडधारी। मारिलै पंचभू मृगला।
चरै थारी बुधि बाड़ी। जोग का मूल है दया-दाण।।
जीव क्या हतिये रे प्यंडधारी!
तुम खुद ही जीव हो, तुम खुद ही शरीरधारी, क्यों दूसरे शरीरधारियों को सता रहे हो? तुम उन जैसे हो, वे तुम जैसे हैं। तुम जैसे असहाय, वे भी असहाय हैं। जरा सोचो, तुममें और उनमें भेद क्या है?
मारिलै पंचभू मृगला।
लेकिन लोग जाते हैं शिकार खेलने। आदमी को छोड़कर दुनिया में कोई जानवर शिकार नहीं खेलता। जानवर मारते हैं एक-दूसरे को, लेकिन तभी जब भूख लगी हो। भूख के लिये मारते हैं। और क्षमा के योग्य हैं, क्योंकि उन्हें कुछ और पता भी नहीं कि पेट कैसे भरें। वही उनका प्रकृतिगत भोजन है। लेकिन बिना भूख के कोई जानवर नहीं मारता। सिंह के पास खरगोश बैठा रहता है; अगर भूख न लगी हो सिंह को, तो कोई हर्जा नहीं, गुफ्तगू चलती है, बातचीत होती है। जंगल की बातें, अफवाहें, कहां क्या हो रहा है! भूख न लगी हो तो कोई अड़चन नहीं है। एक आदमी अकेला ऐसा है कि बिना भूख के मारता है, खिलवाड़ में मारता है। यह हद हो गई।
तुम जाते हो जंगल खिलवाड़ करने सिंह से, बंदूकें लेकर, मचानें बांधकर।
यह भी कोई खिलवाड़ है? और सिंह अगर तुम पर हमला मार दे तो यह दुर्घटना है, और तुम अगर उसे मार लो तो यह खेल है, मृगया है! और तुम सारे साज-सामान से जाते हो और सिंह निहत्था। और तुम दूर मचान पर बंदूकें लेकर बैठे हो और सिंह के पास कोई भी आयोजन नहीं सुरक्षा का, और यह खेल चल रहा है। थोड़ा विचारो। गोरख कहते हैंः अगर मारने का ही कुछ मजा है तो यह जो पंचभूतों से बनी हुई देह है, इसकी गुलामी को मार डालो, इसके मालिक बन जाओ। अगर कुछ खेल का ही मजा है, अगर कुछ वीरता ही सिद्ध करनी है तो इस देह को जीत लो।
मारिलै पंचभू मृगला। चरै थारी बुधि बाड़ी।
या उस मन को मारो जो तुम्हारे बुद्धि की बाड़ी को चरे जाता है। लेकिन न
तो मन को मारते, न तन को मारते; न तन को जीतते, न मन को जीतते। इनके तो तुम गुलाम बने हो और निरीह, असहाय पशुओं की हत्या करने चले जाते हो। लोग बैठे हैं, घंटों मछलियां मार रहे हैं। आदमी घंटों बैठकर मछलियां मारता रहता है, इतनी देर में तो मन मार लिया जाये! और जितनी एकाग्रता से लोग मछली मारते हैं... जरा देखो, लगाकर बंसी लटका कर जैसा बैठते हैं एकाग्र, दत्तचित्त होकर, इतने दत्तचित्त होकर अगर बैठ जायें तो मन को जीत लें, मन की मछली को मार लें। मगर मन की मछली को मारने में उत्सुकता किसकी है, ध्यान ही नहीं है। एक मछली मार लायेंगे तो बड़ी अकड़ से लौटेंगे, कंधे पर लटका कर उसको। मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन आया, मछलियों की दुकान पर खड़ा हुआ, बाहर से
ही कहा कि जरा तीन चार बड़ी-बड़ी मछलियां तौलकर मेरी तरफ फेंक दो। दुकानदार ने कहा, फेंक दो! क्या हाथ में नहीं ले सकते? उसने कहा कि नहीं, फेंक ही दो। बात असल ऐसी है कि तुम तो मुझे जानते हो कि मैं झूठ बोलना कभी पसंद नहीं करता, पत्नी से जाकर कहूंगा कि मछलियां पकड़ी हैं। तुम फेंकोगे तो मैं पकडूंगा। झूठ तो मैं बोल ही नहीं सकता। तो तुम जरा फेंक ही दो, ताकि मैं पकड़ लूं।
लोग बाजार से मछलियां खरीद लाते हैं--यह बताने को कि मछलियां मारकर लौटे हैं! मछली मारने वालों की बातें सुनी हैं कभी बैठकर, बड़ी लम्तड़ाम हो जाती हैं। दो मछलीमार बैठे बात कर रहे थे। एक ने कहाः आज तो हद हो गई, एक ऐसी मछली पकड़ी कि जिसके भीतर सिकंदर जिस पात्र से जल पीता था, वह पात्र निकला। दूसरे ने कहाः यह कुछ भी नहीं, मैंने आज एक मछली पकड़ी, जब उसको काटा तो नेपोलियन रात में जिस लालटेन को जला कर पढ़ता था, वह लालटेन निकली और जलती हुई! तो पहले ने कहा कि देखो भाई, ऐसा करो, मैं सिकंदर का पात्र वापिस

लिये लेता हूं, लेकिन तुम कम-से-कम लालटेन बुझा दो। छोड़ो, नहीं था सिकंदर का पात्र, मगर कम-से-कम लालटेन बुझा दो। यह तो हद हो गई!
पर लोग शिकार भी इसलिये कर रहे हैं कि वह भी अहंकार की दौड़ है। पशुओं
के सामने अपने को श्रेष्ठ करने की चेष्टा चल रही है। मछलियों के सामने! शर्म भी नहीं आती! श्रेष्ठ ही करना हो तो मनुष्यों के सामने अपने को श्रेष्ठ सिद्ध कर लो। और श्रेष्ठ होने का तो एक ही उपाय है, दूसरा तो कोई उपाय नहीं कि तुम मन के मालिक हो जाओ, कि तुम अपने तन के मालिक हो जाओ, कि तुम जान लो उसे जो मन और तन के पार है।
कथंत गोरख मुकति लै मानवा, मारिलै रे मन द्रोही।
एक ही है मुक्ति का द्वार, एक ही है परम स्वतंत्रता की उपलब्धिः
मारिलै रे मन द्रोही।
यह जो मन है, यह जो द्रोही मन है, इसे मार ले। द्रोही क्यों? मन नास्तिक है। समझना इसे। मन कभी आस्तिक होता ही नहीं। मन जीता ही "नहीं" पर है। मन का वातावरण "नहीं" है। "नहीं" मन का भोजन है। इसलिये मन "हां" कहने में बड़ा सकुचाता है, बड़ी अड़चन डालता है। अगर कभी कहना भी पड़े तो मजबूरी में "हां" कहता है। "ना" कहने में बड़ा प्रसन्न होता है। "ना" कहने में बड़ा आंदोलित, आनंदित होता है। तुम जरा जांच करना। जब भी तुम "नहीं" कहने में समर्थ हो जाते हो तब मजा आ जाता है, रस आ जाता है। ऐसी बातों में तुम "नहीं" कह देते हो जिनमें "नहीं" कहने का कोई कारण ही नहीं था। सोचना कि क्यों तुमने "नहीं" कही? छोटा बच्चा है मां से कह रहा कि बाहर खेल आऊं? नहीं! कोई कारण नहीं है "नहीं" कहने का। बाहर सूरज निकला है, स्वच्छ हवायें हैं, वृक्ष हैं, पक्षी गीत गा रहे हैं, "नहीं" कहने का कोई कारण नहीं है। लेकिन "नहीं" तत्काल आती है। नौकर तनखाह मांगता है कि आज तनखाह मिल जाये... कल ले लेना! जैसे कि आज देना असंभव है। नहीं, लेकिन अभी तो "नहीं" कहनी ही होगी। "नहीं" कहने से तुम्हें बल मिलता है। इसलिये छोटा-छोटा आदमी भी, छोटे- छोटे पद पर भी जो बैठा है, वह भी मौका पाकर "नहीं" कहने का मौका नहीं छोड़ता। चपरासी बैठा है दफ्तर के सामने, तुम पहुंचेः "साहब हैं?" वह कहता हैः "नहीं! फिर आना!" वह यह दिखलाना चाह रहा है कि समझा क्या है अपने को! होओगे लाट साहब अपने घर के, अभी लाट साहब मैं हूं! चपरासी भी ऐसे बोलता है। स्टेशन गये हो टिकिट खरीदने, टिकिट बांटनेवाला क्लर्क कुछ काम भी न हो तो भी रजिस्टर खोल कर उलटने-पलटने लगता है। वह यह कह रहा है कि खड़े रहो, ऐसे कई खड़े रहते हैं! ऐसे तुम जैसे आते ही रहते हैं। क्या समझ रखा है अपने-आप को? ये सब बातें कही जा रही हैं, जब वह बिना कहे चुपचाप अपना रजिस्टर पलट रहा है।
तुम खुद भी अपनी जांच करना, तुम भी यही करते हो। रास्ते पर खड़ा हुआ पुलिसवाला रोक देगा तुम्हें कि रुको, चाहे अभी रुकने का कारण हो या न हो, चाहे जरूरत हो चाहे जरूरत न हो।
तुम आदमी के जरा मन को पहचानो। मन जीता है "नहीं" पर; "नहीं" उसका पोषण है; नकार उसकी आत्मा है। इसलिये मन संदेह करता है, इंकार करता है, विरोध करता है।
गोरख ने उसे द्रोही कहा है। और वही तुम्हारे जीवन को धीरे-धीरे निषेध
से भर देता है। और जहां निषेध है वहां अंधकार है। जहां निषेध है वहां निराशा है। जहां निषेध है वहां मृत्यु के सिवाय कभी कुछ भी न घटेगा। विधेय में होती है सुबह। विधेय में प्रकाश का जन्म है। विधेय में ही परमात्मा का अनुभव है।
आस्तिकता का अर्थ होता हैः "हां" कहने की क्षमता। यह सवाल ईश्वर को ही "हां" कहने का नहीं है। ऐसा मत सोचना कि ईश्वर को "हां" कह दिया, अब सारी दुनिया को "ना" कहने के तुम हकदार हो गये। यह कोई आस्तिकता नहीं है। आस्तिक का अर्थ होता हैः "हां" जिसको सुगम हो गई; जिससे "हां" सरलता से बहती है; जिसे "ना" मुश्किल हो गई। नास्तिक का अर्थ हैः सौ में निन्यानबे मौके पर वह "नहीं" कहेगा। और अगर "हां" कहना भी पड़ेगा तो इस ढंग से कहेगा कि उसके "हां" में भी "नहीं" का स्वर होगा, "नहीं" का स्वाद होगा। और जब भी मौका मिल जायेगा तो वह "हां" को बदल कर "नहीं, कर देगा।

फिर आस्तिक कौन है? आस्तिक वह है जो सौ में निन्यानबे मौके पर "हां" कहेगा, सरलता से कहेगा, सुगमता से कहेगा, बेझिझक कहेगा, बिना नानुच कहेगा, बेशर्त कहेगा। और अगर सौवीं बार उसे "नहीं" कहनी भी पड़ी तो मजबूरी में कहेगा, क्षमा मांगते हुए कहेगा। और जैसे ही अवसर आ जायेगा "हां" में बदलने का, वह "नहीं" को "हां" में बदल लेगा। यह आस्तिक और नास्तिक की परिभाषा है। ईश्वर को मानना न मानना गौण है। आत्मा को मानना न मानना गौण है। अगर तुमने "हां" कहने की क्षमता जुटा ली, तुम आत्मा को भी जान लोगे। परमात्मा को भी जान लोगे। और अगर तुम "ना" कहने में कुशल होते गये, निष्णात होते गये, तो आत्मा-परमात्मा तो दूर, तुम जीवन को भी जानने से वंचित रह जाओगे। आकाश तारों से भरा रहेगा, लेकिन तुम्हारी आंखों में अंधेरा होगा। सुबह ऊगेगी लेकिन तुम अंधे रहोगे, क्योंकि "नहीं" की परतें आदमी को अंधा करती हैं। कोई "नहीं" में जी थोड़ी ही सकता है। "नहीं" का अर्थ ही होता है जो नहीं है, उसमें कैसे जीयोगे? और अधिक लोग नहीं में जीने की कोशिश कर रहे हैं, इसलिये उनका जीवन छिन्न-भिन्न है, खिन्न है, उदास है, रूखा-सूखा है, रस-विहीन है। उनका जीवन बस कामचलाऊ जीवन है; उसमें फूल नहीं खिलते; उसमें साज नहीं बजते; उसमें नृत्य नहीं होता; उसमें प्रेम नहीं पकता; उसमें प्रार्थना नहीं लगती। ये सब लगें कैसे? रसधार ही नहीं तो प्रार्थना के फल कैसे लगें? रस ही नहीं बहता, जड़ें रस ही नहीं लेतीं पृथ्वी से, तो फूल कैसे खिलें, नृत्य कैसे हो, गान कैसे हो?
जिस व्यक्ति के जीवन में "हां" आ जाती है उसके जीवन में काव्य आ जाता है। अब तुम फर्क समझना। "नहीं" है मन का स्वभाव और "हां" है हृदय का स्वभाव। इसलिये जो "हां" कहता है, वह धीरे-धीरे हृदय में सरक जाता है; और जो "नहीं" कहता है, वह धीरे-धीरे सिर में ही वास करने लगता है। "नहीं" है तर्क, "नहीं" है संदेह; "हां" है श्रद्धा, "हां" है भरोसा। और उस भरोसे में ही जीवन का प्रभात है।
कथंत गोरख मुकति लै मानवा... ।
अगर मुक्ति चाहिये हो, स्वातंष्य चाहिये हो, क्योंकि स्वतंत्रता तो सबसे बड़ी विधायकता है।
मारिलै मन द्रोही।
तो इस द्रोही मन को, नास्तिक मन को, नकार करनेवाले मन को जीत लो, मार लो।
जाके बप वरण मांस नहीं लोही।
और इसे मारने में कोई हिंसा नहीं होगी, क्योंकि न तो इसमें मांस है, न लहू है, न देह है। यह मन तो केवल एक धारणा है। इसको मारने में कोई हिंसा नहीं होगी। इसलिये गोरख कहते हैंः मारो! इसको मारने में कोई हर्जा नहीं है। क्योंकि कोई मरेगा नहीं। यह तो केवल तुम्हारी धारणा है, तुम्हारी भ्रांति है, तुम्हारी मान्यता है। छोड़ दोगे, गिर जायेगी। छोड़ दोगे, बिखर जायेगी। और इसके बिखरते ही तुम मुक्त हो जाओगे।
तुम उन जंजीरों में बंधे हो जो हैं नहीं। तुम उन कारागृहों में कैद हो, जो हैं नहीं; लेकिन तुमने मान रखे हैं, तुमने भरोसा कर लिया है। गुरजिएफ बहुत दिनों तक कजाकिस्तान में रहा। कजाकिस्तान में अब भी यह प्रक्रिया है। छोटे बच्चों को लेकर कजाकिस्तान की स्त्रियां जंगल में काम करने जाती हैं, खेत में काम करने जाती हैं, तो स्त्रियों को कुछ-न-कुछ उपाय करने पड़ते हैं बच्चों के लिये। उन्होंने एक बड़ी अदभुत प्रक्रिया खोज निकाली है, सदियों से वहां चल रही है और वह कारगर है। वे छोटे बच्चे को बिठा देती हैं और उसके चारों तरफ खड़िया से एक लकीर खींच देती हैं और उस बच्चे को कह देती हैं, इसके बाहर तू नहीं निकल सकेगा, कोई कभी नहीं निकल सका है। अब बचपन से ही यह बात कही जाती है और गांव भर के बच्चों को कही जाती है। सब बच्चे यह जानते हैं कि खड़िया की रेखा के बाहर नहीं निकला जा सकता। कोई बच्चा नहीं निकलता। निकल ही नहीं सकते, तो कैसे निकलोगे? ये सम्मोहित हो जाते हैं बच्चे। और बच्चों तक ही बात नहीं है, गुरजिएफ ने लिखा है कि तुम किसी बड़े आदमी के पास खड़िया खींच दो और वह नहीं निकलेगा। गुरजिएफ तो चौंका जब उसने देखा कि उसने कोशिश की लोगों को कि निकल आओ, हिम्मत दी कि आ जाओ, मत घबड़ाओ--वे निकलने की कोशिश भी करते हैं तो कोई अदृश्य दीवाल ठीक

लकीर के ऊपर खड़ी हुई उनको वापिस लौटा देती है। वे उससे आकर टकरा जाते हैं। कोई अदृश्य दीवाल, जो वहां है ही नहीं! गुरजिएफ मजे से भीतर-बाहर आ-जा रहा है। वे देख भी रहे हैं, मगर फिर भी उनके लिये है दीवाल।
तुमने कभी सम्मोहन का कोई खेल देखा? सम्मोहन करनेवाला जो भी कह देता
है सम्मोहित व्यक्ति को, वह वैसा ही व्यवहार करने लगता है। तुम्हारा मन एक तरह का सम्मोहन है। और तुम हंसना मत कि ये कजाकिस्तान के लोग नासमझ हैं; तुम्हारी भी हालत वही है। अगर गीता को पैर लग जाये तो जल्दी से नमस्कार करते हो। बचपन से कहा गया है कि गीता को पैर लग जाये, पाप हो जायेगा। मुसलमान का लग जाता है, उसे कोई फिक्र नहीं होती, मजा आ जाता है कि एक पुण्य का कृत्य हुआ! तुम्हारा कुरान से पैर लग जाये, तुम्हें भी कोई अड़चन नहीं होती। तुम मंदिर के सामने से निकलते हो, तुम्हारे हाथ अपने-आप जुड़ जाते हैं, जोड़ने नहीं पड़ते, यंत्रवत। मस्जिद के सामने तुम्हें याद ही नहीं आती कि मस्जिद थी और हाथ जोड़ने थे। ये सब सम्मोहित प्रक्रियायें हैं। ये तुम्हारे भीतर बैठ गई हैं।
मन एक तरह का सम्मोहन है; है नहीं, बस भरोसे में है। मान लिया है तो है, छोड़ दोगे तो गिर जायेगा। हत्या नहीं होगी कुछ, इसलिये कहते हैं गोरख कि ऐसा मत सोच लेना कि मैं मारने-धारने की बातें कर रहा हूं। इसमें न मांस है, न खून है, न जीवन है, एक थोथी धारणा है। और दुनिया में अलग-अलग तरह के मन हैं। जितनी जातियां हैं, जितनी संस्कृतियां हैं, जितने समाज हैं, अलग-अलग तरह का मन पैदा करते हैं। फिर जैसा मन पैदा हो जाता है, वह उसी के अनुसार चलता है; उससे भिन्न चलने में अड़चन हो जाती है। उससे भिन्न का भरोसा ही नहीं आता कि मैं चल सकता हूं।
तुम अपनी ही जांच करना और तुम पाओगे कि तुम्हारा मन समाज के द्वारा दिया गया एक संस्कार है, और कुछ भी नहीं। तुम जिस दिन समझोगे उसी दिन गिरा सकते हो।
पावड़ियां पग फिलसै अवधू, लोहै छीजंत काया।
और कहते हैं गोरख कि ऊपर के वेश इत्यादि बदल लेने से कुछ भी न होगा, क्योंकि हमने खड़ाऊं से भी पैर फिसलते देखा है। बड़ी प्यारी बात कहते हैंः पावड़ियां पग फिलसै अवधू!
खड़ाऊं तक से पैर फिसल जाते हैं, हमने देखा है। खड़ाऊं यानी साधु- संन्यासी बजाते फिरते हैं न खड़ाऊं! खड़ाऊं से भी पैर को फिसलते देखा है। खड़ाऊं नहीं बचा सकती, भीतर का बोध ही बचा सकता है। ऊपर के उपचार, ऊपर के क्रियाकांड नहीं बचा सकते; केवल अंतर की ज्योति ही बचा सकती है।
पावड़ियां पग फिलसै अवधू, लोहै छीजंत काया।
और तुम शरीर को कितना ही सम्हाल लो--योग, तप, व्यायाम--लोहे जैसा बना लो शरीर को, तो भी छीज ही जायेगा एक दिन, देर-अबेर।
लोहै छीजंत काया।
हमने तो लोहे जैसे शरीर को भी छीजते देखा है, मरते देखा है। इसलिये इस
पर व्यर्थ समय खराब मत करो। सुंदर से सुंदर देह भी सड़ जायेगी। सबल से सबल देह भी गल जायेगी।
और तुम हैरान होओगे यह जानकर कि जितनी सबल देह बनाने की कोशिश की जाती है, उतनी बुरी तरह गलती है, क्योंकि जबर्दस्ती हो जाती है। गामा के पास सबल देह थी, और क्या देह चाहिये, लेकिन सड़-सड़कर मरा गामा। क्षय-रोग से मरा। जरूरत से ज्यादा शरीर को बांधने की कोशिश की, अनाचार हो गया। दुनिया के पहलवान अक्सर बुरी तरह से मरते हैं, बुरी बीमारियों से मरते हैं। अस्वाभाविक चेष्टा का परिणाम बुरा होता है। तुम सोचते हो, पहलवानों की देह स्वाभाविक है? नहीं, जरा भी स्वाभाविक नहीं है। वे जो मसलें उठती हुई दिखाई पड़ती हैं, वे स्वाभाविक नहीं हैं, चेष्टागत हैं, हजार-हजार दंड-बैठक रोज लगा-लगा कर के, जबर्दस्ती कर-करके मसलों को उभारा गया है। उनके उभारने में ऊपर से तो बड़ी ताकत मालूम होने लगी, लेकिन भीतर सब खोखा हो गया है। यह स्वाभाविक नहीं है प्रक्रिया।
गोरख कहते हैं कि लोहै छीजंत काया... हमने तो ऐसे लोगों की देह को भी आखिर छीजते देखा, जो लोहे जैसे मालूम पड़ते थे। इसलिये व्यर्थ की चेष्टाओं में मत लगो। योगी लग जाते हैं इस तरह की चेष्टाओं में--कि काया को पवित्र

करें, काया को दृढ़ करें, काया को मजबूत करें, काया को ऐसा करें वैसा करें। काया में ही उलझ जाते हैं। काया की माया के ऊपर उठ ही नहीं पाते। साक्षी तक पहुंचने का तो सवाल ही नहीं। घर की सफाई में ही लग गये, मालिक की तो याद ही भूल गई। और घर तो सभी गिर जायेंगे, झोपड़े भी गिरते हैं और महल भी गिर जाते हैं।
पावड़ियां पग फिलसै अवधू... ।
बड़ा प्यारा प्रतीक लिया है कि खड़ाऊं से भी पैर फिसलते देखे हैं। हम सब जानते हैं, खड़ाऊं से भी पैर फिसल जाते हैं। सच तो यह है खड़ाऊं से जितने जल्दी फिसलते हैं, और किसी चीज से नहीं फिसलते। खड़ाऊं पर चलकर देखना जरा। खड़ाऊं से और जल्दी फिसल जाते हैं। क्यों? क्योंकि खड़ाऊं एक अस्वाभाविक चीज है। पकड़-पकड़ कर चलना होता है। अंगुलियों के बल पर ही खड़ाऊं को सम्हालना होता है, वजनी भी होती है, लकड़ी की भी होती है।
औपचारिक रूप से जो लोग जीते हैं, ऊपर-ऊपर का आडंबर करके जो जीते हैं, उनके गिर जाने की संभावना बहुत ज्यादा है। इससे तो सीधे-सादे सरल लोग अच्छे हैं। उनके गिरने का डर नहीं है। वे खड़ाऊं पर चलते ही नहीं हैं। उनके गिरने का डर नहीं है, क्योंकि वे कोई धोखा और पाखंड करते ही नहीं हैं; वे तो सीधे-साफ हैं। प्रकृति के अनुकूल चलते हैं तो गिरने का कोई डर नहीं है। गोरख सहज-योग के पक्षपाती हैं। वे कहते हैंः जहां तक बन सके प्रकृति
के अनुकूल ही परमात्मा को साधना, प्रतिकूल साधने की कोशिश कठिनाइयों में ले जायेगी। सम्यक आहार करना, न कम न ज्यादा, तो फिसलोगे नहीं। कुछ हैं जो कम आहार करते हैं, कुछ हैं जो ज्यादा आहार करते हैं; दोनों के फिसलने का डर है। जो कम आहार करता है वह भी चौबीस घंटे आहार की सोचता रहेगा और जिसने ज्यादा कर लिया है, वह चौबीस घंटे ज्यादा करने के कारण पीड़ित, बोझिल रहेगा। जिसने कम किया है उसके भीतर बेचैनी रहेगी, क्योंकि भूख कायम है, भूख मांग करेगी और जिसने ज्यादा कर लिया है, वह बोझिल हो गया है, उस पर तंद्रा छा जायेगी, मूर्च्छा छा जायेगी, उसे ध्यान मुश्किल हो जायेगा। दोनों के लिये ध्यान मुश्किल है। जो भूखा ध्यान करने बैठा है, उसे भूख
की याद आयेगी। भूखे भजन न होई गुपाला! और जो ज्यादा भोजन करके बैठ गया है, उसको नींद आयेगी। क्योंकि जैसे ही ज्यादा भोजन कर लिया, शरीर कहता है कि अब विश्राम करो ताकि पचा सको, सब काम बंद करो, अब सारी शक्ति पचाने में ही लगानी जरूरी है। इसीलिये तो भोजन करने के बाद एकदम नींद आने लगती है। ज्यादा कर लोगे तो उसका अर्थ इतना हुआ कि अब पेट कहता है, अब सारी शक्ति पचाने में लगानी है। बुद्धि से भी पेट अपनी शक्ति को वापिस ले लेता है। इसलिये नींद आती है। नींद का वैज्ञानिक कारण यही है भोजन के बाद, कि जो शक्ति बुद्धि में काम करती है, मस्तिष्क को जगाकर रखती है, पेट उसको भी वापिस बुला लेता है, क्योंकि संकटकाल की स्थिति पैदा कर दी तुमने। अब कहीं भी शक्ति जा नहीं सकती, पेट में ही होनी चाहिये तभी पच सकेगा। नहीं तो पचेगा नहीं, तो बोझ हो जायेगा, शरीर पर जहर हो जायेगा। और जब मस्तिष्क की शक्ति पेट में चली जाती है तो तुम्हें नींद आने लगती है। नींद का और कोई मतलब नहीं होता। इसलिये उपवास करोगे तो रात नींद नहीं आयेगी, क्योंकि जब उपवास किया तो पेट को शक्ति की जरूरत ही नहीं है पचाने के लिये। तो शक्ति लौट-लौट कर मस्तिष्क में चली जायेगी, रात-भर तुम्हें जगाये रखेगी।
सम्यक आहार चाहिये, न कम न ज्यादा। सम्यक व्यायाम चाहिये, न कम न ज्यादा। सारी चीजें सम्यक चाहिये। सम्यक शब्द को स्मरण रखना, क्योंकि वह सहज-योग की आधारशिला है।
पावड़ियां पग फिलसै अवधू, लोहै छीजंत काया।
नागा मूनी दूधाधारी, एता जोग न पाया।।
गोरख कहते हैंः तुमसे स्पष्ट कहे देता हूं कि नग्न रहने से किसी ने कभी परमात्मा नहीं पा लिया है। नग्न तो सारी प्रकृति है, तुम भी नग्न हो जाओगे तो क्या होगा? मौन रहने से किसी ने परमात्मा नहीं पा लिया है। मौन तो पत्थर भी हैं, पहाड़ भी हैं, वृक्ष भी हैं। मौन रहने से कोई परमात्मा को नहीं पा लिया है।
नागा मूनी दूधाधारी... ।

और तुम दूध ही दूध पी कर रहोगे तो भी परमात्मा को नहीं पा लोगे, क्योंकि सभी बच्चे दूध ही पी कर रहते हैं, कोई परमात्मा को नहीं पा लेता। इसका यह अर्थ मत समझ लेना कि गोरख कह रहे हैं कि मौन अच्छा नहीं है, कि गोरख कह रहे हैं कि नग्नता में कोई पाप है।
नहीं, गोरख इतना ही कह रहे हैं कि नग्न रहने में तुम्हें सुखद मालूम पड़ता हो, प्रीतिकर लगता हो, स्वाभाविक लगता हो, मजे से रहना; मगर यह मत सोच लेना कि नग्न रहने से ही कोई परमात्मा को पा लेता है। कपड़े पहने-पहने भी परमात्मा पाया जाता है। परमात्मा और आदमी के बीच कपड़े बाधा नहीं हैं--बाधा मन है। इसलिये कपड़ों को गिरा कर यह मत सोच लेना कि हो गया काम पूरा। दिगंबर जैन मुनि यही कर लेते हैं। सारी जिंदगी का अभ्यास यही होता है। पांच सीढ़ियां पार करते हैं। एक-एक सीढ़ी के पार करने में दो-दो, तीन-तीन, चार-चार साल लग जाते हैं। पांचवीं सीढ़ी पर जाकर नग्न हो पाते हैं। पंद्रह-बीस साल की लंबी चेष्टा और कुल परिणाम इतना कि नग्न हो गये। इससे कुछ मिल न जायेगा। तुम जरा जैन दिगंबर मुनि को देखना। उसके चेहरे पर तुम कोई प्रतिभा की आभा न पाओगे, आनंद का अहोभाव न पाओगे। सब सूखा-सूखा, सब रूखा- रूखा... जैसे कोई वृक्ष सूख गया हो, जिसमें अब पत्ते नहीं लगते, फूल भी नहीं आते, जिस पर अब पक्षी भी अपना नीड़ नहीं बनाते। लेकिन जो मानते हैं जैन मुनि को, वे तो कहेंगेः अहा, कैसा वैराग्य! अपूर्व वैराग्य!
हमारी मान्यतायें ऐसी हैं कि अगर हमारे चित्त में धारणायें बैठी हों
तो हम उन्हीं धारणाओं के अनुसार देखते हैं। तुम जा कर देखोगे तो तुम्हें कुछ भी न दिखाई पड़ेगा कि कौन-सा आनंद है, कौन-सा परमात्मा का अनुभव हुआ, कौन-सी समाधि है। न तो कोई समाधि का संगीत बजता सुनाई पड़ता है... । यह आदमी बिल्कुल मुर्दे जैसा हो गया है। लेकिन जो मानते हैं वे कुछ और कहेंगे। उनका देखने का ढंग, उनकी आंख पर एक चश्मा है। सबकी आंखों पर चश्मे हैं। और चश्मे उतारने जरूरी हैं। और जो सब चश्मे उतार देता है वही मन से मुक्त होता है। मन सारे चश्मों का नाम है--हिंदू चश्मा, मुसलमान चश्मा, जैन चश्मा। चश्मे ही चश्मे हैं। और जब आंख नग्न हो जाती है, स्वच्छ होकर देखती है, बिना किसी चश्मे के, तो वह दिखाई पड़ता है, जो है।
नग्न होने का कोई विरोध नहीं है गोरख को, न मौन होने से कोई विरोध है। इतना ही कह रहे हैं कि इसी को सब मत समझ लेना, क्योंकि कोई आदमी मौन तो हो सकता है और भीतर सारा पागलपन चल रहा है। ऊपर से मौन बैठ गये। सच तो यह है कि ऊपर से मौन बैठ जाओगे तो जो-जो कह कर निकाल लेते थे वह भी भीतर-भीतर घूमेगा, निकलने की भी जगह न रही, निकास भी न रहा। जैसे घर की नाली थी, उसको भी बंद कर दिया, उसमें से कुछ बाहर निकल जाता था कूड़ा-कचरा, अब वह भी बाहर नहीं जाता, वह भीतर ही भीतर घूमेगा। बातचीत करके इसीलिये तो लोग हलका अनुभव करते हैं। मिल बैठे दो यार, जरा बातें हो गईं, कुछ तुमने कहीं कुछ उनने कहीं, कुछ तुमने सुनीं कुछ उनने सुनीं, दोनों हलके होकर घर आते हैं। कहते हैंः जरा मित्र मिल गया, बड़ा आनंद आ गया। आनंद कुछ भी नहीं आया; कुछ कचरा तुमने उसमें डाला, कुछ कचरा उसने तुम में डाला। तुम भी हल्के हुए कुछ, वह भी हल्का हुआ कुछ। फिर नया कचरा पुराने से बेहतर लगता है। जैसे आदमी मरघट ले जाता है न किसी को कंधे पर रखकर, तो रास्ते में कंधे बदल लेते हैं। इस कंधे से अर्थी हटा ली, उस कंधे पर रख ली। अर्थी का वजन तो वही है, लेकिन नये कंधे पर थोड़ा कम मालूम पड़ता है। फिर थक जायेंगे तो फिर दूसरे कंधे पर रख लेंगे। ऐसे तुम कचरे का लेन-देन करते रहते हो। नया कचरा थोड़ा अच्छा लगता है-- अपरिचित है। पुराने कचरे से तुम ऊब गये थे; किसी की खोपड़ी में डाल देना चाहते थे।
जो आदमी मौन होकर बैठ गया, उसकी मुसीबत समझो। अब सारा कचरा उसी के भीतर घूमेगा। ऊपर से तो मौन, भीतर विक्षिप्त होने लगेगा। मौन पर्याप्त नहीं है, पहले ध्यान। ध्यान का अर्थ होता हैः भीतर अब शांति आ गई। अब भीतर कुछ है ही नहीं। फिर तुम अगर मौन रहो तो उस मौन में एक सौंदर्य होगा। और ऐसा ही नग्नता के संबंध में भी समझना। भीतर तुम निर्मल हो गये, छोटे बच्चे की भांति हो गये। फिर तुम नग्न हो गये तो उस नग्नता में सौंदर्य होगा। अपूर्व सौंदर्य होगा, निर्दोषता होगी।
हिरदा का भाव हाथ में जाणिये, यह कलि आई शोटी।

यह जमाना बुरा आया है। अब तो एक ही उपाय है कि जो तुम्हारे हृदय में हो उसको तुम्हारे आचरण में बहने दो। अब वे दिन गये, जब लोग सूक्ष्म में जीते थे। अब तो स्थूल में बताना होगा। यह स्थूल युग आया। यह कलि आई शोटी! यह जमाना स्थूल का है। लोग शरीर को मानते हैं, आत्मा को तो मानते ही कहां? लोग संसार को मानते हैं, परमात्मा को तो मानते ही कहां? लोग तो पत्थर को मानते हैं, प्रेम को मानते ही कहां? यह जमाना तो खोटा आया। यहां तो लोग जिसका दर्शन हो सके, स्पर्श हो सके, इंद्रियों से पकड़ में आ सके, उसको मानते हैं। तो अब तुम्हें धर्म को भी इस योग्य लाना होगा।
हिरदा का भाव हाथ में जाणिये... ।
इसलिये अब हृदय में ही रखने की बात नहीं है, इसे अपने हाथ में लाना होगा। अगर हृदय में प्रेम है तो हाथ से प्रेम बांटना होगा। अगर हृदय में देने का भाव है तो हाथ से देना होगा। अगर हृदय में सेवा है तो हाथ से करनी होगी। अब हृदय से ही काम पूरा न हो पायेगा। अब तुम जो सोचते हो, जो भीतर जीते हो, उसे बाहर भी अभिव्यक्ति देनी होगी। यह जगत तो अब आचरण को ही पकड़ सकेगा। अब यह हृदय के भाव न पकड़ सकेगा।
पुराने दिन और थे। गोरख बड़ी ठीक बात कह रहे हैं।
बुद्ध बैठ गये बोधिवृक्ष के नीचे और हम सबने पहचान लिया था। जो पहचान सकते थे, उन्होंने पहचान लिया था। उस सन्नाटे में, उस चुप्पी में भी बुद्ध को पहचान लिया था। हृदय का भाव हृदय में ही रहा था, बाहर नहीं आया था, हाथ में प्रगट नहीं हुआ था। बुद्ध ने करुणा बरसाई, मगर वह हृदय की थी; अस्पताल नहीं खोले, नहीं तो हाथ की हो जाती। प्याऊयें नहीं खोलीं, नहीं तो हाथ की हो जाती। बीमारों के हाथ-पैर नहीं दबाये, नहीं तो हाथ की हो जाती।
इस अर्थ में जीसस ज्यादा कलियुग के करीब हैं; जो हृदय का था उसे हाथ में लाये। अंधों को आंखें दीं, कि लंगड़ों को पैर दिये, कि बीमारों की सेवा की। अगर इस दुनिया में ईसाइयत का प्रभाव बढ़ता जाता है तो इसका और कुछ कारण नहीं है; उसका कारण यह है कि ईसाइयत के पास स्थूल की पकड़ है। और जो पुराने धर्म हैं--हिंदू हैं, जैन हैं, बौद्ध हैं--इनकी पकड़ अभी स्थूल पर नहीं है। इनकी पकड़ अभी भी सूक्ष्म पर है। ये पुराने दिनों की बातें कर रहे हैं। ये सतयुग की बातें कर रहे हैं। मगर यह कलि आई शोटी! अब जमाना और है। जो चीज तुल सकती है तराजू पर, वही मानी जायेगी।
हिंदू बहुत परेशान रहते हैं कि लोग ईसाई क्यों बनाये जा रहे हैं, लोगों को रिश्वत दी जा रही है, लोगों को ईसाई बनाया जा रहा है। यह सब बकवास है। कोई किसी को जबर्दस्ती ईसाई नहीं बना रहा है। लेकिन ईसाइयत इस युग के बड़े अनुकूल मालूम पड़ती है। गरीब को लगता है कि कुछ सहारा मिला। बुद्ध ध्यान की बात करते हैं, गरीब को ध्यान से कुछ लेना-देना नहीं है। गरीब कहता हैः ध्यान की बात पीछे, भोजन कहां है? ईसाई मिशनरी आता है, वह पहले भोजन की बात करता है। ध्यान की तो वह कभी बात करता ही नहीं, वहां सिर्फ भोजन ही भोजन है; अस्पताल खोल देता है, स्कूल खोल देता है, कारखाना लगा देता है, अच्छे कपड़े लोगों को मिल जाते हैं, नौकरी मिल जाती है, शिक्षा मिल जाती है। लोगों को लगता है कि यह बात ठीक है, यह धर्म की बात हो रही है।
ईसाइयत बढ़ती चली गई है। आज दुनिया में एक तिहाई ईसाई हैं। सारे धर्मों पर छाती चली गई है। और उसका कुल कारण इतना है कि इस देश के धर्म सतयुग की भाषा ही बोले चले जाते हैं। अभी भी हम कहते हैं कि साधु की सेवा करो और ईसाई कहता है कि साधु वह जो सेवा करे। इन दोनों का फर्क समझ लो। साधु आ जाये, हम सब उसके पैर दबाने जाते हैं। जैन तो कहते ही हैं, अगर उनसे पूछो, कहां जा रहे हो, वे कहते हैंः साधु महाराज की सेवा करने जा रहे हैं! यह तो हम सोच ही नहीं सकते कि साधु और हमारी सेवा करे। साधु अगर तुम्हारे पैर दबाने लगे, तुम एकदम उचक कर खड़े हो जाओगे, तुम कहोगेः यह क्या करते महाराज! नरक भिजवाओगे? आप और मेरा पैर दबाते हैं! मुझसे कोई कसूर हुआ? आप नाराज हैं? पैर मैं दबाऊंगा।
मगर ये बातें बदल गई हैं। यह भाषा सतयुग की है, जब साधु के पैर दबाये जाते थे, क्योंकि तब लोगों के पास आंखें भी थीं कि सूक्ष्म को देख सकें; हृदय प्रगट था, पारदर्शी था। अब हालत ऐसी नहीं है। गोरख के जमाने में भी न रही होगी। तब तो गोरख कहते हैं--

हिरदा का भाव हाथ में जाणिये, यह कलि आई शोटी।
बदंत गोरख सुणौ रे अवधू, करवै होइ सु निकसै टोटी।।
अब तो प्रमाण देना होगा। जैसे कि हम नल खोलते हैं न, तो टोंटी में से पानी निकलता है; अंदर हो तो ही निकलता है, अंदर न हो तो अकेले टोंटी खोलने से कुछ नहीं होता।
मैंने सुना है, लारेंस ने अरब के लोगों की बड़ी सेवा की। लारेंस एक अदभुत आदमी था। उसने जितनी अरब-जाति को उठाने की कोशिश की, किसी दूसरे आदमी ने नहीं की। वह कुछ अरबी लोगों को लेकर विश्व-प्रदर्शनी होती थी पेरिस में, तो गया दिखाने। बड़ी होटल में उनको ठहराया। मगर वह बड़ा हैरान हुआ, उनको किसी और चीज में मजा ही नहीं था, वे तो एकदम बाथरूम में घुस जायें। अरब के निवासी, पानी की मुश्किल, वर्षों पानी न मिले, ऐसी हालत। नहाना-धोना कहां, और यहां एकदम टोंटी खोलो कि बस फव्वारा जारी... पानी- पानी, पानी-पानी... । जैसे ही वे... प्रदर्शनी में एक-से-एक चीजें थीं, मगर वे अरब कहें कि बस अब चलो होटल वापिस। और जैसे ही वे होटल में आयें कि वे गये बाथरूम में और जो घुसें तो निकलें ही न। लारेंस ने कहा कि ठीक है, करने दो, इनको नहा लेने दो, मजा कर लेने दो जितना पानी का करना है, बेचारों को पानी की तकलीफ है।
आखिरी दिन बड़ा अजीब मामला हुआ। सब सामान तो रख दिया गया कारों में। लारेंस जाकर बैठ गया, रास्ता देख रहा, मगर वे सब नदारद। उसने आदमी भिजवाये। कहा कि भई जाकर देखो, वे बाथरूम में होंगे। आखिरी सोच रहे होंगे, एक दफे और। वहां गये तो बड़ी हैरानी हुई, वे सब टोंटियां निकाल रहे थे। लारेंस ने पूछाः यह तुम क्या कर रहे हो? उन्होंने कहाः ये टोंटियां तो
हम घर ले जायेंगे। ये टोटियां बड़ी गजब की हैं! जहां दिल चाहो, खोलो, बस पानी ही पानी!
उन गरीब अरबों को क्या पता कि टोंटियों के पीछे बड़ा जाल है। टोंटियां दिखाई पड़ रही हैं; उनके अंदर पीछे और पाइप लगे हैं, और पाइप दूर सरोवरों से जुड़े हैं, इस सबका उनको क्या पता? वे तो समझे कि यह टोंटी का ही मजा है, यह टोंटी बड़ी जादू की है! खोलकर अपने खीसे में रख लो, छोटी-सी टोंटी, किसको पता चलेगा? वे बड़ी कोशिश कर रहे थे कि किसी तरह टोंटी खुल जाये, वह खुल भी नहीं रही थी, इसलिये देर भी लग रही थी।
गोरख कहते हैं कि टोंटी खोलोगे तो वही निकलता है जो भीतर है। तुम्हारे हाथ प्रमाण होने चाहिये तुम्हारे हृदय के।
कोई बादी कोई विवादी, जोगी कौं बाद न करनां।
वे कहते हैंः पक्ष-विपक्ष में मत पड़ना। यह ठीक वह ठीक, इस झंझट में मत पड़ना। क्योंकि बिना जाने ठीक तय होता ही नहीं। ईश्वर है या नहीं, इस बात में भी मत पड़ना। ऐसा है वैसा है, इस विवाद में भी मत पड़ना। क्योंकि उस विवाद में जितना समय गया व्यर्थ ही गया।
अठसठि तीरथि समंदि समावै... !
और जैसे सारे तीर्थ अंततः समुद्र में ही गिर जाते हैं--गंगा हो कि यमुना हो कि सरस्वती हो, कि गोदावरी हो कि नर्मदा हो; जैसे सारे तीर्थों को बनाने वाली नदियां अंततः जाकर समुद्र में गिर जाती हैं--
यूं जोगी को गुरुमुषि जरनां।
ऐसे गुरु के मुंह से जो झर रहा है बस उसको योगी पी ले, पर्याप्त है। उसे वाद-विवाद में पड़ने की कोई जरूरत नहीं है। जैसे सारे तीर्थ समुद्र में गिर जाते हैं, ऐसे ही सारे तीर्थ गुरु की वाणी में गिर रहे हैं। गुरु को खोज लिया, फिर कोई चिंता वाद-विवाद की नहीं करनी चाहिये। फिर रसलिप्त, फिर रसविमुग्ध, फिर उसके साथ एक ताल में आबद्ध हो जाना चाहिये।
अवधू मन चंगा तौ कठौती ही गंगा!
और सारी बात मन के चंगे होने की है, आनंदमग्न होने की है, फिर तुम्हें गंगा जाने की जरूरत नहीं, तुम्हारे घर की कठौती में ही गंगा है।
अवधू मन चंगा तौ कठौती ही गंगा। बांध्या मेला तो जगत्र चेला।
और एक दफा बंधन से छूट जाये तुम्हारा मन तो सारा जगत तुम्हारा चेला हो जाये। तुम एक बार मुक्त हो जाओ। तुम मत फिरो इस फिक्र में कि इसको समझायें, उसको समझायें; इससे विवाद करें, उससे विवाद करें; इसको जीतें, उसको अपने

पक्ष में लायें। इस सब में समय खराब मत करो। तुम मन से मुक्त हो जाओगे तो सारा जगत तुम्हारा चेला हो जायेगा। फिर जिन्हें भी सत्य की चाह है, वे अपने से खिंचे चले आयेंगे, तुम्हें बुलाने भी उनके घर जाना न होगा। वे तुम्हें खोजते चले आयेंगे।
बदंत गोरख सति सरूप। तत विचारै ते रेख न रूप।
और गोरख कहते हैं कि जिसकी न कोई रेखा है, न कोई रूप है, न कोई परिभाषा है, उसका तुम विचार कैसे करोगे? उसका तो अनुभव ही हो सकता है।
गुरु में डूबो। जिसने जाना है उससे जुड़ो। जिसने पहचाना है उसमें डुबकी मारो। जो स्वयं भी अपरिभाष्य हो गया है, उसका स्वाद लो।
यहु मन सकती यहु मन सीव।
यही मन शक्ति है, यही मन शिव।
यहु मन पांच तत्त का जीव।
यही मन पांच तत्व हैं, पांच तत्वों से बना हुआ जीव है। यह सारा खेल मन
का है। मन अगर बंधन में पड़ा है वासना के, तो तुम संसार में उलझे रहोगे। और मन अगर वासना से उठ गया ऊपर, तो तुम मुक्त हो गये।
यहु मन ले जे उनमन रहै... ।
बस इतना ही कर लो कि इसी मन के रहते-रहते तुम उनमन हो जाओ, अमन हो जाओ।
जिसको झेन फकीर कहते हैं--नो माइंड, वह उनमन शब्द का ही अनुवाद है। उनमन रहै... । ऐसे रहो जैसे मन है ही नहीं। न कोई विचार, न कोई वासना, न कोई भाव।
निर्विचार, निर्भाव, निर्वासना, चुप, सन्नाटे में जीयो। यही ध्यान है।
यहु मन ले जे उनमन रहै। तौ तीनि लोक की बातां कहै।।
फिर तुम्हारे भीतर से तीनों लोकों के अदृश्य सत्य प्रगट होने शुरू हो जायेंगे।
दाबि न मारिबा... ।
और इस मन को तुम दबा कर न मार सकोगे।
दाबि न मारिबा, खाली न राषिबा... ।
और तुम चाहो कि इसको सदा खाली रख लें, तो भी संभव नहीं है। खाली कोई चीज रह ही नहीं सकती। बड़ा प्यारा सूत्र है। जैसे तुम जल भरते हो नदी से, तुमने अपनी मटकी भरी, गड्ढा हो जाता है वहां, लेकिन तत्क्षण चारों तरफ से जल दौड़कर उस गड्ढे को भर देता है। तुम हवा खाली कर लो एक जगह की, चारों तरफ से हवा दौड़कर वहां आ जाती है। इसलिये तो गर्मी के दिनों में अंधड़ चलते हैं। क्योंकि गर्मी में कहीं ज्यादा धूप पड़ जाती है सूरज की, तो हवा विरल हो जाती है, स्थान रिक्त हो जाता है। स्थान के रिक्त होते ही आस-पास से हवायें दौड़ पड़ती हैं। इतनी तेजी से दौड़ती हैं कि अंधड़ मालूम होता है। प्रकृति खालीपन को पसंद नहीं करती, तत्क्षण भर देती है। परमात्मा भी खालीपन को पसंद नहीं करता, तत्क्षण भर देता है। तुम खाली तो होओ... इधर मन खाली हुआ कि उधर परमात्मा भरा।
यह सूत्र बड़ा अदभुत हैः दाबि न मारिबा!
एक तो यह ख्याल रखना कि मन को दबा-दबा कर मारने की कोशिश में मत लग जाना, नहीं तो मुश्किल हो जायेगी, कभी न मार पाओगे। जिसको दबाओगे वह बना ही रहेगा, वह भीतर बना रहेगा, और भीतर सरक जायेगा। उसका जहर और तुम्हारे प्राणों में फैल जायेगा।
दाबि न मारिबा, खाली न राषिबा... ।
और एक बात पक्की है कि तुम इसे खाली करो, घबड़ाओ मत, यह मत सोचो कि कहीं ऐसे हो गये इस मन को तो छोड़ दिया, फिर रह गये खाली के खाली, शून्य। नहीं, ऐसा होता ही नहीं। तुम शून्य हुए कि पूर्ण आया। इधर शून्य, उधर पूर्ण। शून्य और पूर्ण एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।
जानिबा अगनि का भेवं।
और यही भेदों का भेद है। यह तुमसे रहस्य की बात कहते हैं गोरख, कि यह भेदों का भेद है। यही उस परम अग्नि का भेद है जिसकी शास्त्रों में चर्चा है, कि जल मिटो, मर मिटो। जल जाओ बिल्कुल कि तुम बचो ही न। जैसे ही तुम नहीं बचोगे, वैसे ही परमात्मा अवतरित हो जायेगा।
मरौ हे जोगी मरौ, मरौ मरन है मीठा।
तिस मरनी मरौ, जिस मरनी मरि गोरख दीठा।।

मर जाओ, शून्य हो जाओ, मिट जाओ, आ जायेगा परमात्मा अपने-आप। तुम्हें उसे खोजने भी जाना न पड़ेगा।
दाबि न मारिबा, खाली न राषिबा, जानिबा अगनि का भेवं।
बूढ़ी ही थै गुरबाणी होइगी, सति सति भाषंति श्री गोरख देवं।
और बड़ी मधुर बात कहते हैं कि जिस दिन तुम भर जाओगे परमात्मा से--मन से खाली और आत्मा से भरे--उस दिन तुम पाओगेः
बूढ़ी ही थै गुरबाणी होइगी!
तब यह माया ही, यह बूढ़ी माया... बहुत पुरानी है यह माया, कोई नई तो नहीं... यह माया ही तब तुम्हें गुरु का संदेश देने लगेगी। इसी के कण-कण से वेदों का जन्म होने लगेगा। इसी माया से उपनिषद प्रगट हो उठेंगे। इसी संसार से तुम्हें सत्य का संदेश मिलने लगेगा। क्योंकि है तो यह संसार उसी का। छिपा वही है इसमें। कण-कण पर उसी का हस्ताक्षर है। मगर तुम्हारे पास अभी देखनेवाली आंख नहीं है।
राति गई अधराति गई, बालक एक पुकारै।
और दिन बीते जा रहे हैं, समय बीता जा रहा है, और तुम्हारे भीतर कोई पुकार है, सुनो उसे! तुम्हारे भीतर से कोई पुकार रहा है कि खोज लो, समय मत गंवाओ।
राति गई अधराति गई, बालक एक पुकारै।
है कोई नगर मैं सूरा, बालक का दुख निबारै।।
कोई है, जो इस भीतर की पुकार का दुख निबार दे? अगर तुम पुकारोगे, जरूर कोई सूरा मिल जायेगा। उसी को गुरु कहते हैं। तुम पुकारोगे तो जरूर कोई मिल जायेगा जो इस बालक का दुख निबार दे।
देवल जात्रा सुंनि जात्रा... ।
कहते हैं कि देवल गये, मंदिर गये--यह तो सूनी व्यर्थ की यात्रा है, तुम नाहक ही परेशान हुए।
देवल जात्रा सुंनि जात्रा... ।
यह तो व्यर्थ की यात्रा है। इसका कोई मूल्य नहीं है।
तीरथ जात्रा पाणीं।
और गये तीरथ, यह तो पानी की यात्रा है, इससे क्या होने वाला है? फिर
कहां जायें?
अतीत जात्रा सफल जात्रा बोलै अमृत वाणी।।
अपने से पार जाओ। अपना अतिक्रमण करो। मनातीत।
अतीत जात्रा सुफल जात्रा, बोलै अमृत वाणी।।
और जिस दिन तुम अपने ऊपर उठ जाओगे--अपना अतिक्रमण करोगे--उस दिन तुम पाओगे तुम्हारी वाणी से अमृत बहने लगा; तुम्हारी वाणी वेद उचारने लगी।
वेद कंठस्थ नहीं करने पड़ते। जब कोई अतिक्रमण कर जाता है, तो वह जो भी बोलता है, वही वेद है।
इस संसार में पाया क्या है?

दो डगों में ही सिहरने लग गये संकल्प सारे,
बन गई बोझा जवानी, आस टूटी, स्वप्न हारे!
विश्व-उपवन कंटकों से युक्त वन पाया पगों ने,
भूल थी मेरी कि मैंने कह दिया नंदन अधिक है!
मुक्ति कम, बंधन अधिक है, प्यार में क्रंदन अधिक है! आज का सत्कार है कल की उपेक्षा का प्रथम पग,
जग लुटा दो, किंतु, अपना हो नहीं सकता कभी जग!
फाग से जब लौटकर आया, दिखी तब राख सिर पर,
भूल थी मेरी कि मैंने कह दिया चंदन अधिक है! मुक्ति कम, बंधन अधिक है, प्यार में क्रंदन अधिक है! आज का गलहार कल की अग्नि-माला का निमंत्रण,
एक क्षण की तृप्ति से तो है भला तृष्णा-नियंत्रण। ओ, अभागे प्राण-चातक! मिट रहा किसके लिये तू?
रूप ऐसा मेघ जिसमें नीर कम गर्जन अधिक है!
मुक्ति कम, बंधन अधिक है, प्यार में क्रंदन अधिक है।

इस संसार में तुमने जो प्रेम बांधा, आसक्ति बांधी, वहां पाया क्या है? पुनर्विचार करो। वहां कुछ भी तो मिला नहीं, राख ही मिली है। चाहा था आनंद, मिला दुख। चाही थी स्वतंत्रता, मिला संताप। चाहा था आकाश, मिले पींजड़े। सींकचों में बंद तुम जी रहे हो।
लेकिन हम देखते नहीं, हम दौड़े चले जाते हैं। देखें तो अभी क्रांति हो सकती है।
और परमात्मा से तुम व्यर्थ की चीजें मांग रहे हो--धन मांग रहे, पद मांग रहे। मांगना हो तो कुछ ऐसा मांगो--

दे सको दर्शन न तोकेवल अमर विश्वास दे दो।
इस अमावस की निशा मेंघिर गया उर में अंधेरा
हो गया ऐसा कि मानोंफिर नहीं होगा सवेरा
मैं जलाता क्षीण सा--
फिर भी प्रणय का दीप अपना
चांदनी की छवि न दो
केवल किरण का हास दे दो।
दे सको दर्शन न तो
केवल अमर विश्वास दे दो। तृप्ति मिल पाई न कोकिल-- को विरह के गीत गाते
क्षण मिले मधुमास के जो
वे शरों से वेध जाते
इन स्वरों की दीर्घ व्यापी मृदु जलन फूटी गगन में;
दो न छाया मेघ की
केवल सजल आभास दे दो।
दे सको दर्शन न तो
केवल अमर विश्वास दे दो। देखते हो क्या नहीं वह
बह रही लहरी विकल है
प्रश्न सी आतुर प्रतीक्षामय-- मिला जिसको न हल है
सिंधु के प्रतिबंध देते
हैं तड़पने भी न जी भर;
मुक्ति दो चाहे न, केवल
ज्वार का उल्लास दे दो।
दे सको दर्शन न तो
केवल अमर विश्वास दे दो।

मांगते हो धन, मांगते हो पद, मांगते हो प्रतिष्ठा, मिला क्या? मांगो आस्था, मांगो आस्तिकता, मांगो कि हृदय कह सकेः हां! मांगो कि अब यह हो चुकी ना बहुत, अब इंकार नहीं। अब यह चित्त का नकार नहीं। तो जरूर तुम्हारे भीतर अमृत-वाणी का जन्म हो। तुम भी जान सको उसे, जो किसी गोरख ने जाना। तुम भी पहचान सको उसे, जो किसी कबीर ने जाना। और ध्यान रखना पुनः पुनः, यह वाद और विवाद की बात नहीं, शास्त्र-शास्त्रार्थ की बात नहीं, शब्द-सिद्धांत की बात नहीं।

तट पर बैठे जो लोग, लहर को क्या जानें?
जिनके मन-मधुवन में
कलिका भी खिली नहीं,
जिनको पलभर पतझर से
फुरसत मिली नहीं,
कोयल की स्वरलहरी में
नहीं नहाये जो--

वे मधुऋतु के मदमस्त प्रहर को क्या जानें? तट पर बैठे जो लोग, लहर को क्या जानें?
जो सुन न सके संगीत
हवा की पायल का,
जो देख न पाये खेल
चांद से बादल का।
जिनकी किस्मत में
मावस का अभिनंदन है,
वे ऊषा की रंगीन नजर को क्या जानें? तट पर बैठे जो लोग, लहर को क्या जानें? थोथी मर्यादाओं में
जो पलते आये
सांसों का बोझ उठाये
जो चलते आये!
जिनके नभ में बदली न घिरी,
बिजली न हंसी,
वे पी-पी रटते हुए अधर को क्या जानें? तट पर बैठे जो लोग लहर को क्या जानें? मधु और गरल कुछ नहीं
समर्पण के पथ में,
फूलों तक जाना है
शूलोंवाले रथ में!
बसते आये जो सदा
घृणा की बस्ती में,
वे प्रेम-नगर या प्रेम-डगर को क्या जानें?
तट पर बैठे जो लोग लहर को क्या जानें?
पर किनारे पर बैठे लोग विवाद खूब करते हैं। लहरों की चर्चा करते हैं। मझधारों की चर्चा करते हैं। उस पार की चर्चा करते हैं। इस विवाद में समय मत गंवाना। हिंदू, मुसलमान, ईसाई, जैन, विवाद में समय मत गंवाना। वेद सही कि कुरान कि बाइबिल, समय मत गंवाना। खोज लेना कहीं कोई जीवंत उपनिषद, कोई जीवंत कुरान। जहां अभी पैदा हो रही हो अमृत की वाणी, वहां डुबकी लेना।
देवल जात्रा सुंनि जात्रा, तीरथ यात्रा पाणीं।
अतीत जात्रा सुफल जात्रा, बौलै अमृत वाणी।।
आज इतना ही।

मरौ हे जोगी मरौ
चौदहवां प्रवचन

एक नया आकाश चाहिए

पहला प्रश्नः मैं वर्षों से पूजा कर रहा हूं, मगर हाथ कुछ नहीं आया। तीर्थ, व्रत, यात्रा सब कर चुका हूं, पर निष्फल। क्या मैं ऐसे ही अकारण जीऊंगा और अकारण ही मर जाऊंगा?

आनंददास, सत्संग के बिना कोई पूजा नहीं है। सदगुरु के बिना कोई मंदिर
का द्वार खुलेगा नहीं।
पूजा तुमने की होगी बहुत, वह क्रियाकांड ही रही। पंडितों से सीखी होगी पूजा, और पंडित वे हैं जिन्हें स्वयं भी पूजा का कोई पता नहीं। शास्त्रों से सीखी होगी पूजा, शास्त्रों में शब्द हैं निश्चित, लेकिन सत्य नहीं। तुम लाश को ढोते रहे, तुम्हारा जीवंत व्यक्तित्व से संस्पर्श नहीं हुआ।
कृष्ण से मिलो तो नाच सकोगे, बुद्ध से मिलो तो ध्यान में उतर सकोगे; और कोई उपाय नहीं है। बुद्ध से तो लोग डरते हैं; कृष्ण से भयभीत हैं। कृष्ण की गीता पढ़ते हैं; बुद्ध की मूर्ति की पूजा करते हैं। मूर्ति में कोई प्राण तो नहीं हैं। मूर्ति निष्प्राण है, पूजा करते-करते तुम भी वैसे ही निष्प्राण हो जाओगे। पत्थरों के साथ रहोगे, पत्थर हो जाओगे। संग-साथ सोच कर करना।
फिर, तुम जो शब्द दोहराते रहे पूजा के नाम पर, उनमें तुम्हारे प्राण
की अनुगूंज थी? तुम्हारे प्राण बोले थे?
जिस ईश्वर को जाना नहीं, देखा नहीं, पहचाना नहीं, उस ईश्वर की तरफ जुड़े हुए हाथ सच कैसे हो सकते हैं? वे हाथ झूठे थे, वे हाथ पाखंड थे। इसलिए पूजा व्यर्थ गई।
पूजा कभी व्यर्थ नहीं जाती; निष्प्राण पूजा व्यर्थ जाती है।
किन मंदिरों में तुमने पूजा की थी? किन तीर्थों में गए? उन मंदिरों में विराजमान था कोई? वे मंदिर खाली पड़े हैं।
लोग तो मंदिरों में जाते ही तब हैं जब मंदिर खाली हो जाते हैं। जब तक मंदिरों में कोई दीया जलता है तब तक लोग दूर-दूर रहते हैं। दीये से डर लगता है। लपट पकड़ सकती है। दीये के पास तो पतंगे जा सकते हैं सिर्फ--मतवाले, दीवाने, पागल--जो अपने को निछावर कर सकें। कायर तो बाहर-बाहर होते हैं, जब तक दीया जलता है। जैसे ही दीया बुझा कि कायरों का मंदिरों में प्रवेश हो जाता है। फिर वे खूब घंटनाद करते हैं, आरतियां उतारते हैं। अब कोई भय नहीं है, अब भय का कोई कारण ही नहीं है।
जब नदी पूर पर होती है, बाढ़ पर होती है, तब तो तुम निकट नहीं आते; जब सूख
ही जाती है नदी और रेत-ही-रेत रह जाती है, तब तुम अपनी नौका उतारते हो; फिर नौका आगे नहीं सरकती तो परेशान होते हो। फिर दोष नौका को देते हो। किसी बाढ़ में आई नदी का साथ खोजा होता, तो पूजा भी हो गई होती, प्रार्थना भी हो गई होती। किसी भरे मंदिर में गए होते, जहां मुहम्मद अभी जीवित हों, जहां कुरान अभी पैदा होती हो, जहां गोरख की वाणी अभी जग रही हो, जहां गोरख का अलख अभी जग रहा हो, ऐसी कोई जगह गए होते।

सूने मंदिर में दीप जलाकर क्या होगा?
मंदिर की पावन प्राचीरें जब फूट गईं,
चंदन से निर्मित देहरियां जब टूट गईं!
द्वारों पर बंदनवार सजाकर क्या होगा?
सूने मंदिर में दीप जलाकर क्या होगा?
जब भावों को कोई गुननेवाला न रहा,
जब गीतों को कोई सुननेवाला न रहा; वीणा के टूटे तार मिलाकर क्या होगा? सूने मंदिर में दीप जलाकर क्या होगा?

मंदिर हैं, लेकिन मंदिर की सुषमा न रही,
सिंहासन हैं, सिंहासन पर प्रतिमा न रही!
सूने आसन पर फूल चढ़ाकर क्या होगा?
सूने मंदिर में दीप जलाकर क्या होगा?
सूने आसनों पर फूल चढ़ाए तुमने। मंदिरों में जरूर गए, लेकिन देर से गए। जिन्हें भी सत्य पाना हो उन्हें तो कोई जीवंत किरण का साथ खोजना होगा। उस साथ का नाम सत्संग है। सत्संग के बिना सब अकारथ है।
पूछते होः वर्षों से पूजा कर रहा हूं।
जन्मों से कर रहे होओगे, तुम्हें याद नहीं। वर्षों की तुम्हें याद है,
इस जन्म की। जन्मों से कर रहे होओगे, लेकिन झूठी हो गई सब पूजा, सब पाठ व्यर्थ हो गए, सब समय ऐसे ही बर्बाद हुआ। कारण? पूजा पूजा ही न थी। ओंठों पर शब्द थे, प्राणों में उन शब्दों के लिए सहारा न था। विश्वास से की थी पूजा, आस्था से नहीं। हिंदू-घर में पैदा हुए तो हिंदू-पूजा सीख ली थी, और मुसलमान-घर में पैदा हुए तो मुसलमान के विधि-विधान सीख लिए थे। वे सब दूसरों ने तुम्हें दिए थे, तुम्हारी अपनी तलाश न थी। और जो खुद न खोजा जाए वह सच कभी सच नहीं हो पाता। खुद खोजने की पीड़ा से ही सच मिलता है।
ऐसे ही समझो कि कोई स्त्री किसी बच्चे को गोद ले ले, तो बस धोखा-ही- धोखा है। वह मां कभी नहीं बन पाएगी। क्योंकि मां बनने की अनिवार्य प्रक्रिया से तो वंचित रह गई। किसी के प्रेम में पड़ना था। प्रेम की किसी गहन घड़ी में गर्भाधान होता, फिर नौ महीने की पीड़ा थी, गर्भ का बोझ था, फिर बच्चे के जन्म का सारा कष्ट झेलना था। वह तपश्चर्या थी। प्रेम, पीड़ा, बच्चे के जन्म की प्रसव-पीड़ा, इन सबके भीतर ही मातृत्व का जन्म होता है। तुमने सस्ता रास्ता खोजा। तुमने बच्चा उधार ले लिया। तो बच्चा "मां" कहेगा, पर भ्रांति में मत पड़ जाना, तुम्हारे भीतर मातृत्व का जन्म नहीं होगा। यह औपचारिकता रहेगी।
ऐसी ही तुम्हारी पूजा है। तुम्हारे गर्भ से नहीं निकली; उधार-उधार है, बासी-बासी है; गोद ली हुई है। इसलिए चूक होती चली जाती है।
अब तुम कहते होः मगर कुछ हाथ नहीं आया।
हाथ आता कैसे? और दूसरी बात, जो सच में ही पूजा करता है, उसे तो फिकर ही नहीं होती कि हाथ कुछ आया कि नहीं आया। यह फिकर तो गलत पूजा करनेवाले की ही फिकर है। जिसे पूजा आ गई, उसे सब हाथ आ गया, पूजा में ही सब हाथ आ गया। पूजा का फल पूजा से अतिरिक्त नहीं है, पूजा में ही है। प्रेम का फल प्रेम के पार नहीं है, प्रेम में ही है। प्रेम या पूजा किसी और साध्य के साधन नहीं हैं, स्वयं अपने साध्य हैं।
तुमने किसी को प्रेम किया, फिर क्या तुम यह कहते हो कि इतना प्रेम किया, हाथ कुछ नहीं लगा? प्रेम में तो मिल गई संपदा। अब और फल क्या चाहिए? जिसने प्रेम किया उसने पा ही लिया--प्रेम में ही पा लिया। प्रेम कोई बाजार तो नहीं है कि धंधा किया, फिर लाभ हुआ; लाभ पीछे हुआ। यह प्रेम का फल तो इसमें ही छिपा है। प्रेम स्वयं अपना फल है।
तुम्हारी पूजा प्रेम-शून्य रही, नहीं तो तुम यह सोचते ही नहीं कि हाथ कुछ न लगा। पूजा लग गई, नाचे, गाये, मग्न हुए--सब मिल गया, आकाश टूट पड़ा।
फल की आकांक्षा लोभ से पैदा होती है, और पूजा लोभ से पैदा नहीं हो सकती। इसलिए फलाकांक्षी कभी पूजा नहीं कर सकता, ध्यान नहीं कर सकता। फलाकांक्षी चूकता ही चला जाता है; उसकी फलाकांक्षा ही बाधा है। वह हमेशा पूछता हैः इससे मिलेगा क्या? जीवन में कुछ चीजें ऐसी हैं जिनसे अगर तुमने पूछा कि फल क्या होगा, कि तुम चूके। गुलाब खिला, सुंदर है बहुत, सुबह की अभी ताजी-ताजी बूंदें उस पर चमकती हैं सूरज की किरणों में; और तुम पूछने लगेः हां, ठीक है, सुंदर है, मगर सौंदर्य का लाभ क्या है? तो तुम चूके, वंचित रहे काव्य से। वह जो काव्य झर रहा था गुलाब के उस फूल के आस-पास, अदृश्य, वे जो अदृश्य परीलोक से उतर रही थीं सुंदरियां फूल की पंखड़ियों पर, तुम उनके प्रति अंधे हो गए। तुमने पूछा, लाभ क्या है? चांद निकला, सुंदर था बहुत, और तुमने पूछा, लाभ क्या है? तुम दुकान छोड़ते ही नहीं; तुम मंदिर में भी दुकान नहीं छोड़ते!
तुम पूछते होः हाथ कुछ भी न आया।

इससे इतना ही पता चलता है कि पूजा का तुम्हें पता ही न चला, हाथ कैसे कुछ आता? पूजा मिली तो सब मिला। भक्तों ने तो भक्ति में इतना पा लिया, फिर बैकुंठ भी नहीं मांगा। कहाः सम्हालो अपना बैकुंठ। हमें तो तुम्हारा पूजन, तुम्हारा अर्चन काफी है। हम तो तुम्हारे गीत गाते रहें, इतना पर्याप्त; यही हमारा स्वर्ग।
कहते होः तीर्थ, व्रत, यात्रा कर चुका हूं, पर निष्फल।
वह फल तुम्हारा पीछा नहीं छोड़ता।
क्या मैं ऐसे ही अकारथ जीऊंगा, अकारथ ही मर जाऊंगा?
यह फलाकांक्षा रही तो अकारथ ही जीओगे, अकारथ ही मरोगे। बहुत बार जीये हो, बहुत बार मरे हो। यह कोई तुम्हारी नई आदत नहीं, यह पुरानी तुम्हारी परंपरा है। सदियों-सदियों पुरानी है। यही तुम्हारा अतीत है।
लेकिन अभी भी कुछ हो सकता है। बात बदली जा सकती है। बिगड़ी बात बन सकती है।

एक तार टूट-टूट जाये तो
बीन को नवीन तार चाहिये!
था जिन्हें रखा बहुत संवार कर,
था जिन्हें रखा बहुत दुलार कर,
रंग एक बार के उतर गये,
फूल एक बार के बिखर गये।
बाग चुप रहा समय निहारकर, किंतु, कह उठी पिकी पुकार कर इक बहार रूठ-रूठ जाये तो
बाग को नई बहार चाहिये!
एक तार टूट-टूट जाये तो
बीन को नवीन तार चाहिये!
ताज आग का संवारता रहा,
पंथ भोर का निहारता रहा;
किंतु दीप की लगन बिखर गई, स्नेह चुक गया शिखा सिहर गई! दीप त्रस्त हो लगा गुहारने, किंतु मृत्तिका लगी पुकारने-- एक स्नेह-कोष रीत जाये तो स्नेह की नवीन धार चाहिये!
एक तार टूट-टूट जाये तो
बीन को नवीन तार चाहिये!
उड़ चला विहंग तृण लिये हुए, प्यार का अकंप प्रण लिये हुए; किंतु, क्रुद्ध आंधियां मचल गईं, तृण बिखेर, नीड़ को कुचल गईं, लुट गया विहंग, छा गई निशा, किंतु फिर लगी पुकारने उषा--
एक नीड़ टूट-फूट जाये तो
डाल को नया सिंगार चाहिये।
एक तार टूट-टूट जाये तो
बीन को नवीन तार चाहिये!
प्राण स्वप्न-लोक में रमे रहे, और, नींद में नयन लगे रहे!
पर, अजान ही हृदय धड़क उठा, कांपते हुए खुले सजल पलक! नींद ही रही न स्वप्न ही रहा, किंतु, तप्त अश्रुधार ने कहा-- एक स्वप्न टूट-टूट जाये तो आंख को नया खुमार चाहिये।

एक तार टूट-टूट जाये तो
बीन को नवीन तार चाहिये!
मैं तुम्हें सदा दुलारता रहा, प्राण में बसा, संवारता रहा; किंतु एक दिन कहार आ गये, पालकी उठा तुम्हें लिवा गये! हर शपथ ज्वलित अंगार हो गई, जिंदगी असह्य भार हो गई;
जब हृदय लगा चिता संवारने,
व्योम के नखत लगे पुकारने;
एक मीत साथ छोड़ जाये तो
प्यार की नई पुकार चाहिये!
एक तार टूट-टूट जाये तो
बीन को नवीन तार चाहिये।
नई पूजा सीखो, नया अर्चन सीखो, नई थाप दो ढोलक पर। यह तार टूट गया, इस तार को फिर जमाओ। भूल पूजा की न थी, भूल तुम्हारी थी। भूल आंगन की न थी, तुम्हें नाचना ही न आया, और तुम समझे कि आंगन टेढ़ा है। अभी सब संवर सकता है, अभी फिर सब ठीक हो सकता है। अभी कुछ बिगड़ नहीं गया है, कभी कुछ बिगड़ नहीं गया है। जब भी घर लौट आए तभी समझना कि सबेरा है। देर-अबेर सही। अब तुम पुराने पूजा के ढांचे को छोड़ो।
यहां हम यही तो कर रहे हैं आनंददास। पूजा का ढांचा पैदा नहीं कर रहे, पूजा की एक भाव-तरंग। पूजा के लिए कोई ठोस व्यवस्था नहीं, सिर्फ पूजा का एक रंग; और उन्मुक्तता, और स्वतंत्रता, और प्रत्येक व्यक्ति को अपने कंठ से, अपने ढंग से, गा लेने की सुविधा।
और फिर मैं यह भी नहीं कहता कि ईश्वर को मानो। ईश्वर को मानने की कोई जरूरत ही नहीं है। मानोगे तो कैसे मान पाओगे? लेकिन चांद-तारे बहुत हैं नाचने के लिए। ईश्वर को बीच में लाओ भी क्यों? वृक्षों की हरियाली बहुत है नाचने के लिए। आकाश से उतरती सूरज की रोशनी बहुत है। ईश्वर को बीच में लाओ ही मत। मंदिरों में जाओ क्यों? सृष्टि काफी है। इससे सुंदर मंदिर और बन भी कैसे पाएंगे। नाचना सीखो, गुनगुनाना सीखो। एक खुमार टूट गया, टूट जाने दो-- आंख को नया खुमार चाहिए! यहां हम खुमारी ही बांट रहे हैं। यह एक मधुशाला है, यहां थोड़ा पीयो!
और अगर तुम चांद-तारों के नीचे नाच सको, और सागर की उत्ताल तरंगों के साथ उन्मत्त हो सको, और वृक्षों के साथ हवाओं में डोल सको, तुम परमात्मा को पा लोगे, क्योंकि परमात्मा यहीं कहीं छिपा है--इसी हरियाली में, इन्हीं फूलों में, इन्हीं तारों में, इन्हीं चट्टानों की ओट में।
जीसस ने कहा हैः उठाओ पत्थर को और उसके नीचे छुपा तुम मुझे पाओगे। तोड़ो इस लकड़ी को और इसके भीतर बसा तुम मुझे पाओगे।
लेकिन हम औपचारिक हैं। हम बैठते हैं पूजा का थाल सजाकर, एक मूर्ति बनाकर, धूप-दीप बालकर, संस्कृत का पाठ करते हैं। सब व्यर्थ हो जाता है। संस्कृत तुम्हारे हृदय से भी नहीं आती, उसका अर्थ भी तुम्हें मालूम नहीं है। कि मुसलमान है तो अरबी में पाठ कर रहा है। उसे कुछ पता भी नहीं कि वह क्या कह रहा है। पराई भाषा बोल रहे हो, मुर्दा भाषा बोल रहे हो!
अपनी भाषा में बोलो। और हुए होंगे बड़े-बड़े पंडित और उन्होंने बड़े सुंदर प्रार्थना के पद रचे होंगे, मगर वे उधार हैं। तुम तुतलाओ सही, मगर अपनी ही भाषा में। तुम अपनी ही बात कहो, कम-से-कम परमात्मा के सामने तो तुम अपनी ही बात कहो।
देखते हो, मां के सामने उसका बेटा तुतलाता भी है तो खुश हो जाती है! कम-से-कम तुतलाहट उसकी अपनी तो है, अपने हृदय से आती है।
और किसी विश्वास के आधार पर मत करो ऐसा, नहीं तो तुम विश्वास के पीछे खोजते रहोगे फल नहीं मिला, अब तक फल नहीं मिला, फल कब मिलेगा? तुम्हारी नजर फल पर अटकी रहेगी और तुम चूकते चले जाओगे।
मैं तुम्हें कहता हूं कि जीवन एक उत्सव है। नास्तिक हो, चलेगा, कोई अड़चन नहीं है, जीवन के उत्सव को मानने में तो कोई अड़चन नहीं है, उत्सव तो हो

ही रहा है। पक्षी तो गा रहे हैं; यही प्रार्थना है। वृक्ष तो मौन में खड़े ही हैं; यही ध्यान है। जीवन के महोत्सव को थोड़ा समझो, जीवन में रस-विभोर होओ। छोड़ो सैद्धांतिक बातें, और एक दिन तुम पाओगे इसी रस-विभोरता से, इसी जीवन के उत्सव में रंगते, पकते, परमात्मा भी चला आया। तब पैदा होती है श्रद्धा, तब पैदा होती है आस्था, वह विश्वास नहीं है। और श्रद्धा मुक्तिदायी है। और श्रद्धा अमृत का स्वाद दे जाती है।

दूसरा प्रश्नः संसार में सब क्षणभंगुर है, इसलिए पकड़ें तो क्या पकड़ें?

राम कीर्ति, क्षणभंगुर में ही शाश्वत छिपा है। क्षणभंगुर को छोड़ा कि शाश्वत से भी चूके। जैसे लहर-लहर में सागर छिपा है, तुम लहर-लहर से बच गए, सागर से भी बच जाओगे। नाव छोड़ने के पहले अगर नाविक पूछे कि "सागर कहां है? ये तो छोटी-मोटी लहरें हैं, इनमें कैसे नाव छोडूं? लहरों में कोई नाव छोड़ता, सागर कहां है? ये उथली छोटी-छोटी लहरें, इनका भरोसा भी क्या, अभी हैं अभी गईं, क्षण-भर तो टिकती नहीं, इनमें नाव छोड़ दूं? यह तो खतरा हो जाएगा। यह तो जोखिम की बात है। सागर कहां है? मैं तो सागर में नाव छोडूंगा।" तो फिर तुम बैठे रहना नाव रखे किनारे पर; तुम भी सड़ोगे, नाव भी सड़ेगी।
लहर के भीतर सागर ही है। लहर सागर ही है। छोड़ो नाव, लहर के नीचे ही सागर भी मिल जाएगा।
क्षणभंगुर कह कर संसार की निंदा मत करो। क्षण उस शाश्वत की अभिव्यक्ति है। वही बोला है, वही झलका है, वही झांका है। तुम देखो जरा आंख खोलकर चारों तरफ, कितना सौंदर्य है, कितना छंद है, और तुम पिटी-पिटाई बातें लिए बैठे हो! तुम्हें कोई भी कहता रहा है कि संसार क्षणभंगुर है, तुमने सीख लिया, तोते की तरह रट ली यह बातः संसार क्षणभंगुर है!
क्षण क्या है? क्षण शाश्वत की लहर है; शाश्वत में उठी तरंग है। तो क्षण में ही छिपा है शाश्वत, समय में ही छिपा है नित्य। भागो मत, डूबो। डुबकी मार दो क्षण में। लेकिन तुम्हें उल्टी बातें समझायी गई हैं। और इतने दिन तक समझायी गई हैं कि तुम्हें ठीक-ठीक लगने लगी हैं। बहुत बार दोहराने से झूठ भी सच मालूम होने लगते हैं। इसलिए तो विज्ञापनदाता झूठों को दोहराए चले जाते हैं, दोहराते रहो; इसकी फिक्र ही नहीं करते कि कोई मानता है कि नहीं मानता। लोग अपने-आप मान ही लेते हैं। तुम तो दोहराते रहो कि लक्स टायलेट साबुन, सबसे अच्छी साबुन है। न कोई प्रमाण देने की जरूरत है। हजारों साबुन हैं, मगर तुम दोहराते रहो, इंगित देते रहो, इशारे देते रहो, जहां से भी आदमी गुजरे, अखबार खोले तो लक्स टायलेट साबुन दिखायी पड़े, रेडियो सुने तो लक्स टायलेट साबुन सुनायी पड़े, टेलीविजन पर जाए तो लक्स टायलेट साबुन दिखायी पड़े, रास्ते से गुजरे तो बड़े-बड़े बोर्ड लगे हैं। बस उसके मन पर गुंजाते रहो लक्स टायलेट साबुन, लक्स टायलेट साबुन। एक दिन जब वह जाएगा खरीदने बाजार साबुन और दुकानदार पूछेगा, क्या? वह कहेगा लक्स टायलेट साबुन, और सोचेगा कि मैं खुद ही सोचकर कह रहा हूं। यह सोचा हुआ नहीं है। यह केवल संस्कारित है।
इसी तरह तुम धर्म भी दोहरा रहे हो। तुम्हारे धर्म में और तुम्हारे लक्स टायलेट साबुन में जरा भी भेद नहीं है। इसी तरह तुम प्रार्थना-पूजा भी कर रहे हो, इसी तरह तुम सिद्धांत की बड़ी-बड़ी ऊंची बातें भी छान रहे हो, मगर सब सुनी बकवास है। तुम्हारा अपना कोई भी अनुभव नहीं।
अब तुम कहते हो संसार में सब क्षणभंगुर है। जानते हो? क्षण में उतरे हो? क्षण में डुबकी मारी? क्षण के पीछे झांका, कौन खड़ा है परदे के पीछे? परदे के पीछे तो वही राम हैं। जरा टटोलो तो! नहीं, मगर मुर्दा बातें सदियों से दोहरायी गईं, तुम्हें पकड़ लेती हैं। फिर तुम उन पर कभी पुनर्विचार नहीं करते। और जब एक दफा मान लिया कि संसार क्षणभंगुर है तो तत्क्षण लोभी चित्त कहता है, तो क्षणभंगुर में क्या सार है? इसलिए पकड़ें तो क्या पकड़ें? पकड़ने की जरूरत क्या है? उसने तुम्हें पकड़ा हुआ है, तुम उसे क्या पकड़ोगे? तुम उसके हाथ में हो। उसने तुम्हें जन्माया, वही तुम्हें जिलाता

है, वही तुम्हें एक दिन उठा ले जाएगा। तुम उसे क्या पकड़ोगे? तुम्हें उसे पकड़ने की कोई जरूरत भी नहीं है। तुम पृथ्वी को तो नहीं पकड़ते। डरते तो नहीं कि कहीं पकड़ा नहीं पृथ्वी को तो छूट न जाएं, नहीं तो इतना अनंत आकाश है, गिर पड़ें कहीं!
छोटे-छोटे बच्चे ऐसा प्रश्न पूछते हैं कि जमीन गोल है, तो लोग गिर क्यों नहीं पड़ते? कम-से-कम अमरीका के लोग तो गिर ही जाएं, बिल्कुल नीचे हैं, जमीन गोल है। और अमरीका के बच्चे पूछते हैं कि कम-से-कम भारत के लोग तो गिर जाएं, मगर कोई गिरता नहीं और कोई जमीन को पकड़े नहीं है। जमीन ने तुम्हें पकड़ा है, उसके गुरुत्वाकर्षण ने तुम्हें पकड़ा है।
और जैसे जमीन का अदृश्य गुरुत्वाकर्षण है, इससे भी ज्यादा अदृश्य परमात्मा का गुरुत्वाकर्षण है। वह तुम्हें पकड़े हुए है। तुम्हें उसे पकड़ने की कोई जरूरत नहीं है। और उसकी पकड़ ऐसी पकड़ है कि तुम्हें बांधती भी नहीं, तुम्हारे आसपास जंजीरें भी नहीं खड़ी करती। उसकी पकड़ ऐसी पकड़ है कि तुम्हें पूरी स्वतंत्रता भी दी हुई है। तुम्हें छोड़ भी नहीं दिया है और तुम्हें कारागृह में बंद भी नहीं कर दिया है। जैसे मां एक आंख से देखती रहती है बच्चा कहां खेल रहा है, छोड़ा भी हुआ है, लेकिन एकदम छोड़ भी नहीं दिया है। एक आंख उसका पीछा कर रही है। हजार काम में लगी रहती है, लेकिन हृदय में उसे स्मरण बना रहता है कि बच्चा बाहर खेल रहा है, कहीं दूर न निकल जाए, कहीं सड़क पर न पहुंच जाए, कहीं गाड़ी, घोड़े की चपेट में न आ जाए!
मनुष्य स्वतंत्र है और फिर भी कोई उसकी सुरक्षा कर रहा है प्रतिपल।
वे हाथ तुम्हें सहारा दे रहे हैं। तुम्हें कुछ पकड़ने की जरूरत नहीं।
मगर लोभी मन कहता हैः यहां तो सब क्षणभंगुर है! और मजा तुम देखना कि जिनको तुम समझते हो तुम्हारे साधु-संत, वे तुमसे ज्यादा लोभी हैं। उनका कारण क्या है संसार छोड़ देने का? यही कारण हैः संसार क्षणभंगुर है। क्षणभंगुर से वे कहते हैं क्या सार पकड़ने में? हम तो पकड़ेंगे तो उसको पकड़ेंगे जो कभी छूटे न। तो तुममें और उनमें फर्क क्या हुआ? तुम जरा कम लोभी हो, वे जरा ज्यादा लोभी हैं। तुम कहते होः हमारा क्षणभंगुर से ही चल जाएगा। वे कहते हैंः हमारा इससे नहीं चलेगा, हमें तो शाश्वत चाहिए। हमें तो जब तक पक्का भरोसा न हो जाए कि जो हमने पकड़ा वह सदा हमारे साथ रहेगा, तब तक हम जोखिम उठानेवाले नहीं।
इससे तो संसारी ही कम लोभी मालूम पड़ते हैं। तुम्हारे तथाकथित संत महालोभी हैं। उनकी इच्छा बैकुंठ की है। वे भी चाहते हैं कि सुंदर स्त्रियां उन्हें मिलें, लेकिन अप्सराएं--उर्वशी, मेनका--अप्सराएं, जो कभी वृद्ध नहीं होतीं और जो कभी बीमार नहीं होतीं और जो सदा जवान रहती हैं। वे भी चाहते हैं इन्हीं सारी वासनाओं की तृप्ति जो तुम चाहते हो। मगर वे चाहते हैं एक स्थिर आधार पर, जो सदा होती रहे। वे कल्पवृक्ष की तलाश कर रहे हैं, जिसके नीचे बैठकर जो चाहेंगे, जब चाहेंगे, उसी वक्त पूरा हो जाएगा। इनको तुम संत कहते हो! जरा इनके भीतर छिपी हुई वासना तो देखो। ये स्वर्ग में भी इरादे क्या रखते हैं?
मैंने सुना है, एक संत मरे। संत, जैसे संत होते हैं। संयोग की बात, दूसरे-तीसरे दिन उनका शिष्य भी मर गया। शिष्य तो चला स्वर्ग की तरफ बड़े पक्के भरोसे से कि गुरुदेव के मिलन का मौका आ रहा है, गुरु से मिलन होगा। सोचने लगा रास्ते में कि गुरु को कैसे बड़े-से-बड़े कल्प वृक्ष के नीचे बैठने का स्थान मिला होगा! थे भी बड़े तपस्वी। सब छोड़-छाड़ कर दिन-रात राम-राम, राम-राम, राम-राम जपा करते थे। अब राम ने दिया होगा फल भी पूरा। सबसे सुंदर स्त्री उर्वशी मिली होगी। दबा रही होगी पैर।
पहुंचा शिष्य। एक वृक्ष के नीचे बैठे थे गुरुदेव। पहले तो लंगोटी भी पहने रहते थे, अब तो नंगधड़ंग थे, लंगोटी भी गई। वे तो सब संसार की चीजें थीं, संसार में रह गईं। नंगे आते हैं आदमी, नंगे जाते हैं। नंगधड़ंग बैठे थे कल्पवृक्ष के नीचे। खुश हो गया शिष्य। और इतना ही नहीं, एक युवती आलिंगन कर रही थी। बड़ी सुंदर युवती! होगी जरूर उर्वशी।
एकदम साष्टांग दंडवत की गुरु के चरणों में गिरकर, कहा कि गुरुदेव, धन्य हैं! मैं तो पहले से ही जानता था कि ऐसे ही सुख आपको मिलेंगे। पुण्य

भी तो किए थे, व्रत भी तो किए थे, नियम-उपवास, तीर्थयात्रा, सब तो किया था।
मिलना ही था। यह तो आपका हक था।
गुरुदेव ने कहाः तू चुप रह नालायक! तुझमें अभी भी अकल नहीं आई। तू पहले ही जैसी नालायकी की बातें कर रहा है।
शिष्य ने कहा कि कैसे चुप रहूं, अपनी आंख से देख रहा हूं कि आपको आपके पुण्यों का पुरस्कार मिल रहा है।
गुरु ने कहाः चुप रह! यह मेरे पुण्यों का पुरस्कार नहीं मिल रहा है, यह
इस स्त्री को इसके पापों का दंड मिल रहा है। यह स्त्री मेरे पुण्यों का पुरस्कार नहीं है, मैं इसके पापों का दंड हूं। तू चुप रह, बीच में मत बोल। यह स्त्री को सताने का उपाय किया गया है।
अब संत के साथ पकड़ा दो किसी स्त्री को, इससे ज्यादा और सताने का उपाय
और क्या हो सकता है? मगर गुरु नाराज है कि तू चुप रह नासमझ। क्रोधित है। चाहते क्या हो तुम स्वर्ग में? अगर तुम शास्त्रों को खोलकर देखो तो तुम हैरान हो जाओगे। किन्हीं कामियों ने लिखे होंगे। स्वर्ग में चश्मे बह रहे हैं शराब के! सुंदर स्त्रियां हैं, स्वर्ण के फूल खिलते हैं, हीरे- जवाहरात रास्तों पर बिछे हैं। ये किनकी कल्पनायें हैं? ये रुग्ण कल्पनायें किनकी हैं? ये लोभ से भरे हुए लोग क्षणभंगुर को छोड़ना चाहते हैं, शाश्वत को पाना चाहते हैं।
मैं तुमसे कुछ और ही बात कह रहा हूं। मैं तुमसे कह रहा हूंः शाश्वत इस क्षणभंगुर से भिन्न नहीं है। परमात्मा प्रकृति से भिन्न नहीं है; इसी में लीन है; इसी में समाविष्ट है। स्रष्टा-सृष्टि में भेद नहीं है। जैसे नर्तक अपने नृत्य में समाया होता है, ऐसे ही स्रष्टा अपनी सृष्टि में समाया हुआ है।
जिस दिन तुम्हें यह समझ में आ जाएगा, यह क्षणभंगुरता और यह शाश्वतता
और ये सारे द्वैत, और द्वंद्व तुम्हारे मन से गिर जायेंगे, फिर पल-पल आनंद है। क्योंकि प्रतिपल वही मौजूद है। थोड़ा अपने को बदलो, देखने का ढंग बदलो।

मत पूछो, यह उन्माद चलेगा कब तक?
संगीत उमड़ने दो स्वर्णिम तारों में,
खो जाने दो दुनिया इन झनकारों में।
झूमे जाओ, क्षण भर भी मत यह पूछो,
छवि की पायल का नाद चलेगा कब तक?
मत पूछो, यह उन्माद चलेगा कब तक? नभ में चांदी का ज्वार उमड़ता देखो, मेघों का शशि पर प्यार उमड़ता देखो, मत पूछो मुग्ध चकोरी के नयनों से, विस्तृत अंबर में चांद चलेगा कब तक? मत पूछो, यह उन्माद चलेगा कब तक? साकीबाला की मस्त निगाहें देखो, बेसुध पीनेवालों की चाहें देखो, मधु पीनेवालों की मादक महफिल में-- मत पूछो, हालावाद चलेगा कब तक?
मत पूछो, यह उन्माद चलेगा कब तक?
शृंगार तुम्हें खलता है तो खलने दो,
अभिसार तुम्हें खलता है तो खलने दो;
अपराध समझते रहो प्यार को, लेकिन,
मत पूछो, यह अपराध चलेगा कब तक?
मत पूछो, यह उन्माद चलेगा कब तक?
शाश्वत है यह प्रक्रिया क्षणभंगुरता की। यह कभी खंडित नहीं हुई, अखंड
है यह धारा। सदा से है और सदा रहेगी। ये तरंगें उठती ही रहेंगी।
मत पूछो, यह उन्माद चलेगा कब तक?
तुम डूबो इस उन्माद में। यह जो नृत्य है, यह जो मादक अस्तित्व है, इसमें मस्त होओ।

मैं तुम्हें उदासी सिखाने को नहीं हूं। मैं तुम्हें संगीत देना चाहता हूं। लेकिन मैं जानता हूं तुम्हारी अड़चन। तुम्हें उदास चित्त लोगों ने बहुत प्रभावित किया है। सदियों से धर्म के नाम पर तुम्हें जीवन का निषेध सिखाया गया है, जीवन का विरोध सिखाया गया है। सब पाप है। प्रेम पाप है, संबंध पाप है। मैत्री पाप है। नाता-रिश्ता पाप है। सब पाप है। तुम पाप से घिर गए हो। नहीं कि सब पाप है, लेकिन तुम्हारी धारणाओं में सब पाप हो गया है। जो छुओ वही गलत है। जो करो वही गलत है। तुम नकार से घिर गए। तुम्हारी फांसी लग गई है नकार में।
मैं तुम्हें नकार से मुक्त करना चाहता हूं। मैं कहता हूंः यह क्षणभंगुर भी उस शाश्वत की ही लीला है। यह उसका ही रास है। वही नाच रहा है इसके मध्य में। तुम्हें दिखायी पड़े न दिखायी पड़े, मगर नाच में तो सम्मिलित हो जाओ। नाच में सम्मिलित होते-होते ही वह आंख भी खुलेगी जिससे तुम्हें वह दिखायी पड़ने लगेगा।
और पकड़ने की बात ही मत पूछो, पकड़ना क्या है? न पकड़ना है कुछ, न छोड़ना है कुछ। पकड़ना-छोड़ना व्यर्थ की बात है। जीना है। जल में कमलवत जीयो! न पकड़ो न छोड़ो। पकड़ो तो फिर छोड़ने का उपद्रव शुरू होता है। जो पकड़ लेते हैं, फिर उनके मन में चिंता पकड़ती है कि पकड़ लिया, अब कहीं नर्क न भोगना पड़े, तो छोड़ें। छोड़कर भाग जाते हैं, उनके मन से भी पकड़ नहीं जाती, क्योंकि छोड़ते जिसको हैं उसके प्रति राग तो था, रंग तो था, रस तो था। छोड़ तो आए हैं, लेकिन घाव पीछे रह गये। फिर घाव में पीड़ा उठती है। रह-रह कर भाव उठते हैं, वापिस लौट जाएं।
बड़ी अजीब है यह दुनिया। जिनके पास है, वे सोचते हैं मजे में होंगे वे लोग जिन्होंने सब छोड़ दिया है। और जिन्होंने सब छोड़ दिया है वे बेचैन हैं कि सारा संसार मजा कर रहा है, एक हम ही छोड़ बैठे हैं, पता नहीं हमने कोई गलती न की हो! ऐसी अदभुत है यह दुनिया। ऐसी विरोधाभासी है। यहां सम्राट सोचते हैं फकीर मजे में हैं। यहां फकीर सोचते हैं सम्राट मजे में हैं। मैं तुमसे क्या कहना चाहता हूं? मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं कि तुम जहां हो वहीं मजे में हो जाओ। न फकीर बनने की जरूरत है, न सम्राट बनने की जरूरत है। सम्राट हो तो भी ठीक चलेगा। फकीर हो तो भी चलेगा। न फकीरी पकड़ो न बादशाहत पकड़ो। पकड़ो मत! जो है, जो उपलब्ध हुआ है, उसे प्रभु का प्रसाद समझकर स्वीकार करो। और जल में कमलवत रहना सीखो। रहो जल में, लेकिन जल छुए न।
पकड़ने-छोड़ने की बात नहीं है, अस्पर्शित रहने की बात है। और उस प्रक्रिया को ही मैं ध्यान कहता हूं। सब करते रहोगे संसार का कृत्य--काम, बाजार, दुकान--और भीतर कोई दूर पारदर्शक बना बैठा रहेगा! साक्षी! देखता रहेगा। उस दर्शक को, उस साक्षी को, उस द्रष्टा को कुछ भी न छूएगा। बाजार होगा तो बाजार को देखेगा और हिमालय की शांत तराइयां होंगी, घाटियां होंगी, तो हिमालय की शांत घाटियां देखेगा। दर्शक अलग ही खड़ा है। शोरगुल होगा तो शोरगुल सुनेगा, संगीत होगा तो संगीत सुनेगा, मगर सुननेवाला अलग है, पृथक है। न तो सुननेवाला शोरगुल होता है न संगीत होता है। सुख आए तो सुख, दुख आए तो दुख। सफलता, विफलता, चुपचाप देखते रहो। और जो परमात्मा दे उससे अन्यथा न मांगो। शिकायत न उठाओ। शिकायत का न उठाना ही प्रार्थना का असली स्वभाव है। वही प्रार्थना का वास्तविक रूप है। वही सप्राण प्रार्थना है। शिकायत न उठे। धन्यवाद बना रहे। दुख में भी धन्यवाद बना रहे। क्योंकि दिया है उसने, तो सकारण होगा। हम न समझ पाते होंगे। हम न पहचान पाते होंगे। लेकिन जरूर दुख में से भी कुछ निष्पन्न होता होगा--कोई प्रौढ़ता आती होगी, कोई परिपक्वता आती होगी, कुछ ज्ञान का जन्म होता होगा। हर पीड़ा प्रसव-पीड़ा है, ऐसी भाव-दशा बन जाए तो प्रार्थना।

तीसरा प्रश्नः बंबई की किसी होटल के प्रांगण में स्थापित जैन तीर्थंकर की नग्न प्रतिमा को चड्ढी पहनाई गई, ऐसा आपने बताया। मैं जानना चाहता हूं कि चड्ढी पहनाने का कार्य किसने किया?

यह तो बड़ा कठिन सवाल है। मैं कोई शरलक होम्ज तो नहीं और न ही कोई लाल बुझक्कड़ हूं। अब यह मैं कैसे पता लगाऊं कि किसने चड्ढी पहनायी।
तुमने कहानी तो सुनी होगी न, कि एक गांव में चोरी हो गई, बड़ी तलाश हुई कुछ पता न चले। सारे गांव के लोगों से पूछा गया। फिर लोगों ने कहा कि भई गांव में हमारे एक लाल बुझक्कड़ हैं, वे हर चीज को बूझ देते हैं। अब तो उन्हीं के बस की बात है। बुलाये गए लाल बुझक्कड़। वे आए बराबर शेरवानी, चूड़ीदार पाजामा, अचकन, गांधी टोपी, बिल्कुल मोरारजी भाई देसाई मालूम होते थे। इंस्पेक्टर भी समझा कि हैं तो कोई पहुंचे हुए नेता, जरूर ठीक ही कुछ जवाब देंगे। लाल बुझक्कड़ आकर खड़े हो गए। इंस्पेक्टर ने पूछा कि आप बता सकते हैं, चोरी किसने की? लाल बुझक्कड़ ने आंख बंद करके कुछ सोचा और कहाः बता सकता हूं, लेकिन एकांत में। और यह कानोंकान किसी और को खबर न हो, जो मैंने बताया।
यह बात भी इंस्पेक्टर को समझ में आई, क्योंकि कौन झंझट मोल ले। मगर चलो पता तो चल जाए आदमी का, फिर देखा जाएगा। लाल बुझक्कड़ ले गए उन्हें दीवाल की ओट में। चारों तरफ देखा, कोई भी नहीं है। कान के पास मुंह लाए, मुंह लगाकर कान में कहा कि ऐसा मालूम होता है, किसी चोर ने चोरी की है। इससे क्या हल होगा? यह तो किसी को भी पता है कि किसी चोर ने चोरी की।
अब किसी चड्ढी पहनानेवाले ने चड्ढी पहनाई होगी। ज्यादा से ज्यादा इतना ही हो सकता है कि कोई चड्ढी का भक्त रहा होगा। कोई चड्ढीवादी रहा होगा। इसलिए तो मैंने कहा कि अभी तो चल रही है चड्ढी की राजनीति। वे जो राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के लोग हैं वे चड्ढीवादी हैं। अभी तो मोरारजी की भी शेरवानी के पीछे चड्ढी का ही सहारा है। किसी चड्ढीवाले ने ही पहनायी होगी।
मगर कुछ बातें अनुमान की जा सकती हैं कि चड्ढी नहीं रही होगी, क्योंकि बीस फीट की प्रतिमा को पहनाया हुआ पाजामा चड्ढी जैसा मालूम पड़ता होगा। अब बीस फीट की प्रतिमा... । लेकिन जिसने भी पहनाया होगा बड़ा नीतिवादी रहा होगा, कि तीर्थंकर महाराज नग्न खड़े हैं, अच्छा नहीं मालूम होता, भद्द होती है। और विदेशी फोटो निकाले ले जा रहे हैं, तो विदेशों में भारत की प्रतिमा खंडित होगी! क्या लोग कहेंगे! और विदेशियों को कुछ पता तो है नहीं, वे तो समझते ही नहीं कि कौन हैं तीर्थंकर। उन्होंने तो नाम ही रखा हैः मिस्टर तीर्थंकर! जो भी आता है विदेशी, वही कहता है कि चलो मिस्टर तीर्थंकर की फोटो ले लें। विदेशी पूछते भी हैं कि मिस्टर तीर्थंकर नंगे क्यों खड़े हैं? उल्टे-सीधे सवाल... । अब उनको क्या पता? और जवाब भी क्या दो? और उनका सारा रस इस बात में है कि वे नग्न खड़े हैं। और किसी नीतिवादी को, किसी भारतीय संस्कृति की रक्षा करनेवाले को आ गया होगा ख्याल कि पहना दो चड्ढी।
मगर मैं कहता हूं कि चड्ढी न पहनाकर अगर चूड़ीदार पाजामा पहनाया होता
तो ज्यादा अच्छा रहता, क्योंकि चड्ढी किसी ने भी फाड़ दी... । चूड़ीदार पाजामा पहनाओ तो कठिन, उतारो तो कठिन। यही उसकी खूबी है, दो घंटा पहनने में लगते हैं, दो घंटा उतारने में लगते हैं। सिर्फ नेता लोग ही पहन सकते हैं, बाकी तो फुरसत भी किसको है दो घंटा उतारो, दो घंटा पहनो!
तुम पूछते होः किसने?
तो मुझे एक और कहानी याद आती है। एक स्कूल में अचानक ही इंस्पेक्टर आ गया। जैसा स्कूलों में चलता है भारत के, शिक्षक अपने पैर पसारे टेबिल पर अखबार पढ़ रहा था। कुछ लड़के ताश खेल रहे थे पीछे। कुछ लड़के कागज के तीर बनाकर लड़कियों पर फेंक रहे थे। कुछ लड़कियों को चोंटियां ले रहे थे। यह सब काम चल रहा था। मतलब भारतीय संस्कृति पूरी तरह से अपना काम कर रही थी। अचानक इंस्पेक्टर आ गया, चौंक कर, शिक्षक भी घबड़ाया, जल्दी से अखबार रखा। इंस्पेक्टर ने पूछा कि क्या चल रहा है? अब और कुछ सूझा भी नहीं, भारतीय संस्कृति के लोग, तो उसने कहा कि धर्म की कक्षा है।
"क्या पढ़ाया जा रहा है?"
अब क्या धर्म की कक्षा में... एकदम से उसको कुछ सूझा नहीं। उसने सोचाः कुछ तो बता ही देना चाहिए, जो बच्चों को आता भी हो। उसने कहाः रामचंद्र जी की कथा पढ़ाई जा रही है।

उसने कहाः अच्छा ठीक। बच्चों से पूछा कि बताओ तुम बच्चो कि जब स्वयंवर हुआ, शिवजी का धनुष किसने तोड़ा था? सब बच्चे एक-दूसरे की तरफ देखने लगे, इधर-उधर झांकने लगे। एक बच्चा बहुत सकपकाया-सा मालूम पड़ रहा था; सबसे ज्यादा डरा हुआ मालूम पड़ रहा था। एकदम कंपने ही लगा। इंस्पेक्टर ने उससे पूछा कि तू बोल, किसने धनुष तोड़ा शिवजी का?
उसने कहाः एक बात मैं आपसे कह दूं पहले, मैं तीन दिन से बीमार था, मैं स्कूल आया ही नहीं। किसी और ने ही तोड़ा होगा। मेरा इसमें बिल्कुल हाथ नहीं, नहीं तो हमेशा मैं ही फंस जाता हूं। कुछ भी चीज टूट-फूट जाए तो मुझे पकड़ लेते हैं, इसीलिए मैं कंप रहा हूं, डर रहा हूं कि अब यह झंझट आयी। फिर टूट गई कोई चीज।
इंस्पेक्टर तो बहुत हैरान हुआ। उसने कहाः यह तो हद की धर्म की कक्षा
चल रही है! उसने शिक्षक से पूछा कि आप क्या कहते हैं? शिक्षक ने कहा, हो न हो, इसी शैतान ने तोड़ा है। यह बात सच है कि तीन दिन से नहीं आया, शायद इसीलिए न आया हो। तोड़कर भाग गया हो। यह बदमाश है। यह शरारती है। मैं इसके बाप को भी जानता, इसके बाप के भी बाप को जानता। गांव-भर इनसे परेशान है। तब तो हद हो गई। इंस्पेक्टर ने कहाः यह तो खूब धर्म की कक्षा चल रही है! अब कहने को कुछ बचा ही नहीं। वह गया सीधा प्रधान अध्यापक के पास, जाकर उसने यह कहानी सुनाई कि सुनो। प्रधान अध्यापक ने कहाः अब जाने भी दो, जिसने तोड़ा हो तोड़ा हो, सुधरवा देंगे। अब जो कुछ खर्चा होगा सो हो जाएगा। अब इसको ज्यादा तूल मत दो। अब बात को ज्यादा मत बढ़ाओ। टूट गया टूट गया। जुड़ जाएगा। अब स्कूल है, इतने बच्चे हैं, चीजें टूटती-फूटती रहती हैं।
तुम मुझसे पूछ रहे हो कि यह चड्ढी किसने पहनायी? मैंने नहीं पहनायी। मैं तो इस आश्रम के बाहर पांच साल से नहीं गया हूं। इतना भर तुमसे कह सकता हूं। अब बाकी किसने पहनायी, तुम पता लगा ले सकते हो। मगर तुम्हारी मूढ़ता ने ही पहनायी है।
यह देश बड़ा मूढ़ हो गया है। इस देश ने कभी गौरव के दिन भी देखे हैं, कभी महिमामंडित दिन भी देखे हैं। तब इसने खजुराहो बनाए थे, कोणार्क बनाया था, पुरी के और भुवनेश्वर के मंदिर बनाए थे। वे जीवन के मंदिर थे, उमंग के मंदिर थे, उत्सव के मंदिर थे। नाच-नृत्य-गीत! वे प्रेम के मंदिर थे। फिर यह देश पतित हुआ। यह देश बूढ़ा हुआ, सड़ा। फिर यह भूल ही गया जीवन की तरंगें। जीवन का खुमार उतर गया। लोग बस यही सोचने लगे कैसे भवसागर से पार हो जाएं, आवागमन से कैसे छुटकारा हो? लोग मरणवादी हो गए। लोग आत्मघाती हो गए। जिसको तुम आवागमन से छुटकारा कहते हो, वह कोई तुम्हारी धार्मिक भाव-दशा नहीं है, वह सिर्फ तुम्हारी आत्मघाती वृत्ति है।
यह देश पतित हुआ। इसने अपने शिखर खो दिए सूर्यमंडित। यह बहुत नीची तराइयों में उतर गया। वहां से अब इसको सिवाय मृत्यु के कुछ भी नहीं सूझता है। यह बहुत डर गया है। यह हर चीज से भयभीत है। यह मनुष्य की प्रकृति से भयभीत है। यह किसी प्राकृतिक तत्व को स्वीकृति नहीं देना चाहता।
अब नग्नता मनुष्य की प्राकृतिकता है। इसमें क्या भय है? हिम्मतवर रहे होंगे वे लोग, जब महावीर नग्न हुए और उनके साथ हजारों लोग नग्न हो गए! और हिम्मतवर रहे होंगे वे लोग जिन्होंने उन्हें स्वीकार किया, सम्मान दिया। और पुरुषों में ही नहीं, तुम जानकर चकित होओगे, कश्मीर में एक अदभुत महिला हुई, लल्ला, नग्न रही। पुरुष नग्न रह जाएं, यह तो ठीक; लेकिन स्त्री को तो और भी लाज-संकोच पकड़ता है। लेकिन लल्ला महावीर जैसी स्त्री थी। बस महावीर की तुलना में लल्ला को ही रखा जा सकता है सारी दुनिया के इतिहास में। और कश्मीर ने बहुत सम्मान दिया लल्ला को। कश्मीर में लोग कहते हैंः हम तो दो ही शब्द जानते हैं--अल्लाह और लल्लाह। बस दो ही शब्द पहचानते हैं। दो को ही हमने आदर दिया है। एक नग्न स्त्री को! और लल्ला बड़ी सुंदर स्त्री थी, कश्मीरी थी! और बड़ी सुंदर स्त्री थी। और एक और सौंदर्य पैदा होता है जब कोई व्यक्ति समाधिस्थ हो जाता है। लल्ला समाधिस्थ थी। तब एक अपूर्व प्रसाद बरसता है। फिर साधारण सौंदर्य नहीं रह जाता, पारलौकिक हो जाता है।
उस अपूर्व सुंदर स्त्री को नग्न देखकर भी लोगों ने कुछ विरोध न किया। लोग सम्मान में झुके। जिंदा लोग थे। अभी कौम की रगों में खून दौड़ता था।
अभी कौम जीवन को, प्रकृति को, अंगीकार करती थी, नैसर्गिक थी। अब हालत बिगड़

गई है। अब हालत बुरी है। जब भी कोई कौम बहुत पतित हो जाती है तो जीवन में जड़ें खो देती है, और मृत्यु में सहारा खोजने लगती है।
इसलिये मुझ पर लोग नाराज हैं। क्योंकि मैं चाहूंगा खजुराहो के मंदिर फिर बनें। मैं चाहूंगा खजुराहो के मंदिर में फिर आरती उतरे, फिर दीप जलें। वे सिर्फ खंडहर न रह जायें। मैं चाहूंगा कि महावीर और लल्ला जैसे अदभुत पुरुष-स्त्रियां फिर इस पृथ्वी पर हों।
मैं इस देश को फिर से युवा करना चाहता हूं। लेकिन बूढ़े नाराज हैं, बहुत नाराज हैं! पंडित, पुरोहित, पुरातनवादी बहुत नाराज हैं। उन्हें लगता हैः मैं धर्म भ्रष्ट कर रहा हूं। उन्हें पता ही नहीं। उन्हें अपनी संस्कृति का भी पता नहीं।
मोरारजी देसाई कहते हैं कि मेरी मौजूदगी भारत की प्रतिमा के लिये बड़ी घातक है; मेरी खबर दुनिया में नहीं जानी चाहिये, नहीं तो भारत की प्रतिमा गिर जायेगी।
थोड़ा भारत का इतिहास तो उठा कर देखो! अभी-अभी एक चार-छः दिन पहले अखबारों में खबरें आयी हैं कि चित्रकूट के पास एक छोटा-सा नया खजुराहो मिल गया है। जंगलों में दबा पड़ा था खंडहरों में। यह खजुराहो से भी ज्यादा महत्वपूर्ण जगह है, क्योंकि इसका मूल्य इसलिये है कि खजुराहो में तो जो नग्न आलिंगन मैथुन की प्रतिमायें, प्रेम की, उल्लास की, आनंद की, वे नर-नारियों की हैं। चित्रकूट में जो मंदिर मिला है, उसके मंदिर पर जो प्रतिमायें हैं वे देवी-देवताओं की हैं। वे भी नग्न हैं। वे भी आह्लाद में मग्न हैं। वे भी प्रेम में, आलिंगन में आबद्ध हैं। मिथुन-प्रतिमायें हैं देवी-देवताओं की! ये तो और खतरनाक हैं। मोरारजी भाई के पैर के नीचे की जमीन तो और खिसक जायेगी कि खजुराहो ही ठीक था, कम से कम आदमी थे। आदमी को कहा जा सकता है कि आदमी ही हैं, भ्रष्ट रहे होंगे। मगर ये देवी-देवताओं की प्रतिमायें हैं।
तुम जरा अपने पुराण उठाकर देखो। वे जीवंत थे दिन। उन पुराणों में तुम्हें कहानियां मिल जायेंगी कि कभी-कभी वे स्वर्ग के देवता पृथ्वी की किसी स्त्री पर मोहित हो जाते। स्वर्ग के देवता छिपकर कभी पृथ्वी की किसी स्त्री के प्रेम में पड़ जाते! लेकिन फिर भी हमने उन्हें पुराणों में देवताओं को इंकार नहीं किया, स्वीकार रखा। इसको हमने सौभाग्य समझा कि पृथ्वी के प्रेम में कभी-कभी कोई देवता पड़ जाये, यह हमारी पृथ्वी का धन्यभाग है। इसमें कुछ हमने अनीति नहीं समझी। इसे हमने पृथ्वी का गौरव समझा।
अब अगर मोरारजी भाई को मिल जाये यह किताब तो वे काट ही दें इस लकीर को
कि यह तो बात बहुत ही गलत हो गई कि देवता भी और भ्रष्ट! देवता भी पृथ्वी की स्त्रियों के प्रेम में पड़ते हैं!
और ऐसा इकतरफा नहीं था। कभी-कभी अप्सरायें आकाश की पृथ्वी के प्रेम में पड़ जाती थीं। उर्वशी उतरी, पुरुरवा के प्रेम में पड़ गई। तब पृथ्वी और आकाश बहुत करीब-करीब थे, मालूम होता है। इतना फासला नहीं था। लोग आते-जाते थे।
ये प्रतीक कहानियां बड़ी मधुर हैं। और तुम अगर अपने पुराणों में जाओगे--जिनमें तुम जाते भी नहीं, जिनकी तुम चाहो तो कभी-कभी पूजा कर लेते हो, दो फूल चढ़ा देते हो, चंदन लगा देते हो और भूल जाते हो।
तुम्हें ज्ञात है कि शंकर का शिवलिंग कैसे पैदा हुआ? पुराणों में क्या कथा है? और अगर मेरी मौजूदगी भारत की प्रतिमा को खंडित कर रही है तो ये शिवलिंग जो सारे देश में फैले हुए हैं, इनका क्या करोगे? मोरारजी भाई, हर शिवलिंग के पास एक पुलिसवाले को खड़ा कर दो कि कोई तस्वीर न उतार ले। और पुराण जिसमें इनकी कथाएं हैं, उनको जला दो। क्योंकि पुराण में जो कथा है, बहुत अदभुत ह.ै।
पुराण में कथा यह है कि विष्णु और ब्रह्मा में किसी बात पर विवाद हो गया। विवाद इतना बढ़ गया कि कोई हल का रास्ता न दिखायी पड़ा, तो उन्होंने कहा कि हम चलें और शिवजी से पूछ लें, उनको निर्णायक बना दें। वे जो कहेंगे हम मान लेंगे।

तो दोनों गए। इतने गुस्से में थे, विवाद इतना तेज था कि द्वार पर दस्तक भी न दी, सीधे अंदर चले गए। शिव पार्वती को प्रेम कर रहे हैं। वे अपने प्रेम में इतने मस्त हैं कि कौन आया कौन गया, इसकी उन्हें फिक्र ही नहीं है। ब्रह्मा-विष्णु थोड़ी देर खड़े रहे, घड़ी-आधा-घड़ी, घड़ी पर घड़ी बीतने लगी और उनके प्रेम में लवलीनता जारी है। वे एक-दूसरे में डूबे हैं। भूल ही गए अपना विवाद ब्रह्मा और विष्णु और दोनों ने यह शिवजी के ऊपर दोषारोपण किया कि हम खड़े हैं, हमारा अपमान हो रहा है और शिव ने हमारी तरफ चेहरा भी करके नहीं देखा। तो हम यह अभिशाप देते हैं कि तुम सदा ही जननेंद्रियों के प्रतीक-रूप में ही जाने जाओगे।
इसलिए शिवलिंग बना। तुम्हारी प्रतिमा कोई नहीं बनाएगा। तुम जननेंद्रिय के ही रूप में ही बनाए जाओगे। वही तुम्हारा प्रतीक होगा। यही हमारा अभिशाप है, ताकि यह बात सदा याद रहे कि हम आए थे, लेकिन तुम अपने प्रेम में इतने लीन थे कि तुमने हमारी उपेक्षा की।
इन पुराणों का क्या करोगे? और ये कोई इक्की-दुक्की कथाएं नहीं हैं, ये सारे पुराणों में फैली हैं। मगर ये बड़े और तरह के लोग रहे होंगे, जो जीवन को अंगीकार करते थे। ये और तरह के लोग रहे होंगे, जो छोटी-छोटी बात में रो- रो कर नहीं कहने लगते थेः जीवन क्षणभंगुर है! जो छोटी-छोटी बात में रो-रो कर नहीं कहने लगते थेः हे प्रभु, उठा लो अब! इस संसार से छुटकारा दिला दो! ये लोग थे, जो स्वीकार करते थे कि परमात्मा ने संसार में भेजा है तो यह परीक्षण है, यह शिक्षण है; इससे गुजरना है। और इससे जितनी मस्ती से हम गुजर सकें उतना अच्छा है।
तो जिसने भी यह चड्ढी पहना दी हो तीर्थंकर की प्रतिमा को, रहा होगा कोई नीतिवादी, कोई गांधीवादी, रहा होगा कोई दकियानूसी, सड़ा-गला दिमागवाला।
तुम्हें यह जानकर हैरानी होगी कि पुरुषोत्तमदास टंडन ने महात्मा गांधी को यह सलाह दी थी कि खजुराहो और कोणार्क के मंदिरों को मिट्टी में दबा देना चाहिए, क्योंकि इनसे भारत की प्रतिमा खंडित होती है। महात्मा गांधी राजी भी थे। यह तो सौभाग्य की बात है कि रवींद्रनाथ ठाकुर ने बहुत विरोध किया कि यह तो बात गलत है। ये प्रतिमायें तो अपूर्व सौंदर्य की प्रतीक हैं। ये तो मनुष्य के प्रति मनुष्य के प्रेम के ज्वलंत उदाहरण हैं। ये प्रतिमाएं अश्लील नहीं हैं। रवींद्रनाथ ने यह इतने आग्रहपूर्वक कहा कि ये प्रतिमाएं अश्लील नहीं हैं, ये प्रतिमाएं अत्यंत उद्दाम हैं! इनके चेहरे पर भाव तो देखो! पत्थर पर समाधि को अगर खोदने में कभी भी कोई कलाकार कहीं समर्थ हुए हैं तो खजुराहो में समर्थ हुए हैं।
रवींद्रनाथ के अति विरोध के कारण यह बात रुकी, अन्यथा गांधीजी तो राजी थे कि इनको मिट्टी में दबा दिया जाए, बड़े चबूतरे बना दिये जाएं मंदिरों के ऊपर, कभी-कभार सदियों में एकाध बार किसी विशिष्ट अतिथि को दिखाने के लिए अगर खोदना हो तो खोद कर मिट्टी साफ करके दर्शन करा देना। ऐतिहासिक रूप में ये प्रमाण रहेंगे, लेकिन ये पृथ्वी से मिटा दिए जाने चाहिए, छिपा दिए जाने चाहिए।
ऐसी कौम अगर मर जाए तो फिर आश्चर्य नहीं होना चाहिए। फिर स्वाभाविक
है मृत्यु।
मैं चाहता हूं कि हम जीवन जैसा है, जैसा परमात्मा ने दिया है, उसको वैसे ही अंगीकार करने में समर्थ हों। अगर महावीर नग्न खड़े हुए थे तो क्या हर्ज है कि उनकी प्रतिमा नग्न बनायी जाए? लेकिन जैन तक तरकीबें निकाल लेते हैं।
मैं एक घर में मेहमान था। बड़ा सुंदर महावीर का एक चित्र लगा हुआ था। मगर तरकीबें... आदमी की बेईमानियां तो देखो! तुम अपने तीर्थंकरों को, जिनकी तुम पूजा करते हो, उनके साथ भी धोखा कर जाते हो। प्रतिमा तो महावीर की बनायी है चित्र में, लेकिन एक झाड़ की ओट में बनायी है और झाड़ की शाखाएं इस तरह फैलायी हैं कि उनकी नग्नता छिप जाए। पहना दी चड्ढी, तरकीब से पहना दी। महावीर को खड़ा कर दिया। महावीर नग्न हैं, ऐसा नहीं कि उनको कपड़ा पहना दिया। मगर इस तरफ से इस तरह की वृक्ष की शाखाएं फैला दीं कि वृक्ष के

पत्तों में उनकी नग्नता छिप गयी। जिनके घर मैं मेहमान था, मैंने कहा कि आप इस चित्र की पूजा करते हैं?
उन्होंने कहाः हां, रोज पूजा करता हूं। बड़ा प्यारा चित्र है!
मैंने कहाः चित्र तो प्यारा है, मगर तुम्हारी बेईमानी का भी सबूत है। इसमें यह झाड़ कैसे निकला? और ठीक इसी जगह कैसे निकला? और महावीर कब से वहीं खड़े हैं, हटेंगे भी कि नहीं?
उन्होंने कहाः इस पर मैंने कभी विचार ही नहीं किया, यह बात आप ठीक कहते हैं।
अगर महावीर नग्न थे तो कम-से-कम तुम जो उनकी पूजा करते हो, तुम तो स्वीकार करो कि नग्न थे। तुम छिपा रहे हो। बेईमानी, चालाकियां... हमारे हृदय में घर कर गई हैं। और हमने कुछ धारणायें बना ली हैं और उन धारणाओं के अनुसार हम हर चीज पर अपने को आरोपित कर देते हैं। हम किसी को स्वतंत्रता भी देना नहीं चाहते। अगर महावीर की यही मौज थी, अगर उनके ध्यान में यही फला कि वे सारे वस्त्र छोड़ दें, तो ठीक। प्रत्येक व्यक्ति को निजी होने का अधिकार है। और यही तो सम्मानित समाज का लक्षण है कि हम उसको उसकी निजता में स्वीकार करें, उसको निजता दें। महावीर नग्न रह सके, अगर उनको यह अच्छा लगा तो ठीक था। यह उनकी बात थी, किसी को इसमें बेचैनी क्या? अगर तुम्हें बहुत अड़चन हो तो अपनी आंख झुकाकर निकल जाओ, अपनी आंख पर काला चश्मा पहन लो, आंख पर पट्टी बांध लो। आंख तुम्हारी है। मगर महावीर को तो चड्ढी मत पहनाओ, महावीर के आसपास तो झाड़ मत उगाओ। आंख तुम्हारी है, तुम्हें न देखना हो आंख बंद कर लो, कौन तुमसे कह रहा है, कौन जबर्दस्ती दिखला रहा है!
नहीं, लेकिन लोग दूसरे पर आरोपित होना चाहते हैं, दूसरे पर अपने को थोपना चाहते हैं।

एक मित्र ने पूछा हैः आत्मज्ञानियों के लक्षण के साथ आश्रमवासियों का वर्तन समाज में ठीक नहीं मालूम पड़ता। शिष्यों को आप क्यों नहीं बताते?

पूछनेवाले का नाम भी हैः नीतिकुमार! मुश्किल से ही ऐसे लोग मिलते हैं,
जो अपने नाम के अर्थ को सार्थक भी करते हैं; नहीं तो यहां कुरूप से कुरूप स्त्रियों का नाम होता हैः सुंदरबाई। चोर-लफंगों का नाम होता हैः अच्छेलाल। यहां अंधों का नाम होता हैः नैनसुख। मगर नीतिकुमार, तुम्हारा नाम जिन्होंने भी दिया बड़े सोचकर दिया। तुम्हें क्या बेचैनी है?
तुम पूछते होः आत्मज्ञानियों के लक्षण के साथ आश्रमवासियों का वर्तन समाज में ठीक मालूम नहीं पड़ता। शिष्यों को आप क्यों नहीं बताते? आत्मज्ञानियों का क्या लक्षण होता है? किसी ने ठेका लिया है? महावीर नग्न थे, बुद्ध नग्न नहीं थे; कौन-सा लक्षण आत्मज्ञानी का है--नग्न होना या वस्त्र पहनना? बुद्ध शांत बैठे रहे वृक्ष के नीचे, कृष्ण बांसुरी बजाकर नाचते थे; कौन-सा लक्षण आत्मज्ञानी का है--वृक्ष के नीचे शांत बैठे रहना कि बांसुरी बजाना? राम धनुष-बाण लेकर चलते थे। महावीर ने कहा हैः पैर भी फूंक-फूंक कर रखना, चींटी भी न मर जाए। अब धनुष-बाण कोई ऐसे ही तो टांगकर नहीं चलता, काहे के लिए टांगकर चलेगा बोझ कोई! रामचंद्र जी कोई गणतंत्र-दिवस में भाग लेने दिल्ली थोड़े ही जा रहे थे। तो इसमें आत्मज्ञानी का लक्षण कौन-सा है--पांव फूंक-फूंक कर रखना कि धनुष-बाण साथ में लेकर चलना? जैन कहते हैं कि महावीर अगर रास्ते पर चलते भी थे तो सीधे पड़े कांटे उलटे हो जाते थे, क्योंकि महावीर जैसे पुण्यात्मा व्यक्ति को कांटा कैसे चुभ सकता है? और जीसस को तो सूली लग गई; कांटा ही नहीं चुभा, सूली लग गई। आत्मज्ञानी का लक्षण क्या है--कांटे का न चुभना कि सूली का लग जाना? कितने आत्मज्ञानी हुए पृथ्वी पर, लक्षण कैसे खोजोगे? अब तक कोई स्टेंडर्डाइज्ड लक्षण तो है नहीं। कोई सरकारी संस्थान भी नहीं है जो कि तय कर दे कि हम सील-मोहर लगा देंगे कि यह आत्मज्ञानी, यह इसका लक्षण। किस बात को तुम लक्षण कहते हो?
महावीर तो कहते हैंः श्वास भी सम्हाल कर लेना कि कोई कीटाणु मर न जाए, पानी भी छान कर पीना। और कृष्ण कहते हैं अर्जुन को कि तू लड़ अर्जुन, कोई फिक्र न कर। न हन्यते हन्यमाने शरीरे! शरीर को काटने से आत्माएं इत्यादि

मरती नहीं, तू बेधड़क काट। काटने वाला वही है! और आत्मा तो अमर है। नैनं छिन्दंति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः। कौन है इसमें आत्मज्ञानी फिर? ये कृष्ण आत्मज्ञानी हैं, जो कहते हैं बेधड़क काट, कोई मरता नहीं कभी, इसलिए हिंसा तो हो ही नहीं सकती; या फिर महावीर आत्मज्ञानी हैं जो कहते हैं, रात भी पानी मत पी लेना अंधेरे में, कहीं कोई कीड़ा-मकोड़ा न गिर जाए! महावीर रात करवट नहीं बदलते थे सोते में, क्योंकि करवट बदलें और कहीं कोई चींटी-चींटा पीछे आ गया हो रात, दब जाए, मर जाए, तो रात एक ही करवट सोते थे। कौन आत्मज्ञानी है? आत्मज्ञानी का क्या लक्षण? नीतिकुमार, तुम तय करोगे कि आत्मज्ञानी का लक्षण क्या है?
इसलिए मैं अपने शिष्यों को कोई चीज जबर्दस्ती नहीं थोपता। मैं उन्हें ध्यान दे रहा हूं। किसी में ध्यान बांसुरी बनकर बजेगा। और किसी में ध्यान चुप्पी बन कर ठहर जाएगा। अगर मैं उनसे कहूं कि तुम बांसुरी ही बजाना सब, तो बड़ी झंझट खड़ी होगी, क्योंकि कुछ बड़ी बेसुरी बांसुरियां बजने लगेंगी; जिनके प्राणों में बांसुरी नहीं है वे बैठे बांसुरी बजाएंगे। नाराज भी होंगे। मुझको भी गाली देंगे कि अच्छी झंझट लगा दी, अब यह बांसुरी बजाओ! आत्मज्ञानी का लक्षण बांसुरी बजाना! बांसुरी बजती भी नहीं, मोहल्ले-पड़ोस के लोग भी नाराज होते हैं, मगर बजानी पड़ेगी; नहीं तो आत्मज्ञानी न रहे। या मैं उनसे कहूं कि बांसुरी कभी बजाना ही मत, बस वृक्ष के नीचे बैठे रहना। पर जिनके भीतर बांसुरी पैदा होगी, वे क्या करेंगे, वे तिलमिलाने लगेंगे, बेचैन होने लगेंगे।
मैं कोई ढांचा नहीं देता। मैं तो सिर्फ आंतरिक सूत्र दे रहा हूं; आचरण नहीं, अंतस दे रहा हूं। फिर आचरण तो प्रत्येक का अलग-अलग होगा। प्रत्येक व्यक्ति इतना भिन्न और अद्वितीय है। मेरे मन में अद्वितीयता की, भिन्नता की बड़ी प्रतिष्ठा है। तो मैं तो तुम्हें ध्यान दूंगा; फिर किसी में ध्यान बांसुरी बन जाएगा, किसी में ध्यान मीरा बनकर नाचेगा। किसी में ध्यान शांत हो जाएगा, किसी में ध्यान बोलेगा और किसी में ध्यान मौन हो जाएगा। किसी में ध्यान नग्न हो जाएगा। किसी में ध्यान कोई रूप लेगा, किसी में ध्यान कोई रूप लेगा। अनंत रूप होंगे ध्यान के। सिखाने की बात ध्यान है। बस तुम्हारे भीतर परमात्मा से संबंध जुड़ जाए, इतना मैं सिखाता हूं, इससे ज्यादा मेरा कोई काम नहीं है। इससे ज्यादा अन्याय है। इससे ज्यादा हस्तक्षेप है। इससे ज्यादा तुम्हारी स्वतंत्रता के ऊपर बलात्कार है। लेकिन तुम्हारी आदतें खराब हो गयी हैं। तुम्हें गुलाम होने की आदत हो
गई है। तुम इस तरह के साधु, पंडितों के पास रहे हो कि वे तुम्हारी गर्दन को पूरी तरह दबा लेते हैं। वे हर चीज में पकड़ लेते हैं--ऐसा उठो ऐसा बैठो, यह खाओ यह पीयो यह सोओ। वे तुम्हारे पूरे जीवन के लिए व्यवस्था दे देते हैं। वे तुमसे सारा दायित्व ले लेते हैं। वे तुम्हें गुलाम बना देते हैं। वे तुम्हें मशीन बना देते हैं। तुम्हें उसमें एक सुविधा रहती है, तुम्हारे ऊपर कोई दायित्व नहीं रह जाता; लेकिन साथ ही तुम्हारी स्वतंत्रता भी खो जाती है। और जहां स्वतंत्रता खो गई, वहां आत्मा खो गई। वहां परमात्मा का द्वार खो गया।
मैं तुम्हें स्वतंत्रता देता हूं, लेकिन साथ ही एक खतरा भी है, क्योंकि स्वतंत्रता के साथ ही दायित्व भी तुम्हारा है। अब तुम्हें ही अपनी जीवनचर्या को सोचना होगा। मैंने तुम्हें रोशनी दे दी है, रास्ता तुम्हें खोजना होगा। तुम्हारे हाथ में दीया जला दिया है। अब तुम जैसे भी जीना चाहो, मैं तुम्हारे जीवन में जरा भी बाधा न दूंगा। यही मेरी विशिष्ट प्रक्रिया है। और इसे समझने में अड़चन होती है।
स्वाभाविक है, नीतिकुमार का कहना स्वाभाविक है। लेकिन प्रत्येक व्यक्ति की निजता का मूल्य उनकी दृष्टि में नहीं है। वे चाहते होंगे कि मैं इस तरह की एक भीड़ खड़ी कर दूं, जैसे सिपाहियों की भीड़ होती है, या सैनिकों की भीड़ होती है। संन्यासी सैनिक नहीं है। संन्यासी सैनिक से ठीक उलटे छोर पर है। सैनिक का काम है खुद न सोचे, सिर्फ आज्ञा का अनुसरण करे। संन्यासी का काम हैः खुद जागे और अपने जागरण से जीये। दोनों में बड़ा भेद है।

दुनिया में सैनिकों की जरूरत नहीं है अब। बहुत हो चुके सैनिक और बहुत
हम कष्ट भोग चुके सैनिकों के कारण। अब यहां स्वतंत्रचेता संन्यासियों की जरूरत है--जो अपना दायित्व समझेंगे और अपने ढंग से जीएंगे। और यह मेरी मान्यता है कि अगर कोई भी व्यक्ति अपने ढंग से जी रहा है और किसी दूसरे को नुकसान नहीं पहुंचा रहा है, चोट नहीं कर रहा है, तो किसी दूसरे को हक नहीं है कि उसकी सीमा में बाधा डाले। तुम्हें क्या अड़चन है? तुम्हारी धारणा होगी यह कि संन्यासी को नाचना नहीं चाहिए; लेकिन यह तुम्हारी धारणा है, तुम मत नाचो। कोई संन्यासी नाच रहा हो इस कारण यह मान लेना कि वह संन्यासी नहीं है, जरा अपनी सीमा के बाहर जाना है। नीतिकुमार, यह तो अनीति हो जायेगी।
प्रत्येक परिस्थिति इतनी भिन्न है, प्रत्येक मनःस्थिति इतनी भिन्न है।
मैंने सुना, एक कवि के विवाह में पंडित वर-वधु को वचन दिला रहे थे, तभी कवि का एक मित्र बोलाः पंडितजी, यह वचन और दिला दीजिए कि वर बिना वधु की इच्छा के उस पर दबाव डाल कर अपनी कविता सुनने के लिए बाध्य नहीं कर सकेगा। अब यह एक विशेष परिस्थिति की बात है। किसी कवि से विवाह हो रहा हो तो पंडित को यह कसम दिला ही देनी चाहिए, क्योंकि कवि को सुनते कहां, मिलते कहां लोग सुनने वाले? पत्नी तो असहाय हो जायेगी और पंडित ने अगर आज्ञा दिलवा दी कि पति की आज्ञा मानना, पति की दासी रहना तो पति रोज अपना पोथा ले कर बैठ जायेगा। अपनी कविता सुनायेगा। वह सुननी पड़ेगी; सुननी ही नहीं पड़ेगी, सिर भी हिलाना पड़ेगा, हामी भी भरनी पड़ेगी।
यह मित्र ने ठीक ही कहा, क्योंकि यह विशेष परिस्थिति का शायद पंडित को पता ही न हो कि ये कवि महाराज हैं! इनका सबसे बड़ा खतरा यही है कि ये तुकबंदी करेंगे, इसके सिर पर थोपेंगे। यह कसम अभी दिलवा देनी अच्छी है कि जबर्दस्ती नहीं की जा सकेगी।
मैंने एक दिन मुल्ला से पूछा कि आपके चारों लड़कों का क्या हाल-चाल है? मुल्ला ने कहाः एक संगीतकार हो गया है, दूसरा कवि हो गया है, तीसरा नेता हो गया है और चौथे के भी लक्षण खराब हैं। कौन-से लक्षण अच्छे होते हैं, कौन-से खराब होते हैं? ठीक ही कह रहा है मुल्लाः एक संगीतकार हो गया है, एक कवि हो गया है, तीसरा नेता हो गया है, चौथे के भी लक्षण खराब हैं। प्रत्येक की अपनी दृष्टि होगी देखने-सोचने की।
दीपावली के पावन पर्व पर एक सुप्रसिद्ध सामाजिक संस्था ने अपने भवन कक्ष में एक पुस्तकालय खोलने का निर्णय किया। दूसरे दिन संस्था के अध्यक्ष ने एक बड़े पुस्तक-विक्रेता से फोन पर कहाः देखिए, आप तुलसी, कबीर, मीरा, कालिदास, शेक्सपियर, गैटे आदि के पूरे सैट सजिल्द भेज दीजिए और सुनिए, कुछ पढ़ने लायक किताबें भी भेज दीजिए।
क्योंकि ये किताबें तो कोई पढ़ता नहीं, पढ़ने लायक किताबें तो और ही होती हैं। ये किताबें तो रखने योग्य होती हैं। ये तो लोग सजा कर रख देते हैं अलमारी में। ये तो दिखाने के लिए होती हैं।
राशन की लाइन में एक दुबला-पतला व्यक्ति एक मोटे व्यक्ति के आगे खड़ा था। सामने खड़े हुए एक सिपाही ने देखा कि वह बार-बार बाहर आता है, फिर अंदर जाकर लाइन में खड़ा हो जाता। सिपाही ने लगातार उसका लाइन से बाहर आना एवं फिर अंदर जाना देखकर कहाः महाशय, आप लाइन में ही खड़े रहें और कृपा कर बार-बार बाहर न आएं। दुबले-पतले युवक ने दीनता भरे स्वर में कहाः साहब, यह मोटा आदमी जो मेरे पीछे खड़ा है बार-बार मुझे धक्का दे रहा है। और जब धक्का असह्य हो जाता है तो मैं थोड़ा बाहर चला जाता हूं। फिर जब सहने की हिम्मत आ जाती है तो फिर भीतर आ जाता हूं। मोटा व्यक्ति उसकी बात सुनकर तैश में आकर बोलाः सिपाही जी, मैं इसको धक्का नहीं दे रहा, मैं तो सिर्फ सांस ले रहा हूं।
लोग अलग-अलग हैं, लोग भिन्न-भिन्न हैं। किसी को हक नहीं है कि ऊपर से कोई आरोपण किया जाए। मैं तुम्हें दृष्टि दे सकता हूं, आचरण नहीं। और अब तक तुम्हें आचरण ही दिया गया है, वही सबसे बड़ी खतरनाक बात हुई। उसके कारण तुम पाखंडी हो गये। उसके कारण तुमने अपनी निजता के साथ व्यभिचार किया। तुमने कभी अपने स्वयं के छंद को प्रगट नहीं होने दिया, उसे दबाया। तुम्हें जो

बताया गया वह तुमने मान लिया, और जो तुम्हारे भीतर उमग रहा था उसे तुमने दबा दिया। तुम दो हिस्सों में टूट गए। तुममें द्वंद्व पैदा हो गया।
यही तो मनुष्य का विषाद है। द्वंद्वग्रस्त मनुष्य विषादग्रस्त रहेगा। द्वंद्व ही संताप है और आनंद की घड़ी तभी आती है जब तुम फिर एक हो जाओ।
मैं यहां अपने संन्यासियों को एक करने की चेष्टा में रत हूं। मैं चाहता हूं उनके सारे आदर्श छीन लूं, क्योंकि उन आदर्शों के कारण वे पांखडी हो गए हैं। तुम सोचते हो आदर्शों के बिना आदमी का पतन हो जाएगा। मैं सोचता हूं आदर्शों के कारण ही आदमी पाखंडी हुआ है। मनुष्य को उसकी वास्तविकता के दर्शन होने चाहिए, आदर्श की आवश्यकता नहीं है।
जो आदमी क्रोधी है, तुम्हारा ढंग क्या होता है? तुम्हारा ढंग यह होता हैः क्रोध मत करो, क्रोध बुरी बात है। क्रोध करोगे, नर्क में पड़ोगे। क्रोध करोगे, सम्मान खो जाएगा। क्रोध करोगे, लोग प्रतिष्ठा न देंगे। क्रोध मत करो। मगर जिसको क्रोध उठता है, वह क्या करे? वह क्रोध को दबाये, पीये, अपने भीतर सरकाए; क्रोध उसके खून में छा जायेगा, क्रोध उसकी रग-रग में भर जाएगा। पहले तो कभी-कभी क्रोध होता था, अब तो वह चौबीस घंटे क्रोधी रहने लगेगा। क्रोध उसकी नियति बन जाएगी। और ऊपर से मुस्कुरायेगा; वह मुस्कुराहट झूठ होगी, कागजी होगी। और यही उसकी जिंदगी बरबाद करने का कारण बन जाएगी। ऊपर मुस्कुराता रहेगा, भीतर जलता रहेगा। न मुस्कुराहट सच्ची हो पायेगी, न जलन को निकलने का कोई मौका मिल पायेगा और जहर निकले न तो तुम कभी स्वच्छ न हो सकोगे।
तो मैं नहीं कहता कि अक्रोध कोई लक्ष्य है। मैं तो कहता हूंः क्रोध अगर है तो क्रोध का जानना लक्ष्य है, पहचानना लक्ष्य है, क्रोध से परिचित होना लक्ष्य है। भविष्य में नहीं है कोई आदर्श। मैं तुमसे अक्रोधी होने को नहीं कहता। मैं तुमसे कहता हूंः क्रोध तुम्हारे भीतर है, यह तथ्य है। इस तथ्य को जानो, इस पर ध्यान करो, इसको पहचानो। इसको पकड़ो, यह है क्या? निर्णय मत लो। पहले से ही तय मत कर लो कि क्रोध गलत है। निर्णय ही कर लिया तो फिर कैसे जानोगे? निरीक्षण करो, निष्पक्ष निरीक्षण करो। और तुम चकित हो जाओगे, क्रोध को देखते ही देखते क्रोध वाष्पीभूत हो जाता है। क्योंकि जैसे ही साक्षी जगता है, जैसे ही तुम्हारे भीतर देखने वाली क्षमता जगती है, वैसे ही क्रोध के बचने का उपाय नहीं रह जाता, क्योंकि क्रोध के रहने की जो अनिवार्य शर्त है वही टूट गई। क्या है अनिवार्य शर्त? ... कि साक्षी मौजूद न हो। मूर्च्छा होनी चाहिए तो क्रोध बचता है। मूर्च्छा क्रोध की अनिवार्य शर्त है। तादात्म्य होना चाहिए। तुम्हें भूल ही जाना चाहिए तुम हो। बस क्रोध ही क्रोध रह जाए, धुआं ही धुआं रह जाए और तुम उस धुएं में बिल्कुल एक हो जाओ, तो क्रोध बचता है। अगर तुम धुएं के बाहर दूर, शांत निर्विचार खड़े देखते रहो कि यह धुआं चारों तरफ उठ रहा है, यह क्रोध मुझे घेर रहा है। यह क्रोध क्या है, मैं इसे देखूं, मैं इसे पहचानूं, यह मेरा ही अंग है, यह मेरी ही ऊर्जा है, मैं इससे अपरिचित न रह जाऊं, मैं इसका आत्मज्ञान करूं--ऐसे भाव से अगर तुम क्रोध को देखोगे तो तुम चकित हो जाओगे। क्रोध न तो किसी पर फेंकना पड़ेगा, क्योंकि किसी पर क्रोध करो तो शृंखला पैदा होती है। क्रोध से फिर और क्रोध और क्रोध, उसका कोई अंत नहीं। और न क्रोध को दबाना पड़ेगा, क्योंकि दबाओ तो जहर भीतर पहुंच जाता है, तुम्हारे रग-रेशे में व्याप्त हो जाता है।
न तो दमन और न भोग; दोनों के मध्य में एक साक्षी की दशा है, वही मैं सिखाता हूं। उसमें दमन की भी जरूरत नहीं रह जाती, भोग की भी जरूरत नहीं रह जाती। उस मध्य बिंदु से अतिक्रमण हो जाता है। तुम चित्त के अतीत चले जाते हो। और जो वहां पहुंचने लगा, वहां कहां क्रोध, वहां कहां काम, वहां कहां लोभ! छोड़ना नहीं पड़ता लोभ, छोड़ना नहीं पड़ता काम, छोड़ना नहीं पड़ता क्रोध-- छूट जाते हैं।
इस भेद को समझ लेनाः छूट जाते हैं! तुमसे कहा गया हैः छोड़ो। मैं अपने संन्यासियों को कहता हूं कि मैं तुम्हें दीया जलाने की कला बताता हूं। दीया जल जाए, अंधेरा चला जाता है, हटाना नहीं पड़ता। मैं तुम्हें आचरण नहीं देता, मैं तुम्हें आचरण की कोई संहिता नहीं देता, तुम्हें कोई आदर्श नहीं

देता। तुम्हें कैसा होना चाहिए, इसकी कोई बंधी हुई तस्वीर नहीं देता।
लेकिन तुम क्या हो, इसकी पहचान की प्रक्रिया देता हूं। इस भेद को खूब स्मरण रखो। तुम क्या हो इसकी पहचान की प्रक्रिया देता हूं, तुम्हें दर्पण देता हूं, ताकि तुम अपनी तस्वीर देख लो। उसी देखने में क्रांति घटती है।
उसी दर्शन में रूपांतरण है।

चौथा प्रश्नः आपके इस संन्यासी के जीवन में आपका प्रसाद हमेशा मिलता रहता है, जिसका अनुभव बयान नहीं कर सकता। और पहले-पहल घबड़ाहट भी होती थी। बस इतना ही कहूंगाः
कई बार डूबे, कई बार उबरे, कई बार साहिल पे टकरा आये। तलाशे-तलब में वो लज्जत मिली है, दुआ कर रहा हूं कि मंजिल न आये।
यह मेरा भ्रम तो नहीं है, कृपया समझाएं!

नारायण दास! मंजिल कहीं है ही नहीं। यात्रा ही मंजिल है। मंजिल होगी
तो मौत हो जायेगी। मंजिल होगी तो फिर क्या करोगे? मंजिल आ जायेगी, तो फिर क्या बचेगा?
परमात्मा मंजिल नहीं है, परमात्मा तीर्थयात्रा है। यात्रा ही यात्रा... काबा कभी आता नहीं, कैलाश कभी आता नहीं; दूर वहां, आता हुआ मालूम भर पड़ता है। बस, पुकारता है, आता नहीं। तुम चले जाते हो, चलते जाते हो; चलना आनंदपूर्ण हो जाता है। चलने में ही सारी बात है। दूसरा किनारा नहीं है... मझधार ही मझधार है।
यह ख्याल ही छोड़ दो कि कहीं पहुंचना है। यहीं डूबना है, कहीं पहुंचना नहीं है। और जो यहीं डूबने को राजी है, वह पहुंच गया। जो यात्रा को ही मंजिल मानने को राजी है, उसकी मंजिल आ गयी। अभी आ गयी, इसी क्षण आ गयी। क्योंकि यह क्षण भी यात्रा का क्षण है।
मंजिल का अर्थ होता हैः दूर, भविष्य में कहीं। यात्रा का अर्थ हैः जो अभी है, यहीं है, इसी क्षण है।

प्यार जब मझधार से हो तो किनारा कौन मांगे?
बाहुओं में भर रहा हूं मैं हिलोरों की रवानी
है हिलोरों से बहुत मिलती हुई मेरी जवानी
जन्म है उठती लहर सा, है मरण गिरती लहर सा
जिंदगी है जन्म से ले कर मरण तक की कहानी।
चूमने दो ओंठ लहरों के मुझे निश्शंक हो कर डूबना ही इष्ट हो जब, तो सहारा कौन मांगे? यार जब मझधार से हो तो किनारा कौन मांगे? श्याम मेघों से घिरा नक्षत्र विहगों का बसेरा आंधियों ने डाल रखा है क्षितिज पर घोर घेरा जिस तरह से भग्न अंतर में उमड़ती है निराशा
ठीक वैसे ही उमड़ता आ रहा नभ में अंधेरा
जब कि चाहें प्राण बरसाती अंधेरे में भटकना पथ-प्रदर्शन के लिए तो ध्रुव सितारा कौन मांगे? प्यार जब मझधार से हो तो किनारा कौन मांगे? जिंदगी का दीप लहरों पर सदा बहता रहा है
निज हृदय से ही हृदय की बात यह कहता रहा है
डगमगाती ज्योति में विश्वास जीवन के संजोये
मौन जल कर स्नेह का अभिशाप यह सहता रहा है
जब मरण की आंधियों से प्यार इसको हो गया है
ओट पाने के लिए आंचल तुम्हारा कौन मांगे?
प्यार जब मझधार से हो तो किनारा कौन मांगे?
यही मैं सिखा रहा हूं, यही मेरी देशना है--मझधार ही सब कुछ है। कर लो प्यार मझधार से। यात्रा सब कुछ है। जी लो इस क्षण को भरपूर, समग्रता से। न कहीं पहुंचना है, न कहीं कुछ होना है। सब कुछ जैसा है, पूर्ण है।

अंतिम प्रश्नः दिल्ली में जो चल रहा है, उसके संबंध में कुछ कहें?

एक छोटी कहानी कहूंगा। लंका का पिछला शासक रावण जब मरने लगा, तो राम
ने लक्ष्मण को उसके पास राजनीति की शिक्षा लेने के लिए भेजा--यह कह कर कि तात, अपन जीत तो गये हैं, मगर अपने को यहां शासन चलाने का कोई अनुभव नहीं है; इससे पूछ कर आओ कि कैसे क्या चलाना है। लक्ष्मण वहां गया, रावण से कहा कि अब तू तो मर ही रहा है, यहां शासन कैसे चलाएं, यह बताता जा? रावण ने कहा कि आधी राजनीति मैं करता था, आधी कुंभकर्ण; तुमने कुंभकर्ण से भी संपर्क साधा था क्या? लक्ष्मण ने कहाः हां, वह कह गया है कि आनंद से जमकर खाना पेलो और सोफे पर आराम से आंखें मूंदकर डले रहो। यह पद्धति सर्वश्रेष्ठ है।
यह बताओ, रावण ने पूछाः तुम लोग तानाशाही मचाओगे कि प्रजातंत्र से चलोगे? कौन-सी पद्धति उपयुक्त होगी?
"जनता को क्या जमेगा?"
कुछ नहीं, रावण ने कहा, जब तानाशाही मचाओगे तो जनता प्रजातंत्र के लिए छटपटायेगी और जब प्रजातंत्र लागू करोगे तो तानाशाही के गुण गाने लगेगी। "फिर?"
"फिर क्या, ऐसे चलना कि लोग समझ ही न पायें कि तानाशाही है या प्रजातंत्र। कुल मिलाकर एक कनफ्यूजन की स्थिति बनाये रखना।"
"जनता के लिए कुछ कार्यक्रम वगैरह?"
"बस साल-दो साल में एक-आध नया नारा दे देना। और धकाते रहना। न हो तो आपस में लड़ाई-झगड़ा शुरू कर देना। जनता से कहना कि हमारे आपस के झगड़े निपट जायेंगे तब तुम्हारे लिए कुछ करेंगे। अब यह ध्यान रखना कि अगला चुनाव आने तक वे आपस के झगड़े कहीं निपट न जायें।" यह कह कर रावण ने आंखें मूंद लीं। सुना है उसके बाद जंबूद्वीप में रामराज्य आ गया।
यही सब दिल्ली में हो रहा है। जंबूद्वीप में रामराज्य आ रहा है! सत्ता में पहुंच कर लोग कुछ करना नहीं चाहते। करने में खतरा है, क्योंकि करने में भूलें हो सकती हैं। जो करता है उससे भूलें हो सकती हैं। इसलिए जो सत्ता में पहुंच जाते हैं चालबाज राजनीतिज्ञ, वे बस टालमटोल करते रहते हैं, कुछ करते नहीं। क्योंकि कुछ करेंगे तो कहीं भूल न हो जाये, कोई नाराज न हो जाये। कुछ करोगे तो कोई न कोई नाराज होगा। कुछ करोगे तो किसी के खिलाफ जायेगा, किसी के पक्ष में जायेगा। तुम सबको राजी न रख सकोगे। और राजनीतिज्ञ की चेष्टा होती है सब को राजी रखने की। सब को राजी रखने का एक ही उपाय हैः कुछ मत करो; बातें करो, बड़ी-बड़ी बातें करो। जितनी बातें कर सकते हो करते रहो। और समय टालो, और समय को हटाओ और आगे के लिए स्थगित करो। अच्छे नारे देते रहो और लोगों को भरमाये रखो।
और लोग भी अजीब हैं, देख-देख कर भी नहीं देख पाते हैं! लोग बड़े अंधे हैं!
राजनीतिज्ञ का कुल लक्ष्य इतना होता है कि वह कैसे सत्ता में पहुंच जाये। बस सत्ता में पहुंचकर उसका लक्ष्य पूरा हो गया, उसकी मंजिल आ गयी। अब उसको कुछ नहीं करना है। अब दूसरा लक्ष्य यह है कि कैसे सत्ता में बना रहे; कोई दूसरा हटा न दे। पहले पहुंचने की चेष्टा में लगा रहता है, फिर जमने की चेष्टा में लगा रहता है। इसी में समय व्यतीत हो जाता है। करना तो कोई भी कुछ चाहता नहीं। करना तो खतरनाक है, जोखिम का काम है। और करने वाले को जनता कभी बर्दाश्त भी नहीं करती। क्योंकि कुछ भी करोगे तो जनता की धारणाओं के विपरीत जाता है। देश की आबादी बढ़ती है। अगर कुछ करो आबादी रोकने के लिए, जनता नाराज होती है। क्योंकि जनता की सदा से आदत रही है कि जितने बच्चे पैदा करना हो करो। उसको अड़चन आ जाती है। जनता को भ्रांति है कि बच्चे पैदा करने में ही कोई पुरुषत्व है! जनता को भ्रांति है कि अगर तुम्हारा संतति-नियमन का कोई कार्यक्रम लागू तुम पर किया गया तो तुम्हारा पुरुषत्व छिन गया। जनता बड़ी अजीब है!
मैं एक गांव में गया। वहां स्वामी करपात्री महाराज व्याख्यान दे रहे थे। जिस घर में मैं ठहरा था, उसके सामने ही व्याख्यान चल रहा था, तो मजबूरी में मुझे सुनना पड़ा। पास ही वहां एक बांध बननेवाला था। आदिवासी इलाका। वे

आदिवासियों को समझा रहे थे कि बांध मत बनने दो, क्योंकि उसमें से पानी जो निकलेगा वह बेकार पानी होगा, नपुंसक पानी। मैं भी थोड़ा चौंका कि पानी कैसा नपुंसक होता है! सजग होकर सुनने लगा। वे समझा रहे थे, उसमें से बिजली तो पहले ही निकाल ली जायेगी। जब पानी में से बिजली ही निकल गयी तो बचा क्या? और जनता कह रही थी, यह बात तो सच है कि जब बिजली ही निकल गयी तो बचा क्या खाक! जनता बांध के विरोध में हो गयी कि बांध नहीं बनना चाहिए, नहीं तो पानी सब नपुंसक हो जायेगा। फिर उससे क्या खेतीबाड़ी होगी? उसकी असली चीज तो निकल ही गयी!
ऐसे-ऐसे लोग हैं! जनता नासमझ है, अंधविश्वासी है। राजनीतिज्ञ चालबाज हैं, बेईमान हैं। राजनीतिज्ञ को एक ही बात ध्यान रखनी पड़ती है कि चुनाव जल्दी फिर आते हैं। उन्हीं लोगों से वोट लेनी पड़ेगी, उनको नाराज मत कर देना। उनको नाराज किया तो मुश्किल में पड़ोगे। उनको खुश रखना। तो राजनेता उनके मंदिर में जाता है, मस्जिद में भी जाता है, गुरुद्वारे में भी जाता है, शंकराचार्य को भी नमस्कार कर आता है। मेला भरा हो तो मेले में हो आता है। रामलीला हो रही हो तो रामलीला में पहुंच जाता है। कुंभ में मौजूद हो जाता है। उसे जनता के अंधविश्वासों को समर्थन देना चाहिए।
और मजा यह है कि जनता के अंधविश्वास टूटें, तो ही जनता के जीवन का कुछ कल्याण हो सकता है। और यह बड़ी अड़चन की बात है। जनता ही नहीं टूटने देना चाहती अपने अंधविश्वासों को। जनता ही अपना हित और कल्याण नहीं होने देना चाहती। तो जनता को, जो कुछ भी नहीं करते, वे अच्छे लगते हैं। इंदिरा पर नाराजगी का कारण यही था, उसने कुछ करने की कोशिश की। मोरारजी से जनता खुश रहेगी। उन्होंने कुछ किया ही नहीं, नाखुश होने का कोई कारण ही नहीं। वे कुछ करेंगे भी नहीं, समय गुजारेंगे। और अभी-अभी उन्होंने जनता से कहा है कि "हमारी लंबी उम्र के लिए प्रार्थना करो।" इतना काफी नहीं महाराज? और सताओगे? अभी और लंबी उम्र चाहिए?
इस देश को कुछ बातें समझनी होंगी। एक तो इस देश को यह बात समझनी होगी
कि तुम्हारी परेशानियों, तुम्हारी गरीबी, तुम्हारी मुसीबतों, तुम्हारी दीनता के बहुत कुछ कारण तुम्हारे अंधविश्वासों में हैं। और जब तक तुम्हारे अंधविश्वास न तोड़े जायें, तब तक तुम्हारी दीनता भी नहीं मिटेगी, तुम्हारी गरीबी भी नहीं मिटेगी, तुम्हारी परेशानी भी नहीं मिटेगी। और जो भी तुम्हारे अंधविश्वास तोड़ेगा, तुम उससे नाराज हो जाओगे। इससे लोग मुझसे नाराज हैं।
मुझे राजनीति से कुछ लेना-देना नहीं है, क्योंकि मैं मौलिक काम में लगा हूं। मैं जड़ काटने की कोशिश कर रहा हूं। मेरी पूरी फिक्र यह है कि तुम्हारे अंधविश्वास टूट जायें। तुम्हारे अंधविश्वास टूट जायें तो सब ठीक हो जायेगा। तुम्हारे पास थोड़ी-सी समझ आ जाये। तुम बीसवीं सदी के हिस्से बन जाओ।
भारत अभी भी समसामयिक नहीं है, कम-से-कम डेढ़ हजार साल पीछे घिसट रहा है। ये डेढ़ हजार साल पूरे होने जरूरी हैं। भारत को खींच कर आधुनिक बनाना जरूरी है। यह काम राजनीतिज्ञ नहीं कर सकते, यह काम दिल्ली में नहीं हो सकता। यह काम तो उन्हें करना होगा जिनका राजनीति से कुछ लेना-देना नहीं है।
मेरा कोई लेना-देना नहीं है राजनीति से। मेरी कोई उत्सुकता नहीं है राजनीति में। लेकिन जरूर मेरी उत्सुकता है कि इस देश का भी सौभाग्य खुले, यह देश भी खुशहाल हो, यह देश भी समृद्ध हो। क्योंकि समृद्ध हो यह देश तो फिर राम की धुन गूंजे। समृद्ध हो यह देश तो फिर लोग गीत गायें, प्रभु की प्रार्थना करें। समृद्ध हो यह देश तो मंदिर की घंटियां फिर बजें, पूजा के थाल फिर सजें। समृद्ध हो यह देश तो फिर बांसुरी बजे कृष्ण की, फिर रास रचे! यह दीन-दरिद्र देश, अभी तुम इसमें कृष्ण को भी ले आओगे तो राधा कहां पाओगे नाचनेवाली? अभी तुम कृष्ण को भी ले आओगे, तो कृष्ण बड़ी मुश्किल में पड़ जायेंगे; माखन कहां चुरायेंगे? माखन है कहां? दूध-दही की मटकियां कैसे तोड़ेंगे? दूध-दही की कहां, पानी तक की मटकियां मुश्किल हैं। नलों पर इतनी भीड़ है! और अगर एक-आध गोपी की मटकी फोड़ दी, जो नल से पानी भरकर लौट रही थी,

तो पुलिस में रिपोर्ट दर्ज करा देगी कृष्ण की। तीन बजे रात से पानी भरने खड़ी थी, नौ बजते-बजते पानी भर पायी और इन सज्जन ने कंकड़ी मार दी।
धर्म का जन्म होता है जब देश समृद्ध होता है। धर्म समृद्धि की सुवास है।
तो मैं जरूर चाहता हूंः यह देश सौभाग्यशाली हो। लेकिन सबसे बड़ी अड़चन इसी देश की मान्यताएं हैं। इसलिए मैं तुमसे लड़ रहा हूं तुम्हारे लिए। तुम्हीं मुझसे नाराज होओगे। तुम्हीं मुझ पर कुपित हो जाओगे। क्योंकि मैं तुम्हारी जमीन पैर के नीचे से खींचूंगा।
मगर जमीन खींचनी ही होगी। तुम्हें नयी जमीन चाहिए। तुम्हें नयी भाव-भूमि चाहिए। तुम्हें चित्त का एक नया संस्कार चाहिए। तुम्हें एक नया आकाश उपलब्ध होना चाहिए। तुम कब्र में बंद हो गये हो। दिल्ली के लोग तुम्हारी कब्र पर फूल चढ़ा रहे हैं।
आज इतना ही।

मरौ हे जोगी मरौ
पंद्रहवां प्रवचन

सिधां माखण खाया

हिंदू आषै राम कौं, मुसलमान शुदाइ।
जोगी आषै अलख कौं, तहां राम अछै न शुदाइ।।
हिंदू ध्यावै देहुरा, मुसलमान मसीत।
जोगी ध्यावै परम पद, जहां देहुरा न मसीत।।
कोई न्यंदै कोई व्यंदै, कोई करै हमारी आसा।
गोरष कहै सुणो रे अवधू, पंथ शरा उदासा।।
आसण बैसिबा पवण निरोधिबा, थांन मांन सब धंधा।
बदंत गोरखनाथ आत्मां विचारत, ज्यूं जल दीसै चंदा।।
केता आवै केता जाइ। केता मांगै केता खाइ।
केता रुष-विरष तलि रहै। गोरख अनभै कासौं कहै।।
बिरला जाणंति भेदांनिभेद। बिरला जाणंति दोइ पष छेद।
बिरला जाणंति अकथ कहाणी। बिरला जाणंति सुधि बुधि की बाणी।।
संन्यासी सोइ करै सब नास। गगन मंडल महि मांडै आस।
अनहद सूं मन उनमन रहै। सो संन्यासी अगम की कहै।।
दरवेस सोइ जो दर की जाणै। पंचे पवण अपूठा आनै।
सदा सुचेत रहै दिन राति। सो दरवेस अलह की जाति।।
जीबिता बिछायबा मूंवां ओढिबा, कवहु न होइबा रोगी।
बरसवै दिन काया पलटिबा, यूं कोई कोई बिरला जोगी।।
गगन मंडल में गाय बियाई, कागद दही जमाया।
छाछि छाछि पंडिता पीवीं, सिधां माखण खाया।।

किसे जिंदगी का सहारा समझ लूं?
गगन में दमकते करोड़ों सितारे,
घड़ी भर चमककर छिपेंगे बिचारे;
रहा घूम कोई, रहा टूट कोई,
किसे लोचनों का सितारा समझ लूं?
किसे जिंदगी का सहारा समझ लूं;
जलधि में कई द्वीप जो दिख रहे हैं, सभी काल की धार से कट रहे हैं।
यहां भी हिलोरें, वहां भी हिलोरें, बता दो, कहां मैं किनारा समझ लूं? किसे जिंदगी का सहारा समझ लूं?
अभी तृप्ति के पल, अभी प्यास के क्षण, अभी अश्रु के तो अभी हास के क्षण! मिला साथ विष का, सुधा का निमंत्रण, मुझे आज किसने पुकारा समझ लूं? किसे जिंदगी का सहारा समझ लूं?
अभी फूलमाला अभी शूलमाला,
अभी स्वर्ग, नंदन, अभी नर्क-ज्वाला अभी डोलियां हैं, अभी अर्थियां हैं, बता दो, कहां मैं गुजारा समझ लूं? किसे जिंदगी का सहारा समझ लूं?
धरा घूमती है, गगन उड़ रहा है,
न जाने किधर यह जलधि बढ़ रहा है!
मुझे छोड़कर सांस तक जा रही है,
बता दो, किसे मैं दुलारा समझ लूं?
किसे जिंदगी का सहारा समझ लूं?
मनुष्य की ऐसी ही दशा है। सब तरफ लहरें ही लहरें हैं, किनारे का कोई भी पता नहीं। पीछे भी लंबा मार्ग है, आगे भी लंबा मार्ग है; मंजिल का कोई ओर-

291

छोर नहीं। कहां से आते हैं पता नहीं। कहां जा रहे हैं, पता नहीं। क्यों हैं पता नहीं। घर बनाएं भी तो कहां बनाएं, कैसे बनाएं? अपना ही पता न हो तो जिंदगी में शांति कैसे हो, सुख कैसे हो? स्वभाव का ही बोध न हो, तो आनंद की झलक कैसे मिले?
आनंद की झलक तो मिलती है, जब तुम्हारा जीवन स्वभाव के अनुकूल होता है। आनंद का इतना ही अर्थ समझना, जब तुम जगत के साथ एकछंद हो। जब तुम्हारा तार जगत के तारों के साथ लयबद्ध है, तब आनंद।
और दुख का भी यही अर्थ समझना, जब तुम्हारा तार अलग-अलग बजने लगे, जगत
की वीणा से भिन्न-भिन्न, अपनी ढपली अपना राग हो जाये, तभी दुख पैदा हो जायेगा। जैसे ही छंद भंग हुआ, दुख हुआ। जैसे ही छंद फिर जुड़ा, सुख हुआ। लेकिन इस छंदोबद्धता के लिए स्वयं से परिचय तो जरूरी है। और जिनका स्वयं से परिचय नहीं है, वे चले परमात्मा की खोज पर! दूर की खोज पर निकले हो, निकट का भी पता नहीं है! जिन्हें अपना भी बोध नहीं, वे विवाद कर रहे हैं कि ईश्वर कैसा है? कि हिंदुओं का ईश्वर सच है कि मुसलमानों का ईश्वर सच है, कि ईसाईयों का, कि यहूदियों का? ईश्वर के संबंध में विवाद चल रहा है। और जो निर्विवाद सत्य है तुम्हारा, उससे परिचय कब करोगे? और जो उसे जान लेता है वही परमात्मा को जान पाता है।
आत्मा को जाने बिना परमात्मा को जानने का न कभी कोई उपाय था, न है, न कभी कोई उपाय होगा। आत्मा द्वार है। और इस एक को तुम पहचान लो तो इस एक से ही सब को जानने की कुंजी मिल जाती है।

उसको प्राणों का प्राण कहो, जिस पर हर सांस निछावर हो!
मधुवन की छवि का क्या कहना,
मधुवन में हैं अगणित कलियां!
संदेह नहीं, आकर्षक हैं
कुंजों की ये मादक गलियां!
कुंजों-कुंजों में क्यों घूमो?
कलिका-कलिका पर क्यों गूंजो?
उस एक कली को प्यार करो, जिस पर मधुमास निछावर हो! उसको प्राणों का प्राण कहो, जिस पर हर सांस निछावर हो! मत "प्यार" कहो माटी के प्रति
जगने वाले आकर्षण को!
बरसात सुधा की मत समझो
दो क्षण के इस रसवर्षण को!
वह "रूप" नहीं जिसके कारण
तृष्णा या आशा ही जागे,
वह रूप "रूप" कहलाता है, जिस पर विश्वास निछावर हो! उसको प्राणों का प्राण कहो, जिस पर हर सांस निछावर हो! लाखों हैं ये आकाश-कुसुम,
किस-किस पर हाथ बढ़ाओगे?
अंबर की धुंधली गलियों में
कब तक आंखें भटकाओगे?
टिमटिम किरणों में क्यों भटको?
लाखों तारों में क्यों अटको?
उस एक चंद्रमा को पूजो, जिस पर आकाश निछावर हो!
उसको प्राणों का प्राण कहो, जिस पर हर सांस निछावर हो।
और किस पर हर सांस निछावर है? यह भीतर आती श्वास, यह बाहर जाती श्वास, किसके पांव पखार रही है? यह भीतर आती श्वास, यह बाहर जाती श्वास, प्रतिपल किसका वंदन उतार रही है? यह किसकी आरती हो रही है? इसी श्वास के साथ-साथ भीतर जाओ, तो मिल जायेगा वह जिसके चरणों पर यह श्वास जाकर निछावर हो रही है। इसी श्वास के साथ-साथ बाहर आओ और भीतर जाओ। इसी श्वास में सारी परिक्रमा है, इसी श्वास में सारे तीर्थ। क्योंकि इसी श्वास के मूल उदगम पर तुम विराजमान हो--तुम अपनी महिमा में, अपनी परम गरिमा में विराजमान हो।

और जहां श्वास निछावर हो रही है, वहां तुम बड़े चकित होकर पाओगे कि तुम
तो हो, लेकिन तुम जैसे नहीं हो। तुम तो हो, लेकिन मैं का कोई भाव नहीं है।
अस्तित्व है, परम शुद्ध अस्तित्व है, लेकिन मैं की कोई धारणा नहीं, कोई धुआं नहीं। निर्धूम ज्योति है वहां। मैं की छाया भी नहीं पड़ती।
इस स्वयं को पहचान लिया, तो तुमने सब को पहचान लिया। इस एक सूत्र को पकड़ लो, इसी के सहारे तुम पहुंच जाओगे अस्तित्व की गहनतम गहराइयों में।
कहीं कोई और खोजने की आवश्यकता नहीं है। जो कहीं और खोजने गया, भटका, भूला, उलझा।
आज के सूत्रः
हिंदू आषै राम कौं, मुसलमान शुदाइ।
जोगी आषै अलष कौं, तहां राम अछै न शुदाइ।।
हिंदू पूजता है राम को, मुसलमान पूजता है खुदा को। जोगी किसको पूजता है? अलख को। न राम को, न खुदा को। उसका कोई नाम नहीं है--न राम, न खुदा। सब नाम आदमी के दिये हुए हैं। वह तो विशेषण-शून्य है। वह तो निर्विकार है। वह तो निराकार है, अलख है। अलख--अर्थात, आंखों में भी पकड़ में न आये! कानों के सुनने में न आये। हाथों के छूने में न आये! इंद्रियातीत है। उसे राम कहें, तो छोटा हो जायेगा। उसे खुदा कहें, छोटा हो जायेगा। उसे शब्द दें, तो असत्य हो जायेगा।
जो सच्चा खोजी है, वह न तो हिंदू होता है न मुसलमान होता है; हो ही नहीं सकता। जो सच्चा खोजी है। उसे शब्द और शास्त्र और विशेषण और संप्रदाय नहीं बांध सकते हैं। न मुहम्मद मुसलमान हैं, न कृष्ण हिंदू हैं, न बुद्ध बौद्ध हैं और न जीसस ईसाई हैं--याद रखना! इस जगत में जिन्होंने जाना है, उनकी कोई जाति नहीं है।
गोरख ठीक कहते हैंः सो दरवेस अलह की जाति। वे तो अल्लाह की जाति के हो जाते हैं, उनकी फिर क्या जाति? अलह हमारा रंग, अलह हमारी जाति। फिर तो उनका रंग भी अल्लाह का है और जाति भी अल्लाह की। फिर वे हिंदू नहीं, मुसलमान नहीं, ईसाई नहीं।
इस पृथ्वी पर संप्रदायों के कारण बड़ी अड़चन हुई, आदमी आदमी नहीं हो पाया है। और संप्रदायों की जड़ में क्या है? छोटे-छोटे शब्दों का उलझाव है। किसी ने राम कह दिया और झगड़ा शुरू हुआ।
बच्चा पैदा होता है, कोई नाम लेकर नहीं आता; शून्य आता है, अनाम आता है, अरूप आता है। फिर हम नाम थोप देते हैं उसके ऊपर। फिर नाम तुम जो चाहो थोप दो। तुम उसे रामप्रसाद कहो या खुदाबख्श, मतलब एक ही है। खुदाबख्श का मतलब रामप्रसाद होता है, रामप्रसाद का अर्थ खुदाबख्श होता है। मगर अगर रामप्रसाद कहा, तो हिंदू हो गया; अब यह मस्जिदें जलायेगा। और अगर खुदाबख्श कहा, तो यह मुसलमान हो गया; अब यह मूर्तियां तोड़ेगा। जरा-सा नाम दे दिया--और नाम तुमने दे दिया! और यह तो कोई नाम लेकर आया न था।
कोई हिंदू की तरह आता है? कोई मुसलमान की तरह आता है? अलह हमारी जाति-- अल्लाह की तरह हम आते हैं, परमात्मा की तरह हम आते हैं, और फिर छोटे-छोटे नाम और छोटे-छोटे घेरे, छोटे-छोटे बांवड़े, फिर झगड़े और बड़े विवाद और बड़ी कलह... । और जो लोग कलह और विवाद करते हैं, सोचते हैं धार्मिक कृत्यों में लीन हैं!
मैं कल बहुत चौंका, खबर आयी पुलिस की तरफ से कि तीन हजार मुसलमान आश्रम पर हमला करने आ रहे हैं। मुसलमानों को क्या पड़ी है इस आश्रम पर हमला करने की? इकट्ठे भी हुए हैं! किसी ने अफवाह उड़ा दी है कि मैं मुसलमानों का दुश्मन हूं। किसी ने अफवाह उड़ा दी कि मैं मुहम्मद का दुश्मन हूं। बस, अफवाह काफी है। उपद्रव करने को जैसे हम तैयार ही बैठे हैं।
मैं अगर मुहम्मद का दुश्मन हूं तो फिर मुहम्मद का साथी कौन होगा? मैं मुसलमान नहीं हूं--उसी अर्थ में जिस अर्थ में मुहम्मद मुसलमान नहीं हैं। इत्ता तो पक्का है न, कि मुहम्मद मुसलमान नहीं थे। क्योंकि मुहम्मद जब पैदा हुए, तो इस्लाम धर्म था ही नहीं। मुहम्मद के बाद लोग मुसलमान हुए होंगे। जीसस तो ईसाई नहीं थे न, कैसे होते ईसाई? अभी तो ईसाइयत का जन्म भी नहीं हुआ था। और बुद्ध तो बौद्ध नहीं थे न? ऐसे ही मैं भी मुसलमान नहीं हूं

मुहम्मद की भांति! और अगर मुहम्मद मुसलमान हैं तो मैं बड़े से बड़ा मुसलमान हूं! वैसे ही जैसे मैं हिंदू हूं, जैन हूं, बौद्ध हूं, यहूदी हूं।
जिसने जाना, सब धर्म उसके हैं और कोई धर्म उसका नहीं।
मगर उपद्रवी चित्त हैं--पंडित हैं, मौलवी हैं--जिनका सारा काम उपद्रव फैलाना है, आग लगाना है! किसी ने कह दिया होगा। अब ये आज के वचन हैं, अब ये फिर पहुंच जायेंगे मस्जिद तक। अब यह मेरा कोई कसूर भी नहीं है। अब यह गोरख कह रहे हैं, अब मैं करूं भी क्या? गोरख कहते हैंः
हिंदू आषै राम कौं, मुसलमान शुदाइ।
जोगी आषै अलख कौं, तहां राम अछै न शुदाइ।
न वहां राम है, न वहां खुदा है--योगी उस अलख को पुकारता है। उसी अलख को
हम पुकार रहे हैं। यह तो योगियों का जमघट है। यहां कोई हिंदू नहीं है, कोई मुसलमान नहीं, कोई ईसाई नहीं। अगर लोगों में थोड़ी समझ हो तो यह स्थान सबका प्यारा हो जाये। मगर लोग तो उल्टे हैं। न हम हिंदू हैं, इसलिए हिंदुओं के हम नहीं रहे; तो हिंदू यहां न आयेंगे, सकुचाएंगे। हम मुसलमान भी नहीं, तो मुसलमान भी सकुचायेगा; वह भी विरोधी हो जायेगा। ईसाई भी, यहूदी, जैन, बौद्ध। होना तो यह चाहिए था कि यह मंदिर उन सबका होता। है ही उन सबका, मगर उनकी नासमझियां हैं!
पुलिस ने खबर दी कि इस मोर्चे को रोकना जरूरी है, नहीं तो हम मुश्किल में पड़ जायेंगे। आज मुसलमान आयेंगे, कल ईसाई आ जायेंगे, परसों हिंदू आ जायेंगे; क्योंकि यह आश्रम तो किसी का भी नहीं है। यहां तो सभी हमला कर सकते हैं। यह बात भी जंची। होना तो यह था कि यह सभी के लिए प्रार्थना और ध्यान का और पूजा का स्थान बन जाता। मगर बीसवीं सदी में हम नाममात्र को हैं, हमारी असलियत अभी भी हजारों साल पुरानी पहाड़ों की गुफाओं में भटक रही है! हमारी आत्मा अभी भी आदिम है।
कृष्ण मुहम्मद संन्यासी हो गये, किसी ने पत्र लिख दियाः "गर्दन उतार लेंगे। तुमने इस्लाम धर्म के साथ विद्रोह कर दिया!" अब कृष्ण मुहम्मद पहली दफा इस्लामी हुए हैं! पहली दफा इस्लाम का रंग चढ़ा। इस्लाम का अर्थ होता हैः शांति। कृष्ण मुहम्मद पहली दफा मुसलमान हुए हैं, अगर मुसलमान का कोई भी अर्थ हो सकता हो। पहली दफा मोमिन हुए। पहली दफा आस्था आयी। अब तक मुसलमान थे लोगों की नजरों में, अब मुसलमान न रहे! संन्यासी होकर पहली दफा मुसलमान हुए हैं।
मगर पत्र आते हैं उनको कि "गर्दन उतार देंगे, सावधान! तुमने दगा कर दिया।" किससे दगा कर दिया? कोई कृष्ण मुहम्मद के हृदय से भी तो पूछे! धर्म की पहली दफा थोड़ी-सी सुगंध मिली। धर्म का थोड़ा-सा उत्सव जीवन में आया। अब तक नाममात्र को मुसलमान थे, अब असलियत में मुसलमान हुए। अब "अलख" को पुकारा।
मगर जो खुदा में उलझे हैं और जो राम में उलझे हैं, उनको अलख की पुकार समझ में नहीं आती। और ऐसा कोई हिंदू-मुसलमान के साथ ही नहीं है, सभी के साथ है। जैन यहां आते हैं, दूसरे जैन समझ लेते हैं कि गये काम से! सिक्ख यहां आकर संन्यासी हो जाते हैं तो मुझे पंजाब से पत्र लिखते हैं जाकर कि हम बड़ी मुश्किल में पड़े हैं, क्योंकि बाकी सिक्ख बड़ी झंझट डाल रहे हैं। वे तो कहते हैं कि तुम अगर सिक्ख हो, तो गैरिक वस्त्र छोड़ो; और अगर गैरिक वस्त्र पहनने हैं, तो फिर तुम सिक्ख नहीं हो; फिर हम बदला लेंगे।
कब आदमी में थोड़ी आदमियत आयेगी? कब हम समझेंगे मुहम्मद को, महावीर को, कृष्ण को, बुद्ध को, जीसस को? कब उनकी ऊंचाइयों, उनकी गहराइयों से हमारा नाता जुड़ेगा? कब तक हम क्षुद्र में ही डोलते रहेंगे? कब तक हम व्यर्थ के पंडितों--थोथे--जिनके हाथ में छाछ के सिवाय कुछ भी नहीं है... गोरख कहते हैंः
छाछि छाछि पंडिता पीवीं।
छाछ ही छाछ पी रहे हैं पंडित और उनके पास कुछ भी नहीं है--
सिधां माखण खाया।
मक्खन तो सिद्ध खा गये।

सिद्धों से पूछो धर्म का अर्थ। लेकिन सिद्धों का कोई धर्म नहीं होता, कोई मजहब नहीं होता। ये वचन एक अपूर्व सिद्ध के हैं, एक अपूर्व बुद्ध के हैं। समझपूर्वक गुनना, मनना।
हिंदू आषै राम कौं, मुसलमान शुदाइ।
दोनों ने परमात्मा का रूप बना लिया है, परमात्मा को आकार दे दिया है, परमात्मा को एक नाम दे दिया है। उसको विशेषण दे दिये हैं। उसको परिभाषा दे दी है। और जैसे ही परमात्मा की परिभाषा होती है, परमात्मा सीमित और संकुचित हो जाता है। और यही पाप है। परमात्मा को सीमित और संकुचित करना पाप है। न तो परमात्मा मंदिर में बंद हो सकता है, न मस्जिद में, न गिरजे में, न गुरुद्वारे में। परमात्मा तो विस्तीर्ण है--उतना ही, जितना यह अस्तित्व विस्तीर्ण है। परमात्मा तो सारे अस्तित्व पर फैला है; परमात्मा तो अस्तित्व का पर्यायवाची है।
लेकिन फिर उसे हम क्या कहें? गोरख कहते हैंः जोगी आषै अलष कौं। उसे हम अलख कहेंगे। यह प्यारा शब्द है! अलख का मतलब होता हैः जो लखा न जा सके; अलक्ष्य, जिसका हम लक्ष्य न बना सकें। न तो आंख, न कान, न हाथ, कोई इंद्रिय जिस तक न पहुंच सके। मन भी जिस तक न पहुंच सके। जिस तक पहुंचना संभव ही न हो। जो लक्ष्य बन ही न सके।
फिर परमात्मा कैसे मिलता है? परमात्मा तक तुम्हें नहीं पहुंचना होता। जब तुम शांत हो जाते हो, मौन हो जाते हो, लीन हो जाते हो--प्रार्थना में, ध्यान में--तब परमात्मा तुम में उतर आता है। परमात्मा तुम तक पहुंचता है, तुम परमात्मा तक कभी नहीं पहुंचते। सागर ही आता है बूंद में--सागर ही उतर आता है बूंद में! सागर तो तत्पर खड़ा है उतर आने को, मगर तुम द्वार-दरवाजे नहीं खोलते।
परमात्मा तो प्रतिपल चारों ओर से तुम्हारे भीतर बह जाने को आतुर है।
सब ओर से तुम्हें घेर लेने को तैयार है, मगर तुमने अपने को ऐसा कस कर बंद किया है, रंध्र भी नहीं छोड़ी है, जरा-सा स्थान नहीं छोड़ा है। कोई मुसलमान की तरह अपने को बंद किये है, कोई हिंदू की तरह अपने को बंद किये है। और तुम सोच रहे हो कि तुम धार्मिक हो? धार्मिक वही है जो बंद नहीं है, जो निर्बंध है। धार्मिक वही है जो स्वच्छंद है। धार्मिक वही है जो संप्रदाय के अतीत है। धार्मिक वही है जिसके लिए सारा अस्तित्व मंदिर है, मस्जिद है, काबा है, कैलाश है।
जोगी आषै अलख कौं, तहां राम अछै न शुदाइ।।
और वहां न तो राम पाया जाता है। धनुर्धारी राम नहीं मिलेंगे तुम्हें वहां... और न खुदा पाया जाता है। वहां कौन मिलता है? वहां शून्य आकाश मिलता है। वहां अस्तित्व की शुद्धता मिलती है। कोई अस्तित्ववान व्यक्ति नहीं मिलता। एक अनुभव मिलता है, एक प्रसाद, एक स्वाद! एक स्वाद, जो शाश्वत का है! एक स्वाद, जो समय में आबद्ध नहीं! उस स्वाद को जिसने चखा, उसी ने माखन चखा। वही सिद्ध हुआ।
हिंदू ध्यावै देहुरा, मुसलमान मसीत।
हिंदू जाता है मंदिर और सोचता है मंदिर चले गये, परमात्मा का ध्यान कर लिया, घंटी बजायी, पूजा उतारी, थाल उतारा, मंदिर में रखी प्रतिमा पर दो फूल चढ़ाये, सिर झुकाया--काम पूरा हुआ। इतना सस्ता समझा है धर्म? ऐसे कहीं जीवन बदलता है? मंदिर की घंटियां बजाने से कहीं जीवन बदलेगा? पत्थरों की मूर्तियों के सामने सिर झुकाने से कहीं जीवन बदलेगा? काश, इतना आसान होता तो सारी पृथ्वी स्वर्ग हो गयी होती, कभी की स्वर्ग हो गयी होती! कितनी तो बार तुम मंदिर गये हो और खाली के खाली लौटे! कितनी बार मस्जिद गये हो, लेकर क्या आये हो? और कब तक यही करते रहोगे?
एक छोटी कहानी मैंने पढ़ी है। एक वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक एक चूहे पर प्रयोग कर रहा था। चूहे में बुद्धिमत्ता है या नहीं, इस संबंध में जानकारी के लिए कोशिश कर रहा था। उसने एक कठघरा बनाया। उसमें बारह छोटे-छोटे कमरे हैं। नौवें कमरे में उसने चूहे के खाने के लिए कुछ रख दिया और चूहे को कठघरे में छोड़ दिया। चूहा भागा इस कोने उस कोने, इस कमरे उस कमरे। और जब उसे नौवें कमरे में भोजन मिल गया, तो बड़ा मस्त हुआ। दोबारा जब चूहे को छोड़ा, तो वह सीधा नौवें कमरे की तरफ गया। और हर बार नौवें कमरे में उसे

भोजन मिल गया, तो धीरे-धीरे उसकी आदत बन गयी। छोड़ो उसे कठघरे में, चला वह सीधे नौवें कमरे की तरफ। जब आदत मजबूत हो गयी तो मनोवैज्ञानिक ने नौवें कमरे में न रख कर मिठाइयां, तीसरे कमरे में रख दीं। चूहा गया नौवें कमरे में। बड़ा चकित हुआ। चारों तरफ देखा, चकराया--बात क्या हुई! इधर-उधर गया, फिर लौट कर नौवें कमरे में आया कि कुछ भूल-चूक तो नहीं हो गयी। तीसरी बार आया। फिर देखा कि नहीं, नौवें कमरे में कुछ भी नहीं है। खोजबीन की। तीसरे कमरे में पहुंच कर मिठाई पा ली। फिर तीसरे कमरे में जाने लगा।
उस वैज्ञानिक से किसी ने पूछा कि चूहे का अध्ययन करने से आदमी की बुद्धिमत्ता का कैसे पता चलेगा?
उस मनोवैज्ञानिक ने कहाः हां, चूहे और आदमी में बड़ा भेद है। चूहा एक
ही बार जाकर समझ गया कि अब नौवें कमरे में मिठाई नहीं है; आदमी जिंदगी-भर न समझता। वह बार-बार नौवें में ही जाता, बार-बार नौवें में ही जाता... वह जाता ही रहता। और जितनी बार जाता उतनी ही जाने की आदत मजबूत होती जाती। चूहे और आदमी में इतना भेद है कि चूहा समझ गया कि अब नौवें में मिठाई नहीं है; आदमी कभी न समझता।
ठीक ऐसी दशा है तुम्हारे तथाकथित धार्मिकों की। मंदिर तुम कितने वर्षों से गये हो, कुछ पाया नहीं; फिर भी चले जाते हो आदतवश।... एक औपचारिकता, एक सामाजिक व्यवहार... जाना चाहिए इसलिए। मुझसे न मालूम कितने लोगों ने कहा है कि हम पूजा सुबह करते हैं, कुछ मिलता तो नहीं पूजा करने से, लेकिन न करें तो दिन-भर बेचैनी रहती है। लेकिन यह बेचैनी तो वैसी ही हुई जैसे कि तंबाकू खानेवाले को होती है, धूम्रपान करने वाले को होती है। अब कोई धूम्रपान करने से मिलता नहीं कुछ। क्या खाक मिलेगा! धुएं को भीतर ले गये, बाहर लाये, इससे क्या कुछ मिलने वाला है? कुछ खो भला जाये, मिलेगा क्या? लेकिन अगर न धुएं को बाहर-भीतर ले जाओ, तो बेचैनी मालूम होती है। आदत मजबूत हो गयी। तलफ लगती है।
तुम्हारी पूजा, तुम्हारे पाठ, तुम्हारे मंत्र कहीं तलफ तो नहीं हैं? क्योंकि अगर कुछ मिलता न हो, तो इतनी बुद्धिमत्ता होनी चाहिए कि कहीं और तलाशो, किसी और तरह तलाशो। कोई और मार्ग खोजो। बार-बार उसी कठघरे में जाने से क्या होगा? मगर लोग जिंदगी गुजार देते हैं। कोई गीता ही पढ़ रहा है तो जिंदगी-भर पढ़ता रहता है। और कोई कुरान पढ़ रहा है तो जिंदगी-भर पढ़ता रहता है। मिला है कुछ या नहीं? कभी एक बार सजग होकर सोचो।
हिंदू ध्यावै देहुरा, मुसलमान मसीत।
जोगी ध्यावै परम पद, जहां देहुरा न मसीत।।
फिर जोगी क्या करता है? फिर योग का मार्ग क्या है? हजारों लोग मंदिरों में, हजारों लोग गिरजों में, हजारों लोग मस्जिदों में, लेकिन कहीं कुछ ज्योति तो दिखायी पड़ती नहीं। मंदिर-मस्जिद उलटे लड़वाते हैं; राजनीतियों के अड्डे बन गये हैं। वहां पहुंचकर कोई शांति की झलक तो दिखायी नहीं पड़ती, न ही कोई आनंदमग्न भाव जन्मता है, न उत्सव पैदा होता है। न पैरों में थिरक आती है, न प्राणों में पुलक। जीवन जैसा था वैसा का ही वैसा चलता रहता है। जोगी ध्यावै परम पद!
इसलिए योगी मंदिर-मस्जिद का ध्यान नहीं करता, परम पद का ध्यान करता है। क्या है परम पद? कहां है परम पद? मंदिर भी बाहर, मस्जिद भी बाहर; परम पद तुम्हारे भीतर है। परमात्मा तुम्हारे भीतर विराजमान है। और तुम कहां खोज रहे हो बाहर? और जब तक तुम बाहर खोजते रहोगे, उसे तुम कभी पा न सकोगे। सूफी फकीर स्त्री हुईः राबिया। उसके घर एक मेहमान थाः फकीर हसन। सुबह थी, हसन बाहर आया। बड़ी सुंदर सुबह! सूरज ऊगा और पक्षी गीत गाते, और वृक्ष हरे, और वृक्षों पर फूल खिले, और आकाश में बड़े प्यारे रंग! ... ऐसी प्यारी सुबह... और राबिया अब भी झोपड़े के भीतर है, तो हसन ने आवाज दीः राबिया, पागल राबिया! भीतर तू क्या करती है, बाहर आ। देख, परमात्मा ने कैसी सुंदर सुबह रची!
और राबिया खिलखिला कर हंसी। उसकी हंसी सुनना; अगर तुम्हें सुनायी पड़ जाये, तुम्हारी जिंदगी बदल जाये। राबिया अभी भी हंस रही है। राबिया की हंसी ऐसी नहीं है कि जो समाप्त हो जाये। राबिया उन थोड़ी-सी स्त्रियों में से एक है, जिनकी गणना बुद्ध, महावीर, मोहम्मद कृष्ण के साथ की जानी चाहिए।

थोड़ी-सी स्त्रियों में से एक है। राबिया खिलखिला कर हंसी। हसन तो चौंक गया, खिलखिलाहट उसकी बड़ी दीवानी थी। और उसने कहाः पागल हसन! तू ही भीतर आ। मुझे मालूम है कि सुबह सुंदर है। मैंने बहुत सुबहें देखी हैं। उसकी प्रकृति बड़ी प्यारी है! उसकी सृष्टि बड़ी अदभुत है, अलौकिक है! मगर जिसने उसे देख लिया, उसके लिए तो उसकी प्रकृति बिल्कुल फीकी हो जाती है। तू चित्र ही देख रहा है, मैं चित्रकार को देख रही हूं। तू काव्य ही सुन रहा है, मैं कवि के सामने खड़ी हूं। तूने सिर्फ प्रतिध्वनि सुनी है, मैं मूलस्रोत को सुन रही हूं। तू ही भीतर आ! मुझे बाहर मत बुला, मैं बाहर बहुत रह चुकी। तू भी बाहर बहुत रह चुका, अब भीतर आ।
बात तो छोटी-सी थी। हसन ने तो किसी और ही मतलब से कही थी। लेकिन सिद्ध पुरुषों की यही खूबी है कि छोटी-छोटी बातों को बड़े-बड़े अर्थ दे देते हैं। छोटी-छोटी बातें उनके हाथ का स्पर्श पा कर स्वर्णिम हो जाती हैं। उसने तो ऐसे ही पुकारा था कि राबिया, तू भीतर क्या करती है? सुबह, बड़ी सुंदर सुबह है, बाहर आ। राबिया ने बात बदल दी। राबिया ने इस छोटी-सी घटना को एक आध्यात्मिक उत्प्रेरणा बना दी। उसने कहाः नहीं हसन, तू ही भीतर आ, क्योंकि मैं भीतर उस मालिक को देख रही हूं, जिसने बाहर की सुबह बनायी है।
जिसने भीतर छिपे मालिक को देख लिया, सब मंदिर मिल गये, सब मस्जिदें मिल गयीं। फिर तुम जहां हो वहीं मंदिर है, वहीं मस्जिद है। मगर नाराज हो जायेंगे लोग। लोग नाराज हो जाते हैं। लोग सत्य की बातों से बड़े नाराज हो जाते हैं। क्योंकि मैंने कह दिया कि जहां तुम बैठे हो अगर तुम शांत हो, मौन हो, आनंदित हो, तो वहीं काबा है--बस मौलवी नाराज हो गये! ... काबा! काबा पवित्र स्थल है। मैं तुम से फिर कहता हूंः जहां ध्यानी बैठ जाता है वहीं काबा है। उसे कहीं और जाने की जरूरत नहीं।
मंसूर अलहिल्लाज को जब ज्ञान उत्पन्न हुआ, तो उसके भीतर से अनलहक की आवाज उठने लगी--मैं परमात्मा हूं! अंधे लोग क्षमा नहीं कर सकते ऐसी बात। अंधे भी बड़े जिद्दी हैं। सदियां बीत गयीं, आंखवाले आते रहे और जाते रहे, मगर अंधे भी बड़े जिद्दी हैं। सदियां बीत गयीं। दीये जलते रहे, लेकिन अंधे बुझाते रहे। अमृत आता रहा, लेकिन अंधे इंकार करते रहे। आंख का उपचार हो सकता था, लेकिन अंधे भागते रहे उपचार से।
मंसूर ने आवाज दीः अहं ब्रह्मास्मि, अनलहक, मैं ईश्वर हूं! अब यह एक मुसलमान देश में इस तरह की बात कहनी बड़ी खतरनाक है। मंसूर के गुरु ने कहा कि मंसूर, इस तरह की बात मत कर। मुझे भी मालूम है। मेरे भीतर भी यह आवाज उठी थी, लेकिन दबा गया। क्योंकि नाहक उपद्रव क्यों खड़ा करना, पी गया। तू भी पी जा।
गुरु ने कहा, तो मंसूर ने कहाः आप कहते हैं तो ऐसा ही करूंगा। लेकिन फिर जब भी ध्यान में बैठे तब फिर आवाज, वही पुकार--अनलहक!
गुरु जुन्नैद ने कहा कि सुन, तू वचन भी दे देता है और तोड़ देता है।
मंसूर ने कहाः मैं नहीं तोड़ता वचन। जब तक मेरा वश रहता है, जब तक मैं रहता हूं तब तक वचन का पालन करता हूं। लेकिन एक ऐसी घड़ी आती है जब मैं नहीं रहता। फिर कौन वचन का पालन करे? फिर वही पुकारता है अनलहक, मैं क्या करूं? उसने तो वचन दिया नहीं, वचन मैं देता हूं। इसलिए जहां तक मेरी सामर्थ्य है, वहां तक दबाये रखता हूं। लेकिन जब मेरी सामर्थ्य छूट जाती है, जब मैं ही नहीं होता, परमात्मा मेरे भीतर से बोल उठता है, तो फिर कुछ किया नहीं जा सकता।
जुन्नैद ने कोई उपाय न देख कर... क्योंकि मौलवियों तक खबरें पहुंचने लगीं। और मौलवी ये खबरें ले जाने लगे राजदरबार तक कि यह मंसूर काफिर हो गया है। जैसे कृष्ण मुहम्मद काफिर हो गये न, राधा मोहम्मद काफिर हो गयी-- ऐसे ही मंसूर काफिर हो गया! लोग खबरें ले जाने लगे। जुन्नैद को प्रेम था मंसूर से। जुन्नैद ने कहाः तू एक काम कर, तू कुछ दिन के लिये तीर्थयात्रा पर चला जा। जा काबा की यात्रा कर आ। यात्रा भी हो जायेगी और वहां तू खूब रास्ते में, एकांत में, जंगल में, रेगिस्तानों में चिल्ला लेना जितना चिल्लाना होः अनलहक! क्योंकि रेगिस्तान इतना नासमझ नहीं है जितने लोग! पत्थर-पहाड़ इतने मूढ़ नहीं हैं जितने लोग! वे तेरी बात समझेंगे। तू जा, और एक बार तीर्थयात्रा कर आ।

यह सिर्फ बहाना था कि एक साल, दो साल के लिए... क्योंकि उन दिनों हज की यात्रा पर जाना वर्षों का काम था। पैदल जाना, लंबी यात्रा। लौटना हो भी कि न हो। जंगल और पहाड़ और रेगिस्तान और नदियां और बीमारियां और हजार उपद्रव थे... जंगली जानवर। दो-चार वर्ष बात टल जायेगी। फिर लौटेगा, तब तक शायद शांत भी हो जाये। अभी नयी-नयी घटना घटी है, अभी ताजा-ताजा परमात्मा बोला है, इसलिए रोकने में असमर्थ है। इस बीच थोड़ी क्षमता भी बढ़ जायेगी।
गुरु ने कहा, तो मंसूर ने झुक कर नमस्कार किया और कहाः आप कहते हैं तो
यह चला यात्रा को। अभी कर आता हूं काबा, हज।
गुरु तो बहुत प्रसन्न हुआ। लेकिन प्रसन्नता ज्यादा देर न टिकी, क्योंकि मंसूर उठा और अपने गुरु के सात चक्कर लगाये और आ कर बैठ गया। और उसने कहा। यह हो गयी यात्रा। तुम मेरे काबा, तुम मेरे तीर्थ! और कहां जाना है, तुम्हें छोड़ कर कहां जाना है?
जरूर मुसलमान नाराज हो गये होंगे। देहधारी मनुष्य को काबा कहना! अनलहक की घोषणा करना! मैं परमात्मा हूं, ऐसी घोषणा करना! मंसूर को सूली दी। मंसूर के हाथ-पैर काट डाले।
सदियां बीत गयीं, लेकिन बात नहीं बदलती! अभी भी वे कृष्ण मुहम्मद को पत्र लिखते हैं कि गर्दन काट देंगे। आदमी कभी बदलेगा या नहीं बदलेगा? यहां ध्यान करने वाले लोगों पर हमला कर देंगे, कि गर्दनें काट देंगे। आदमी कभी बदलेगा या नहीं बदलेगा?
न तो मंदिर में है परमात्मा, न मस्जिद में है; परमात्मा तुम्हारे भीतर है। और जिसने उसे वहां नहीं पाया, उसे कहीं भी नहीं पा सकेगा। और जिसने उसे वहां पाया, वह सब जगह पा लेगा।
जोगी ध्यावै परम पद, जहां देहुरा न मसीत।।
कोई न्यंदै कोई व्यंदै... ।
और इसलिए अड़चनें खड़ी होंगी। कोई निंदा करेगा, कोई वंदन करेगा। ज्ञानी
को यह अड़चन सदा होगीः कोई निंदा करेगा, कोई प्रशंसा करेगा। कोई न्यंदै कोई व्यंदै। और वंदन करने वाले तो थोड़े होंगे, निंदन करने वाले बहुत होंगे। सौ में से निन्यानबे तो गालियां देंगे; कोई एक-आध, कोई एक-आध माई का लाल, कोई एक-आध विरला, कोई एक-आध हिम्मतवर प्रशंसा करेगा।
प्रशंसा तो वही कर सकता है, जिसे थोड़ी झलक मिली है; एक-आध किरण सही, न मिला हो सूरज; एक-आध बूंद सही, न मिला हो सागर। जरा-सी सुगंध ही आयी हो, लेकिन नासापुट तक पहुंची हो, वही वंदन कर सकेगा।
तो वंदन करने वाला तो कभी कोई एक-आध होगा, निंदा करने वाले बहुत होंगे। ध्यानी को, योगी को, खोजी को स्मरण रखना चाहिएः गालियां बहुत मिलेंगी, फूल-हार कभी-कभी।
कोई न्यंदै कोई व्यंदै, कोई करै हमारी आसा।
और कुछ लोग सोचते हैं कि हम से कुछ मिल जायेगा, इसलिए प्रशंसा करते हैं। वह प्रशंसा भी सच्ची नहीं है फिर। उन विरले लोगों में भी जो प्रशंसा करते हैं, उनमें से कुछ इसलिए करते हैं अधिक कि कुछ मिल जायेगा, कि योगी से कुछ चमत्कार हो जायेगा। किसी को बेटा नहीं है। किसी को नौकरी नहीं है। किसी को कोई बीमारी है। किसी को कुछ है, किसी को कुछ है, जीवन की हजार अड़चनें हैं। तो जो नमस्कार करने भी आते हैं ध्यानी को, सिद्ध को, बुद्ध को, वे भी बुद्ध को नमस्कार करने नहीं आते। वे भी इस आशा में आते हैं कि शायद अपनी कोई कामना पूरी हो जाये। वे कल्पवृक्ष की तलाश में हैं, बुद्धत्व की तलाश में नहीं। वे सोचते हैं बुद्ध के पास शायद उनके आशीर्वाद से, जो हम अपने ही प्रयास से नहीं कर पाये हैं, उनके प्रसाद से हो जाये।
कोई करै हमारी आसा।
लेकिन जिन्होंने जाना है, वे तुम्हें ऐसा आशीर्वाद नहीं दे सकते जो तुम्हें और संसार में उलझा दे। उन्होंने स्वयं ही सारी आशाएं छोड़ दी हैं। वे तुम्हारी आशाओं को पूरा करने का कारण नहीं बन सकते। जिस बात को उन्होंने ही गलत जान कर छोड़ दिया है, वही गलत वे तुम्हें नहीं दे सकते।
जिसे उन्होंने ही बंधन माना है, वे कैसे तुम्हें आभूषण बना कर बंधनों को दे देंगे। वे जंजीरें हैं। उनके पास तुम जाओगे, तो वे तुम से कहेंगे कि तुम भी छोड़ दो सब आशा।

इस जगत में सब आशा व्यर्थ है, क्योंकि यह आशा सिर्फ भटकाती है-- भ्रमजाल है, मृगमाया! ये सोने के जो मृग दिखायी पड़ते हैं, ये कहीं होते नहीं। और तुम तो तुम, राम तक धोखे में आ जाते हैं! सोने का मृग! चले तलाश पर। रावण के कारण राम ने सीता नहीं खोई, सोने के मृग के कारण खोई। सोने के मृग की तलाश में चल पड़े। और जो बाहर निकल जाता है सोने के मृग की तलाश में, उसके भीतर की सीता खो जाती है। यह तो प्रतीक-कथा है। यह तो प्यारी कथा है। राम चले खोजने बाहर, भीतर की सीता खो गयी, आत्मा खो गयी।
कोई न्यंदै कोई व्यंदै, कोई करै हमारी आसा।
गोरख कहै सुणो रे अवधू, पंथ शरा उदासा।।
और गोरख कहते हैं, ठीक से सुन लो, समझ लो। हम तो खरी बात कह रहे हैं कि हमारे रास्ते पर आशा आती ही नहीं। हमारे रास्ते पर तो परम निराशा में ही कोई उतरता है।
परम निराशा को समझना। निराशा का अर्थ होता हैः इस जगत में न कुछ मिला
है, न मिल सकता है। सब स्वप्न-जाल है। बस स्वप्न ही स्वप्न है। दूर के ढोल सुहावने मालूम होते हैं, पास जाने पर कुछ भी हाथ नहीं लगता।
गोरख कहै सुणो रे अवधू, पंथ शरा उदासा।
यह तो पंथ ही उनका है, जो उदासीन हो गये हैं; जिन्होंने देख ली सब आशाएं और सब आशाएं उघाड़ कर पहचान लीं और भीतर कुछ भी नहीं पाया। यह रास्ता उनका है। इस रास्ते पर वे ही गतिमान होते हैं। संसार जिनके लिए व्यर्थ हो गया है, वे ही तो भीतर की यात्रा पर निकलते हैं। उनके पास तुम किसी आशा के कारण मत जाना।

मुझे सपने दिखाओ मतकि सपने टूट जाते हैं,
न अपनापन दिखाओ तुमकि अपने छूट जाते हैं!
न खो जाना रसीली तान मेंकल फूल कहते थे--
भ्रमर हमका रसीले गीतगाकर लूट जाते हैं!
कहानी सिंधु-मंथन कीयही फिर-फिर जताती है,
सुधा लेकर हलाहल केपिलाये घूंट जाते हैं! मुझे कल रात रो-रो करबताया एक बच्चे ने--
घरौंदे मत बना लेना, घरौंदे फूट जाते हैं!
किनारे कह रहे थे--लौटकर आती नहीं लहरें,
वचन सौ-सौ मिले हों, परनिकल सब झूठ जाते हैं!
छिपाकर चंद्रमा को, सिंधु से काली घटा बोली--
छटा के देवता ये अर्चना से रूठ जाते हैं!
यहां सब सपने ही सपने हैं। जिसको यह दिखायी पड़ गया कि बाहर कुछ भी नहीं है, वही अंतर की खोज पर निकलता है। बाहर से हारा हुआ ही भीतर जाता है। हारे को हरिनाम! इसलिए हार बड़ा सौभाग्य है, जीत बड़ी महंगी पड़ती है। इस दुनिया में जो सफल हो जाते हैं, वे चूक जाते हैं। इस दुनिया में सफल होना महंगा सौदा है। धन मिल गया, पद मिल गया, प्रतिष्ठा मिल गयी, इतरा गये, अकड़ गये, मदमस्त हो गये--चूक गये।
धन्य हैं वे जो हार जाते हैं; जिन्हें न पद न प्रतिष्ठा न सफलता--कुछ
भी नहीं मिलता। धन्य हैं वे, अगर समझ पायें तो। अगर अपनी धन्यता को पहचान पायें तो। अगर देख पायें कि कुछ भी नहीं मिलता। सब घरौंदे फूट जाते हैं।
जिनको ऐसा दिखायी पड़ जाये, उनके जीवन में क्रांति का अपूर्व क्षण आ गया।
गोरख कहै सुणो रे अवधू, पंथ शरा उदासा।
आसण बैसिबा पवण निरोधिबा, थांन मांन सब धंधा।
बदंत गोरखनाथ आत्मां विचारत, ज्यूं जल दीसै चंदा।।
आसण बैसिबा पवण निरोधिबा... ।
इन खेलों में मत पड़ जाना कि लगा कर बैठ गये आसन, कि हिलेंगे नहीं, कि बैठेंगे पत्थर की मूरत की तरह। इन खेलों में मत पड़ जाना। देह का आसन जमा कर बैठ गये, इससे कुछ भी न होगा। ये तो सर्कसी बातें हैं।
पवण निरोधिबा... ।
यह भी मत सोच लेना कि श्वास को भीतर रोक लेते हैं आधा-आधा घंटे, कि जमीन में सो जाते हैं दिन-दिन के लिए, ऊपर से मिट्टी डलवा लेते हैं, फिर

जिंदा निकल आते हैं। इन सब खेलों में मत उलझना। यह प्रश्न न तो देह का है, न श्वास का है; जो देह के और श्वास के पार है, उसका है। देह को सम्हाल लो, तो घंटों बैठे रह सकते हो एक ही आसन में। श्वास को सम्हाल लो तो श्वास को रोककर रह सकते हो। पर ख्याल रखना, ये व्यर्थ की ही बातें हैं। इनसे कुछ हाथ लगेगा नहीं।
आसण बैसिबा पवण निरोधिबा, थांन मांन सब धंधा।
इससे तुम्हें कुछ लाभ होंगे, सम्मान मिलेगा बहुत। लोग कहेंगेः अहा, महायोगी, सिद्धपुरुष! लोग सम्मान देंगे।
यह दुनिया बड़ी अजीब है। यहां असली बुद्धों को अपमान मिलता है, यहां नकली बुद्धों को सम्मान मिल जाता है। यहां मंसूर जैसे प्यारे आदमी को तो सूली लग जाती है। और अगर कोई रास्ते पर आ कर, कोई बाजीगर जमीन में गड़ कर खड़ा हो जाये, एक हाथ ऊपर निकाल कर सिर तक अपने को खपा ले, फिर देखो कैसी भीड़ लगती है, कैसा सम्मान शुरू होता है! और कभी उस आदमी को गौर से देखा, जो चौबीस घंटे जमीन में गड़ा रहता है? बाहर निकाल कर कभी उसके पास बैठे? उसके पास कोई सत्य की सुगंध पायी? उसके पास कोई तरंग उठी? नहीं, इस सबकी किसी को चिंता ही नहीं है? लोग तो अचंभों में रस लेते हैं।
बुद्धपुरुष तो सीधे-सरल होते हैं, अत्यंत सामान्य होते हैं। उल्टे- सीधे कामों में उन्हें क्या रस हो सकता है? कोई बुद्ध कांटों की सेज बिछा कर लेटेगा? किसलिए? कोई प्रदर्शनी करनी है? लेकिन कोई कांटों की सेज बिछाकर लेट जाये, तो चले तुम। किसी ने मुंह में भाला भोंक लिया, चले तुम, चली भीड़, मूढ़ों की जमात इकट्ठी हुई! असल में तुम्हारी भीड़ जहां भी इकट्ठी होती हो, समझ लेना कि कुछ-न-कुछ गलत हो रहा होगा; नहीं तो इतनी भीड़ इकट्ठी नहीं हो सकती थी।
एक अदभुत फकीर थेः महात्मा भगवानदीन। उनके साथ एक बार मैं यात्रा पर था। वे बड़े प्यारे व्यक्ति थे। मगर अगर सभा में कभी बोलते और कोई ताली बजा देता, तो बड़े उदास हो जाते। एक-दो बार मैंने यह देखा कि तालियां बजती हैं, तो वे बड़े उदास हो जाते हैं। तो मैंने उनसे पूछा कि मामला क्या है, जब लोग तालियां बजाते हैं आप उदास क्यों हो जाते हैं? तो उन्होंने कहा कि जब लोग तालियां बजाते हैं, तब मुझे पक्का हो जाता है कि मैंने जरूर कोई गलत बात कही होगी; नहीं तो लोग और तालियां बजायें? लोग तो गलत को ही पकड़ पाते हैं। तो लोगों की तालियां बजीं कि मेरे चित्त में तत्काल खटका लगता है कि जरूर कुछ-न-कुछ बात गलत हो गयी। कुछ ऐसा कह दिया जो लोगों की समझ में आ गया--और समझ में ही उनके गलत आता है। प्रशंसा कर रहे हैं तो जरूर कुछ मुझ से भूल हो गयी। ये वे ही तो लोग हैं, जो सत्य को सुन कर पत्थर मारते हैं। ये सत्य को सुन कर तालियां कैसे बजायेंगे।
मुझे उस बूढ़े फकीर की बात जमी। यह बात सच है। ये वे ही लोग हैं जिन्होंने बुद्ध को पत्थर मारे, महावीर के कानों में सींकचे ठोक दिये; जिन्होंने मुहम्मद को जिंदगी-भर शांति से न बैठने दिया। ये वे ही लोग हैं, जो मुहम्मद का पीछा करते रहे एक गांव से दूसरे गांव। मुहम्मद की जान हमेशा खतरे में बनाये रखी जिन्होंने, ये वे ही लोग हैं। मगर अब मुहम्मद की पूजा कर रहे हैं। अब महावीर की पूजा कर रहे हैं। अब बुद्ध का आराधन चल रहा है। पश्चात्ताप कर रहे हो, प्रायश्चित कर रहे हो? जो दुर्व्यवहार किया था उसके लिए अब रो रहे हो?
मगर तुम अब भी वही करोगे। तुम अब भी वही कर रहे हो। अब भी अगर कोई बुद्ध खड़ा होगा, तुम्हारा व्यवहार तत्क्षण पुराना का पुराना हो जायेगा। तुमने कुछ सीखा नहीं है सदियों में। तुम जैसे सीखोगे ही नहीं। जैसे तुमने जिद्द कर रखी है न सीखने की।
आसण बैसिबा पवन निरोधिबा, थांन मांन सब धंधा।
तो धंधा तो खूब चल सकता है, सम्मान भी खूब मिलेगा। अगर आसन मार कर बैठ गये और श्वास रोक ली, तो बहुत तुम्हारा सम्मान करनेवाले मिल जायेंगे, बहुत तुम्हारी पूजा करनेवाले मिल जायेंगे।
एक गांव में मैं गया। किसी ने मुझे कहा कि गांव में एक बड़े फकीर आये हुए हैं। मैंने पूछा, कौन?
उनका नाम हैः खड़ेश्री बाबा।

मैंने कहाः यह भी खूब नाम है, बात क्या है?
तो उन्होंने कहाः वे खड़े हैं दस साल से; बैठते ही नहीं!
पड़ोस में ही थे। सुबह जब मैं घूमने निकला, तो दिखाई पड़ गये, एक झाड़ के नीचे खड़े थे। झाड़ से एक झूला लटका रखा था। झूले पर हाथ टेके... क्योंकि नींद तो आयेगी ही रात, गिर न पड़ जायें। और दो शिष्य रात साथ लगे रहते थे; वे दिन-भर सोते थे शिष्य, और रात-भर उनको सम्हाले रखते थे कि वे गिर न जायें। लेटना तो है ही नहीं। उनके पैर सूज गये, सारा शरीर तो सूख गया, पैर हाथी- पांव हो गये। यह रुग्ण मनुष्य अकारण कष्ट झेल रहा है। मगर पूजा चल रही है! कीर्तन चल रहा है--सुबह सांझ रात, चौबीस घंटे!
मैंने लोगों से पूछा कि जरा इनकी आंखों में भी तो देखो, इनके चेहरे पर
भी देखो! न कोई प्रतिभा का लक्षण है, न कोई शांति है, न कोई प्रसाद है, न कोई काव्य झरता मालूम होता है। सिर्फ ये मोटे पांव, ये हाथी-पांव... । तुम इनकी पूजा किये जा रहे हो! पर वे बोले कि देखिये तो चमत्कार, दस साल हो गए! दस साल नहीं, दस सदियां हो जाएं तो भी क्या होगा? कोई मूढ़ दस साल तक खड़ा रहे, इससे प्रज्ञावान हो जायेगा? मूढ़ता और घनी हो जायेगी। मूढ़ता और मजबूत हो जायेगी।
आसन बैसिबा पवण निरोधिबा, थांन मांन सब धंधा।
बदंत गोरखनाथ आत्मां विचारत... ।
कहते हैं गोरखः करना हो तो एक ही बात करना, वह जो भीतर छिपा है उसका विचार करना। मैं कौन हूं, इस विचार में उतरना।
ज्यों जल दीसै चंदा!
और अगर तुम उस तक पहुंच गये, तो जैसे जल में चंद्रमा दिखायी पड़ता है, ऐसे ही अपने भीतर परमात्मा की झलक मिल जायेगी।

सूनी आंखों में रंग प्यार का भर लो,
पतझर में भी मधुमास दिखाई देगा!
माना, यमुना के तट पर आज उदासी,
माना, उजड़ा-उजड़ा-सा है वृंदावन;
माना, पनघट वीरान पड़ा बरसों से,
हर ओर दिखाई देता है सूनापन!
उर में मुरली की तान बसा कर देखो-- सूनेपन में भी रास दिखाई देगा! सूनी आंखों में रंग प्यार का भर लो पतझर में भी मधुमास दिखाई देगा! प्रियतम को दूर बताकर तुम रोते हो, तुमने शायद तन को ही प्यार किया है, मन की समीपता को न कभी पहचाना, अपराध न यह अब तक स्वीकार किया है! मन में छलिया का रूप बसाकर देखो-- छलना में भी विश्वास दिखाई देगा! सूनी आंखों में रंग प्यार का भर लो, पतझर में भी मधुमास दिखाई देगा! कागज के फूल चढ़ाते हो प्रतिमा पर? तुम पूजा को खिलवार समझ बैठे हो! प्यासे मृग-से दीवाने बने हुए हो, बालू को ही जलधार समझ बैठे हो!
तन से जो कोसों दूर दिखाई देता,
मन में खोजो तो पास दिखाई देगा! सूनी आंखों में रंग प्यार का भर लो, पतझर में भी मुधमास दिखाई देगा! मंजिल तो न्यौछावर होने आयेगी, बहके-बहके चरणों की चाल संभालो; मनुहार करो मत चांद-सितारों की तुम, केवल अपने उर को आकाश बना लो!

मीरा जैसा संकल्प संजोकर देखो,
विष में अमृत का वास दिखाई देगा!
सूनी आंखों में रंग प्यार का भर लो,
पतझर में भी मधुमास दिखाई देगा!
आकाश बनो। निर्विचार बनो। मौन बनो। भीतर जगो; भीतर जाग कर देखो। एक ही प्रश्न है सार्थक पूछने जैसा--मैं कौन हूं? पूछे जाओ, पूछे जाओ, पूछे जाओ... तीर की तरह चुभने दो इस प्रश्न को--मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? और बहुत उत्तर राह में आयेंगे, कोई उत्तर स्वीकार न करना। एक किनारे से कुरान बोलेगा कि तुम कौन हो। कह देना कि चुप! एक तरफ से गीता बोलेगी कि तुम कौन हो। कह देना कि चुप। एक तरफ से वेद बोलेंगे, धम्मपद बोलेगा। कह देना, चुप। सुनना ही मत शास्त्रों की। और ऐसा नहीं कि शास्त्र गलत कहते हैं। शास्त्र बिल्कुल सही कहते हैं। मगर तुम शास्त्र की सुनना मत; अन्यथा तुम अपनी सुनने से वंचित रह जाओगे। तुम तो चले जाना भीतर और भीतर... और इंकार करते जाना थोथे ज्ञान को, जो तुमने सीख लिया बाहर से--पंडित से, मौलवी से, पुरोहित से। कह देना नहीं, मुझे जानना है। मुझे स्वयं ही जानना है। मैं अपना ही जानूंगा तो मानूंगा, अन्यथा कुछ न मानूंगा।
हटा देना सब शास्त्र। चले जाना भीतर। हो जाना बिना शास्त्र के, बिना विचार के। एक ऐसी घड़ी आयेगी, प्रश्न ही गूंजता रह जायेगा, कोई उत्तर न उठेगा। मैं कौन हूं? ... और कोई उत्तर न आयेगा। समझना, आधी यात्रा पूरी हो गयी, अब सब उत्तर गिर गए। बासे, सिखाए गए पढ़ाए गए, तोतों की तरह रटे गये... ग्रामोफोन रिकार्ड सब छूट गए पीछे। अब सिर्फ तुम्हारा प्रश्न बचा है--मैं कौन हूं? यह आधी यात्रा। एक कदम पूरा हो गया--और बड़ा कदम पूरा हो गया! असली कदम पूरा हो गया। दूसरा कदम तो बहुत आसान है।
अब पूछते जानाः मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? और तुम चकित हो जाओगे, एक घड़ी आयेगी, प्रश्न भी छूट जायेगा। ऐसा सन्नाटा खिंचेगा कि प्रश्न भी बनाये न बनेगा। चाहोगे भी पूछना, तो न पूछ सकोगे। पहले उत्तर गिर जायेंगे--बासे, सिखाये, शास्त्रों से पढ़े। फिर प्रश्न गिर जायेगा। और जहां न प्रश्न है न उत्तर है, वहीं उत्तर है! अब प्रश्न भी नहीं कि मैं कौन हूं! लेकिन तुम जागोगे और देखोगे। तीर जगा गया। तीर छिद गया हृदय में। उसकी पीड़ा तुम्हें चौंका गयी, उठा गयी, तोड़ गई तंद्रा, छूट गयी नींद, हो गयी सुबह। और तब तुम आंख खोल कर देखना। तब तुम चकित हो जाओगे; यह जगत उसी का जगत है! इसके पत्ते-पत्ते पर उसी की छाप है! इसके कण-कण पर उसी का हस्ताक्षर है! और फिर गीता पढ़ना। फिर कुरान गुनगुनाना। और तुम हैरान हो जाओगे, जो तुमने जाना है, वही कुरान है। जो तुमने जाना है वही गीता है। अब गीता और कुरान और धम्मपद और बाइबिल, सब तुम्हारे गवाह हो गये। मेरी ये बातें पंडितों को, मौलवियों को बड़ा कष्ट दे जाती हैं। और मैं यह कह रहा हूं कि तुम असली कुरान कैसे पाओ, तुम्हारे भीतर असली कुरान की आयत कैसे उठे। मैं तुम्हें असली कुरान खोजने की कुंजी दे रहा हूं। मगर जो कुरान रटकर बैठा है उसे तो अड़चन लगेगी। वह तो कहेगा कि मैंने कहा, कुरान की आवाज आये तो मत सुनना; कह देना चुप रहो। यह तो अपमान हो गया कुरान का। समझोगे या नहीं समझोगे?
मुझ से ज्यादा किसी ने प्रेम किया होगा कुरान को, उपनिषद को, गीता को, बाइबिल को? मुझसे ज्यादा किसी ने स्मरण किया है मुहम्मद का, महावीर का, बुद्ध का, कृष्ण का, क्राइस्ट का? लेकिन फिर भी मैं तुम से कहता हूंः राह पर जब तुम्हें बुद्ध और कृष्ण और क्राइस्ट और मुहम्मद मिलें, हटा देना; कहना, हट जाओ मार्ग से; रास्ता दो। मुझे जाने दो। मुझे रोको मत, मुझे अटकाओ मत। मुझे मेरे गंतव्य तक पहुंच जाने दो। मैं तुम्हें भी तभी जान पाऊंगा जब मैं अपने पर पहुंच गया हूं। उसके पहले तुम बासे हो, उधार हो। उसके पहले मैं तुम्हें खाक समझूंगा! तुम कुछ कहोगे, मैं कुछ और समझूंगा। तुम सत्य कहोगे, मैं शब्द पकड़ लूंगा। जब तक तुम्हारी जैसी ही भाव-दशा मेरी न हो जाये। जैसे मुहम्मद के निर्जन निवास में पहाड़ पर एक दिन कुरान उतरी... । जैसी दशा मुहम्मद की उस दिन थी जिसमें कुरान उतरी, जब तक तुम्हारी न हो जाये, तब तक तुम कुरान को न जान पाओगे। गीता को जानना हो, तो कृष्ण जैसा चित्त चाहिए। अर्जुन भी हो गये, तो भी न जान पाओगे। अर्जुन, देखो कितना विवाद कर

रहा है कृष्ण से; नहीं समझ पा रहा है। अर्जुन इतने निकट है, इतना मित्र, संगी-साथी है बचपन का। एक-दूसरे के साथ खेले हैं। एक-दूसरे के साथ मिले- जुले हैं, मैत्री है; मगर फिर भी अर्जुन नहीं समझ पा रहा है। कृष्ण कुछ कहते हैं, अर्जुन कुछ पूछे चला जाता है।
तुम कैसे समझोगे--तुम जो इतने दूर हो? हजारों सालों का फासला है तुम्हारे और कृष्ण के बीच--भाषा का, भाव का, विचार का, संस्कार का, संस्कृति का, समाज का, इतना लंबा फासला... । अर्जुन नहीं समझ पा रहा है, तुम कैसे समझ पाओगे? नहीं, तुम कुछ का कुछ समझ लोगे।
कृष्ण-चेतना तुम्हारे भीतर पैदा हो, तो ही तुम गीता समझ पाओगे। और मुहम्मद जैसा भाव तुम्हारे भीतर हो, तो तुम्हारे भीतर भी कुरान उतरेगी। कोई मुहम्मद पर ही परमात्मा की विशेष कृपा थोड़े ही है। परमात्मा किसी पर विशेष कृपा नहीं करता; उसकी अनुकंपा समान है। सब पर एक जैसी बरस रही है। जो खाली हैं वे भर जाते हैं, जो भरे हैं वे खाली रह जाते हैं--बस इतना ही ख्याल रखना। वर्षा होती है पहाड़ों पर भी, लेकिन पहाड़ खाली रह जाते हैं, क्योंकि भरे हैं। झीलों में भी वर्षा होती है, लेकिन झीलें भर जाती हैं, क्योंकि खाली हैं।
शून्य हो जाओ पहले तो भर जाओगे। मगर तुम्हारा कुरान, तुम्हारी गीता, तुम्हारी बाइबिल, तुम्हारे वेद भरे हैं। तुम पहाड़ बने बैठे हो--ज्ञान के पहाड़! उसी से तुम अज्ञानी हो। हटाओ इन पहाड़ों को। इन पहाड़ों की ओट में अपने अज्ञान को छिपाओ मत। अपने अज्ञान को नग्न करो, निर्वस्त्र करो। खोल दो उसके सामने अपने सारे घावों को। खाली हो तो खाली सही; जैसे भी हो उसके हो। सूने हो, शून्य हो, शून्य सही; जैसे भी हो उसके हो। अपने शून्य पात्र को उसके सामने कर दो। और तुम तत्क्षण भर जाओगे उसकी रोशनी से। और वही रोशनी प्रमाण बन जायेगी सारे शास्त्रों का। उसी रोशनी में तुम्हारे भीतर शास्त्र का जन्म शुरू हो जायेगा।
शास्त्र तो रोज पैदा होते हैं; जब भी कोई ध्यान को उपलब्ध होता है तभी शास्त्र पैदा हो जाते हैं। जैसे गंगोत्री से गंगा निकलती है, ऐसे समाधि से शास्त्र निकलते हैं।
केता आवै केता जाइ। केता मांगै केता खाइ।
केता रुष-बिरष तलि रहै। गोरख अनभै कासौं कहै।।
गोरख कहते हैंः कई आते हैं और कई जाते हैं। मगर मुश्किल से कोई एक-आध ऐसा आता है जो टिक रहे। यहां भी कई आते हैं कई जाते हैं। केता आवै केता जाइ। और जो आ कर चला जाता है वह सोचता है वहां कुछ भी नहीं था, इसलिए चले आये... । लेने की क्षमता न थी। खुलने की हिम्मत न थी। अज्ञान को स्वीकार करने की तत्परता न थी। नग्न होने, उघड़ने का साहस न जुटा सके, इसलिए पलायन कर गये। मगर सोच कर यही जाता है जाने वाला कि यहां क्या है? यहां कुछ नहीं, कहीं और चलें।
केता आवै केता जाइ।
ऐसा गोरख ने भी देखा होगा। न मालूम कितने लोग आये, न मालूम कितने लोग गये।
केता मांगै केता खाइ।
बहुत से मांगते हैं ज्ञान की भीख, मगर बहुत कम हैं जो उसे खाते हैं और पचाते हैं। और जब तक ज्ञान पचाया न जाये, जब तक खून-मांस-मज्जा न बने, तब तक कुछ भी न होगा। लोग ज्ञान को ऐसे ही भर लेते हैं खोपड़ी में, जैसे कोई बिना पचाये भोजन को अपने पेट में डालता जाये। इससे तो रोग पैदा होगा, उपाधि लगेगी, व्याधि लगेगी। इससे निरोगता न आयेगी।
जैसे भोजन बे-पचा पेट में पड़ा रहे तो जहर है, ऐसे ही ज्ञान बे-पचा मस्तिष्क में पड़ा रहे तो जहर है। ऐसे ही जहर से पंडित और मौलवी पैदा होते हैं। ज्ञानी बनना हो तो ख्याल रखनाः पाचन की शक्ति जगानी होगी। परमात्मा को पचाने की क्षमता चाहिए। ध्यान में ही यह हो सकेगा। भीतर ध्यान का आकाश होगा; तो ही तुम परमात्मा को अपने में समाविष्ट करने में सफल हो पाओगे। केता आवै केता जाइ। केता मांगै केता खाइ।
कितने मांगते हैं, मगर पचा कौन पाता है? कितने पूछते हैं, लेकिन उत्तर
को ग्रहण कौन करता है!

केता रुष-विरष तलि रहै।
गोरख के पास लोग आते होंगे। कुछ रुक भी जाते होंगे। बैठ गये वृक्षों
के नीचे, जैसे इस देश में चलते थे पुराने दिनों में योगी; अब भी... बैठ गये वृक्ष के नीचे। कुछ दिन रहे। धूनी तापी, चिलम पी। कुछ उल्टा-सीधा, इरछा- तिरछा योग साधा। कुछ मान-सम्मान पाया। आगे बढ़ गये।
गौरख अनभै कासौं कहै।
गोरख कहते हैं कि कहना चाहता हूं। मिल गया मुझे। मगर किससे कहूं? लोग टिकते नहीं; आते हैं चले जाते हैं। कोई पूछता भी है, तो थोथा प्रश्न होता है जिज्ञासु का, कुतूहल से भरा हुआ; मुमुक्षा का नहीं। किसको उत्तर दूं? कुछ आते हैं, जो अपनी मान-मर्यादा पाने के चक्कर में हैं। वृक्ष के नीचे बैठे। आसन जमाया। धूनी रमायी। दो दिन रहे, आगे बढ़े। कुछ हैं जो धंधे में लगे हैं।
गौरख अनभै कासौं कहै।
यह पीड़ा सभी ज्ञानियों की रही। मिल गया है, देना चाहते हैं, बांटना चाहते हैं। सत्य बंटना चाहता है। मगर किसको दो? पात्र नहीं मिलते। किसको दो, कोई लेने को तैयार नहीं है। लोग व्यर्थ को लेने को आतुर हैं, कचरा-कूड़ा लेने को आतुर हैं। लेकिन सत्य को लेने को कोई आतुर नहीं है। क्योंकि महंगा सौदा है, सत्य को लेने का अर्थ होता हैः मरना पड़ेगा। तुम मरोगे तो सत्य ले सकोगे।
मरौ हे जोगी मरौ, मरौ मरण है मीठा।
तिस मरणी मरौ, जिस मरणी मरि गोरख दीठा।।
ले तो सकेगा सत्य को वही जो मिटने को तैयार है; जो कहता है कि मैं अपनी कीमत जीवन से भी देने के लिए तैयार हूं; यह मेरा जीवन जाये तो जाये, सत्य लेकिन मुझे चाहिए। ऐसी जिसकी त्वरा है, ऐसी ज्वलंत जिसकी अभीप्सा है, ऐसी जिसकी प्यास है--बस वही पा सकेगा।
तो अनभै कासौं कहै। मुझे मिल गया, गोरख कहते हैं, अभय ज्ञान। मुझे मिल गया वह ज्ञान जहां मृत्यु नहीं घटती, इसलिए जहां कोई भय नहीं। मैंने जान लिया वह, जो अमृत है। बांटना चाहता हूं। यह भरा हुआ कलश लेकर घूम रहा हूं कि कोई ले ले। मगर लेने वाले नहीं मिलते हैं।
बिरला जाणंति भेदांनिभेद। बिरला जाणंति दोइ पष छेद।
बिरला जाणंति अकथ कहाणी। बिरला जाणंति सुधि बुधि की वाणी।।
बहुत विरले हैं--गोरख कहते हैं--जिनको भेद है कि क्या व्यर्थ है और क्या सार्थक है। सार और असार में जिन्हें भेद है, ऐसे बहुत विरले हैं। वे ही ले सकेंगे। जो धन के पीछे दीवाने हैं, वे ध्यान न ले सकेंगे। उन्हें अभी पता ही नहीं कि कौन-सी बात सार्थक है, कौन-सी व्यर्थ है। जो पद के पीछे दीवाने हैं, वे प्रार्थना न ले सकेंगे। अभी तो कचरा जोड़ने में लगे हैं। अभी तो राह के किनारे कंकड़ बीन रहे हैं। अभी तुम उनको कहोगे भी कि आओ हमारे साथ, हीरे की खदानों पर ले चलें; वे जाने को राजी नहीं होंगे। उन्हें हीरों का कुछ पता ही नहीं है। हीरे होते भी हैं, इसका पता नहीं है। उन्होंने तो कंकड़-पत्थर को ही हीरा मान लिया है।
बिरला जाणंति भेदांनिभेद। बिरला जाणंति दोइ पष छेद।
ये जो पक्ष-विपक्ष हैं, ये दोनों छेदवाले हैं--ऐसा विरलों को ही पता है। जीवन का सत्य पक्ष-विपक्ष में बंटने से नहीं मिलता, कि तुमने यह वाद मान लिया या वह वाद मान लिया, तुमने यह शास्त्र मान लिया कि वह शास्त्र मान लिया; कि तुम हिंदू हो गये कि मुसलमान हो गये। पक्ष-विपक्ष में बंटने से सत्य नहीं मिलता। सत्य तो निष्पक्ष को मिलता है।
इसलिए मैं तुम से बार-बार कहता हूं कि जो धार्मिक है वह किसी संप्रदाय
का हिस्सा नहीं हो सकता। धार्मिक होने की शर्त ही यही है कि निष्पक्ष हो जाये। खोजी रहे, खुला रहे। फिर जहां से भी पुकार आ जाये उसी तरफ चल पड़े। फिर यह सोच-विचार न करे कि किससे लूं और किससे न लूं। नहीं तो जैन जाता है केवल जैन मुनि के पास, चाहे जैन मुनि के पास हो या न हो। अगर हिंदू को मिल गया है, तो भी जैन वहां न जायेगा। मुसलमान जाता है अपने फकीर के पास, चाहे वहां हो चाहे न हो। अगर किसी जैन मुनि को मिल गया है तो मुसलमान नहीं जाता।

और ऐसी ही औरों की गति है। ये पक्षों के कारण, सत्य यहां मिल भी जाता है लोगों को, तो भी तुम नहीं उपलब्ध कर पाते। तुम अटके रह जाते हो।
निष्पक्ष बनो।
बिरला जाणंति दोइ पष छेद।
इस पक्ष में उस पक्ष में, सब तरफ छेद ही छेद हैं। पक्ष मात्र में छेद है। निष्पक्ष हो जाओ, तो तुम निष्छिद्र हो जाओ। और जो निष्छिद्र है, वही सत्य को झेल सकेगा। उसमें वर्षा होगी अमृत की, तो उसका पात्र भर जायेगा। बिरला जाणंति अकथ कहाणी।
और बहुत कम हैं जो उसको जान पाते हैं, जो नहीं कहा जा सकता। अब जो कहा नहीं जा सकता, वह लिखा भी नहीं जा सकता। जो बोला नहीं जा सकता, बताया नहीं जा सकता, उसे कैसे जानोगे शास्त्र से? उसे कैसे समझोगे पंडित से? उसे जानने के लिए तो उसके पास बैठना होगा जिसने जान लिया हो। उसके पास बैठते- बैठते चमत्कार घटता है। सत्संग में जानना होगा उसे।
सत्संग इस जगत का सब से बड़ा चमत्कार है। सत्संग छूत की बीमारी है-- संक्रामक है। जिसने जान लिया है, उसके पास बैठते-बैठते रोग उसको भी लग जाता है, जिसने नहीं जाना। जानने का रोग, ध्यान का रोग, मस्ती का रोग--अगर रोग कहना चाहो; कहना तो नहीं चाहिए। कहना चाहिए संक्रामक स्वास्थ्य। उसका स्वास्थ्य लग जाता है। उसकी स्व-स्थिति तुम्हें भी लग जाती है। तुम्हारे भीतर भी भनक होने लगती है।
गुरु के पास बैठ कर उसके तार में तार मिलाना। गुरु के पास बैठ कर उसके छंद में लीन होना। गुरु के पास बैठ कर उसके शून्य को पीना। गुरु के पास बैठ कर उसकी उपस्थिति में डूबना। अगर होगा, तो बस इसी तरह होता है, और किसी तरह नहीं होता। बुझे दीये को हम जले दीये के पास ले जाते हैं--पास और पास और पास... ।
एक ऐसी घड़ी आती है जहां तत्क्षण जले दीये से बुझे दीये पर ज्योति छलांग लगा जाती है। मगर पास लाना पड़ता है। तुम मील भर दूर रखो बुझे दीये को जले दीये से, तो घटना नहीं घटेगी। आधा मील दूर रखो तो भी नहीं घटेगी। एक गज दूर रखो तो भी नहीं घटेगी। एक फीट दूर रखो तो नहीं घटेगी। सरकाते जाओ, सरकाते जाओ, सरकाते जाओ... छह इंच पर भी नहीं घटेगी, चार इंच पर भी नहीं घटेगी। लेकिन एक घड़ी आती है, इंच या आधा इंच की दूरी और पाव इंच की दूरी... और बस... जो होना था हो गया। एक क्षण में छलांग लग जाती है। सत्संग का यही अर्थ हैः ज्योति से ज्योति जले!
यह अकथ है सत्य, कहा नहीं जा सकता। लेकिन ज्योति से ज्योति जलाई जा सकती है।
बिरला जाणंति सुधि बुधि की वाणी।
इसीलिए जो सिद्ध हो गये, जो बुद्ध हो गये, उनकी वाणी को बहुत विरले समझ पाते हैं, क्योंकि वे बोलते क्या हैं? जो नहीं बोला जा सकता, उसको कैसे बोलेंगे? फिर बुद्ध क्यों बोलते हैं? सारे बुद्ध बोलते रहे हैं। बोलते हैं तुम्हें पुकारने को कि पास आ जाओ। बोलने से सत्य नहीं मिल सकता। लेकिन बोलने के कारण तुम पास आते जाओगे। यह पुकार है कि और सरक आओ, और थोड़ा, और थोड़ा, और थोड़ा... । सरकते-सरकते एक क्षण ज्योति छलांग लगा जाती है। संन्यासी सोइ करै सब नास। गगन मंडल महि मांडै आस।
अनहद सूं मन उनमन रहै। सो संन्यासी अगम की कहै।।
सत्संग में संन्यास का जन्म होता है। संन्यास का अर्थ होता हैः सम्यक न्यास। जो व्यर्थ है, उसे परिपूर्ण रूप से छोड़ देना। संन्यास का अर्थ संसार छोड़ देना नहीं है; संन्यास का अर्थ व्यर्थ पर पकड़ छोड़ देना है और सार्थक के लिए उन्मुख हो जाना है, सार्थक के लिए तत्पर हो जाना है, ग्राहक हो जाना है।
संन्यासी सोइ करै सब नास।
जो सर्वन्यास कर दे--जो सब भांति व्यर्थ को छोड़ दे, वही संन्यासी। जो सत्संग में सब छोड़ने को राजी हो जाये, वही संन्यासी।
गगन मंडल महि मांडै आस।
वह कोई ऐसी छोटी-मोटी आसन लगाने में नहीं पड़ता--शीर्षासन और सर्वांगासन और पद्मासन और सिद्धासन, और इस सब के उपद्रव में नहीं पड़ता है।

वह तो एक ही आसन लगाता है--शून्य में आसन लगाता है। गगन मंडल महि मांडै आस।
गगन मंडल का अर्थ होता हैः भीतर का आकाश। भीतर के शून्य में आसन जमाता है।
वहां निर्विचार हो कर बैठ रहता है।
अनहद सूं मन उनमन रहै।
वहीं बैठकर शून्य में डूबता है।
शून्य में डूबना उनमन होना है। उनमन यानी मन के पार होना है--अमन होना है। और तब अनहद का नाद सुनायी पड़ता है। तब परम संगीत--ओंकार, अनहद बजने लगता है। वहीं से उठे वेद, वहीं से उठे उपनिषद, वहीं से कुरान; वहीं से जीसस के, बुद्ध के, महावीर के वचन। वे सब अनहद से उठे हैं।
अनहद सूं मन उनमन रहै। सो संन्यासी अगम की कहै।
और फिर जो वहां पहुंच गया है, वह अगम की कहने लगता है, जिसकी कोई सीमा नहीं है; जिसको पार पाने का कोई उपाय नहीं है; जिसकी कोई थाह नहीं है--अथाह और अगम है; जिसमें डूबो तो डूबते ही चले जाओ और कभी थाह न मिले।
लेकिन जो अपने भीतर के अनहद को सुन लिया है, वह उस अगम की खबर ले आता है। वह अपने व्यक्तित्व से अगम की तरंगें विकीर्णित करने लगता है। वह जिसे छू दे, उसे अगम का स्वाद मिले। वह जिसे अपनी छाती से लगा ले, उसे अगम ने छाती से लगा लिया। मगर ऐसे व्यक्ति की छाती से लगने के लिए तुम्हारे पास बड़ी छाती चाहिए, बड़ा खुला हृदय चाहिए। संकीर्णताएं होंगी तो यह अपूर्व घटना नहीं घट पायेगी।
दरवेस सोइ जो दर की जाणै।
क्या प्यारी परिभाषा की! कहा, दरवेस कौन? वही जो दर की जाने, जिसे घर
का पता चल गया। जिसे दरवाजा मिल गया। जिसे परमात्मा का द्वार मिल गया।
दरवेस सोइ जो दर की जाणै।
जिसे अपना घर मिल गया। जिसकी तलाश थी, जिसकी खोज थी, पहुंच गये वहां।
परम स्थान आ गया।
दरवेस सोइ जो दर की जाणै। पंचे पवण अपूठा आनै।
और जिसने अपनी पांचों इंद्रियों को उल्टा लिया है। आंख अब उसकी बाहर नहीं देखती, भीतर देखती है; और कान अब उसके बाहर नहीं सुनते, भीतर सुनते हैं। क्योंकि भीतर अनहद का नाद हो रहा है। और भीतर अरूप का रूप दिखाई पड़ रहा है। अब उसके नासापुट बाहर की गंध नहीं लेते, भीतर की गंध लेते हैं, क्योंकि वहां सुगंधों की सुगंध है--गंधराज! वहां परमात्मा की सुवास है। अब उसकी सारी इंद्रियां भीतर की तरफ उन्मुख हो गयी हैं। इस को ही पतंजलि ने प्रत्याहार कहा है।
पंचे पवण अपूठा आनै!
जिसने अपनी पांचों इंद्रियों की ज्योति को भीतर की तरफ मोड़ लिया है। जिसने पांचों इंद्रियों से बाहर जाने की यात्रा बंद कर दी; जो भीतर लौट आया।
सदा सुचेत रहै दिन राति।
ऐसा व्यक्ति चौबीस घंटे सावधान होता है, सचेत होता है, जागरूक होता है।
सदा सुचैत रहै दिन राति।
दिन में ही नहीं--रात में भी। तुम तो दिन में भी सोये हुए हो, वह रात में भी जागा होता है।
कृष्ण ने कहा न, योगी रात को भी सोता नहीं। जो सब के लिए रात्रि है, उसके लिए वह भी जागरण है। या निशा सर्वभूतायां तस्यां जागति संयमी। वही संयमी है, वही साधु है, वही संन्यासी है--जो रात में भी जागा होता है।
क्या अर्थ है इसका? शरीर तो सो जाता है, लेकिन भीतर एक भाव, एक बोध, एक अनुस्मरण बना रहता है। भीतर भान बना रहता है। नींद में भी भान की यह जो दशा है, यह परम सिद्धि है। जिसे यह मिल गयी, वह मृत्यु में भी जागा हुआ जायेगा। क्योंकि तुम तो नींद में भी जागे हुए नहीं जा सकते तो मृत्यु में कैसे जागे हुए जाओगे? मृत्यु तो महानिद्रा है। और निद्रा छोटी-सी मृत्यु है। तो नींद में जागना होगा। जो नींद में जाग कर सो सकता है, जागा-जागा सो सकता है, उसने कला सीख ली। उसके हाथ कुंजी आ गयी। अब वह मरेगा, तो भी जागा हुआ जायेगा।

जो जाग कर मर जाता है, उसका फिर पुनर्जन्म नहीं है। वह फिर नहीं लौटता क्षुद्र में। वह फिर विराट में ही तिरता है। उस अवस्था का नाम निर्वाण, मोक्ष, या सूफी फकीर जिसको फना कहते हैं।
जीबिता बिछायबां मूंवां ओढिबा, कवहु न होइबा रोगी।
इसलिए ज्ञानियों ने, बुद्ध ने, महावीर ने, बहाऊद्दीन ने, जुन्नैद ने, मंसूर ने, रमण ने, कृष्णमूर्ति ने एक ही बात बार-बार कही हैः जाग कर जीयो, होशपूर्वक जीयो। क्योंकि जितना होश सम्हल जायेगा, उतना ही रोग विदा हो जायेगा। होश से भरा हुआ आदमी क्रोध नहीं कर सकता। करता भी हो, तो नाटक ही होगा, अभिनय ही होगा। जीसस ने कोड़ा उठा लिया था मंदिर में जा कर और मंदिर में ब्याज का धंधा करनेवाले लोगों के तख्ते उलट दिये थे, खदेड़ कर उन्हें बाहर कर दिया था। मगर मैं तुम से कहता हूं, वह अभिनय ही था। जीसस जैसा व्यक्ति क्रुद्ध नहीं हो सकता; हां, क्रोध का अभिनय करना चाहे, तो बराबर कर सकता है। और इतनी कुशलता से कर सकता है जितनी कुशलता से कोई और न कर सकेगा। जीबिता बिछायबा मूंवां ओढिबा, कवहू न होइबा रोगी।
बरसवै दिन काया पलटिबा... ।
फिर प्रतीक्षा करना। जाग जाना और प्रतीक्षा करना। बरस दिन में, आज नहीं कल, कल नहीं तो परसों, कभी-न-कभी...
बरसवै दिन काया पलटिबा!
बरस, दिन में एक दिन वह परम घड़ी आ जायेगी, वह पुनीत क्षण आ जायेगा कि काया पलट जायेगी। पूरी काया पलट जायेगी। अभी सब बाहर की तरफ है, फिर सब भीतर की तरफ हो जायेगा। अभी सारी ऊर्जा बाहर दौड़ी जा रही है, तुम बिखरे जा रहे हो। फिर ठीक उल्टी प्रक्रिया हो जायेगी। सब केंद्र पर लौट आयेगा। ऐसा समझो कि जैसे बीज, बीज की सारी ऊर्जा केंद्र पर है। फिर बीज टूटा, वृक्ष बना, फैला, शाखाएं निकलीं, पत्ते निकले, दूर-दूर आकाश में फूल खिले-- यह फैलाव हुआ। फिर वृक्ष वापस लौटा। फिर सिकुड़ा। अपने भीतर आया। अतंर्मुखी हुआ। ऊर्जा फिर बीज बन गयी।
बीज हम प्रथम में थे और बीज हमें फिर अंतिम में हो जाना है। यह जो फैलाव है, संसार है, यह बीच की घड़ी है।
योगी फिर बीज हो जाता है, वृक्ष खो जाता है। बाहर फैलती हुई शाखाएं, अब बाहर नहीं फैलतीं। बाहर दौड़ती हुई इंद्रियां अब बाहर नहीं दौड़तीं। अब अंतर्गमन हो जाता है। सारी ऊर्जा अपने पर ही आ जाती हैं। अब पंखुड़ियां खुलती नहीं, अपने में बंद हो जाती हैं। सब अपने में लीन हो जाता है।
संसार है विस्तार, फैलाव, परिधि की तरफ दौड़--एक्सप्लोजन। ध्यान है, समाधि है--इनप्लोजन, केंद्र की तरफ लौटना, प्रत्याहार, प्रतिक्रमण--अपने घर आ जाना।
बरसवै दिन काया पलटिबा... ।
प्रतीक्षा करना जाग कर; आज नहीं कल, कल नहीं परसों, बरस दिन में सब रूपांतरण हो जायेगा। मिट्टी की काया है तुम्हारी अभी, सोने की हो जायेगी।
मरणधर्मा है काया तुम्हारी अभी, अमृत की हो जायेगी। समय की है तुम्हारी काया अभी, शाश्वत की हो जायेगी।
यूं कोई बिरला जोगी।
ऐसा कभी-कभी किसी व्यक्ति को हो पाता है। हो सब को सकता है। होना सभी
को चाहिए। सभी का अधिकार है। मगर मांगते नहीं अधिकार हम अपना।
गगन-मंडल में गाय बियाई... !
और उस शून्य आकाश में--गगन-मंडल--वह जो भीतर का शून्य आकाश है, उस में गाय बियाई। बड़ा प्यारा वचन है! उस में गाय ने जन्म दिया।
गगन-मंडल में गाय बियाई, कागद दही जमाया।
शास्त्र में उसी ब्याई हुई गाय के दही को जमाया गया।
कागद दही जमाया।
उसी से कुरान बनती है। उसी से वेद। उसी से उपनिषद। उसी से धम्मपद।
गगन-मंडल में गाय बियाई!
लेकिन घटना घटी है शून्य में। लेकिन उस शून्य को संसार तक लाने के लिए
और कोई उपाय नहीं है कि उस का दही जमाया जाये कागज पर। तो शब्दों में उसका दही जमाया, सिद्धांतों में उसका दही जमाया। मगर ख्याल रखना, जो मीठा था,

खट्टा हो गया जमते ही। जब तक नहीं बोला था, तब तक सत्य सत्य था; बोला, असत्य हो गया।
इसलिए लाओत्सु ने कहा हैः सत्य बोले नहीं, कि असत्य हुआ नहीं। बोलो और असत्य हुआ। जो मीठा था, खट्टा हो गया। जो शब्द के बाहर था, तो विराट था, अपार था; शब्द में आते ही संकीर्ण हो गया, छोटा हो गया।
गगन-मंडल में गाय बियाई, कागद दही जमाया।
छाछि छाछि पंडिता पीवीं... ।
और वे जो पंडित हैं--मौलवी, पंडित, पुरोहित--वे छाछ छाछ पी रहे हैं। दही में से भी। दही भी पूरा नहीं लेते वे। वे दही की भी छाछ बना रहे हैं।
शास्त्र को भी जैसा शास्त्र ने कहा है वैसा नहीं समझते; उसकी व्याख्या करते हैं; उसकी टीका करते हैं पहले। पहले अपने मतलब का मतलब निकालते हैं। जो अपने से बैठ जाये, ऐसा अर्थ खोजते हैं। अपने अनुकूल अर्थ बनाते हैं। एक तो सत्य को बोला, उसी वक्त सत्य खट्टा हो गया। जब पंडित शास्त्र को समझता है, शब्द को समझता है, उस पर व्याख्या के नये अर्थ आरोपित कर देता है। अब तो दही भी न रहा, छाछ ही हो गयी। इस पंडित की व्याख्या में मक्खन भी खो गया।
सिधां माखण खाया।
सिर्फ सिद्ध पुरुष ही पहचान पायेंगे शास्त्रों के मक्खन को। शास्त्र
को दो तरह के लोग पढ़ते हैं--एक ज्ञानी और एक ध्यानी। जब ज्ञानी पढ़ता है, छाछ हाथ लगती है। जब ध्यानी पढ़ता है, मक्खन हाथ लगता है। शास्त्र को जानने का उपाय ज्ञान नहीं है, ध्यान है। शास्त्र को जानने का उपाय शब्द की व्याख्या नहीं है, निःशब्द की यात्रा है। जितने तुम शून्य हो जाओगे, उतने ही शास्त्र का सम्यक अर्थ तुम्हारे सामने प्रगट होगा।
गगन-मंडल में गाय बियाई, कागद दही जमाया।
छाछि छाछि पंडिता पीवीं, सिधां माखण खाया।
और जो माखन खा लेते हैं, उनके जीवन में क्रांति घटती है--ऐसी क्रांति,
कि सब कुछ रसमय हो जाता है।

जो अपनी तस्वीर बनाई, वह तस्वीर तुम्हारी निकली!
जब-जब अपना चित्र बनायातब-तब ध्यान तुम्हारा आया!
मन में कौंध गई बिजली-सीछवि का इंद्रधनुष मुसकाया!
सुख की एक घटा-सी छाई, भीग गया जीवन आंगन-सा,
घूम गई कूंची दीवानी, हर रेखा मतवारी निकली!
जो अपनी तस्वीर बनाई वह तस्वीर तुम्हारी निकली! मेरा रूप तुम्हारा निकला, मेरा रंग तुम्हारा निकला,
जो अपनी मुद्रा समझी थी, वह तो ढंग तुम्हारा निकला! धूप और छाया का मिश्रणयौवन का प्रतिबिंब बन गया,
होश समझ बैठा था जिसको, वह रंगीन खुमारी निकली!
जो अपनी तस्वीर बनाई, वह तस्वीर तुम्हारी निकली। मैंने बार-बार झुंझलाकररंग बदले, आकृतियां बदलीं,
जो नव आकृतियां अंकित कींवे भी प्राण! तुम्हारी निकलीं! अपनी प्यास दिखाने मैंनेरेगिस्तान बनाना चाहा,
पर तसवीर हुई जब पूरी, फागुन की फुलवारी निकली!
जो अपनी तस्वीर बनाई, वह तस्वीर तुम्हारी निकली!
तुम से भिन्न कहां जग मेरा? तुम से भिन्न कहां गति मेरी?
तुम से भिन्न स्वयं को समझा, बहक गई कितनी मति मेरी!
मेरी शक्ति तुम्हीं से संचित, मेरी कला तुम्हीं से प्रेरित,
जिसको मैं अपनी जय समझा, वह तो तुम से हारी निकली!
जो अपनी तस्वीर बनाई, वह तस्वीर तुम्हारी निकली!
एक बार शून्य का स्वाद मिल जाये, फिर सब उसी का है। उठो, बैठो--पूजा। सोओ, जागो--परिक्रमा। खाओ, पीयो--सेवा। जो करो, जैसा करो उस सभी में प्रार्थना का रंग और ढंग। और जो दिखाई पड़े, उसी की छवि। फिर मंदिर में भी वही, मस्जिद में भी वही। फिर गुरुद्वारे में भी वही, गिरजे में भी वही।

पत्थर में भी वही, पहाड़ों में भी वही। चांद-तारों में भी वही। एक बार अपने भीतर पहचान हो जाये... ।
उस पहचान के लिए ही तुम्हें निमंत्रित कर लिया है। तुम आ भी गये हो। उनमें से मत होना जो आते हैं और चले जाते हैं। उन विरलों में से बनो जो रुक जाते हैं, ठहर जाते हैं। और जमा लो शून्य में आसन। वही मैं तुम्हें सिखा रहा हूं। रम जाओ गगन मंडल में। और तुम्हारे भीतर से अमृत की धार बहेगी। वह तुम्हारा जन्मसिद्ध अधिकार है। स्वरूपसिद्ध अधिकार है। मांगो अपने अधिकार को। उसे बिना मांगे मत मर जाना। उसे सिद्ध करना है। जो उसे बिना सिद्ध किये मर जाता है, वह व्यर्थ ही जीया।
व्यर्थ मत जीना। तुम्हारे जीवन में आनंद के बड़े फूल खिल सकते हैं। और
सब तुम पर निर्भर है। और बड़े उपाय की जरूरत नहीं है; थोड़ी-सी समझ की जरूरत है। पहाड़ जैसा उपाय नहीं करना है, रत्ती-भर जैसी समझ काम आ जाती है। यह कोई तलवार का काम नहीं है; सुई से काम हो जायेगा। सुई जैसी समझ, बारीक समझ पर्याप्त है। बरसता है एक दिन वह।

बज उठी मुरलिया पावस की!
विहंसे वन, उपवन,
दिक-दिगंत,
हुलसे मानव, पशु,
वन-विहंग
लू के झोंके
अब नहीं रहे,
शोले सोये,
रवि-किरणों के!
बज उठी मुरलिया पावस की!
कजरारे बादल
डोल रहे,
घन-घन मृदंग-से
बोल रहे,
नर्तन चम-चम
करती चपला!
क्या मदिर, मधुरतम
समा बंधा!
बज उठी मुरलिया पावस की!
मृदु झड़ी लगी,
संगीत छिड़ा,
रिमझिम-रिमझिम,
लय-ताल-बद्ध!
पुरवाई के
हर झोंके में
उल्लास अपरिमित
तैर रहा!
नभ से
धरती तक
जग-जीवन
नैसर्गिक रस में
डूब रहा!
बज उठी मुरलिया पावस की!
आज इतना ही।

मरौ हे जोगी मरौ
सोलहवां प्रवचन

नयन मधुकर आज मेरे

पहला प्रश्नः जो आपसे मिल रहा है, अहोभाग्य! ऊर्जा का उठना, फिर आगे आप
सब कुछ जानते ही हैं। कृपया मार्गदर्शन करें।

रामपाल, अहोभाव की इस दशा को थिर रखना, इससे बड़ी कोई प्रार्थना नहीं है। अहोभाव से बड़ा कोई सेतु नहीं है परमात्मा से जोड़ने वाला। जो कृतज्ञ है वह धन्यभागी है। और जितने तुम कृतज्ञ होते चलोगे उतनी ही वर्षा सघन होगी अमृत की। इस गणित को ठीक से हृदय में सम्हाल कर रख लेना।
जितना धन्यवाद दे सकोगे उतना पाओगे। शिकायत भूलकर न करना। और ऐसा नहीं है कि शिकायत करने के अवसर न आएंगे। मन की अपेक्षाएं बड़ी हैं, तो हर पल हर कदम पर शिकायतें उठ आती हैं; ऐसा होना था, नहीं हुआ। जब भी ऐसा लगे कि ऐसा होना था नहीं हुआ, तभी स्मरण करना कि भूल होती है; क्योंकि शिकायत अवरोध बन जाती है। शिकायत का अर्थ हुआ कि तुम परमात्मा पर अपनी आकांक्षा आरोपित करना चाहते हो।
और ऐसा मत सोचना कि शिकायत तुमसे न होगी, जीसस जैसे परम पुरुष से भी शिकायत हो गई थी। आखिरी घड़ी में सूली पर लटके हुए एक क्षण को निकल गई थी पुकार, आकाश की तरफ सिर उठाकर जीसस ने कहा थाः "हे प्रभु, यह तू क्या दिखला रहा है?" सोचा नहीं होगा कि सूली लगेगी। सोचा नहीं होगा कि परमात्मा इस तरह से असहाय छोड़ देगा। पर तत्क्षण अपनी गलती पहचान गए, फिर आंखें झुका लीं और क्षमा मांगी और कहाः तेरी मर्जी पूरी हो! तू कर रहा है तो ठीक ही कर रहा होगा।
और इतना ही फासला है अज्ञान और ज्ञान में। इतना ही फासला है अंधेरे में और प्रकाश में। इतना ही फासला है भटके हुए में और पहुंचे हुए में। बस इतने से फासले में सारी घटना घट गई; जरा-सी कमी रह गई थी, वह भी पूरी हो गई। जो तेरी मर्जी हो!
अहोभाव को बनाए रखना। उसकी तरफ से थोड़ा-सा भी प्रकाश मिले, नाचना, मस्त होना। ऊर्जा उठे, धन्यवाद में बह जाना। और उठेगी ऊर्जा। और फूल खिलेंगे। जितना तुम्हारा धन्यवाद का भाव बढ़ेगा, उतने ही फूलों पर फूल खिलेंगे।
शुभ हो रहा है। बस अहोभाव न चूके। मेरी दृष्टि में है, मेरे ख्याल में है, जो तुम्हारे भीतर हो रहा है। अकड़ न आ जाए। बस वहीं चूक होती है। बड़ी-से- बड़ी चूक होती है। ऊर्जा उठने लगे, भीतर ज्योति जलने लगे, भीतर नाद सुनाई पड़ने लगे, अहंकार पीछे के रास्ते से आकर पकड़ लेता है। अहंकार कहेगाः देखो, रामपाल तुम खास हुए। अब तुम कोई साधारण पुरुष नहीं हो, तुम सिद्ध हो! अहंकार की चालबाजियों से बचना। अहंकार अंत-अंत तक पीछा करता है। धन
से ही नहीं अकड़ता, पद से ही नहीं अकड़ता, प्रार्थना से भी अकड़ जाता है, ध्यान से भी अकड़ जाता है। और जहां अहंकार आया वहीं द्वार बंद हो गए; वहीं तुम विच्छिन्न हो गए, टूट गईं तुम्हारी जड़ें परमात्मा से।

कौन-सी उपलब्धियों से,
इन मुखर विश्रब्धियों से
तार रस माते उलझते,
बीन भी उन्मादिनी-सी।
सुख व्यथा आलोक तम,
चेतन अचेतन को भुलाती,
बज रही वर्जित स्वरों की रागिनी अनुरागिनी-सी।
फूल तारों के झरे क्यों,
फूल करुणा के भरे क्यों,
क्यों हुई कांतार में

काली अमा चंद्राननी-सी।
अमावस पूर्णिमा में बदलेगी, कांटे फूल हो जाएंगे। भीतर अदभुत अपूर्व चमत्कार होंगे। पर ध्यान रखना, जरा भी अकड़ न आए। जितने भीतर चमत्कार होने लगें उतने तुम तरल हो जाना, उतने विनम्र हो जाना, उतने झुक जाना। और जितने झुकोगे उतना पाओगे। झुकते-झुकते मिट जाना है।
मरौ हे जोगी मरौ, मरौ मरण है मीठा।
तिस मरणी मरौ, जिस मरणी मरि गोरख दीठा।।
और ऐसा नहीं है कि जो हो रहा है वह विशिष्ट नहीं है। विशिष्ट है, इसीलिए चेता रहा हूं। विरल है, इसीलिए चेता रहा हूं।

ऐसा दिखता है कौन धुनी?
अव्यक्त आवरण में लिपटी
उस नृत्यमयी निर्वसन नटी
के चरणों से उठती, उर में,
जिसने मधुध्वनि निष्कंपित सुनी।
किसने छू पायी वह रेखा
जिसने वह बिंदुमुखी देखा,
ज्योतित निनाद प्राचीर तले,
प्राणों से मन की ईंट चुनी।
ऐसा दिखता है कौन धुनी?
विरल है घटना। धुनी हो, लगे रहे हो, खोदते ही चले गए हो। अब जलधार आने
के करीब आ रही है। पहली झलकें उतरनी शुरू हुई हैं। और अब खतरा है। जिनके पास कोई आत्मिक अनुभव नहीं, उनके पास गंवाने को भी कुछ नहीं। वे निश्चिंत रहें। वे बेसुध सोएं, वे घोड़े बेचकर सोएं, कुछ हर्जा नहीं। लेकिन जब तुम्हारे पास कुछ आने लगे संपदा, तब सावधान होना, तब सजग, सावचेत होना, क्योंकि अब कुछ है जो खो सकता है।
जो ऊंचाइयों पर चले, उसे बहुत ही जागरूक हो जाना चाहिए, क्योंकि वहां
से गिरेगा तो हड्डी-पसलियां टूट जाएंगी, चकनाचूर हो जाएगा। जो सपाट भूमि पर चल रहा है, उसे डरने की जरूरत नहीं। वह नशा करके भी चले तो चलेगा। लेकिन अब तुम्हें जरा भी अस्मिता का नशा न आए।
तुमने देखा न, हमारे पास एक शब्द हैः "योग-भ्रष्ट"। लेकिन तुमने "भोग-भ्रष्ट" शब्द सुना? भोगी को भ्रष्ट होने का उपाय नहीं है, इसलिए भोग-भ्रष्ट जैसा शब्द नहीं है। भोगी सपाट जमीन पर चलता है; वहां से गिर ही नहीं सकता। योग-भ्रष्ट कोई हो सकता है, भोग-भ्रष्ट क्या होगा? योग ऊंचाइयों पर ले जाता है; वहां से पतन संभव है। आकाश में उड़ोगे तो गिर सकते हो, इसलिए जितनी ऊंचाई बढ़े उतनी सजगता।
धन्यभागी हो। इस धन्यवाद को प्रगट करना, अनेक-अनेक रूपों में; पर भूलकर भी, अनजान में भी, अचेतन में भी, अस्मिता को मत उठने देना।

नयन मधुकर आज मेरे
एक अनजानी किरण ने
गुदगुदी उर में मचा दी,
फूट प्राणों से पड़ा गुंजन सबेरे ही सबेरे!
नयन मधुकर आज मेरे!

दूर की मधुगंध पागल
प्यास प्राणों में जगा दी,
विश्व-मधुवन में लगाता फिर रहा मैं लाख फेरे! नयन मधुकर आज मेरे!
ये पलक-पांखें नशे में,
झंप रही हैं, खुल रही हैं,
पुतलियां मदहोश-सी हैं, कंटकों को कौन हेरे! नयन मधुकर आज मेरे!

दूर कुंजों की कली!
मुझसे नयन मेरे न छीनो!
तुम न घेरे हो इन्हें, पर है तुम्हारा रूप घेरे!
नयन मधुकर आज मेरे!

आंखें तुम्हारी भरने लगीं हैं दूर के प्रकाश से, पहली किरण आयी है। और कान तुम्हारे भरने लगे हैं दूर की मधुर-ध्वनि से, पहले स्वर का संबंध हुआ है। सुवास उठने लगी है।
अभी बहुत होने को है। यह कुछ भी नहीं है, जो होने को है उसके मुकाबले। इसलिए जितना हो उतना ही जानना, अभी और होने को है। तत्परता न छोड़ देना, खोदना बंद मत कर देना, खुदाई जारी रहे, ध्यान जारी रहे। ठीक चल रहा है, ठीक दिशा पकड़ ली है, बस अब इसी दिशा में, नाक की सीध में चलते जाना।

दूसरा प्रश्नः मैं प्रार्थना को बैठता हूं तो रोने के सिवाय कुछ और सूझता नहीं। मैं क्या करूं?

यही तो प्रार्थना है। प्रार्थना सूझ रही है। रोना प्रार्थना है। शब्दों की प्रार्थना तो ओछी होती है, आंसुओं की प्रार्थना गहरी होती है। वाणी से जो कही, वह बहुत दूर नहीं जाती; आंखों से जो रोयी, उसे पंख मिल जाते हैं आकाश तक पहुंचने के। तो रोने को रोकना मत। प्रार्थना चाही है, प्रार्थना मिल रही है। अब इसे पहचानो। प्रार्थना भाव है। और आंसुओं से ज्यादा भावपूर्ण क्या है तुम्हारे पास? मुंह से बोलोगे, मस्तिष्क बोलेगा; आंखों से रोओगे, हृदय बोलेगा। और प्रार्थना हृदय से उठती है, मस्तिष्क से नहीं। सीखी-सिखायी प्रार्थनाओं का कोई मूल्य नहीं है, दो कौड़ी की जानना उन्हें।
प्रार्थना तो अपनी ही होनी चाहिए, निज की होनी चाहिए। और आंसू अत्यंत निजी होते हैं। जैसे हर अंगूठे की छाप अलग होती है, ऐसे ही हर आंख का आंसू अलग होता है।
शब्द तो बासे होते हैं। तुम भी उन्हीं शब्दों को बोलते हो, दूसरे भी उन्हीं शब्दों को बोलते हैं। शब्द तो सामूहिक होते हैं, सार्वजनिक होते हैं।
आंसू बस तुम्हारे हैं, और किसी के भी नहीं। तुम्हारी अंतर-व्यथा से आ रहे हैं, तुम्हारे विरह से उठ रहे हैं। आंसू तो तुम्हारे ही भीतर लगे फूल हैं; उधार नहीं, बासे नहीं, बाजार से खरीदे नहीं। अगर तुमने हिंदुओं की प्रार्थना की, बाजार से खरीदी प्रार्थना है; मुसलमानों की की, बाजार से खरीदी प्रार्थना है। यह प्रार्थना बहुत दूर न जाएगी, इस प्रार्थना का कोई मूल्य ही नहीं है। यह तो तुम तोते की तरह दोहरा रहे हो। प्रार्थना अपनी होनी चाहिए।
आते हैं आंसू, आने दो। बहो उनमें। डाल दो अपने पूरे हृदय को उनमें। फिर और कुछ आएगा। आंसुओं के पीछे छिपे गीत भी आएंगे। मगर वे फिर तुम्हारे होंगे। आंसू रास्ता साफ कर देंगे। आंसू पवित्र कर जाएंगे, आंसू स्नान करा जाएंगे। फिर उसी स्नान से तुम्हारे गीत भी आएंगे, नाच भी आएगा, उमंग भी उठेगी, उत्साह उठेगा। बहुत कुछ होगा, लेकिन फिर तुम्हारा अपना होगा। आंखों से शुरू हो रहा है, शुभ लक्षण है। लेकिन हमें तो ऐसा ख्याल होता
है कि प्रार्थना का एक विधि-विधान होता है; अब ये आंसू बीच में आ गए, विधि- विधान कौन करे? इतना पानी डालना था, इतने फूल चढ़ाने थे, इतना अक्षत रखना था, कि इतने मंत्र-जाप करने थे, इतनी माला फेरनी थी; अब ये आंसू आ गए, अब यह सब कौन करे? वह सब व्यर्थ है। जिंदगी-भर तुम चढ़ाते रहो फूल, उतारते रहो आरती, कुछ भी न होगा। ठीक हृदय से झरना फूट रहा है प्रेम का।
और इन आंसुओं को तुम दुख के ही मत मान लेना। आंसू जरूरी रूप से दुख के
ही नहीं होते। आंसू से दुख का कुछ लेना-देना नहीं है। आंसू सुख के भी होते हैं, प्रेम के भी होते हैं। आंसुओं के तो बहुत ढंग हैं, बहुत रंग हैं। आंसुओं में एक बात जरूर होती है, फिर चाहे दुख के हों, सुख के हों, प्रेम के हों, एक बात निश्चित होती है--और वह है कि कोई भाव इतना ज्यादा

होता है कि हृदय उसे सम्हाल नहीं पाता। वही अनसम्हाला भाव आंसुओं से बहता है। फिर दुख हो तो भी। इतना दुख हो कि हृदय न सम्हाल पाए तो आंखें गीली हो जाएंगी। और इतना सुख हो कि हृदय न सम्हाल पाए तो भी आंखें गीली हो जाएंगी। और भक्त के आंसू तो बड़े विरोधाभासी होते हैं; उसमें दुख का भी स्वर होता है और सुख का भी। उसमें दुख का स्वर होता है, क्योंकि प्रभु का अभी मिलन नहीं हुआ। उसमें विरह की वेदना होती है। और उसमें सुख का भी स्वर होता है, कि प्रभु की पुकार उठने लगी। इतना ही क्या कम है? अनंत-अनंत हैं जिनमें पुकार ही नहीं उठती। बहुत हैं जिनके जीवन में परमात्मा की छाया भी नहीं पड़ती, परमात्मा का मिलना तो बहुत दूर। बहुत हैं अभागे, जिनके जीवन में परमात्मा शब्द में कोई अर्थ ही नहीं होता; परमात्मा शब्द जिनके बीच कभी आता ही नहीं। धन आता है, पद आता है। प्रतिष्ठा आती है, बहुत कुछ आता है; मगर परमात्मा जिनके जीवन की शृंखला में नहीं होता, परमात्मा की कोई कड़ी नहीं होती।
तो भक्त आनंदित भी होता है। विरह उठा तो मिलन की संभावना पकी। विरह पकेगा तो एक दिन मिलन बनेगा। विरह कच्चा फल है। मिलन इसी फल का पक जाना है। तो भक्त दुखी भी होता है; उसकी आंख में पीड़ा भी होती है। पीड़ा--कि कब मिलोगे? पीड़ा--कि कब तक प्रतीक्षा करनी होगी? पीड़ा--कि कब तक और राह दिखाओगे? और आनंद भी--कि तुम्हारी पुकार आने लगी। तुमने जरूर मुझे चुन लिया होगा। तुमने जरूर मेरी याद की होगी, क्योंकि तुम याद न करते तो मुझ अभागे की क्या सामर्थ्य थी कि मैं तुम्हें याद करता। तुमने चुन ही लिया होगा, इसलिए मैं चुन रहा हूं। तुमने मुझे अंगीकार कर लिया है। अब देर-अबेर जब भी आना हो आ जाना, मैं प्रतीक्षारत रहूंगा, मेरी आंखों के पट खुले रहेंगे।

कुछ विकल जगारों की लाली,
कुछ अंजन की रेखा काली,
ऊषा के अरुण झरोखों में
जैसे हो काली रात बसी!
दो नयनों में बरसात बसी!
बिखरी-बिखरी रूखी अलकें, भीगी-भीगी भारी पलकें,
प्राणों में कोई पीर बसी, मन में है कोई बात बसी!
दो नयनों में बरसात बसी!
लज्जा की लतिके, डोलो तो,
हे मधुभाषिणि! कुछ बोलो तो!
सुधि के इस भीगे आंचल में
किसकी निष्ठुर सौगात बसी!
दो नयनों में बरसात बसी!
झरने दो आंखें, होने दो वर्षा। बनने दो आंखों को बरसात। ऐसे रोओ कि कुछ बचे न भीतर। अपने को पूरा उंडेल दो रोने में। कृपणता न करना। कंजूसी न करना। शरमाए-शरमाए लजाए-लजाए मत रोना। मदमस्त होकर रोना। दिल भर कर रोना। और तभी तुम्हारे रुदन में वंदन की भनक सुनाई पड़ेगी। तभी तुम्हारे आंसुओं में अर्चना का स्वाद आ जाएगा।

अलकों की छांह बिना शायद पूनम भी काली हो जाये,
यदि साथ रहो मेरे तुम तो हर रात दीवाली हो जाये।
यह माटी से निर्मित काया अविराम स्नेह की भूखी है,
दीपक कैसे जल पाये, यदि वर्तिका प्राण की रूखी है।
रजनी की काली अलकों में उलझा हर तारा कहता है
है स्नेह नहीं वह कोष कि जो लुटने से खाली हो जाये।
यदि साथ रहो मेरे तुम तो हर रात दीवाली हो जाये।
जीवन के सूने मंदिर में आशा के पावन शंख बजें,
तुम आओ तो अंधियारे में किरणों के स्वर्णिम फूल खिलें।

चंदन-सी महक उठें सांसें आंसू अक्षत बनकर बिखरें,
सपनों की राख तुम्हें छूकर कुमकुम की लाली हो जाये।
यदि साथ रहो मेरे तुम तो हर रात दीवाली हो जाये।

मगर रोओ। यही आंसू एक दिन दीप-मालिकाएं बन जाएंगे। यही आंसू दीये बनेंगे। यही आंसू दीवाली लाएंगे।
दीपक कैसे जल पाये, यदि वर्तिका प्राण की रुखी है।
यही आंसू तो तुम्हारी प्राण की वर्तिका को गीला करेंगे, भिगाएंगे।
है स्नेह नहीं वह कोष कि जो लुटने से खाली हो जाये।
और कंजूसी मत करना, क्योंकि यह ऐसा खजाना नहीं है, जो कि बहने से खाली होता है। यह ऐसा खजाना है जो बहने से बढ़ता है। जितना रोओगे उतना हृदय विस्तीर्ण होगा। जितना रोओगे उतने भाव गहन होंगे। जितना लुटाओगे उतना अपने को भरा पाओगे। एक तो बाहर के जगत का अर्थशास्त्र है; वहां अगर लुटाओगे तो खजाना खाली हो जाता है। वहां तो दूसरों को लूटोगे तो खजाना भरा रहेगा।
एक भीतर का अर्थ-शास्त्र है--प्रेम का अर्थ-शास्त्र; उसकी तर्क-सरणी बिल्कुल उल्टी है। वहां बचाओगे, सड़ जाएगा। वहां लुटाओगे, बढ़ जाएगा। जिसने प्रेम को भीतर रोक कर रखा कि कहीं ऐसा न हो कि दे दूं किसी को तो लुट जाए, खाली हो जाऊं, फिर क्या करूंगा, दीन-दरिद्र हो जाऊं--उसका प्रेम मर ही जाएगा।
प्रेम तो फूल जैसा है; इसे कोई तिजोड़ी में छिपाकर थोड़े ही रखना होता है। इसे तो निवेदन कर देना होता है--सूरज को, चांद-तारों को, हवाओं को। इसकी गंध तो बिखेर देनी होती है। और-और फूल आते रहेंगे। जिस अज्ञात से यह फूल आया है, उसी अज्ञात से और-और फूल आते रहेंगे। जिन अचेतन गर्भों से ये रंग आए हैं, उन्हीं अचेतन गर्भों से और-और रंग आते रहेंगे। जहां से इस सुगंध का आगमन हुआ है, उसी स्रोत से और भी सुगंधें आती रहेंगी। और जितना तुम दोगे उतना ही तुम पाओगे। जितना बांटोगे, लुटाओगे, उतना ही तुम्हारा बढ़ता जाएगा। जीवन की आंतरिक संपदा लुटाने से बढ़ती है, बचाने से घटती है।
है स्नेह नहीं वह कोष कि जो लुटने से खाली हो जाये।
आंसू आ रहे हैं, आने देना; लाने की झूठी चेष्टा मत करना। लाए गए आंसुओं
का कोई मूल्य नहीं है। वह भी तुम्हें याद दिला दूं, अन्यथा मैंने आंसुओं की प्रशंसा की, तुम सोचो कि फिर आंसू लाना चाहिए। लाए जा सकते हैं आंसू। नाटक में अभिनेता भी ले आता है। पर उन आंसुओं का कोई अर्थ नहीं। वे हृदय से नहीं आते। उनका तुमसे कोई आत्मिक संबंध नहीं है। वे कृत्रिम हैं। जैसे तुम मुस्कुरा सकते हो झूठ, बस मुस्कुराहट ओंठ पर ही होती है--ऊपर से चिपकायी, पोती गई। ऐसे ही आंसू का भी अभ्यास हो सकता है। मगर उस आंसू का कोई मूल्य नहीं है, इसलिए तुम्हें याद दिला दूं। नहीं तो इसी तरह भ्रांतियां होती हैं, इसी तरह क्रिया-कांड पैदा होते हैं कि आंसू आने चाहिए प्रार्थना में। यह मैं नहीं कह रहा हूं कि आंसू आने चाहिए। मैं यह कह रहा हूं, आते हों तो आने देना, बहने देना, रोकना मत। अड़चन मत डालना। लाने का प्रयास भी मत करना, क्योंकि लाए गए झूठे होंगे। रोकना बुरा है, लाना बुरा है। आएं तो स्वागत करना। आनंद-मग्न हो स्वागत करना।
और अगर तुम जीवन के रस को जरा देखोगे, जीवन के सौंदर्य को, जीवन की गरिमा को, तो आंसू आएंगे, अपने से आएंगे। अभागा है वह आदमी कि गुलाब का फूल खिले और उसकी आंखें गीली न हो जाएं। पत्थरों में फूल खिलते हैं, इतने बड़े चमत्कार होते हैं, मिट्टी फूल बन जाती है, तुम्हारी आंख के सामने जादू हो रहा है। जहां केवल दुर्गंध ही दुर्गंध थी, जहां तुमने खाद लाकर डाली थी, वहां फूल की सुगंध है।
तुम्हारे सामने रूपांतरण हो गया है, खाद की दुर्गंध गुलाब की सुगंध
बन गई है। क्रांति घटी। इस अपूर्व घटना को देखकर तुम्हारी आंख आनंद से गीली नहीं हो आती? बीज बोया था कल, आज अंकुरित हो गया है, दो हरे पत्ते फूट आए हैं।
चमत्कार प्रतिपल हो रहे हैं। आंख खोलकर देखो, थोड़ी संवेदनशीलता जगाओ। कभी वृक्ष को गले लगाओ। कभी पड़े रहो भूमि पर, जैसे कोई मां की गोद में पड़ा

हो--सब भूलकर, सब बिसार कर। और उसी पृथ्वी से तुम्हारे भीतर एक अपूर्व पुलक का, एक अपूर्व ऊर्जा का फैलाव शुरू हो जाएगा। हैं तो हम पृथ्वी के हिस्से। आदमी में आधा आकाश है, आधी पृथ्वी है। कभी लेट जाओ जमीन पर हाथों को फैलाकर--नग्न, आलिंगनबद्ध--और तुम्हारे भीतर जो पृथ्वी है, वह बाहर की पृथ्वी से संवाद करने लगेगी। कभी आकाश की तरफ आंख खोलकर बैठे रहो, देखते रहो, देखते रहो आकाश को। जाओ दूर-दूर, उड़ने दो आंखों को, बन जाने दो आंखें को पक्षी। किसी मंदिर में तुम्हें जाने की जरूरत न रहेगी। यहीं चारों तरफ वह विराजमान है। और अचानक एक दिन तुम पाओगे आंसू बहने लगे हैं। अकारण बहने लगे हैं। अहेतुक बहने लगे हैं। बहाने की कोशिश मत करना। हां, जहां बह सकते हों, उस तरंग में अपने को ले जाना। जहां दीवाने बैठते हों चार, होते हों मस्त, गाते हों गीत, प्रभु की स्तुति करते हों, नाचते हों, आंसू उनके बहते हों, उनके पास बैठना। उनका रंग तुम्हें भी लग जाएगा।
मगर चेष्टा करके जबर्दस्ती आंसू मत लाना। वह अनाचार है। वह व्यभिचार है। वह स्वयं के साथ बलात्कार है। और जिसके आंसू भी झूठ हो गए उसका सब झूठ हो गया। इसलिए कम-से-कम आंसू को तो झूठ मत करना। तुम्हारी मुस्कुराहट तो झूठ हो ही गई है। तुम्हारा रोना ही बचा है, उसे झूठ मत करना; नहीं तो तुम्हारे पास सच कुछ भी न रह जाएगा। इतना सच तुम्हारे पास अभी है कि तुम्हारे आंसू सच हैं। इसी सच से तुम परमात्मा के सत्य से जुड़ सकते हो, क्योंकि सत्य से ही सत्य के साथ सेतु बन सकता है।

तीसरा प्रश्नः बुद्धपुरुषों ने इतने धर्म क्यों पैदा किए हैं?

रत्नेश, बुद्धों ने तो एक ही बात कही है, इतनी बातें नहीं। एक ही धर्म कहा है, इतने धर्म नहीं। मगर बुद्धुओं ने बना लिये बहुत धर्म। और बुद्धुओं की भीड़ है।
ये जो इतने धर्म हैं, ये बुद्धों के कारण नहीं हैं। ईसाइयत के पीछे जीसस का हाथ नहीं है, और न ही बौद्ध धर्म के पीछे बुद्ध का हाथ है। यद्यपि बुद्ध में जो दीया जला था, उसके ही कारण सिलसिला शुरू हुआ, फिर भी बुद्ध उसके लिए जिम्मेवार नहीं, जिम्मेवार तो बुद्ध के पीछे आनेवाले पंडितों का समूह है। बुद्ध बोले; जो कहा वह सुना लोगों ने, पकड़ा लोगों ने। शास्त्र बने, व्याख्याएं हुईं, संप्रदाय बने। बुद्ध के मरने के बाद छत्तीस संप्रदाय बने बुद्ध के पीछे, क्योंकि अलग-अलग आचार्य थे! सुना सबने बुद्ध को ही था। एक ही व्यक्ति के चरणों में बैठे थे। मगर फिर भी सुना तो अपने- अपने ढंग से था। किसी ने कुछ सुना था, किसी ने कुछ सुना था। किसी ने कुछ अर्थ निकाला था, किसी ने कुछ अर्थ निकाला था। शून्य भाव से तो बहुत कम लोग सुनते हैं। भीतर तो विचार तैयार ही रहते हैं।
जैसे उदाहरण के लिएः किसी ने बुद्ध से पूछा, ईश्वर है? बुद्ध चुप रह गए, कुछ भी न बोले। देखा लोगों ने कि बुद्ध से पूछा गया ईश्वर के संबंध में, बुद्ध चुप रह गए। घटना तो एक ही घटीः बुद्ध चुप रह गए, कोई उत्तर न दिया। लेकिन बुद्ध के मरने के बाद किसी ने कहा कि बुद्ध इसलिए चुप रह गए कि परमात्मा है तो, लेकिन शब्दों में कहा नहीं जा सकता। अब यह व्याख्या हुई। किसी ने कहा कि बुद्ध इसलिए चुप रह गए कि परमात्मा है ही नहीं, तो कहना क्या? किसी ने यह कहा कि बुद्ध इसलिए चुप रह गए कि अगर परमात्मा को जानना हो तो चुप हो जाओ, तो जान लोगे, और जानने का कोई उपाय नहीं है। अब यह तो बड़ी मुश्किल की बात हो गई।
बुद्ध का क्या अर्थ था चुप रह जाने में? इसके तो अर्थ पर अर्थ निकलने लगे, बात में से बात निकलने लगी, विवाद शुरू हो गए। और अर्थ बड़े भिन्न हैं। किसी ने कहा कि ईश्वर है ही नहीं, इसलिए बुद्ध चुप हुए। और किसी ने कहा ईश्वर है, इसीलिए चुप हुए, क्योंकि वह इतना विराट... कहा कैसे जाए? अब ये तो आस्तिक-नास्तिक, इतने विपरीत अर्थ बुद्ध की चुप्पी से निकल आए! इनसे धर्म बनते हैं। इन अर्थ करनेवालों से धर्म बनते हैं।
बुद्धों ने तो एक ही बात कही। उनका स्वर तो एक जैसा है, यद्यपि भाषा उनकी अलग-अलग है। जीसस बोले तो अरेमैक भाषा में बोले; वही उनकी भाषा थी, वही सुननेवालों की भाषा थी। बुद्ध बोले तो पाली में बोले; वही उनकी भाषा

थी, वही सुननेवालों की भाषा थी। कृष्ण संस्कृत में बोले। लाओत्सु चीनी में बोले। स्वाभाविक। तो भाषा का भेद है।
फिर प्रतीकों के भेद भी होंगे, क्योंकि कोई पांच हजार साल पहले हुआ। पांच हजार साल में भाषा के प्रतीक बदले, बदलते गए हैं। आज हम किन्हीं शब्दों का उपयोग करते हैं जो पांच हजार साल पहले किया ही नहीं जा सकता था। कोई बात ही न थी करने की। जैसे आज हम कहते हैं, अगर कोई चीज बहुत तेजी से जा रही हो तो हम कहते हैं जैट-गति। अब बुद्ध तो जैट-गति शब्द का उपयोग नहीं कर सकते थे। जैट ही नहीं था तो जैट-गति क्या होती? उसका कोई अर्थ नहीं हो सकता था।
प्रत्येक युग की भाषा बदल जाती है, प्रतीक बदल जाते हैं। फिर व्यक्ति- व्यक्ति के भी प्रतीक अलग होते हैं। बुद्ध राजपुत्र थे, अभिजात उनकी शिक्षा थी, तो उन्होंने जो शब्दों का उपयोग किया वह भी अभिजात है। और कबीर जुलाहे थे; उन्होंने जो भाषा उपयोग की वह जुलाहे की है। अब तुम सोच सकते हो बुद्ध यह लिखें, झीनी-झीनी बीनी रे चदरिया? बाप-दादे ने कभी बीनी थी? यह सोच ही कैसे सकते हैं बुद्ध कि झीनी-झीनी बीनी रे चदरिया? यह तो कबीर ही सोच सकता है, यह तो जुलाहा कबीर ही सोच सकता है। यह तो कबीर के भीतर ही भाव उठ सकता है कि ये जो भजन मैं बना रहा हूं, यह ऐसे ही है जैसे कोई झीने-झीने चदरिया बीनता है। अब बुद्ध यह कह सकते थे, ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया? यह चदरिया कबीर के लिए सार्थक है, सुबह से सांझ चदरिया ही बुनते रहे, तो जब मरे तो कहा कि ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया। खूब जतन से ओढ़ी रे चदरिया! फिर जरा भी दाग नहीं लगने दिया उस पर--ऐसी की ऐसी ही रख दी। अब यह जुलाहे का प्रतीक है; यह प्रतीक बुद्ध में नहीं हो सकता, महावीर में नहीं हो सकता, कृष्ण में नहीं हो सकता।
जीसस ऐसे बोले जैसा कि एक बढ़ई का बेटा बोलेगा। स्वाभाविक। इसलिए भाषा में भेद पड़ते हैं, प्रतीक अलग होते हैं। फिर व्यक्ति-व्यक्ति के भी भेद हैं। कोई मूर्तिकार सत्य को जानेगा तो सत्य की मूर्ति बनाएगा संगमरमर में, क्योंकि वही उसके लिए निकटतम होगी संभावना प्रगट करने की। और कोई कवि सत्य को जानेगा तो गीत रचेगा और कोई चित्रकार सत्य को जानेगा तो चित्र बनाएगा। अब चित्र बनाना, मूर्ति बनाना, गीत रचना, बड़ी अलग प्रक्रियाएं हैं। और स्वभावतः इनके माध्यम अलग-अलग हैं।
गीत जो रचेगा उसे रंगों की कोई जरूरत न पड़ेगी, तूलिका की कोई जरूरत न पड़ेगी, छैनी-हथौड़े की कोई आवश्यकता न होगी। जो मूर्ति बनाएगा, छैनी-हथौड़ा होगा उसके पास, पत्थर होगा उसके पास, वह पत्थर में खोदेगा। और जो चित्र बनाएगा वह रंग भरेगा। अब ऐसा भी हो सकता है कि तीनों एक ही बात प्रगट करना चाहें, मगर तीनों के माध्यम इतने भिन्न हैं कि देखनेवाले ही पहचान पाएंगे, समझने वाले ही समझ पाएंगे।
सुबह हुई, सूरज निकला, आह्लाद से भर गए तुम्हारे हृदय। किसी ने अपनी वीणा उठा ली और तार छेड़ दिए। वह कहना चाहता है कि सुबह बड़ी सुंदर है। वह वीणा के तार छेड़ रहा है। वह वीणा के तारों में सुबह के सूरज को भरने की कोशिश कर रहा है। वह तार मीड़ रहा है और उनसे उठा रहा है उस माधुर्य को, जो सुबह के सूरज में है, अब बड़ी पारदर्शी आंख हो तो ही पकड़ पाएगी कि सुबह के सितार बजाने में, या सुबह के गीत में, या सुबह की लय में, छंद में, सूरज का आगमन हो रहा है। नहीं तो तुम कैसे पहचान पाओगे? ध्वनि सुनाई पड़ेगी, मगर शायद ही तुम्हें ख्याल आए कि संगीतज्ञ को सुबह ने आंदोलित कर दिया है। यह सुबह के सूरज को अभिव्यक्ति दे रहा है।
चित्रकार चित्र बनाएगा सूरज का और गीतकार गीत रचेगा। फिर सभी गीतकार नहीं हैं, चित्रकार नहीं हैं, मूर्तिकार नहीं हैं; फिर हर आदमी का अपना ढंग होगा।
अनंत-अनंत मार्गों से बुद्ध आए--अनंत-अनंत मार्गों से, अनंत-अनंत अभिव्यक्तियों को लेकर, अनंत-अनंत संभावनाओं को लेकर; लेकिन जब उन्होंने सत्य को जाना तो जो जाना वह तो एक था, लेकिन जब कहा उसे तो अनेक हो गया। कहते ही अनेक हो जाता है। फिर सुना जब तुमने तो और भी अनेक में से अनेक हो गया, क्योंकि फिर सुननेवालों ने अपने अर्थ दिए। फिर सदियां बीतती हैं, फिर व्याख्याओं पर व्याख्याएं आरोपित होती चली जाती हैं। इससे हिंदू, ईसाई,

जैन, बौद्ध... दुनिया में कोई तीन सौ धर्म हैं। सत्य तो एक है। इसे अगर स्मरण रखोगे तो वैमनस्य चला जाएगा। इसे अगर स्मरण रखोगे तो दूसरे के प्रति सदभाव होगा। इसे अगर स्मरण रखोगे तो गीता के प्रति सम्मान और कुरान के प्रति अपमान नहीं होगा। तुम्हें गीता प्रीतिकर हो तो गीता से खोजना; लेकिन जो कुरान से खोज रहा है, उसकी अवहेलना मत करना, क्योंकि वह भी उसी तरफ चला है। हम सब उसी की तरफ चल रहे हैं। इस तरह की सदभावना पैदा न हो तो समझना कि तुम धार्मिक व्यक्ति ही नहीं हो।
और ख्याल रखना, जब मैं सदभावना कहता हूं तो मेरा मतलब वही नहीं होता
जो आमतौर से लोगों का मतलब सहिष्णुता से होता है। सहिष्णुता तो कुछ खास सहिष्णुता नहीं है। सहिष्णुता का तो अर्थ होता है कि सह लेते हैं, कि ठीक है, कि हम हिंदू हैं और जानते हैं कि हम ठीक हैं और तुम ईसाई हो और जानते हैं हम कि तुम इतने ठीक नहीं हो, मगर सह लेते हैं कि ठीक है, तुम्हारी मर्जी, जो रहना हो रहो, बर्दाश्त कर लेते हैं। सहिष्णुता का अर्थ हैः बर्दाश्त कर लेते हैं।
मगर, बर्दाश्त करना! तो विरोध तो शुरू हो ही गया। भीतर खटक तो आ ही गई। नहीं तो बर्दाश्त करने की बात ही न उठनी थी। स्वागत होना था। कहना था कि हम स्वागत करते हैं तुम्हारा, क्योंकि अगर गीता ही होती दुनिया में और कुरान न होता, तो दुनिया गरीब होती। कुरान ने कुछ समृद्धि दी है जगत को, कुछ स्वर दिए हैं जो कुरान के अपने हैं, जो गीता नहीं दे सकती। और गीता ने कुछ दिया है जो गीता का अपना है, जो कुरान नहीं दे पाता।
क्या तुम सोचते हो कि जो वीणा बजाता है वह बांसुरी को सहता है? सहिष्णु होता है बांसुरी के प्रति? नहीं, वह बांसुरी का स्वागत करता है। वह कहता हैः वीणा ने कुछ दिया जगत को, लेकिन जो बांसुरी दे सकती है वह तो बांसुरी ही दे सकती है। लाख वीणा सिर पटके तो भी जो बांसुरी दे सकती है, वीणा नहीं दे सकती; और जो वीणा दे सकती है वह बांसुरी नहीं दे सकती। ये अनंत वाद्य हैं। यह संगीतज्ञ इनको सहता थोड़े ही है, इनका स्वागत करता है। वह कहता हैः इतने वाद्य हैं, इतना अच्छा; क्योंकि इतने वाद्यों के कारण जगत इतना संगीतपूर्ण है।
बगिया में इतने फूल हैं तो तुम सहन थोड़े ही करते हो कि चलो कोई बात नहीं, सह लेते हैं, गेंदे को भी सह लेते हैं, जूही को भी सह लेते हैं, वैसे फूल तो सिर्फ कमल का ही है! नहीं, अगर कमल ही कमल बगीचे में होंगे, बगीचा दरिद्र होगा, दीन होगा, बेरौनक होगा, उबानेवाला होगा। इन सब छोटे-बड़े फूलों में खूब रंग भरा है। ये सब सुंदर हैं।
तो मैं तुमसे जब कहता हूं सदभाव, तो इतना नहीं कह रहा हूं कि सहिष्णु; मैं कह रहा हूं स्वागत। और जब मैं तुमसे कह रहा हूं स्वागत, तो यह नहीं कह रहा हूं जैसा आमतौर से आजकल सुसंस्कृत लोग मानते हैं। ईसाई कहते हैं कि "हां, हिंदू धर्म में भी सत्य है, यद्यपि पूरा नहीं; पूरा तो ईसाइयत में है। हिंदू धर्म में भी सत्य है, लेकिन पूरा नहीं, अधूरा-अधूरा, खंड-खंड, टूटा-फूटा! झलक है कुछ सत्य की!" और इस तरह का आदमी सोचता है कि बहुत सुसंस्कृत है।
जैन मानता है कि "सत्य तो मैं ही हूं, मगर कहीं-कहीं दूसरों में भी सत्य की थोड़ी झलक मिली है। दूसरे सब धर्म आंशिक दृष्टियां हैं, नय, थोड़ा- थोड़ा सत्य उनमें है। वे भी ठीक हैं।" "भी" पर ख्याल रखना। "वे भी ठीक हैं! मगर ठीक की कसौटी मैं हूं।" यह कोई सदभाव नहीं है। यह तो बहुत चालबाज अहंकार है। इससे तो वह आदमी ही गंवार अच्छा, जो कहता हैः "मैं ठीक, तुम गलत।" कम-से-कम साफ-साफ तो कहता है। कम-से-कम ईमानदार तो है। वह कहता हैः "मैं ठीक, तुम गलत!" निपटारा साफ-साफ है। "मैं सौ प्रतिशत ठीक, तुम सौ प्रतिशत गलत।" यह आदमी कम-से-कम सीधा-साफ है। जो आदमी कहता हैः नहीं, तुम भी ठीक हो, मुझे मालूम है तुममें भी कुछ ठीक है। पूरा ठीक मैं हूं। और चूंकि तुम मुझसे कुछ-कुछ मेल खाते हो, उतने-उतने तुम भी ठीक हो। जितना- जितना तुम मुझसे मेल खाते हो उतने-उतने तुम भी ठीक हो।
महात्मा गांधी ने कुरान में से वे ही वचन चुन लिए हैं जो गीता से मेल खाते हैं, और उनको कहा कि ठीक हैं। और बाकी वचन, जो गीता से मेल नहीं खाते, बल्कि गीता के विपरीत पड़ते हैं, उनकी बात नहीं उठाई। अब जरा सोचो, दूसरा

आदमी जो मुसलमान है, समझ लो कि मौलाना आजाद यही काम करें, तो वे गीता में से वही-वही वचन चुन लेंगे जो कुरान से मेल खाते हैं और बाकी छोड़ देंगे। कुरान ठीक है; फिर जो भी कुरान से मेल खाता है वह भी ठीक है, और जो मेल नहीं खाता वह गलत है। इसको हम बड़ी संस्कारशीलता कहते हैं। मगर भीतर चालबाजी है; गणित है, हिसाब है।
महात्मा गांधी जीवन-भर गुनगुनाते रहे अल्लाह-ईश्वर तेरे नाम, लेकिन
जब मरे तो अल्लाह का नाम नहीं निकला, राम का नाम निकला। जब गोली लगी तो कहाः हे राम! राम केंद्र पर है। अल्लाह को भी स्वीकार किया है। सहिष्णुता रखी। राजनैतिक कुशलता है इसमें, पर धर्म-भाव नहीं।
राजनैतिक कुशलताएं बड़ी छिपी गतियों से काम करती हैं। ऊपर से पता भी नहीं चलता, अगर गहरे में छानने चलोगे तो दिखायी पड़ना शुरू होता है। तुम मस्जिद को भी बर्दाश्त करते हो, गिरजे को भी बर्दाश्त करते हो, मगर बर्दाश्त करते हो! अगर बहुत ही सुसंस्कृत हो तो सह लेते हो।
सदभाव बड़ी और बात है। सदभाव यह कहता हैः मैं भी ठीक हूं, तुम भी ठीक हो। मैं भी सौ प्रतिशत ठीक हूं, तुम भी सौ प्रतिशत ठीक हो। तुमने और ढंग से सत्य को देखा, मैंने और ढंग से। यह मेरा रुझान, वह तुम्हारा रुझान। यह मेरी पसंद, वह तुम्हारी पसंद। तुमने जूही को प्रेम किया, मैंने बेले को; मगर बेले में भी वही खिला है उसी की गंध है, और जूही में भी वही खिला है उसी की गंध है। ये हमारी पसंद-नापसंद के भेद हैं, जूही और गुलाब, बेला और कमल। ये हमारी पसंद-नापसंद के भेद हैं, मगर खिलावट उसी एक की है, गंध उसी एक मालिक की है। तब, तब तुम्हें यह कहने की जरूरत नहीं रहेगीः "अल्लाह-ईश्वर तेरे नाम।" तब तुम राम भी दोहराते रहे तो चलेगा। क्योंकि तुम जानते हो गहनतम में कि अल्लाह भी उसी का नाम है। इसे दोहराने की जरूरत नहीं है। और तुम अल्लाह दोहराते रहे तो भी चलेगा, क्योंकि तुम जानते हो उसका ही दूसरा नाम राम है, इसे दोहराने की आवश्यकता नहीं है। यह मेरी पसंद है कि मुझे अल्लाह पसंद पड़ा, यह तुम्हारी पसंद है कि तुम्हें राम पसंद पड़ा; लेकिन हम दुश्मन नहीं हैं, हम सहयात्री हैं; हम एक ही दिशा में गतिमान हैं।

चौथा प्रश्नः आपका सत्संग मेरे लिए स्वर्ग से कम नहीं है। आपसे दूर होने में बड़ा दर्द होता है। इस जन्म के बाद दुबारा जन्म लेने की जरा भी इच्छा नहीं होती है। लेकिन मुझसे सैकड़ों भूलें होती हैं। कृपया मार्गदर्शन देने की अनुकंपा करें!

श्रीचंद! भूलों को भी स्वीकार करो। अपनी अपूर्णता को भी स्वीकार करो।
वह भी हमारा अहंकार है कि मुझसे कोई भूल न हो, कि मुझसे कोई भूल होनी ही नहीं चाहिए, कि मुझसे और कैसे भूल हो सकती है! वह भी अहंकार है--सात्विक अहंकार, पुण्यात्मा का अहंकार, संत का अहंकार, लेकिन अहंकार तो अहंकार ही है, संत का हो कि पापी का। ऐसा क्यों? सब उस पर छोड़ दो। भूलें भी हो रही हैं तो वही मालिक है। उसकी मर्जी।
मैं यह नहीं कह रहा हूं कि भूलें करते ही चले जाओ। ख्याल करना मेरी बात को। मेरी बातों से गलत अर्थ निकालना बहुत आसान है। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि भूलें करते ही चले जाओ! कि जिद्द करके करना कि भूलें तो करनी ही पड़ेंगी, क्योंकि उसकी मर्जी। नहीं, मैं तुमसे भूलें करने को नहीं कह रहा हूं। लेकिन जो हो रही हैं, उन्हें सरल भाव से स्वीकार करो। और तुम चकित हो जाओगे, तुम्हारे सरल भाव से स्वीकार करने में ही बहुत-सी भूलें गिरनी शुरू हो जाएंगी, बंद हो जाएंगी।
तुम जैसे हो अपने को वैसा अंगीकार करो। तुमने आदर्श बना रखा होगा अपने मन में कि कैसा होना चाहिए, कि श्रीचंद को कैसा होना चाहिए--महावीर जैसा कि बुद्ध जैसा। महावीर भी मुश्किल में पड़ते अगर श्रीचंद जैसा होना चाहते। वह तो अच्छा हुआ कि उनको यह ख्याल ही पैदा न हुआ। अगर उनको यह धुन सवार हो जाती कि श्रीचंद जैसे होना, बस फिर मुसीबत में पड़ते, फांसी लग जाती। फिर कभी महावीर न हो पाते। उन्होंने फिक्र ही नहीं की किसी और जैसे होने की; जैसे थे, जो थे, उसको उसकी परिपूर्णता में जीया।

किसी के आदर्श के अनुकूल चलने की तुम चेष्टा कर रहे होओगे, तो भूलें मालूम होती हैं। महावीर नग्न खड़े हैं, तुम अभी भी वस्त्र नहीं छोड़ सकते, पाप हो रहा है। तुम अभी भी संत नहीं हो पाए। संत फ्रांसिस कोढ़ियों को गले लगा रहे हैं, कोढ़ियों का चुंबन ले रहे हैं; तुम्हें कोढ़ी को छूने में घबड़ाहट होती है, कोढ़ी को देखकर तुम दूसरे रास्ते से निकल जाते हो। बस अगर संत फ्रांसिस तुम्हारे आदर्श हैं, अड़चन हो गई। तुमसे पाप हो रहा है। तुम अभी पुण्यात्मा नहीं हो।
महावीर तो कोई कोढ़ियों को चुंबन करते नहीं घूमे। अगर महावीर को ख्याल
आ जाता संत फ्रांसिस का, पड़ते मुसीबत में। संत फ्रांसिस को करने दो जो संत फ्रांसिस को सहजता से उमग रहा है। संत फ्रांसिस को अपनी निजता में जीने दो, महावीर को उनकी निजता में, और श्रीचंद को आज्ञा दो कि वह भी उनकी निजता में जीयें। उनको बाधा मत डालो।
बड़ी से बड़ी क्रांति दुनिया में घट सकती है, अगर व्यक्ति अपने को स्वीकार कर ले। मगर हमें स्वीकार करने की शिक्षा नहीं दी गई। बचपन से बताया गया हैः ऐसे हो जाओ, ऐसे हो जाओ, ऐसे हो जाओ। वे जो होने के लक्ष्य सामने खड़े हैं, बड़े-बड़े आदर्श, और सब उधार, क्योंकि कोई ऐसा आदर्श नहीं है जिस जैसे सभी मनुष्यों को होना है या होना चाहिए। कोई ऐसा आदर्श नहीं है। और वह दुनिया बड़ी बेहूदी दुनिया होगी जहां सभी मनुष्य एक जैसे होंगे। वैविध्य न रह जाएगा, रंग-बिरंगापन न रह जाएगा। इंद्रधनुष खो जाएगा, इकरंगापन हो जाएगा, इकढंगापन हो जाएगा। ऊब पैदा होगी।
बर्ट्रेंड रसेल ने बात बड़े पते की लिखी है। उसने लिखा है कि मैं स्वर्ग जाने में डरता हूं। डर उसे ज्यादा नहीं है, क्योंकि वह मानता नहीं है कि आत्मा है; वह मानता नहीं है कि शरीर के बाद कुछ बचेगा, इसलिए कहता है ज्यादा मुझे डर नहीं है। लेकिन कभी-कभी कौन जाने... पक्का तो नहीं हो सकता कि बचूंगा कि नहीं। तर्क तो यही कहता है नहीं बचूंगा, लेकिन अगर बचा तो मुझे स्वर्ग जाने में डर लगता है, क्योंकि वहां एक जैसे संत, बैठे अपनी- अपनी सिद्धशिला पर... । बड़ी ऊब होगी वहां। बड़ी उदासी होगी। सभी पहुंचे हुए उदास वहां बैठे हैं; वहां कोई घटना भी नहीं घटेगी कभी। कोई अफवाह भी नहीं उड़ेगी, घटना की तो बात क्या। अनंतकाल तक वहां सन्नाटा ही बना रहेगा।
रसेल कहता हैः मेरा मन बड़ा डरता है। इससे तो नरक बेहतर। अगर बचूं ही बाद में तो नरक बेहतर। वहां कुछ राग-रंग तो होगा, कुछ उत्सव-जलसा तो होगा, कुछ कुतूहल को जगानेवाली घटनाएं तो घटेंगी!
और यह बात सच है, अगर नर्क कहीं होगा तो ज्यादा रंगीन होगा। क्योंकि वहां सारे रंगीन लोग होंगे। वहां तरह-तरह की घटनाएं घटेंगी। वहां तरह-तरह की कहानियां होंगी। सारे रंगीन लोग वहां होंगे। बेरंग इकट्ठे हो गए होंगे स्वर्ग में। और अगर सारे बेरंग स्वर्ग में इकट्ठे हो गए तो स्वर्ग नर्क हो गया।
ऐसा कोई आदर्श नहीं है जिसके अनुसार सभी को ढलना है। इसलिए कोई ऐसे आदर्श को अपनी छाती पर लेकर मत चलो, अन्यथा व्यर्थ बोझ में दबे-दबे मर जाओगे।
फिर मैं तुमसे क्या कहना चाहता हूं? मैं कहना चाहता हूंः अपने को स्वीकार करो। अपनी सारी भूलें, छोटी-छोटी भूलें, उनको अंगीकार करो। आदर्श का भाव छोड़ दो। अपने तथ्य को जीयो। और उसी तथ्य में रहो। और तुम चकित हो जाओगेः आदर्श के भाव के जाते ही बहुत-सी भूलें तो विदा हो गईं, क्योंकि अब उनको भूलें कहने का कोई कारण न रहा। भूलों का कारण ही था आदर्श।
जिस आदमी ने तय कर लिया आदर्श, उसने भूलें भी तय कर लीं। जिसने तय कर लिया... जैसे कि ईसाई कहते हैं, जीसस कभी हंसे नहीं। अगर ईसाई सच कहते हैं तो जीसस फिर मुझे नहीं रुचते, फिर मुझे नहीं जंचते। यह आदमी भी क्या हुआ? तो ईसाई गलत ही कहते होंगे। मगर ईसाईयों का लक्ष्य यह बन गया फिर कि संत को हंसना नहीं चाहिए।
अब अगर तुमने यह लक्ष्य बना लिया कि संतत्व का लक्षण है हंसना नहीं,
तो हंसे तो भूल हो गई। अब हंसी में कोई भूल न थी; मगर हंसना नहीं, यह लक्ष्य बना लिया, तो हंसना भूल हो गई। अब तुम परेशानी में पड़े। अब तुम अपने को

सम्हाले बैठे हो हमेशा, कि कहीं हंसी न आ जाए। हंसी भीतर उठ भी रही हो तो दबाए बैठे हो। तुम द्वंद्व से घिर गए और तुम झूठे हो गए।
हंसी में कोई पाप नहीं है। स्वीकार करो। फिर हंसी का परिष्कार किया
जा सकता है। हंसी के कई तल हैं। जब तुम दूसरे पर हंसते हो तो उसमें थोड़ी हिंसा होती है। जब तुम अपने पर हंसते हो, तो उसमें बड़ी अहिंसा होती है। फिर कुछ लोग हैं जो ऐसी बातों पर ही हंस सकते हैं जो बहुत भौंडी हों, बेहूदी हों; उनको हंसी के सूक्ष्म तलों का कोई बोध नहीं है। वे तभी हंस सकते हैं जब कोई केले के छिलके पर फिसलकर गिर पड़े, हड्डी-पसली टूट जाए उसकी, तब उनका चित्त प्रसन्न होता है, उन्हें कोई बारीक बात प्रसन्न नहीं कर पाती; उन्हें कोई स्थूल बात चाहिए, कुछ अभद्र।
हंसना नहीं चाहिए, यह लक्ष्य बनाने की जरूरत नहीं है। लेकिन हंसी में, तुम्हारी हंसी में बहुत परिष्कार हो सकते हैं। हंसी बड़ी कलात्मक हो सकती है। हंसी का अपना काव्य है, अपना संगीत है। हंसी में फूल झर सकते हैं। फिर तुम अपनी हंसी को परिष्कृत करो, सुधारो, जगह-जगह से रंग भरो। हंसी को गहन करो।
तुमने देखा, अलग-अलग लोग हंसते हैं, जरा उनकी हंसी देखो, अलग-अलग। कोई हंसता है तो बिल्कुल ऐसा लगता है ऊपर से खोखला, हृदय से आती नहीं मालूम होती; बिल्कुल लगता है गले में से पैदा कर रहा है, जबरदस्ती पैदा कर रहा है। हंसना चाहिए, इसलिए हंस रहा है। किसी की हंसी आती है तो बड़ी गहराई से आती है।
तो हंसी के सारे रंग परखो, ढंग परखो। अपने भीतर भी हंसी की सारी संभावनाएं परखो। तुम उतने ही नहीं हो तुम जितने बने हो आज; तुम्हारे भीतर बहुत कुछ पड़ा है, जिसका परिष्कार होना है। मगर आदर्श के द्वारा नहीं, तुम्हारे यथार्थ में परिष्कार होना है। किसी आदर्श के अनुसार नहीं। तुम्हें वही बनना है। जो तुम बनने को पैदा हुए हो। इसलिए दूसरे को सामने प्रतिमा की तरह खड़ा मत करना, अन्यथा ऐसी भूलें दिखायी पड़ने लगेंगी जिनको तुम हल भी न कर पाओगे; हल करने की कोशिश की तो दुविधा में पड़ोगे, द्वंद्व में पड़ोगे, पाखंडी हो जाओगे। इसी तरह तो तथाकथित धार्मिक लोग पाखंडी हो गए। फिर स्वयं के स्वीकार में ही जागरण की संभावना है। जब कोई भविष्य नहीं है--ऐसा नहीं होना, वैसा नहीं होना--तो वर्तमान सब कुछ है, यही क्षण सब कुछ है। अब इस क्षण में जागकर हम जीएं।
मैं तुमसे नहीं कहता कि धूम्रपान करते हो तो छोड़ दो। यह मैं नहीं कहता, क्योंकि यह तो तुमसे बहुत कहा गया है और तुम नहीं छोड़ सके। यह तो तुम्हारे साधु-संत कह-कहकर मर गए और तुम नहीं छोड़ सके। तो मैं यही दोहराऊं, इससे सार क्या है? जो साधु-संत यही दोहराते हैं, मैं मानता हूं वे बुद्धिहीन हैं। क्योंकि कितने लोग दोहराते रहे, लोगों ने सुना नहीं, तो दोहराने में कहीं भूल है। शायद धूम्रपान के मूल कारण को ही नहीं पकड़ा गया है, बस व्यर्थ की बातें दोहराई जा रही हैं। कोई कहता है तुमसे कि धूम्रपान मत करो, क्षयरोग हो जाएगा। मगर यह तो मान लिया है उसने कि तुम क्षय रोग से डरते हो। कौन डरता है क्षयरोग से! लोग कहते हैंः जब होगा जब देखा जाएगा। फिर दवा है, इलाज है। और अगर तुम किताब में पढ़ने जाओगे तो वे कहते हैं कि एक आदमी अगर बारह सिगरेट रोज पीए तो बीस साल में जितनी सिगरेट पीए, तब कहीं उसे क्षयरोग हो सकता है। कौन फिक्र करता है बीस साल की! और बारह सिगरेट रोज और बीस साल तक... और फिर देखेंगे। और फिर यह भी पक्का नहीं है कि बीस साल में सभी को हो जाता है। क्योंकि सैकड़ों सिगरेट पीनेवाले हैं, जो बारह नहीं चौबीस पीते हैं रोज और जिंदगी-भर से पी रहे हैं और क्षयरोग नहीं हुआ। फिर ऐसे लोग हैं, सिगरेट तो दूर कहो, पानी भी छान-छान कर पीते हैं और क्षयरोग हो गया।
तो आदमी सोचता हैः इस झंझट में पड़ा क्या है? मतलब क्या है? यह पानी छान-छान कर पीते रहे सज्जन और क्षयरोग से ग्रस्त हैं। और इधर शराब पीनेवाले पड़े हैं, जिन्हें क्षयरोग नहीं हुआ। सब तरह से सात्विकता से जीते थे और कैंसर हो गया। और दूसरा है कि जिसने सात्विकता कभी जानी ही नहीं, जिन्होंने कसम खा ली थी कि सात्विकता से कभी न जीएंगे, जो कभी वक्त से न उठे न सोए, न वक्त पर खाना खाया, न ढंग का खाना खाया; कुछ भी खाया, कुछ

भी पीया, कहीं भी सोए, कहीं भी बैठे, कभी जागे, कोई हिसाब-किताब न रखा--और अभी तक कैंसर नहीं हुआ! तो आदमी देखता है कि ये बातें सिर्फ डरवाने की हैं। कौन डरता है!
मुल्ला नसरुद्दीन से किसी ने कहा कि तुम अगर सिगरेट पीना बंद न करोगे
तो तुम्हारी तीन साल उम्र कम हो जाएगी। मुल्ला ने कहाः तीन साल कम जीना बेहतर, मजे से जीना बेहतर। अगर तीस साल भी उम्र बढ़ती हो और न सिगरेट पीयो और न चाय पीयो और न शराब पीयो तो जी कर भी क्या करेंगे? सिर्फ जीते ही रहेंगे? करने को कुछ बचता नहीं।
एक आदमी मर कर स्वर्ग पहुंचा। बड़ा साधु था! स्वर्ग के द्वार पर उससे पूछा गया। नब्बे साल का होकर मरा था। पूछा स्वर्ग के द्वार पर कि तुमने क्या-क्या पाप किए, क्योंकि पहले यही पूछा जाता है--क्या-क्या पाप किए? पुण्य तो कोई कभी-कभार करता है; असली चीज तो पाप है। उस आदमी ने कहाः पाप? पाप मैंने कभी किए ही नहीं।
तो द्वारपाल ने विस्तार से पूछाः शराब पी? उसने कहा कि नहीं।
"दूसरा कोई और नशा किया?"
"नहीं।"
"सिगरेट पी?"
"नहीं।"
"पान खाते थे?"
"नहीं।"
"तंबाकू खाते थे?"
"नहीं।"
"सुंघनी सूंघते थे?"
"नहीं।"
"स्त्रियों के पीछे दीवाने थे?"
उसने कहाः इस झंझट में मैं पड़ा ही नहीं। मैं तो सात्विकता से जीया। तो देवदूत ने भी सिर पर हाथ मार लिया। उसने कहाः फिर नब्बे साल तक तुम करते क्या रहे? इतनी देर क्यों लगाई? नब्बे साल! सुंघनी भी न सूंघी, समय कैसे बिताया, यह तो बताओ?
तुम ऐसे डरवा कर किसी को छुड़वा न सकोगे और तुम्हारे धर्म सिर्फ डरवाते रहे। वे कहते हैंः नर्क में पड़ना पड़ेगा। बात भी कुछ बेहूदी लगती है कि कोई आदमी धुआं भीतर ले जाता है बाहर ले जाता है, इसके कारण नर्क में पड़ना पड़ेगा।
यह बात कुछ जंचती नहीं। इसमें कोई न्याय नहीं मालूम पड़ता। यह तो कोई अदालत भी नहीं कह सकती कि एक आदमी बैठकर धुआं बाहर-भीतर ले जाता था, कुछ किसी को नुकसान भी नहीं कर रहा था, किसी को मार भी नहीं रहा था, किसी का खून भी नहीं पी रहा था, सिर्फ धुआं बाहर-भीतर करता था, इसको नर्क में डाला गया है। यह बात जंचती नहीं। यह तो नर्क में जो डालता होगा वह भी फिर अन्याय कर रहा है। यह बात तो उखड़ गई।
तो अब धर्मगुरु यह नहीं कहते कि नर्क में पड़ना पड़ेगा, वे कहते हैं क्षयरोग हो जाएगा। मगर तर्क वही हैः भय। पहले नर्क का भय बताते थे, अब वह किसी को जंचता नहीं, तो अब वे दूसरे भय बताते हैं कि क्षयरोग हो जाएगा।
एक गांव में एक शराबी लड़खड़ाता-लड़खड़ाता पादरी के पास पहुंचा और उसने कहाः एक बात मुझे पूछनी है, आदमी को गठिया कैसे हो जाता है? पादरी को मौका मिला। इस तरह के लोग तो इसी मौके की तलाश में रहते हैं। पादरी को मौका मिला। उसने कहाः मैंने तुम से हजार बार कहा कि शराब पीना बंद करो, नहीं तो गठिया हो जाएगा। यह अच्छा अवसर था, इस अवसर पर शिक्षा दे देनी चाहिए। ऐसे ही तो साधु-संत शिक्षा दे देते हैं। कितनी बार मैंने कहा कि गठिया हो जाएगा, अगर शराब पीनी बंद न की।
उसने कहाः मैं अपने बाबत नहीं कुछ पूछ रहा हूं, मैंने अखबार में पढ़ा
है कि वैटिकन में पोप को गठिया हो गया है। तो मैं तो इसलिए पूछ रहा हूं कि गठिया कैसे हो गया! मुझको हो जाए, ठीक; मैं तो शराब पीता हूं, जाहिर बात है। मगर पोप को कैसे गठिया हो गया?
तब पादरी चौंका, अब बहुत देर हो चुकी थी।

भय से तुम लोगों को डरवा कर कुछ बदल सके नहीं। भय की तो प्रक्रिया व्यर्थ गई है। और जब तुम बहुत बार भय देते हो और आदमी डरता ही नहीं और पीये चला जाता है, तो उसकी भय के प्रति जो संवेदनशीलता है वह भी क्षीण हो जाती है। लाभ की जगह हानि हो जाती है। हानि हो जाती है। वह डरता ही नहीं फिर। वह कहता हैः अब जो होगा, देखा जाएगा।
मैं तुमसे कहता हूंः सिगरेट अगर पीते हो तो ध्यानपूर्वक पीयो। यह और
ही बात कह रहा हूं। मैं तुमसे कह रहा हूंः जब तुम सिगरेट अपने खीसे से निकालो, पाकेट सिगरेट का निकालो, तो जल्दी मत निकालना जैसे तुम रोज निकालते हो। जल्दी क्या? धीरे से निकालना। बस विपस्सना शुरू हो जाएगी। बिल्कुल धीरे से निकालना। इतने आहिस्ता जैसे कोई जल्दी नहीं, अनंत काल पड़ा है, जल्दी क्या है? बिल्कुल आहिस्ता-आहिस्ता निकालना। जितने धीरे निकाल सको उतने धीरे निकालना। जब सिगरेट ही पीने जा रहे हैं तो जरा ढंग से पीयो, थोड़ी शालीनता से पीयो। यह क्या चोरी-चपाटी कि जल्दी से निकाला और किसी तरह धुआं अंदर-बाहर फेंका, फेंकी सिगरेट, पश्चात्ताप भी किए जा रहे हैं कि नहीं पीना चाहिए, यह बहुत बुरा हो रहा है, कि श्रीचंद, भूल हो रही है। थोड़ी संस्कार से पीयो! थोड़ी शालीनता, थोड़ा प्रसाद! सिगरेट का डब्बा हाथ में लो, फिर सिगरेट को बाहर निकालो, फिर ठीक से सिगरेट को डब्बे पर ठोंको, बजाओ। फिर आहिस्ता से मुंह में रखो। फिर माचिस निकालो। फिर माचिस जलाओ। आहिस्ता से, जैसे कि पूजा... धीमे से कोई पूजा का दीप जलाता है, ऐसे सिगरेट को जलाओ। भयभीत क्या हो? इतने डरे क्या हो? पश्चात्ताप क्या है? तुम्हें प्रीतिकर लग रहा है, तुम्हारा जीवन है, तुम अपने मालिक हो। तुम किसी की कोई हानि नहीं कर रहे हो। और अगर तुम अपनी हानि भी करना चाहते हो तो तुम उसके भी हकदार हो।
लेकिन इसको एक कलात्मकता दो। और तुम चकित हो जाओगे, तुम्हें पहली दफा पाप नहीं मालूम पड़ेगा, मूर्खता दिखायी पड़ेगी। और वहीं भेद है। पाप नहीं, पाप से तो कोई छुटकारा हुआ नहीं। पाप है, ऐसा तो कहते-कहते सदियां बीत गईं। किस पाप से आदमी को छुड़ा पाए हो? मैं नहीं कहता सिगरेट पीना पाप है; यद्यपि मैं जरूर कहता हूं, मूढ़ता है। पाप क्या है? पर मूढ़ता निश्चित है। बस मूढ़ता तुम्हें दिखाई पड़ने लगे... और जितने धीमे-धीमे इस प्रक्रिया को करोगे उतनी स्पष्टता से मूढ़ता दिखाई प.ड़ेगी। इसका वैज्ञानिक कारण है।
जिस काम को भी हम करने के आदी हो गए हैं, वह काम यंत्रवत हो जाता है; मशीन की तरह कर लेते हैं। अगर तुम उस प्रक्रिया को शिथिल कर दो तो तुम अचानक पाओगे कि तुम उसी काम को होशपूर्वक कर रहे हो, यंत्रवत नहीं। तुम एक खास चाल से चलते हो। बौद्ध ध्यानशालाओं में वे तुम्हारी चाल बदल देते हैं। वे कहते हैंः इसको आधा कर दो, चाल को। होशपूर्वक धीमे चलो। छोटे-छोटे कदम रखो।
तुम चकित होओगे, जब भी तुम्हारा होश खो जाएगा, तुम फिर कदम जोर से रख दोगे, जो तुम्हारी आदत है। अगर होश रखना है तो कदम धीमे रखना पड़ेगा; अगर कदम धीमे रखना है तो होश रखना पड़ेगा। अगर होश खोकर चलना है तो फिर पुरानी आदत पर्याप्त होगी। किसी भी प्रक्रिया को, अगर तुम उसकी गति धीमी कर दो तो उसके साथ होश जुड़ जाता है। भोजन भी अगर आहिस्ता करो, बहुत आहिस्ता, अड़तालीस बार चबाओ हर कौर को, तो तुम चकित हो जाओगे कि कितना होशपूर्वक तुम कर रहे हो! क्योंकि हिसाब रखना है, अड़तालीस बार चबाना है, ऐसे ही लीलते नहीं चले जाना है।
मैं तुमसे कहता हूं कि ज्यादा भोजन मत करो। मैं कहता हूं अड़तालीस बार चबाओ और होशपूर्वक धीमे-धीमे भोजन करो। अपने-आप भोजन की मात्रा एक तिहाई हो जाएगी। उतनी ही हो जाएगी जितनी जरूरी है, और ज्यादा तृप्त करेगी, ज्यादा परितृप्त करेगी। क्योंकि उसका रस फैलेगा, ठीक पचेगा। ऐसी ही किसी भी प्रक्रिया को धीमा करो। अगर वह सार्थक प्रक्रिया है तो टूटेगी नहीं। अगर व्यर्थ प्रक्रिया है, अपने-आप टूट जाएगी, क्योंकि मूढ़ता स्पष्ट हो जाएगी। पाप को छोड़ना पड़ता है, मूढ़ता को छोड़ना नहीं पड़ता; जानना ही पड़ता है, मूढ़ता छूट जाती है।
इसी तरह श्री चंद, तुम्हें जो-जो भूलें दिखायी पड़ती हों, आदर्शों के कारण नहीं, अपने जीवन अनुभव से तुम्हें भूलें दिखायी पड़ती हों... ।

आदर्शों को हटा दो, नब्बे प्रतिशत भूलें तो विदा हो गईं उसी वक्त, जैसे आदर्श हटा दिए। फिर दस प्रतिशत भूलें बचीं। इन दस प्रतिशत के प्रति सजग हो जाओ, जागरूक हो जाओ। इनको यांत्रिकता से मुक्त कर दो। और तुम हैरान हो जाओगे, इनमें जो-जो मूढ़तापूर्ण हैं, वे छूट जाएंगी। और जो-जो मूढ़तापूर्ण नहीं हैं, उन्हें छोड़ने की कोई जरूरत भी नहीं है; वे भूलें ही नहीं हैं।

पांचवां प्रश्नः मैं ध्यान में प्रकाश का अनुभव करता हूं, शांति भी अनुभव होती है, आनंद भी। क्या यही समाधि की अवस्था है?

इतनी जल्दी नहीं। समाधि की पहली झलक कहो। पहली गंध का झोंका आया। बसंत का पहला फूल खिला, ऐसा कहो। मगर बसंत का पहला फूल खिल जाना ही बसंत का आ जाना नहीं है। आ रहा बसंत। आता होगा। पहले पाहुन आ गए। लेकिन इसको ही सब मत मान लेना, अन्यथा अटक जाओगे, रुक जाओगे। अभी बहुत होने को है।
और अंतिम बात तो तब समझना हो गई, जब कोई अनुभव शेष न रहे, प्रकाश का अनुभव भी शेष न रहे, शांति का अनुभव भी शेष न रहे, आनंद का अनुभव भी शेष न रहे। तुम चौंकोगे थोड़ा।
अभी तुमने दुख जाना है, इससे विपरीत सुख का अनुभव; चित्त में थोड़ी-सी ध्यान की अवस्था गहरी होगी तो दुख की जगह सुख आएगा। फिर दुख-सुख दोनों चले जाएंगे। द्वंद्व गया। फिर आनंद की पुलक आएगी। लेकिन आनंद की पुलक भी इसलिए आनंद मालूम हो रही है कि इसे पहले जाना नहीं था; नई है, इसलिए मालूम हो रही है। जब तुम इसमें परिपक्व हो जाओगे तो आनंद का भी पता नहीं चलेगा। ऐसा समझो कि तुम बीमार थे, फिर तुम स्वस्थ होते हो, तो बीमारी के बाद
जब तुम स्वस्थ होते हो तो कुछ दिन तक स्वास्थ्य का पता चलता है; बीमारी के कारण पता चलता है। बीमार रहे, विपरीत को जाना, फिर स्वस्थ हुए, तो स्वास्थ्य का ठीक-ठीक बोध होता है। जैसे किसी ने काले तख्ते पर सफेद खड़िया से लकीर खींच दी, ऐसी बीमारी की पृष्ठभूमि में स्वास्थ्य का अनुभव हुआ। फिर तुम स्वस्थ ही रहे, धीरे-धीरे बीमारी भूल गई, स्वास्थ्य भी भूल जाएगा। स्वास्थ्य की परिभाषा यही है कि जिसका पता न चले। पता तो बीमारी का चलता है, सिरदर्द होता है तो पता चलता है। सिर में दर्द न हो तो पता चलता है? तुम कहते फिरते हो लोगों से कि भई सुनो आज सिर में दर्द नहीं है? आज पता चल रहा है कि सिर में दर्द नहीं है! सिर में दर्द नहीं है, इसका कभी पता चलता है? दर्द होता है तो पता चलता है। वेदना का ही ज्ञान होता है। इसलिए तो उसको वेदना कहते हैं। वेदना के दो अर्थ होते हैंः पीड़ा और ज्ञान। उसी से बना है "वेदना" शब्द, जिससे "वेद", विद--जानना। पीड़ा का ही ज्ञान होता है। पैर में कांटा चुभता है तो पता चलता है; कांटा नहीं चुभता तो न तो पैर का पता चलता; और यह तो पता कैसे चलेगा कि कांटा नहीं चुभा है? अभाव का तो कोई पता नहीं होता।
तो पहले दुख जाएगा, सुख की प्रतीति होगी। फिर सुख-दुख दोनों का द्वंद्व गया, आनंद की झलक आएगी। जन्मों-जन्मों से नहीं जाना है। खूब गहन होकर पता चलेगा। एकदम घनघोर वर्षा हो जाएगी। लेकिन फिर उसी में पक जाओगे। फिर वही स्वभाव हो जाएगा। फिर उसका भी पता न चलेगा। जब आनंद का भी पता न चले तब जानना कि आ गए घर। अंधेरे में रहे हो तो जब प्रकाश पहली दफा मालूम होगा तो पता चलेगा। फिर जब प्रकाश में ही रहते-रहते प्रकाश के साथ आत्मसात हो जाओगे, एक हो जाओगे, फिर किसको पता चलेगा प्रकाश का? फिर प्रकाश का भी कोई पता नहीं चलेगा।
अंतिम अनुभव में सब अनुभव लीन हो जाते हैं, कोई अनुभव नहीं होता। सिर्फ एक बोध मात्र होता है। बोध का दीया भर जलता होता है।
पर जो हो रहा है, अच्छा है, शुभ है। ध्यान में प्रकाश दिखायी पड़े, अच्छे लक्षण हैं। शुभ लक्षण हैं। शांति अनुभव हो, आनंद... तो समझना कि वसंत करीब है!

पीतांबर लहराता आया मधुमास!
सुरभित केश झुमाता आया मधुमास!

मेघहीन अंबर में नीलम का हास, निर्मल सरित-सरोवर, मंथर वातास! रह-रह झूम रहे हैं सरसों के खेत, मंद-मंद मुसकाता आया मधुमास! पीतांबर लहराता आया मधुमास! हरे-हरे पत्तों से बोझिल हर डाल, लाल हुए लज्जा से कलियों के गाल! भौंरों की गुंजारें, कोयल की टेर रंग-अबीर उड़ाता आया मधुमास! पीतांबर लहराता आया मधुमास!
पहन कल्पना आई वासंती चीर,
पाटल के सुमनों-सा सुकुमार शरीर! तरुण-अरुण नयनों में काजल की रेख मृदुल करतलों पर हैं मेंहदी के लेख!
केशों में मदमाती चंपा की गंध,
छमक रही पगपायल, गजगति मृदु मंद
नगर-नगर झनकाता वीणा के तार--
कवि के स्वर में गाता आया मधुमास!
पीतांबर लहराता आया मधुमास!
शुरुआत हो गई। पहली झलक मिली। पहली बार झरोखा खुला, एक किरण उतरी। मगर किरण को सूरज न समझ लेना। अभी बहुत यात्रा है शेष। इतने को ही मानकर रुक मत जाना। ऐसा इसलिए कहता हूं, क्योंकि बहुत रुक जाते हैं। किसी को थोड़ी-सी कुंडलिनी शक्ति का जागरण अनुभव हुआ कि रुक गया, कि उसने सोचा हो गए सिद्ध। किसी को थोड़ा भीतर प्रकाश का अनुभव हुआ, कि रुक गया, कि मान लिया आ गई समाधि। ये तो मील के पत्थर हैं। इन मील के पत्थरों को छाती से लगाकर मत बैठ जाना। अभी मंजिल दूर है। और मील के पत्थर बुरे नहीं हैं, शुभ हैं, क्योंकि खबर देते हैं कि थोड़ी यात्रा हो गई, कुछ मील चल आये। मील के पत्थर शुभ संकेत हैं--मंजिल करीब आती जाती है, इस बात के।
लेकिन मन बड़ा चालबाज है, और अहंकार हर कहीं अटका लेता। छोटी-सी बात हो जाए, उसको बड़ा तूल दे देता। तिल को हम ताड़ बना लेते हैं।

हर चितवन को प्यार न समझो!
हर लहरी को ज्वार न समझो!
जीवन की साधें अगणित हैं
सांसों की झोली सीमित है,
पथ चलते जो भी मिल जाये--
तुम उसको उपहार न समझो!
हर चितवन को प्यार न समझो! भौंरों से आराधन सीखो,
कोयल से स्वर-साधन सीखो;
यदि दो फूल खिले बगिया में-- तो आ गई बहार न समझो!
हर चितवन को प्यार न समझो! जीवन भर भटकाने वाली--
प्यास कहां है आंखों वाली? जो कुछ प्याले में ढलता है तुम उसको रसधार न समझो!
हर चितवन को प्यार न समझो! अलकों की छाया मोहक है,
नयनों की माया मादक है;
दो दिन के मीठे परिचय को
सपनों का आधार न समझो!
हर चितवन को प्यार न समझो! जीवन भर मृग-से भटकोगे,

बालू पर माथा पटकोगे;
मृगजल की चंचल लहरों को
छवि का पारावार न समझो!
हर चितवन को प्यार न समझो!
दीपक राग नहीं बन पाये,
आग न जीवन में लग जाये!
वीणा पर जो कुछ बजता है--
उसको मेघ-मल्हार न समझो!
हर चितवन को प्यार न समझो!
वीणा पर और बहुत कुछ भी बजता है। हर बजने वाली चीज मेघ-मल्हार नहीं। जीवन में जैसे बाहर बहुत अनुभव होते हैं, ऐसे ही भीतर भी बहुत अनुभव होते हैं। इतने ही अनुभव भीतर हो सकते हैं जितने बाहर हुए हैं, क्योंकि इतना ही बड़ा विराट अस्तित्व भीतर फैला है जितना बाहर। जितना बड़ा आकाश बाहर है उतना ही बड़ा आकाश भीतर है।
बहुत अनुभव होंगे और बड़े मादक अनुभव होंगे! और ऐसे चित्ताकर्षक अनुभव होंगे कि लगेगाः अब और इससे ज्यादा क्या हो सकता है! जब पहली दफा प्रकाश झर-झर हो उठता, तो प्राण ऐसे तृप्त हो जाते कि यह मानने का सवाल ही नहीं उठता कि इससे आगे भी कुछ और हो सकता है। जन्मों-जन्मों से अंधेरे से ही आंखें भरी रहीं, प्रकाश की यह थोड़ी-सी झलक अपूर्व रूप से तृप्ति देती है। मगर यहीं गुरु चेताता है, चेताता रहता है कि और चले चलो, और चले चलो।
एक सूफी कहानी है। एक फकीर एक वृक्ष के नीचे ध्यान करता है। रोज एक लकड़हारे को लकड़ी काटते ले जाते देखता है। एक दिन उससे कहा कि सुन भाई, दिन-भर लकड़ी काटता है, दो जून रोटी भी नहीं जुट पाती। तू जरा आगे क्यों नहीं जाता? वहां आगे चंदन का जंगल है। एक दिन काट लेगा, सात दिन के खाने के लिए काफी हो जाएगा।
गरीब लकड़हारे को भरोसा तो नहीं आया, क्योंकि वह तो सोचता था कि जंगल
को जितना वह जानता है और कौन जानता है! जंगल में ही तो जिंदगी बीती। लकड़ियां काटते ही तो जिंदगी बीती। यह फकीर यहां बैठा रहता है वृक्ष के नीचे, इसको क्या खाक पता होगा? मानने का मन तो न हुआ, लेकिन फिर सोचा कि हर्ज क्या है, कौन जाने ठीक ही कहता हो! फिर झूठ कहेगा भी क्यों? शांत आदमी मालूम पड़ता है, मस्त आदमी मालूम पड़ता है। कभी बोला भी नहीं इसके पहले। एक बार प्रयोग करके देख लेना जरूरी है।
तो गया। लौटा फकीर के चरणों में सिर रखा और कहा कि मुझे क्षमा करना, मेरे मन में बड़ा संदेह आया था, क्योंकि मैं तो सोचता था कि मुझसे ज्यादा लकड़ियां कौन जानता है। मगर मुझे चंदन की पहचान ही न थी। मेरा बाप भी लकड़हारा था, उसका बाप भी लकड़हारा था। हम यही काटने की, जलाऊ-लकड़ियां काटते- काटते जिंदगी बिताते रहे, हमें चंदन का पता भी क्या, चंदन की पहचान क्या! हमें तो चंदन मिल भी जाता तो भी हम काटकर बेच आते उसे बाजार में ऐसे ही। तुमने पहचान बताई, तुमने गंध जतलाई, तुमने परख दी। जरूर जंगल है। मैं भी कैसा अभागा! काश, पहले पता चल जाता!
फकीर ने कहाः कोई फिक्र न करो, जब पता चला तभी जल्दी है। जब घर आ गए तभी सबेरा है।
दिन बड़े मजे में कटने लगे। एक दिन काट लेता, सात-आठ दिन, दस दिन जंगल आने की जरूरत ही न रहती। एक दिन फकीर ने कहाः मेरे भाई, मैं सोचता था कि तुम्हें कुछ अक्ल आएगी। जिंदगी-भर तुम लकड़ियां काटते रहे, आगे न गए; तुम्हें कभी यह सवाल नहीं उठा कि इस चंदन के आगे भी कुछ हो सकता है? उसने कहाः यह तो मुझे सवाल ही न आया। क्या चंदन के आगे भी कुछ है? उस फकीर ने कहाः चंदन के जरा आगे जाओ तो वहां चांदी की खदान है। लकड़ियां-वकड़ियां काटना छोड़ो। एक दिन ले आओगे, दो-चार छः महीने के लिए हो गया।
अब तो भरोसा आया था। भागा। संदेह भी न उठाया। चांदी पर हाथ लग गए, तो कहना ही क्या! चांदी ही चांदी थी! चार-छः महीने नदारद हो जाता। एक दिन आ जाता, फिर नदारद हो जाता। लेकिन आदमी का मन ऐसा मूढ़ है कि फिर भी उसे ख्याल न आया कि और आगे कुछ हो सकता है। फकीर ने एक दिन कहा कि तुम कभी जागोगे कि नहीं, कि मुझी को तुम्हें जगाना पड़ेगा। आगे सोने की खदान है मूर्ख! तुझे

खुद अपनी तरफ से सवाल, जिज्ञासा, मुमुक्षा कुछ नहीं उठती कि जरा और आगे देख लूं? अब छह महीने मस्त पड़ा रहता है, घर में कुछ काम भी नहीं है, फुरसत है। जरा जंगल में आगे देखकर देखूं, यह ख्याल में नहीं आता?
उसने कहा कि मैं भी मंदभागी, मुझे यह ख्याल ही न आया, मैं तो समझा चांदी, बस आखिरी बात हो गई, अब और क्या होगा? गरीब ने सोना तो कभी देखा न था, सुना था। फकीर ने कहाः थोड़ा और आगे सोने की खदान है। और ऐसे कहानी चलती है। फिर और आगे हीरों की खदान है। और ऐसे कहानी चलती है। और एक दिन फकीर ने कहा कि नासमझ, अब तू हीरों पर ही रुक गया? अब तो उस लकड़हारे को भी बड़ी अकड़ आ गई, बड़ा धनी भी हो गया था, महल खड़े कर लिए थे। उसने कहाः अब छोड़ो, अब तुम मुझे परेशान न करो। अब हीरों के आगे क्या हो सकता है?
उस फकीर ने कहाः हीरों के आगे मैं हूं। तुझे यह कभी ख्याल नहीं आया कि
यह आदमी मस्त यहां बैठा है, जिसे पता है हीरों की खदान का, वह हीरे नहीं भर रहा है, इसको जरूर कुछ और आगे मिल गया होगा! हीरों से भी आगे इसके पास कुछ होगा, तुझे कभी यह सवाल नहीं उठा?
रोने लगा वह आदमी। सिर पटक दिया चरणों पर। कहा कि मैं कैसा मूढ़ हूं, मुझे यह सवाल ही नहीं आता। तुम जब बताते हो, तब मुझे याद आता है। यह तो मेरे जन्मों-जन्मों में नहीं आ सकता था ख्याल कि तुम्हारे पास हीरों से भी बड़ा कोई धन है। फकीर ने कहाः उसी धन का नाम ध्यान है। अब खूब तेरे पास धन है, अब धन की कोई जरूरत नहीं। अब जरा अपने भीतर की खदान खोद, जो सबसे आगे है।
यही मैं तुमसे कहता हूंः और आगे, और आगे। चलते ही जाना है। उस समय तक
मत रुकना जब तक कि सारे अनुभव शांत न हो जाएं। परमात्मा का अनुभव भी जब तक होता रहे, समझना दुई मौजूद है, द्वैत मौजूद है, देखनेवाला और दृश्य मौजूद है। जब वह अनुभव भी चला जाता है तब निर्विकल्प समाधि। तब सिर्फ दृश्य नहीं बचा, न द्रष्टा बचा, कोई भी नहीं बचा। एक सन्नाटा है, एक शून्य है। और उस शून्य में जलता है बोध का दीया। बस बोधमात्र, चिन्मात्र! वही परम है। वही परम-दशा है, वही समाधि है।

छठवां प्रश्नः मैं परमात्मा से मांगूं तो क्या मांगूं?

कुछ भी मांगोगे तो भूल हो जाएगी। न मांगो तो सबसे अच्छा। न मांगो तो श्रेष्ठतम। बिन मांगे मोती मिलें, मांगे मिले न चून। परमात्मा के द्वार पर भिखारी होकर क्यों जाओ? भिखारी होकर जाओगे तो वही मिलेगा जो मांगते हो। और कई बार बड़ी भूल हो जाती है, क्योंकि तुम मांगोगे भी तो वही जो तुम्हारी बुद्धि में समाता है। तुम मांगोगे भी क्षुद्र।
जरा सोचो, क्या मांगोगे? तुम वह तो मांग ही न सकोगे जो मांगना चाहिए, क्योंकि उसकी तो तुम्हें याद ही न आएगी। उसका तुम्हें कोई स्वाद ही नहीं है। और तब पछताओगे बहुत।
मैंने सुना, एक बहुत समृद्ध महिला अपने चिकित्सक के पास गई। बीमारी उसकी ठीक हो गई थी, चिकित्सक को उसकी फीस चुकाने गई थी। तो उसने एक बहुमूल्य रत्नजटित झोले में कुछ रखकर चिकित्सक को भेंट किया। चिकित्सक ने कहा कि यह तो ठीक है, लेकिन मेरी फीस का क्या? न तो चिकित्सक समझ सका कि रत्नजटित है, उसने तो समझा कि है बस कांच। कौन रत्नजटित झोले देता है भेंट! और यह महिला सस्ते में निकली जा रही है। उसने हिसाब लगा रखा था, कम-से-कम तीन सौ रुपये उसकी फीस थी। और यह झोला देकर ही बची जा रही है। तो उसने कहा कि झोला तो ठीक है, तुम्हारे प्रेम का उपहार स्वीकार करता हूं, लेकिन मेरी फीस का क्या? उस महिला ने पूछाः तुम्हारी फीस कितनी है? तो ज्यादा से ज्यादा जो वह बता सकता था, उसने कहा, तीन सौ रुपया।
उस महिला ने झोला खोला, उसमें कम-से-कम दस हजार के नोट थे, तीन सौ रुपये निकाल कर चिकित्सक को दे दिए, बाकी रुपये और झोला लेकर वह वापिस चली गई। अब उस चिकित्सक पर क्या गुजरी होगी, तुम सोचते हो! उस दिन के बाद बीमार ही हो गया होगा। उस दिन के बाद फिर उसकी चिकित्सा मुश्किल हो गई होगी। कितना न पछताया होगा! दस हजार रुपये लेकर आयी थी महिला देने और यह तो उसे बाद में पता चला मित्रों से कि वे कांच के टुकड़े न थे, हीरे-जवाहरात थे। मगर उसने सोचा था कि तीन सौ बहुत बड़ी-से-बड़ी फीस।

तुम मांगोगे भी तो क्या मांगोगे? तुम्हारी बड़ी से बड़ी मांग भी बड़ी छोटी-से-छोटी होगी, ख्याल रखना। इसलिए न मांगो तो अच्छा। वह जो दे, अहोभाव से स्वीकार कर लेना। फायदे में रहोगे। मांगोगे, नुकसान में पड़ोगे। और दुर्भाग्य ऐसा है कि शायद तुम्हें कभी पता भी नहीं चलेगा कि तुम्हें क्या मिल सकता था और क्या मांगकर तुम लौट आए! क्या पा सकते थे, पता भी न चलेगा। उस चिकित्सक को तो खैर पता भी चल गया, तो दुबारा ऐसी भूल न करेगा। मगर तुम्हें पता भी न चलेगा। कौन तुम्हें बताएगा?
पहली बात ख्याल रखोः प्रार्थना मांग नहीं बननी चाहिए। यद्यपि हमारी मूढ़ता के कारण प्रार्थना शब्द का अर्थ ही मांगना हो गया है। मांगनेवाले को हम प्रार्थी कहते हैं। क्योंकि हमने प्रार्थना को मांग ही मांग से भर दिया है। हम प्रार्थना ही तब करते हैं, जब हमें कुछ मांगना होता है। प्रार्थना में मांगो मत। दे सको तो दो। अपने को दे सको तो दो। अपने को उंडेल सको तो उंडेलो। मांगो मत। कठिनाई होगी बहुत, क्योंकि भिखमंगापन हमारे प्राणों का आधार बन गया है। जनम-जनम मांगा है। भिखमंगे तो मांगते ही हैं, सम्राट भी मांगते हैं और भिक्षमंगे हैं। मांग ही मांग चल रही है। लेकिन अगर असंभव ही हो और बिना मांगे रह ही न सको, तो फिर कुछ ऐसा मांगना जैसे कोई प्रेमी अपनी प्रेयसी से मांगता है, या कोई प्रेयसी अपने प्रेमी से मांगती है। क्या मांगती है? प्रेमी अपनी प्रेयसी से क्या मांगता है? प्रेम ही मांगता है। अगर परमात्मा से बिना मांगे न रह सको तो प्रेम मांगना। उसी को मांग लेना। मालिक मिल गया तो सब मिल गया। वह मिल गया तो सब मिल गया, उसका सब मिल गया। छोटी-छोटी चीजें क्या मांगना? उस एक को ही मांग लेना। और जब कोई प्रेमी अपनी प्रेयसी से कुछ मांगता है, तो मांग नहीं होती वह; उस मांग में भी स्तुति होती है, प्रशंसा होती है।

तेरी पेशानिए-रंगीं में झलकती है जो आग
तेरे रुखसार के फूलों में दमकती है जो आग
तेरे सीने में जवानी की दहकती है जो आग
जिंदगी की यह हसीं आग मुझे भी दे-दे
तेरी आंखों में फरोजां हैं जवानी के शरार
लबे-गुलरंग पै रक्सां हैं जवानी के शरार तेरी हर सांस में गलतां हैं जवानी के शरार जिंदगी की यह हसीं आग मुझे भी दे-दे
हर अदा में यह जवां आतिशे-ज.ज्बात की रौ
यह मचलते हुए शोले, यह तड़पती हुई लौ
आ मेरी रूह पै भी डाल दे अपना परतौ
जिंदगी की यह हसीं आग मुझे भी दे-दे
कितनी महरूम निगाहें हैं, तुझे क्या मालूम कितनी तरसी हुई बाहें हैं, तुझे क्या मालूम कैसी धुंधली मेरी राहें हैं, तुझे क्या मालूम जिंदगी की यह हसीं आग मुझे भी दे-दे
आ कि जुल्मत में कोई नूर का सामां कर लूं अपने तारीक शबिस्तां को शबिस्तां कर लूं
इस अंधेरे में कोई शमअ फरोजां कर लूं जिंदगी की यह हसीं आग मुझे भी दे-दे बारे-जुल्मात से सीने की फजा है बोझिल
न कोई सा.जे-तमन्ना, न कोई सो.जे-अमल
आ कि मशअल से तेरी मैं भी जला लूं मशअल
जिंदगी की यह हसीं आग मुझे भी दे-दे
प्रेमी प्रेयसी से मांग रहा हैः
तेरी पेशानिए-रंगीं में झलकती है जो आग!
तेरे मस्तिष्क पर जो रोशनी है, आभा है, जो आग है।
तेरे रुखसार के फूलों में दमकती है जो आग!
तेरे कपोलों के फूलों में वह जो रोशनी है, वह जो दीप्ति है! तेरे सीने में जवानी की दहकती है जो आग!

वह जो तेरे प्राणों में बहता हुआ यौवन है, बहता हुआ जीवन है।
जिंदगी की यह हसीं आग मुझे भी दे-दे!
यह सुंदर आग थोड़ी-सी मुझे भी दे-दे।
तेरी आंखों में फरोजां हैं जवानी के शरार!
तेरी आंखों में स्फुल्लिंग की तरह यौवन की दमक है, चमक है, अंगारे हैं।
लबे-गुलरंग पै रक्सा हैं जवानी के शरार!
तेरे ओंठों पर नृत्य हो रहा है यौवन का।
तेरी हर सांस में गलतां हैं जवानी के शरार।
और तेरी हर सांस जवानी की, यौवन की आंख से भरी है।
जिंदगी की यह हसीं आग मुझे भी दे-दे!
यह सुंदर आग, यह थोड़ी-सी लपट, यह थोड़ा जीवन मुझे भी दे-दे।
हर अदा में यह जवां आतिशे-जज्बात की रौ। यह मचलते हुए शोले, यह तड़पती हुई लौआ मेरी रूह पै भी डाल दे अपना परतौ
थोड़ी-सी छाया भर मेरी आत्मा पर भी डाल दे।
आ मेरी रूह पै भी डाल दे अपना परतौ! जिंदगी की यह हसीं आग मुझे भी दे- दे। कितनी महरूम निगाहें हैं, तुझे क्या मालूम!
मैं कितना अतृप्त हूं, मेरी आंखें कितनी प्यासी हैं!
कितनी महरूम निगाहें हैं, तुझे क्या मालूम!
कितनी तरसी हुई बाहें हैं, तुझे क्या मालूम!
आ, मेरे आलिंगन में आ जा!
कितनी महरूम निगाहें हैं, तुझे क्या मालूम! कितनी तरसी हुई बाहें हैं, तुझे क्या मालूम! कैसी धुंधली मेरी राहें हैं, तुझे क्या मालूम! जिंदगी की यह हसीं आग मुझे भी दे-दे।
थोड़ा-सा प्रसाद मुझे भी मिल जाए कि मेरे अंधेरे रास्ते पर थोड़ी रोशनी
हो जाए। मेरी खाली बाहें भर जाएं। मेरी आंखों की प्यास बुझ जाए।
आ कि जुल्मत में कोई नूर का सामां कर लूं
आ जा! कि मैं अंधेरे में थोड़ा प्रकाश का इंतजाम कर लूं।
आ कि जुल्मत में कोई नूर का सामां कर लूं
अपने तारीक शबिस्तां को शबिस्तां कर लूं
इस उजड़े हुए घर को बसा लूं। इस खाली घर को बसा लूं।
इस अंधेरे में कोई शमअ फरोजां कर लूं।
यह बहुत अंधेरा है। यहां बहुत अंधेरा है। एक शमा जल जाए।
जिंदगी की यह हसीं आग मुझे भी दे-दे।
बारे-जुल्मात से सीने की फजा है बोझिल।
अंधकार से दबा जाता हूं, अंधकार से बोझिल हूं, अंधकार की अधिकता से बोझिल हूं।
बारे-जुल्मात से सीने की फजा है बोझिल।
न कोई सा.जे-तमन्ना, न कोई सो.जे-अमल
न तो कोई अभिलाषा बची, न कोई आकांक्षा बची, न कोई जिंदगी में रस बहता मालूम होता है।
आ कि मशअल से तेरी मैं भी जला लूं मशअल।
तेरी मशाल को मेरे करीब ले आ, ताकि मेरी बुझी मशाल फिर से जल जाए।
जिंदगी की यह हसीं आग मुझे भी दे-दे।
अगर मांगना ही हो... पहले तो कहता हूं मांगो न तो अच्छा। अगर बिना मांगे रह ही न सको तो उसी तरह मांगना जैसे प्रेमी प्रेयसी से मांगता है।
उसकी मांग में भी प्रेयसी की सिर्फ प्रशंसा का गीत है। मांग उसकी मांग नहीं है; मांग उसकी स्तुति है। मांग उसकी सच में ही प्रार्थना है। तुम्हारी प्रार्थना भी मांग होती है। और प्रेमी की मांग भी प्रार्थना होती है। मांग सको तो घटना घटती है--मगर ठीक से मांग सको तो! ठीक-ठीक मांग सको तो! जरा से में चूक हो जाती है। न मांगो तो सुनिश्चित घटना घटती है; चूक हो ही नहीं सकती।
जिसने मांगा ही नहीं है, उससे भूल कैसे होगी? वह तो सिर्फ हृदय खोलकर
जो भी घटे उसे लेने को राजी है। जो भी पात्र में गिर जाए! मिले तो प्रसन्न

है, न मिले तो प्रसन्न है। न मिले तो भी वह जानता है कि अभी ऐसी घड़ी होगी कि नहीं मुझे मिलना चाहिए, इसी में मेरा हित होगा, इसलिए नहीं मिला है। वह हर हाल राजी है।
और या फिर प्रेमी की तरह मांगो। मगर उसमें कभी भूल हो सकती है; उसमें बड़ी सावधानी बरतनी पड़ेगी। या तो शून्य भाव से बैठो, श्रेष्ठतम; या फिर प्रेम-भाव से बैठो, वह नंबर दो।

चांद तारों की हसीं छांव में मेरे दिल तक
नूरो-निकहत की कोई मौज बढ़ी आती है
सरसराती हुई फूलों से गुजरती है सबा
तेरी आहट, तेरी आवाज चली आती है
सांस में देर से कलियों की चटक है पैदा
आप इक फूल की मानिंद खिला जाता हूं
हाय यह कैफ, कि मुमकिन ही नहीं तेरे बगैर दिल धड़कता है तो मदहोश हुआ जाता हूं अपने बरबत के जरा तार मिला ले ऐ दिल!
उसके आने पै कोई गीत तो गाना होगा
लहजा-लहजा कोई पुर सहर न.जर उठेगी
लमहा-लमहा कोई जादू का फसाना होगा
कैसी नग्मों में मेरी रूह घुटी जाती है
अब तो न.जदीक ही छागल की सदा आती है
काश, तुम शून्य होकर बैठ सको तो उसके पैरों में बंधे हुए घूंघर जल्दी
ही तुम्हें सुनायी पड़ने लगें।

कैसी नग्मों में मेरी रूह घुटी जाती हैअब तो न.जदीक ही छागल की सदा आती हैचांद तारों की हसीं छांव में मेरे दिल तकनूरो-निकहत की कोई मौज बढ़ी आती है
तूफान आता है--सौंदर्य का, आनंद का। तूफान की तरह आता है परमात्मा। छोटी-छोटी बूंदाबांदी नहीं होती, मूसलाधार वर्षा होती है। मगर तुम शून्य होओ।

चांद-तारों की हसीं छांव में मेरे दिल तकनूरो-निकहत की कोई मौज बढ़ी आती हैसरसराती हुई फूलों से गुजरती है सबातेरी आहट तेरी आवाज चली आती है और फिर तो वृक्षों से गुजरती हुई हवा में भी उसकी ही आहट मालूम होगी। फिर तो तुम जहां जाओगे, जहां देखोगे, वहीं उसकी पगध्वनि सुनाई पड़ने लगेगी। सांस में देर से कलियों की चटक है पैदा
और तुम्हारी श्वास-श्वास में कलियां चटकने लगेंगी।
आप इक फूल की मानिंद खिला जाता हूं!
मांगो मत, बिन मांगे बहुत मिलता है और जब परमात्मा बरसेगा, तुम फूल की तरह खिल जाओगे।
सांस में देर से कलियों की चटक है पैदाआप इक फूल की मानिंद खिला जाता हूं! हाय यह कैफ...
यह आनंद इतना ज्यादा है, सम्हाले नहीं सम्हलता।
हाय यह कैफ, कि मुमकिन ही नहीं तेरे बगैर।
एक बात निश्चित है कि यह तो इतना आनंद बरस रहा है, तू जरूर ही पास होगा, क्योंकि तेरे बिना यह मुमकिन ही नहीं है।
हाय यह कैफ, कि मुमकिन ही नहीं तेरे बगैर दिल धड़कता है तो मदहोश हुआ जाता हूं अपने बरबत के जरा तार मिला ले ऐ दिल!
अपनी वीणा के, अपनी हृदय की वीणा के तार मिलाकर रखो।

अपने बरबत के जरा तार मिला ले ऐ दिल! उसके आने पै कोई गीत तो गाना होगा लहजा-लहजा कोई पुर सहर नजर उठेगी लमहा-लमहा कोई जादू का फसाना होगा कैसी नग्मों में मेरी रूह घुटी जाती हैअब तो नजदीक ही छागल की सदा आती है
आज इतना ही।

मरौ हे जोगी मरौ
सत्रहवां प्रवचन

सबद भया उजियाला

ओम सबदहि सबदहि कूंची, सबद भया उजियाला।
कांटा सेती कांटा शूटे, कूंची सेती ताला।।
सिद्ध मिलै तो साधिक निपजै, जब घटि होय उजाला।।
सबद हमारा शड़तर शाड़ा, रहणि हमारी सांची।
लेषै लिषी न कागद माडी, सो पत्री हम बांची।।
सबद बिंदौ रे अवधू सबद बिंदौ, थांन-मांन सब धंधा।
आतम मधै प्रमातमां दीषै, ज्यों जल मधे चंदा।।
च्यंत अच्यंत ही उपजै, च्यंता सब जग शीण।
जोगी च्यंता बीसरै, तो होइ अच्यंतहि लीन।।
सुणौ हो देवल तजौ जंजालं। अमिय पीवत तब होइबा बालं।
ब्रह्म अगनि सींचत मूल। फूल्या फूल कली फिरि फूल।।
अधरा धरै बिचारिया, धर याही मैं सोई।
धर-अधर परचा हूवा, तब दुतीया नाहीं कोई।।
सुरति गहौ संसय जिनि लागौ, पूंजी हांन न होई।
एक तत सूं एता निपजै, टार्या टरै न सोई।।
निहिचा हवै तो नेरा निपजै, भया भरोसा नेरा।
परचा हवै ततषिन निपजै, नहींतर सहज नवेरा।।
अवधू सहजै लैणा सहजै दैणा, सहजे प्रीति ल्यौ लाई।
सहजै सहजै चलेगा रे अवधू, तो बासण करेगा समाई।।

ज्योति के पायल बजे, जागो प्रभात!

शब्द-पंछी मुक्त हो स्वर-पंख उकसाने लगे,
प्राण में नव चेतना के गान लहराने लगे,
स्वप्न के चिर सत्य की बजने लगीं शहनाइयां, प्यार के विश्वास-पंथी लो निलय आने लगे। खोलती पांखें कली सुधि की मदिर अभिजात! ज्योति के पायल बजे, जागो प्रभात!

फूल की मुस्कान पर संगीत सा जुटने लगा,
सब कहीं कुमकुम पवन की सांस पर लुटने लगा, आ रही है भैरवी की ध्वनि गगन के छोर से, आज धरती से तिमिर का राज लो उठने लगा। तुम अभी सोये, उषा आयी लिये सौगात! ज्योति के पायल बजे, जागो प्रभात!

ज्वार की फेनिल तरंगों पर जलधि मुसका रहा,
बांसुरी पर दूर मांझी नवप्रभाती गा रहा,
वह अकेली झील नीली ले रही अंगड़ाइयां,
देवदारु प्रमत्त जिसको चूमने सा जा रहा।
लहर पर बिछले कि जिसके मसृण चिकने पात!
ज्योति के पायल बजे, जागो प्रभात!

जो जागे हैं, उन्होंने भीतर ज्योति ही नहीं पायी है, वरन संगीतपूर्ण ज्योति पायी! उन्होंने ज्योति और संगीत का समन्वय पाया। अंतस को प्रकाश से भरा हुआ देखा, इतना ही नहीं; प्रकाश स्वरपूर्ण था, बोलता था, नाचता था। प्रकाश के पैरों में घूंघर भी बंधे थे! प्रकाश के हाथ में वीणा भी थी! प्रकाश सूना-सूना नहीं था, संगीत से आपूर था!

जिस दिन अंतरात्मा में प्रवेश होता है, तो ये दोनों घटनाएं एक साथ घटती हैं। वह अनुभव केवल दर्शन नहीं है, श्रवण भी है। उसमें आंख का भी उतना ही हाथ होता है जितना कान का।
आंख और कान मनुष्य के भीतर छिपे हुए दुई के प्रतीक हैं। आंख है पुरुष
का प्रतीक, कान है स्त्री का प्रतीक। इसलिए आंख हमला कर सकती है, कान हमला नहीं कर सकता। आंख का हमला जब होता है, तभी तो हम किसी आदमी को लुच्चा कहते हैं। लुच्चे का अर्थ होता है, जिसने आंख से हमला किया। लुच्चा शब्द बना है लोचन से, आंख से। लेकिन तुमने कभी कान से किसी पर हमला करते देखा किसी को? यह असंभव है।
बलात्कार पुरुष के साथ नहीं हो सकता, स्त्री के साथ ही हो सकता है। आंख बलात्कार कर सकती है, कान बलात्कार नहीं कर सकता। आंख का अनुभव पुरुष का अनुभव है। और चूंकि शास्त्र पुरुषों ने लिखे, इसलिए उन्होंने ज्ञानियों को द्रष्टा कहा, श्रोता नहीं। पुरुष अपने ही शब्दों का उपयोग करेगा; परमात्मा को पुरुष कहेगा, स्त्री नहीं; और ज्ञानी को द्रष्टा कहेगा, श्रोता नहीं।
आंख आक्रामक है; यह पुरुष-ऊर्जा है। कान ग्राहक है; सिर्फ स्वीकार करता है। कान एक गर्भ है। यह स्त्री-ऊर्जा है। मुझ से यदि पूछो तो वह जो परम अनुभव है, द्रष्टा और श्रोता का मिलन है वहां। वहां आंख और कान एक हो जाते हैं। वहां आंख सुनती है, कान देखते हैं। वहां अपूर्व तिलिस्म घटित होता है। वहां प्रकाश भी है, लेकिन प्रकाश मुर्दा नहीं है, नाचता हुआ है। प्रकाश के हाथों में बांसुरी है--प्रकाश बज रहा है! प्रकाश छंद-बद्ध है! इस छंदबद्धता की प्रतीति को ही शब्द कहा है, नाद कहा है, ओंकार कहा है। शब्द, और ज्योतिर्मय! संगीत, और आभा से परिपूर्ण, प्रदीप्त!
अभी तो तुम्हें कल्पना ही करनी पड़ेगी, तुम्हें ऐसा कोई अनुभव नहीं है। संगीत भी तुमने जाना है, लेकिन संगीत में प्रकाश नहीं देखा। और प्रकाश भी तुमने देखा है, लेकिन प्रकाश में कभी संगीत अनुभव नहीं किया। इंद्रियां जो भी अनुभव देती हैं, वे आंशिक होते हैं। अतींद्रिय अनुभव पूर्ण होता है। उसमें सारी इंद्रियां ऐसे ही डूब जाती हैं, जैसे सागर में सारी नदियां डूब जाती हैं। यह तो मैंने प्रतीक की बात कही; क्योंकि ये दो इंद्रियां प्रमुख इंद्रियां हैं। बाकी तीन इंद्रियां और हैं तुम्हारे पास। उनका भी दान होता है। इसलिए परमात्मा का अनुभव न केवल प्रकाश है, न केवल स्वर है--स्वाद भी है, गंध भी है, स्पर्श भी है। तुम्हारी सारी इंद्रियां अपने सारे अनुभव को उसमें डाल देती हैं। वह तुम्हारी सारी इंद्रियों का संयुक्त अनुभव है।
जब इंद्रियां बाहर की तरफ जाती हैं, अलग-अलग हो जाती हैं। जैसे कि तुम किसी वर्तुल के केंद्र से रेखाएं खींचो परिधि की तरफ, तो जैसे-जैसे वे परिधि की तरफ बढ़ेंगी, एक-दूसरे से अलग होने लगेंगी। और अगर तुम परिधि से केंद्र की तरफ रेखाएं खींचो, तो जैसे-जैसे केंद्र की तरफ आने लगेंगी, वैसे- वैसे करीब होने लगेंगी; केंद्र पर आकर एक हो जायेंगी।
उस केंद्र का नाम आत्मा है, जिस पर सारी इंद्रियां एक हैं।
दूर जाओगे, बाहर जाओगे, तो इंद्रियां अलग-अलग होने लगेंगी--कान अलग, आंख अलग, नाक अलग--सब अलग-अलग हो जायेंगे। इंद्रियां एक तरह की विशेषज्ञ हैं। आंख सिर्फ देखती है, कान सिर्फ सुनता है। लेकिन जब तुम केंद्र पर आओगे, तो वहां देखनेवाला भी है, सुननेवाला भी है, स्वाद लेनेवाला भी है। वहां सारी इंद्रियों का राजा है। वहां सारी इंद्रियों का मालिक है। उस मालिक की सारी क्षमताएं... ।
इसलिए समाधि का अनुभव अमृत का स्वाद है। समाधि का अनुभव उस अनंत की सुवास है। समाधि का अनुभव आलिंगन है। समाधि का अनुभव प्रकाश के तूफान का बरस जाना है। और समाधि का अनुभव अनाहत का नाद है। सारी इंद्रियां अपना सब कुछ निछावर कर देती हैं। सारी इंद्रियों के अनुभव का जोड़ निश्चित ही अपूर्व होगा। उसकी तुम कल्पना ही कर सकोगे अभी। लेकिन कल्पना भी हृदय को तरंगित कर देगी। कल्पना भी हृदय में आवेश जगा देगी, प्यास जगा देगी।
फिर भिन्न-भिन्न अनुभोक्ताओं ने भिन्न-भिन्न वर्णन किये; वे उन पर निर्भर करते हैं। सभी के पास संगीत वाला कान नहीं होता। और सभी के पास ऐसी

आंख नहीं होती जैसी चित्रकार के पास होती है। चित्रकार के पास ऊपर से तो ऐसी ही आंख होती है जैसी तुम्हारे पास, लेकिन चित्रकार बहुत गहरे में देखता है। उसे वे रंग दिखाई पड़ते हैं जो तुम्हें कभी दिखाई नहीं पड़े हैं। उसे रंगों की बारीकियां दिखाई पड़ती हैं--सूक्ष्मताएं। तुम देखते हो तो सारा बगीचा हरा दिखाई पड़ता है, उसे हरे में भी कई भेद दिखाई पड़ते हैं। अशोक के पत्तों की हरियाली आम के पत्तों की हरियाली से बड़ी भिन्न है। एक-सी नहीं है हरियाली; हरियाली हरियाली में बड़ी आभा के भेद हैं। जब चित्रकार देखता है, तो उसे अनेक हरे रंग दिखायी पड़ते हैं, उसे सूक्ष्मताएं दिखायी पड़ती हैं, जरा-जरा से भेद दिखाई पड़ते हैं। जब संगीतज्ञ सुनता है तो उसे स्वर की बारीकियां सुनाई पड़ती हैं; इतना ही नहीं, जो परम संगीतज्ञ है उसे स्वर का अभाव भी सुनाई पड़ता है। उसे शून्यता भी सुनाई पड़ती है। उसे दो स्वरों के बीच का अंतराल भी सुनाई पड़ता है।
सूरदास जैसे व्यक्ति को जब आत्मानुभव होगा, तो स्वभावतः उसमें वर्णन प्रकाश का नहीं होगा, नाद का होगा। यह स्वाभाविक है। उनके पास नाद की प्रगाढ़ क्षमता है।
तो अनुभव तो सारी इंद्रियों का जोड़ होगा, लेकिन जब तुम बोलोगे अनुभव को, तो तुम्हारी जो इंद्रिय सर्वाधिक प्रबल है, उसी इंद्रिय की भाषा में तुम बोलोगे। मनुष्य की आंख सर्वाधिक उपयोगी रही है। जीवन में बिना कान के चल जाये, बिना हाथ के भी चल जाये, बिना नाक के तो मजे से चल जाता है, कोई अड़चन नहीं आती; लेकिन बिना आंख बड़ी मुश्किल हो जाती है। जीवन का अस्सी प्रतिशत आंख पर निर्भर है। इसलिए बहरे आदमी को देख कर तुम्हें उतनी दया नहीं आती जितनी अंधे आदमी को देख कर दया आती है, क्योंकि उसका अस्सी प्रतिशत जीवन छिन गया है!
चूंकि आंख सर्वाधिक महत्वपूर्ण है जीवन के अनुभव में, इसलिए अधिक ने परमात्मा का वर्णन प्रकाश की तरह किया है। गोरख परमात्मा का वर्णन शब्द की तरह करते हैं। उनके पास एक संगीतज्ञ का हृदय रहा होगा, निश्चित ही; उनके पद इसके गवाह हैं, गवाही हैं। एक-एक शब्द रसपूर्ण है। एक-एक शब्द काव्यपूर्ण है। और काव्य भी ऐसा नहीं है कि आयोजित हो, सहज प्रवाहित हुआ काव्य है। कोई गोरख कवि नहीं हैं, लेकिन अनुभव इतना रसपूर्ण हुआ है कि उसके कारण कविता अपने से बन गयी है। अनुभव से कविता बनी है, कविता बनायी नहीं गयी है। मात्राएं, छंद, व्यवस्था बिठाई नहीं गयी है; लेकिन भीतर इतना छंदपूर्ण अनुभव हुआ है, ऐसे संगीत का आविर्भाव हुआ है कि उसके आविर्भाव के कारण ही शब्दों में सौंदर्य आ गया है, रस आ गया है, छंद आ गया है।
ओम सबदहि सबदहि कूंची!
कहते हैं, ओम ही सब कुछ है। वही शब्दों का शब्द है। वही स्रोत है, जहां
से सारे शब्दों का जन्म हुआ है।
सबद भया उजियाला।
और यह सूत्र बड़ा अदभुत है! बहुत कम संतों में मिलेगा। सबदहि भया उजियाला। संगीत जगा है, ओंकार का नाद पैदा हुआ है, लेकिन शब्द ज्योतिर्मय है! जैसे हर शब्द के भीतर उजियाला हो। जैसे हर शब्द के प्राण पर ज्योति जगमगाती हो। जैसे हर शब्द एक दीया हो! राग ही नहीं बज रहा है, राग के भीतर से रोशनी भी प्रगट हो रही है!
ओम सबदहि सबदहि कूंची, सबद भया उजियाला।
कांटा सेती कांटा शूटे, कूंची सेती ताला।
और जैसे कांटे से कांटा निकल जाता है, ऐसे ही इस शब्द के जन्मने के साथ
ही और सब शब्द निकल गये। और जो भीड़-भाड़ थी शब्दों की, सिद्धांतों की, शास्त्रों की, इस एक शब्द के आने से सब गयी। एक ओंकार में सब लीन हो गया। इस एक के हाथ लग जाने से, ताला खुल गया! जीवन का रहस्य अब रहस्य नहीं है, अब अनुभव है। अब जीवन के रहस्य पर कोई घूंघट नहीं है; घूंघट हट गया। देख लिया जीवन का जो अंर्ततम है।
सिद्ध मिलै तो साधिक निपजै, जब घटि होय उजाला।।
और कहते हैं कि जब तुम्हें कुछ किसी सौभाग्य से, किसी पुण्य से, किसी सिद्ध से मिलन हो जायेगा, तभी तुम्हारे भीतर वास्तविक साधक का जन्म होगा।
लोग उल्टा सोचते हैं। लोग सोचते हैं--हम साधक हैं, इसलिए सिद्ध की तलाश कर

रहे हैं; हम शिष्य हैं, इसलिए गुरु की तलाश कर रहे हैं। असलियत में बात उल्टी है। गुरु मिलेगा, तो तुम शिष्य बनोगे। और सिद्ध मिलेगा, तो तुम्हारे भीतर साधना पैदा होगी। क्यों? क्योंकि जब तक तुम्हें ऐसा व्यक्ति न मिल जाये जिसने जाना हो, जीया हो, स्वाद लिया हो, तब तक तुम्हारे भीतर कौन उठायेगा प्यास? कौन तुम्हें जगायेगा? कौन तुम्हें पुकारेगा? जिसने कभी देखा ही न हो कुछ भीतर, उसे भीतर की याद भी कैसे आये? असंभव है। जिसने भीतर कुछ अनुभव न किया हो, उसे भीतर जाने का सवाल भी नहीं उठता। वह तो बाहर-ही- बाहर घूमता है। वह तो बाहर-ही-बाहर प्रतीक्षा करता है।

व्यर्थ ही प्रतीक्षा में रात भर खुला था जो
एक द्वार कलिका का, एक द्वार मेरा था।
रात भर बही पुरवा, रात भर खिले तारे,
रात भर रहे बहते अश्रु दर्द के मारे!
रात भर गया गूंथा, पर बिखर गया था जो,
एक हार अंबर का, एक हार मेरा था।
व्यर्थ ही प्रतीक्षा में रात भर खुला था जो एक द्वार कलिका का, एक द्वार मेरा था। कूक-कूक उठती थी कुंज में विकल कोयल, झूम-झूम उठता था गंध का चपल आंचल।
मौन थे खड़े पर्वत, मौन प्राण की बस्ती,
एक भार धरती का, एक भार मेरा था।
व्यर्थ ही प्रतीक्षा में रात भर खुला था जो एक द्वार कलिका का, एक द्वार मेरा था।
क्या कहूं मधुर कितना राग का जमाना था,
हर घड़ी नये स्वर थे, हर घड़ी तराना था।
दर्द को समेटे जो चुप रहा उनींदा-सा,
एक तार वीणा का, एक तार मेरा था।
व्यर्थ ही प्रतीक्षा में रात भर खुला था जो, एक द्वार कलिका का, एक द्वार मेरा था।
फूल पर किरण लिखती रूप की कहानी थी,
चांद की जवानी पर कल बड़ी जवानी थी।
चूर-चूर टकराकर जो हुआ किनारों से
एक प्यार सागर का, एक प्यार मेरा था!
व्यर्थ ही प्रतीक्षा में रात भर खुला था जो,
एक द्वार कलिका का, एक द्वार मेरा था!
जन्मों-जन्मों से बाहर की तरफ प्रतीक्षा कर रहे हो। द्वार-दरवाजे खोले किसकी प्रतीक्षा कर रहे हो? न वह कभी आया, न कभी आयेगा। और जिसे तुम देख रहे हो बाहर टकटकी बांधे, वह भीतर मौजूद है। तुम जिसे खोजने चले हो, वह खोजनेवाले में छिपा है। लेकिन कौन तुम्हें जगाये तुम्हारे प्रति? कौन तुम्हें झकझोरे? कोई जो स्वयं जागा हो! सिद्ध ही मिले, तो तुम साधक हो सको। गोरख ठीक कहते हैंः
सिद्ध मिलै तो साधिक निपजै, जब घटि होय उजाला।।
और जब तक तुम्हारे भीतर साधक का ही जन्म नहीं हुआ है, तो सिद्ध होने की
तो बात बहुत दूर। तो तुम्हारे भीतर उजियाले की बात तो बहुत दूर। किसी उजियाले से भरे आदमी से संग-साथ जोड़ लो। किसी उजियाले से भरे आदमी के साथ भांवर पाड़ लो, विवाह रचा लो। यही है गुरु और शिष्य का संबंध। यही है साधक और सिद्ध का संबंध। कोई जो जग गया, जगा सकता है उसे, जो सोया है। कोई जो भर गया, भर सकता है उसे, जो अभी खाली है।
सबद हमारा शड़तर शाड़ा।
लेकिन ख्याल रखना, सिद्धों के पास होना आसान मामला नहीं है। उनके शब्द तलवारों की तरह होते हैं। उनके शब्द चोट करते हैं। वे चोट न करें तो तुम्हें जगा भी न सकेंगे। सिद्धों के शब्द मलहम-पट्टी नहीं करते और तुम मलहम-पट्टी की तलाश में होते हो; इसलिए तुम सिद्धों से चूक जाते हो। और दो कौड़ी के लोगों के हाथ के शिकार हो जाते हो--पंडित-पुरोहित, जिन्होंने खुद

भी कुछ जाना नहीं है। लेकिन एक बात वे जानते हैं, उन्हें तुम्हारी आकांक्षा का पता है कि तुम क्या खोज रहे हो। उन्हें पता है कि तुम सांत्वना खोज रहे हो, सत्य नहीं। भला तुम लाख कहो कि मैं सत्य खोज रहा हूं, तुम खोज रहे हो सांत्वना। तुम डरे हो, भयभीत हो। मौत आती है, तुम्हारे पैर कंप रहे हैं! रोज मौत घटती है, रोज कोई मरता है, रोज अर्थी उठती है, और हर बार तुम्हें झकझोर जाती है। तुम डरे हो। तुम सोचते हो, आगे का कुछ इंतजाम कर लूं।
तुम सांत्वना चाहते हो। तुम चाहते हो कोई तुम्हें भरोसा दिला दे कि तुम रहोगे, आगे भी रहोगे, मिट न जाओगे। शरीर ही छूटेगा, आत्मा बचेगी--ऐसा कोई तुम्हें समझा दे। कोई तुम्हें सिद्धांत पकड़ा दे, कोई तुम्हें विश्वास दे दे। कोई तुम्हें थोथे सिद्धांतों की आड़ में सुरक्षित कर दे। कोई कह दे कि इतनी पूजा कर लो रोज, कि इतना पुण्य कर देना, कि गंगा-स्नान कर आना, कि सब ठीक हो जायेगा। कोई सस्ता-सा, सुगम-सा उपाय बता दे। जागना भी न पड़े। क्योंकि जागना महंगा सौदा है। जागने के लिए मरना होता है।
तुमने जिसे अभी तक जिंदगी जाना है, वह जिंदगी छूटेगी अगर जागना चाहोगे। वही है मृत्यु का अर्थ। तुमने जिसे जिंदगी जाना वह जायेगी। तभी वह जिंदगी आयेगी जिससे तुम अभी परिचित नहीं हो। एक जिंदगी जाये तो दूसरी जिंदगी आये। जैसे तुम हो ऐसे मर जाओ, तो तुम वैसे पैदा होओ जैसे तुम्हें होना चाहिए।
मरौ हे जोगी मरौ, मरौ मरण है मीठा।
तिस मरणी मरौ, जिस मरणी मरि गोरष दीठा।।
कौन-सी मृत्यु से अनुभव होगा? एक तुमने जिंदगी बना ली है--व्यर्थ की; जिसका कोई मूल्य नहीं है। ऊपर-ऊपर से... कागज की! उसी को तुम जिंदगी मानते हो। तुम उसी जिंदगी की सुरक्षा मांगते हो। और जब तुम सिद्ध के पास जाओगे, तुम्हारी सुरक्षाएं छीन ली जायेंगी। तुम्हारी नावें कागज की हैं, डुबा दी जायेंगी। और तुम्हारे भवन रेत पर खड़े हैं, गिरा दिये जायेंगे। और तुम्हारे सारे आकांक्षाओं के, अभीप्साओं के जाल ताश के पत्तों के महल हैं; सिद्ध की एक चोट, और सारे महल भूमिसात हो जायेंगे।
इसलिए सिद्धों से लोग बचते हैं, डरते हैं; पंडितों के पास जाते हैं। पंडित तुम्हें सांत्वना देता है। सिद्ध की जरा उत्सुकता नहीं तुम्हें सांत्वना देने में, क्योंकि सांत्वनाओं के कारण ही तो तुम अब तक उलझे हो, भटके हो। सांत्वनाओं के जहर ने ही तो तुम्हें मारा है। मगर सिद्ध की बात कड़वी मालूम पड़ेगी।
कबीर ने कहा हैः कबिरा खड़ा बाजार में, लिये लुकाठी हाथ। कि मैं लट्ठ लिये बाजार में खड़ा हूं। लिए लुकाठी हाथ! जो घर बारै आपना, चलै हमारै साथ। जिसकी तैयारी हो, अपना घर राख कर देने की, वह आ जाये, हमारे पीछे हो ले। और वह लुकाठी ऐसे ही नहीं लिए हैं, वह तुम्हारे सिर पर पड़ेगी। वह लुकाठी ऐसे कोई टेक-टेक कर चलने के लिए नहीं है, सिद्ध को अब टेक-टेक कर चलने का सवाल ही न रहा। उसे कहीं चलना ही नहीं, वह तो पहुंच गया! वह जो लुकाठी है, वह तुम्हारे सिर पर पड़ेगी!
सबद हमारा शड़तर शाड़ा।
गोरख कहते हैंः शब्द हमारा कड़वा है, खड्ग की धार जैसा है।
रहणि हमारी सांची।
और हम किन्हीं आदर्शों के अनुसार नहीं जी रहे हैं; हम तो वैसे ही जी रहे हैं जैसा परमात्मा ने हमें बनाया है--प्रामाणिक! समझना, यह शब्द मूल्यवान है!

यह शायरी शायरी नहीं है--
रजज की आवाज,
बादलों की गरज है,
तूफान की सदा है!
कि जिसको सुनकर--
पहाड़ आते हैं सब्ज माथों पर बर्फ की कलगियां लगाये, धुओं के बालों में सुर्ख शोलों के हार गूंथे।

समंदर आते हैं झाग की झांझनें बजाते
घटाएं आती हैं बिजलियों पर सवार होकर
यह शायरी शायरी नहीं है।
ये कोई कविताएं नहीं हैं जो हम यहां पढ़ रहे हैं।
यह शायरी शायरी नहीं है--
रजज की आवाज,
बादलों की गरज है,
तूफान की सदा है!
गोरख जैसे व्यक्ति जब बोलते हैं, तो यह बादलों की गरज है। रजज की आवाज,
तूफान की सदा है!
यह रणभेरी की आवाज है!
कि जिसको सुनकर--
पहाड़ आते हैं सब्ज माथों पर बर्फ की कलगियां लगाये,
धुओं के बालों में सुर्ख शोलों के हार गूंथे।
समंदर आते हैं झाग की झांझनें बजाते
घटाएं आती हैं बिजलियों पर सवार होकर

यह रणभेरी है! यह एक अंतर-युद्ध के लिए पुकार है। जो खड्ग की धार पर चलने को राजी हों, वे ही सिद्धों से दोस्ती कर सकते हैं।
कम-निगाहों को मैं अंदाजे-नजर देता हूं
बे-सहर रात को भी रंगे-सहर देता हूं
बदगुमां मुझसे खिजां हैं तो खफा वीराने हैं
आमदे-फसले-बहारां की खबर देता हूं
इश्क का नगमा जुनूं के साज पर गाते हैं हम
अपने गम की आंच से पत्थर को पिघलाते हैं हम जिंदगी को हमसे बढ़कर कौन कर सकता है प्यार और अगर मरने पर आ जायें तो मर जाते हैं हम दफ्न होकर खाक में भी दफ्न रह सकते नहीं लाल-ओ-गुल बन के दीवारों पर छा जाते हैं हम मैं रात की गोद में
सितारे नहीं,
शरारे बखेरता हूं!
सहर के दिल में--
जो अपने अश्कों से
बो रहा हूं,
बगावतें हैं।

फकीर बगावतें बोते हैं। उनके बीज बगावतों के बीज हैं। वे क्रांतियां उगाते हैं। वे क्रांतियों की फसलें काटते हैं। इसलिए जो तैयार हो सिर कटाने को, वही सिद्धों के साथ हो सकता है, जो मरने को राजी हो, जो अपनी सूली को अपने कंधे पर ले कर आये!
सबद हमारा शड़तर शाड़ा, रहणि हमारी सांची।
शब्द हमारे कठोर हैं; तुम्हें तिलमिलायेंगे, तुम्हें जलायेंगे, तुम्हारे भीतर अंगारों की तरह पड़ जायेंगे। शब्द कठोर हैं। उन्हें होना ही पड़ेगा कठोर, क्योंकि तुम मीठे-मीठे शब्दों के जहर में खूब खो गये हो। तुम सांत्वनाओं की चादरों पर चादरें ओढ़े बैठे हो। उनके ही कारण जिंदगी को समझना मुश्किल होता जा रहा है।
जार्ज गुरजिएफ कहता था, कि जैसे रेलगाड़ी के दो डब्बों के बीच में बफर लगे होते हैं, ताकि अगर टकराहट हो जाये, कुछ हो जाये, तो डब्बे एक-दूसरे से धक्के न खायें। कारों के नीचे स्प्रिंग लगे होते हैं, ताकि रास्तों के गड्ढों का, कार में बैठे आदमी को पता न चले। ऐसी ही हालत आदमी की है। सांत्वनाओं के स्प्रिंग लगा रखे हैं उसने अपने चारों तरफ, बफर लगा रखे हैं। जिंदगी में तकलीफें आती हैं, मुसीबतें आती हैं; बफर पी जाते हैं!

जिंदगी में गड्ढे बहुत हैं, मगर स्प्रिंग सम्हाल लेते हैं। और जो जिंदगी से इस तरह सम्हल-सम्हल कर गुजर जाता है, वह जगेगा कैसे; उसने तो सोने का पूरा आयोजन कर रखा है। फकीर उसे हिलाते हैं, उसके बफर तोड़ देते हैं, उसके स्प्रिंग छीन लेते हैं। उसे जिंदगी के गड्ढों का ठीक-ठीक दर्शन कराते हैं। उसे जिंदगी के दुख का पूरा बोध हो जाये, जिंदगी मौत में जा रही है, इसकी उसे प्रतीति हो जाये, तो ही सत्य की खोज शुरू होगी, अन्यथा सत्य की खोज शुरू नहीं होती है। सब भ्रम टूटें तो ही तुम सिद्ध की तलाश में निकलोगे। तुम्हारे सब स्वप्न भंग हों, तभी तुम आंखें खोलने को राजी होओगे। जब तक मीठे-मीठे सपने चलते हैं और सपनों में तुम देखते हो कि तुम सम्राट हो और सोने के तुम्हारे महल हैं, और परियों जैसी तुम्हारी पत्नियां हैं, तब तक तुम कैसे आंखें खोलोगे? कोई आंख खोलेगा तुम्हारी, तो दुश्मन मालूम होगा!
गुरु दुश्मन मालूम होता है। इसीलिए तो जीसस को सूली दी तुमने। इसीलिए
तो मंसूर को मारा। इसीलिए तो सुकरात को जहर पिलाया। यह तुम्हारी तरफ से सत्कार है उनका! उनके शब्द कठोर रहे। उन्होंने तुम्हारे सिर पर चोट कर दी। उनकी लुकाठी भारी पड़ी! तुम बर्दाश्त न कर सके, हालांकि तुम्हारे हित में ही की गयी थी चोट। जैसे कि सर्जन तुम्हारे हित में ही चीर-फाड़ करता है। मगर अगर तुम नासमझ होओ तो यह देखकर कि सर्जन छुरा लिये हाथ-पैर में काट कर रहा है, तुम उठ कर ही खड़े हो जाओ, हमला ही बोल दो सर्जन पर--कि हम तो आये थे इलाज कराने, यह दुष्ट हमारे हाथ-पैर काटे डाल रहा है! शायद इसीलिए इसके पहले कि सर्जन सर्जरी करे, तुम्हें बेहोश कर देता है, ताकि तुम पड़े रहो चुपचाप, अन्यथा तुम बीच-बीच में उठ-उठ आओगे कि यह क्या हो रहा है? यह मेरे साथ क्या किया जा रहा है?
मगर यह जो सिद्धों के पास घटना घटती है, यह तो होश में ही घटने वाली है; इसमें तुम्हें बेहोश नहीं किया जा सकता। इसमें कोई क्लोरोफार्म का उपाय नहीं है; क्योंकि यह तो जागने की ही प्रक्रिया है। यह सुलाने से हल नहीं हो सकती; यह तो जगाने से ही हल होगी। और तुम जन्मों से सो रहे हो!
सिद्धों का जीवन भी तुम्हारी समझ में नहीं आता, क्योंकि उनके जीवन का
एक बुनियादी भेद है--रहणि हमारी सांची! सिद्ध सहजता से जीता है--सांचा। तुम इसका अर्थ कुछ और लगा लोगे; क्योंकि तुमने तो सब चीजों के अर्थ अपने मन से लगा लिये हैं। तुम जीते हो आदर्शों से; सिद्ध जीता है स्वभाव से। आदर्श और स्वभाव का कहीं कोई मेल नहीं होता। आदर्श कल्पनाएं हैं। तुम सोचते हो मुझे ऐसा होना चाहिए, फिर वैसा होने की तुम चेष्टा करते हो। तुम्हें सिखाया भी गया है बचपन से कि ऐसे होओ, ऐसे होओ, ऐसे होओ... ! तुम्हारे पास हजार तरह के आदर्श हैं। वैसे तुम हो नहीं। और उन आदर्शों के कारण तुम वैसे हो भी न पाओगे। सिर्फ होगा इतना कि तुम्हारे भीतर एक पाखंड पैदा हो जाएगा। भूख तो लगती है, लेकिन आदर्श कहते हैं उपवास करो। तो भीतर भूख और बाहर उपवास! भीतर भूख धक्के मारेगी और बाहर से तुम उपवास थोपोगे।
यह सांची रहनी न हुई, यह तो झूठी रहनी हो गयी। शरीर मांग रहा है भोजन,
और मन थोप रहा है उपवास; क्योंकि बिना उपवास के स्वर्ग न मिलेगा। इससे उल्टी भी हालत होती है। शरीर तो कह रहा हैः बस, अब और भोजन नहीं चाहिए, पेट भर गया। लेकिन मन कहता हैः बड़ा स्वादिष्ट है, थोड़ा और... । ये दोनों एक जैसी ही घटनाएं हैं। ये दोनों हालत में तुम अपने स्वभाव के प्रतिकूल जा रहे हो। और जो स्वभाव के प्रतिकूल जाता है, वह कभी भी सत्य को उपलब्ध न हो पायेगा। झेन फकीर बोकोजू से किसी ने पूछाः तुम्हारी साधना क्या है? तो बोकोजू
ने कहाः जब भूख लगती है, तब मैं भोजन करता; और जब नींद आती है, तब सो जाता। तुमने भी पूछा होता, तुम भी चौंकते--यह कोई साधना हुई! जिसने पूछा था वह भी चौंका, उसने कहाः यह तो सभी करते हैं! बोकोजू ने कहा कि नहीं; इतना ही तुम कर लो तो सब हो जाये! जब भूख नहीं होती तब तुम भोजन करते हो, क्योंकि समय हो गया! अगर बारह बजे रोज भोजन करते हो, तो घड़ी में देखकर कि बारह बजे, कि भूख लग आती है। वह भूख झूठी है। अगर घड़ी बंद हो गयी हो घंटे-भर पहले, अभी ग्यारह ही बजे हों, तुम्हें भूख न लगेगी। अगर तुम्हें पक्का पता हो कि अभी ग्यारह ही बजे हैं, भूख न लगेगी। वह भूख झूठी है, वह भूख सांची नहीं है। रोज एक खास समय सो जाते हो, उस वक्त जम्हाई आने लगती है, नींद आने लगती है। मगर वह नींद

सच्ची नहीं है। अगर तुम घड़ी-भर जाग जाओ, वह नींद खो जायेगी। अगर सच्ची नींद होती, तो और भी जोर से आनी थी। लोगों को जब नींद का समय हो जाता, अगर वे घंटे भर, आधा घंटा और जग जायें, न सोयें किसी कारण से, तो फिर रात-भर नींद न आये! बस आदत थी, एक यंत्रवत व्यवस्था थी।
बोकोजू ने कहा कि नहीं, सभी ऐसा नहीं करते। उन्हें नींद नहीं आती, तब
सो जाते हैं; और जब नींद आ रही होती है, तब उठ आते हैं। जब भूख नहीं लगती, खा लेते हैं। और कभी भूख लगी होती है और नहीं खाते, उपवास करते हैं। बोकोजू ने कहा, हम सरलता से जीते हैं; यही हमारी साधना है। हम किसी आदर्श के अनुकूल नहीं जीते।
जो आदर्श के अनुकूल जीता है, वह नैतिक। और जो सहजता से, सुगमता से जीता है, वह धार्मिक। जिसने एक लक्ष्य बना रखा है कि इस भांति जीऊंगा... । रोज ब्रह्म-मुहूर्त में उठना है, चाहे उठने की इच्छा हो न हो, देह कहे न कहे... । एकनाथ को एक आदमी मिलने गया। वे एक शिव के मंदिर में ठहरे हुए थे। वह आदमी तो बड़ा हैरान हुआ, क्योंकि उन्होंने अपने पैर शिव की पिण्डी पर टेक रखे थे।
वह आदमी खुद भी नास्तिक था; मगर इतना नास्तिक नहीं था। लोगों ने उससे कहा था कि तेरी नास्तिकता अगर कोई मिटा सकता है तो एकनाथ। इसीलिए एकनाथ की तलाश में आया था। यहां एकनाथ को देखकर तो वह चौंका। उसने कहा कि हालांकि मैं नहीं मानता कि ईश्वर है, मगर इतनी हिम्मत मेरी भी नहीं है कि शंकर जी की पिण्डी पर पैर रख कर लेटूं। यह तो महा नास्तिक मालूम होता है। और अभी सो रहा था, और सूरज कब का निकल चुका है--और साधु को तो ब्रह्ममुहूर्त में उठ आना चाहिए! उसने झकझोरा, एकनाथ को उठाया, कहा कि साधु को तो ब्रह्ममुहूर्त में उठना चाहिए। एकनाथ ने कहाः साधु जब उठे, तब ब्रह्ममुहूर्त है।
यह बड़ी और जीवन की व्यवस्था हुई--साधु जब उठे, तब ब्रह्ममुहूर्त!
"और शंकर जी की पिण्डी पर पैर रख कर क्यों लेटे हो? चलो ठीक है, साधु जब उठे तक ब्रह्ममुहूर्त; मगर यह क्या कर रहे हो?" तो एकनाथ ने कहाः कहीं भी पैर रखूं, वही है। जहां भी पैर रखूं, वही है। कहां पैर रखूं? और पैर में क्या खराबी है, क्योंकि पैर में भी वही है। अब उसके अतिरिक्त मुझे कोई और दिखायी नहीं पड़ता। भीतर भी वही, बाहर भी वही। सिर में भी वही, पैर में भी वही। कहां पैर रखूं?
यह सिद्ध की अवस्था है। यह सरल जीवन है। इसमें कोई आदर्श नहीं है। और आदर्श नहीं है, इसलिए पाखंड नहीं है। आदर्श से पाखंड पैदा होते हैं। पाखंड आदर्श की छाया है। तुमने एक आदर्श बना लियाः ब्रह्ममुहूर्त में उठेंगे। फिर एक दिन न उठ पाये, तो भी तुम्हें पाखंड की खबर रखनी पड़ेगी, लोगों को तुम्हें यही बताना पड़ेगा, आज भी उठे थे।
पाखंड का अर्थ होता हैः एक आदर्श बना लिया, अब पूरा नहीं हो रहा है तो
भी दिखलाना पड़ेगा कि पूरा हो रहा है। चोरी से भोजन कर लेंगे, लेकिन बाहर जाहिर रखेंगे कि उपवास चल रहा है! छिपे-छिपे एक ढंग के आदमी होओगे तुम, और प्रगट-प्रगट दूसरे ढंग के आदमी होओगे। अंतस अलग, आचरण अलग हो जायेगा। बाहर कुछ, भीतर कुछ... ।
रहणि हमारी सांची।
गोरख कहते हैंः हम ऐसे नहीं रहते। हमारा न कोई आदर्श है, न हमारा कोई
एक जीवन का बंधा हुआ ढांचा है। प्रतिपल जो सच है, जो हमारे स्वभाव में है, उसके अनुसार जीते हैं। और यहीं अड़चन खड़ी होती है। इसीलिए तुम सिद्ध को पहचान भी न पाओगे। क्योंकि सिद्ध तुम्हारे किसी ढांचे में बंधेगा नहीं। सिद्ध तुम्हारी किसी कसौटी पर कसा न जा सकेगा। तुमने जो-जो कसौटियां बना रखी हैं, सिद्ध उन सब को तोड़ कर बह जायेगा। सिद्ध की कोई भविष्यवाणी नहीं हो सकती, क्योंकि सिद्ध किसी आधार से नहीं जीता--प्रतिपल, पल-पल जीता है; पल के प्रति संवाद से जीता है। कोई एक बंधा हुआ ढांचा हो, तो सिद्ध की भविष्यवाणी हो सकती है। लेकिन उसके पास कोई ढांचा नहीं है, कोई आचरण नहीं है।
तुम यह जानकर चकित होओगे कि सिद्ध आचरण-मुक्त होता है। इसीलिए सिद्ध
को बर्दाश्त करना मुश्किल हो जाता है। छोटे-मोटे तथाकथित साधुओं को तुम बर्दाश्त कर लेते हो, बर्दाश्त ही नहीं कर लेते, उनका अंगीकार भी करते हो,

स्वागत भी करते हो! तुमने सुकरात को सूली दी; लेकिन यूनान में और बहुत लोग थे, जो ज्ञान की बातें कर रहे थे, उनको तुमने सूली नहीं दी। तुमने जीसस को सूली दी, लेकिन उसी समय में बहुत थे और यहूदी-साधु, सम्मानित धर्मगुरु; उनको तुमने सूली नहीं दी। उनके तुमने चरण छुए, उनका तुमने सम्मान किया। वे तुम्हारी धारणाओं के अनुकूल थे। जीसस तुम्हारी धारणाओं के प्रतिकूल पड़ गये। जीसस ने स्वतंत्र जीवन शुरू कर दिया। जीसस ने अपनी स्वतंत्र चेतना की घोषणा कर दी। वही उनका कसूर है। काश, वे तुमसे राजी होते! काश वे तुम्हारे अनुकूल चलते! तुम जैसे बिठाते, बैठते; तुम जैसे उठाते, उठते। तुमने उन्हें भी खूब सम्मान दिया होता।
लेकिन कोई सिद्ध तुम्हारी अपेक्षाएं पूरी नहीं कर सकता है। और जो करे तुम्हारी अपेक्षाएं पूरी, वह सिद्ध नहीं है। सिद्ध तो परमात्मा की अपेक्षाएं पूरी करता है, तुम्हारी अपेक्षाएं पूरी नहीं करता। और परमात्मा की अपेक्षाएं बाहर से नहीं आतीं, भीतर से आती हैं, अंतरतम से आती हैं।
सबद हमारा शड़तर शाड़ा, रहणि हमारी सांची।
और कहते हैं गोरखः शब्द हमारे खरे हैं, चोट करने वाले हैं, खड्ग की धार
की तरह तीखे हैं, क्योंकि रहनी हमारी सच्ची है! हम वैसे रह रहे हैं जैसा स्वभाव हमें चला रहा है। हम किसी के बंधे हुए नहीं हैं, किसी के गुलाम नहीं हैं, किसी परंपरा के दास नहीं हैं। किसी व्यवस्था, संस्कार का हम पर कोई आरोपण नहीं। हम स्वतंत्र हैं।
लेषै लिषी न कागद माडी।
हम उस ढंग से रह रहे हैंः न तो जैसी कागज में लिखी है, न किसी लेख में बतायी गयी है। जिसकी शास्त्रों में चर्चा नहीं है। हो ही कैसे सकती है? गोरख इसके पहले तो हुए नहीं थे। शास्त्र तो बाद में बनेगा। कोई शास्त्र गोरख का वर्णन नहीं कर सकता। हां, शास्त्र औरों का वर्णन करेंगे, महावीर का वर्णन करेंगे, बुद्ध का वर्णन करेंगे; लेकिन गोरख गोरख हैं, न बुद्ध न महावीर। महावीर अपनी शैली से रहे, अपनी निजता में जीए; बुद्ध अपनी निजता में। गोरख अपनी निजता में जीयेंगे। गोरख किसी की छाया नहीं हैं, किसी की कार्बन-कापी नहीं हैं। प्रत्येक सिद्ध मौलिक होता है।
और यही परीक्षा है, यही कसौटी है। साधु कार्बन-कापी होते हैं, सिद्ध मौलिक होते हैं। साधु ऐसे होते हैं, जैसे कि तुम कारखाने से कारें निकालते हो। हजार फियेट गाड़ियां एक-सी खड़ी कर दो। एक-दूसरे की कापी, एक-ही सांचे में ढली! अब तुम हजार जैन साधु खड़े कर दो, क्या फर्क होता है उनमें? कोई फर्क नहीं होता! एक ही व्यवस्था से जीते हैं। एक ही आचरण की संहिता से जीते हैं। लेकिन सिद्ध मौलिक होता है, अनूठा होता है, अद्वितीय होता है। और यही अड़चन है। कोई शास्त्र उसका निर्वचन नहीं करते।
और एक तरह का सिद्ध एक ही बार होता है, दोबारा नहीं होता। क्योंकि जो सिद्ध हो गया, फिर नहीं लौटता। गया सो गया, फिर वापिस नहीं आता। एक ही बार तुम उसकी झलक पाते हो--बुद्ध की, महावीर की, कृष्ण की, क्राइस्ट की, मुहम्मद की। एक ही बार तुम झलक पाते हो, फिर गये सो गये। फिर विराट में लीन हो गये। फिर दोबारा उन जैसा आदमी नहीं होगा, नहीं हो सकता है।
मगर बहुत लोग अनुकरण करेंगे, नकलची होंगे। उनको तुम साधु कहते हो। उन नकलचियों का बड़ा सम्मान है, क्योंकि वे तुम्हारे शास्त्र के अनुसार मालूम पड़ते हैं। उन नकलचियों का बड़ा आदर होगा, प्रतिष्ठा होगी; क्योंकि वे तुम्हारी अपेक्षा की तृप्ति करते हैं, वे तुम्हारे अहंकार को तृप्त करते हैं। वे कहते हैंः ठीक, हमारी ही अपेक्षा के अनुसार यह आदमी जी रहा है। यह आचरण है, यही शुद्ध आचरण है।
जब भी सिद्ध आयेगा, सब अस्त-व्यस्त कर देगा। सिद्ध आता ही क्रांति की तरह है!
रजज की आवाज,
बादलों की गरज है,
तूफान की सदा है!
इश्क का नग्मा जुनूं के साज पर गाते हैं हम।
सिद्ध तो अपने दीवानेपन के साज पर प्रेम का गीत गाता है।

इश्क का नगमा जुनूं के साज पर गाते हैं हम अपने गम की आंच से पत्थर को पिघलाते हैं हम जिंदगी को हमसे बढ़कर कौन कर सकता है प्यार और अगर मरने पर आ जायें तो मर जाते हैं हम दफ्न होकर खाक में भी दफ्न रह सकते नहीं लाल-ओ-गुल बन के दीवारों पर छा जाते हैं हम मैं रात की गोद में
सितारे नहीं,
शरारे बखेरता हूं!
अंगारे बिखेरता हूं... ।
सहर के दिल में--
जो अपने अश्कों से
बो रहा हूं,
बगावतें हैं।
प्रत्येक सिद्ध बगावत लेकर आता है, एक क्रांति का संदेश लेकर आता है,
एक आग की लपट लेकर आता है--एक तूफान रोशनी का! लेकिन जो अंधेरे में रहे हैं, उनकी आंखें अगर एकदम से उतनी रोशनी को न झेल सकें और नाराज हो जायें, तो कुछ आश्चर्य नहीं।
लेषै लिषी न कागद माडी, सो पत्री हम बांची।
गोरख कहते हैंः हम करें भी क्या, हमने वह बांच लिया है जो कहीं लिखा नहीं गया है, कभी नहीं लिखा गया है। हमने अनलिखे को पढ़ लिया है। इसलिए हम अब वैसे ही जी रहे हैं। अनलिखे को जिसने पढ़ लिया, अदृश्य को जिसने देख लिया, अनिर्वचनीय का जिसे अनुभव हो गया है, अब वह किन्हीं मनुष्य के द्वारा बनाई गयी समाज, परंपराएं, संस्कारों की व्यवस्थाओं का मानकर नहीं चलेगा। अब उसके लिए कोई बंधन संभव नहीं है। अब वह तुम्हारी सारी व्यवस्थाओं के अतीत होगा।
लेषै लिषी न कागद माडी, सो पत्री हम बांची।
इस जगत में शास्त्र बहुत हैं--वेद हैं, बाइबिल है, कुरान है, धम्मपद है। उनमें जो तुम पढ़ोगे, वह परम सत्य नहीं है। और ऐसा नहीं है कि जिन्होंने वेद गाये, उनको परम सत्य का पता नहीं था। या जिससे कुरान पैदा हुई, उसे परम सत्य का पता नहीं था। परम सत्य का पता था, इसीलिए कुरान पैदा हुई; मगर जैसे ही कही गयी बात, वैसे ही असत्य हो जाती है। जैसे ही उस विराट को हम शब्दों में बांधते हैं, शब्दों की संकीर्णता के कारण वह विराट अपना रूप खो देता है।
ऐसा ही समझो कि तुम गये समुद्र के तट पर। सुबह की ताजी हवा थी। सूरज की किरणें थीं। पक्षी गीत गाते थे। लहरों में रंग था। सूरज नाचता था। सुबह की यह ताजी हवा, यह सागर के तट का हवा का नमकीन स्वाद, तुम्हें इतना भाया कि तुम एक पेटी में इस हवा को बंद कर के घर ले आये। सोचा कि फुर्सत में जब कभी मौज होगी पेटी को खोलेंगे, इस हवा का आनंद लेंगे। मगर क्या तुम सोचते हो, तुम उस ताजी हवा को पेटी में बंद करके घर ले आ सकोगे? और जब घर आ कर पेटी खोलोगे, तो न तो वह नमकीन स्वाद होगा उस हवा में, न वह ताजगी होगी, न वे सूरज की किरणें होंगी, न पक्षियों के गीत होंगे, कुछ भी न होगा--एक खाली पेटी होगी और उसमें गंदी हवा होगी!
यही हो जाता है, शब्दों की पेटियों में सत्य समाता नहीं है। सत्य जीवंत अनुभव है। जो जानता है, उसे कहना पड़ता है; मजबूरी है। मगर सब कहनेवालों ने यह भी कहा है साथ-साथ कि हम कह नहीं पाये; कहने की कोशिश की है और हार-हार गये हैं।
रवीन्द्रनाथ जब मरे, घड़ी-भर पहले किसी ने कहा, कि तुम्हें तो प्रसन्न विदा होना चाहिए; तुमने छह हजार गीत गाये। दुनिया में किसी कवि ने इतने गीत नहीं गाये! तुम महाकवि हो!
रवीन्द्रनाथ ने आंखें खोलीं, उनकी आंखों में आंसू थे, और उन्होंने कहाः मत कहो यह बात, क्योंकि मैं परमात्मा से प्रार्थना कर रहा था अभी, तुमने व्यर्थ बीच में बाधा डाल दी। मैं प्रार्थना कर रहा था कि हे प्रभु, जिंदगीभर कोशिश कर-करके बामुश्किल थोड़ा-सा साज बिठा पाया और यह तो जाने का

वक्त आ गया! अभी मैंने वह गीत गाया कहां जो मैं गाना चाहता था! ये छह हजार गीत तो सिर्फ चेष्टाएं हैं उस गीत को गाने की, जो मैं गाना चाहता था और नहीं गा पाया। और यह तूने क्या किया कि यह तो विदाई का वक्त आ गया! और अभी तो केवल साज बिठा पाया था, अभी संगीत शुरू न हुआ था। और जिन्होंने इसे संगीत समझ लिया, उनकी भी मजबूरी है। उन्हें तो यही विराट था; उन्होंने तो इतना भी नहीं देखा था।
मैंने सुना है, लखनऊ के एक नवाब ने एक अंग्रेज वाइसराय को निमंत्रण दिया। लखनऊ... स्वागत में बड़े संगीतज्ञ बुलाए। नवाब बैठा, वाइसराय बैठा, दरबारी बैठे। लखनवी संगीतज्ञ अपना साज बिठाने लगे--तबला ठोंकने लगा कोई, सारंगी के तार कसने लगा कोई। वाइसराय ने पहली दफे ही ऐसा संगीत सुना था। दस-पंद्रह मिनट जब यह चलता रहा... उसने कहाः वाह! वाह! और नवाब से कहाः बस, यह संगीत चलता रहे। बहुत आनंद आ रहा है। यह अभी साज ही बिठाया जा रहा था, अभी संगीत शुरू न हुआ था! नवाब तो बहुत चौंका! लेकिन अब जब वाइसराय कहे कि यही चलना चाहिए, तो फिर यही चला, रात-भर यही चला! संगीतज्ञों ने सिर पीट लिया! नवाब की खोपड़ी पक गयी! दरबारी भी चकित हुए; मगर वाइसराय बड़ा प्रसन्न! उसने कभी सुना न था। उसने समझा यही संगीत है; कैसा मजा आ रहा है! ठोंक रहे हैं; अपना काम चल रहा है!
रवीन्द्रनाथ ठीक कहते हैं कि जिन्होंने मेरे गीतों को गीत समझ लिया, उन्हें अभी असली गीतों का कोई पता नहीं। उन्हें उस गीत का पता नहीं जो मैं गाना चाहता था और नहीं गा पाया हूं। यही तो उपनिषद कहते हैं, कि उस अनिर्वचनीय को कैसे कहें? यही तो लाओत्सु कहता है, कि सत्य कहा गया कि असत्य हो जाता है। यही तो शास्त्र कहते हैं--सारे शास्त्र, सारे जगत के शास्त्र--कि शब्दों में वह समाता नहीं।
लेषै लिषी न कागद माडी।
क्या तुम सोचते हो गोरख को पता नहीं था कि वेद हैं, गीता है, धम्मपद है। भलीभांति पता था, लेकिन फिर भी कहते हैंः लेषै लिषी न कागद माडी, सो पत्री हम बांची। जरूर पंडित नाराज हो गये होंगे--वेद का इंकार हो गया, तो फिर वेद में क्या है? तो फिर वेद में सत्य नहीं? छोटी बुद्धि के लोग नाराज हो गये होंगे, कुपित हो गये होंगे। यही अड़चन है!
सिद्ध तो वही कहेंगे जैसा है। वेद में सत्य को कहने की चेष्टा की गयी
है, खूब चेष्टा की गयी है; मगर सत्य कभी कहा नहीं जा सका है। और जिन्होंने चेष्टा की है, हम उनके अनुगृहीत हैं। उनकी चेष्टा में भी कुछ पग-चिह्न पृथ्वी पर छूट गये हैं। भला संगीत न गाया जा सका हो, लेकिन साज को बिठाने में भी कुछ स्वर तो हमारे कानों तक पहुंच गये हैं--टूटे-फूटे सही, अस्त-व्यस्त सही--मगर कुछ स्वर तो पहुंच गये! यह भी क्या कम है? इन्हीं स्वरों के सहारे हम चलते रहेंगे तो शायद मूलस्रोत तक, उदगम तक भी पहुंच जायेंगे। मगर याद रहे, कि शास्त्रों से इशारे लेना, शास्त्रों को छाती पर रख कर
मत बैठ जाना! शास्त्र मील के पत्थर हैं, जो कहते हैं--और आगे... । जिन पर तीर का निशान बना है, कि बढ़े जाओ; ठीक दिशा में हो, बढ़े जाओ! लेकिन अंततः तो पहुंचना है वहां--
लेषै लिषी न कागद माडी, सो पत्री हम बांची।
कठिन है उसे कहना। जीवन में जब भी तुम्हारे कोई अनुभव गहरा होगा, तभी कठिनाई हो जायेगी कहने की। शब्द बने हैं छिछली बातों को कहने के लिए। हां, बाजार में उनका उपयोग है, लेकिन जैसे ही तुम बाजार के जगत से थोड़े हटे कि उपयोग कठिन हो जाता है। तुम्हारा किसी से प्रेम हो गया। बस, शब्द फिर असमर्थ हो जाते हैं। तुमने रात तारों भरा आकाश देखा और सौंदर्य से अभिभूत हो गये। बस, फिर शब्द कहने में असमर्थ हो जाते हैं।

मैं कोई शेर न भूले से कहूंगा तुझ पर
फायदा क्या जो मुकम्मिल तेरी तहसीन न हो
कैसे अल्फाज के सांचे में ढलेगा ये जमाल
सोचता हूं कि तेरे हुस्न की तौहीन न हो
हर मुसव्वर ने तेरा नक्श बनाया लेकिन
कोई भी नक्श तेरा अक्से-बदन बन न सका

लब-ओ-रुखसार में क्या-क्या न हसीं रंग भरे पर बनाये हुए फूलों से चमन बन न सका
हर सनमसाज ने मरमर से तराशा तुझको
पर ये पिघली हुई रफ्तार कहां से लाता तेरे पैरों में तो पाजेब पहना दी लेकिन--
तेरी पाजेब की झंकार कहां से लाता
तेरे शायां कोई पैरायए-इजहार नहीं
सिर्फ विजदान में इक रंग-सा भर सकती है
मैंने सोचा है तो महसूस किया है इतना
तू निगाहों से फकत दिल में उतर सकती है
अगर तुम्हारा किसी से प्रेम हुआ है तो ही मुश्किल हो जाती है! कौन अपनी प्रेयसी की तस्वीर बना पाया? कौन अपनी प्रेयसी की प्रशंसा कर पाया? कौन अपनी प्रेयसी के लिए ठीक-ठीक शब्द चुन पाया? सारे शब्द छोटे पड़ जाते हैं!
मैं कोई शेर न भूले से कहूंगा तुझ पर
नहीं, कोई कविता नहीं कही जा सकती, कोई नग्मा नहीं गाया जा सकता।
फायदा क्या जो मुकम्मिल तेरी तहसीन न हो।
अगर तेरी पूर्णता का बखान न कर सकूं, तो अर्थ ही क्या है?
फायदा क्या जो मुकम्मिल तेरी तहसीन न हो
कैसे अल्फाज के सांचे में ढलेगा यह जमाल
तेरा यह सौंदर्य शब्दों की छोटी-छोटी सीमाओं में कैसे अटेगा, कैसे भरेगा?
सोचता हूं कि तेरे हुस्न की तौहीन न हो
यह चेष्टा ही ठीक नहीं। सोचता हूं कि यह तो तेरा अपमान हो जायेगा, तेरे सौंदर्य का अपमान हो जायेगा। यह तो साधारण प्रेयसी के लिये हो जाती है बात, तो जिन्होंने परमात्मा को देखा है, उनका तो सोचो कुछ!
हर मुसव्वर ने तेरा नक्श बनाया लेकिन
कलाकारों ने तेरे चित्र बनाये हैं।
हर मुसव्वर ने तेरा नक्श बनाया लेकिन
कोई भी नक्श तेरा अक्से-बदन बन न सका
कोई भी नक्शा तेरी वास्तविक छवि को नहीं ला पाया; कुछ चूक ही गया, कुछ चूकता ही रहा। कुछ ऐसा है जो चूक ही जायेगा। क्योंकि कहां एक जिंदा व्यक्ति और कहां एक तस्वीर! तस्वीर तो कागज पर केवल छाया है। कहां एक जिंदा व्यक्ति--बोलता, हंसता, नाचता, गाता--और कहां एक तस्वीर! कितने ही रंग भरो, सब रंग फीके हैं!
हर मुसव्वर ने तेरा नक्श बनाया लेकिनकोई भी नक्श तेरा अक्से-बदन बन न सकालब-ओ-रुखसार में क्या-क्या न हसीं रंग भरे
तेरे ओठों में, तेरे कपोलों में कैसे-कैसे न सुंदर रंग भरे हैं! लब-ओ-रुखसार में क्या-क्या न हसीं रंग भरे
पर बनाये हुए फूलों से चमन बन न सका
लाख खरीद लाओ तुम बाजार से कागज के फूल और लटका दो उन्हें वृक्षों में, शायद किन्हीं राहगीरों को धोखा भी हो जाये, मगर तुम तो जानोगे ही कि फूल कागजी हैं। तुम तो जानोगे ही कि फूल असली नहीं हैं। तुम तो जानोगे ही कि इन फूलों से कोई गंध न आयेगी।
लब-ओ-रुखसार में क्या-क्या न हसीं रंग भरेपर बनाये हुए फूलों से चमन
बन न सकाहर सनमसाज ने मरमर से तराशा तुझको,
कितने मूर्तिकारों ने संगमरमर में तुझे खोदना चाहा!
हर सनमसाज ने मरमर से तराशा तुझकोपर ये पिघली हुई रफ्तार कहां से लाता?
वह जो तुम्हारी प्रेयसी चलती है, डोलती है, नाचती है--वह पिघली हुई रफ्तार कहां से लाता? पत्थर तो पत्थर है, संगमरमर ही सही; कितना ही प्यारा हो, फिर भी पत्थर तो पत्थर है। इसलिए बुद्ध की मूर्ति बन सकी, क्योंकि बुद्ध चुप बैठे हैं। पत्थर की तरह ही बैठे हैं वृक्ष के नीचे! उनकी वही निजता थी। लेकिन मीरा की मूर्ति कैसे बनाओगे? राधा की कैसे बनाओगे? राधा

की मूर्ति में कुछ गलती हो जायेगी! बुद्ध की मूर्ति बन जाये, लेकिन राधा की न बन सकेगी।
यह आकस्मिक नहीं है कि सबसे पहले बुद्ध की मूर्तियां बनीं जमीन पर, तब
तक मूर्तियां नहीं बनी थीं। इसलिए उर्दू में तो बुद्ध शब्द का ही रूपांतरण--बुत, मूर्ति का पर्यायवाची हो गया। बुत यानी बुद्ध। मूर्ति और बुद्ध एक ही अर्थ हो गये! बुद्ध की मूर्ति बन सकी, क्योंकि वे ऐसे शांत बैठे हैं वृक्ष के नीचे जैसे पत्थर की मूर्ति हों! मगर राधा को कैसे बनाओगे? कृष्ण को कितना ही बनाओ, बना न पाओगे।
हर सनमसाज ने मरमर से तराशा तुझकोपर ये पिघली हुई रफ्तार कहां से लाता? तेरे पैरों में तो पाजेब पहना दी लेकिन--तेरी पाजेब की झंकार कहां से लाता?
पत्थर की मूर्ति के पैर में तुम पाजेब भी पहना दो, मगर पाजेब में झंकार कहां से लाओगे? वे पैर तो चलते नहीं, वे पैर तो नाचते नहीं! पत्थर की मूर्ति के ओंठों पर बांसुरी रख दो, मगर बांसुरी में स्वर कहां से लाओगे? तेरे शायां कोई पैरायए-इजहार नहीं।
कोई वक्तव्य तुझे कह सके, ऐसा नहीं है।
तेरे शायां कोई पैरायए-इजहार नहींसिर्फ विजदान में इक रंग-सा भर सकती
है
हां, कविता में थोड़ा-सा रंग आ जाता है तेरी बातें करते हैं तो। पर कोई वक्तव्य तुझे प्रगट नहीं कर पाता।
मैंने सोचा है तो महसूस किया है इतनातू निगाहों से फकत दिल में उतर सकती है।
प्रेयसी आंखों से हृदय में उतर जाती है; फिर हृदय से उसे वाणी तक लाना असंभव है। और यह तो साधारण प्रेयसी की बात हुई, उस परम प्रिय की क्या बात कहें, कैसे कहें? न उसे कोई कभी लिख सका, न कभी कोई उसकी मूर्ति बना सका और न कभी कोई बना सकेगा।
लेषै लिषी न कागद माडी, सो पत्री हम बांची।
सबद बिंदौ रे अवधू सबद बिंदौ, थांन-मांन सब धंधा।
आतम मधै प्रमातमां दीषै, ज्यों जल मधे चंदा।।
इसलिए कहते हैं कि तुम शास्त्रों में न उलझो--अंतर के संगीत में डूबो।
सबद बिंदौ रे अवधू सबद बिंदौ।
यह जो भीतर तुम्हारे शब्द का गुंजार हो रहा है, ओंकार, इसमें डुबकी मारो। यह जो वीणा भीतर बज रही है जीवन की, यह जो हृदय का संगीत है भीतर, इसमें डुबकी मारो!
सबद बिंदौ रे अवधू सबद बिंदौ, थांन-मांन सब धंधा।
और बाकी सब बकवास छोड़ो--प्रतिष्ठा, मान, सम्मान। क्योंकि तुम अगर प्रतिष्ठा चाहोगे, तो तुम्हें लोगों की अपेक्षाएं पूरी करनी पड़ेंगी। तुम अगर सम्मान चाहोगे तो यह मुफ्त नहीं मिलता। यह पारस्परिक समझौता है, व्यवसाय है। अगर किसी को सम्मान चाहिए तो उसे ध्यान रखना पड़ेगा कि सम्मान देने वाले की अपेक्षा क्या है।
एक तेरापंथी जैन मुनि ने मुझे लिखा कि आपकी बातें ठीक लगती हैं। मैं
यह सब जाल छोड़ देना चाहता हूं। मगर मैं दस साल का था तब मैं दीक्षित हो गया। मेरी मां मर गयी। मेरे पिता दीक्षित हुए। घर में कोई और था नहीं, तो मुझे भी दीक्षा दे दी गयी। दस साल का था तब से मैं संन्यासी हो गया हूं। न तो पढ़ा हूं न लिखा हूं। अब तो उम्र भी हो गयी कोई पचास साल। चालीस साल तक कोई काम भी नहीं किया है; सेवा ही पायी है, सम्मान ही पाया है। अब मुझे लगता है कि यह सब धोखा है, थोथा है; छोड़ दूं। मगर तब डर लगता है, क्योंकि मेरा सम्मान खो जायेगा, प्रतिष्ठा खो जायेगी। अभी जो मेरे पैर छूते हैं, कल अगर मैं इनके द्वार पर जाकर चौकीदार की भी नौकरी मांगूंगा, तो वह भी ये मुझे न देंगे।
सम्मान मुफ्त तो नहीं मिलता। जिनसे तुम सम्मान लेते हो, उनके बदले में कुछ चुकाना पड़ता है। उनकी अपेक्षाएं पूरी करनी पड़ती हैं। अगर वे कहते हैं मुंहपट्टी बांधो, तो मुंहपट्टी बांधनी पड़ती है। अगर वे कहते हैं ऐसे

उठो ऐसे बैठो, यह खाओ यह न खाओ--तो वैसा करना पड़ता है। जरा तुम चूके, कि सम्मान गया!
इसलिए कहते हैं गोरख कि इस झंझट में मत पड़ना। अगर सच में सत्य को जानना हो तो इसी की संभावना बहुत है कि अपमान मिलेगा तुम्हें, सम्मान नहीं। इस अंधों की दुनिया में आंखवालों को अपमान ही मिलेगा, सम्मान नहीं। थांन-मांन सब धंधा! वे सब धंधे छोड़ दो। एक ही की फिक्र करो--भीतर तुम्हारे जो जीवन-धारा बह रही है, उसमें डुबकी मारो।
आतम मधे प्रमातमां दीषै।
और वहीं तुम परमात्मा को पाओगे। न मंदिरों में, न मस्जिदों में, न गिरजों में, न गुरुद्वारों में--स्वयं के भीतर।
ज्यों जल मधे चंदा।
जैसे झील में चांद झलक जाता है, ऐसे ही स्वयं में तुम्हें उसकी झलक मिलेगी।
च्यंत अच्यंत ही उपजै।
चिंता से तो चिंता ही पैदा होती रहती है।
च्यंता सब जग शीण।
चिंता में ही तो सारा जग मरा जा रहा है!
जोगी च्यंता बीसरै, तो होइ अच्यंतहि लीन।
योगी वही है जो चिंता से मुक्त हो जाये। चिंता से मुक्त होना अचिंत्य में लीन होने की प्रक्रिया है। कैसे चिंता से मुक्त होओगे? अगर चिंता से मुक्त होने की चेष्टा की, और चिंता में पड़ जाओगे। पुरानी चिंता तो रही ही रही, एक नयी चिंता और शुरू हो गयी, कि अब चिंता से कैसे मुक्त हों?
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैंः मन बड़ा अशांत है, शांति चाहिए। अब
यह एक नयी अशांति शुरू हुई! मन अशांत था, वह तो था ही; अब शांति चाहिए। और शांत नहीं हो रहा है मन तो और मुश्किल हो गयी। इससे तो जो अशांत हैं और शांति नहीं चाहते हैं, वे ही कम अशांत हैं। कम-से-कम उनकी अशांति इकहरी है। तो चिंता से मुक्त होने को नयी चिंता मत बना लेना। चिंता से मुक्त होने में तो सिर्फ एक इंगित है, चिंता से मुक्त होने की कला है; उस कला का नाम साक्षीभाव है, ध्यान है।
कोई चिंता नहीं करनी पड़ती चिंता से मुक्त होने के लिए। वह तो कीचड़ से कीचड़ धोना होगा। और कीचड़ मच जायेगी!
चिंता से मुक्त होने का तो एक ही उपाय हैः साक्षी। जो भी भीतर चलता है, विचारों की तरंगें आती-जाती हैं, तुम देखते रहना। तुम पक्षपात न करना। तुम यह भी मत कहना कि यह अच्छा विचार यह बुरा विचार, यह पकड़ लूं यह छोड़ दूं। इसी से चिंता पैदा हो रही है--पकड़ने-छोड़ने से। तुम तो देखते रहना निष्पक्ष। जैसे कोई राह चलते लोगों को देखता है, ऐसे ही चित्त की राह पर चलते विचारों को तुम चुपचाप बैठ कर देखते रहना। अगर तुम एक घड़ी रोज इतना ही कर सको कि सिर्फ बैठ जाओ और देखते रहो... ।
शांत होने की चेष्टा मत करना, नहीं तो और अशांत हो जाओगे। चिंता से छूटने की चिंता मत करने लगना। जो भी हो रहा है चित्त में--अशांति, चिंता, उपद्रव, व्यर्थ की बकवास, पागलपन--जो भी हो रहा है, चुपचाप इसे देखना। जैसे तुम दर्पण हो और दर्पण के सामने से जो भी निकल रहा है, उसकी छाया बन रही है। दर्पण को क्या लेना-देना है! कोई छाया बनने से दर्पण बिगड़ता तो नहीं, विकृत तो नहीं होता। कुरूप आदमी दर्पण के सामने खड़ा हो जाये तो दर्पण कुरूप तो नहीं हो जाता? और न सुंदर के खड़े होने से सुंदर हो जाता है। तो क्या फर्क पड़ता है, सुंदर खड़ा हो कि कुरूप खड़ा हो, दर्पण को क्या लेना-देना है? दर्पण अलिप्त भाव से देखता रहता है।
दर्पण की भांति अगर तुम एक घड़ी रोज बैठने लगो, तो तुम चकित हो जाओगे, बैठते-बैठते एक दिन अचानक एक क्रांति घट जाती है! चिंता विलीन हो जाती है। अचिंत्य में लीन हो जाता है। साधक साक्षी बनते-बनते चिंता से मुक्त हो जाता है, अचिंत्य में लीन हो जाता है। और उस अचिंत्य में लीन होओगे, तो ही पढ़ सकोगेः
लेषै लिषी न कागद माडी, सो पत्री हम बांची।
सुणौ हो देवल तजौ जंजालं। अमिय पीवत तब होइबा बालं।

कहते हैंः सुनो! जंजाल छोड़ो--सिद्धांतों का, शास्त्रों का, धारणाओं का। क्या ठीक, क्या गलत? क्या शुभ, क्या अशुभ? ये जंजाल छोड़ो!
अमिय पीवत तब होइबा बालं।
साक्षी-भाव में बैठ जाओ, तो बच्चे के जैसे भोले हो जाओ। दर्पण के जैसे निर्मल हो जाओ। उसी निर्मलता का नाम अमृत है! और जिसने उस अमृत को पी लिया, उसने सब जान लिया। सब जानने योग्य जान लिया, पाने योग्य पा लिया!
ब्रह्म अगनि सींचत मूल। फूल्या फूल कली फिरि फूल।।
और तब उस निर्दोष अवस्था में ऐसी घटना घटती है जैसे गंगा वापिस लौट गयी गंगोत्री में! जैसे फूल फिर कली हो गया! जैसे वृक्ष फिर बीज हो गया! लौट गये अपने मूलस्रोत पर, अपने उदगम पर। उस मूल उदगम पर लौट जाना ही परमात्मा में लौट जाना है। लक्ष्य आगे नहीं है, लक्ष्य तुम्हारे भीतर पड़ा है। मूलस्रोत ही अंतिम गंतव्य है।
अधरा धरे विचारिया, धर याही मैं सोई।
धर अधर परचा हूवा, तब दुतीया नाहीं कोई।।
अधरा धरे विचारिया... ।
शून्य में सब ठहरा हुआ है।
अधरा धरे विचारिया... ।
यह पृथ्वी भी अधर में है, शून्य में है, और तुम भी शून्य में हो। सारा अस्तित्व शून्य में है। शून्य ध्यान का दूसरा नाम है।
अधरा धरे विचारिया, धर याही मैं सोई।
तुम अब जिस दिन इसी शून्य में फिर प्रवेश कर जाओगे, उसी दिन सब चिंता टूटी, सब तनाव गये, सब संताप मिटा। परमानंद हुआ।
धर अधर परचा हूवा... ।
और जिस दिन तुम्हारा इस शून्य से परिचय हो जायेगा--
तब दुतीया नाहीं कोई।
फिर दूसरा कोई बचता नहीं। फिर एक ही बचा। उसे चाहे आत्मा कहो चाहे परमात्मा, चाहे मैं कहो चाहे तू, मगर एक ही बचा--तत्त्वमसि। उसे फिर कोई भी नाम दो। दो नहीं बचे। बूंद सागर में गिर गयी। अब चाहे तो यह कहो कि बूंद सागर हो गयी, और चाहे तो यह कहो कि सागर बूंद हो गया, कुछ भेद नहीं पड़ता है। सुरति गहौ संसय जिनि लागौ, पूंजी हांन न होई।
एक तत सूं एता निपजै, टार्या टरै न सोई।।
इतना धन मिल जायेगा कि बांटते रहो, बांटते रहो, टारते रहो, टारते रहो,
तो भी टार न पाआगे! सुरति गहो, बस इतना ही ख्याल करो--जागो! सुरति गहो, थोड़ा होश जगाओ।
सुरति गहौ संसय जिनि लागौ।
तो जहां अभी संशय चल रहा है वहां सुरति का प्रकाश हो जाये, बोध हो जाये, ध्यान हो जाये।
पूंजी हांन न होई।
फिर तुम पाओगे परम पूंजी, जिसकी कभी कोई हानि नहीं होती।
एक तत सूं एता निपजै।
और तब उस एक से तुम्हारा मिलन हो गया, जिससे ऐसी संपदा पैदा होती है, ऐसी रसधार बहती है।
टार्या टरै न सोई।
जिसे तुम बांटते रहो, बांटते रहो, बांट न पाओ! जिसे चुकाने का कोई उपाय नहीं है।
इस जगत की तो सभी पूंजियां बांटने से बंट जाती हैं। इसलिए उनका कुछ मूल्य नहीं है। मौत आयेगी और सब छिन जायेगा। सब ठाठ पड़ा रह जायेगा। खाली हाथ मौत तुम्हें ले जायेगी। लेकिन एक ऐसी पूंजी भी है जो बांटने से नहीं बंटती, बल्कि बांटने से बढ़ती है। इसीलिए तो जिन्होंने जाना उन्होंने बांटा। जिन्होंने जाना, वे बांटते ही रहे जिंदगी-भर।
बुद्ध बयालीस साल जीये ज्ञान के बाद; बांटते ही रहे, उलीचते ही रहे। कबीर ने कहाः दोनों हाथ उलीचिये यही सज्जन को काम। मिल जाये, तो फिर उलीचना ही पड़ेगा। क्योंकि जितना उलीचोगे, उतने नये स्रोत, नये झरने फूटते आयेंगे। यह तो कुएं जैसी बात है, कुएं से पानी निकालते रहो तो कुआं ताजा

रहता है। उसका पानी जीवंत रहता है। कंजूस हो जाओ, कुएं को ढांक कर बंद कर दो, सोचो कि ऐसे रोज निकालते-निकालते पानी चुक गया एक दिन तो मुसीबत होगी; भरा रखो कुएं को; ताला डाल दो। तो सड़ जायेगा पानी। पीने योग्य भी न रह जायेगा, विषाक्त हो जायेगा।
कुएं में और हौज में यही फर्क है। हौज भी ऊपर से लगती है पानी से भरी; मगर धोखा है, क्योंकि हौज में कोई झरना नहीं है। अगर उलीचोगे, चुक जाएगी। कुएं में झरने हैं। यही भेद है। अदृश्य झरने हैं। जो दिखायी नहीं पड़ रहे ऊपर से। उलीचोगे, झरनों से नया जल आता जायेगा। यही पंडित और ज्ञानी का फर्क है। पंडित यानी हौज। ज्ञानी यानी कुआं। पंडित उलिच जा सकता है। उसके पास बंधे-बंधाये सिद्धांतों का संग्रह है, जानकारी है। ज्ञानी को तुम समाप्त नहीं कर सकते। उसके पास नये झरने हैं! सागर से जुड़ा है वह!
निहिचा हवै तो नेरा निपजै, भया भरोसा नेरा।
परचा हवै ततषिन निपजै, नहींतर सहज नवेरा।।
फिर चाहिए क्या? इस शून्य में उतरने के लिए क्या चाहिए? क्या आधार है
इस शून्य में उतरने का? श्रद्धा। निहिचा, निश्चय, दृढ़ता, साहस--ये सब श्रद्धा के ही अलग-अलग रंग और रूप हैं। इस शून्य में उतरने के लिए श्रद्धा के अतिरिक्त और कोई रास्ता नहीं है। संदेह किया तो डर जाओगे। डर जाओगे तो शून्य से भाग खड़े होओगे। संदेह करने वाला ध्यान में नहीं उतर सकता। संदेह करने वाला तो विचार में ही उलझा रहेगा। संदेह तो विचार का जन्मदाता है। संदेह से विचार पैदा होते हैं। करो संदेह और तत्क्षण विचारों की झड़ी लग जाती है। एक संदेह करो, हजार विचार आ जाते हैं।
तुम्हारे पास कोई आ कर बैठा, संदेह करो कहीं चोर न हो! बस इतना ही संदेह काफी है, फिर विचारों की झड़ी आयी। फिर और गौर से देखो, दिखता तो चोर ही मालूम पड़ता है। चेहरे से भी लगता है। आंख भी शरारती है। बैठा भी इस ढंग से है कि जेब पर हाथ मारेगा। छुरा-वुरा न लिये हो! अब तुम बढ़ने लगे, सोचने लगे, चिंतित होने लगे। जरा सा संदेह... और विचारों का सिलसिला शुरू होता है।
जहां श्रद्धा होती है, वहां विचार अपने-आप शांत हो जाते हैं। अगर तुम्हारी किसी पर भी श्रद्धा है तो उसके पास जा कर विचार शांत हो जायेंगे। उसके पास गये कि विचार बंद हुए। इसी श्रद्धा में बैठने का नाम सत्संग है। किसी ऐसे व्यक्ति के पास बैठना, जिस पर तुम्हें श्रद्धा हो। वहां विचार छूट जाते हैं, अपने से छूट जाते हैं। विचार की जरूरत ही न रही। विचार तो संदेह के लिए ही आवश्यक हैं। सुरक्षा है विचार में। संदेह पैदा होता है, सुरक्षा का जाल हम खड़ा कर लेते हैं विचार के द्वारा। जब श्रद्धा ही है तो विचार की कोई जरूरत न रही।
दो प्रेमी पास बैठते हैं, विचार बंद हो जाते हैं। दो मित्र साथ बैठते हैं, विचार क्षीण हो जाते हैं। दो दुश्मनों को पास बिठा दो, फिर कितने विचार चलने लगते हैं जिसका हिसाब नहीं!
इसीलिए हम जल्दी परिचय बनाते हैं। ट्रेन में तुम बैठे, पास में जो बैठा है उससे तुम जल्दी पूछते होः "आप कहां जा रहे हैं? कहां से आ रहे हैं? नाम क्या है? पता क्या? क्या काम करते हैं?" क्यों पूछते हो, इतनी जल्दबाजी क्या है? थोड़ा-सा निश्चय हो जाये--कौन है, कहां से है, तो थोड़ी निश्चिंतता हो, नहीं तो अड़चन होगी।
अगर अजनबी बना रहा, तो संदेह उठा रहेगा मन में कि पता नहीं, अजनबी के पास बैठे हैं! पागल हो क्या पता, एकदम उछल कर गर्दन पकड़ ले! एकांत का मौका है, रात का वक्त है, ट्रेन का सफर है; पता नहीं कौन आदमी है! हम सो जायें और यह पेटी लेकर उतर जाये। या हम तो सोयें और यह कुछ-का-कुछ कर दे। पूछते होः भाई कहां से आते हो? नाम पूछ लेते हो, भरोसा बढ़ने लगता है। हालांकि, कुछ खास नहीं पता चल रहा है। उसने भी कह दिया कि मेरा नाम रामदास है तो इससे क्या होता है? नाम रामदास हो और सेवा रावण की करता हो, कुछ अड़चन नहीं है। मगर फिर भी रामदास है तो थोड़ा-सा निश्चय हुआ कि चलो भला ही आदमी होगा, रामदास है। फिर भरोसा आया कि हिंदू है। हम भी हिंदू, यह भी हिंदू, चलो ठीक है। कह दिया कि ब्राह्मण हूं, और भरोसा आ गया, कि भला आदमी है, ब्राह्मण है, इससे ज्यादा खतरे की संभावना नहीं है। थोड़ी और बातचीत की। थोड़ा परिचय और

गहन हो गया। थोड़ा-सा निश्चय हो गया। अब अपरिचय न रहा। इसका कोई पक्का नहीं कि इसने रामदास झूठ ही बताया हो, इसका नाम कुछ और ही हो। ब्राह्मण बता रहा हो, पता नहीं हो ब्राह्मण न हो! कहता है फलां जगह से हूं, कहीं और से हो! नहीं; मगर निश्चय कर लिया तो अब इतना भरोसा है कि तुम कहते हो मेरा सामान देखना।
और एक बड़े मजे की बात घटती है कि हर रोज हर स्टेशन पर सारी दुनिया में सैकड़ों लोग अपना सामान अजनबियों के पास छोड़कर जाते हैं, लेकिन कभी उसकी चोरी नहीं होती। क्यों? क्योंकि जब तुमने भरोसा किया तो दूसरे ने भी भरोसा किया। भरोसा भरोसे को जन्माता है। तुमने जब श्रद्धा की तो दूसरे का तुमने इतना सम्मान किया कि अब तुम्हें धोखा दे, इतना दीन कोई भी नहीं, इतना हीन कोई भी नहीं। तुम संदेह करते तो शायद तुम्हें मजा चखा देता। क्योंकि तब तुम उसको चुनौती दे देते, कि अच्छा, तो तुमने समझा क्या है? तुम अगर उससे न कह कर पास में खड़े पुलिसवाले से कह गये होते, कि भई जरा देखना, यह मेरा सामान रखा है और यह आदमी बैठा है, इस पर मुझे शक है। तो शायद निश्चित ही वह आदमी कुछ-न-कुछ शरारत करता। करना ही पड़ता, आखिर अपनी आत्मरक्षा उसको भी करनी है। अपने सामने अपना आत्मगौरव उसको भी बचाना है। वह तुम्हें पाठ पढ़ाता। लेकिन तुम उसको ही कह गये। अब बहुत मुश्किल है। तुम अगर चोर से भी कह जाओ कि जरा मेरा सामान देखना, तो कोई चोर भी इतना ज्यादा गिरा हुआ नहीं है कि तुम्हें धोखा दे दे।
जिस पर तुमने भरोसा किया, उसमें तुम भरोसे को जन्माते हो। और इस तरह भरोसा भरोसे को सहारा देता है। शिष्य जब गुरु पर भरोसा कर लेता है, गुरु जब शिष्य पर भरोसा कर लेता है, भरोसे का आदान-प्रदान शुरू होता है। श्रद्धा सघन होने लगती है, गहन होने लगती है। एक ऐसी घड़ी आती है, सारे संदेह गिर जाते हैं, श्रद्धा ही रह जाती है। उसी श्रद्धा में उसे पाया जाता है, बहुत ही पास पाया जाता है। जरा भी दूर नहीं है वह, सिर्फ श्रद्धा का सेतु नहीं है।
निहिचा हवै तो नेरा निपजै।
पास ही निकल आता है वह, जिसको हम खोजते फिरते थे जन्मों-जन्मों से।
नेरा--पास ही निपज आता है।
भया भरोसा नेरा।
जैसे ही भरोसा हुआ वैसे ही वह पास है।
भया भरोसा नेरा।
फिर दूर नहीं है। उतना ही दूर है जितना संदेह है।
ऐसा समझ लो, तुम्हारी संदेह की मात्रा ही तुम्हारे और तुम्हारे परमात्मा के बीच की दूरी है। जितना संदेह कम होगा उतनी दूरी कम हो जायेगी।
संदेह अर्थात दूरी। और जब बिल्कुल संदेह न रह जायेगा, सब दूरी समाप्त हो गयी--नेरा, पास ही, निकट ही, निकट से भी निकट। मुहम्मद ने कहा हैः वह तुम्हारे इतने निकट है, जितना तुम्हारे हृदय की धड़कन भी तुम्हारे निकट नहीं है।
परचा हवै ततषिन निपजै।
और श्रद्धा हो तो इसी क्षण घटना घटेगी। तत्क्षण! ऐसा नहीं है कि कल घटेगी। कल की दूरी की भी कोई जरूरत नहीं है। कि परसों घटेगी, कि अगले जन्म में घटेगी। कि जनम-जनम चेष्टा करोगे तब घटेगी। यह तो उन्होंने तुम से कहा, जिनको पता नहीं है। यह तो उन्होंने तुमसे कहा है जिन्होंने तुम्हें धोखा दिया है। यह तो उन्होंने तुमसे कहा है जिन्होंने तुम्हें सांत्वना दी है, सत्य नहीं दिया है।
सत्य तो अभी घट सकता है, यहीं घट सकता है, इसी क्षण! क्योंकि परमात्मा जितना इस क्षण है, इससे ज्यादा कभी नहीं होगा और न कभी कम होगा। इतना का इतना है। और जितने दूर अभी है, इतने ही दूर सदा है, और इतने ही दूर सदा होगा।
परमात्मा ने तुम्हें घेरा हुआ है। हम तो मछलियां हैं उसके सागर में! उसी में जीते हैं, उसी से जन्मे हैं, उसी में विसर्जित हो जाना है। दूरी कहां है? वही तो हमारी श्वासों की श्वास है!
परचा हवै ततषिन निपजै।

श्रद्धा हो जाये तो परिचय हो जाये। परिचय हो जाये, तो इसी क्षण क्रांति घट जाये!
नहींतर सहज नवेरा।
और अगर ऐसा न किया तो फिर निपटारा आसान नहीं है। अगर तुमने सोचा कल होगा... कल कभी आता है? अभी या कभी नहीं। तुमने कहा अगले जन्म में होगा। तुम्हें पिछले जन्म की याद है? तुमने पिछले जन्म में भी यही कहा होगा कि अगले जन्म में होगा। यह रहा अगला जन्म, अभी नहीं हो रहा है। और ऐसे तुमने कितने जन्म गंवाए! अगले जन्म में भी तुम्हें याद नहीं रहेगी फिर, ख्याल रखना। फिर तुम कहोगे, अगले जन्म में होगा। ऐसे तो कभी नहीं होगा।
यह तरकीब है। यह जालसाजी है। यह मन की बेईमानी है। यह टालने का उपाय है। तुम्हें जो करना होता है वह तुम अभी कर लेते हो। और जो तुम्हें नहीं करना होता है, तुम कहते हो कल करेंगे। जैसे किसी ने गाली दी तो तुम यह नहीं कहते कि क्रोध कल करेंगे। अभी, इसी वक्त, नगद! क्रोध नगद और प्रेम आ जाये तो उधार! प्रार्थना जन्मे तो उधार! कहते हो प्रार्थना कल करेंगे?
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैंः संन्यास लेना तो है, लेकिन अभी नहीं। लेंगे, एक दिन जरूर लेंगे। वृद्ध हो जायें, फिर लेंगे।
एक बूढ़े सज्जन मेरे पास आये। उम्र होगी कोई पचहत्तर वर्ष। उनके लड़के
ने संन्यास ले लिया। बड़े नाराज थे। कहा कि आपने यह क्या उपद्रव खड़ा कर दिया! अभी मेरा लड़का जवान है, अभी से इसको आपने संन्यास दे दिया। शास्त्र तो कहते हैं कि संन्यास वृद्धावस्था में लेना चाहिए।
तो मैंने कहा कि चलो ठीक, सौदा निपटाये लेते हैं, आप संन्यास ले लो, आपके लड़के को हम छोड़े देते हैं। आप तो बूढ़े हो चुके हो! यह वे सोचकर न आये थे कि शास्त्र अपने ही गले में पड़ जायेगा! वे लड़के की तो भूल ही गये। कहा कि मैं फिर आ कर सोच कर आपको बताऊंगा। फिर आये ही नहीं। अब मैं राह ही देख रहा हूं उनकी।
लोग टालते रहते हैं--वृद्धावस्था में लेंगे। फिर वृद्धावस्था में सोचते हैं, मरते वक्त नाम ले लेंगे। अजामिल हुआ न, मरते वक्त पुकारा-- नारायण! नारायण उनके बेटे का नाम था। वह कोई ऊपर के नारायण को बुला नहीं रहे थे। मगर ऊपर के नारायण धोखे में आ गये और उन्होंने समझा कि मुझे बुलाया है, गदगद हो गये। एकदम अजामिल को छाती लगा लिया। ले गये वैकुण्ठ। जिन्होंने ये कहानियां गढ़ी हैं, बड़े बेईमान लोग रहे होंगे, बड़े चालबाज रहे होंगे। ये परमात्मा को भी धोखा देने का इंतजाम रखते हैं। तब तो हद्द हो गयी, अगर परमात्मा भी इस तरह धोखा खा जाता है कि तुम अपने बेटे को बुला रहे... और अजामिल जिंदगीभर का पापी, पक्का समझो कि बेटे को भी बुला रहा होगा कुछ जालसाजी के लिए। बेटे को बुला रहा होगा बता जाने के लिए कि चोरी का धन कहां गड़ा है, या मेरे मरने के बाद तू क्या-क्या करना।
क्योंकि मैंने सुना है, एक आदमी मर रहा था, उसने अपने चारों बेटे बुलाये और कहा कि अब मैं मर रहा हूं, मेरी आखिरी इच्छा, बेटे, पूरी कर दो। तुमने कभी मेरी इच्छा पूरी नहीं की, अब पूरी कर दो। बड़े तीन तो बिल्कुल चुपचाप खड़े रहे। बोले ही नहीं, तटस्थ। छोटा जरा अभी-अभी विश्वविद्यालय से आया था, वह एकदम पास आ गया, उसने कहाः आप बोलिये। बड़े भाइयों ने उसे रोकना भी चाहा, लेकिन वह रुका नहीं, जा कर पिता के पास पहुंच गया। पिता ने उसके कान में कहा कि देख, ये बड़े तो सब नालायक हैं। इन्होंने तो मुझे कभी सुख न दिया। एक तुझ पर मेरा भरोसा है। इत्ता-भर कर देना बेटा, मैं मर जाऊं तो मैं तो मर ही गया, मेरे हाथ-पैर काट-काट कर पड़ोसियों के घरों में फेंक देना और पुलिस में रिपोर्ट करवा देना। बस, मेरी आत्मा जब जा रही होगी वैकुण्ठ की तरफ और ये सब जा रहे होंगे हवालात की तरफ, चित्त गदगद हो जायेगा। इतना तू कर देना। बस इतना देख कर चला जाऊं इस दुनिया से कि चले जा रहे हैं बंधे... बस, मेरी आत्मा को शांति मिल जायेगी। यह तेरा कर्तव्य है। और तू ऋण से मुक्त हो जायेगा, पितृ-ऋण से मुक्त हो जायेगा।
वह अजामिल ने भी पता नहीं किसलिए बुलाया था! कुछ बुलाया होगा इसी तरह की... जिंदगी भर अजामिल की जो कथा रही... मृत्यु कोई आकस्मिक थोड़े ही होती है। जीवन-भर तुम जीये हो, उसी का सार-निचोड़ होती है। मगर बेईमानों ने ये कहानियां गढ़ीं। उन्होंने, जो तुम्हें सांत्वना देना चाहते हैं, वे कहते

हैंः घबड़ाओ मत, मरते वक्त नाम ले लेना। वह तो उन्होंने इतना भी इंतजाम कर दिया कि तुम न ले पाओ, कोई फिक्र नहीं; पंडित-पुरोहित को बुला कर तुम्हारे कान में नाम दिलवा देंगे। तुम्हारी जबान भी लड़खड़ा गयी हो तो कोई फिक्र नहीं।
आदमी मर रहा है, उसे होश नहीं है, उसके कान में मंत्र फूंके जा रहे हैं! जिसकी जिंदगी में कभी कोई ईश्वर-स्मरण नहीं था, उसके मुंह में गंगाजल डाला जा रहा है! यह तुम कर क्या रहे हो? ये धोखे के आयोजन... । मगर सारे लोग इनमें उलझे हैं। इनमें सुविधा है, टाल दिया कल पर। कौन झंझट ले! नहीं तो घटना अभी घटती है।
परचा हवै ततषिन निपजै, नहींतर सहज नवेरा।
नहीं तो बड़ी कठिन है बात, नबेर न पाओगे, सुलझा न पाओगे।
अवधू सहजै लैणा सहजै दैणा, सहजै प्रीति ल्यौ लाई।
सहजै सहजै चलेगा रे अवधू, तो बासण करेगा समाई।
तुम्हारे बर्तन में सागर भर सकता है।
तो बासण करेगा समाई।
अनंत भर सकता है तुम में। तुम अनंत हो, लेकिन सहज हो जाओ।
अवधू सहजै लैणा सहजै दैणा।
तुम्हारा सब लेन-देन, सब व्यवहार, सब संबंध सहज हो जाये। जैसे हो, वैसे
ही प्रगट करो। नग्नता में, अपनी परिपूर्ण नग्नता में जीयो। छिपाओ मत।
आड़ें मत खड़ी करो। धोखे मत दो। क्योंकि परमात्मा को कैसे धोखे दे पाओगे? सहजै लैणा सहजै दैणा।
सब जीवन का लेन-देन, व्यवहार सहज करो।
सहजै प्रीति ल्यौ लाई।
इसी सहज में से धीरे-धीरे प्रीति उमगती है। जो सहज है वह अपने-आप प्रीतिपूर्ण हो जाता है। असहज कभी प्रीतिपूर्ण नहीं होता। कपटी कभी प्रेम नहीं कर सकता। चालबाज, गणित बिठानेवाला, होशियार, कभी प्रेम नहीं कर सकता। प्रेम तो सहजता से जन्मता है।
इसलिए दुनिया में जितनी शिक्षा बढ़ती है, प्रेम कम होता चला जाता है।
यह बड़ी हैरानी की बात है--शिक्षा बढ़े और प्रेम कम हो जाये! होना तो उल्टा था। दुनिया सभ्य होती है और प्रेम विदा होता जाता है। गांव का ग्रामीण शायद प्रेम से थोड़ा-बहुत अभी परिचित है, लेकिन शहर का शहरी तो बिल्कुल भूल गया है प्रेम! जितना चालबाज हो जाता है, जितना होशियार हो जाता है, जितना गणित बिठाने लगता है, हर चीज में हिसाब-किताब लगाने लगता है, हर चीज में धंधा करने लगता है, कि देना कम और लेना ज्यादा। धंधे का मतलब होता है देना कम, लेना ज्यादा। जितना कम-से-कम दिया जा सके उतना देना, और जितना ज्यादा- से-ज्यादा लिया जा सके उतना लेना। अगर बिना दिये लिया जा सके, बस तो यही सबसे ज्यादा कुशल आदमी का लक्षण है।
तो जो सबसे ज्यादा कुशल हैं, होशियार हैं, वे ऐसे धंधे करते हैं जिसमें देने की जरूरत ही नहीं है, सिर्फ लेना ही लेना है। और तब उनके जीवन में प्रेम की कोई संभावना नहीं रह जायेगी। और जहां प्रेम नहीं वहां परमात्मा नहीं।
अवधू सहजै लैणा सहजै दैणा, सहजै प्रीति ल्यौ लाई।
सहजै सहजै चलेगा रे अवधू... ।
और अगर ऐसे सहज-सहज चलते रहे,
तो बासण करेगा समाई।
तो तेरे पात्र में परमात्मा बरस उठेगा!
प्रेम जगे, तो इस जगत में हर जगह उसी के सौंदर्य की झलक मिले!

आज की रात तो मनसूब तेरे नाम से है
आज क्यों चांद-सितारों पै नजर जायेगी
क्या रखा है जो बहारों पै नजर जायेगी
तू कि खुद माहवशाने-चमन अन्दाम से है
आज की रात तो मनसूब तेरे नाम से है
एक तुगियाने-तरब है मेरे काशाने में

एक सनम आ ही गया दिल के सनमखाने में शहर में एक कयामत तेरे इकदाम से है
आज की रात तो मनसूब तेरे नाम से है
दिल की धड़कन को इशारे की जरूरत न रही किसी रंगीन नजारे की जरूरत न रही
रंग नजरों में तेरे आरि.जे-गुलफाम से है आज की रात तो मनसूब तेरे नाम से है
तेरी पलकों के झपकने की अदा काफी है
तेरी झुकती हुई आंखों का नशा काफी है
अब न शीशे से गरज है न मै-ए-जाम से है
आज की रात तो मनसूब तेरे नाम से है
दिल में उतरी चली जाती हैं निगाहें तेरी
मुझको हल्के में लिये लेती हैं बाहें तेरी
इक उजाला-सा मेरे गिर्द सरे-शाम से है
आज की रात तो मनसूब तेरे नाम से है
एक बार उस प्यारे की थोड़ी-सी झलक मिल जाए, उस प्रियतमा की थोड़ी-सी झलक मिल जाए; उससे संबंध जुड़ जाए तो फिर सारा जगत एक प्रेम का पारावार हो जाता है।
एक तुगियाने-तरब है मेरे काशाने में
घर में आनंद की बाढ़ आ जाती है।
एक तुगियाने-तरब है मेरे काशाने मेंएक सनम आ ही गया दिल के सनमखाने में
बस! दिल के मंदिर में वह प्यारा आ गया। और उसका आना कठिन नहीं है, उसका आना सरल है; अति सरल है। अगर वह नहीं मिल पा रहा है तो इसलिए कि तुम कठिन हो, तुम जटिल हो, तुम उलझे हुए हो।
अवधू सहजै लैणा सहजै दैणा, सहजै प्रीति ल्यौ लाई।
सहजै सहजै चलेगा रे अवधू, तो बासण करेगा समाई।।
पात्र तुम्हारे पास है, परमात्मा बरसने को राजी है, लेकिन तुम पात्र
को उल्टा रखे बैठे हो, बरसे भी तो भी तुम न भरोगे। पात्र को सीधा करो, सहज करो। ऐसे जीने लगो कि चालबाजी न रहे। चालबाजियां कर-कर भी क्या पाओगे? बड़े-बड़े चालबाज क्या पा सके? कहां है सिकंदर? और कहां है हिटलर? और कहां है नादिरशाह? और कहां है तैमूरलंग? बड़े-बड़े चालबाज क्या पा सके? जरा मनुष्य का इतिहास तो उठा कर देखो, क्या सारी चालबाजियों की हार स्पष्ट लिखी नहीं पड़ी है पृष्ठ-पृष्ठ पर? सारी चालबाजियां व्यर्थ हो गयीं! तुम भी क्या चालबाजियां कर पाओगे? चालबाजियों से क्या पा सकोगे? छोड़ो चालबाजियां, सहज हो जाओ।
और तुम्हारी सहजता से ही प्रीति की सुवास उठेगी। और वही सुवास उसके मंदिर में उठी धूप, उसके मंदिर में जला दीप है।
अवधू सहजै लैणा सहजै दैणा, सहजै प्रीति ल्यौ लाई।
सहजै सहजै चलेगा रे अवधू, तो बासण करेगा समाई।।
आज इतना ही।

मरौ हे जोगी मरौ
अठारहवां प्रवचन

उमड़ कर आ गए बादल

पहला प्रश्नः मैं बचपन से ही धर्मों से घृणा करता था, फिर भी कुछ खोजने की अचेतन आकांक्षा दिल में थी। अस्तु, कई तीर्थस्थलों में भटका, किंतु सब असफल रहा। अचानक एक दिन आपकी किताब पढ़कर आपका दीवाना हो गया और फिर संन्यासी भी। अब मैं बुढ़ापे में भी अपने को युवा अनुभव करता हूं, रोम-रोम आनंदित है। जिसकी खोज थी वह मिल रहा है, लेकिन ऊपरी शरीर बिल्कुल मर-सा गया है। ओशो, यह सब क्या है?

भोले बाबा! नास्तिक के लिए ज्यादा संभावना है परमात्मा को पाने की, आस्तिक की बजाय। क्योंकि आस्तिक तो झूठ से ही शुरू कर रहा है। ईश्वर का पता नहीं है और ईर्श्वर को मान लिया, यही तो बेईमानी हो गयी। और जब मान ही लिया तो अब खोज क्या खाक होगी? खोज का तो अर्थ होता हैः अभी पता नहीं, अभी खोजना है। जब मान ही लिया, झूठा ही मान लिया, तो खोज का तो अंत हो गया। यह तो खोज का गर्भपात हो गया।
आस्तिक झूठ से शुरू कर रहा है। इसलिए इतने आस्तिक हैं दुनिया में, लेकिन धार्मिक कहां? यह असली आस्तिकता नहीं है। जो विश्वास से पैदा होती है वह आस्तिकता असली नहीं है; जो अनुभव से आती है वही आस्तिकता असली है। मगर अनुभव के लिये पहली शर्त है कि जब तक जान न लो तब तक मानना मत। और जानना महंगा सौदा है, मानना सस्ता। मानने में कुछ लगता ही नहीं। मानना तो उधार है। परिवार कहता है, समाज कहता है, सभ्यता कहती है--मान लेते हो। न तो सोचते, न विचारते, न ध्यान करते। मानने में तुम्हें कुछ गंवाना पड़ता ही नहीं। हल्दी लगे न फिटकरी, रंग चोखा हो जाये! कुछ लगता ही नहीं और मुफ्त बन गये आस्तिक! अहंकार पर एक आभूषण चढ़ गया और आस्तिकता का!
नास्तिक थे, धर्मों से घृणा थी, इसीलिए मेरे पास आ सके। धर्मों से घृणा उसी को होती है, जिसे असली धर्म की तलाश होती है। जिसे असली धर्म की तलाश है वह मंदिर-मस्जिदों से राजी न हो सकेगा। मंदिर-मस्जिद उसे तृप्ति ही न दे सकेंगे। पंडित-पुरोहित उसके मन को न भायेंगे। जिसे सच में प्यास लगी है, वह सरोवर की तलाश करेगा। पानी की तस्वीरों से कैसे उसकी तृप्ति होगी? और शास्त्रोंंंंंं में सिवाय परमात्मा के सिद्धांत के और तो कुछ भी नहीं है। परमात्मा की तस्वीरें हैं! और पंडितों-पुरोहितों के पास शब्दों के सिवाय और कुछ भी नहीं है, निज का कोई अनुभव नहीं है।
अच्छा था कि तुम धर्मों से घृणा कर सके। वह बगावत की शुरुआत थी। और जो बगावती है, वही एक दिन धार्मिक हो पाता है। जो सच्चा नास्तिक है, वह एक दिन सच्चा आस्तिक हो पाता है। नास्तिक का अर्थ ही यह होता है कि कैसे मान लूं, अभी मैंने देखा नहीं, मैंने जाना नहीं? कैसे मान लूं? झूठ कैसे मान लूं? नास्तिकता में एक ईमानदारी है, एक प्रामाणिकता है। और उतनी प्रामाणिकता तो चाहिए ही। जो "नहीं" भी हृदयपूर्वक नहीं कह सका, वह "हां" कैसे हृदयपूर्वक कहेगा? जिसकी "नहीं" भी नहीं निकली, उसकी "हां" कैसे जन्मेगी? "नहीं" ही जब प्राणवान होती है, तो एक दिन "हां" भी प्राणवान होती है। जिन्होंने संदेह किया है भरपूर, वे ही एक दिन श्रद्धा को उपलब्ध होते हैं।
इससे तुम्हें बड़ा विस्मय होगा, क्योंकि तुम्हें तो यही समझाया गया हैः संदेह छोड़ो, श्रद्धा करो। गलत बात बताई गयी है। संदेह छोड़ दोगे, तो तुम जो श्रद्धा करोगे श्रद्धा नहीं होगी, लचर नपुंसक विश्वास होगा। संदेह भरपूर करो। जितना कर सको, उतना करो। आखिरी दम तक करो। जब तक कर सको तब तक करो। जब करना ही असंभव हो जाये। संदेह अपने से ही गिर जाये, कर-करके गिर जाये; सम्हालने का कोई उपाय न रह जाये--संदेह जब ऐसे मरता है, अपनी अति पर पहुंच कर, तो पीछे जो शेष रह जाता है भाव, उसका नाम श्रद्धा है।
श्रद्धा संदेह के विपरीत नहीं है। श्रद्धा संदेह का अभाव है। और श्रद्धा तक वे ही पहुंचते हैं, जो संदेह की यात्रा करते हैं। संदेह का

मतलब है कि अपना सिर पूरा लगा दूंगा जानने में। और जहां-जहां मुझे लगेगा ठीक नहीं है, वहां-वहां कहूंगा ठीक नहीं है। इसी को तो उपनिषदों ने नेति- नेति की प्रक्रिया कहा है। जांचना, परखना, कहना--यह भी नहीं, यह भी नहीं। करते जाना निषेध, करते जाना इंकार--उस क्षण तक जब तक कि वह घड़ी न आ जाये, जहां पूरे प्राण ही, तुम न भी कहना चाहो, तो भी तुम्हें कहना पड़े कि है; जहां तुम्हारी आंखें ही गवाह बन जायें। जहां तुम्हारी आत्मा साक्षी हो। उस घड़ी तक आने के लिए बहुत द्वारों को इंकार करना होगा। असली द्वार तक आने के लिए बहुत द्वार छोड़ देने होंगे।
बड़ा विचारक, वैज्ञानिक, एडीसन एक प्रयोग कर रहा था। उसके संगी-साथी, उसके विद्यार्थी थक चुके थे। तीन साल से प्रयोग चलता था। कोई परिणाम हाथ आता नहीं था। सात सौ बार प्रयोग किया गया था और असफल हो गये थे। मगर एडीसन भी एक जिद्दी आदमी था! ऐसे ही जिद्दी पहुंच पाते हैं सत्य तक, ऐसे ही हठी! रोज सुबह आ जाता था... फिर प्रयोग शुरू... । जब तीन साल बीत गये और सात सौ बार प्रयोग असफल हो गया, तो सारे संगी-साथियों ने कहा कि अब हम पागल हो जायेंगे। अब हम सब को मिल कर प्रार्थना करनी चाहिए।
सब ने मिलकर एडीसन को कहा कि आप तो रोज सुबह आ जाते हैं फिर उत्साह से भरे, फिर प्रयोग शुरू... । तीन साल खराब हो गये, सात सौ बार असफल हो गये। अब कब तक... क्या जीवन-भर यही करते रहेंगे? कुछ और करें। इसमें सफलता मिलने वाली नहीं है।
एडीसन तो ऐसे चौंका, जैसे किसी ने बड़ी बेबूझ बात कही! उसने कहाः तुम कहते क्या हो? हम सात सौ बार असफल नहीं हुए हैं, हम सफलता के करीब पहुंच रहे हैं! सात सौ प्रयोग असफल हो गये। समझो अगर हजारवें प्रयोग पर सफलता मिलनी है, तो अब तीन सौ ही बचे हैं करने को। हम रोज-रोज करीब आ रहे हैं। जितनी-जितनी बातें गलत हो गयीं, उतने हम सत्य के करीब आने लगे। एक दिन तो ऐसी घड़ी आयेगी कि सब गलत बातें गलत हो जायेंगी, तब जो शेष रह जायेगा वही सत्य है।
यही नेति-नेति की प्रक्रिया है। यही निषेध का उपाय है। असार को असार
की तरह जानते जाओ, एक दिन सार ही बच रहेगा। मत मान लेना जल्दी से कि परमात्मा है। जितना जल्दी मान लोगे, उतनी ही दो कौड़ी की तुम्हारी श्रद्धा होगी! उसमें आग भी नहीं होगी; तुम्हें जलायेगी भी नहीं, तुम्हें निखारेगी भी नहीं। उसमें जल भी नहीं होगा। तुम्हारी तृप्ति भी नहीं होगी। और उसमें अमृत कहां है! इतना मुफ्त अमृत नहीं मिलता, इतना उधार नहीं मिलता।
मगर लोगों को तो सोच-विचार ही खो गया है। लोग तो कुछ भी मान लेते हैं। लोग अफवाहें मान लेते हैं। दो-चार दिन पहले जब मुझे खबर आयी कि मस्जिदों में मेरे खिलाफ वक्तव्य दिये जा रहे हैं, भाषण हो रहे हैं। और जब मेरे पास भाषणों की कापी आयी, तब तो मैं चकित हुआ देख कर! मैं यहां मौजूद हूं। जिन्होंने भाषण दिये, वे आ सकते थे यहां; वे पूछ तो लेते कम-से-कम कि बात क्या है? पहले तो मेरी समझ में ही नहीं आया कि किस बात का विरोध किया जा रहा है? फिर बहुत खोजबीन करने पर पता चला कि मैंने महमूद गजनवी के संबंध में वक्तव्य दिया है और मुसलमान समझ रहे हैं, या समझाया जा रहा है उन्हें, कि मैंने हजरत मुहम्मद के विरोध में वक्तव्य दिया है। महमूद गजनवी--और हजरत मुहम्मद! मगर कोई भला मानस यहां तक आ न सका! आश्रम आ कर पूछ जाता कि मैंने वक्तव्य दिया भी है? लेकिन व्याख्यान हो गये--बड़े व्याख्यान! उन व्याख्यानों को पढ़ने में मुझे बड़ा मजा आया--इस्लाम पर हमला हो गया! मुहम्मद की मैंने अवमानना कर दी।... धर्मयुद्ध! मस्जिद में व्याख्यान... मौलवी राजनेता और इस तरह के लोग व्याख्यान दे कर लोगों को समझाने लगे हैं। महमूद और मुहम्मद में तुम्हें फर्क समझ में नहीं आता? लेकिन इतनी खोज
की भी इच्छा नहीं है लोगों में। यहां मौजूद हूं मैं। यहां दस ही कदम के फासले पर थे, आ जाते। पूछ तो जाते, इसके पहले कि व्याख्यान देना शुरू करते। मगर किसको लेना-देना है! आदमी ऐसा अंधा हो गया है! यह तुम्हारे तथाकथित विश्वासों का परिणाम है। और जो सुनने वाले थे उन्होंने भी मान लिया होगा। स्वाभाविक, तीन हजार मुसलमान इकट्ठे हो गये मोर्चा ले जाने के लिए। पुलिस के पास पहुंच गये, पुलिस कमिश्नर के पास। पुलिस कमिश्नर का आदमी आया, उसने जब व्याख्यान पढ़ा, उसने कहा, इसमें तो मुहम्मद के खिलाफ कुछ है ही नहीं।

महमूद गजनवी ने मूर्तियां तोड़ीं, इसका मैंने विरोध किया है। यह तो इतनी सीधी-साफ बात है, इतिहास की मानी हुई बात है। सोमनाथ का मंदिर गवाह है। इसको तो कोई इंकार नहीं कर सकता कि महमूद गजनवी ने मूर्तियां तोड़ीं, मंदिर नष्ट किये हैं। मगर यह मुहम्मद के संबंध में थोड़े ही वक्तव्य है।
लेकिन लोग ऐसे अंधे हो गये हैं। तुम्हें अंधेपन का जहर पिलाया जा रहा है। फिर तुम्हारी अंधेपन की आदत हो जाती है। फिर जो भी कुछ कह दे, तुम मान लेते हो। अफवाहें उड़ जाती हैं और दंगे हो जाते हैं। अफवाहें उड़ जाती हैं और लोग कट जाते हैं, गोलियां चल जाती हैं, छुरे भोंक दिये जाते हैं। सिर्फ अफवाहों पर! जिनके पीछे कोई सचाई भी नहीं होती या सचाई उल्टी ही होती है। इस तरह का आदमी तो कैसे परमात्मा को जान सकेगा? फिर चाहे तुम मंदिर जाओ, चाहे मस्जिद, चाहे गिरजा, क्या फर्क पड़ता है? परमात्मा को जानने के लिए थोड़ी प्रतिभा को निखारो। थोड़ी धार रखो। थोड़ा संदेह को प्रज्वलित करो। संदेह उपाय है श्रद्धा की तलाश का। संदेह की तलवार पर ही चल-चल कर कोई श्रद्धा की मंजिल तक पहुंच पाता है।
इसलिए भोले बाबा, अच्छा हुआ कि तुम नास्तिक थे, धर्मों से घृणा थी, तो तुम हर किसी की बात मानने को राजी न हुए। गये होओगे तीर्थ, गये होओगे पंडित-पुरोहितों के पास, लेकिन तुम्हारा मन न भरा। कैसे भरता? किसका भरता है? तुम्हारी प्यास सच्ची थी। तुम्हें तलाश थी किसी सरोवर की। तुम्हें तलाश थी सच में ही जीवन को रूपांतरित करने की। इसलिए तुम यहां आये और दीवाने भी हो गये।
और यहां तो मैं तुम से कह ही नहीं रहा हूं कि विश्वास करो। यहां तो मैं
कह रहा हूं प्रयोग करो। यहां तो मैं कह रहा हूं अनुभव करो। इसलिए तुम्हें मेरी बात जमी, रुची, तुम्हारे प्राणों में समा गयी! यही तुम चाहते थे। तुम प्रयोग करना चाहते थे और लोग कह रहे थे विश्वास करो। तुम अनुभव करना चाहते थे और लोग कहते थे बस श्रद्धा कर लो। अनुभव की तुम्हें क्या जरूरत? कृष्ण तो जान चुके, मुहम्मद तो जान चुके, महावीर तो जान चुके, तुम्हें जानने की क्या जरूरत है अब और? उन्होंने जान लिया, तुम भरोसा करो।
लेकिन सत्य कोई ऐसी चीज नहीं है कि किसी ने जान लिया और तुमने जान लिया। तुम्हें ही जानना होगा। मैं जल पीयूंगा तो मेरी प्यास बुझेगी, तुम्हारी नहीं। तुम चाहे कितना ही मुझ में भरोसा करो, तो भी प्यास मेरी बुझेगी, तुम्हारी नहीं। मैं भोजन करूंगा तो मुझे पोषण मिलेगा, तुम्हें नहीं, तुम कितना ही मुझमें विश्वास करो। तुम्हें भोजन करना होगा अगर पोषण चाहिए।
महावीर में विश्वास करने से तुम जैन भला हो जाओ, तुम जिन न हो सकोगे!
और जिन होना असली चीज है। जिन का अर्थ है--जिसने जीत लिया, जो पहुंच गया, जो सिद्ध हुआ। मुसलमान हो जाओगे तुम, मुहम्मद में विश्वास करने से। लेकिन मुसलमान होने से कुछ भी न होगा, जब तक कि मुहम्मद ही न हो जाओ। जब तक कि मुहम्मद का रंग ही तुम्हारे प्राणों में न छा जाये, जब तक वैसी ही मस्ती और वैसा गीत तुम्हारे भीतर पैदा न होने लगे, जब तक परमात्मा तुम्हें इस योग्य न समझे कि तुम्हारे भीतर कुरान गुनगुनाए--तब तक कुछ भी न होगा।
परमात्मा से सीधे जुड़ना होता है। परमात्मा से किसी के माध्यम से जुड़ने का कोई उपाय नहीं है। सदगुरु भी तुम्हें परमात्मा से जोड़ता नहीं, सिर्फ इशारे करता है।
बुद्ध ने कहा हैः बुद्धपुरुष केवल इशारे करते हैं। चलना तो तुम्हें पड़ता है। मंजिल तो तुम्हें तय करनी होती है। तुम दीवाने हो सके, क्योंकि जिसकी तुम्हें तलाश थी, उसकी तुम्हें झलक मिली। तुम संन्यासी भी हो सके। और ऐसा तुम्हारे साथ ही नहीं हुआ है, ऐसा बहुतों के साथ हुआ है। मुझसे कुछ जल्दी ही उनका संबंध बन जाता है जो नास्तिक रहे हैं, खोजी रहे हैं, संदेही रहे हैं। उनसे मेरा संबंध जल्दी बन जाता है। जो भरोसा करते रहे, मानते रहे, पंडित-पुरोहितों की सुनते रहे, उनसे मेरा संबंध नहीं बन पाता है। उनके भीतर तो बहुत कचरा भरा होता है। उनके बीच और मेरे बीच उस कचरे की दीवाल होती है। लेकिन जिसने किसी को नहीं माना, जिसने कहा खुद ही जानेंगे-- वह खाली आता है। उसके और मेरे बीच कचरा नहीं होता। उससे मेरा जल्दी संबंध जुड़ जाता है। उससे मेरा नाता तत्क्षण हो जाता है।

तुम दीवाने भी हुए, तुम संन्यासी भी हुए--संन्यास दीवानापन है। यह तो
जो पीयेगा, वही जानेगा। यह तो शराब है--अंगूरों से ढली हुई नहीं, आत्मा से ढली हुई। बाहर से आयी हुई नहीं, भीतर इसकी रसधार बहती है। यह तो गूंगे का गुड़ है। तुम किसी दूसरे को बताना भी चाहोगे तो न बता पाओगे। और जब कोई मस्त हो जाता है तो परमात्मा के पास होने लगता है। मस्ती, आनंदमग्न-भाव ही उससे जोड़ता है। विश्वास नहीं जोड़ते, मस्ती जोड़ती है। तुम्हारे थोथे आडंबर नहीं जोड़ते, तुम्हारे हृदय से उठा हुआ नृत्य जोड़ता है। तुम्हारे बाह्य क्रियाकांड नहीं जोड़ते, लेकिन तुम्हारे अंतर से उठी हुई प्रीति जोड़ती है।

गीत-गीत में, शब्द-शब्द में छाया मधुमय प्यार
जब तुम आये पहली बार।

कण-कण पर बिछ गयी तुम्हारी रूप-माधुरी,
स्वर-स्वर में गा उठी तुम्हारी कंठ-बांसुरी,
किरणों के अवगुंठन में हंस उठी पांखुरी,
मेरे पग पा गये तुम्हारी गति का पंथ-पसार
जब तुम आये पहली बार।

बादल पर ये इंद्रधनुष के चित्र खिल गये, सावन को हंसती बिजली के स्वप्न मिल गये
जिस दिन से तुम रमे असीम अभाव किल गये, फूल-फूल पर उमड़ उठा शत-शत रंगों का ज्वार। जब तुम आये पहली बार।

सांस मिल गयी युग-युग के इस विकल मरण को
पंथ मिल गया भूले-भटके थके चरण को,
दीप मिल गया अंधकार के महावरण को,
विधवा सी सूनी रजनी को मिला नखत सिंगार।
जब तुम आये पहली बार।

गीत-गीत में, शब्द-शब्द में छाया मधुमय प्यार
जब तुम आये पहली बार।

परमात्मा उतरता है एक नृत्य की भांति, एक गीत की भांति। मगर उतरता उसी हृदय में है, जो मस्त है।
मैं तुम्हें मस्ती सिखा रहा हूं। मैं तुम्हें सिद्धांत नहीं दे रहा; मैं तुम से कहता ही नहीं कि परमात्मा को मानो। मैं तो कहता हूंः फूलों को मान लो, परमात्मा का मानना अपने से आ जायेगा। मैं तो कहता हूंः चांद-तारों को मान लो; अगर परमात्मा है तो चांद-तारों से धीरे-धीरे तुम में उतर आयेगा। इस जगत के सौंदर्य को मान लो। इस जगत का अपरिसीम यह जो आनंद है, यह जो उत्सव चल रहा है--वृक्षों में, पौधों में, पशुओं में, मनुष्यों में--यह जो अनंत-अनंत लीला फैली है, इसको मान लो, इसको जान लो।
और इस सबको मानने के लिए किसी पर विश्वास करने की जरूरत नहीं है; तुम्हारी आंखें तुम्हें काफी प्रमाण दे रही हैं। आश्चर्य तो यह है कि तुमने क्यों अब तक हरियाली नहीं देखी, फूलों के रंग नहीं देखे, कोयल की पुकार नहीं सुनी! इसी से उतरेगा परमात्मा, शास्त्रों से नहीं। प्रकृति उसका शास्त्र है। तुम थोड़ा नाचो।
मैं तुम्हें गीत सिखा रहा हूं और नृत्य सिखा रहा हूं। इस गीत और नृत्य
के लिए ईश्वर को मानना अनिवार्य शर्त नहीं है; यद्यपि इस गीत और नृत्य में ईश्वर का मानना अनिवार्य रूप से घटित होता है।
मुझसे कोई नास्तिक आ कर कहता है कि क्या मैं भी ध्यान कर सकता हूं, क्योंकि मैं ईश्वर को नहीं मानता? मैं उससे कहता हूं, तुम्हारे मानने न मानने से ध्यान का क्या लेना-देना? तुम चिकित्सक के पास जाओगे, तुम लाख कहो कि मैं मानता नहीं एलोपैथी में। लेकिन वह कहेगा, तुम फिक्र न करो, तुम

मुझे इलाज करने दो। तुम्हारे मानने न मानने से एलोपैथी का कोई लेना-देना नहीं है। अगर इलाज ठीक खोज लिया गया तो बीमारी ठीक होगी, तुम मानो या न मानो। और जब ठीक हो जाये, तब मान लेना। अभी जल्दी मत करो। मानने की अभी जरूरत भी नहीं है। अभी मानोगे भी कैसे? यह तो जहां झूठी बातें चलती हैं, वहां मानने की बात पहले लगायी जाती है।
अगर कोई तुम्हें राख दे रहा है और कह रहा है, यह विभूति है, इसको ले लोगे तो बीमारी ठीक हो जायेगी--यहां मानना पड़ेगा। यहां अगर नहीं माना तो काम ही नहीं चलेगा। यहां तो श्रद्धा रखनी पड़ेगी। तुमने कहा, यह तो राख है, इससे क्या होगा? फिर कुछ भी नहीं होने वाला है। क्योंकि यह तो एक झूठ था। इस झूठ को तुम सच्चा मान लेते, भरोसा कर लेते, और अगर तुम्हारी बीमारी भी झूठी होती, तो ठीक हो जाती। अब यह ऐसा ख्याल रखना, कि बहुत-सी झूठी बीमारियां लोगों की हैं, जो हैं नहीं, सिर्फ उन्होंने मान रखी हैं। तुम्हारे भूत भी झूठे हैं और तुम्हारे ताबीज भी झूठे हैं। इसलिए झूठे ताबीज झूठे भूतों पर काम कर जाते हैं।
एक आदमी को वहम हो गया कि वह रात सोया था, मुंह खोल कर सोता था रात, एक सांप उसके भीतर घुस गया। और वह डॉक्टरों के पास जाये, एक्सरे निकलवाये। सांप कहीं आये न एक्सरे में। वह कहे मैं मानूं भी कैसे, वह पेट में चलता है। उसको धीरे-धीरे इतना भरोसा हो गया सांप के पेट में चलने का कि उसका जीवन ही मुश्किल हो गया। चौबीस घंटे परेशान! कोई चिकित्सक उसे ठीक न कर सका, क्योंकि सांप हो तो कोई चिकित्सक कुछ करे; सांप था नहीं। एक जादूगर ने उसे ठीक कर दिया। उसने कहा, ठीक कर देंगे, निकाल देंगे, तू सो जा। उसे चादर ओढ़ कर सुला दिया, और उसकी चादर में से एक सांप निकाल दिया--सांप, जो कि मदारी के पास था। जब उसने सांप चादर में से निकलते देख लिया, सांप भागता हुआ देख लिया, एकदम खड़ा हो गया, उसने कहा कि अब कहो? वे एक्सरे लेने वाले और बड़े-बड़े डॉक्टर, अब उन मूढ़ों को कोई समझाओ कि यह रहा सांप! बस उसी दिन से उसके पेट का उपद्रव चला गया। जब अपनी आंख से देख लिया सांप को निकलते, बात खत्म हो गयी। झूठी थी बीमारी, झूठे इलाज की जरूरत पड़ी।
तुम्हारी कोई सत्तर प्रतिशत बीमारियां झूठी होती हैं। इसलिए सत्तर प्रतिशत झूठे इलाज भी काम कर जाते हैं। इसलिए भभूत भी काम कर जाती है, शक्कर की गोलियां भी काम कर जाती हैं, ताबीज भी काम कर जाते हैं, मंत्र-तंत्र, टोटके सब काम कर जाते हैं। वह सत्तर प्रतिशत पर। वे जो तीस प्रतिशत असली बीमारियां हैं, उन पर तो चिकित्साशास्त्र ही काम करेगा, कोई और काम न कर सकेगा।
जहां परमात्मा का अनुभव करने के लिए प्रयोग किया जा रहा हो, वहां शर्त नहीं होती कि मानो। वहां तो इतना ही आग्रह पर्याप्त होता है कि प्रयोग करने की तत्परता रखो। तो मुझसे कोई नास्तिक पूछता है, मैं ध्यान कर सकता हूं? मैं कहता हूं, मजे से। तुम तो नास्तिक हो तो और भी अच्छी तरह से ध्यान कर सकते हो, क्योंकि आस्तिक को तो हजार तरह के सिद्धांत सिर में होते हैं, तुम्हारे सिर में वे भी नहीं हैं। तुम तो खाली हो और खाली होना तो ध्यान के लिए बड़ी सुगम बात है, बड़ी आवश्यक बात है। तुम्हारी न कोई धारणा, न कोई मान्यता, न कोई सिद्धांत, न कोई शास्त्र। यह सब उपद्रव तो कट ही गया! तुम तो भली स्थिति में हो। कोरा कागज है! इस पर तो जल्दी ही कुछ घटना घट जायेगी। मगर सुना है उसने भी कि बिना ईश्वर को माने ध्यान नहीं हो सकता, तो वह फिर-फिर पूछता हैः आप ठीक कह रहे हैं? ध्यान कर सकता हूं बिना ईश्वर को माने? मैं उनसे कहता हूंः ईश्वर को मानने का ध्यान से लेना-देना क्या है? ध्यान चुप हो कर बैठना है। इसमें ईश्वर का मानना और न मानना कहां बाधा बनता है? क्या कोई आदमी चुप नहीं बैठ सकता बिना ईश्वर को माने? ध्यान का अर्थ है शांत होना। शांत होना किसी चीज पर आधारित नहीं है--न कुरान पर, न वेद पर, न उपनिषद पर। शांत होना एक कला है।
तुम यह तो नहीं पूछते कि मैं तैरना सीख सकता हूं या नहीं, अगर मैं ईश्वर को न मानूं? ईश्वर के मानने न मानने का तैरने से क्या लेना-देना है? तैरना एक कला है। तुम यह तो नहीं पूछते, मैं चित्र बनाना सीख सकता हूं या नहीं, ईश्वर को मानूं या न मानूं? तुम यह तो नहीं पूछते कि वीणा बजा सकूंगा या नहीं मैं ईश्वर को नहीं मानता हूं, नास्तिक हूं वीणा बजेगी कि नहीं?

अगर वीणा बज सकती है, अगर चित्र बन सकता है, अगर गीत रच सकता है, तो ध्यान भी एक कला है--चुप होने की, मौन होने की कला है। शांत होने की, निर्विचार होने की कला है।
ईश्वर तो स्वयं ही एक विचार है। इसलिए उससे क्या खाक सहायता मिलेगी! नास्तिक निर्विचार हो सकता है। और जो निर्विचार हो गया, वह जानता है
कि परमात्मा है। परमात्मा निर्विचार का अनुभव है। और तब एक और ही ढंग की आस्तिकता आती है--प्रज्वलित, प्रदीप्त, हजार-हजार दीयों से सजी हुई एक दीपमालिका उतरती है! भीतर फूल खिलते हैं और दीये जलते हैं। फूल ऐसे कि जिनमें दीये जलते हैं! दीये ऐसे जो कि फूल जैसे हैं! गंध और स्वाद का एक अनंत विस्तार फैल जाता है। जीवन रसमय हो उठता है। जीवन में छंद का जन्म होता है। उसी छंद का नाम परमात्मा है।

भभक उठी धरती की छाती,
भर आया अंबर का अंतर
मिलन हुआ ऐसा दीवाना
जल बरसा घड़ियों तक झर-झर।
बेसुध झड़ियां, बेसुध झोंके,
बेसुध निरे सलोने मेघ!
नभ में घिरे सलोने मेघ!
कूकी पिकी, मयूर नच उठा,
इंद्रधनुष उमड़ा पांखों में, झूम गई तसवीर स्वाति की
चातक की प्यासी आंखों में! सरिता के जल में हंसों केदल-से तिरे सलोने मेघ!
नभ में घिरे सलोने मेघ!
रात हुई तम के मंडप में
नाच उठी चपला-मधुबाला।
खनक उठे बूंदों के नूपुर,
छलक उठा प्याले पर प्याला।
मद्यप-से उठ-उठकर फिर-फिर
भू पर गिरे सलोने मेघ!
नभ में घिरे सलोने मेघ!
जब तुम मौन हो जाते हो तो तुम्हारे भीतर अमृत के मेघ घिरते हैं; परम ज्योति की बिजलियां कौंधती हैं; रस की वर्षा होती है। उस सबका इकट्ठा नाम परमात्मा है।
परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है, कि बैठे हैं गणेश जी हाथी की सूंड लगाये हुए और तुम्हें उनके दर्शन होंगे। परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है, कि बैठे हैं तीन मुख लगाये हुए। कोई नाटक है? ब्रह्मा, विष्णु, महेश--इधर से देखो ब्रह्मा, उधर से देखो विष्णु, इधर देखो महेश। मुखौटे लगाये बैठे हैं! परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है। परमात्मा शाश्वत की प्रतीति है; अनादि का, अनंत का अनुभव है। जो न कभी मरता और न कभी जन्मता, उस चैतन्य की, उस चेतना की अनुभूति है।
और तुमने पूछा कि "जिसकी खोज थी वह मिल रहा है। लेकिन ऊपरी शरीर बिल्कुल मर-सा गया है। प्रभु, यह सब क्या है?"
ऊपरी तो मरेगा, अब भीतरी जग रहा है। परिधि तो विदा हो जायेगी अब, केंद्र निर्मित हो रहा है। इसलिए तुम कहते होः बुढ़ापे में भी युवा अनुभव कर रहा हूं। अब जीवन-धारा बदल रही है अपना आयाम। अब तक देह पर ठहरी थी, अब आत्मा में ठहरेगी। शरीर तो न के जैसा हो जायेगा। आत्मा सघन होगी। शरीर तो खोने ही लगेगा, भूलने ही लगेगा, विस्मरण होने लगेगा। यही तो अर्थ है गोरख काः
मरौ हे जोगी मरौ, मरौ मरण है मीठा।
तिस मरणी मरौ, जिस मरणी मरि गोरख दीठा।।

ऊपर से मौत हो जायेगी, भीतर से परम जीवन का अनुभव होगा। बाहर अब धीरे- धीरे व्यर्थ हो जायेगा। अब भीतर की सार्थकता आयेगी। अभी तक तुम परिधि पर जीये थे, अब केंद्र पर जीवन शुरू हो रहा है। शुभ यह घड़ी है। सलोने मेघ घिर रहे हैं। खूब वर्षा होने के करीब है! चलते चलो--और मस्ती में, और गीत-गान में, और नृत्यपूर्ण... ।
देह तो गिर ही जायेगी। देह तो गिरनी ही है। गिरना देह का स्वभाव है। धन्यभागी हैं वे, जो मृत्यु के पहले जान लेते हैं कि देह गिर गयी। जो मृत्यु के पहले मर जाते हैं, फिर उनकी कोई मृत्यु नहीं होती। फिर जब मृत्यु में देह गिरती है तो उनका कुछ भी नहीं बिगड़ता। वे जानते ही हैं कि यह तो पहले ही हो चुका है।
सिकंदर ने एक फकीर को धमकी दी थी कि मेरे साथ यूनान चल; अगर नहीं चला
तो गर्दन काट दूंगा। वह फकीर खिलखिला कर हंसने लगा था। उसने कहा यह भी खूब रही! अब तुम गर्दन काटोगे? मैं तो खुद ही उसे कभी का काट चुका! काटो भाई काटो, उसने कहा। तुम भी काट लो। तुम्हारा भी मन रह जाये।
सिकंदर के, कहते हैं, हाथ ठहर गये थे नंगी तलवार लेकर! बहुत लोग उसने देखे थे, लेकिन ऐसा आदमी नहीं देखा था जो कहने लगाः काटो भाई काटो, काट लो, तुम्हारा भी मन रह जाये। जहां तक मेरी बात पूछते हो, मैं तो उसे पहले ही काट चुका हूं। अब गर्दन कट कर गिरेगी तो तुम भी देखोगे गिर रही है, और मैं भी देखूंगा कि गिर रही है। मैं तो पहले ही देख चुका हूं कि उससे अलग हूं। लेकिन मैं तुम से कहे देता हूं कि मेरी गर्दन को काट कर यह मत सोचना कि तुमने मुझे काटा। इस भ्रांति में मत पड़ना। मुझे कोई भी नहीं काट सकता है। नैनं छिदंति शस्त्राणि, नाहम दहति पावकः। न तो शस्त्र मुझे छेद सकते हैं, न आग मुझे जला सकती है।

दूसरा प्रश्नः आप और श्री कृष्णमूर्ति जीवन में आदर्शों के बहुत विरोध में मालूम होते हैं। यह सच भी है कि आदर्शों के कारण जीवन में बहुत पाखंड पैदा हो जाता है। लेकिन यदि दूसरे छोर से इस पहलू पर विचार किया जाये तो यह खतरा खड़ा होता है कि आदर्शों की चुनौती के बिना जीवन में विकास असंभव हो जायेगा। मनुष्य और पशु में भेद नहीं रहेगा। तो क्या आदर्शों के चुनाव में भूल है? क्या इस पर कुछ कहने की अनुकंपा करेंगे?

मैत्रेय! पहली तो बातः पशु और मनुष्य में भेद होना ही चाहिए, यह अहंकार भी क्यों? यह भेद की भाषा क्यों? मनुष्य और पौधों में भी क्यों भेद होना चाहिए? मनुष्य और पहाड़ों में भी क्यों भेद होना चाहिए? अभेद है। एक ही प्रगट हुआ है अलग-अलग रूपों में। वही पत्थर है, वही परमात्मा है।
इसी बात की उदघोषणा करने के लिए तो हमने पत्थर की प्रतिमाएं बनाईं।
वे प्रतिमाएं परमात्मा की प्रतिमाएं नहीं हैं। वे प्रतिमाएं सिर्फ एक शाश्वत सत्य की घोषणा हैं कि पत्थर में भी वही है। पत्थर सर्वाधिक मूर्च्छित है; सर्वाधिक मूर्च्छित पत्थर में भी सर्वाधिक जाग्रत है। इसलिए हमने बुद्ध की प्रतिमा बनाई। बुद्ध यानी सर्वाधिक जागरूक! और संगमरमर का पत्थर सर्वाधिक सोया हुआ है।
नितांत प्रसुप्त अवस्था में जो पत्थर है, उसमें भी जागरण का जो परम रूप है, वह छिपा पड़ा है। पत्थर परमात्मा की ही निद्रा है और परमात्मा पत्थर का ही जाग जाना है। इस समीकरण की घोषणा करने के लिए हमने पत्थर की प्रतिमाएं बनाईं। वे परमात्मा की प्रतिमाएं नहीं हैं, याद रखना। वे तो इस गहरे समीकरण की सूचनाएं हैं। यह गणित जाहिर करने का उपाय है। यह प्रतीक है।
तो पहली तो बातः यह भ्रांति भी अहंकार के कारण पैदा होती है कि मनुष्य
को पशु से कुछ विशिष्ट होना चाहिए; मनुष्य को पशु से भिन्न होना चाहिए। और सच यह है कि इस भिन्नता की दौड़ में मनुष्य पशु से ऊपर नहीं उठा, नीचे गिर गया है। कोई पशु इतना खतरनाक नहीं जितना मनुष्य है! पशु हिंसा भी करते हैं, लेकिन तभी जब भूखे होते हैं; आदमी बिना भूख के हिंसा करता है। हिंसा को खेल समझता है--आखेट! सताने में मजा लेता है। पशु तो किसी को मार डालेंगे, लेकिन कोई पशु ऐटमबम, हाइड्रोजन बम नहीं बनाता। आदमी ने इतने

हाइड्रोजन बम बना लिये हैं कि पूरी पृथ्वी भस्मीभूत हो सकती है क्षणों में! कोई पशु अपनी ही जाति पर हमला नहीं करता; सिर्फ आदमी को छोड़ कर! कोई सिंह सिंह पर हमला नहीं करता। सिर्फ आदमी अकेला है, जो आदमियों को मारता है। इतना ही नहीं, आदमी आदमी को खाता भी रहा है। अभी भी कुछ कबीले हैं--अभी भी, बीसवीं सदी में भी--जो मौका पा जायें तो आदमी को खा जायें!
कोई पशु अपनी ही जाति के प्राणियों को नहीं खा सकता। ये तो खूब खूबियां हुईं! कोई पशु मनुष्य जैसा विकृत नहीं होता। जंगल में पशु कभी पागल नहीं होते। अब तक कोई पागल शेर नहीं पाया गया, पागल हरिण नहीं पाया गया, पागल तोता नहीं पाया गया--जंगल में। हां, अजायबघर में पागल हो जाते हैं। अजायबघर आदमी की दुनिया है, वहां पागल हो ही जाये! अब एक शेर को पींजड़े में बंद कर दिया है; जो मीलों का मालिक था, जो छलांगें लगाता था पहाड़ियों पर, उसको एक पींजड़े में बंद कर दिया है! अब वह पींजड़े में इधर से उधर घूम रहा है।
तुमने देखा होगा सरकस में या अजायबघर में शेर घूमता ही रहता है पींजड़े में। वह सैकड़ों मील तक दौड़ भरनेवाला... उसको एक छोटे-से घेरे में बंद कर दिया है। पगला नहीं जायेगा तो क्या करेगा? आदमी के साथ रह कर जानवर तक पागल हो जाते हैं, विक्षिप्त हो जाते हैं।
एक दिन अखबार में खबर थी, मोरारजी देसाई का वक्तव्य था सेक्स के विरोध में, कामवासना के विरोध में। वे तो हमेशा वैसे वक्तव्य देते हैं। मगर उस दिन बड़ा मजेदार मामला था! उसी अखबार में दूसरे पन्ने पर खबर थी पूना के अजायबघर की, कि वहां एक सिंह को सिंहनी नहीं मिल सकी। उसको कुछ नहीं सूझा तो अपनी पूंछ चबा गया! सिंहनी नहीं मिली, कामवासना को दबाने के कारण ऐसा क्रुद्ध हो गया कि अपनी पूंछ चबा गया! एक ही अखबार में ये दोनों खबरें... । एक मोरारजी हैं जो कह रहे हैं कामवासना को दबाओ और एक सिंह है जो पूंछ चबा गया!
अप्राकृतिक कुछ भी आत्मघाती हो जाता है। आदमी की पूंछ नहीं है, तो पूंछ तो नहीं चबा सकता, लेकिन आत्मा चबा जाता है! उसके भीतर की सारी गौरव-गरिमा मर जाती है। अप्राकृतिक होना आदमी को ही सूझा है। और कोई पशु अप्राकृतिक नहीं है।
तो आदमी को विशिष्ट होना ही चाहिए, यह भ्रांति क्यों ले कर चलते हो? भिन्न है, यह तो सच है; मगर विशिष्ट है, यह सच नहीं है। दोनों बात का भेद समझ लेना। भिन्न तो है निश्चित ही। तोता भिन्न है कौए से; मगर तोता विशिष्ट है कौए से, यह मत कहो। ऊंचा है, नीचा है, यह भी मत कहो। कौआ कौआ है, तोता तोता है। भिन्न हैं दोनों, मगर अपनी भिन्नता में समान हैं।
ऐसे ही मनुष्य भी भिन्न है। लेकिन विशिष्ट मत कहो। और मनुष्य खुद ही कहता है अपने को विशिष्ट। यह भी तुम थोड़ा सोचो।
मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन गांव के बाजार में जा कर कह दिया कि मेरी स्त्री दुनिया में सबसे ज्यादा सुंदर है। किसी ने पूछ लिया कि बड़े मियां, यह तो तुमने बड़ी नयी खबर सुनाई, मगर तुमको बताया किसने? "बताया किसने, मेरी स्त्री ने खुद ही कहा है। अब वह कोई झूठ थोड़े ही बोलेगी।"
आदमी खुद ही कह रहा है! किसी जानवर के हस्ताक्षर लिये तुमने इस पर? किसी सिंह से कहा कि भाई, दस्तखत करो? एक ऐसा झपाटा मारेगा... कि सर्टिफिकेट पर दस्तखत करो कि आदमी विशिष्ट है!
तुमने कहानी तो सुनी है न, एक सिंह को यह सवार हो गया ख्याल कि फिर से पूछ ले एक दफा राजा मैं ही हूं न! पूछा खरगोश से। खरगोश ने कहा कि मालिक, आप ही हैं और कौन होगा? खरगोश तो घबड़ा गया, जैसे ही सिंह ने पकड़ा उसे कि एक मुसीबत आयी! जैसे ही उसने कहा कि मालिक, आप ही हो राजा, खरगोश को छोड़ दिया सिंह ने। पकड़ा एक हरिण को। उसने भी कहा कि आप ही हैं सम्राट, सदा से आप हैं! ऐसा और भी पूछता फिरा। फिर एक हाथी के पास आया, हाथी से कहा कि तुम्हारा क्या ख्याल है, सम्राट कौन है? हाथी ने उसे अपनी सूंड में लिया और घुमाकर फेंका कोई पचास फीट दूर। जमीन पर गिरा, हड्डी चकनाचूर हो गयी। झाड़-पोंछ कर उठा और हाथी से बोला कि भाई, अगर तुम्हें ठीक उत्तर मालूम नहीं, तो साफ कह देते! इतना नाराज होने की क्या बात थी? कह देते कि हमें नहीं मालूम, बात खत्म हो गयी!

किसी पशु से पूछो! तोते से पूछोगे, तो कहेगाः कहां है तुम्हारे पास ऐसी हरियाली जैसी मेरे पास है? यह तोतापंखी रंग! बगुले से पूछोगे, तो कहेगाः कहां ऐसी सफेदी है तुम्हारे पास? कितनी ही शुद्ध खादी पहनो, मगर कहां यह बगुले जैसी सफेदी! चाहे पोलियेस्टर खादी बना लो, मगर नहीं पा सकोगे यह सफेदी, यह स्वच्छता! और यह ध्यानमग्न भाव... जब बगुला खड़ा होता है एक टांग पर। योगी बड़ी मेहनत से सिद्ध कर पाते हैं उसको--बगुलासन कहते हैं। बड़ी मुश्किल से एक पैर पर खड़ा होना सिद्ध कर पाते हैं। बगुला जन्म से ही लेकर आता है--बिल्कुल सिद्धपुरुष!
तुम किसी से भी पूछो। गुलाब से पूछोगे, कहेगाः कहां ऐसे फूल तुम्हारे पास हैं? कहां ऐसी सुगंध? सिंह से पूछोगे... किससे पूछोगे? जिससे पूछोगे वही हंसेगा तुम्हारी बात पर, कि जरा देखो भी तो, अपनी शक्ल तो आईने में देखो। उड़ सकते हो आकाश में मेरे जैसे? लेकिन आदमी खुद ही अपने को मान लिया है कि श्रेष्ठ है। यह अहंकार भर है।
और अक्सर ऐसा होता है, जिनको तुम धार्मिक आदमी कहते हो, उनमें यह वहम बहुत होता है कि आदमी सबसे श्रेष्ठ है। और आदमी ही किताबें लिखते हैं; कोई पशु-पक्षी इस तरह की झंझट में पड़ते ही नहीं। तो अपनी किताबों में खुद ही लिख लेते। तुम्हारे हाथ में है जो लिखना है लिख लो, तो लिख लिया किताब में कि परमात्मा ने आदमी को अपनी ही शक्ल में बनाया है। अब न परमात्मा से किसी ने पूछा, न उसने कोई सर्टिफिकेट दिया, न किसी और पशु-पक्षी से पूछा। अगर गधे किताब लिखेंगे तो बराबर किताब में लिखेंगे कि परमात्मा ने गधों को अपनी ही शक्ल में बनाया। और किसकी शक्ल में बनायेगा?
यह तो प्रत्येक की अस्मिता है। यह अहंकार धार्मिक व्यक्ति को नहीं होना चाहिए। मगर धार्मिक व्यक्ति में सर्वाधिक पाया जाता है, कि हम पशु से कुछ श्रेष्ठ हैं। यह श्रेष्ठ की भावना तो सभी में पायी जाती है। यह अहंकार तो सभी में है। कोई कहता है, कोई नहीं कहता है। यह कुछ विशिष्ट बात नहीं है। असली विशिष्टता तो तभी पैदा होती है जब यह सारा अहंकार चला जाता है। मगर उस घड़ी में न तो तुम मनुष्य होते, न तुम पशु होते, न पक्षी होते--तुम सिर्फ चैतन्य मात्र रह जाते हो। वह घड़ी विशिष्ट है। ये तो ऊपर के ही खोलों के भेद हैं--कोई तोता है, कोई कौआ है, कोई बगुला है, कोई आदमी है, कोई घोड़ा है, कोई सिंह है। ये तो सिर्फ घरों के भेद हैं, भीतर जो बसा है वह तो एक ही है--एक ही चैतन्य! ये तो आवरण-भेद हैं। कोई गुलाब है, कोई जूही है, कोई चमेली है; मगर भीतर जो रसधार बह रही है जीवन की वह तो एक ही है। कहीं फूल सफेद और कहीं लाल और कहीं पीले, मगर भीतर जो खिल रहा है फूलों में, वह खिलावट तो एक ही है।
तो पहली बात तोः इस धारणा को जाने दो कि आदमी कुछ विशिष्ट है। नहीं तो
यह अकड़ बड़े नुकसानों में ले जाती है। फिर आदमी पर ही थोड़े बात रुकती है। एक दफा यह बीमारी शुरू हो जाये तो सवाल उठता है कि आदमी में गोरे विशिष्ट हैं कि काले? सवाल खत्म तो नहीं होता फिर आदमी पर ही। फिर लम्बी नाक वाले विशिष्ट हैं कि चपटी नाक वाले? फिर कौन उन्हें तय करे?
जब पहली दफा अंग्रेज चीन पहुंचे, तो वे बड़े हैरान हुए चीनियों को देख कर! उन्होंने अपनी किताबों में, डायरियों में लिखा कि बड़े अजीब आदमी हैं! ऐसे आदमी कभी देखे नहीं। दाढ़ी के नाम पर चार-छह बाल! चेहरे भी बड़े अजीब हैं। नाक भी बड़ी चपटी है। हड्डियां गाल की बड़ी प्रगाढ़ हो कर निकली हैं। और मालूम है, चीनियों ने क्या लिखा? उन्होंने अपनी किताबों में लिखा कि ये तो आदमी हैं कि बंदर! ऐसे आदमी कभी देखे नहीं। अब दोनों की किताबें मौजूद हैं। चीनियों ने लिखा कि ये बंदर हैं, आदमी नहीं हैं। और अनर्गल बकते हैं। एक शब्द समझ में नहीं आता कि ये क्या बोल रहे हैं। इनको बोलना आता ही नहीं। अभी कल ही मैं किसी का वक्तव्य पढ़ रहा था। बंगलोर में व्याख्यान दिया
उस व्यक्ति ने। खूब तैयारी की। और जब व्याख्यान के बाद कोई धन्यवाद देने खड़ा हुआ; हिंदी में ही व्याख्यान दिया। और जिसने धन्यवाद दिया उसने भी खूब प्रशंसा की, कि ऐसा सुरुचिपूर्ण, ऐसा सिद्धांतपूर्ण, ऐसा तर्कयुक्त, ऐसा गरिमायुक्त प्रवचन मुश्किल से सुनने में मिलता है! और अंत में कहा कि हम बड़े धन्यवादी हैं कि आपने ऐसा अनर्गल व्याख्यान दिया।

वह आदमी थोड़ा चौंका कि अनर्गल व्याख्यान! पहले इतनी प्रशंसा की और फिर कहा अनर्गल व्याख्यान! और जब उसने किसी और से भी बाद में बात की तो उसने भी यही कहा कि गजब का व्याख्यान दिया! खूब... बिल्कुल अनर्गल था!
तब तो उसने पूछा कि क्या मैं समझ सकता हूं कि यह अनर्गल क्यों कह रहे हैं आप लोग? तो दक्षिण में अनर्गल का मतलब और ही होता है। संस्कृत में "अर्गला" शब्द है--अर्गल, व्यवधान। अनर्गल का अर्थ होता हैः जिसमें कोई व्यवधान नहीं--धुआंधार!
बंगलोर में अनर्गल का वही मतलब होता है। यहां तो अनर्गल का अर्थ होता है--असंगत, बकवास। बकवास भी धुआंधार होती है! बकवास में कोई अर्गला नहीं होती, कोई नियम नहीं होता, कोई व्यवस्था नहीं होती। अर्गलाशून्य होता है। कोई शृंखला नहीं होती। एक से दूसरी चीज पर छलांग लगा गये, इसीलिए अनर्गल कहते हैं। वहां अनर्गल का और अर्थ है।
जब पहली दफा योरोपीयन पहुंचे चीन, तब तो उनकी भाषा कौन समझता! और चीनियों की भाषा वे क्या समझते! उन्होंने अपनी किताबों में लिखा है कि ये तो बड़ी अजीब-सी भाषा बोलते हैं! यह कोई भाषा है! अंग्रेज, जिनकी भाषा नहीं समझते थे, उनको ही वे बारबेरियन कहते थे। बारबेरियन का मतलब हैः बकवासी। जो बक-बक, बक-बक में लगे हुए हैं, वे बारबेरियन! फिर धीरे-धीरे बारबेरियन का मतलब हो गया जंगली--बर्बर।
मगर ये तो सभी की धारणाएं एक-दूसरे के बाबत ऐसी ही होने वाली हैं। फिर कैसे तय करोगे कि आदमियों में कौन श्रेष्ठ है? फिर झगड़ा चलता है! फिर अडोल्फ हिटलर कहता है कि नार्डिक ही श्रेष्ठ हैं। जर्मन जाति के ही नार्डिक श्रेष्ठ हैं, बाकी कोई श्रेष्ठ नहीं है। और जापानी मानता है कि वही श्रेष्ठ है, क्योंकि वही सूरज से सीधे पैदा हुए हैं--वे सूर्यपुत्र हैं! और हमारे देश में भी सूर्यवंशी रहे और चंद्रवंशी रहे। फिर कौन तय करेगा कि स्त्रियां श्रेष्ठ हैं कि पुरुष? अगर पुरुष किताबें लिखेंगे तो वे लिखते हैं पुरुष परमात्मा है और स्त्री नरक का द्वार है। अब स्त्रियां भी लिखने लगी हैं पश्चिम में किताबें। तो उसमें वे लिखने लगी हैं कि पुरुष दो कौड़ी का है। इसकी कोई कीमत ही नहीं है, इसका कोई मूल्य ही नहीं है। इसके बिना भी चल सकता है। इसका काम तो एक इंजेक्शन से भी हो सकता है। इसका काम ही क्या खास है! असली काम तो स्त्री का है, जो नौ महीने बच्चे को गर्भ में रखती है।
कौन तय करेगा? और अगर इस तरह तुमने तय किया तो तुम पाओगे कि बड़ी मुश्किल खड़ी हो गयी। आखिर में तुम यही पाओगे अंततः कि तुम ही श्रेष्ठ हो, और कोई श्रेष्ठ नहीं है। अहंकार का अंतिम निष्कर्ष यह होता है कि मैं श्रेष्ठ हूं और बाकी सब निकृष्ट हैं। यह पशुओं पर ही बात समाप्त हो जाने वाली नहीं है। अहंकार की अगर तुम तर्क-सरणी को मान कर चलते रहोगे तो अंत में तुम्हीं बचोगे श्रेष्ठ, और कोई श्रेष्ठ नहीं बचेगा। और यह तो पागलपन है, यह तो दीवानापन है।
धार्मिक व्यक्ति का लक्षण तो और ही है। उसका लक्षण तो यह है कि यहां सारा अस्तित्व परमात्मा से इतना लिप्त है, परमात्मा में ऐसा लीन है, यहां कौन विशिष्ट? परमात्मा ही है और एक ही परमात्मा है। कौन विशिष्ट, कैसा विशिष्ट? भिन्नताएं बहुत हैं, विविधताएं बहुत हैं, मगर सब के भीतर एक ही स्वर बज रहा है! वाद्य अलग-अलग हैं, मगर राग एक बज रहा है!
दूसरी बात, तुमने पूछाः
"आप और श्री कृष्णमूर्ति जीवन में आदर्शों का विरोध करते मालूम होते हैं। यह भी सच है कि आदर्शों के कारण ही जीवन में बहुत पाखंड पैदा हो जाता है।"
आदर्शों के कारण ही पाखंड पैदा होता है, नहीं तो पाखंड का कोई उपाय ही नहीं है। पाखंड आदर्श की छाया है। और जब तक आदमी आदर्शों से मुक्त न होगा, तब तक पाखंडों से मुक्त न हो सकेगा। और जितने बड़े आदर्श होंगे, उतने बड़े पाखंडी होंगे दुनिया में! लेकिन तुम देखते नहीं कि जब हम नियम बनाते हैं, जितने हम नियम बनाते हैं, उतने ही हम नियम तोड़ने की व्यवस्था कर देते हैं। जैसे समझो, आज से पचास साल पहले स्मगलर, तस्कर जैसा कोई आदमी नहीं था,
या था? पचास साल पहले अगर तुम से कोई कहता कि फलां आदमी स्मगलिंग करता है,

तुम कहतेः मतलब? शब्द ही अनजाना था। तस्करी! कोई किसलिए तस्करी करेगा? आवागमन मुक्त था। तुम्हें जो चीज लानी हो चीन से हिंदुस्तान, ला सकते थे। जो जापान से लानी हो, ला सकते थे। जो तुम्हें जापान को बेचनी हो, बेच सकते थे। आवागमन मुक्त था। कोई नियम नहीं थे, कोई बंधन नहीं थे। तस्करी कैसे पैदा करते? अब तुम कहोगे कि तस्करी तस्कर कर रहे हैं। मैं तुम से कहूंगाः तस्करी नियम बनाने वाले करवा रहे हैं! और तस्करी जारी रहेगी, जब तक कि दुनिया इस तरह के व्यर्थ के नियमों को छोड़ नहीं देती है। इनकी कोई जरूरत नहीं है। नाहक हजारों लोगों को तस्करी में डाला हुआ है! कोई आवश्यकता नहीं है। यह पूरी पृथ्वी एक घर होना चाहिए। लेकिन पूरी पृथ्वी की तो बात अलग, गुजरात से महाराष्ट्र में कुछ लाना है तो मुश्किल है। महाराष्ट्र से गुजरात में कुछ ले जाना है तो मुश्किल है। जिले-जिले में पाबंदियां हैं। जगह-जगह नाके हैं।
तुम जितने नियम बनाओगे, उतने तुम नियम को तोड़ने का इंतजाम करवाते हो। फिर जब नियम टूटते हैं, तो तोड़ने वाले पापी मालूम पड़ते हैं। सचाई बात कुछ और है। नियम के बनाने में ही पाप की शुरुआत है। नियम घटाओ और पाप घट जाते हैं। इतने न्यूनतम नियम होने चाहिए, जो कि बिल्कुल मजबूरी में हों, वही नियम होने चाहिए दुनिया में, उतने ही पाप कम हो जायेंगे। अगर नियम न्यूनतम होंगे, तो नियम का उल्लंघन न्यूनतम हो जायेगा। आदर्श जितने कम होंगे, उतने पाखंड कम होंगे। और तुम्हारे आदर्श जितने ज्यादा होंगे, उतने पाखंड बढ़ते जायेंगे। इसलिए जितना आदर्शवादी देश होता है, उतना ही पाखंडी होता है। यह विरोधाभास घटता है। भारत जैसा पाखंडी देश दुनिया में खोजना मुश्किल है, क्योंकि इस जैसा आदर्शवादी देश खोजना मुश्किल है। लोग बहुत चौंकते हैं इस बात को देख कर कि ये दोनों बातें एक साथ क्यों घटती हैं! ये घटने ही वाली हैं।
जब तुम अति आदर्श बना दोगे, जो जीवन की सहजता को छिन्न-भिन्न करने लगेंगे, जो जीवन पर तनाव बन जायेंगे, तो लोग पीछे के रास्ते निकाल लेते हैं। आखिर जिंदा भी तो रहना है न! जीने भी तो दोगे किसी को कि नहीं जीने दोगे? अगर इतने तुमने नियम बना दिये हैं टैक्स भरने के कि आदमी का जीना मुश्किल हो जाये, तो वह स्वभावतः दो तरह के खाते-बही रखेगा। जीना तो है न? जीना तो पड़ेगा, तो नंबर दो का खाता पैदा होता है।
यहां जब पहली दफा पश्चिम से लोग आते हैं, जिनके देश में नंबर दो का खाता नहीं होता, उनको समझाना ही मुश्किल होता है कि नंबर दो का खाता क्या है। वे कहते हैंः "नंबर दो का क्यों? नंबर दो से मतलब क्या?" नंबर दो का खाता तभी पैदा होता है जब नंबर एक का खाता जीवन को खाने लगे, जीवन को बचने ही न दे। असंभव कर दे जीना। अनिवार्यतः पैदा हो जाता है।
मैं दोष नहीं देता नंबर दो के खाता बनानेवालों को। मेरी मान्यता है
कि वह नंबर एक के खाते को तुमने इतना मुश्किल कर दिया है, कि अब जिनको भी जीना है उनको मजबूरी में नंबर दो का खाता बनाना पड़ेगा। और जिनको नहीं जीना है, जिनको मरना है, वे खाता ही क्यों रखेंगे? नंबर एक का भी क्यों? उनके लिए पहाड़, नदी, बहुत से स्थान हैं मरने के लिए! खाते में क्यों सिर मारेंगे! जिनको मरना ही है, आत्मघात ही करना है, उनके लिए बहुत उपाय हैं। और अगर आत्मघात करने की हिम्मत नहीं है, तो कम-से-कम साधु-संत होकर तो बैठ ही जा सकते हैं! न रहा खाता, न खाते की झंझट रही। न रहा बांस न बांसुरी के बजने का उपद्रव रहा। मगर मंदिर-मस्जिद में बैठ जायेंगे साधु-संत हो कर, तो भी उनको खिलायेगा कौन? नंबर दो का खाता ही खिलायेगा! क्योंकि नंबर एक का खाता तो लोगों को नहीं खिला पा रहा है, साधु-संतों को कहां से खिलायेंगे?
इसे थोड़ा समझो, तुम आदर्श अगर अति बना लोगे, आदर्श अगर असंभव बना लोगे
तो शायद कोई एकाध झक्की, पागल, दुराग्रही उसको पूरा करने में लग जाये, लेकिन बाकी निन्यानबे प्रतिशत सीधे-सादे लोग अड़चन में पड़ जायेंगे। उनके पास एक ही उपाय रहेगा कि मुखौटे ओढ़ लें; दिखाएं कुछ, करें कुछ; बतायें कुछ, हों कुछ।
मैं एक ऐसी दुनिया चाहता हूं जहां आदर्श कम-से-कम हों, न्यूनतम हों; जो मजबूरी में हों बिल्कुल। किस बात की मजबूरी? उतने ही आदर्श होने चाहिए, उतने ही नियम होने चाहिए जिनके आधार से दूसरे को हम नुकसान न पहुंचा सकें,

बस। दूसरे के जीवन में बाधा हम न डाल सकें, इतने नियम काफी हैं। इससे ज्यादा नियम की कोई आवश्यकता नहीं है। और उतने नियम आदमी बराबर पूरे कर सकता है। कोई अड़चन नहीं है। कौन किसी की जिंदगी में बाधा डालना चाहता है? किसलिए? अगर प्रत्येक व्यक्ति को अपना जीवन जीने की सुविधा मिले, सुख मिले, शांति मिले, कौन किसके जीवन में बाधा डालना चाहता है? बाधा दूसरे के जीवन में डालो, तो खुद के जीवन में भी बाधा पड़ती है। यह कोई सस्ता सौदा नहीं है! तुम दूसरे को परेशान करोगे, तो तुम परेशान किये जाओगे।
फिर आदर्श से अर्थ होता हैः दूर आकाश के तारे हैं... ! ऐसा होना है, वैसा होना है। और उस होने की दौड़ में तुम यह भूल जाते हो कि तुम कैसे हो। जो है, वह तो भूल जाता है; और जो होना है, उस पर आंखें अटक जाती हैं। और जो है वही यथार्थ है। जैसे एक आदमी को टी. बी. है, यह तो यथार्थ है; और स्वस्थ होना चाहिए, मुहम्मद अली की तरह पहलवान होना चाहिए कि गामा की तरह पहलवान होना चाहिए--यह आदर्श है। तो घर में गामा पहलवान की तस्वीर लगाये हुए हैं, रोज उसकी आरती उतारते हैं। और टी. बी. है। भीतर सड़ रहे हैं, मगर आंखें गामा पहलवान की तसवीर पर लगा रखी हैं! क्या होगा इससे? इससे कोई टी. बी. से छुटकारा हो जायेगा? सच तो यह है कि इसके कारण टी. बी. से छुटकारे का उपाय ही न रह जायेगा। तुम्हारी आंख ही टी. बी. पर नहीं है। तुम्हारी आंख लगी है गामा पहलवान की तसवीर पर। और तुम्हारी आंख होनी चाहिए थी टी. बी. पर, तो कुछ उपाय हो सकता था, तो चिकित्सा हो सकती थी।
आदमी क्रोध से जला जा रहा है और अक्रोध का आदर्श बना कर बैठा है! क्रोध
पर नजर रखो, क्रोध पर ध्यान लाओ। अक्रोध इत्यादि के आदर्श छोड़ो। उनसे कुछ भी न होगा। क्रोध पर नजर गड़ाओ। जो तुम्हारा यथार्थ है उसी यथार्थ के साथ जीने में मार्ग है। जो व्यक्ति अपने क्रोध के प्रति जागेगा, वह धीरे-धीरे क्रोध से मुक्त हो जायेगा। अब यह बड़े मजे की बात है कि क्रोध से मुक्त हो जाये तो अक्रोध फलित होगा। अक्रोध आदर्श की तरह नहीं आयेगा। तथ्य को जानने, तथ्य से मुक्त होने में फलित होता है। तुम्हारे भीतर तो घृणा भरी है--और प्रेम का आदर्श, बातें प्रेम की, भाईचारे की, विश्वबंधुत्व की। और भीतर घृणा भरी है, और भीतर घृणा का जहर भरा है। उसी घृणा के जहर को तुम छिपा रहे हो प्रेम की ओट में। इससे क्या होगा? बाहर प्रेम की बातें होती रहेंगी और भीतर घृणा बढ़ती जायेगी, फैलती जायेगी; कैंसर की तरह तुम्हारी आत्मा को घेर लेगी!
नहीं, मैं तुमसे कहता हूंः प्रेम के आदर्श छोड़ो। घृणा यथार्थ है, तो इसी घृणा पर आंखें गड़ाओ। इसके साक्षी बनो। इसको पहचानो। इसकी पर्त-दर-पर्त गहराई में उतरो। इसकी सीढ़ियों को पार करो। इस घृणा से परिचित होना ही होगा कि यह घृणा क्यों है, क्या है? कहां से आती है? क्यों आती है? इसका राज क्या है? इसका बल कहां छिपा है? इसी खोज से तुम चकित हो जाओगे। जिस दिन तुम घृणा के सारे मार्ग जान लोगे, उसके उठने के, जगने के सारे उपाय पहचान लोगे; जिस दिन तुम घृणा का सारा शिकंजा समझ लोगे--उसी दिन तुम उसके बाहर हो जाओगे। समझ मुक्ति है। क्योंकि जिसने घृणा के सब रास्ते जान लिये, वह भूल कर भी घृणा नहीं कर सकता। वह नींद में भी घृणा नहीं कर सकता। स्वप्न में भी घृणा नहीं कर सकता। क्यों? क्योंकि घृणा आत्मघाती है। यह अपने ही जीवन के आनंद को अपने ही हाथों नष्ट करना है। और जो घृणा नहीं कर सकता, उसके भीतर प्रेम का आविर्भाव होता है।
तो तुम यह मत समझना कि मैं नहीं चाहता हूं कि तुम्हारे जीवन में प्रेम आये। प्रेम तो आना चाहिए, मगर आदर्श की तरह प्रेम नहीं आयेगा। आदर्श के कारण ही नहीं आ पा रहा है। आदर्शों को जाने दो। तथ्यों में जीयो। फिर तथ्य चाहे कितने ही कड़वे क्यों न हों, और कितने ही कांटे की तरह क्यों न चुभते हों, जो हमारी असलियत है उससे परिचित होना ही होगा। और तब क्रांति घटती है--अपूर्व क्रांति! तथ्य के परिचय से सत्य का जन्म होता है। और जो ऊर्जा क्रोध बनी थी, वही ऊर्जा क्रोध से मुक्त हो जाती है, करुणा बन जाती है। जो ऊर्जा कामवासना बनी थी, वही कामवासना से मुक्त हो जाती है तो राम की खोज बन जाती है। जो काम थी, वही राम बन जाती है। और जो ऊर्जा घृणा बनी थी, वही घृणा से मुक्त हो जाती है। तो प्रेम की वर्षा होने लगती है।

घृणा और प्रेम एक ही ऊर्जा के दो ढंग है। घृणा गलत ढंग है, प्रेम सही ढंग है। लेकिन गलत ढंग को जाने बिना कोई सही ढंग को उपलब्ध नहीं होता। और सही ढंग को उपलब्ध होने के लिए कुछ भी नहीं करना पड़ता, सिर्फ गलत को जान लेना होता है। जिस दिन तुम्हें समझ में आ गया कि यह दीवाल है, इससे निकलना संभव नहीं है, सिर टूटता है--बस उसी दिन दीवाल से निकलना बंद हो गया। अब तुम दरवाजे की तलाश करोगे। और दरवाजा है। जैसे दीवाल है, वैसे ही दरवाजा भी है। तुम्हारे जीवन में ऊर्जा को रूपांतरित करने की व्यवस्था है--जन्मगत! कंकड़-पत्थर हो कर भी मर सकते हो, हीरे-जवाहरात भी हो सकते हो! लेकिन आदर्शों के कारण तुम नहीं हो पा रहे हो, यही अड़चन की बात है।
आदर्श की बात बड़ी ऊंची मालूम पड़ती है। लेकिन आदर्श ही मनुष्य को रूपांतरित नहीं होने देता। हिंसा भरी है; "अहिंसा परमो धर्मः" दीवाल पर लटकाये बैठे हैं! भीतर कोई परमात्मा का भाव नहीं है और घर में एक परमात्मा की मूर्ति लगा ली है। एक पुजारी किराये पर रख लिया है, वह घंटी इत्यादि बजा कर परमात्मा को समझा-बुझा कर, सुला कर चला जाता है। फिर उसको कोई तुम्हारे ही घर के एक परमात्मा को थोड़े ही सुलाना है, और भी कई घरों में जाना है। जा कर जल्दी से घंटी बजा कर, जंतर-मंतर करके... कोई देखता भी नहीं कि वह क्या कर रहा है! फिर उसको जल्दी भी रहती है, कई को निपटाना है। कोई एकाध का थोड़े ही मामला है।
तुम क्या कर रहे हो? तुम्हारे जीवन में परमात्मा का कोई अनुभव नहीं और
घर में एक कोने में मूर्ति लगा दी है। और वह भी एक किराये का नौकर रख छोड़ा है! उस मंदिर में तुम खुद भी कभी नहीं जाते। उस मंदिर में कभी तुम बैठकर दो आंसू नहीं बहाते। तुम्हारी जिंदगी में है ही नहीं प्रेम; तुम्हारी जिंदगी में है ही नहीं प्रार्थना। मगर यह मंदिर तुम्हें धोखा दे देता है। इससे तुम्हें ऐसा एहसास होने लगता है कि अब और क्या करना है, जो करना था कर तो दिया! मंदिर बनवा दिया। मूर्ति लगवा दी। पुजारी रखवा दिया। अब और क्या जान के पीछे पड़े हो? आदर्श और क्या चाहिए? जिनके पास और सुविधा है, और मंदिर बनवा देते हैं, गांव-गांव बनवा देते हैं। जगह-जगह मंदिर खड़ा करवा देते हैं। इतने तो परमात्मा के मंदिर बनवा दिए, और क्या करना है? इस तरह से आदमी आदर्श की आड़ में अपने यथार्थ को बचाये चला जाता है।
आदर्श का विरोध इसलिए नहीं है कि हम नहीं चाहते कि जगत में प्रेम हो।
हम चाहते हैं कि जगत में प्रेम हो, इसलिए विरोध है। हम चाहते हैं जगत में अहिंसा हो, इसलिए "अहिंसा परमो धर्मः" इस आदर्श से छुटकारा पाओ। अभी तो हिंसा तुम्हारा यथार्थ है। अपनी बीमारी पहचानो। अपनी बीमारी के प्रति जागो। उसी जागरण से तुम स्वस्थ होना शुरू होओगे।
तुम पूछते हो कि अगर आदर्श छोड़ दिए जायें, तो जीवन में चुनौती न रह जायेगी, फिर विकास कैसे होगा? चुनौती तो जीवन ही काफी दे रहा है। आदर्श से कहीं चुनौती मिलती है? आदर्श से झूठी चुनौती मिलती है, असली चुनौती जीवन से मिलती है। जब भी तुम क्रोध करते हो, क्या तुम्हें पीड़ा नहीं होती? जब भी तुम क्रोध में जलते-भुनते हो, क्या तुम्हें सुख मिलता है? सच, सुख मिलता है? फूल बरसते हैं? कांटे-ही-कांटे छाती में नहीं चुभ जाते हैं? पछताते नहीं हो? पीछे हारे-थके अनुभव नहीं करते हो? पीछे सोचते नहीं हो कि यह मूढ़ता कब छूटेगी? हर बार क्रोध करके तुम मूढ़ सिद्ध नहीं होते हो? तुम्हारी आंखों में अपनी ही प्रतिष्ठा नहीं गिर जाती? अब इसके लिए कोई अक्रोध का आदर्श थोड़े चाहिए, क्रोध ही काफी चुनौती है। और अगर क्रोध भी चुनौती नहीं है, तो अक्रोध का सिद्धांत, जो किताबों में लिखा है, वह क्या खाक चुनौती बनेगा? क्रोध ही तो काफी मौके दे रहा है, रोज-रोज मौके दे रहा है। जब भी क्रोध होता है, तभी तो तुम्हें खबर दे रहा है क्रोध, कि फिर... फिर तुमने मूढ़तापूर्ण व्यवहार किया। फिर तुमने मूर्च्छित व्यवहार किया। और मूर्च्छा दुख लाती है। और जागरूकता आनंद लाती है।
जब भी तुम प्रेम करते हो, तभी रस बहता है, आनंद आता है। जब भी तुम किसी
को हाथ बढ़ाकर सहारा देते हो, तब तुमने देखा कैसी पुलक फैल जाती है भीतर, प्राणों पर! कैसी आभा तैर जाती है! इससे बड़ी और क्या चुनौती चाहिए? जीवन पर्याप्त है। जीवन में सब तो है। यहां सुख के अनुभव हैं। सुख चाहिए, तो उन अनुभवों को गहराये जाओ। यहां दुख के अनुभव हैं। दुख चाहिए तो दुख के

अनुभवों को गहराये जाओ। आदर्शों के कारण अड़चन हो रही है, उलझाव हो रहा है! सीधी-सीधी बातें नहीं दिखाई पड़ पातीं! जीवन बिल्कुल साफ है। सामने खड़ा है। और जीवन पर्याप्त है। जीवन के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं चाहिए।
जब कोई तुम्हें अपमानित करता है, तो तुम्हें पीड़ा होती है। इसमें ही
तो सारी चुनौती छिपी है! इससे साफ हो गयाः किसी को अपमानित मत करना, अन्यथा उसे पीड़ा होगी। और पीड़ा का प्रतिफल अच्छा तो नहीं होगा। जिसको तुम अपमानित करोगे, वह बदला लेगा। बुद्ध ने कहा हैः वैर से वैर शांत नहीं होता। यह कोई सिद्धांत नहीं है, न कोई आदर्श है; यह तो सीधे जीवन का अनुभव है। यह तो तुम्हारा भी अनुभव है। प्रेम से प्रेम बढ़ता है, घृणा से घृणा बढ़ती है। अब तुम्हें अपनी बगिया में अगर फूल लगाने हों, तो कांटे मत बोओ, बबूल मत बोओ।
लेकिन आदर्श में सुविधा हैः बोते बबूल हो, आशा रखते हो गुलाबों की। सोचते हो कल गुलाब होंगे, एक दिन तो गुलाब होंगे। आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों, इस जन्म में नहीं तो अगले जन्म में, एक दिन तो गुलाब पैदा करने हैं! और गुलाबों पर आंखें अटकी रहती हैं, और मूर्च्छा में तुम्हारे हाथ बबूल बोते रहते हैं। तुम आज बबूल बो रहे हो, कल भी बबूल काटोगे, परसों भी बबूल काटोगे! क्योंकि जो तुमने बोया ही नहीं है आज, उसकी फसल कैसे काटोगे! मैं कहता हूंः आंखें तुम जमीन पर लाओ। वापिस जमीन पर आओ। यथार्थवादी बनो, आदर्शवादी नहीं।
यूनान में ऐसा हुआ, एक ज्योतिषी रात आकाश के तारों का अध्ययन करता हुआ चला जा रहा था, एक कुएं में गिर पड़ा। पाट नहीं थी कुएं पर। आंखें आकाश में अटकी थीं। चांद-तारों का अध्ययन हो रहा था। कुएं में गिर पड़ा तो चिल्लाया। पास के ही झोपड़े से एक गरीब बुढ़िया ने उसे बामुश्किल निकाला। वह यूनान का सबसे बड़ा ज्योतिषी था। सम्राट भी उसके द्वार पर आते थे।
उसने बुढ़िया का बहुत-बहुत धन्यवाद किया और कहा कि देख, तुझे पता नहीं
कि तुझे सौभाग्य से किसको बचाने का अवसर मिला है! मैं यूनान का सबसे बड़ा ज्योतिषी हूं। तारों, नक्षत्रों, उनकी गतिविधियों, मनुष्य के भाग्य से उनके संबंध में मुझसे बड़ा कोई जानकार पृथ्वी पर नहीं है। बड़े से बड़े सम्राट मेरे पास आते हैं। मेरी फीस भी बहुत ज्यादा है। लेकिन तूने मुझे बचाया है तो तेरा भाग्य मैं बिना फीस के देख दूंगा, तू कल आ जाना।
वह बुढ़िया हंसने लगी। उस ज्योतिषी ने कहाः तू हंसती क्यों है? उसने कहाः मैं इसलिए हंसती हूं कि जिसे अपने सामने का कुआं नहीं दिखाई पड़ता, उसे चांद-तारों की गतिविधि, नक्षत्र और भविष्य... । तुझे अपने पैर सम्हलते नहीं हैं, तू मेरा भविष्य बतायेगा? होश में आ!
और कहते हैं यह घटना उस ज्योतिषी के जीवन में क्रांति का कारण बन गयी। उसने ज्योतिष छोड़ दी। यह चोट भारी थी! यह बात भी इतनी सच थी! सामने पैर के कुआं है, नहीं दिखाई पड़ा! मगर उसे क्यों कुआं नहीं दिखाई पड़ा था? नहीं कि उसके पास आंख नहीं थी; आंख थी, मगर आंख दूर के तारों पर अटकी थी!
यही आदर्शवादी की भ्रांति है, उसकी आंख दूर के तारों पर अटकी है। आदर्शवादी कहता है मोक्ष पायेंगे! अभी यह सड़ा-गला क्रोध, इससे छुटकारा नहीं हो रहा है। यह सड़ा-गला काम, इससे छुटकारा नहीं हो रहा है। मोक्ष पायेंगे! बैकुंठ जायेंगे! निर्वाण होगा! आंखें बड़े दूर के आकाश पर लगी हैं। और उसकी वजह से रोज-रोज गड्ढों में गिर रहे हो। गड्ढे--क्रोध के, काम के, वैमनस्य के, ईर्ष्या के, घृणा के!
मैं तुमसे कहता हूंः आंखें लौटा लाओ जमीन पर। जहां चलना है वहीं आंखें होनी चाहिए। इस क्षण में ही आंखें होनी चाहिए, क्योंकि गड्ढे यहां हैं। और सारे गड्ढों से तुम बच जाओ, तो उसी बचाव का नाम मोक्ष है। मोक्ष कहीं दूर आकाश में नहीं है। जिसके जीवन में गिरने की संभावना न रही, वही मुक्त है।

तीसरा प्रश्नः ऐसा कौन-सा जादू है जो मुझे यहां खींच लाया है? घर पर
या बाजार में जहां भी रहता हूं, आपकी याद आती रहती है। ध्यान में भी आपकी याद आती है तो आंसू बहने लगते हैं। न कोई मांग है और न कुछ... । मैं क्या करूं?

सीताराम! इन आंसुओं में डुबकी लगाओ। ये आंसू परम सौभाग्य के आंसू हैं!
और जो अभी तुम्हारे हृदय में मेरी स्मृति है, उसी स्मृति का सहारा पकड़-पकड़ कर धीरे-धीरे परमात्मा की स्मृति को जगाओ।
मुझ से तुम्हारा जो संबंध बना है, वह अंतिम नहीं है। वह अंतिम नहीं होना चाहिए। मुझसे तुम्हारा जो संबंध बना है, उसका उपयोग कर लो। उस संबंध को परमात्मा की याद में रूपांतरित कर लो। याद आने लगी मेरी, तो एक बात तो पक्की हो गयी कि याद की कला आ गयी। अब जरा याद का विषय बदलना है। आधा काम तो पूरा हो गया। तैरना तो आ गया; अब पूरब तैरें कि पश्चिम तैरें, यह उतनी कठिन बात नहीं। इसमें क्या कठिनाई है? असली बात कठिनाई की है--याद।
तुम कहते होः "ऐसा कौन-सा जादू है जो मुझे यहां खींच लाया?"
जादू चल गया! असली बात तो हो गयी!
"घर पर या बाजार में जहां भी रहता हूं, आपकी याद आती रहती है। ध्यान में भी याद आती है और आंसू बहने लगते हैं।"
अब धीरे-धीरे मेरी इस याद को परमात्मा की याद में रूपांतरित करो। इसलिए गुरु को परमात्मा कहा है; क्योंकि गुरु को धीरे-धीरे, धीरे-धीरे रूपांतरित कर लेना है परमात्मा में। गुरु सिर्फ शिष्य के लिए परमात्मा है, सभी के लिए नहीं। और उसको परमात्मा मानने के पीछे बड़ा राज है। राज यही है कि अगर वह परमात्मा है, तो ही हम उससे परमात्मा पर छलांग लगा सकेंगे, नहीं तो छलांग नहीं लग पायेगी।
गुरुर्ब्रह्मा... । गुरु से तो शुरुआत है। वह तो बीज है। गुरु ने हाथ पकड़ लिया। अब जल्दी ही गुरु का हाथ परमात्मा के हाथ में रूपांतरित होना चाहिए। याद आने लगी, शुभ घड़ी आ गयी। आंसू बहने लगे, बड़ा प्यारा क्षण है। अब इसी याद को परमात्मा की याद में बदलना है। अब एक कदम और उठाना है। जब मेरी याद में इतना रस आ रहा है, तो उसकी याद में कितना रस न आयेगा! और जब मेरी याद में इतना जादू मालूम पड़ता है, तो उसकी याद में महाजादू नहीं हो जायेगा! निश्चित हो जायेगा!

तारकों को रात चाहे भूल जाये,
रात को लेकिन न तारे भूलते हैं
दे भुला सरिता किनारों को भले ही,
पर न सरिता को किनारे भूलते हैं
आंसुओं से तर बिछुड़ने की घड़ी में
एक ही अनुरोध तुमसे कर रहा हूं-- हास पर संदेह कर लेना भले ही, आंसुओं की धार पर विश्वास करना! प्राण! मेरे प्यार पर विश्वास करना! लोग कहते हैं कि भौंरा गुनगुनाता, किंतु मैं कहता कि वह है आह भरता क्या पता रंगीन कलियों को कि उन पर एक जीवन में भ्रमर सौ बार मरता! तीर-सी चुभती बिछुड़ने की घड़ी में एक ही अनुरोध तुम से कर रहा हूं-- जीत पर संदेह कर लेना भले ही
पर हृदय की हार पर विश्वास करना! प्राण! मेरे प्यार पर विश्वास करना! अश्रु मेरे जा रहे मुझको गलाये
आग मेरी जा रही मुझको जलाये
रह न जाये द्वैत तुममें और मुझमें-- जा रहा हूं इसलिए हस्ती मिटाये! सांझ-सी धुंधली बिछुड़ने की घड़ी में एक ही अनुरोध तुमसे कर रहा हूं-- जिंदगी पर मत भले करना भरोसा,
पर मरण-त्यौहार पर विश्वास करना!

प्राण! मेरे प्यार पर विश्वास करना!
शिष्य और गुरु के बीच पाठ क्या है? पाठ है प्रेम का। पाठ है आंसुओं का। पाठ है प्रार्थना का। पाठ है आत्मा का। गुरु और शिष्य के बीच कौन-सी महत यात्रा चल रही है? यह दूसरों को नहीं दिखाई पड़ेगी। यह तो केवल उन्हीं को दिखाई पड़ेगी जो मार्ग पर चल पड़े हैं। जिन्होंने आंखें गुरु की तरफ मोड़ी हैं, केवल उनको ही दिखाई पड़ेगी।
तुम्हारा मुझसे नाता बन गया। इस नाते से सुख की पहली झलक आनी शुरू हो गयी। इसलिए तुम चकित हो, सोचते हो कौन-सा जादू हो गया है! यह कुछ भी नहीं है, अभी बहुत कुछ होना है। जो होना है उसके मुकाबले यह कुछ भी नहीं। यह बूंद भी नहीं है, अभी सागर होना है! मगर ठीक दिशा पकड़ गयी है। अब इस दिशा को और-और निखारते चलना है। जब मेरी याद आये तो मेरी याद के साथ अब परमात्मा की याद को जोड़ो। धीरे-धीरे दोनों यादें साथ-साथ आने लगेंगी। फिर जब दोनों यादें साथ-साथ आने लगें तो मेरी याद को छोड़ देना। फिर परमात्मा की याद को ही पकड़ लेना। और भूल कर भी यह मत सोचना कि मुझे छोड़ने में तुमने मुझे छोड़ दिया। मुझे पकड़ा तो मैं छूट जाऊंगा। परमात्मा को पकड़ा तो मुझे तुम कभी भी नहीं छोड़ पाओगे, क्योंकि वही असली गंतव्य है।
मैंने अंगुली बताई चांद की तरफ, तुम मेरी अंगुली पकड़ लोगे, तो चूक जाओगे। अंगुली पकड़ने के लिए नहीं बताई गयी थी। अंगुली बताई थी चांद देख लेने के लिए। अगर तुम समझ गये, तो अंगुली को तो भूल जाओगे और चांद को देख लोगे। और जिस घड़ी तुमने चांद को देखा, तुमने मेरी चेष्टा सफल कर दी। क्योंकि चांद तुम्हें दिख जाये, यही मेरा प्रयास था। ऐसा मत सोचना कि कैसे इस प्यारी अंगुली को छोड़ दूं जिसने चांद दिखाया; मैं तो अंगुली को पकड़ूंगा। अंगुली पकड़ी कि भूल हो जायेगी।
इसी तरह लोग अंगुली पकड़े बैठे हैं। किसी ने महावीर की अंगुली पकड़ी है, किसी ने मुहम्मद की, किसी ने मूसा की, किसी ने बुद्ध की, किसी ने कृष्ण की, किसी ने क्राइस्ट की--अंगुलियां पकड़ ली हैं! और उनसे अगर अंगुलियां छुड़ाओ, तो वे नाराज होते हैं। वे कहते हैं कि आप यह क्या कर रहे हैं? यह अंगुली हमारी बड़ी प्यारी है! यह तो हम सदियों से पकड़े हैं। यह हम छोड़ न देंगे। यह हम कभी न छोड़ेंगे। प्राण भले चले जायें, मगर यह अंगुली न छोड़ेंगे।
चांद कब देखोगे, जिसकी तरफ अंगुली उठाई गयी थी? उसी चांद की तरफ कुरान
का इशारा है, उसी चांद की तरफ वेद का, उसी चांद की तरफ गीता का, धम्मपद का। मगर कोई धम्मपद को छाती से लगाये बैठा है, कोई वेद को सिर पर रखे बैठा है। दबे जा रहे हो, मरे जा रहे हो। और कोई अगर बोझ उतारना भी चाहे तो उसको तुम दुश्मन समझते हो। क्योंकि तुम समझते हो यह बोझ नहीं है, संपदा है।
मैं तुम्हारा बोझ नहीं बनना चाहता। मैं नहीं चाहता कि मेरी अंगुली तुम पकड़ लो! हां, शुरू-शुरू में पकड़ाता हूं तुम्हें अंगुली, क्योंकि एक बार अंगुली पकड़ में आ जाये, तो फिर चांद की तरफ यात्रा करवायी जा सकती है। तो गुरु के काम के दो हिस्से हैं। पहला--शिष्य की पकड़ में आये और दूसरा कि शिष्य की पकड़ से छिटक जाये। जब काम पूरा हो जाये, तो हट जाये बीच से। नहीं तो गुरु बड़ी बाधा बन सकता है।
कोई सदगुरु बाधा नहीं बनना चाहता, लेकिन शिष्य अपनी मूढ़ताओं में बाधा बना ले सकता है। असदगुरु जरूर बाधा बनना चाहते हैं। वे तो कभी नहीं चाहेंगे कि तुम्हारे बीच से हट जायें। अगर तुम हटने लगे, उनको हटाने लगे, तो बड़े नाराज हो जायेंगे। वे तो कहेंगे गद्दारी है! मैंने तेरा इतना भला किया, तुझे इतनी दूर ले आया, अब तू मुझे छोड़ता है! वे तो ऐसी नाव हैं जो तुम्हें उस पार ले जायेंगे, लेकिन उतरने न देंगे नाव से--कि नाव में बैठो; इतनी दूर तक ले आये, अब हमें छोड़ते हो!
सदगुरु तो कहेगा, मैं नाव हूं। जब पार हो जाओ तो छोड़ देना। उस पार उतर जाना, बात पूरी हो गयी। मैं भी खुश हूं कि तुम्हारे काम आ गया। मेरा आनंद कि तुम अंधेरे में थे रोशनी में आ गये! कि तुम मुर्दा थे और जिंदा हो गये! लेकिन हालतें ऐसी हैं, किसी और मित्र ने पूछा है कि परमात्मा के साक्षात्कार में गुरु आवश्यक क्यों है? पहले आदमी यही पूछते हैं कि गुरु की आवश्यकता क्या है? बिना गुरु के नहीं चल सकता? ये ही लोग एक दिन दूसरे सवाल उठायेंगे कि अब गुरु तो मिल गया, अब गुरु को पकड़ लिया, अब छोड़ने की

आवश्यकता क्या है? ये ही लोग! ये भिन्न लोग नहीं हैं। ये ही लोग! पहले पकड़ने में अड़चन देंगे, फिर छोड़ने में अड़चन देंगे!
मेरा अपना अनुभव ऐसा हैः जो सरलता से पकड़ता है वह सरलता से छोड़ देता है। जो कठिनता से पकड़ता है वह कठिनता ही से छोड़ता है।
मैंने सुना है कि कुछ लोग यात्रा पर जा रहे हैं। अमृतसर के स्टेशन पर गाड़ी खड़ी है। एक दार्शनिक किस्म का आदमी, वह भी उनके गिरोह में है, वह कहने लगा कि भाई, इस गाड़ी में चढ़ना तो बहुत मुश्किल है, इसमें से उतरना तो नहीं पड़ेगा? उसके साथियों ने कहा, उतरना तो पड़ेगा। हरिद्वार पहुंचे कि उतरे। उसने कहा, जब उतरना ही है तो चढ़ना किसलिए? इतनी झंझट क्यों करनी? मारपीट करो, मार खाओ, झंझट में पड़ो। फिर उतरना है ही आखिर, फिर उतरना ही है, तो चढ़ना क्यों?
गाड़ी जाने को होने लगी। अब दार्शनिक को समझाने के लिए समय भी नहीं है साथियों को। उन्होंने जबर्दस्ती... वह चिल्लाता ही रहा कि क्यों मुझे जबर्दस्ती कर रहे हो। उन्होंने उसे घसीट कर... पंजाबी तो पंजाबी! उन्होंने घसीट कर उसे भीतर ही कर लिया। उन्होंने कहा, तू चुप रह। अब यह कोई वक्त दार्शनिक सिद्धांत का नहीं है, हरिद्वार में देखेंगे।
हरिद्वार आया; फिर झंझट शुरू। वह उतरे नहीं। वह कहे कि जब चढ़ ही गये तो
अब उतरना क्या? और अब तो मजा आ रहा है, सब लोग छोड़ कर जा रहे हैं, मस्त हो कर रहेंगे। अब पैर फैला कर सोयेंगे। खड़े-खड़े थक भी गये, परेशान भी हो गये, दम घुट गया! अब मित्र उसको फिर खींच रहे हैं। पंजाबी तो पंजाबी! ... यह बकवास पीछे करेंगे, अभी नीचे उतरो। और वह है कि पक.ड़ रहा है बैंच कि मैं जाऊंगा नहीं। बामुश्किल तो चढ़ पाये!
हंसो मत, ऐसी ही हालत है! पहले चढ़ने में बड़ी मुश्किल है। चढ़ गये तो फिर उतरने में बड़ी मुश्किल है। पहले गुरु के सामने झुकने में बड़ी मुश्किल है। पहले गुरु का हाथ पकड़ने में अहंकार को बड़ी चोट लगती है। जो सरलता से हाथ पकड़ लेता है, वह सरलता से एक दिन हाथ छोड़ भी देता है। और हाथ छोड़ने में कोई गुरु की अवमानना नहीं है, गुरु का सम्मान है, समादर है; गुरु की आकांक्षाओं की परितृप्ति है। और हाथ छोड़ने में कोई गुरु का छोड़ना नहीं है, हाथ छोड़ने में परमात्मा का मिलना है। पहले गुरु में परमात्मा को पाया था, अब परमात्मा में गुरु को पा लेंगे। कुछ छूटना नहीं है।
फिर से दोहरा दूंः पहले बूंद में सागर देखा था, अब सागर में बूंद को देख लेंगे। जब बूंद तक में सागर दिख सका, तो सागर में बूंद के दिखने में क्या अड़चन आयेगी? कठिन बात तो पहली थी कि बूंद में सागर को देखना। सागर में तो बूंद बड़ी आसानी से दिख जायेगी।
गुरु में परमात्मा देखना बहुत कठिन बात है, लेकिन परमात्मा में गुरु
को देखना तो कोई भी कठिन बात न होगी। यह तो सरलता से हो जायेगा। इसलिए न अवमानना है, न गद्दारी है, न अकृतज्ञता है। आनंद-भाव से, अहोभाव से, धन्यवाद से सिर झुका कर एक दिन गुरु की स्मृति को परमात्मा की स्मृति बना देना आवश्यक है।
बढ़के काबे से भी हसीं है कौन?
झुक रहा हूं सलाम करने को
पहली बार जब गुरु से मिलना होता है, तो सब मंदिर-मस्जिद फीके पड़ जाते हैं। क्योंकि मंदिर-मस्जिदों में सिर्फ मूर्तियां हैं, मृण्मय है। जब गुरु से मिलना होता है तो चिन्मय, चैतन्य का आविर्भाव... । पहली बार जीवंत सत्य से संस्पर्श होता है!
बढ़के काबे से भी हसीं है कौन?
झुक रहा हूं सलाम करने को
मगर रुक नहीं जाना है--और आगे, और आगे! जब तक परम विस्तार न मिल जाये अस्तित्व का, तब तक रुकना ही नहीं है।
अब जाके आरजू का मुकम्मल हुआ है नक्श
सब मानने लगे कि मैं दीवाना हो गया।
गुरु मिलेगा तो लोग तुम्हें पागल समझेंगे। इससे अन्यथा न कभी हुआ है
न हो सकता है। गुरु मिलेगा तो सारा जगत तुम्हें पागल समझेगा। क्योंकि उन्हें तो कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा है; और तुम्हें कुछ गंध मिलने लगी, कुछ

रोशनी मिलने लगी, कुछ सुराग मिलने लगा, जिसकी उन्हें खबर भी नहीं है। कोई तुमसे राजी न होगा कि तुम्हें जो दिखाई पड़ा है, सच है। लोग कहेंगेः भ्रांति में पड़ गये हो। लोग कहेंगेः पागल हो गये हो। जब गुरु मिलेगा तो सारी दुनिया तुम्हें पागल कहेगी। और जिस दिन तुम गुरु का हाथ छोड़ोगे, उस दिन तुम्हारा मन ही तुम्हें पागल कहेगा। दोनों से सावधान रहना। दुनिया पागल कहे, कहने देना। कहना कि ठीक, यह पागलपन पुराने गैर-पागलपन से बेहतर है। और जब तुम्हारा मन ही तुम्हें पागल कहे कि किसे छोड़ रहे हो, जो इतनी दूर तक ले आया, उसका हाथ छोड़ते हो? लेकिन जब गुरु स्वयं हाथ छुड़ा रहा हो, तो तुम्हारा मन लाख कहे कि यह पागलपन है--मत फिक्र करना। सब छोड़ा है गुरु के लिए, यह भी छोड़ देना। जिस दिन तुम दोनों ये कदम उठा लोगे, उस दिन यात्रा पूरी हो गयी।
लेकिन अहंकारी व्यक्ति पहले पूछते हैं कि क्यों, क्या गुरु की जरूरत है? क्या आवश्यकता है? अब तुम पूछते ही क्यों हो? इस प्रश्न का उत्तर भी तुम खुद तो पा नहीं सकते, इसलिए पूछते हो। यह गुरु की तलाश शुरू हो गयी। नहीं तो पूछने की जरूरत क्या है? अभी तुम अपने को नहीं बचा सकते।
क्या बचाते किसी सफीने को
अपनी किश्ती को खुद डुबो बैठे
तुम तो अभी डुबा ही सकते हो अपनी किश्ती को। अभी तो तुमने सिर्फ डुबाने के ढंग ही सीखे हैं जन्मों-जन्मों में। अभी किसी से संग-साथ जोड़ लो, जिसे किश्ती को तिराना आ गया हो। उसके संग-साथ तुम्हारी किश्ती भी तिरना सीख जायेगी। गुरु के संग-साथ का और क्या अर्थ हैः किसी को तैरना आता है, उसके साथ हो लिए, ताकि तुम्हें भी तैरना आ जाये। आयेगा तो तुम्हारे भीतर से ही। तैरना कोई ऐसी चीज नहीं है कि गुरु दे देगा। लेकिन गुरु को देख कर, गुरु के तार बजते देख कर तुम्हारे भीतर की वीणा पर झंकार हो जायेगी। गुरु के हाथ-पैर फिंकते देख कर तुम्हें भी हाथ-पैर फेंकने की हिम्मत आ जायेगी। गुरु को पानी में तिरता देख कर तुम्हें भी लगेगा--जब गुरु तिर सकता है तो मैं भी तिर सकता हूं। मैं भी तो मनुष्य हूं। अगर पानी गुरु के वजन को उठा लेता है तो मेरे वजन को क्यों न उठायेगा? अगर परमात्मा ने गुरु को उठा लिया है, तो मुझे क्यों न उठायेगा? गुरु को देख कर भरोसा आयेगा; जैसे पानी गुरु को उठा रहा है वैसे ही परमात्मा मुझे भी उठा लेगा। समर्पण करने की क्षमता आयेगी।
फिर, पहले तो सभी तैरना सीखने वाले उल्टे-सीधे हाथ फेंकते हैं। कभी- कभी मुंह में पानी भी भर जाता है। कभी थोड़ी घबड़ाहट भी हो जाती है, डुबकी भी खा जाते हैं, यह बिल्कुल स्वाभाविक है। इन्हीं डुबकियों को खा कर तैरना आ जाता है। इसी हाथ-पैर को गलत-सलत फेंक कर ठीक-ठीक फेंकना आ जाता है। ये गलत हाथ भी ठीक दिशा में ही फेंके जा रहे हैं!
तो घबड़ाना मत। भयभीत न होना। मगर अकेले तैरना सीखने जाओगे, तो खतरा है। और मैं तुम से यह नहीं कह रहा हूं कि तैरना कोई तुम्हें दूसरा दे सकता है। तैरना तो तुम्हारे भीतर से आयेगा। लेकिन अकेले अगर तैरना सीखने जाओगे, तो खतरा है। खतरा यही है कि कहीं गहरे न उतर जाना। खतरा यही है कि अभी तुम्हें भरोसा कैसे आयेगा कि पानी तुम्हें उठा सकता है, कि पानी तुम्हें सम्हाल लेगा। तुम्हें श्रद्धा कैसे आयेगी? और तुम्हें श्रद्धा न आयेगी, तो तुम डरे-डरे भयभीत रहोगे। तुम्हारा भय ही तुम्हें डुबायेगा। तैरना जानने वाले में और तैरना न जानने वाले में जो भेद होता है वह सिर्फ आत्मविश्वास का होता है। इस बात को तुम खूब याद कर लो। सिर्फ आत्मविश्वास का, और कोई भेद नहीं होता। तैरने वाले को कोई नयी बात नहीं मिल गयी है जो न तैरने वाले के पास नहीं है। सब उतना ही है बराबर, मगर एक नयी बात है--तैरने वाले को आत्मविश्वास है। वह जानता है कि पानी डुबाता नहीं है; पानी दुश्मन नहीं है।
तुम देखते हो न, जिंदा आदमी डूब जाता है और मुर्दा आदमी तैर जाता है। मुर्दा आदमी को कौन-सी कला आती है? जिंदा आदमी क्यों डूब जाता है, मुर्दा आदमी क्यों तैर जाता है? पानी तो तैराने को राजी ही था, मगर वह जिंदा अपने भय में डूब मरा! वह अपनी आत्मविश्वास की कमी में डूब मरा! मुर्दे को तो कोई डर ही नहीं है। अब क्या डर? अब मर ही गये तो डर क्या? अब डरने वाला ही नहीं

है कोई। तो मुर्दा तैर जाता है। मुर्दे को अब भय नहीं है, बस, निर्भय हो गया। ऐसा ही तैरने वाला निर्भय हो जाता है। उसे पानी से अब भय नहीं। पानी से मैत्री है उसकी। वह जानता है कि पानी दुश्मन नहीं है। पानी कभी किसी को नहीं डुबाता, पानी तो तैराता है। पानी की तो क्षमता यही है कि वह गुरुत्वाकर्षण के विपरीत तुम्हें ऊपर उठाता है। मगर तुम्हें भरोसा हो न! तुम्हें भरोसा नहीं है।
अभी जापान में एक मनोवैज्ञानिक ने छोटे बच्चों पर प्रयोग किये। उसने प्रयोग किये कि कितनी छोटी उम्र का बच्चा तैरना सीख सकता है? तुम जान कर हैरान होओगे, छह महीने का बच्चा तैरना सीख सकता है! छह महीने के बच्चों को उसने तैरना सिखा दिया! अब छह महीने का बच्चा न तो बोल सकता है, न उसको समझा सकते; लेकिन छह महीने के बच्चे को तैरना सिखा दिया! कैसे? छह महीने के बच्चे को बिठा देता है टब के पास। दूसरे बच्चे तैरते हैं, वह बच्चा देखता है, देखता रहता है। छोटा बच्चा है, यद्यपि अभी आंख तो खुल गयी है, देखता तो है कि ये बच्चे तैर रहे हैं, मजे से तैर रहे हैं। उसका दिल भी होता है। वह भी सरकना चाहता है, पानी में वह भी जाना चाहता है। वह जाना चाहता है तो उसे जाने देता है। एकाध दो दफे डुबकी भी खाता है। घबड़ा भी जाता है। मगर और बच्चे तैर रहे हैं, बस जल्दी उसे भरोसा आ जाता है। एक बार भरोसा आ गया तो बिना भाषा के, बिना कुछ कहे, बिना कुछ बताये वह भी धीरे-धीरे हाथ-पैर फेंकने लगता है। वह भी धीरे-धीरे सीख जाता है।
उस मनोवैज्ञानिक ने बड़े अदभुत प्रयोग किये! वह कहता है, छह महीने का बच्चा पर्याप्त योग्य है तैरना सीखने के लिए। बस बड़ी से बड़ी बात जो जरूरी है वह यह है--संक्रामक आत्मविश्वास हो जाना चाहिए! उसे भरोसा आ जाना चाहिए कि यह घटना घट सकती है। वह शायद और प्रयोग करे, तो और छोटे बच्चों को तैरा सके। ऐसे भी बच्चे मां के पेट में तैरते तो पानी में ही हैं। जल में ही तैरते हैं। तो नौ महीने का अनुभव तो लेकर आते ही हैं। कोई हमें कुछ बाहर से देने वाला नहीं है, न देने की कोई जरूरत है। मगर कौन जगायेगा विश्वास? गुरु ज्ञान नहीं देता, सिर्फ श्रद्धा जगा देता है। सोई श्रद्धा को झकझोर देता है। और जरूरी नहीं है कि गुरु क्या कहता है उसे तुम समझो, तभी तुम पहुंच पाओगे। जरूरी यही है कि गुरु से प्रीति लग जाये। जरूरी यही है कि उसके साथ एक रस का, स्नेह का भीगा नाता बन जाये।
जब खामोशी की मदद लेनी पड़ी
गुफ्तगू में वह मुकाम आ ही गया
बात करने की बात नहीं है सत्य। खामोशी, चुपचाप मौन में संबंधित हो जाने की बात है। असली बात तो चुप्पी में ही कही जाती है। है तो सब तुम्हारे भीतर, लेकिन कोई याद दिला दे तुम्हें। तुम्हें अपना विस्मरण हो गया है। फिर कोई कैद न तेरे लिए बाकी रहतीतू अगरचे दाम से खुद अपनी रिहा हो जाताअपनी अजमत का नहीं खुद तुझे गाफिल एहसासबंदगी अपनी जो करता तो खुदा हो जाता
सब कुछ था तेरे भीतर।
अपनी अजमत का नहीं खुद तुझे गाफिल एहसास।
ऐ बेहोश! तुझे अपने गौरव का, गरिमा का कुछ पता नहीं है!
बंदगी अपनी जो करता तो खुदा हो जाता
सब हो सकता है। बिना गुरु के हो सकता है। सच तो यह है, बिना गुरु के ही होगा। लेकिन फिर भी बिना गुरु के नहीं होता है, क्योंकि तुम्हें विश्वास पैदा नहीं होता। गुरु की आवश्यकता एक कैटेलिटिक की आवश्यकता है, जिसकी मौजूदगी में तुम्हें भरोसा आ जाये; जिसकी मौजूदगी में तुम्हें तुम्हारे भीतर सोया हुआ गौरव, गरिमा का बोध जग जाये। तुम्हें एक पुकार उठे कि मैं भी कर सकता हूं। बस इतना ही। अगर हड्डी-मांस-मज्जा के देहधारी किसी व्यक्ति को हुआ है, तो मुझे भी हो सकता है।
और इसीलिए मैं तुमसे बार-बार कहता हूं, कृष्ण को पकड़े रहो, शायद तुम्हें न हो। क्योंकि कृष्ण के संबंध में तुमने कहानियां गढ़ ली हैं कि वे परमात्मा के अवतार हैं, कि वे जन्म से ही परमात्मा हैं। इस कहानी में खतरा है। इसका मतलब यह हुआ कि तुम में और कृष्ण में बहुत फासला हो गया! वह तो परमात्मा हैं, तुम आदमी हो! अगर उनको हो गया, तो होना ही चाहिए; तुमको कैसे

हो सकता है? महावीर को हुआ, क्योंकि वे तो तीर्थंकर हैं। उनको तो होना ही था। और चौबीस ही तीर्थंकर होते हैं दुनिया में, अब तुम्हें कैसे होगा? अब पच्चीसवें को कैसे हो सकता है! मुहम्मद को हुआ, वह तो पैगंबर थे। उनको तो होना था। जीसस ईश्वर के बेटे थे, इसलिए हुआ। अब तुम तो साधारण आदमी हो-- किसी दुकानदार के बेटे, किसी दर्जी के बेटे, किसी स्टेशन मास्टर के बेटे। तुम कोई ईश्वर के बेटे तो हो नहीं। ईश्वर का तो बेटा सिर्फ एक जीसस है। तुम्हें कैसे होगा? जैसे-जैसे समय बीतता जाता है, लोग सदगुरुओं के आसपास ऐसी कथाएं गढ़ लेते हैं कि उन कथाओं के कारण उनका मनुष्यों से बहुत दूर का नाता भी नहीं रह जाता। बड़ा फासला हो जाता है। वही फासला घातक है।
इसलिए मैं तुमसे कहता हूंः तुम किसी जिंदा गुरु को खोजना। जो अभी तुम्हारी ही जैसी हड्डी-मांस-मज्जा की देह में हो; जो अभी जमीन पर हो; जिसे तुम्हारी ही जैसी बीमारी पकड़ती हो, और तुम्हारी जैसी ही भूख लगती हो, और जिसे तुम्हारी जैसी ही प्यास लगती हो, और जो रात सोता हो--जो ठीक तुम जैसा हो। उसमें अगर तुम्हें दिखाई पड़ जाये कि कुछ हुआ है, तो ही तुम्हें भरोसा आयेगा, अन्यथा तुम्हें भरोसा नहीं आयेगा। उसके चले जाने के बाद लोग उसके आसपास भी कहानियां गढ़ लेंगे। कहानियां गढ़नेवाले सदा मौजूद हैं। कहानियां गढ़नेवाले कहानियां गढ़ते ही रहते हैं।
आज मैं यहां हूं, अभी अगर तुम्हें मुझ पर भरोसा आ जाये तो तुम्हारे भीतर कुछ हो सकता है। क्योंकि मैं ठीक तुम जैसा हूं। जरा भी भेद नहीं है। या बस जरा-सा भेद है। भेद इतना जरा-सा है, कि तुम जरा तिलमिला जाओ तो तुम्हारे भीतर भी घटना घट जाये! तुम सोये हो, मैं जागा हूं। मैं तुम्हें हिला दूं। तुम राजी हो जाओ, तुम कह दो कि हां मुझे हिलाओ, कि मैं नाराज न होऊंगा, कि मुझे हिला दो--कि तुम्हारे भीतर जो सोया पड़ा है वह जग जाये। इतना-सा भेद है, ना-कुछ के बराबर भेद है।
मगर कल जब मैं जा चुका, तो कहानियां गढ़ जायेंगी। उन कहानियों से तुम्हारे और मेरे बीच फासला होने लगेगा। असल में कहानियां गढ़ी ही इसलिए जाती हैं ताकि प्रत्येक शिष्य अपने गुरु को विशिष्ट करके बता सके, जैसा कोई भी नहीं था। तो ईसाई कहते हैं कि जीसस क्वांरी मां से पैदा हुए। दुनिया में और कोई कभी क्वांरी मां से पैदा नहीं हुआ। यह विशिष्टता बताने के लिए जरूरी हो गया। हमारा गुरु कोई साधारण गुरु थोड़े ही है! तो वे जैनी से कह सकते हैं कि तुम्हारे महावीर, क्वांरी मां से पैदा हुए थे? नहीं हुए तो ठीक, साधारण मनुष्य थे। मगर जीसस ईश्वर के बेटे हैं!
कोई जैन भी पीछे नहीं रह जाते हैं! उनको यह नहीं सूझा उस वक्त, उन्होंने कुछ और बातें सोच लीं। वे कहते हैं कि महावीर की देह से पसीना नहीं निकलता। गरम देश है और बिहार... । तुम सोच ही सकते हो, धूल-धवांस, अभी भी बहुत है बिहार में, उस समय की तो सोच ही लो! और महावीर को बेचारों को नग्न घूमना, धूल-धवांस... ! और वे नहाते भी नहीं, क्योंकि नहाने में शरीर का प्रसाधन होगा, ऐसी धारणा है। उनको तो पसीना आये तो बड़ी मुश्किल हो जाये, गांव-गांव, दूर-दूर तक पसीना फैल जाये, उसकी बदबू फैले! तो वे कहते हैं कि नहीं, उनको पसीना आता ही नहीं है। मल-मूत्र का निष्कासन भी महावीर को नहीं होता। तो पूछ सकते हैं जीसस के मानने वाले को कि तुम बताओ, तुम्हारे गुरु में यह खूबी है?
ये शिष्यों के झगड़े हैं। मैं तुमसे कहता हूंः महावीर को भी पसीना निकलता था और जीसस भी उसी तरह पैदा हुए थे जिस तरह तुम पैदा हुए हो। कोई विशिष्ट नहीं। मगर इस बात से झगड़ा खड़ा हो जाता है। शिष्यों को आग लग जाती है कि हमारा गुरु विशिष्ट नहीं है? और सब के गुरु नहीं होंगे विशिष्ट, हमारा गुरु विशिष्ट है! यह अहंकार का अंग बन गया! तुम्हें गुरु से परमात्मा पाना है या गुरु को भी अहंकार का आभूषण बनाना है? तुम गुरु के द्वारा पहुंचना चाहते हो कहीं? कि गुरु के नाम को लेकर भी अटकना चाहते हो! जिंदा गुरु खोज लेना। सौभाग्यशाली हैं वे, जिन्हें जिंदा गुरु मिल जाये। सीताराम, तुम सौभाग्यशाली हो!
फराहम करके मेरे दिल के अजजाए-परेशां को
मेरी बिखरी हुई हस्ती को सूरत बख्श दी तूने
कहां बाकी रहा था जिंदगी का हौसला मुझमें

मुझे इक बार फिर जीने की हिम्मत बख्श दी तूने
वो गम हो, मसर्रत हो, वो मरना हो कि जीना हो
मुझे हर हाल में अपनी जरूरत बख्श दी तूने
यही गुरु करता है। तुम्हारे टुकड़ों को इकट्ठा कर देता है।
फराहम करके मेरे दिल के अजजाए-परेशां को।
वह जो टुकड़े-टुकड़े दिल था, वह जो परेशानियों में बंटा हुआ, चिंताओं में बंटा हुआ दिल था, गुरु उसे इकट्ठा कर देता है।
फराहम करके मेरे दिल के अजजाए-परेशां कोमेरी बिखरी हुई हस्ती को सूरत बख्श दी तूने।
वह जो टूट-फूट गयी थी हस्ती, बिखर गयी थी, उसे फिर तूने रंग दे दिया, रूप दे दिया।
कहां बाकी रहा था जिंदगी का हौसला मुझमेंमुझे इक बार फिर जीने की हिम्मत बख्श दी तूनेवो गम हो, मसर्रत हो, वो मरना हो कि जीना होमुझे हर हाल में अपनी जरूरत बख्श दी तूने।
गुरु सिर्फ तुम्हें जगा देता है तुम्हारी संभावनाओं के प्रति। गुरु जगा देता है तुम्हें सिर्फ तुम्हारी अनंतताओं के प्रति। गुरु तुम्हें सचेत कर देता है कि तुम उतने ही नहीं हो जितना तुमने अपने को समझा है। तुम सागर हो। तुम बूंद बने बैठे हो! बूंद होना तुम्हारी नियति नहीं, सागर होना तुम्हारी नियति है।
आनंदित होओ, नाचो, मग्न होओ। यह जादू जो तुम पर छा रहा है और छाने दो।

उमड़कर आ गये बादल,
गगन में छा गये बादल!
गगन का उर उमड़कर ज्यों
धरा के पास आ पहुंचा,
पुलकती दूब पर कुछ
फूल-से बिखरा गये बादल!
उमड़कर आ गये बादल!
उठी सौंधी भभक-सी एक
मिट्टी के कपोलों से,
धरा के रूप-यौवन की
शिखा सुलगा गये बादल!
उमड़कर आ गये बादल!
बुझेगी बिंदुओं से क्या
तृषा जो सिंधु जैसी है!
पपीहे की तृषा को और
भी भड़का गये बादल!
उमड़कर आ गये बादल!
उधर कुछ मेह बरसा,
नेह आंखों से इधर बरसा,
हरे अंकुर तुम्हारी याद
के उकसा गये बादल
उमड़कर आ गये बादल!
व्यथा की भाप में सुख की
क्षणिक बिजली चमकती है!
मुझे भीगे दृगों से भेद
यह समझा गये बादल!
उमड़कर आ गये बादल!
तुम्हारे ऊपर बादल घिरने शुरू हो गये हैं--जादू बरसेगा, मेहा बरसेगा, समाधि बरसेगी! इस स्मृति को प्रगाढ़ करो। और धीरे-धीरे गुरु की स्मृति परमात्मा की स्मृति बने, इसका उपाय करो।
एक-एक मोती पिरो कर माला बन जाती है और एक-एक बूंद से सागर बन जाता है।

ऐसे एक-एक स्मृति सघन होते-होते उस महास्मृति में रूपांतरित हो जाती है, जिस महास्मृति का नाम चाहे मोक्ष कहो, चाहे निर्वाण कहो, चाहे समाधि कहो। बुद्ध ने तो उसे "मेघ" ही कहा है--समाधि का मेघ--मेघ-समाधि!
आज इतना ही।

मरौ हे जोगी मरौ
उन्नीसवां प्रवचन

उनमनि रहिबा

घटि घटि गोरख बाही क्यारी। जो निपजै सो होइ हमारी।
घटि घटि गोरख कहै कहाणी। कांचै भांडै रहै न पाणी।।
घटि घटि गोरख फिरै निरूता। को घट जागे को घट सूता।
घटि घटि गोरख घटि घटि मीन। आपा परचै गुरमुषि चीन्ह।।
सुणि गुणवंता सुणि बुधिवंता, अनंत सिधां की वाणी।
सीस नवावत सतगुरु मिलिया, जागत रैन बिहाणी।।
उनमनि रहिबा भेद न कहिबा, पियबा नीझर पाणी।
लंका छाड़ि पलंका जाइबा, तब गुरुमुष लेबा वाणी।।
थंभ बिहूंणी गगन रचीलै, तेल बिहूंणी बाती।
गुरु गोरख के वचन पतिआया, तब द्यौंस नहीं तहां राती।।
उदय न अस्त राति न दिन, सरबे सचराचर भाव न भिन्न।
सोई निरंजन डाल न मूल, सब व्यापीक सुषम न अस्थूल।।
कहा बुझै अवधू राई गगन न धरणी, चंद न सूर दिवस नहीं रैनी।
ओंकार निराकार सूछिम न अस्थूल, पेड़ न पत्र फलै नहीं फूल।।
डाल न मूल न वृष न बेला, साषी न सबद गुरु नहीं चेला।
ग्याने न ध्यांने जोगे न जुक्ता, पापे न पुने मोषे न मुक्ता।।
उपजै न विनसै आवै न जाई, जुरा न मरण बांके बाप न माई।
भणत गोरखनाथ मछींद्र नां दासां, भाव भगति और आस न पासा।।

यह समय जो गोरख के साथ बीता, तीर्थयात्रा थी। इस समय को तुम जिंदगी में गिनती कर सकते हो। सारे दिन जिंदगी में नहीं गिने जाते; नहीं गिने जा सकते हैं। वे ही दिन जो प्रभु-स्मरण में बीतें, वे ही दिन जो प्रभु के गीत से पगे हों--बस उतने ही दिन जीवन में गिने जा सकते हैं। इन दिनों को तुम जिंदगी में गिन लेना। ये बहुमूल्य दिन थे।
गोरख के अमृत शब्द सुन भी लिये हैं, कान में पड़ भी गये, तो भी बहुत कुछ
हो जायेगा। वे बीज बन जायेंगे; ठीक समय पर अंकुरित होने लगेंगे।
कटा है नासेहे-मुसफिक्कस से गुफ्तगू में जो वक्त
उसे तू जीस्त की मीयाद में शुमार न कर।
कवि ने ठीक कहा है कि पंडित-पुरोहितों के साथ धर्म-चर्चा में जो समय गया है, हे प्रभु, उसे तू मेरी जिंदगी में शुमार मत करना, वह व्यर्थ ही गया है।
कटा है नासेहे-मुसफिक्कस से गुफ्तगू में जो वक्त
उसे तू जीस्त की मीयाद में शुमार न कर।
लेकिन गोरख पंडित नहीं हैं, ज्ञानी हैं। गोरख जो कहे हैं जान कर कहे हैं। उनके साथ गुफ्तगू में जो समय गया, उसे तुम जिंदगी में शुमार कर लेना। वे दिन चमकते रहेंगे। उन दिनों में एक अलग प्रकाश और एक अलग संगीत आ गया है।
शब्द तो गोरख के सीधे-साफ हैं। सैकड़ों साल के बाद भी उनकी चोट जीवंत है। जो बिल्कुल मुर्दा नहीं हैं, उनके हृदय में अब भी रोमांच हो आयेगा। जो मर ही नहीं गये हैं, संवेदनहीन ही नहीं हो गये हैं, उनकी हृदय-वीणा के तार छिड़ जायेंगे।
घटि घटि गोरख बाही क्यारी।
एक-एक हृदय में उसी की बगिया है। बगिया, प्रतीक प्यारा है! मनुष्य जो
भी बनाता है वह बन तो जाता है, लेकिन बढ़ता नहीं। कितने आकाश को छूनेवाले भवन हम बनाते हैं; बन तो जाते हैं, मगर मुर्दा होते हैं, बढ़ते नहीं। और जहां बढ़ाव नहीं, वहां जीवन नहीं। इसलिए आदमी जितनी चीजें बनाता है, सब मुर्दा होती हैं। परमात्मा की बनायी सब चीजें बढ़ती हैं। उनमें गति होती है, वे गत्यात्मक होती हैं। बीज कैसा लगता है, पत्थर जैसा! लेकिन जल्दी ही उसमें अंकुर आ जाता है। जल्दी ही पत्ते निकल आते हैं। जल्दी ही शाखाएं... जल्दी

ही बड़ा वृक्ष खड़ा हो जाता है। कल्पना भी न कर सकते थे उस बीज में इस वृक्ष की। इतना बड़ा वृक्ष उसमें छिपा होगा, इसे सपने में भी नहीं सोच सकते थे! छिपा था, सिर्फ प्रगट होने की प्रतीक्षा करता था।
ऐसा ही मनुष्य है। उसके भीतर विराट छिपा है, सिर्फ वसंत की प्रतीक्षा है। और जिसे सत्संग मिल गया, उसका वसंत आ गया। जिसे सदगुरु मिल गया, उसका समय आ गया, उसकी घड़ी आ गयी; बीज के टूटने का क्षण आ गया। सदगुरु की भूमि में ही, सत्संग के वसंत में ही, तुम अंकुरित हो सकोगे।
बहुत अभागे हैं वे लोग जो बीज की भांति ही जीते और बीज की भांति ही मर जाते। क्योंकि उन्हें पता ही नहीं चल पाता कि कितनी हरियाली उनमें छिपी थी; कितना जीवन वे अपने भीतर छिपाए बैठे थे; कितने सुर्ख फूल उनके भीतर थे! कितनी शाखाएं निकलतीं और आकाश में फैलतीं, और बादलों से गुफ्तगू होती और चांद-तारों से मुलाकात होती! और फूल खिलते और गंध बिखरती। और न मालूम कितने यात्री उनके नीचे विश्राम करते। और न मालूम कितने पक्षी उन शाखाओं में नीड़ बनाते।
बीज को तोड़ोगे तो यह कुछ भी न पाओगे। बीज को तोड़ोगे तो एक पत्ता भी न मिलेगा। और अनंत पत्ते हो सकते थे। बीज की भी टूटने की समायोजना करनी होती है।
आदमी को ऐसा ही तोड़कर देखोगे, जैसा विज्ञान देखता है, तो आत्मा मिलती
ही नहीं। यह तुमने बीज को तोड़ लिया। उठाया पत्थर और बीज को चकनाचूर कर दिया। अब तुम पूछते होः कहां हैं इसमें पत्ते और कहां हैं फूल, और कहां है गंध, कहां है हरियाली! कहां हैं वे शाखाएं जिनकी बातें की जाती थीं? कुछ भी न मिलेगा। गलत ढंग से तोड़ दिया बीज। बीज तो जमीन में गिरकर टूटना चाहिए। बीज तो अपने से टूटना चाहिए, किसी के द्वारा तोड़ा नहीं जाना चाहिए। बीज तो जमीन में गलना चाहिए। आहिस्ता-आहिस्ता, शनैः शनैः भूमि में लीन हो जाना चाहिए। उसी लीनता से वृक्ष उठेगा, जगेगा; जो सोया पड़ा था वह प्रगट होगा। ऐसे ही मनुष्य है। अगर वैज्ञानिक की जांच-पड़ताल आदमी के संबंध में होगी तो न आत्मा मिलेगी, न परमात्मा मिलेगा; न कोई ध्यान, न कोई प्रेम, नहीं कोई फूल, नहीं कोई गंध, नहीं कोई संगीत, कुछ भी न मिलेगा। यह तो ऐसा ही है जैसे कोई वीणा को तोड़ ले और सोचे कि वीणा को तोड़ कर संगीत को पा लेगा! भरा होगा संगीत वीणा में... । भरा है, मगर वीणा तोड़कर नहीं मिलता। जगाना पड़ता है; सोया है, उठाना पड़ता है; पुकारना पड़ता है। किन्हीं कलाकार की अंगुलियों का जादू चाहिए--जो सोए को जगा दे, जो छिपे को बाहर बुला ले; जो घूंघट उठा दे! घटि घटि गोरख बाही क्यारी।
गोरख कहते हैंः एक-एक हृदय में, एक-एक घट में उसकी बगिया तैयार होने के लिए मौजूद है, छिपी है। एक पूरा उपवन बन सकते हो तुम। मगर सम्यक ऋतु चाहिए। सम्यक भूमि चाहिए। अनुकूल वातावरण चाहिए। इसी अनुकूल वातावरण को पैदा करने के लिए सदियों-सदियों में बार-बार सदगुरुओं ने सत्संग निर्मित किये हैं। बुद्ध के पास संघ बना--वह सत्संग था। उसमें हजारों बीज टूटे और वृक्ष बने। गोरख के पास भी सत्संग बना। ये उन्हीं को कहे गये वचन हैं।
मैं तुम्हें संन्यासी कहता हूं, गोरख अपने संन्यासियों को अवधूत कहते थे। ये अवधूतों को संबोधित वचन हैं--जो टूटने को राजी थे, जो मरने को राजी थे, जो मिटने को राजी थे।
अरे, सूदो-जियां देखा नहीं जाता मुहब्बत में
यह सौदा और सौदा है यह दुनिया और दुनिया है
लाभ-हानि नहीं देखी जाती है प्रीति में।
अरे, सूदो-जियां देखा नहीं जाता मुहब्बत में
लाभ-हानि का जो विचार करता है वह तो प्रेम से वंचित ही रह जाता है। और सदगुरु के साथ होना तो प्रेम की परम घटना है। सत्संग में डूबना तो प्रेम की चरम परिणति है।
अरे, सूदो-जियां देखा नहीं जाता मुहब्बत में
यह सौदा और सौदा है यह दुनिया और दुनिया है
यह ऐसा सौदा है जिसमें हारने से जीत होती है; जिसमें खोने से पाना होता है।
यह सौदा और सौदा है यह दुनिया और दुनिया है

और जो लोग ऐसी दुनिया में प्रवेश कर जाते हैं और ऐसा सौदा करने की हिम्मत कर लेते हैं, उनके भीतर बीज टूटते हैं। अनंत-अनंत रंगों में उनके भीतर परमात्मा की अभिव्यक्ति होती है। वे क्यारियां बन जाते हैं। वे वसंत में प्रगट हुए उपवन बन जाते हैं।
घटि घटि गोरख बाही क्यारी। जो निपजै सो होइ हमारी।
लेकिन ख्याल रखना, जितना प्रगट होगा वही तुम्हारा हो सकेगा।
जो निपजै... ।
अभी कुछ प्रगट नहीं हुआ है। अभी तुम सिर्फ बीज मात्र हो। इसलिए अभी तुम्हारे हाथ में कुछ नहीं, सिर्फ संभावना है। संभावना को वास्तविक करना होगा।
जो निपजै सो होइ हमारी।
उतना ही होगा तुम्हारा जितना प्रगट हो जायेगा। इस बात को खूब ध्यान में रख लेना, सम्हाल लेना; यह बड़ी बहुमूल्य बात है।
जो निपजै सो होइ हमारी।
उतना ही है तुम्हारा, जितना तुम अपने भीतर प्रगट कर लोगे। वही गीत तुम्हारा है जो तुमने गाया। वही संगीत तुम्हारा है जो तुमने वीणा में जगा लिया। वही फूल तुम्हारे हैं जो प्रगट हुए हैं, और जिन्होंने हवा में गंध बिखेरी। अप्रगट तुम्हारा नहीं है। अप्रगट पर तुम्हारा क्या बस? छिपा तुम्हारा नहीं है। घूंघट के पट खोल! वह घूंघट उठे, तो जो चेहरा दिखाई पड़े, वही तुम्हारा है। और बहुत कुछ छिपा है, अनंत छिपा है। तुम चुकता न कर पाओगे, इतना छिपा है।
कभी तुमने सोचा, एक छोटा-सा बीज सारी पृथ्वी को हरियाली से भर सकता है! उसकी अनंतता तुमने देखी, एक छोटे-से बीज की अनंतता? बिंदु में छिपा सागर देखा? एक छोटा-सा बीज, वैज्ञानिक कहते हैं, सारी पृथ्वी को हरियाली से भर सकता है। एक बीज से हजार बीज होंगे, हजारों बीजों से करोड़ों बीज होंगे, करोड़ों बीजों से अरबों बीज होंगे। एक बीज भर जमीन पर आ जाये, तो सारी पृथ्वी... फिर समय की ही बात है... सारी पृथ्वी हरी हो जायेगी।
एक बीज की इतनी क्षमता है, तो तुम्हारे भीतर जो बिंदु है उसकी कितनी क्षमता न होगी! तुम्हारे भीतर जो चैतन्य का बीज है उसकी कितनी क्षमता न होगी! तुम्हारे भीतर सब छिपा है जो बुद्धों में प्रगट हुआ, जिनों में प्रगट हुआ। तुम्हारे भीतर कुरानें छिपी पड़ी हैं; गाओ, तुम्हारी हो जायें। और तुम्हारे भीतर गीताएं दबी पड़ी हैं; जगाओ और तुम्हारी हो जायें। मगर तुम तो दूसरों की गीताएं गा रहे हो, दूसरों के कुरान गा रहे हो। तुम्हें अपने को जगाने की तो फुर्सत नहीं मिल रही। तुम अपने को तो पुकारते ही नहीं; तुम तो उधार में जी रहे हो। तुम तो बाजार से फूल खरीद लाते हो और गुलदस्ते सजा लेते हो। तुम्हारी क्यारी अभागी है। अपार संपदा लेकर पैदा होते हो, लेकिन कभी उस पर अपना दावा घोषित नहीं करते। उतना ही है तुम्हारा, ख्याल रखना... जो निपजै सो होइ हमारी।
घटि घटि गोरख कहै कहाणी।
गोरख कहते हैं कि मैं पुकारता हूं तुम्हें। यह जो मैं कह रहा हूं, ये
जो मेरे कथन हैं, ये तुम्हारे लिए आवाहन हैं। यह सिर्फ बात की बात नहीं है, यह पुकार है। सुन लो तो तुम्हारे भीतर जो अभी अप्रगट है प्रगट हो जाये। जो नाच तुम्हारे पैरों में पड़ा है, उससे पृथ्वी तरंगित हो जाये। और जो अपूर्व आकाश तुम्हारे भीतर है, वह प्रगट हो, तो सृष्टि समृद्ध हो जाये!
घटि घटि गोरख कहै कहाणी।
इसलिए कहते हैं कि मैं एक-एक घट में पुकारना चाहता हूं। यह कहानी मैं एक-एक से कह देना चाहता हूं। यह तुम्हारे भविष्य की कहानी है। अब यह गोरख के लिए तो अतीत की कहानी हो गयी। यही गुरु और शिष्य का भेद है। जो गुरु के लिए अतीत हो गया है वह शिष्य के लिए भविष्य है। जो गुरु में वास्तविक हो गया है, शिष्य के लिए संभावी है। जो गुरु का बीता हुआ कल है, वह शिष्य का आने वाला कल है। और अगर आज इन दोनों का मिलन हो जाये, तो सत्संग। बीता कल और आनेवाला कल जहां मिलते हैं, उसी को आज कहते हैं न हम। इस क्षण सारा अतीत मिल रहा है और सारा भविष्य मिल रहा है। जिस क्षण वास्तविक हो गये किसी व्यक्ति का मिलन, संभावी किसी व्यक्ति से हो जाता है, उस क्षण सत्संग हो

जाता है। उस चिनगारी का नाम सत्संग है। और वह चिनगारी अपूर्व है। एक दफा जल उठती है तो फिर बुझना नहीं जानती।
घटि घटि गोरख कहै कहाणी। कांचै भांडै रहै न पाणी।
इतना ख्याल रखना कि परमात्मा तो बरसने को तत्पर है, लेकिन अगर तुम कच्चे घड़े हो, तो सम्हाल न पाओगे। ऐसा भी नहीं कि परमात्मा तुम पर नहीं बरसा है; बरसा है, मगर तुम कच्चे घड़े हो! तो परमात्मा की वर्षा सौभाग्य बनने के बजाय उल्टे दुर्भाग्य हो जाती है। जो जानते हैं उनके लिए दुर्भाग्य भी सौभाग्य है, और जो नहीं जानते उनके लिए सौभाग्य भी दुर्भाग्य हो जाते हैं।
परमात्मा बहुत रूपों में तुम्हारे पास आता है, मगर तुम पहचान नहीं पाते--कच्चे भांडै! उसकी वर्षा होती है, तुम्हारे लिए दुर्भाग्य की घड़ी आ जाती है। पको! कैसे पकोगे? अग्नि से गुजरना होगा। इसलिए सदियों-सदियों में संन्यास का जो रंग चुना गया--गैरिक--उसका कारण इतना ही था, वह अग्नि का रंग है। अग्नि से गुजरना होगा, साधना से गुजरना होगा, तो सधोगे, तो पकोगे। सत्संग में पुकार सुनी जाती है। साधना में पुकार को प्रयोग दिया जाता है। सत्संग में बात जम जाती है, साधना में उस जीवन को रूपांतरित किया जाता है। साधना तुम्हारे भीतर कच्चे घड़े को पकाने का उपाय है।
घटि घटि गोरख कहै कहाणी। कांचै भांडै रहै न पाणी।
गोरख कहते हैंः मैं तो पुकारता हूं, मैं तो बरस उठता हूं। मगर कच्चे घड़े हैं, उनमें पानी टिकता नहीं। वे तो उल्टे नाराज हो जाते हैं। कच्चा घड़ा तो नाराज हो ही जायेगा। उसकी तो जिंदगी खराब हो गयी। उस पर तो वर्षा क्या हो गयी, वह तो मिट गया। वर्षा सौभाग्य नहीं बनी, दुर्भाग्य हो गयी। कच्चा घड़ा तो वर्षा से डरेगा। लेकिन जो घड़ा वर्षा से डरेगा, वह भरेगा कैसे? कच्चा घड़ा कभी नहीं भर पायेगा, खाली का खाली रहा आयेगा।
इसलिए तो अधिक लोगों की जिंदगी अर्थहीन है--रिक्त, खाली... उसमें कोई रसधार नहीं बहती। ऐसा भी नहीं लगता कि क्यों हम जी रहे हैं, किसलिए? क्या प्रयोजन है? न होते तो क्या हर्ज था? हुए तो लाभ क्या? लोग जी लेते हैं, ढो लेते हैं जीवन के बोझ को। लेकिन इस जीवन में कोई नृत्य-गीत-उत्सव नहीं होता। और जहां नृत्य नहीं, उत्सव नहीं, गीत नहीं, वहां परमात्मा के प्रति धन्यवाद का तो सवाल कैसे उठेगा? धन्यवाद तो केवल वे ही दे सकते हैं जो धन्यभागी हैं। और धन्यवाद ही प्रार्थना है और धन्यवाद ही पूजा है।
यहां भी तू, वहां भी तू, जमीं तेरी, फलक तेरा,
कहीं हमने पता पाया न हरगिज आज तक तेरा।
बड़े मजे की बात है--विरोधाभासी--कि वही सब जगह है और उसका पता कहीं मिलता नहीं! किसी से पूछो परमात्मा कहां है, तो कोई उत्तर नहीं दे सकता। जो जानते हैं वे कहते हैं सब जगह है। मगर अगर उनसे यह पूछो कि ठीक-ठीक जगह बता दें कहां है, ताकि वहां हम चले जायें और दर्शन कर लें, तो कोई पता नहीं दे सकता।
यहां भी तू, वहां भी तू, जमीं तेरी, फलक तेरा,
यह तो हम सुनते हैं कि आकाश भी तेरा है और पृथ्वी भी तेरी है। और यहां
भी तू है और वहां भी तू है, सब तरफ तू है।
कहीं हमने पता पाया न हरगिज आज तक तेरा।
लेकिन तेरा पता नहीं मिलता। पता तब तक न मिलेगा जब तक तुम्हें उसका होना भीतर मालूम न पड़ जाये। आकाश में होगा, यह तो अनुमान है, सुनी हुई बात है; कहते हैं ज्ञानी। पृथ्वी उसकी होगी, होगी; सारे बुद्धपुरुष कहते हैं, तो ठीक ही कहते होंगे। मगर यह भरोसा हुआ, अनुभव न हुआ। उसका प्राथमिक अनुभव स्वयं के भीतर होता है, वहां से पता मिलता है। और जिसे वहां पता मिल गया, उसे फिर सब जगह उसका पता है। फिर जगह-जगह वही है। जिसने भीतर देख लिया उसे सब जगह वह दिखाई पड़ना शुरू हो जाता है। और जिसे अपनी बगिया में फूल दिखायी पड़ गये, फिर हर फूल में उसी की झलक है। और जिसने उसका भीतर नाद सुन लिया, फिर कहीं भी नाद होगा तो उसी की याद आयेगी।
मेरे हक में हुआ अच्छा मेरा हद से गुजर जाना
खुदाई हाथ आयी तर्क जब कर दी खुदी मैंने।

लेकिन कब कोई स्वयं के भीतर उसे जान पाता है? जब स्वयं को मिटा देता है। इसलिए बीज का प्रतीक सार्थक है।
मेरे हक में हुआ अच्छा मेरा हद से गुजर जाना
खुदाई हाथ आयी तर्क जब कर दी खुदी मैंने।
जब स्वयं को कोई समर्पित कर देता है, तो स्वयं के आत्यंतिक अर्थ को जान लेता है। बीज जब मिट जाता है तो वृक्ष हो जाता है। और बूंद जब खो जाती है सागर में तो सागर हो जाती है। और फिर तो उठो-बैठो, सोओ-जागो सब प्रार्थना ही है।
तेरी गली के कायदा कयाम की क्या बात
इसी को दिल की जबां में नमाज कहते हैं।
जिसे उसकी गली मिल गयी, फिर उसमें बैठे, उठे।
इसी को दिल की जबां में नमाज कहते हैं।
फिर यही प्रार्थना है।
घटि घटि गोरख फिरै निरूता।
गोरख कहते हैं कि परमात्मा चुपचाप बिना आवाज किये एक-एक हृदय में घूमता फिरता है, पुकारता फिरता है।
घटि घटि गोरख फिरै निरूता।
--जगाता फिरता है और चुपचाप, आवाज भी न हो उसकी, शोर-गुल भी न हो। उसकी पगध्वनि सुनाई नहीं पड़ती, वह निःशब्द आता है।
घटि घटि गोरख फिरै निरूता। को घट जागे को घट सूता।
लेकिन कभी मुश्किल से कोई जागा हुआ मिलता है। परमात्मा तो रोज आता है, अनंत-अनंत रूपों में आता है। मगर कभी कोई जागा हुआ मिलता है, जो जागा हुआ मिल जाता है उससे मिलन हो जाता है। अधिकतर तो सोए हैं।
को घट जागे को घट सूता।
कोई जाग रहा है, कोई सो रहा है। जो सो रहा है, परमात्मा उसके पास भी आता है। वसंत तो उन बीजों के लिए भी आता है, जो जमीन में गिर गये और मिट गए, और उन बीजों के लिए भी आता है जो जमीन में नहीं गिरे और अपने को सम्हाले हैं। वसंत तो सभी के लिए आता है। वसंत की कोई शर्त तो नहीं होती; वसंत आया तो सभी के लिए आया।
लेकिन जिन्होंने जमीन में अपने को खो दिया है, जिन्होंने अपनी खुदी
खो दी है, वे वसंत का पूरा लाभ उठा लेंगे; और जो अपने को बचाये बैठे हैं, वे वंचित रह जायेंगे।

रात की निस्तब्धता को चीर
यदि कोई अजाना स्वर
तुम्हारे कक्ष में गूंजे
प्रिये, मत यह समझना--
डाक है जगते पहरुए की।
सेज पर छितरी अलस तेरी लटों को।
स्पर्श यदि कोई कंपावे,
भूल से मत सोचना--
कुछ ढीठ सपने उनींदी पलकें तुम्हारी चूमने आये। पार कर सब खिड़कियों की अर्गलाएं
गंध यदि कोई गुलाबी पास आये,
भरम मत जाना--
सलोनी चांदनी गदरा गयी है।
स्वरों के पीछे छिपे पदचाप होंगे,
सिहरनों के पार होंगी उंगलियां, झिलमिला घूंघट उठा कर देख लेना-- इन्हीं पल में, इन्हीं रूपों में, मैं तुम्हारे पास तक
प्रिय, नित्य आऊंगा।

परमात्मा तो आता है, लेकिन हम कुछ-कुछ कह कर समझा लेते हैं। हवा का झोंका आया, गुंजाता नाद वृक्षों से गुजर गया। हम कहते हैंः हवा का झोंका आया था। जो जानते हैं, वे कहते हैंः परमात्मा आया था! आकाश में मेघ घिरे, बूंदाबांदी हुई, हम कहते हैंः वर्षा हुई। जो जानते हैं, वे कहते हैंः वही बरसा। जो जानते हैं, उनके लिए सभी इंगित उसी के हैं, सभी इशारे उसी के हैं। उसके अतिरिक्त कोई है ही नहीं। इसलिए पक्षी जब पुकारे सुबह, तो उसी का स्मरण कर रहे हैं--जानना। और सुबह की किरणें जब तुम्हारे द्वार पर आकर दस्तक देने लगें, तो उसी ने दस्तक दी है--जानना।
लेकिन यह तो अभी जानना नहीं बन सकेगा, मानना ही रहेगा। यह जानना तभी बनेगा जब तुम्हें भीतर थोड़ी उसकी झलक मिलनी शुरू हो जाये। पहले परिचय भीतर, फिर ही बाहर हो सकता है।
घटि घटि गोरख फिरै निरूता। को घट जागे को घट सूता।

धीरे,
धीरे ओ कनेर के फूल,
धीरे झरना।
मौन,
मौन ओ मुखरित कोलाहल,
चुप रहना।
हौले,
हौले ओ आरोही समीर,
हौले बहना।
इस सूने टीले के पास
ओ चांद,
जरा धीरे चलना।
साधना की अबोध बेटी
यहां बेखबर सोयी है।
हम सोये हैं, हम खूब गहरे सोये हैं। हम जन्मों-जन्मों से सोये हैं।
वसंत आता रहा और हम सोये रहे। मधुऋतु आती रही, जाती रही, और हम सोये रहे।
सुबह होती रही और हम सोये रहे। हमारा अंधेरा न टूटा। पूर्णिमाएं आयीं, चांद आकाश में खिला, मगर हमारी अमावस न टूटी; हमारी अमावस बनी ही रही, बनी ही रही।
अमावस टूटती है निद्रा के टूटने से। अमावस टूटती है आंख के खोलने से। आंख के खुलते ही पूर्णिमा हो जाती है। आंख के खुलते ही पूर्णिमा ही शेष रह जाती है।
बुद्ध के जीवन में प्यारी कथा है। कथा ही होगी; ऐतिहासिक होने की संभावना कम है। ऐतिहासिक हो भी सकती है; मगर संयोगमात्र, अगर इतिहास ऐसा हुआ हो। बुद्ध पूर्णिमा के दिन ही पैदा हुए, पूर्णिमा के दिन ही ज्ञान को उपलब्ध हुए, और पूर्णिमा के दिन ही उनकी मृत्यु हुई। मान कर चलें कि कथा होगी। ऐसा संयोग मुश्किल से मिलता है कि उसी दिन जन्मे, उसी दिन ज्ञान उपलब्ध हो, उसी दिन मृत्यु हो। मगर हो भी सकता है, कभी करोड़ में एक-आध आदमी के लिए यह हो भी सकता है। पर वह बात गौण है; इतिहास मूल्यवान नहीं है, छिपी हुई बात गहरी है। पूर्णिमा ही है जागे हुए को। फिर जन्म हो, जीवन हो, जागरण हो, मृत्यु हो, कुछ भी हो--जागे हुए को पूर्णिमा ही है।
महावीर के जीवन में दूसरा प्रतीक है। महावीर को ज्ञान अमावस की रात उत्पन्न हुआ--दीवाली की रात। जैनों का प्रतीक दीवाली के संबंध में हिंदुओं के प्रतीक से ज्यादा गहरा और ज्यादा प्यारा है। हिंदुओं की मान्यता है कि चूंकि राम लंका को जीत कर लौटे, रावण को जीत कर लौटे, उसकी खुशी में दीपावली मनायी गयी। यह विजय-यात्रा बहुत बड़ी विजय-यात्रा नहीं। जैनों का प्रतीक ज्यादा सार्थक मालूम होता है--महावीर निर्वाण को उपलब्ध हुए। अमावस की रात महावीर के लिए अचानक पूर्णिमा की रात हो गयी। इसलिए मैं कहता हूं यह प्रतीक बुद्ध के प्रतीक से भी ज्यादा महत्वपूर्ण है, अमावस की रात एकदम पूर्णिमा की रात हो गयी!

हम क्या करें? हमारे पास और तो कोई उपाय नहीं, तो हमने बहुत दीये जलाये। और हम क्या कर सकते थे? अंधे लोग... भीतर के दीयों का तो हमें पता नहीं। महावीर के लिए अचानक अमावस की रात पूर्णिमा हो गयी; हम क्या करते, हम इस प्रतीक को कैसे सम्हालते? तो हमने खूब दीये जलाये। हमने बाहर रोशनी करने की कोशिश की। बाहर की रोशनी, महावीर के लिए जो भीतर की रोशनी बनी थी, उसका इंगित है, उसका इशारा है। बाहर के दीये तो जलेंगे और बुझ जाएंगे। दीवाली आयेगी और चली जायेगी; लेकिन महावीर का जो दीया जला, फिर नहीं बुझा। वह दिया बुझने वाला नहीं है।
तुम बाहर की दीवालियां बहुत मना चुके, अब भीतर की दीवाली मनाओ। वहां अंधेरा तोड़ना है, और वहां अंधेरा टूट सकता है। तुम हकदार हो तोड़ने के। तुम्हारा अधिकार है तोड़ना। न तोड़ो, तो तुम्हारे अतिरिक्त और कोई जिम्मेवार नहीं। किसी और की शिकायत मत करना, और किसी और पर दायित्व मत टालना कि ऐसा हो गया, ऐसा हो गया, इसलिए न तोड़ पाये; कि ऐसी परिस्थिति न बनी इसलिए नहीं तोड़ पाये। परिस्थिति रोज बन रही है तोड़ने की, तुम झुठलाये जाते हो, इंकार किये जाते हो परिस्थिति को; यह बात दूसरी है। तुम्हारे द्वार पर भी बुद्धों ने दस्तक दी है। और तुम्हारे द्वार पर भी गोरख ने अलख जगायी है। तुम सुनते ही नहीं।
घटि घटि गोरख फिरै निरूता। को घट जागे को घट सूता।
घटि घटि गोरख घटि घटि मीन।
बड़ा प्यारा वचन है! गोरख के गुरु थे मच्छीन्द्रनाथ। मछली उनका प्रतीक है--मीन। गोरख कहते हैंः
घटि घटि गोरख घटि घटि मीन।
कि हर एक के घट में गोरख भी छिपा है और मच्छीन्द्रनाथ भी छिपा है। हर-
एक के भीतर चेला भी छिपा है और गुरु भी। लेकिन लोग पहचान ही नहीं पाते कि तुम्हारे भीतर दोनों छिपे हैं। जिसे जागना है वह भी छिपा है और जो जगायेगा वह भी छिपा है। तुम्हारे भीतर दोनों चकमक पत्थर मौजूद हैं; जरा-सी घर्षण की बात है कि आग पैदा हो जायेगी। जिस गुरु को तुम बाहर खोज लेते हो वह असल में और कुछ भी नहीं, तुम्हारे भीतर के गुरु की प्रतिछवि है। बाहर का गुरु तो दर्पण है, जिसमें तुम भीतर के छिपे गुरु को देख लेते हो। इसलिए ख्याल रखना, बाहर का गुरु आत्यंतिक नहीं है; सिर्फ भीतर के गुरु की याद दिलाने का उपकरण मात्र है। जैसे बाहर किसी ने वीणा बजायी और तुम्हारे हृदय में गुदगुदी फैल गयी और तुम्हारे हृदय में एक संगीत झलकने लगा। जैसे बाहर सुबह निकली, ताजगी फैली... और तुम्हारे भीतर नींद टूटी। और तुम्हारे भीतर भी ताजगी आयी और सुबह हुई। जैसे तुमने स्नान किया, स्नान तो बाहर हुआ; लेकिन देह शीतल हुई तो भीतर मन भी शीतल हुआ। ऐसे ही बाहर का गुरु है--भीतर के गुरु को चोट देने के लिए।
घटि घटि गोरख घटि घटि मीन।
गोरख कहते हैं कि मैं तुम्हें यह कह देना चाहता हूंः तुम्हारा गुरु
भी तुम्हारे भीतर छिपा है और तुम्हारा शिष्य भी। मगर यात्रा शिष्य से शुरू करनी पड़ेगी। जो अपने शिष्य को भी नहीं पहचान पाया वह अपने गुरु को कैसे पहचान पायेगा? गुरु तो सभी बनना चाहेंगे। कौन गुरु नहीं बनना चाहता? लेकिन शिष्य बनने की क्षमता बहुत थोड़े-से लोगों की होती है। और जिनकी शिष्य बनने की क्षमता होती है वे ही एक दिन गुरु बन पाते हैं। शिष्य बनना अहंकार के विपरीत पड़ता है। गुरु तो कोई भी बनना चाहता है।
यहां मेरे पास लोग आते हैं। दस-पांच दिन यहां ध्यान करेंगे, कुछ देर यहां रुकेंगे, फिर वे तत्क्षण गुरु बनने की आकांक्षा से भर जाते हैं। दूसरों को समझाना शुरू कर देते हैं। अभी खुद भी समझ में पड़ा नहीं है। अभी खुद भी कुछ सूझा नहीं है, दूसरों को सुझाने लगते हैं। मुझसे आकर पूछ भी लेते हैं। ऐसे नासमझ लोग हैं! मुझसे आकर पूछते भी हैं कि अब हम अपने गांव जा रहे हैं, अब हम दूसरों को समझा सकते हैं? अब हम दूसरों को ध्यान करवा सकते हैं? क्योंकि हमने दस दिन ध्यान करके सब देख लिया। जैसे कि ध्यान कोई करके देखने की बात है, कि दस दिन तुमने ध्यान की प्रक्रिया कर ली तो तुम्हें ध्यान का पता चल गया! लेकिन मजा इस बात में ज्यादा है कि दूसरों को बतायेंगे। दूसरों का नेतृत्व करेंगे।

नेता होने की बड़ी आकांक्षा है! फिर चाहे राजनीति हो, चाहे धर्म हो, नेता होने की बड़ी आकांक्षा अहंकार की है। इसलिए तुम कूड़ा-करकट कुछ भी इकट्ठा कर लेते हो, दूसरों के सिर में डालने लगते हो। तुम्हें कुछ भी पता नहीं। तुम्हारा छोटा बच्चा भी तुम से पूछता है, ईश्वर है? तो तुमने कभी ख्याल किया, तुम किस अकड़ से कह देते हो कि हां, ईश्वर है; तू भी जब बड़ा होगा, तुझे पता चल जायेगा। न तुम्हें पता चला है, लेकिन तुम धोखा दे रहे हो। और तुम अपने बच्चे को धोखा दे रहे हो। अपने अबोध बच्चे को धोखा दे रहे हो! तुम निर्दोष बच्चे को धोखा दे रहे हो। फिर कल नहीं तो परसों, परसों नहीं तो नरसों, किसी-न-किसी दिन यह बच्चा यह बात जान ही लेगा कि तुमको भी ईश्वर का पता नहीं है। और तब तुम्हारे प्रति अगर इसकी सारी श्रद्धा खंडित हो जाये तो आश्चर्य क्या है?
मां-बाप के प्रति बच्चों की श्रद्धा इसीलिए खंडित होती है। क्योंकि मां-बाप ने झूठे आश्वासन दिये, झूठे दावे किये--जो समय में सब उखड़ जाते हैं। एक दिन बच्चा तुम्हारी नग्नता देख लेता है, तुम्हें खुद भी कुछ पता नहीं है। लेकिन तुमने तब धोखा दिया था जब बच्चा असहाय था।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि सारी दुनिया में बच्चों के मन से माता-पिता
के प्रति श्रद्धा उठने का बड़े से बड़ा कारण यही है कि बच्चों को एक दिन यह पाखंड दिखायी पड़ जाता है। काश, तुम ईमानदार रहे होते! जब तुम्हारे बेटे ने तुमसे पूछा था कि ईश्वर है, तुमने कहा होता कि मैं तलाश रहा हूं, मुझे अभी मिला नहीं, तू भी तलाशना। और जब तक मुझे मिला नहीं, मैं कैसे कहूं कि है और कैसे कहूं कि नहीं है? मैं कुछ भी नहीं कह सकूंगा, मैं असहाय हूं।
तुमने अपनी दीनता प्रगट की होती, तो जिस दिन बच्चा बड़ा होता उस दिन सदा के लिए तुम्हारे प्रति सम्मान रखता कि तुम ईमानदार आदमी हो। तुमने धोखा नहीं दिया। तुम झूठ नहीं बोले। और तुमने अगर अपने बच्चे को कहा होता कि तू भी खोजना, जैसे मैं खोज रहा हूं। और अगर तुझे पहले पता चल जाये तो तू मुझे बता देना, मुझे पहले पता चल जायेगा तो मैं तुझे बता दूंगा। तुमने काश, इतना सम्मान किया होता, तो श्रद्धा टूट नहीं सकती थी।
विश्वविद्यालयों में शिक्षकों के प्रति विद्यार्थियों की कोई श्रद्धा नहीं; कारण साफ है। श्रद्धा-योग्य ही कुछ नहीं है। झूठी बातें तुम कर रहे हो, जिनका तुम्हारे जीवन से कोई तालमेल नहीं है। तुम ऐसी बातें कर रहे हो जिनका तुम्हें पता नहीं है। तुम बातें कर रहे हो, क्योंकि करनी हैं; क्योंकि पाठ्यक्रम का अंग हैं।
मैं विश्वविद्यालय में विद्यार्थी हुआ तो मुझे एक कालेज से दूसरे कालेज में हटाया गया, निकाला गया मुझे। क्योंकि शिक्षक मुझसे नाराज होने लगे। दर्शनशास्त्र का मैं विद्यार्थी था तो मैंने दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर को पूछा कि पहले यह बात साफ हो जाये कि जो आप समझा रहे हैं इसका आपको पता है? वह तो एकदम नाराज हो गये, कि अगर मुझे पता नहीं तो बताता कैसे? मैंने कहाः मैं यह नहीं पूछ रहा हूं कि आपने किताबें नहीं पढ़ी हैं। किताबें तो जो आपने पढ़ी हैं वे तो मैं भी पढ़ सकता हूं, मैं भी पढ़ रहा हूं। मैं यह पूछता हूं आपको अनुभव हुआ है?
वे पतंजलि के योग-शास्त्र पर बोल रहे थे, मैंने पूछा कि ध्यान आपने किया? समाधि का कोई अनुभव हुआ है? निर्विकल्प कोई दशा आपने अनुभव की है? उन्होंने विश्वविद्यालय के कुलपति को लिख कर भेजा कि मैं झंझटें खड़ी करता हूं। तो या तो वे नौकरी छोड़ देंगे या मुझे कहीं और भेज दिया जाये; हम दोनों एक साथ एक ही कक्षा में नहीं हो सकते। उन्होंने कहा कि मुझे बेचैनी पैदा कर देता है। इस तरह की बातें पूछ देता है, जो कि अगर मैं ईमानदारी से कहूं तो मुझे कुछ पता नहीं। लेकिन अगर मैं यह कहूं कि मुझे पता नहीं, तो बाकी विद्यार्थी कहेंगेः फिर पढ़ा क्या रहे हैं? तो यह भी मैं कह नहीं सकता कि मुझे पता नहीं है। यह तो मान कर ही चलना पड़ेगा कि मुझे पता है।
मैं उनसे मिला भी; मैंने कहा कि आप एक दफा साफ-साफ कह दें कि पता नहीं है। मैं आप को बिल्कुल बाधा नहीं दूंगा, एक दफा आप कह दें।
उन्होंने कहा कि मैं कैसे कह सकता हूं कि मुझे पता नहीं है? अगर मैं कहूं, मुझे पता नहीं, तो फिर मैं कर क्या रहा हूं? यह तो मैं कह ही नहीं सकता। और तुम इस तरह के प्रश्न पूछने बंद कर दो।

मैंने कहाः मैं भी प्रश्न तब तक पूछे जाऊंगा जब तक सच्चा उत्तर न आ जाये। क्योंकि मुझे आपके चेहरे से पता चलता है कि आपको पता नहीं है। आपको निर्विकार, निर्विकल्प चित्त का कोई अनुभव नहीं है। मैं प्रश्न ही पूछता हूं, तभी आप इतने बेचैन और परेशान हो जाते हैं।
शिक्षकों के प्रति सम्मान नहीं हो सकता, क्योंकि सम्मान का मौलिक आधार नहीं है। मगर हर व्यक्ति गुरु होना चाहता है। ध्यान रखना, दोनों तुम्हारे भीतर छिपे हैं--गुरु भी और शिष्य भी। मगर शिष्य होने से शुरू करना तो गुरु होने तक पहुंच जाओगे। और तब वैसी गुरुता होगी, जो सप्राण होगी; जो अनुभव पर आधारित होगी।
घटि घटि गोरख घटि घटि मीन। आपा परचै गुरुमुषि चीन्ह।।
इसके दो अर्थ हो सकते हैं, दोनों प्यारे हैं--कि जब तक तुमने गुरु का मुख नहीं चीन्हा है, जब तक तुमने अपना गुरु नहीं चीन्हा है, तब तब तुम अपने को न पहचान सकोगे। आदमी अपने चेहरे को सीधा-सीधा नहीं देख सकता; दर्पण में देख सकता है। हां, दर्पण में देख लिया हो एक बार तो फिर अपने चेहरे की एक पहचान आनी शुरू हो जाती है। लेकिन पहला अनुभव तो दर्पण में होता है।
तुम जरा सोचो, अगर तुमने कभी दर्पण न देखा होता और अचानक तुम्हारी तुमसे ही मुलाकात हो जाती तो तुम पहचानते कि यह मैं ही हूं? नहीं पहचान सकते थे। तुम्हें अपने चेहरे का कोई पता ही न होता। और चेहरा तुम्हारे पास है। दर्पण तुम्हें चेहरा नहीं देता। दर्पण तुम्हें कुछ भी नहीं देता; दर्पण सिर्फ एक झलक देता है, एक प्रतिबिंब देता है। जिसे तुम सीधा नहीं देख सकते हो उसे तुम दर्पण की छवि में देख लेते हो। फिर धीरे-धीरे अपने चहरे की पहचान हो जाती है।
गुरु दर्पण है।
पहली पहचान तो तुम्हें इस बात की करनी होगी कि कौन है तुम्हारा गुरु। किसी से प्रेम लगा लेना होगा। और प्रेम लगाना नहीं पड़ता, प्रेम हो जाता है। सिर्फ बाधा न डालो तो प्रेम हो जाये। अनेक बार तुम गुरु के करीब आ गये हो और घड़ी घटने को ही थी, घटी ही घटी थी कि तुम चूक गये हो। तुमने हजार बाधाएं खड़ी कर लीं। तुमने हजार प्रश्न खड़े कर लिये। तुमने हजार शंकाएं खड़ी कर लीं। तुमने हजार संदेह उठा लिये। और वह जो प्रेम की छोटी-सी उमंग उठी थी, दब गयी, पहाड़ों के नीचे दब गयी।
गुरु की पहचान प्रेम की उमंग से होती है। जिस व्यक्ति के पास बैठ कर तुम्हारे भीतर आनंद का भाव भर जाये, शांति की एक लहर दौड़ जाये, एक सन्नाटा खिंच जाये, तुम एक जादू में मुग्ध हो जाओ, कोई चीज तुम्हारे हृदय को छू जाये। तुम्हारा ताल-मेल बैठ जाये, तुम्हारा छंद बंध जाये। तुम्हारी सांसें किसी के साथ चलने लगें। तुम्हारा हृदय किसी के साथ धड़कने लगे। जैसे प्रेम होता है, बस वैसे ही गुरु की खोज भी होती है। यह बड़ा प्रेम है। यह प्रेम की पराकाष्ठा है। लेकिन तुम हजार सवाल उठाते हो कि यह हिंदू है कि मुसलमान है कि ईसाई है कि जैन है? कि यह खाता क्या, पीता क्या, कपड़े क्या पहनता, उठता-बैठता कैसे? तुम पच्चीस विचार बीच में लाते हो। उन्हीं विचारों में, उन्हीं ऊहापोह में, उसी शोरगुल में, वह जो थोड़ी-सी उमंग उठी थी--खो जाती है। उमंग बड़ी धीमी होती है। उसका उठना मुश्किल, खो जाना सरल होता है। तुम्हारे चित्त के कोलाहाल में भीतर की जो धीमी-सी आवाज आनी शुरू हुई थी, विनष्ट हो जाती है। तुम अपने कोलाहाल में डूबे वापिस लौट जाते हो। गुरु की पहचान... ।
आपा परचै गुरुमुषि चीन्ह।
गुरु के चेहरे को जिसने पहचान लिया, उसने बड़े से बड़ा कदम उठा लिया। अब अपने को पहचानने में ज्यादा देर न लगेगी। गुरु को पहचानने का अर्थ हुआः तुम शिष्य बन गये। शिष्य बन गये तो आधा काम तो पूरा हो गया। तुम्हारे भीतर का आधा अंग तो पूरा हो गया। अब दूसरा आधा अंग रहा। वह गुरु के पास बैठते- उठते किसी दिन पूरा हो जायेगा; किसी भी दिन पूरा हो जायेगा। लेकिन अड़चन आती है तुम्हारे संस्कारों से।
काश तुम इसका फैसला मेरे ही दिल पर छोड़ दो
किसकी मैं बंदगी करूं कौन मेरा खुदा बने
तो सब आसान हो जाये, मगर तुम्हारा समाज छोड़ने नहीं देता।

काश तुम इसका फैसला मेरे ही दिल पर छोड़ दो
किसकी मैं बंदगी करूं कौन मेरा खुदा बने
लेकिन मां-बाप तो छोटे-छोटे बच्चे की गरदन पकड़ लेते हैं! बच्चा तो पैदा होता है--न हिंदू न मुसलमान, न ईसाई--मगर मां-बाप उसकी गर्दन पकड़ लेते हैं। जल्दी से उसको चले... खतना करवा दो, बपतिस्मा करवा दो, जनेऊ पहनवा दो... कुछ भी करवा दो; जल्दी करो। पंडित-पुरोहित के चक्कर में डाल दो। इस असहाय बच्चे को, इस कोरे कागज को गूद डालो। इस पर कुछ-कुछ लिख दो। इसके पहले कि इसको होश आना शुरू हो, इसके सिर को व्यर्थ की बातों से भर दो--धारणाओं से, पक्षपातों से। फिर जिंदगी-भर उन्हीं पक्षपातों की आड़ से वह देखेगा। और उसी देखने के कारण प्रेम की घटना नहीं घट पायेगी। क्योंकि प्रेम की घटना पक्षपातों के कारण नहीं घट पाती। प्रेम की घटना के लिए पक्षपात एक तरफ रखे होने चाहिए, हटा दिये गये होने चाहिए। क्योंकि कौन जाने गुरु किस रूप में आयेगा। मस्जिद में मिलेगा कि मंदिर में कि गुरुद्वारे में, क्या पता? दुनिया जब अच्छी होगी, लोग जब थोड़े और समझदार होंगे, तो अपने बच्चों
को कहेंगे कि जाओ, सब मंदिरों में जाओ--मंदिरों में भी जाओ, मस्जिद में भी जाओ, गुरुद्वारा भी जाओ, गिरजा भी जाओ, अगियारी भी जाना; जहां-जहां जा सको जाना। सब जगह तलाशना, पता नहीं कहां मिल जाये; पता नहीं कौन दर्पण तुम्हारे मन भा जाये! और जो तुम्हारे मन भा जाये, वह तुम्हारा गुरु है। यह कोई और दूसरा निर्णय नहीं कर सकता।
लेकिन हम तो हर चीज में निर्णय दूसरों से करवाते रहे। हम तो बच्चों को प्रेम भी नहीं करने देते हैं। मां-बाप तय करते हैं विवाह उनका। हम तो मौका ही नहीं देते प्रेम को, हम बिल्कुल मार ही डालते हैं। इसलिए हम बाल-विवाह करते थे। क्योंकि जब बच्चे बड़े हो जायेंगे तो इतना आसान नहीं होगा विवाह करना। तुम किसी युवक को किसी युवती से बांधने लगोगे, तो वह युवक कहेगाः लेकिन मेरा कोई लगाव नहीं। छोटे-छोटे बच्चे, जिन्हें कुछ पता ही नहीं है, जिन्हें समझ में ही नहीं आ रहा कि हो क्या रहा है, उनको ज्यादा मजा इसमें आ रहा है कि घोड़े पर बैठे हैं। उन्हें घोड़े से मतलब है। बैण्ड-बाजा बज रहा है, वह बड़े मजे में हैं! घोड़े पर बैठ कर चल रहे हैं। मुकुट बंधा हुआ है। छुरी लटकी हुई है। वे बड़े आनंद में हैं। उनका आनंद छुरी में है, घोड़े में, बैण्ड-बाजे में है; उनको पता ही नहीं कि क्या हो रहा है! वे जिंदगी-भर के लिए एक उपद्रव में बंधे जा रहे हैं, इसका उन्हें कुछ पता नहीं।
बच्चों की अपनी उत्सुकताएं होती हैं। मैंने सुना, एक आदमी एक गांव में रहता था। अपने बच्चों को लेकर रोज बगीचा घूमने जाता था। बच्चे को बड़ा लगाव था, वहां नेपोलियन की प्रतिमा थी एक--घोड़े पर सवार नेपोलियन! घोड़ा बिल्कुल छलांग लगाता हुआ... । बच्चा वहां जरूर अपने पिता को ले जाता था कि चलें, नेपोलियन के पास चलें। बाप भी बड़ा खुश था कि उस बच्चे को नेपोलियन में इतनी उत्सुकता है। वह जरूर जाता था, घोड़े और नेपोलियन के पास जा कर घड़ी-भर बैठकर देखता। फिर बदली का वक्त आया, पिता की बदली हुई, तो बेटे ने कहाः एक बार नेपोलियन को आखिरी बार और देख आयें। बाप ले कर बेटे को बगीचे गया। बाप ने कहा कि तू कभी कुछ पूछता नहीं नेपोलियन के संबंध में, तेरी उत्सुकता इतनी है! उसने कहाः आज पूछता हूं। नेपोलियन तो ठीक है, मगर इसके ऊपर यह चढ़ा हुआ कौन बैठा है? बच्चा तो नेपोलियन घोड़े को समझता था। यह ऊपर कौन चढ़ा बैठा है, यह मुझे बिल्कुल नहीं जंचता। नेपोलियन तो बड़ा शानदार है! बच्चों को अपनी उत्सुकता होती है, अपने ढंग होते हैं, अपने सोचने के। छोटे बच्चे की शादी कर दी। उसे पता ही नहीं क्या हो रहा हैः तुम मूर्च्छा में सब करवाये दे रहे हो। और ऐसा ही तुमने गुरु के साथ भी कर दिया। और ये जीवन की दो बड़ी घटनाएं हैं। एक शारीरिक प्रेम की घटना है, एक आत्मिक प्रेम की घटना है। तुमने दोनों मार डालीं। तुमने दोनों काट दीं। अब अगर दुनिया प्रेम-शून्य हो जाये तो आश्चर्य क्या? न तो यहां शारीरिक प्र्रेम है, न यहां आत्मिक प्रेम है।
बाप मुसलमान था, तो बेटे को कहा कि मस्जिद के अलावा कहीं और मत जाना।
अब क्या पक्का कि मस्जिद में इसे अपना गुरु मिल जायेगा, मिल ही जायेगा? बहुत कम संभावना है कि मस्जिद में इसे गुरु मिल जाये। क्योंकि जो गुरु की योग्यता को उपलब्ध होते हैं, वे शायद ही मंदिर-मस्जिदों में पुजारी बनते

हैं! शायद ही! कौन ऐसा व्यर्थ का धंधा करेगा! कौन परंपरागत होगा? जिसने सत्य को जान लिया है, वह किसी शास्त्र से बंधा हुआ नहीं होगा और न किसी परंपरा से बंधा हुआ होगा, वह तो स्वयं गवाह है परमात्मा का। वह तो अपनी हैसियत से खड़ा होगा। वह तो अपने अधिकार से बोलेगा।
तो मंदिर-मस्जिद में मिल जाते हैं पुजारी, पुरोहित, मौलवी, मगर गुरु नहीं मिल पाता। मगर इन गुरुओं के कारण गुरु के मिलने में बाधा बन जाती है। मेरे पास लोग आते हैं, मुझसे पूछते हैं कि इसमें कुछ हानि तो नहीं है, इसमें कोई पाप तो नहीं है, क्योंकि बचपन में किसी गुरु ने हमारे कान फूंके थे। अब हम आपको गुरु बनायें, तो इसमें धोखा तो नहीं हो रहा?
मैंने कहा, तुमने उस गुरु को चुना था? उन्होंने कहा, हमें तो कुछ पता
ही नहीं था, पिताजी ने जिससे कान फुंकवा दिये, फुंकवा दिये। मगर अब एक मन में दुविधा बैठ गयी है कि जब एक गुरु हो गया तो अब दूसरे को गुरु कैसे बनायें? और यह गुरु तुमने बनाया ही न था। तुमने ही बनाया होता तब तो दूसरे की कोई जरूरत ही न होती। तुमने ही खोजा होता तब तो दूसरे की कोई जरूरत न होती। मगर एक धोखा हो गया। यह झूठा सिक्का तुम्हारे हाथ में है, इसकी वजह से अगर सच्चा सिक्का कभी मिलता भी हो, तो तुम इस झूठे को छोड़ न सकोगे। क्योंकि झूठे को छोड़ने में लगेगाः कहीं कोई पाप तो नहीं हो रहा है? इतने दिन तक जिसे गुरु माना, अब उसको कैसे छोड़ दें? आदत बन गयी, एक संस्कार गहरा हो गया।
काश तुम इसका फैसला मेरे ही दिल पर छोड़ दो
किसकी मैं बंदगी करूं कौन मेरा खुदा बने
तो आसान हो जाये बहुत बात।
अच्छी दुनिया में न तो मनुष्य के शारीरिक प्रेम पर कोई दूसरा आरोपण करेगा और न मनुष्य के आध्यात्मिक प्रेम पर कोई दूसरा आरोपण करेगा। लोग अपनी प्रेयसी, अपना प्रेमी खुद चुनेंगे; लोग अपना गुरु खुद चुनेंगे। कम-से-कम प्रेम तो स्वतंत्र होना चाहिए। कम-से-कम उस पर तो कोई जंजीर नहीं होनी चाहिए। मगर बड़ी जंजीरें हैं प्रेम पर! प्रेम पर ही जंजीरें हैं; घृणा पर तो कोई जंजीर नहीं है। घृणा तो बिल्कुल मुक्त है। प्रेम पर जंजीरें हैं; वैमनस्य पर जंजीरें नहीं हैं। प्रीति पर दीवालों पर दीवालें हैं। मनुष्य अप्रेम के ढंग से जीता रहा है। और जिन बातों को तुम प्रेम भी कहते हो, वे प्रेम के धोखे हैं, प्रेम नहीं है। और धोखे से तृप्ति नहीं होती। झूठे भोजन से कहीं पोषण मिलेगा?
दूसरा अर्थ... आपा परचै गुरुमुषि चीन्ह।
पहला अर्थः पहले तो गुरु के चेहरे को पहचान लो। जहां तुम्हारा हृदय आंदोलित हो उठे, फिर फिक्र मत करना कि तुम्हारी धारणाओं के अनुकूल है या नहीं। हृदय धारणाओं की चिंता ही नहीं करता। हृदय में तो तूफान आता है, बाढ़ आती है; किनारों को तोड़ कर बह जाता है। एक अर्थ।
दूसरा अर्थः
आपा परचै गुरुमुषि चीन्ह... फिर गुरु के मुख से जो चिह्न दिये जायें स्वयं को पहचानने के, उन्हें समझना। वह जो-जो चिह्न दे, अंतर्यात्रा के लिए जो-जो मील के पत्थर बताए, उनको समझना।
सुणि गुणवंता सुणि बुधिवंता।
गुरु की बात को बहुत बोधपूर्वक सुनना; ऐसे ही मूर्च्छित-मूर्च्छित मत सुन लेना। नहीं तो पहचान न आयेगी। यह बात सूक्ष्म की है।
सुणि गुणवंता सुणि बुधिवंता, अनंत सिधां की वाणी।
और मजा यह है कि जो एक गुरु बोल रहा है, वह अनंत सिद्धों की वाणी है।
अभिव्यक्ति में भेद होगा, शब्द अलग होंगे, प्रतीक अलग होंगे, मगर जो एक सिद्ध बोलता है, वह सभी सिद्धों की वाणी है। इससे अन्यथा हो ही नहीं सकता। इसलिए जिसने एक सिद्ध को पा लिया, उसने सारे सिद्धों की परंपरा को पा लिया। और सिद्धों की कोई एक-आध सांप्रदायिक परपंरा को नहीं, सारे सिद्धों की परंपरा को पा लिया। और जिसने गुरु पा लिया, उसने मुहम्मद भी पा लिया गुरु में और महावीर भी पा लिया। उसने जरथुस्त्र भी पा लिया और बुद्ध भी पा लिये। उसने लाओत्सु भी पा लिया और बोधिधर्म भी पा लिया। जिसने एक गुरु पा

लिया उसने सारे जगत के समस्त गुरु पा लिए, क्योंकि उनका सूत्र एक ही है।
कुंजी तो एक ही है, जिससे ताला खुलता है अस्तित्व का।
सुणि गुणवंता सुणि बुधिवंता, अनंत सिधां की वाणी।
गोरख कहते हैंः मैं जो कह रहा हूं यह कोई मैं ही कह रहा हूं ऐसा नहीं,
यह अनंत सिद्धों की वाणी है।
सीस नवावत सतगुरु मिलिया, जागत रैन बिहाणी।
और जिनकी भी क्षमता है सिर को झुकाने की, उन्हें सतगुरु निश्चित मिल जाता है। सिर झुकाने की क्षमता--बस वही एकमात्र अनिवार्य शर्त है। जो झुकने को राजी हैं, उन्हें गुरु मिल जाता है। बड़ा प्यारा वचन है!
सीस नवावत सतगुरु मिलिया... ।
इधर शीश झुकाया नहीं कि उधर गुरु मिला नहीं। तत्क्षण मिलना हो जाता है।
हजारों नूर उसी की हसरते-दीदार पर कुरबां
कि जिसकी जिंदगी ही हसरते-दीदार हो जाये।
सारे प्रकाश उस पर न्योछावर किये जा सकते हैं।
हजारों नूर उसी की हसरते-दीदार पर कुरबां
सारे प्रकाश उस व्यक्ति की एक अभिलाषा पर कुर्बान किये जा सकते हैं, जिसके भीतर--
कि जिसकी जिंदगी ही हसरते-दीदार हो जाये।
कि जिसके भीतर एक ही दर्शन की आकांक्षा है, सत्य के दर्शन की आकांक्षा
है या प्रभु के दर्शन की आकांक्षा है। जिसके भीतर प्रभु-दर्शन की आकांक्षा है, बस उसको एक ही काम और करना है कि जब हृदय में पुलक उठे और जब प्राण पुकार दें, तो सिर झुकाने को राजी हो जाये, अहंकार को गलाने को राजी हो जाये।
सीस नवावत सतगुरु मिलिया, जागत रैन बिहाणी।
और फिर तो रात भी दिन हो जाती है। और नींद भी जागरण हो जाती है।
जागत रैन बिहाणी।
एक बार गुरु से मिलना हो जाये, तो रोशनी से संबंध हो गया, जागृति से संबंध हो गया। फिर तो नींद भी जाग्रत है। फिर तो बेहोशी में भी होश है।
बिना गुरु के तो सब उदास है।

शाम है इस तरह की आज उदास
खुद से दूरी का जिस तरह एहसास
जैसे सोया हुआ किसी का नसीब
जैसे आशिक के दिल में फिक्रे-रकीब
जैसे खामोश जांकनी का समां
जैसे उठता हुआ चिता से धुआं
जैसे बेबस हो जुल्मतों में नजर
जैसे बेवा का मायके को सफर
दूर मंजिल का फासिला जैसे
लुट के रह जाये काफिला जैसे
न कोई साज है, न कोई जाम
हाय यह शाम, उदास-सी शाम
जिंदगी बिना गुरु के ऐसी है--न कोई साज है न कोई जाम। न कोई वीणा बजती है, न कोई मदमस्ती का प्याला भर कर आता है।
न कोई साज है, न कोई जाम
हाय यह शाम, उदास-सी शाम
जिंदगी जब तक सत्य से न जुड़ी हो, सुबह भी शाम है और दिन भी रात है, पूर्णिमा भी अमावस है। और जिंदगी भी मरण का एक लंबा सिलसिला है, और कुछ भी नहीं। सत्य से संबंध हो जाये, जिसने सत्य जाना है उससे संबंध हो जाये, जिसकी आंखों में परमात्मा की झलक बनी है उससे संबंध हो जाये--तो तुम परमात्मा से जुड़ गये। परमात्मा को जानने वाले से जुड़ गये तो परमात्मा से जुड़ गये। अब शाम भी सुबह है। अब रात भी दिन है। अब मौत भी सिर्फ अमृत का दर्शन होगी।

उनमनि रहिबा भेद न कहिबा।
और जब ऐसा हो जाये, गुरु से मिलन हो जाये, हृदय आंदोलित हो उठे, वीणा बज उठे--उनमनि रहिबा--फिर तो भीतर ही डुबकी मार कर रह जाना।
भेद न कहिबा!
और किसी से कहना भी मत भेद। क्यों? क्योंकि कोई समझेगा नहीं; लोग समझेंगे दीवाने हो गये हो।
यह तो ऐसा ही है जैसे मजनू को प्रेम हो गया लैला से। इसका कोई यह अर्थ थोड़े ही है कि सारी दुनिया के लोगों को लैला से प्रेम हो जाये। और जिनको प्रेम नहीं हुआ वे तो मजनू को दीवाना कहेंगे ही। तुम देखते न, प्रेमियों को सभी लोग दीवाना कहते हैं कि पागल हो गये। जो हो गया है पागल उसको छोड़ कर सभी को वह पागल मालूम पड़ता है। कारण उसका है, क्योंकि जो उसे दिखाई पड़ रहा है वह किसी को दिखाई नहीं पड़ रहा। और जो उसे दिखाई पड़ रहा है वह किसी को दिखायी पड़ भी नहीं सकता, क्योंकि उसको देखने की शर्त ही प्रेम है। यह बहुत अड़चन की बात है; इसे समझ लेना।
मजनू को एक सम्राट ने अपने दरबार में बुलाया। और अपने दरबार की बारह सुंदरियों को सामने खड़ा कर दिया। और कहा कि मैं तुझे रोज रोते देखता हूं गलियों में, चिल्लाते--लैला, लैला... । तेरी आवाजें, तेरी पुकार... गांव-भर दुखी है तेरे लिए। मेरे मन में यह सवाल उठा कि लैला बहुत सुंदर होगी, तभी तो तू पुकारता फिरता है। मैं भी सौंदर्य का प्रेमी हूं, पारखी हूं, तो मैंने छिप कर लैला को देखा। उसे मैंने बहुत साधारण पाया। तू दीवाना है, फिजूल की बकवास में लगा है! मुझे तुझ पर इतनी दया आयी कि मैंने कहा तुझे बुलाकर अपने राज्य की बारह सुंदरियों में से जो भी तू चुनना चाहे चुन ले। मजनू एक-एक के पास गया और इंकार करता गया कि नहीं-नहीं; यह भी नहीं। जब बारह को इंकार कर दिया, सम्राट ने कहा कि तू होश में है? इससे ज्यादा सुंदर स्त्रियां इस राज्य में दूसरी नहीं हैं। लैला तो इनके सामने कुछ भी नहीं है!
मजनू हंसने लगा। उसने कहा कि नहीं, लैला को देखने के लिए मजनू की आंख चाहिए। आपके पास आंख ही नहीं है। आपने लैला को देखा नहीं। जिस लैला को मैंने देखा है, आपने उस लैला को नहीं देखा, आपने किसी और को देखा होगा।
एक कवि देखता है फूल को, उसे सौंदर्य दिखायी पड़ता है। एक वैज्ञानिक फूल को देखता है, उसे कोई सौंदर्य दिखायी नहीं पड़ता। अगर वह रसायनविद है तो उसे सिर्फ रसायनशास्त्र की कुछ बातें दिखायी पड़ती हैं। एक माली फूल को देखता है तो उसे केवल इतना ही दिखायी पड़ता है कि कितने पैसे मिल जायेंगे बाजार में बेचने से।
बर्नार्ड शॉ कभी फूल को तोड़ता नहीं था। एक मित्र बर्नार्ड शॉ को मिलने आया था, तो अपनी बगिया से कुछ फूल तोड़ लाया। बर्नार्ड शॉ तो बहुत नाराज हुआ। उस मित्र ने कहाः आप कैसी बात करते हैं! मैं तो सोचता था कि आप इतने बड़े साहित्यिक, आपको फूलों से प्रेम होगा।
उसने कहाः प्रेम है इसीलिए तो। तुमने तोड़ा क्यों? उसने कहा कि मैंने सोचा आपके कमरे में गुलदस्ता सजा दूंगा।
उसने कहाः मुझे प्रेम बच्चों से भी है, क्या उनकी गर्दनें काट कर गुलदस्ता सजाऊं?
अब जो फूल में बर्नार्ड शॉ को दिखायी पड़ रहा है, वह शायद ही किसी को दिखायी पड़ता हो। इतना प्रेम, इतना सौंदर्य, कि बच्चे की गर्दन काटने जैसी पीड़ा हो जाये--फूल को तोड़ने में!
तो ख्याल रखना, जिसमें तुम्हें गुरु दिखायी पड़ा है, जरूरी नहीं है कि सभी को गुरु दिखायी पड़े। सच तो यह है कि तुम्हें दिखायी पड़ा है, इसलिए जितने तुमसे संबंधित हैं उनको बिल्कुल दिखायी नहीं पड़ेगा। उनकी तो दुश्मनी खड़ी हो जायेगी। अगर पति को गुरु दिखायी पड़ गया तो पत्नी को अड़चन शुरू हो जायेगी, कि यह कहां की झंझट आ गयी! यह हम दोनों के बीच में एक तीसरा आदमी आ गया। अब पति मेरा नहीं रहा।
मेरे पास पत्नियां आ कर कहती हैं कि आपने क्या कर दिया! आप हमारे बीच में क्यों आ गये, हमारी जिंदगी में क्यों आ गये? सब ठीक चल रहा था... और पति

आपके पीछे दीवाने हो गये। अब मैं नंबर दो हूं। अब उनको फिक्र यहां की लगी रहती है।
कैसे पत्नी बर्दाश्त करे? और अगर पत्नी ने चुन लिया है गुरु, तब तो और मुश्किल हो जाती है। तब तो पति के अहंकार को भयंकर चोट लग जाती है। यह तो पति मान ही नहीं सकता कि पति के अतिरिक्त भी कोई और परमात्मा है; पति ही परमात्मा है! और पत्नी किसी के चरणों में झुकने लगी। और इस तरह वह पति के चरणों में नहीं झुकती है। कौन पत्नी पति के चरणों में झुकती, पति को ही झुकवाती रहती है!
गुरु मिल जायेगा तो तुम्हारे जो निकटतम हैं, वे तुम्हारे खिलाफ हो जायेंगे। उनको फिर तुम्हारे साथ नया आयोजन करना पड़ेगा, क्योंकि तुम नये होने लगे। एक नयी घटना तुम्हारी जिंदगी में घट गयी। और छोटी घटना नहीं; ऐसी, जो कि तुम्हारी पूरी जिंदगी को उलट-पुलट कर देगी। अब तुम्हारी जिंदगी नये ढंग से निर्मित होगी। और जो तुम से जुड़े हैं उनको भी अपनी जिंदगी नये ढंग से निर्मित करनी पड़ेगी, तुम्हारे साथ अगर जुड़े रहना है तो। नहीं तो सब संबंध उखड़ जायेंगे। टूट जायेंगे। इसलिए गुरु का मिलन एक क्रांति है। गोरख ठीक कहते हैंः
उनमनि रहिबा भेद न कहिबा, पियबा नीझर पाणी।
चुपचाप भीतर-भीतर पीना, चुपचाप भीतर-भीतर समाना। मत अपने गुरु की प्रशंसा करना; क्योंकि प्रशंसा तुम करोगे... करना तुम्हारा चाहेगा मन, कौन न करना चाहेगा? जिसको गुरु मिल गया वह चाहता है कि मुंडेरों पर चढ़ जाये मकानों की और चिल्लाकर दुनिया-भर को कह दे कि पागलो! कहां चले जा रहे हो, आओ मेरे गुरु के पास! यह बिल्कुल स्वाभाविक है। मगर तुम जितना अपने गुरु का सम्मान करोगे, उतना ही दूसरे अपमान करेंगे। तुम जितनी प्रशंसा करोगे, उतनी ही दूसरे निंदा करेंगे। तुम्हारे गुरु को मानने का मतलब तो होगा कि तुम्हारे बोध को स्वीकार कर लिया। कौन तुम्हारे बोध को स्वीकार करेगा? तुम्हारे गुरु के खंडन में वे यह कह रहे हैं कि तुम मूर्ख हो, मूढ़ हो। किस नासमझ के चक्कर में पड़े हो? पागल हो गये हो, दीवाने हो गये हो, सम्मोहित हो गये हो!
कोई तुम्हारा निकटतम मित्र भी यह बात मानने को राजी नहीं होगा कि उसके पहले और तुमको गुरु मिल गया। तो तुम इतने बड़े पात्र, ऐसे सुपात्र! कि उसे कुछ नहीं दिखायी पड़ा और तुम्हें दिखायी पड़ गया; तुम ऐसी आंखवाले! तुम ऐसे प्रज्ञाच्रु! नहीं, उसके अहंकार को चोट पड़ेगी। वह सिद्ध करने में लग जायेगा, हर तरह से सिद्ध करने में लग जायेगा कि तुम गलत हो। और तुम्हें गलत सिद्ध करने का एक ही उपाय है कि तुम्हारे गुरु को गालियां दे।
कल मुझसे कोई पूछता था कि आपके लोग इतने खिलाफ क्यों हैं? मैंने कहाः
यह बिल्कुल स्वाभाविक है, कुछ लोग मेरे इतने प्रेम में हैं! और एक आदमी प्रेम में पड़े तो कम-से-कम पचास आदमी खिलाफ हो जायेंगे। क्योंकि उस एक आदमी से जो पचास जुड़े हैं, वे सब खिलाफ हो गये। उसके बेटे खिलाफ हो जायेंगे मेरे; उसकी पत्नी, उसके भाई, उसके बंधु, उसके रिश्तेदार--उसके सारे संबंधी... । अब एक आदमी से अगर पचास आदमी जुड़े हैं--और स्वभावतः एक आदमी से कम से कम पचास आदमी तो जुड़े होंगे--ज्यादा ही जुड़े होंगे, वे सब मेरे खिलाफ हो गये। एक पक्ष में क्या आया, पचास विपक्ष में हो जायेंगे।
मगर मैंने उनसे कहाः एक बात पक्की समझना कि मेरे बाबत निर्णय लेना ही होगा--या तो मेरे पक्ष में या मेरे विपक्ष में; दोनों हालत में तुम मुझसे जुड़ गये। दोनों हालत में तुम मुझसे बच न सकोगे। और जो विपक्ष में है वह कभी भी पक्ष में हो सकता है। क्योंकि जो पक्ष में है वह कभी भी विपक्ष में हो सकता है। इसमें कुछ आश्चर्य की बात नहीं है। यहां मित्र शत्रु हो जाते हैं, शत्रु मित्र हो जाते हैं। इसलिए जो जुड़ गया, वह अभी चाहे शत्रु की तरह जुड़ा हो, कभी मित्र हो सकता है।
ऐसी भी घटनाएं रोज यहां घटती हैं, जब तक पति उत्सुक था, पत्नी खिलाफ थी। जब से पति उत्सुक नहीं रहा, पत्नी उत्सुक हो गयी। झगड़ा है न! अब जब पति ने रंग बदल लिया तो पत्नी ने भी रंग बदल लिया। जब से पति विरोध में हो गया, पत्नी पक्ष में हो गयी।

बड़े अजीब हैं लोगों के मन। और लोग मूर्च्छित भाव से जी रहे हैं।
उन्हें कुछ पक्का पता नहीं है कि क्यों--जो बोलते हैं, क्यों; जो करते हैं, क्यों? जो प्रेम, घृणा, नाते-रिश्ते बना लेते हैं, क्यों?
उनमनि रहिबा भेद न कहिबा, पियबा नीझर पाणी।
वह जो भीतर गुरु के प्रेम में जुड़े गये, झरना बहने लगेगा... उसको पीना।

बांधो नहीं, बांधो नहींआरोही गंध को, छंद की पंखुरियों मेंगीतों की लड़ियों में। कूलों की कारा मेंगंगा की धारा को बंदी बनाओ नहीं, ज्योतिर्मय किरणों कोस्तब्ध, मौन ग्रहण करो, वहन करो, वहन करो!
चुपचाप गुरु को पीना और वहन करना। समाना, जितना समा लो। एक दिन बहेगा तुमसे। लेकिन तुम मत बहाना। जब बहने ही लगे अपने से, तुम अवश हो जाओ, तब बात और। तब तक सम्हालना। जैसे कोई स्त्री गर्भिणी हो जाती है तो नौ महीने तक बच्चे को सम्हालती है। एक दिन तो बाहर आयेगा, आखिर कब तक बच्चा भीतर रहेगा गर्भ के। पर जब अपने से आये तभी आने देना; जल्दी मत करना, नहीं तो गर्भपात होगा। जल्दी मत करना, नहीं तो असमय में कही गयी बात का कोई मूल्य नहीं होता।
उनमनि रहिबा भेद न कहिबा, पियबा नीझर पाणी।
लंका छाड़ि पलंका जाइबा, तब गुरुमुष लेबा वाणी।
और धीरे-धीरे जो व्यर्थ है--लंका उसका प्रतीक है--सोने की लंका, वह जो
सब व्यर्थ है। जिसको जगत में लोग मूल्यवान मानते हैं, उस सबको जब तुम असार जानने लगोगे; जब लंका को छोड़ कर तुम प्रलंका के निवासी हो जाओगे; वह धन-दौलत, पद-प्रतिष्ठा, सम्मान, अभिमान का जो जगत है, वह जब तुम्हें दो कौड़ी का मालूम होने लगेगा--
तब गुरुमुष लेबा वाणी।
--तभी तुम योग्य हो सकोगे कि गुरु जो तुम्हें दे रहा है, उसे तुम झेल पाओ, कि तुम गुरु से गर्भित हो पाओ। सौभाग्यशाली है वह व्यक्ति जो किसी के सामने झुक पाये। जिसे ऐसा कोई मिल जाये जहां झुकना आसान हो।
सजदा उस आसतां का न जिसको हुआ नसीब
वह अपने ऐतकाद में इनसान ही नहीं
जिसको प्यारे की चौखट का प्रणाम न मिला...
सजदा उस आसतां का न जिसको हुआ नसीब
वह अपने ऐतकाद में इनसान ही नहीं
वह हमारे हिसाब में अभी आदमी ही नहीं। आदमी ही तब बनता है कोई, जब उसके भीतर शिष्य प्रगट हो जाये। और जिस दिन शिष्य प्रगट हुआ, आदमी बनते हो तुम। और जिस दिन तुम्हारे भीतर गुरु प्रगट होगा, उस दिन तुम भगवान हो जाओगे। शिष्य तुम्हारे भीतर की मनुष्यता की पराकाष्ठा है। और तुम्हारे भीतर गुरु का आविर्भाव तुम्हारे भीतर भगवत्ता का आविर्भाव। और जब कभी ऐसा हो जाये कि कोई मिल जाये--कोई चौखट, जहां सिर झुकाने का मन हो, तो चूकना मत, टालना मत, कल के लिए स्थगित मत करना।
मैं आज ही उसे क्यों सर्फे-दिल न कर डालूं
यह खूं की बूंद मुझे कल यहां मिले न मिले।
कल का क्या भरोसा है? यह हृदय धड़के न धड़के। यह खून रग में चले या न चले। श्वास बहे न बहे।
मैं आज ही उसे क्यों सर्फे-दिल न कर डालूं
इसलिए आज ही समर्पित कर दूं, इसी क्षण समर्पित कर दूं। क्योंकि कल का कोई भरोसा नहीं।
तब गुरुमुष लेबा वाणी।
और जो ऐसा समर्पित है, और जिसने असार से अपनी आंखें हटा लीं और सार की तलाश में चला, बाहर से मुड़ा और भीतर की तरफ चला--वही हकदार है उसका, गुरु जो देना चाहता है, जो गुरु के पास पक गया है, जो भेंट बांटना चाहता है, जो प्रसाद गुरु तभी दे सकता है।
थंभ बिहूंणी गगन रचीलै, तेल बिहूंणी बाती।
गुरु गोरख के वचन पतिआया, जब द्यौंस नहीं तहां राती।।

और गुरु एक चमत्कार करने वाला है। लेकिन चमत्कार तभी हो सकता है जब तुम पात्र होओ।
थंभ बिहूणी गगन रचीलै!
वह एक ऐसा आकाश तुम्हें देना चाहता है जो बिना किसी सहारे के है।
थंभ बिहूंणी गगन रचीलै!
हम मंदिर बनाते हैं, तो स्तंभ बनाते हैं, खंभे बनाते हैं। तब कहीं मंदिर का छप्पर बन पाता है। लेकिन यह आकाश का छप्पर देखा! छप्पर तो है, लेकिन बिना किसी सहारे के! ऐसा ही एक आकाश भीतर भी है, जो गुरु देगा। जो किन्हीं खंभों पर, सहारे पर नहीं है। एक ऐसा मंदिर भी है, जो ईंटों से नहीं चुना गया है। वही मंदिर चिन्मय है। वही असली मंदिर है।
थंभ बिहूंणी गगन रचीलै, तेल बिहूंणी बाती।
और अभी तो तुमने वे दीये देखे हैं, जिनमें तेल से बाती जलती है। लेकिन तेल चुक जायेगा तो फिर दीया बुझ जाता है। कि बाती चुक जायेगी तो दीया बुझ जाता है। ये दीये थोड़ी देर जलते हैं और बुझ जाते हैं। गुरु एक ऐसा दीया देना चाहता है--बिन बाती बिन तेल! न तो वहां बाती होगी न वहां तेल होगा; सिर्फ रोशनी होगी। निराधार प्रकाश होगा। फिर वही प्रकाश शाश्वत है। उसका कोई कारण नहीं है, इसलिए उसके मिटने का भी कोई उपाय नहीं है।
गुरु गोरख के वचन पतिआया।
एक बार तुम्हें गुरु के वचन पर प्रेम आ जाये। गुरु गोरख के वचन पतिआया। "पतिआया" शब्द प्यारा है! प्रीति आ जाये, भाव आ जाये। हृदय गदगद हो जाये। रोमांच हो उठे।
गुरु गोरख के वचन पतिआया, तब द्यौंस नहीं तहां राती।
और उसी दिन से, जिस दिन से यह प्रेम जगा, उसी दिन से अब उस जगत का अनुभव शुरू हो गया है--जहां न दिन होता है न रात; जहां द्वंद्व नहीं है; न जहां जीवन है न मृत्यु; न जहां सुख है न दुख, न सफलता न असफलता--जहां एक ही निर्विकार, निर्विकल्प, निराकार... । जहां एक का ही वास है, जहां दो नहीं हैं।

छू कर प्राणों की पीर प्रीति बन जाओ
जो कुछ उलझी थी आज उसे सुलझा दो
जो कुछ सुलझी थी आज उसे उलझा दो
मेरे नयनों के सावन आज सुखा दो
मैं चाह रही हूं मुझको आज दुखा दो
नयनों के नेही स्नेह नीति बन जाओ। छू कर प्राणों की पीर प्रीति बन जाओ। तुम स्नेह स्वाति बन जीवन भर तरसाओ मेरे चित चातक को न अधिक दरसाओ अधरों की यदि मुस्कान चुराओ जानूं इतना कर दो तो धन्यभाग मैं मानूं तुम वर्तमान के चिर अतीत बन जाओ
छू कर प्राणों की पीर प्रीति बन जाओ मेरे सन्मुख झूठा शृंगार नहीं है
स्वप्निल आशाओं का आधार नहीं है
मेरी वीणा के बिखरे तार सजा दो
इंगित से उसको क्षण भर आज बजा दो।
गा कर तुम मेरे गीत मीत बन जाओ
छू कर प्राणों की पीर प्रीति बन जाओ।
यह पतिआने का अर्थः बजा दो मेरे हृदय की वीणा को, झंकृत कर दो!

मेरी वीणा के बिखरे तार सजा दो
इंगित से उसको क्षण भर आज बजा दो।
गा कर तुम मेरे गीत मीत बन जाओ
छू कर प्राणों की पीर प्रीति बन जाओ

जिस दिन गुरु के वचन अमृत जैसे मालूम होने लगते हैं; जिस दिन गुरु के वचन तुम ऐसे पीने लगते हो जैसे स्वाति की बूंद को चातक पीता; जिस दिन तुम्हारे और गुरु के बीच कोई व्यवधान नहीं रह जाता, तुम निर्वस्त्र हो जाते हो; तुम और गुरु के बीच कोई सुरक्षा के आयोजन नहीं रखते; तुम सम्हले दूर-दूर, अलग-थलग नहीं होते; जुड़ ही जाते हो; गुरु की तरंग के साथ तरंगित होते हो--उस क्षणः
गुरु गोरख के वचन पतिआया, तब द्यौंस नहीं तहां राती!
बस उसी क्षण द्वंद्व मिट जाता है, द्वैत मिट जाता है, अद्वैत का जन्म होता है।
उदय न अस्त राति न दिन।
वहां न सुबह होती है न सांझ।
उदय न अस्त राति न दिन, सरबे सचराचर भाव न भिन्न।
वहां भिन्नता का भाव ही नहीं; वहां अभिन्नता का राज्य है।
सोई निरंजन डाल न मूल।
वहां न कोई मूल है न कोई डाल। इतना भी भेद नहीं; बस एक निरंजन है।
सोई निरंजन डाल न मूल! सब व्यापीक सुषम न अस्थूल।
न वहां कोई स्थूल है न वहां कोई सूक्ष्म है। न वहां शरीर है न आत्मा, न पदार्थ न चेतना। वहां सब एक है--सब एक हो गया। उस अद्वैत में जो लीन हो गया, उसने ही जाना, उसने ही पाया।
अनंत सिधां की वाणी!
ये अनंत सिद्धों के वचन हैं।
कहा बुझै अवधू राई गगन न धरणी।
वहां न पृथ्वी है न आकाश; न राजा न रंक।
चंद न सूर दिवस नहीं रैनी।
न चांद है न सूरज है, न दिन न रात।
ओंकार निराकार सूछिम न अस्थूल, पेड़ न पत्र फलै नहीं फूल।
वहां सब एक में लीन हो गया है।
पेड़ न पत्र फलै नहीं फूल, ओंकार निराकार सूछिम न अस्थूल।
सब स्थूल-सूक्ष्म खो गये, सिर्फ एक ओंकार का नाद हो रहा है। एक संगीत
बज रहा है। संगीत, जो अनाहत है। संगीत, जिसका कोई स्रोत नहीं। एक ज्योति जल रही है--बिन बाती बिन तेल!

अर्चना मैं कर न पाया।

दो क्षणों के उस मिलन में कौन-सा मैं गीत गाता?
जब तुम्हें लख सामने, निज को स्वयं मैं भूल जाता।
बन गया था मूक, प्रिय की वंदना मैं कर न पाया।
अर्चना मैं कर न पाया।

मुस्कुराए तुम, हृदय में छा गई मेरे विकलता, ज्यों पतंग विभोर होता, देखते ही दीप जलता।
कौन परिचय दूं प्रणय की कामना मैं कर न पाया? अर्चना मैं कर न पाया।

मौन अंतर की व्यथा को क्या गए पहचान थे तुम? मैं छिपाए था जिसे उसका गए प्रिय जान थे तुम।
खुल गया सब भेद, पूरी साधना मैं कर न पाया।
अर्चना मैं कर न पाया।

हो रहे थे तुम द्रवित लख वेदना का भार मेरा।
हो गया साकार ही था दीन उर का प्यार मेरा।
स्वप्न से आये, गए तुम याचना मैं कर न पाया।
अर्चना मैं कर न पाया।

और जब ऐसी घड़ी पहली बार आती है, तो साधक अवाक रह जाता है।
अर्चना मैं कर न पाया!
स्वप्न से आए गए तुम याचना मैं कर न पाया।
उस क्षण एक शब्द भी बोला नहीं जाता--मूक, वाणी खो जाती है। चुप्पी हो जाती है, सन्नाटा हो जाता है। जहां न दिन है न रात, न उदय न अस्त, वहां मैं- तू भी कहां? कौन करे अर्चना, किसकी करे अर्चना?
अर्चना मैं कर न पाया।
दो क्षणों के उस मिलन में कौन-सा मैं गीत गाता
जब तुम्हें लख सामने, निज को स्वयं मैं भूल जाता।
बन गया था मूक, प्रिय की वंदना मैं कर न पाया।
अर्चना मैं कर न पाया।
उस अपूर्व अनुभव को इसीलिए कोई कभी कह नहीं पाता। वहां जा कर वह वाणी छूट जाती है। शब्द गिर जाते हैं, निःशब्द रह जाता है। जो वहां से लौटता है वह कहे भी तो कैसे कहे? जो उसने जाना है, शून्य था। शब्दों में कैसे बांधे? इसलिए बुद्धों की आंखें शून्य हैं। अगर तुम उनकी आंखों में झांकोगे,
तो असीम शून्यता पाओगे। वहां तुम कुछ वक्तव्य नहीं पाओगे। हां, निराकार का स्वाद मिलेगा। अगर बुद्धों के हृदय से जुड़ोगे, तो अनाहत का नाद सुनाई पड़ेगा, लेकिन कोई वक्तव्य नहीं, कोई सिद्धांत नहीं, कोई शास्त्र नहीं। डाल न मूल न वृष न बेला, साषी न सबद गुरु नहीं चेला!
ग्याने न ध्यांने जोगे न जुक्ता, पापे न पुने मोषे न मुक्ता।
अदभुत वचन है! स्मरण रखना।
डाल न मूल न वृष न बेला!
सब खो गया। बीज भी खो गया, वृक्ष भी खो गया। पहले तुम बीज थे। जब तक तुम शिष्य नहीं बने, तुम बीज हो। जब तुम शिष्य बन गये, तुम वृक्ष हुए। और जब तुम गुरु बन गए, तो वृक्ष भी खो गया। अब तुम शून्य में, निराकार में लीन हो गये।
डाल न मूल न वृष न बेला, साषी न सबद... ।
न तो वहां कोई शब्द है, न कोई सिद्धांत है।
साषी न सबद गुरु नहीं चेला।
वहां न कोई गुरु है न कोई चेला अब। गुरु की अवस्था ही वही है, जब न गुरु बचता और न चेला बचता। जब कोई बचता ही नहीं--एक सन्नाटा रह जाता है--एक अपरिसीम सन्नाटा मात्र रह जाता है, एक शून्य मात्र रह जाता है। गुरु एक अनुपस्थिति है। गुरु एक उपस्थिति नहीं है--एक अनुपस्थिति है। गुरु एक शून्य है। इसलिए तो गुरु के पास सरकने में डर लगता है, क्योंकि शून्य के पास गये तो शून्य हो जाओगे। गुरु तो मृत्यु है।
मरौ हे जोगी मरौ, मरौ मरण है मीठा।
तिस मरणी मरौ, जिस मरणी मरि गोरष दीठा।।
गुरु के पास तो मरना होगा। सूली पर चढ़ना होगा। मगर सूली के पीछे ही छिपा सिंहासन है।
ग्याने न ध्यांने।
वहां ज्ञान भी चला जाता है, ध्यान भी चला जाता है। कोई बचा ही नहीं; किसका ज्ञान, किसका ध्यान? कौन करे ध्यान, कौन करे ज्ञान?
जोगे न जुक्ता।
न वहां योग है, न कोई युक्ति है।
पापे न पुने।
न वहां पाप है न पुण्य है।
मोषे न मुक्ता।
यह अदभुत वचन है कि वहां मोक्ष भी कहां, वहां मुक्ति भी कहां? जो मुक्त
हो सकता था वही नहीं है अब। बंधन ही नहीं गये; जो बंधा था वह भी गया। अब तो शून्य का विस्तार है। अब तो आकाश ही आकाश है, अब तो अनंत ही अनंत है। मगर इसी अनंत का नाम भगवत्ता है।
उपजै न विनसै आवै न जाई।
अब उस जगह आ गये जिसकी न कभी उत्पत्ति हुई है और न कभी विनाश होता है।
उपजै न विनसै आवै न जाई।

न आता न जाता। इसी को आवागमन से मुक्ति कहा है। समझना। आवागमन से मुक्ति का इतना ही मतलब नहीं है कि फिर गर्भ में जन्म न हो। लोग सोचते हैं, स्वर्ग में रहेंगे। फिर संसार में न आयेंगे। इस संसार के दुख-जाल में न पड़ेंगे। स्वर्ग में रहेंगे, जहां सोने के वृक्ष हैं और चांदी के फूल लगते हैं और हीरे-जवाहरात रास्तों पर जड़े हैं। और शराब के झरने बहते हैं। और सुंदरियां नाचती ही रहती हैं। और जहां शीतल मंद पवन बहता रहता है। न कभी गरमी है न कभी मौत। कोई बूढ़ा नहीं होता, कोई रुग्ण नहीं होता। ऐसे देवलोक में जन्मेंगे। तो तुम समझे ही नहीं।
आवागमन से मुक्ति का अर्थ हैः जहां तुम भी न बचोगे। स्वर्ग भी नहीं, नर्क भी नहीं; पाप भी नहीं, पुण्य भी नहीं। जब तक तुम हो तब तक सब रहेगा-- स्वर्ग भी रहेगा, नर्क भी रहेगा; सुख भी रहेगा, दुख भी रहेगा; बंधन भी रहेगा, मुक्ति भी रहेगी; पाप और पुण्य भी रहेगा; आना और जाना भी रहेगा। जब तक तुम हो, तब तक सब रहेगा। तुम संसार हो।
इसलिए बुद्ध ने इंकार कर दिया तुम्हारे होने को; कह दिया कि कोई आत्मा नहीं है। इस बात को समझना। इसीलिए कह दिया कि तुम नहीं हो, ताकि यह मोह न बना रहे। नहीं तो लोग सोचते हैं मोक्ष में हम तो रहेंगे। दुख मिट जायेगा, हम रहेंगे। बुद्ध ने कहा है कि तुम ही दुख हो। तुम जब तक हो तब तक दुख रहेगा। जब तुम ही मिट जाओगे, तभी दुख समाप्त होगा। मगर तब हमें बड़ी घबड़ाहट होती है। तो फिर फायदा ही क्या, लोग पूछते हैं। जब हम ही न रहे, तो सार क्या?
अरे सूदो-जियां देखा नहीं जाता मुहब्बत में
यह सौदा और सौदा है यह दुनिया और दुनिया है
तुम फिर लाभ-हानि की ही बातें सोच रहे हो अभी। फिर तुम्हें प्रेम में मिटने का पता ही नहीं। गुरु के पास मिटने का पाठ सीखा जाता है। और जब गुरु के मिटने में, गुरु के भीतर डूबने में, गुरु के साथ शून्य हो जाने में रस उमगने लगता है, तब हिम्मत बढ़ती है, तब साहस आता है--कि जब इतने से मिटने में इतना रस आ रहा है तो पूरा मिटने में कितना रस न आयेगा। तुम न रहोगे तभी रस होगा। तुम न रहोगे तब आनंद होगा। ऐसा नहीं कि मैं आनंदित हो जाऊंगा। मैं नहीं रहूंगा, तब आनंद रहेगा। तब आनंद ही नाचेगा, आनंद ही उत्सव मनायेगा। उपजै न विनसै आवै न जाई, जुरा न मरण बांके बाप न माई।
वह जो अनादि है, अनंत है, वह तुम जो हो अपनी वास्तविकता में, उसकी न तो कोई शुरुआत है, न कोई अंत, न कोई जन्म, न कोई मृत्यु। उसका न कोई पिता है, न कोई मां।
भणत गोरखनाथ मछींद्र नां दासां!
और सुनते हो यह! अभी क्षण-भर पहले गोरख ने कहाः डाल न मूल न वृष न बेला, साषी न सबद गुरु नहीं चेला। अभी क्षण-भर पहले कहा कि वहां न कोई गुरु है न कोई चेला। और अब सुनते हो क्या कहते हैं!
भणत गोरखनाथ मछींद्र नां दासां!
कि गोरख कहते हैं, जो कि मच्छींद्रनाथ के एक दास मात्र हैं।
भाव भगति और आस न पासा।
वहां आशा का कोई जाल नहीं है, जंजाल नहीं है, मगर भाव-भगति बहुत है। वहां भाव का बड़ा अपूर्व अनुभव है। अनुभव करनेवाला तो नहीं बचता, अनुभव की शुद्धि बचती है--भाव भगति! कोई आशा नहीं है, कोई तृष्णा नहीं है, कोई वासना नहीं है, कोई जंजाल नहीं है; लेकिन भाव का पारावार नहीं, ऐसा भाव है! उसी भाव का नाम भगवत्ता है। गुरु भी मिट गया, चेला भी मिट गया; लेकिन गुरु के प्रति जो कृतज्ञता का भाव है, वह नहीं गया।
भणत गोरखनाथ मछींद्र नां दासां!
कहते हैं कि तुम्हारी ही कृपा से तो आ सके उस जगह जहां न कोई गुरु बचा
न चेला। तुम्हीं ले आये धीरे-धीरे वहां जहां न हम बचे न तुम। कैसे अनुग्रह को भूल जायें? इसलिए अभी भी पुकारते हैं अपने को कि मैं वही हूं--गोरखनाथ, मच्छींद्रनाथ का दास, उनका सेवक।
यह बड़ी उलट-बांसी है! क्योंकि लोग सोचते हैं कि जब स्वयं गुरु हो गये, स्वयं ज्ञान हो गया तो अब तो गुरु छूट ही गया। निश्चित छूट गया, बिल्कुल ही छूट गया। मगर इसीलिए अनुग्रह की अपरिसीम भावना सघन हो जाती है।

चीन में एक कथा हैः एक साधु उत्सव मना रहा था। यह उत्सव सिर्फ गुरु के
ही स्मरण में मनाया जाता है चीन में। लोग थोड़े हैरान थे। उस साधु से पूछा किसी ने कि जहां तक हमें पता है, तुम जिस व्यक्ति को गुरु बनाना चाहते थे, उसने कभी तुम्हें शिष्य बनाया नहीं। और तुम उसकी मृत्यु पर यह उत्सव क्यों मना रहे हो? यह उत्सव तो सिर्फ गुरु की ही स्मृति में मनाया जाता है।
क्या व्यक्ति हंसने लगा। उसने कहाः यहा जरा उल्टी बात है, तुम्हारी समझ में न आयेगी। मगर पूछा है, तो मैं जबाब तो दे देता हूं, समझो या न समझो। मैं बार-बार गुरु के पास गया कि मुझे शिष्य बना लो और वह बार-बार मुझे भगाते रहे। मैं जितना ही आग्रह करता, वे उतने ही कठोर होते गये। वे डंडा मार कर मुझे भगा देते। मैं फिर पहुंच जाता, द्वार-दरवाजा बंद कर लेते। एक बार उन्होंने मुझे उठा कर और खिड़की से बाहर फेंक दिया। जितनी मैंने कोशिश की उतना ही वे मुझे भगाते ही रहे। वे सुनते ही नहीं थे! और ऐसे ही भगाते- भगाते एक दिन मुझे ज्ञान हुआ। अगर वे मुझे न भगाते, तो मुझे ज्ञान न होता। जिस दिन उन्होंने मुझे खिड़की से उठाकर फेंक दिया और जब मैं गिरा नीचे चट्टान पर... एक क्षण को सब विचार खो गये; सन्नाटा छा गया। मैं वहां पड़ा ही रहा। और वे मुझे खिड़की में से देखते रहे और मुस्कुराने लगे। और उस घड़ी कुछ हो गया। उस घड़ी मैंने जाना कि उन्होंने स्वीकार कर लिया है। उस घड़ी मैंने जाना दीक्षा हो गयी। उस घड़ी मैंने जाना जो होना था हो गया। फिर मैं उन्हें परेशान करने नहीं गया। फिर परेशान करने की जरूरत ही न थी। स्वीकार हो ही गया था। उन्हीं की याद में यह उत्सव मना रहा हूं। वे मेरे गुरु थे, यद्यपि उन्होंने कभी मुझे शिष्य नहीं बनाया। मगर मुझे शिष्य नहीं बनाया, इसी कारण तो मुझे ज्ञान उत्पन्न हुआ। वे मुझे बना लेते तो शायद मुझे उत्पन्न न होता। शायद वे जानते थे कि मुझे किस तरह उत्पन्न होगा। इसलिए उनके धन्यवाद में, उनके आभार में यह उत्सव मना रहा हूं।
शिष्य और गुरु के बीच का नाता बड़ा रहस्यपूर्ण नाता है। उसे तो वे ही लोग जान सकते हैं, जिन्होंने उसका स्वाद लिया है।
मुकामे-बेखुदी तक ले गये पहले तमन्ना को
कदम फिर जिस तरफ रक्खा निशाने-राहे-मंजिल था।
बस गुरु इतना ही तो करता है कि शिष्य का हाथ पकड़कर मुकामे-बेखुदी तक...
। जहां अहंकार भूल जाये, बेखुदी आ जाये। जहां खुद का भाव भूल जाये मुकामे-बेखुदी तक ले गये पहले तमन्ना को
वह शिष्य की आकांक्षाओं, अभीप्साओं को उस मुकाम तक ले जाता है, जहां तन्मयता आ जाये। विस्मय-विमुग्ध हो जाये, अहंकार-भाव भूल जाये। मुकामे-बेखुदी तक ले गये पहले तमन्ना को
कदम फिर जिस तरफ रक्खा निशाने-राहे-मंजिल था।
और जब मैं मिट गया, फिर तो आंख खोली और जिस तरफ पांव रखा वहीं मंजिल थी। जिस तरफ देखा वहीं मंजिल थी।
घटि घटि गोरख बाही क्यारी। जो निपजै सो होइ हमारी।
घटि घटि गोरख कहै कहाणी। कांचै भांडै रहै न पाणी।।
घटि घटि गोरख फिरै निरूता। को घट जागे को घट सूता।
घटि घटि गोरख घटि घटि मीन। आपा परचै गुरमुषि चीन्ह।।
फिर तो सभी में वही दिखायी पड़ने लगता है। घट-घट में उसी का वास हो जाता है। तुम मिटो और परमात्मा हो जाये। तुम जब तक हो तब तक परमात्मा नहीं है।
गुरु इतना ही सिखाता है कि कैसे मिटो। मिटने की कला सिखाता है। मृत्यु की कला सिखाता है।
मरौ हे जोगी मरौ, मरौ मरण है मीठा।
तिस मरणी मरौ, जिस मरणी मरि गोरष दीठा।।
आज इतना ही।

मरौ हे जोगी मरौ
बीसवां प्रवचन

सरल, तुम अनजान आए

पहला प्रश्नः दो नावों में पांव, नदिया कैसे होगी पार!

चितरंजन! न तो कोई नदी है, न कोई नाव है, न पार होना है, न कोई पार होने वाला है। सारे भेद बुद्धि खड़े कर लेती है और फिर भेदों में उलझ जाती है। न कहीं जाना है, न कोई जाने वाला है; सब यहां है, अभी है। तुम्हें जहां पहुंचना है, तुम वहीं हो। यही किनारा दूसरा किनारा है। डूबने का कोई उपाय नहीं है, क्योंकि तुम शाश्वत हो। भटकने का कोई उपाय नहीं है, क्योंकि परमात्मा के सिवाय और कुछ भी नहीं है। भटकोगे तो भी उसमें ही रहोगे। दूर भी जाओगे, तो रत्ती-भर, इंच-भर दूर नहीं जा सकते। दूर जाओगे कहां? ज्यादा से ज्यादा सो सकते हो या जाग सकते हो; बस इतना ही भेद है। पहुंच गये और न पहुंचे हुओं में इससे ज्यादा भेद नहीं है--एक जाग गया, एक सोता; दोनों एक ही मंदिर में हैं। जागा हुआ भी वहीं है, सोने वाले के पास ही बैठा है।
यह पहुंचने की धारणा अहंकार की ही धारणा है--मैं पहुंचूं! और जहां, "मैं" खड़ा हुआ, वहां डर पैदा होता है कि कहीं राह में भटक तो न जाऊंगा। फिर हजार दुविधाएं खड़ी होती हैं। फिर डर लगता है कि दो-दो नावों पर सवार हूं। खास कर मेरे संन्यासी को तो डर लगेगा ही। पुराना संन्यास तो एकंगा था। संसारी संसारी होता था और संन्यासी संन्यासी होता था। साफ-सुथरा था मामला।
मेरा संन्यास इतना एकंगा नहीं है। मेरे संन्यास में जीवन के सारे रंग सम्मिलित हैं, जीवन की सारी विविधता सम्मिलित है। इसमें संसार भी है और संन्यास भी है। इसलिए प्रश्न चितरंजन ठीक हैः
"दो नावों में पांव, नदिया कैसे होगी पार!"
अगर नदिया होती, तो मैं भी तुमसे न कहता कि दो नावों में पांव रखो। नदिया है नहीं। कहीं जाना नहीं है। तुम जहां हो वहीं जाग जाना है, जैसे हो वैसे ही जाग जाना है। तुम जैसे हो वैसे ही परमात्मा में हो, वैसे ही परमात्मा हो।
लेकिन मन का गणित और है। मन का गणित हमेशा आकांक्षा में जीता है। मन यानी आकांक्षाः धन मिले, पद मिले, प्रतिष्ठा मिले। फिर अगर इससे छूट जाता है तो मन कहता हैः मोक्ष मिले, वैकुण्ठ मिले, निर्वाण मिले! मगर मन जीता है किसी चीज के मिलने में। क्योंकि अगर कुछ मिलने की बात भविष्य में हो तो मन को फैलने की सुविधा है। फिर उपाय खोजो, ठीक उपाय खोजो। ठीक विधियां तलाशो। सपने देखो। योजनायें बनाओ। कल जब घड़ी घट जायेगी सौभाग्य की, तो आनंदित होंगे। और आज? दुख भोगो। और आज? सड़ो। आज किसी तरह टालो, कल होगा सूरज का उदय।
मन तुम्हें आज से नहीं मिलने देता; और आज परमात्मा मौजूद है--अभी, यहीं, इसी क्षण! इससे न तो कभी कम होगा परमात्मा मौजूद और न इससे कभी ज्यादा होगा मौजूद। इतना का इतना है, सदा से इतना है। और जागना चाहो तो अभी जाग जाओ। और अगर आज टालोगे, तो क्या भरोसा कि कल भी नहीं टालोगे?
इसलिए मैं तुमसे कहता हूं फिक्र ही छोड़ो चितरंजन! न तो नदी है, न दो नाव हैं; न कोई पार होने वाला है, न कहीं जाना है। वही है, एक है। वही है नदी, वही है नाव; वही है यात्री; वही है मांझी। उसके अतिरिक्त कोई भी नहीं है। इसलिए ज्ञानियों ने इस जगत को सपने की भांति कहा है। सपने की भांति का अर्थ होता है, यदि तुम अपने सपने का विश्लेषण करोगे तो तुम्हें यह बात समझ में आ सकेगी। सपने में तुम्हीं तो देखने वाले होते हो और तुम्हीं दिखाई पड़ने वाले होते हो, कोई और तो होता नहीं। तुम्हीं दुख भोगते हो, तुम्हीं सुख भोगते हो; तुम्हीं दुख देते हो तुम्हीं सुख देते हो। सारा नाटक तुम्हारा है। अभिनेता भी तुम हो, दिग्दर्शक भी तुम, दर्शक भी तुम, मंच भी तुम, कथालेखक भी तुम, गीतकार भी तुम, संगीतज्ञ भी तुम--सारा नाटक तुम्हारा है। और जिस क्षण जागोगे उस क्षण पाओगे कि सब खो गया, एक ही बचा; एक चैतन्य

बच रहता है। वही चैतन्य सोने में भी है, लेकिन बहुत खंडों में विभाजित हो कर नाटक कर रहा है। इसलिए जगत माया है, जगत स्वप्न है।
किस नाव की बात करते हो चितरंजन? सब सपने हैं! किस नदी की बात करते हो?
सब सपने हैं! और जिसको तुम सोच रहे हो कि तुम्हारे भीतर बैठा है और पार ले जाना है इसे, वह भी तुम्हारा सपना है। क्योंकि जो असली में है वह तो पार ही है; वह तो सदा से पार है। तुम्हारी आत्यंतिक अवस्था सदा ही सिद्ध की है।
तुम सदा बुद्ध हो। यही उदघोषणा समझ में आ जाये, तो सब जाल कट जाते हैं।
मैं तुम्हें कुछ करने को नहीं कह रहा हूं--सिर्फ समझने को कह रहा हूं।
करने की बात ही नहीं है। और समझ में आ जाये तो बड़ी सरलता से बात हो जाती है।
जब करने की बात ही नहीं, तो कठिन तो हो नहीं सकती। भावना!

सरल! तुम अनजान आए।
भावना में कल्पना से,
वेदना में साधना से,
मधुर स्मृति की पुलक से
हृदय में छिप मुस्कुराए।
सरल! तुम अनजान आए।
विरह का वरदान लेकर,
विकल उर का गान लेकर,
आंख मुझसे ही चुरा कर
मौन आंखों में समाए।
सरल! तुम अनजान आए।
मैं न था पहचान पाया,
किंतु जीवन-धन बनाया,
मान कर सर्वस्व तुमको,
हैं तुम्हारे गान गाए।
सरल! तुम अनजान आए।
प्रेम की ज्वाला जलाई,
ज्योति जीवन में जगाई
स्वप्न के संसार से मैं--
दूर था, तुम पास लाए।
सरल! तुम अनजान आए।
परमात्मा बड़ी सरल घटना है और चुपचाप घट जाती है; पगध्वनि भी सुनाई नहीं पड़ती। जरा शोरगुल नहीं होता, मौन सन्नाटे में घट जाती है। जरा आंख खोलो। कुछ करने को नहीं है। कुछ करने की कभी कोई जरूरत नहीं थी। तुम वही हो--तत्वमसि!
इस जगत के जो सर्वाधिक अमृतमय वचन हैं, उनमें सबसे ऊंची कोटि पर रखा
जा सके--तो यह उदघोषणा करनेवाला वचन हैः तत्वमसि! तुम वही हो! तुम जरा भी अन्यथा नहीं हो। इसे ही दूसरे ढंग से कहा हैः अहं ब्रह्मास्मि! मैं ब्रह्म हूं! मुझ में और ब्रह्म में जरा भी भेद नहीं है।
और ख्याल रखना, जरा भी भेद नहीं है। भेद हो ही नहीं सकता। हालांकि तुम्हें भेद दिखाई पड़ रहा है। आभास-मात्र है। जैसे रस्सी में सांप दिख गया हो सांझ के धुंधलके में। दीया जला लिया, रस्सी रस्सी हो गयी। फिर तुम यह भी नहीं पूछते कि सांप कहां गया, क्योंकि तुम जानते हो सांप था ही नहीं।
जो जागे हैं, उन्होंने पाया है कि संसार था ही नहीं, परमात्मा ही था। इसलिए तुमसे मैं कहता हूंः कहीं भागो मत, यहीं जागो। और यहीं जागने को कहता हूं, इससे अड़चन शुरू होती है। इससे लगता है कि "दो नांव में पांव, नदिया कैसे होगी पार!"
यह तुम्हारे गणित को अस्तव्यस्त कर जाती है बात। क्योंकि मैं कहता हूंः दुकान पर ही, बाजार में ही संन्यस्त हो जाओ; जैसे हो वहीं संन्यस्त हो जाओ। क्योंकि संन्यास मेरे हिसाब में जीवन की शैली नहीं है, संन्यास जागने का दूसरा नाम है। पुराना संन्यास जीवन की एक शैली थी, एक आचरण की विधि-व्यवस्था थी--संसार से विपरीत। संसारी ऐसा करता है तो संन्यासी वैसा नहीं करेगा। संसारी धन कमाता है, संन्यासी धन नहीं कमायेगा। संसारी मकान

बनाता है, संन्यासी मकान नहीं बनायेगा--अगृही होगा। संसारी एक जगह रहता है, संन्यासी परिव्राजक होगा। जो-जो संसारी करता है उससे विपरीत संन्यासी करेगा।
ख्याल रखना, वह संन्यास जो पुराना था, संसार की प्रतिक्रिया थी। उसका निर्णय संसार से ही हो रहा था--संसार के विपरीत। संसारी सीधा खड़ा है तो संन्यासी सिर के बल खड़ा हो जायेगा। मगर वह संन्यास संसार से बहुत भिन्न न था। वह भी चित्त का एक आरोपण था, एक व्यवस्था थी, एक आचरण था।
मैं संन्यास का जो रूप तुम्हें दे रहा हूं, वह आचरण का नहीं है, बोध का है। तुम्हारी जीवन-शैली नहीं बदलनी है। तुम अगर सोये रहे और तुमने करवट बायें से दायें बदल ली, तो भी क्या होगा? जीवन-शैली बदल गयी, मुख बायें था अब दायें हो गया; लेकिन तुम सोये अब भी हो। और निश्चित ही बायें सोये थे, एक तरह का सपना देखते थे; दायें सोओगे, दूसरी तरह का सपना देखोगे। क्योंकि जब तुम बायें से दायें बदल लेते हो, तो तुम्हारे मस्तिष्क में खून की धाराएं बदल जाती हैं।
तुम्हारे भीतर दो मस्तिष्क हैं। बायां मस्तिष्क अलग है, दायां मस्तिष्क अलग है। अब तो वैज्ञानिकों से तुम इसकी पूछ-ताछ कर ले सकते हो। जब तुम एक करवट होते हो, तो एक मस्तिष्क काम करता है। जब तुम दूसरी करवट होते हो, दूसरा मस्तिष्क काम करता है। दोनों के सपने अलग-अलग होंगे। जब तुम्हारी एक नाक से श्वास चलती है, तो एक मस्तिष्क काम करता है। और जब दूसरी नाक से श्वास चलने लगती है तो दूसरा मस्तिष्क काम करने लगता है। इसलिए तुम्हारे भीतर विचारों के बड़े, भावों के रूपांतरण होते रहते हैं। जरा देर में तुम प्रसन्न दिखाई पड़ते हो, जरा में क्रुद्ध हो जाते हो; तुम्हारे मस्तिष्क बदल रहे हैं।
हर चालीस मिनट के करीब जब तुम्हारी श्वास बदलती है, एक नासापुट से दूसरे नासापुट में, तब जरा ख्याल करना, तुम्हारी भाव-दशा भी बदल जाती है। यह चौबीस घंटे होता रहता है। रात भी तुम करवट बदलते हो, बस भाव-दशा बदल जाती है।
तो पुराना संन्यास तो करवट बदलने जैसा था। नींद तो जारी रहती है; सपना बदल जाता था। स्वभावतः जो आदमी बाजार में बैठेगा, दुकान करेगा, व्यवसाय करेगा, एक तरह का सपना देखेगा; और जो हिमालय पर चला जायेगा और गंगोत्री के पास किसी गुफा में बैठ रहेगा, वह दूसरी तरह का सपना देखेगा। मगर दोनों सोये हुए हैं।
मैं संन्यास को एक नया अर्थ दे रहा हूं। करवट बदलने वाला नहीं। नींद तोड़ो, आंख खोलो। आंख खुलते ही, तुम जहां हो वहीं परमात्मा हो। न कोई नदी है, न कोई नाव है, न चितरंजन डूबने का कोई डर। तुम दो क्या हजार नावों पर सवार हो जाओ, जरा भी चिंता न लो। क्योंकि तुम्हारे भीतर जो है, वह डूब ही नहीं सकता। वह अमृत है। उसकी कोई मृत्यु नहीं। और तुम जितनी नावों पर सवार हो जाओगे, उतना ही तुम्हारे जीवन में वैविध्य होगा; उतना ही तुम्हारा जीवन-संगीत सघन होगा, समृद्ध होगा।
ऐसा ही समझो कि कोई आदमी सिर्फ बांसुरी बजा रहा है, तो इसमें एक वाद्य है। फिर दूसरा आदमी बांसुरी के साथ-साथ तबला भी बजवा रहा है, तो थोड़ा वैविध्य हुआ। फिर कोई साथ में वीणा को भी छेड़ रहा है, तो और वैविध्य हो गया। फिर पूरा आर्केस्ट्रा है, पचास संगीतज्ञ एक साथ एक संगीत को जन्म दे रहे हैं, तो स्वभावतः उसकी समृद्धि बढ़ती जाती है, गहन होती जाती है। पुराना संन्यास एक रंग का था। उसमें इंद्रधनुष के सारे रंग नहीं थे!
और इसलिए पुराना संन्यासी उदास दिखाई पड़ता था। नाच नहीं सकता था। नाचने के लिए मोर-मुकुट उसके पास थे ही नहीं, बांसुरी भी उसके पास नहीं थी। उसके जीवन से गीत भी पैदा नहीं होता था। एक गहन उदासी थी। ऊब!
मैं चाहता हूं कि तुम्हारा जीवन समृद्ध हो। उसमें सारे स्वर हों। पूरा सरगम हो तुम्हारा जीवन; उसमें सातों स्वरों का समावेश हो। और तुम्हारे जीवन में एक संगीत हो, जो समृद्ध है। और तुम्हारा जीवन ऐसा हो जिसमें संसार को छोड़ा नहीं गया है, आत्मसात किया गया है।
निश्चित ही, मैं तुम्हें एक बड़ी चुनौती दे रहा हूं। और मन इतने बड़े विस्तार को लेने को तैयार नहीं होता। क्योंकि इतने बड़े विस्तार में मन की

मृत्यु हो जाती है। अब सागर अगर बूंद पर गिर जायेगा, तो बूंद मर ही जायेगी न! और मैं यही कह रहा हूं कि पूरे सागर को उतर आने दो। और पूरा सागर तुम में उतरने को राजी है। जो मिटना है, मिट जाने दो। जो डूबना हो, डूब जाने दो, क्योंकि जाननाः वह तुम नहीं हो जो डूब गया; जो मिट गया वह तुम नहीं हो। जो नहीं डूब सकता वही तुम हो, जो नहीं मिट सकता वही तुम हो।
इसीलिए तो गोरख पुकार-पुकार कर कह रहे हैंः मरौ हे जोगी मरौ। क्यों? मृत्यु का ऐसा आग्रह क्यों? इसलिए कि गोरख जानते हैं कि जो मरेगा, वह तुम नहीं हो। मर-मर कर भी जो नहीं मरेगा, वही तुम हो।
मरौ हे जोगी मरौ, मरौ मरण है मीठा!
मृत्यु कैसे मीठी हो सकती है? इसीलिए मीठी हो सकती है कि जो मर जायेगा, समझ लेना वह तुम थे ही नहीं, भ्रांति थी। सिर्फ नींद ही मरेगी और नींद में देखे गये सपने मरेंगे। नींद का जो साक्षी था, वह नहीं मरेगा। वह जागरण में भी उतना ही रहेगा, जितना नींद में था।
तिस मरणी मरौ, जिस मरणी मरि गोरख दीठा।
गोरख कहते हैंः मैं मरा और मैंने देखा, मर कर देखा। क्या देखा मर कर?
मर कर अमृत देखा। मर कर शाश्वत देखा। समय में मर गया, शाश्वत में जन्म हुआ। रूप-रंग, नाम-धाम, पता-ठिकाना सारे तादात्म्य मर गये, तो उसका पता चला जो मैं वस्तुतः था; जो सदा से था; जिसका न कभी जन्म होता है और न कभी मृत्यु होती है!

दूसरा प्रश्नः ऐसे भाव उठते हैं कि कलम उठाती हूं तो समझ नहीं पाती-- कैसे लिखूं, क्या लिखूं? भीतर एक तूफान उठा है! इधर आती हूं तो एक अनोखी मस्ती छा जाती है। घर पर भी वही मस्ती छायी रहती है। लेकिन उससे बच्चों को ऐसा लगता है कि हमारे प्रति मां थोड़ी बेध्यान हो रही है। और मुझे यह खुद को भी कभी-कभी लगता है कि यह बच्चों के प्रति अन्याय हो रहा है; मेरी मस्ती बच्चों के लिए विघ्न नहीं बननी चाहिए। यह समझने पर भी उनको समग्रता से प्यार नहीं कर पाती हूं। इस हालत में बड़ी बेचैनी उठती है, तो मैं क्या करूं? मार्गदर्शन करने की कृपा करें।

वीणा! मस्ती से बच्चों की कभी कोई हानि नहीं हो सकती। बच्चों की भी भ्रांति है और तेरी भी भ्रांति है। गैर-मस्ती से हानि होती है। मस्ती से तो बच्चे भी धीरे-धीरे मस्त होना सीख जायेंगे। तू मस्त रहेगी, गायेगी, गुनगुनायेगी, नाचेगी... कैसे इससे हानि होगी?
हां, लेकिन मैं तेरा प्रश्न समझा, तेरे बच्चों का भाव भी समझा। तू जितना ध्यान बच्चों को देती रही होगी, उतना अब नहीं दे पायेगी। और बच्चों के अहंकार को चोट लगती है। बच्चे ध्यान मांगते हैं।
ध्यान की मांग अहंकार की मांग है। इसे समझ लेना। ध्यान की मांग अहंकार की बड़ी अनिवार्य जरूरत है। इसके बिना अहंकार जी ही नहीं सकता; यह अहंकार का भोजन है।
इसलिए तुम्हें अगर बहुत लोग तुम्हारे प्रति ध्यान दें, तो अच्छा लगता है। तुम आओ और कोई ध्यान ही न दे; तुम आओ और चले जाओ, कोई जयराम जी भी न करे; राह से गुजरो और कोई देखे भी न तुम्हारी तरफ; आदमी तो आदमी, कुत्ते भी न भौंकें--तो तुम बड़े उदास हो जाओगे। तुम बड़े हताश हो जाओगे कि हुआ क्या है! कुछ तो हो!
इसलिए तो लोग कहते हैं कि अगर नाम न हो तो कोई हर्ज नहीं, बदनामी हो जाये, मगर कुछ तो हो! बदनामी होगी तो होगी, कुछ नाम तो होगा। लोग चर्चा तो करेंगे। लोग चाहते हैं चर्चित हों, ध्यान दिया जाये। इसलिए तो राजनीति की इतनी पकड़ है दुनिया में।
राजनीति का इतना बल क्या है, आकर्षण क्या है? राजनीतिज्ञ को मिल क्या जाता है? हजारों-लाखों लोगों का ध्यान मिल जाता है। उससे अहंकार की तृप्ति होती है। इतने लोग मेरी तरफ देख रहे हैं... मैं प्रधानमंत्री, मैं राष्ट्रपति, इतने लोग मेरी तरफ देख रहे हैं! मैं कुछ खास!
छोटे बच्चों में ही यह यात्रा शुरू हो जाती है। तुमने देखा होगा, घर में मेहमान आये और बच्चों को तुम कह दो कि जरा शांत रहना, घर में मेहमान आ

रहे हैं--जो बच्चे अभी शांत ही थे, वे भी अशांत हो जाते हैं। मेहमान आये नहीं कि बच्चों ने उपद्रव शुरू किये नहीं। कोई आकर खड़ा हो जायेगा और कहेगा मुझे भूख लगी है। कोई कहेगा मुझे प्यास लगी है। बच्चे लड़ने लगेंगे। वे मेहमानों का ध्यान आकर्षित कर रहे हैं। वे यह कह रहे हैंः सारा ध्यान तुम्हीं लिये ले रहे हो, हम भी हैं यहां! वे घोषणा कर रहे हैं अपने होने की। वे यह कह रहे हैं कि ऐसा न समझा जाये कि हम नहीं हैं। वे पैर पटक-पटक कर घोषणा करेंगे। वे सामान तोड़ देंगे, आवाज करेंगे, चीजें गिरायेंगे, लड़ेंगे, झगड़ेंगे। राजनीति शुरू हो गयी! यही तो लोग हैं जो कल मोरारजी देसाई बनेंगे... इत्यादि, इत्यादि। ये यही लोग हैं। यहीं से राजनीति शुरू हो गयी। बच्चे ने एक मांग शुरू कर दी कि मेरी तरफ ध्यान दो।
और बच्चा यह जानता है कि जब घर में मेहमान आ गये हैं तो ध्यान जल्दी मिलेगा... क्योंकि मेहमान क्या कहेंगे? तो मां घबड़ाती है--जो खिलौना चाहिए खिलौना ले लो, पैसा ले लो, बाहर चले जाओ, कुल्फी खरीदो, घूम-फिर आओ--अभी जो भी मांग की जायेगी, वह भरी जायेगी, क्योंकि मेहमान जो मौजूद हैं। अभी मेहमानों के सामने मां इतना उपद्रव बर्दाश्त नहीं कर सकेगी; किसी तरह खुशामद करेगी बच्चों की। मेहमानों के चले जाने पर तो बच्चे भलीभांति जानते हैं कि पिटाई हो जायेगी।
बच्चों को लेकर तुम बाजार चले जाओ; वे सड़क पर अड़ कर खड़े हो जायेंगे, जो
घर में कभी नहीं अड़े थे--कि यह तो खरीदना ही है। वे जानते हैं कि अब यह बाजार है, भीड़ है। यहां मां के अहंकार को या पिता के अहंकार को वे दांव पर लगा रहे हैं। वे यह कह रहे हैं कि अब तुम्हें भी अपना अहंकार बचाना हो तो खरीद ही लो, नहीं तो लोग क्या कहेंगे? इतने लोग ध्यान दे रहे हैं! तुम बच्चे को दुकान पर ले जाओ, दुकानदार तुमसे भी ज्यादा ध्यान बच्चे को देता है। क्योंकि बच्चा अगर लेने को राजी हो गया, तो तुम्हारी प्रतिष्ठा दांव पर है। तुम भी अपना अहंकार बचाने में लगे हो; बच्चा भी अपना अहंकार बचाने में लगा है।
छोटे-छोटे बच्चों के भीतर भी वही रोग पैदा हो जाता है, जो बड़े होकर बड़ा भयंकर रूप लेगा।
तो स्वभावतः वीणा, अगर तू मस्त रहेगी, नाचेगी, गायेगी, गुनगुनायेगी,
तो बच्चों को ऐसा लगेगा कि उन पर ध्यान नहीं दिया जा रहा है। लेकिन इससे हानि नहीं हो रही, लाभ हो रहा है। तेरे बच्चे राजनीतिज्ञ नहीं बनेंगे। उनके अहंकार की तृप्ति उनका हित नहीं है। अहंकार की तृप्ति ऐसी ही है जैसे कोई खाज को खुजलाये। खाज को खुजलाने में पहले तो तृप्ति मालूम होती है। नहीं तो कोई खुजलाये ही क्यों? बड़ी मिठास लगती है खुजलाने में, बड़ा मीठा- मीठा रस आता है। लेकिन फिर पीड़ा होती है। फिर लहू निकल आता है। फिर चमड़ी छिल गयी। अब दर्द होता है। हर बार तुमने खुजलाया है खाज को, हर बार दर्द पाया है। फिर भी जब खाज होगी, फिर खुजलाने का मन होगा।
अहंकार खाज जैसा है। उसको खुजलाने से पहले तो मिठास मिलती है, पीछे बहुत कष्ट होता है।
इसलिए तेरे बच्चों को अभी शुरू-शुरू में तो कष्ट होगा तेरी मस्ती से, क्योंकि उनकी तरफ ध्यान कम हो जायेगा, लेकिन अंततः हानि नहीं होगी। जरा भी सोचना मत कि अन्याय हो रहा है। न्याय हो रहा है। धीरे-धीरे बच्चे भी देखेंगे कि तुझे कुछ मिल गया है। धीरे-धीरे उन्हें भी समझ में आयेगा। और बच्चों की समझ बहुत साफ होती है, क्योंकि निर्दोष होती है। अभी आंखों पर पर्दे नहीं होते। अभी सिद्धांतों का जाल नहीं होता। अभी शास्त्रों की गर्द नहीं होती। अभी बच्चों का परिप्रेक्ष्य बिल्कुल शुद्ध होता है। अभी उनकी आंख सीधा-सीधा देखती है; अभी वे इरछे-तिरछे नहीं जाते। जल्दी ही वे देख लेंगे कि मां को कुछ हुआ है। और वे यह भी देख लेंगे कि मां पहले से ज्यादा मस्त है, आनंदित है, रसमुग्ध है। वे भी आतुर होंगे। वे भी इसी की तलाश से भरेंगे।
अगर मां या पिता ध्यान करते हों, मस्त होते हों, तो बच्चे कितने दिन तक ध्यान से दूर रह सकते हैं! ज्यादा देर नहीं! क्योंकि बच्चे अंततः मां-बाप के पीछे ही चलते हैं। तुम गलत हो तो बच्चे गलत हो जाते हैं। क्योंकि किससे सीखें और? तुम से ही सीखते हैं। अगर तुम आनंदित हो तो बच्चे भी आनंदित

होना सीखेंगे। शायद शुरू-शुरू में अड़चन होगी, क्योंकि पुरानी आदत बन गयी होगी उनकी। तू अब तक उनकी काफी खुशामद करती रही होगी। जरा उन्होंने "मैं- तू" किया और तू उन पर ध्यान देती रही होगी। अब तेरा ध्यान कहीं और बह रहा है। अब बच्चों पर तेरा उतना ध्यान नहीं होगा। तो पुरानी आदत के कारण उन्हें अड़चन होगी, मगर यह सिर्फ आदत के कारण अड़चन हो रही है। इसकी चिंता मत लेना। इसके कारण अपनी मस्ती में खलल मत डालना।
तेरी मस्ती से उन्हें जितना लाभ होगा, तेरे ध्यान देने से उतना नहीं होने वाला है। क्योंकि मस्ती उनके लिए अमृत हो जायेगी!
अगर बच्चा अपने मां और पिता की मस्ती की प्रतिमा अपने भीतर रख सके तो
आज नहीं कल वह भी मस्त होगा। उसके पीछे वह प्रतिमा घूमती रहेगी, उसका पीछा करेगी। उसे लगता रहेगा कि जब तक ऐसी मस्ती मुझे न मिल जाए, तब तक कुछ कमी है, जिंदगी में कुछ चूका हुआ है; मेरी मां तो मस्त थी! अभी बच्चों को यह पता ही नहीं चलता कि उनकी जिंदगी में कुछ चूक रहा है। क्योंकि उनकी मां भी ऐसी ही परेशान थी, उनके पिता भी ऐसे ही परेशान थे। उनकी मां भी लड़ रही थी, उनके पिता भी लड़ रहे थे; घर में कलह ही कलह थी। वे भी लड़ेंगे। हर लड़की अपनी मां को दोहरायेगी, हर बेटा अपने बाप को दोहरायेगा। और जब वे लड़ेंगे, तुम जरा चौंक कर देखना।
कभी तुम अपने बड़े हो गये बच्चों के झगड़े देखना, पति-पत्नी के झगड़े देखना। तुम चकित होओगे, वे ठीक तुम्हारे रिकार्ड हैं--हिज मास्टर्स वायस! वे वही दोहरा रहे हैं जो तुमने किया था। और बड़े ढंग से दोहरा रहे हैं-- अक्षर-अक्षर... । रंग-ढंग चेहरे का भी वही हो जाता है उनका, जब झगड़ते हैं। और वही तुम्हारा बेटा करेगा अपनी पत्नी के साथ, जो तुम्हारा पति तुम्हारे साथ कर रहा है वीणा! तुम जो अपने बेटे के साथ कर रही हो, जो तुम अपनी बेटी के साथ कर रही हो, वही दोहराया जायेगा। क्योंकि उनके पास और कोई प्रतिमान कहां? हर लड़की अपनी मां को दोहराती रहेगी। इसलिए दुनिया विकसित नहीं हो पाती। विकास कैसे हो? पुनरुक्ति होती है। हाव-भाव सब वही दोहराये जाते हैं।
और तुम्हारे बच्चों को कभी पता नहीं चलेगा कि उनके जीवन में कुछ खोया
है, क्योंकि उनके पास कोई और मापदंड नहीं है जिससे वे तौलें। वे देखेंगे इसी तरह हमारी मां थी परेशान, उसी तरह हम परेशान हैं। इसी तरह हमारी मां लड़ रही थी, उसी तरह हम लड़ रहे हैं। इसी तरह हमारी मां कर रही थी, उसी तरह हम कर रहे हैं। उन्हें पता नहीं चल सकता कि जीवन में कुछ खोया है! उन्होंने जाना ही नहीं कोई मस्त आह्लादित जीवन। उन्होंने कोई झलक ही नहीं देखी, जब फूल खिले हों। उन्होंने कांटे ही जाने हैं। कांटे ही उनको चुभ रहे हैं। यही भाग्य है, ऐसा मान कर वे जी लेंगे।
वीणा, तेरे बच्चे सौभाग्यशाली हैं। सबके बच्चे इतने सौभाग्यशाली होने चाहिए कि उनके माता-पिता के जीवन में धन, पद, परिवार से ज्यादा कुछ हो। उनके माता-पिता के जीवन में परमात्मा की थोड़ी-सी झलक हो। बूंद ही सही! वही झलक उनको पकड़ ले, तो वे तृप्त न हो सकेंगे साधारण जीवन से। फिर उन्हें कितना ही धन मिल जाये और कितना ही पद मिल जाये, उनके पीछे कोई कचोटता ही रहेगा कि अभी वह बूंद नहीं मिली जो मेरी मां की आंखों थी, अभी वह मस्ती मुझे नहीं मिली। पाना है उसे। पाना ही होगा, नहीं तो जीवन अकारथ गया। नहीं तो जीवन में कोई अर्थ नहीं है। वह काव्य मुझे मालूम नहीं हो रहा है, तो जरूर कहीं कोई कमी रह गयी है। कोई तलाश करनी है, कोई खोज करनी है।
और अगर जैसी वीणा, तेरे और तेरे पति के बीच एक रसधार निर्मित हो रही है, यह भी तेरे बच्चे देख सकें तो वे भी इस रसधार को अपने जीवन में दोहरायेंगे, अपने संबंधों में दोहरायेंगे। इसलिए भी मैं कहता हूंः कोई संन्यासी घर छोड़ कर न जाये। बच्चे देखें संन्यासियों को। बच्चे देखें संन्यासियों को--मां की तरह, पिता कर तरह। बच्चे देखें संन्यासियों को--सब तरह के संबंधों में, ताकि उनके पास कुछ तो कसौटी हो जाये जिस पर वे अपने जीवन को कसते रहें। और अगर जीवन में कमी हो, तो उसे पूरा करने का प्रयास करते रहें।
तेरा भाव मैं समझा वीणा। तुझे लगता होगा अन्याय हो रहा है, क्योंकि बच्चे जोर-शोर कर रहे होंगे इस बात पर कि हमारे साथ अन्याय हो रहा है, हम पर

उतना ध्यान नहीं दिया जा रहा है। जैसी तू फिक्र करती थी कल तक उनकी--कि सब बटन ठीक से लगे कि नहीं, और बिस्तर पर कोई सलवट तो नहीं है रात, बच्चे के कपड़े सब साफ-सुथरे हैं या नहीं, उसकी किताबें तो नहीं फट गयी हैं, घर बैठ कर उसने स्कूल से लाया हुआ काम पूरा किया है या नहीं किया है--इस सब पर तेरा ध्यान कम होता जायेगा। तो बच्चों को लगेगा कि उनके अहंकार की तृप्ति नहीं हो रही। इससे पीड़ा होगी। वे शिकायत भी करेंगे। वे तेरे खिलाफ मोर्चा भी खड़ा करेंगे। वे सब संगठित हो जायेंगे, इकट्ठे हो जायेंगे। वे सब कहेंगे, हमारे साथ अन्याय हो रहा है।
मगर मैं तुझसे कहता हूं कि अगर तेरी मस्ती बरसती रही तो अन्याय नहीं
हो रहा है, न्याय हो रहा है। जल्दी ही वे समझ लेंगे कि उतने ध्यान की कोई आवश्यकता न थी। सच तो यह है, मां-बाप जरूरत से ज्यादा ध्यान दे रहे हैं। उस ध्यान से नुकसान हो रहा है, लाभ नहीं हो रहा है। इस सदी के बच्चे जितने बिगड़े हुए हैं, दुनिया में बच्चे इतने बिगड़े हुए कभी भी नहीं थे। और कारण? इस सदी के मां-बाप जितनी चिंता कर रहे हैं बच्चों की, उतनी उन्होंने कभी भी नहीं की थी; फुर्सत भी नहीं थी, समय भी नहीं था। जिंदगी का संघर्ष इतना था! सुबह पांच बजे उठ कर चला जायेगा किसान खेत पर काम करने; सांझ होते-होते लौटेगा। कहां फुर्सत थी, कहां समय था कि बच्चों के साथ बैठे, कि रेडियो सुने कि टेलीविजन देखे, कि बच्चों को फिल्म ले जाये। कहां सुविधा थी, कहां समय था? रोटी-रोजी पूरी नहीं हो रही थी। बच्चे जल्दी ही प्रा.ैढ़ हो जाते थे।
यह तुमने ख्याल किया, अभी भी गांवों के बच्चे जल्दी प्रौढ़ हो जाते हैं। क्योंकि छोटी-सी बच्ची चली पिता का भोजन लेकर खेत की तरफ। उतनी छोटी बच्ची शहर की किसी काम की नहीं। उस पर तुम कोई भरोसा नहीं कर सकते। वह अपना ही भोजन ठीक से कर ले, वही मुश्किल मालूम होता है; पिता का भोजन क्या खाक ले जायेगी! गांव की छोटी बच्ची घर का भोजन बनाने लगती है। अभी तुम्हारी बच्ची को भोजन करना भी नहीं आता। उस को टेबिल पर उसके सामने बैठ कर मां को उसको भोजन करवाना पड़ता है।
तुम जरा फर्क देखो, जितना छोटा गांव होगा, उसके बच्चे उतने ही जल्दी प्रौढ़ हो जाते हैं। चले गाय को चराने, बैल को चराने, दूध लगाने, लकड़ी बीनने... जिंदगी शुरू हो गयी। सच तो यह है, मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जिस तरह के बच्चे हम अभी देख रहे हैं, यह केवल दो सौ साल की उपज है। दो सौ साल के पहले इस तरह के बच्चे थे ही नहीं दुनिया में। मनोवैज्ञानिक तो कहते हैं कि जिसको हम अब कहते हैं किशोरावस्था, वह होती ही नहीं थी पहले। क्योंकि सात-आठ साल का बच्चा तो काम में लग जाता। अब बच्चा जब पच्चीस साल का हो जाता है तब काम में लगता है। और तब भी लग जाये, तो सौभाग्य! क्योंकि एक तो पच्चीस साल बिना काम करने की आदत। पच्चीस साल मुफ्तखोरी करने की आदत। पच्चीस साल तक मां-बाप के ऊपर निर्भर रहने की आदत। कोई छोटा समय नहीं है, लंबा समय है पच्चीस साल! अगर पचहत्तर साल जीयेगा तो एक तिहाई जिंदगी हो गयी। एक तिहाई जिंदगी तो आदत हो गयी निर्भर रहने की। अब अचानक काम और जिम्मेवारी!
आज अमरीका में जो बच्चे हिप्पी हो रहे हैं उसका कारण तुम समझते हो? अमरीका सबसे ज्यादा समृद्ध है, इसलिए सबसे ज्यादा विकृत बच्चे पैदा हो रहे हैं। समृद्ध होने के कारण जरूरत से ज्यादा ध्यान दिया जा रहा है बच्चों पर। बच्चों को साईकिल ही नहीं चाहिए, कार भी चाहिए। छोटे-छोटे बच्चे कार चला रहे हैं। सबसे ज्यादा दुर्घटनाएं उन्हीं से होती हैं। सबसे ज्यादा कार की दुर्घटनाएं अठारह वर्ष से लेकर पच्चीस वर्ष के बीच के लड़के करते हैं, लड़कियां करती हैं। और सबसे ज्यादा अपराध भी वही करते हैं। सबसे ज्यादा उपद्रव भी अठारह और पच्चीस साल के बीच के बच्चे करते हैं। खाली हैं, ताकत हाथ में आ गयी है; काम कुछ है नहीं--युनिवर्सिटी में आग लगाओ, फर्नीचर तोड़ दो, खिड़कियों के कांच तोड़ दो--कुछ तो करना होगा!
यह तुम कल्पना ही नहीं कर सकते थे, क्योंकि पच्चीस साल का पुराने जमाने का आदमी तो बड़ा प्रौढ़ होता था। क्योंकि सात-आठ साल का होता, तब तो काम में लग जाता। और भी गरीब घर का होता तो और भी पहले काम में लग जाता। जिम्मेदारियां सिर पर आती हैं तो अनुभव आता है; अनुभव आता है तो समझ आती है। पच्चीस साल का होते-होते जीवन का इतना अनुभव हो जाता था कि वह इस तरह

की मूढ़ताएं कर सकता था जो आज के लड़के और लड़कियां कर रहे हैं? असंभव है। उसमें एक गुरु-गंभीरता आ जाती थी। उसे जीवन का एक पाठ मिल गया होता था।
आज हम सोचते हैं बच्चों को हम शिक्षा दे रहे हैं, लेकिन जीवन के पाठ से
हम उनको वंचित रख रहे हैं। और उनकी इतनी फिक्र हम कर रहे हैं कि न वे अपने पाजामा का नाड़ा बांध सकते हैं, वह भी मां बांध रही है। अब मैं सोचता हूं वीणा की तस्वीर कि बांध रही है बच्चों के नाड़े, अब भजन भी गा रही होगी, तो नाड़ा खुल-खुल जाता होगा, नहीं बंधता होगा। बच्चे को नाराजगी आती होगी कि यह बात क्या है! पहले नाड़ा बिल्कुल ठीक बंधता था, अब रस्ते में ही खुल जाता है। मां ध्यान नहीं दे रही ठीक से। बच्चों के बस्ते, उनका सामान तू रख रही होगी, अब उनको खुद रखना पड़ रहा होगा। उनको खाना खिलाने के लिए टेबिल पर बैठ रही होगी कि खाना खा... ।
बच्चे रो रहे हैं आज के। किसलिए रो रहे हैं पूछो उनसे। पुराने जमाने
के बच्चे रोते थे कि भोजन चाहिए, आजकल के बच्चे रो रहे हैं कि उनको मां भोजन करा रही है, उन्हें भोजन नहीं करना है। आंसू टपक रहे हैं और मां सामने बैठी कि भोजन करो। उन्हें भोजन नहीं करना है, या उन्हें यह भोजन नहीं करना है, उन्हें आज कुछ और चाहिए। कि आज वे जाना चाहते हैं कॉफी हाउस, इडली-डोसा, या कुछ और। उन पर ध्यान... उनको चौबीस घंटे ध्यान चाहिए। और इस ध्यान से कुछ लाभ नहीं होने वाला है उनको।
यह जो जिस लड़के को पच्चीस साल तक उसकी मां ने ध्यान किया है और ध्यान दिया है और हर तरह से उसकी फिक्र की है, यह कल विवाहित हो कर अपनी पत्नी से भी यही अपेक्षा करेगा, और उपद्रव शुरू होगा, क्योंकि उसकी भी फिक्र की गयी है। और वह अपने पति से ऐसी अपेक्षा करेगी जैसी अपने पिता से अपेक्षा करती थी। कलह शुरू हो जायेगी, पहले दिन से कलह शुरू हो जायेगी। उनकी आकांक्षाएं, अपेक्षाएं बड़ी हैं। लड़की चाहेगी कि पति पिता की तरह सारी अपेक्षाएं पूरी करे। पति चाहेगा कि पत्नी मां की तरह सारी अपेक्षाएं पूरी करे। यह कैसे हो सकता है? दोनों की आकांक्षाएं बड़ी हैं, अभिलाषाएं बड़ी हैं। और दोनों ही गिरेंगे, क्योंकि दोनों ही पूरा नहीं कर पायेंगे। दुनिया ने इतने तलाक कभी नहीं जाने थे। और इतना दुखी दांपत्य जीवन कभी नहीं जाना था। उसके कारण थे, क्योंकि इतनी अपेक्षा कभी नहीं की थी। अपेक्षा का कोई कारण नहीं था।
ऊपर से देखने में तो लगेगा कि अगर ध्यान हमने बच्चों पर कम दिया तो नुकसान होगा। ऐसा नहीं है। और भी एक बात तुझसे कहूं कि अक्सर हम बच्चों पर ध्यान देते हैं जब बच्चे बीमार होते हैं, परेशान होते हैं, रुग्ण होते हैं। वैज्ञानिक हिसाब से जब बच्चे रुग्ण होते हैं, परेशान होते हैं, बीमार होते हैं, तब बहुत ध्यान नहीं देना चाहिए। क्योंकि ध्यान का गलत संबंध जुड़ रहा है। बच्चा बीमार है तब मां उसके पास बैठ कर उसका सिर दबा रही है। अब जब भी इस बच्चे को भविष्य में सिर दबवाना होगा, यह बीमार हो जायेगा। पतिदेव घर आकर एकदम लेट ही जायेंगे बिस्तर पर। दफ्तर में बिल्कुल ठीक थे, घर आते ही सिरदर्द हो जाता है! वह चाहते हैं कि पत्नी उनका सिर दबाये, पैर दबाये; उनके आसपास खुशामद करे कि वह बड़ा काम करके लौटे हैं! और पत्नी भी पति जब तक घर नहीं आते तब तक बिल्कुल ठीक मालूम होती है, रेडियो सुन रही है और अखबार पढ़ रही है। और जैसे ही पति आये कि बिस्तर से लग जाती है। वह भी चाहती है कि पति उसके सिर पर हाथ रखे। क्योंकि पति हाथ ही सिर पर तब रखते हैं जब पत्नी बीमार होती है।
स्त्रियों ने तो बीमार होने की कला सीख ली है। उनको पक्का पता है कि
उन पर ध्यान ही तब दिया जाता है। पत्नी बीमार हो जाये तो पति पूछने लगता हैः साड़ी लेनी है, क्या करना है? जो करना हो माई करो, मगर बीमार न हो! पत्नी भी जानती है कि जब बीमार हो तभी पति ध्यान देता है, नहीं तो पति अपना अखबार पढ़ता है, ध्यान देने की फुर्सत कहां है? वह आते ही से अपने पैर फैलाकर अखबार की ओट में हो जाता है।
अखबार ओट है। वह बचने का उपाय है। पति आते ही से अखबार खोल लेता है। पत्नी इत्यादि सब उस तरफ छूट गये, झंझट मिटी। अब वह एक ही अखबार को कई दफे पढ़ता है।

मैं एक घर में मेहमान था। मैंने देखा कि वह सज्जन सुबह भी उसी अखबार
को पढ़ रहे, दोपहर भी उसी को पढ़ रहे; शाम को भी जब पढ़ने लगे, मैंने कहाः सुनो, तुम शुरू से लेकर आखिरी तक कई बार पढ़ चुके। वह भी थोड़े चौंके एकदम, उन्होंने कहाः आप ठीक कहते हैं। मगर यह मेरी रोज की आदत है, क्योंकि यही बचने का उपाय है। मैं अखबार पढ़ता रहता हूं, पत्नी कुछ भी कहती है तो मैं ऐसा दिखाता हूं कि सुन ही नहीं रहा हूं। क्योंकि सुनो कि झंझट। सुना कि जेब पर हमला! बहरे हो जाना पड़ता है। यह अखबार बड़ी सुविधा है। इसमें ऐसा लगा रहता है, पत्नी समझती है, मैं अखबार पढ़ रहा हूं।
बच्चों पर, जब वे रुग्ण हों, तो उनकी सेवा करना, लेकिन ध्यान मत देना।
इन दोनों में बड़ा भेद है। जो जरूरत हो, अपेक्षा पूरी करना। उनकी दवा की जरूरत हो, दवा देना। उनको कंबल उढ़ाना हो, कंबल उढ़ा लेना। लेकिन ज्यादा उनकी खुशामद मत करना। कहीं ऐसा न हो कि तुम्हारी खुशामद उनके भीतर बीमारी में न्यस्त स्वार्थ बन जाए। कहीं ऐसा न हो कि उनको लगने लगे कि जब भी ध्यान चाहिए हो तो बीमार हो जाने से मिलेगा।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि दुनिया में सत्तर प्रतिशत बीमारियां मानसिक हैं। सत्तर प्रतिशत, बड़ा अनुपात है! और ये सत्तर प्रतिशत बीमारियां ऐसी हैं जो तुम चाहते हो कि हो जायें। तुमने देखा, परीक्षा के वक्त बच्चे बीमार हो जाते हैं! परीक्षा के वक्त सारी दुनिया में बच्चों की बीमारियां एकदम बढ़ जाती हैं। क्योंकि बीमारी सुगम उपाय है बचने का। परीक्षा देने की जरूरत नहीं, बीमार हैं! या अगर देनी भी पड़ी परीक्षा और पास न हुए, तो भी कोई यह नहीं कह सकता कि कोई हमारी भूल हुई; बीमार थे। या अगर तृतीय श्रेणी में आये तो भी चलेगा, क्योंकि बीमार थे, क्या कर सकते हो? यह तो बीमारी बड़ी तरकीब बन गयी। और इस आदमी ने बीमारी के साथ संबंध जोड़ लिया स्वास्थ्य की बजाय।
मेरी अपनी देशना तो यही है कि जब बच्चे स्वस्थ हों, चाहो तो उन पर थोड़ा ज्यादा ध्यान दे देना; मगर बीमार हों तो ज्यादा ध्यान मत देना। ध्यान को स्वास्थ्य से जुड़ने दो। जब बच्चे मस्त हों, आनंदित हों, उनको गले लगा लेना; लेकिन जब बीमार हों तो कंबल उढ़ा कर उनको सुला देना। यह कठोर मालूम पड़ेगा। ऊपर से तो कठोर साफ ही लग रहा है। लगेगा कि यह भी क्या मैं उलटी बातें सिखा रहा हूं! ऐसे भी मैं उलटी ही बातें सिखाता हूं। लेकिन बच्चा बीमार हो तब उसे कंबल उढ़ा कर सुला देना; दवा पिला देना--बस ऐसे ही जैसे नर्स करती है। उस वक्त मातृत्व मत दिखलाना। सुविधा हो तो नर्स ही रख देना। वह ज्यादा अच्छा है। लेकिन जब बच्चा प्रसन्न हो, आनंदित हो, तो कभी उसे गले भी लगाना। उसका हाथ में हाथ लेकर नाचना भी। उसका स्वास्थ्य में रस जोड़ो, ताकि जिंदगी-भर उसका रस स्वास्थ्य में रहे, बीमारी में न हो जाये। दुनिया की सत्तर प्रतिशत बीमारियां समाप्त हो सकती हैं, अगर हम बच्चों का संबंध स्वास्थ्य से जोड़ दें।
तो वीणा, चिंता मत कर, तू मस्त रह। और इतना मैं जानता हूं कि जो मस्ती ध्यान की तुझे आ रही है, वह मस्ती ऐसी नहीं है कि उपेक्षा कर सकेगी तू बच्चों की। क्योंकि ध्यान की मस्ती में प्रेम बढ़ता है, घटता नहीं। इसलिए उपेक्षा तो होने ही वाली नहीं है। हां, जो व्यर्थ की चिंता थी वह कट जायेगी। जो जरूरी है, वह निश्चित पूरा होता रहेगा। शायद तू जितना ध्यान देती थी उसमें से नब्बे प्रतिशत बेकार रहा हो, जो कि घातक था।
और मां-बाप इतना ध्यान बच्चों की तरफ क्यों देते हैं, इसका तुमने कभी विचार किया? मनसविद कहते हैं अपराध के कारण। चौंकोगे तुम! मां-बाप को यह लगता रहता है कि बच्चों के लिए हमें जो करना चाहिए, हम नहीं कर पा रहे हैं। यह इससे अपराध-भाव पैदा होता है, गिल्ट पैदा होती है... कि देखो बगल के पड़ोसी ने तो बच्चे के लिए कार ले दी और हमारा बच्चा अभी भी एक फटीचर सायकिल पर ही चल रहा है! हम नहीं कर पा रहे हैं जो हमें करना चाहिए बेटे के लिए। तब क्या करें? तो कम-से-कम उसकी खुशामद तो कर ही सकते हैं, उसके ऊपर ज्यादा ध्यान तो दे ही सकते हैं। अतिशय रूप से उसकी चिंता तो कर ही सकते हैं। इतना तो किया जा सकता है।
यह पूर्ति है। लेकिन कोई इस तरह की पूर्ति से लाभ होनेवाला नहीं है।
और चूंकि हम सच में प्रेम नहीं करते बच्चों को, इसलिए भी अपराध-भाव मालूम

होता है। तो उस अपराध को छिपाने के लिए हम बच्चों को लिए खिलौने लायेंगे, आइसक्रीम लायेंगे। उन बच्चों को हम बिगाड़ेंगे। वह अपराध-भाव से ही पैदा हो रही है बात। प्रेम बढ़ेगा तो अपराध-भाव घट जायेगा। अपराध-भाव घट जाएगा तो अपराध-भाव के कारण जो-जो काम तुम कर रहे थे, वे बंद हो जायेंगे। तब जो करने योग्य है, जो जरूरी है वह होगा।
और इतना मैं जानता हूं कि ध्यान से जो मस्ती आती है, वह मस्ती एक अर्थ में बेहोशी लाती है और एक अर्थ में होश भी लाती है। वह मस्ती बड़ी विरोधाभासी है--होश और बेहोश एक साथ बढ़ता है। और वीणा के संबंध में मैं निश्चिंत होकर कह सकता हूं कि दोनों एक साथ बढ़ रहे हैं। इसलिए कोई भय का कारण नहीं है।
और तूने यह भी पूछाः "यह समझने पर भी उनको समग्रता से प्यार नहीं कर पाती।"
इस संसार में समग्रता से प्यार तो किसी से भी नहीं किया जा सकता; नहीं
तो फिर परमात्मा से क्या करोगे? फिर तो परमात्मा के लिए कुछ भी न बचेगा। इस जगत में एक प्रतिशत से लेकर निन्यान्नबे प्रतिशत तक प्यार किया जा सकता है, लेकिन सौ प्रतिशत प्यार इस जगत में किसी से नहीं किया जा सकता। वह तो सिर्फ परमात्मा का अधिकार है। वह तो उसका हक है। वह तो हमें उसी को देना होगा। गुरु से भी निन्यान्नबे प्रतिशत प्यार हो सकता है, प्रीति हो सकती है, सौ प्रतिशत नहीं। वह पराकाष्ठा है इस संसार में, जो शिष्य गुरु के प्रति अनुभव करता है--वह पराकाष्ठा है प्रेम की--निन्यान्नबे प्रतिशत। एक प्रतिशत बचा रह जाता है; वह एक प्रतिशत तो परमात्मा के लिए ही समर्पित होगा। परमात्मा के साथ ही हम समग्ररूपेण एक हो सकते हैं।
इसलिए इस तरह के असंभव आदर्श मत बना लेना कि बच्चों के साथ समग्र प्रेम नहीं हो रहा है। हो ही नहीं सकता। और अच्छा है कि नहीं हो रहा है। क्यों? क्योंकि अगर मां बच्चे को बहुत प्रेम करे, अतिशय प्रेम करे, तो भी खतरा है। इसलिए प्रकृति ने बड़ा इंतजाम किया हुआ है। अगर मां अपने बेटे को अतिशय प्र्रेम करे--इतना प्रेम करे कि बेटे का मन मां के प्रेम से भर जाये, तो यह बेटा फिर किसी और स्त्री को प्रेम न कर सकेगा। जरूरत ही न रही, प्रयोजन ही न रहा; मां ने ही इसका मन भर दिया! मगर यह तो खतरा हो गया। इस बच्चे का जीवन तो उलझ गया। इस बच्चे का जीवन किसी मां के प्र्रेम से ही समाप्त हो जाये, तो इस बच्चे के जीवन में अपना प्रेम कभी पैदा ही नहीं होगा।
इसलिए तुम देखते हो, मां जितना बच्चे को प्रेम करती है, बच्चा उतना प्रेम मां को नहीं कर सकता। यह स्वाभाविक है, क्योंकि बच्चे को किसी और को प्रेम करना है। आगे यात्रा जानी है जीवन की, पीछे नहीं जानी है। इसलिए कोई मां-बाप यह अपेक्षा न करें कि हम जितना प्रेम बच्चों को करते हैं, उतना ही बच्चे हमें करें। अगर उतना ही प्रेम बच्चे तुम्हें करेंगे तो फिर अपने बच्चों को क्या करेंगे? तुम अपने बच्चों को प्रेम कर रहे हो, कभी तुमने ख्याल किया है कि इतना प्रेम तुमने अपने मां-बाप को किया था? तब तुम्हें समझ में आ जायेगी बात। वीणा अपने बच्चों को प्रेम कर रही, इतना प्रेम कभी अपने मां-बाप को किया था? इतना प्रेम? लेकिन तुम्हारे मां-बाप ने इतना ही प्रेम तुम्हें किया था। यह तो गंगा आगे बहेगी... । मां-बाप बच्चों को करेंगे, बच्चे अपने बच्चों को करेंगे। उनके बच्चे उनके बच्चों को करेंगे। ऐसे जीवन आगे जायेगा। नहीं तो पीछे की तरफ जीवन जाने लगे तो घातक हो जायेगा।
कभी-कभी ऐसी रुग्ण दशा हो जाती है। मां इतना प्रेम करती है बेटे को कि बेटा अपराध अनुभव करने लगता है; किसी और स्त्री के प्रेम में पड़ना मतलब मां के साथ गद्दारी है। ऐसी माताएं हैं जो समझती हैं कि गद्दारी है। इसलिए तो सास और बहू में कलह बनी रहती है। सास-बहू की कलह सारी दुनिया में चलती है। उस कलह के पीछे बड़े कारण हैं। वह सामान्य मामला नहीं है। वह किसी एक स्त्री का मामला नहीं है, वह सारी सास और बहुओं का मामला है।
क्यों? क्योंकि सास ने अपने बेटे को प्रेम किया था। इतना प्रेम किया था, और आज यह बेटा गद्दार हो गया। आज यह उसकी नहीं सुनता; एक अजनबी औरत की सुनता है। मां जिस बेटे को बनाने में पच्चीस साल लगाती है, बुद्धिमान

बनाने में पच्चीस साल, उसको कोई स्त्री पांच मिनट में बुद्धू बना देती है।
अब मां को चोट न लगे तो और क्या हो? और ये सज्जन चले... ये अपनी पत्नी की सुनते हैं अब। अगर मां और पत्नी के बीच विरोध हो तो ये पत्नी की सुनेंगे। पत्नी की सुननी भी चाहिए। क्योंकि इसी तरह जीवन आगे जायेगा। इसमें कुछ अनहोना नहीं हो रहा है।
लेकिन मां की अपेक्षा गलत है, मां की आकांक्षा गलत है। मां बच्चे को बुरी तरह घेर लेना चाहती है। कुछ बच्चे घिर जाते हैं। जो बच्चे अपनी मां के प्रति बहुत प्र्रेम से घिर जाते हैं, वे किसी स्त्री को प्रेम नहीं कर पाते हैं। उनका जीवन बड़ा उदास हो जाता है। और भी कई तरह के उपद्रव उनके जीवन में होंगे। अगर वे किसी स्त्री के प्रेम में किसी तरह अपने को डाल भी देंगे तो भी उनकी मां सदा बीच में खड़ी रहेगी। और वे सदा तौलते रहेंगे कि यह स्त्री उनकी मां के साथ मेल खाती है या नहीं। कौन स्त्री उनकी मां के साथ मेल खायेगी? उनकी मां जैसी और कोई स्त्री दुनिया में है भी नहीं; हो भी नहीं सकती। बस जहां-जहां मां से कम पड़ेगी, भिन्न पड़ेगी, वहीं गलत हो जायेगी। मां जैसा ही भोजन पकना चाहिए। मां जैसे ही कपड़े बनाए जाने चाहिए। मां जैसा ही घर सजाया जाना चाहिए। यह कौन स्त्री करेगी, कैसे करेगी? और ये अपेक्षाएं पूरी नहीं होतीं। ये भीतरी अपेक्षाएं हैं। तो फिर कलह और संघर्ष... ।
नहीं, बच्चों को उतना ही प्रेम देना जितना सहज स्वाभाविक है। समग्रता
की व्यर्थ आकांक्षा मत करो। स्वाभाविक का भाव रखो, समग्र का नहीं। बस स्वाभाविक जितना है, उतना प्र्रेम उचित है। बच्चों की चिंता करो। उनके स्वास्थ्य की फिक्र करो। उनके भविष्य की फिक्र करो। वे जीवन में अपने पैरों पर जल्दी खड़े हो जायें, अपनी यात्रा पर निकल जायें, इसकी फिक्र करो। और तुम्हारी फिक्र इतनी ज्यादा नहीं होनी चाहिए कि वे कमजोर रह जायें। क्योंकि अतिशय फिक्र कमजोर कर देगी उनको। जैसे कोई मां अपने बेटे का हाथ पकड़ कर चलाती ही रहे, चलाती ही रहे, उसे चलने ही न दे कभी अपने पैरों के बल... ।
मैंने सुना है एक धनपति दंपति अपनी कार से उतरा। सामान उतारा गया होटल में। फिर उस महिला ने आवाज दी कि चार नौकर भेजे जायें, बेटे को उतारना है। बेटा होगा कोई चौदह साल का। उसको भी उतारा गया। नौकर तो बहुत चकित हुए और नौकर बड़े दुखी भी हुए, क्योंकि बेटा बड़ा सुंदर था! उन्हीं में से एक नौकर ने कहाः इतना सुंदर, प्यारा बेटा, और चल भी नहीं सकता! उस स्त्री ने कहाः क्या कहा तुमने, चल क्यों नहीं सकता; लेकिन चलने की कोई जरूरत नहीं है। अपंग नहीं है मेरा बेटा, लेकिन चलने की कोई आवश्यकता नहीं है; गरीबों के बेटे चलते हैं।
अब यह तो खतरनाक मामला हो गया! अगर गरीबों के बेटे चलते हैं। और अगर मां इतनी अमीर है कि अपने बेटे को चलाने की कोई जरूरत नहीं, नौकर उसे उठा कर ले जा सकते हैं स्ट्रेचर पर, तो यह तो खतरनाक हो गया। यह तो अतिशयोक्ति हो गयी। लेकिन बहुत-सी माताएं ऐसी अतिशयोक्ति कर लेती हैं। हम अपनी मूर्च्छा में बहुत-सी अतिशयोक्तियां करते हैं।
नहीं, स्वाभाविक रहो। समग्र की कोई बात मत उठाओ। समग्र प्रेम तो होगा परमात्मा से। उसकी दिशा में वीणा, गति शुरू हो गयी है। वही तो मस्ती आ रही है। वही तो झलक आ रही है। लेकिन मेरी बातों का अर्थ ऐसा मत समझ लेना कि मैं कह रहा हूं बच्चों के प्रति कठोर हो जाओ। यह भी नहीं कह रहा हूं कि बच्चों की उपेक्षा करो, उदासीन हो जाओ।
जीवन में बड़ा संतुलन रखना जरूरी है--न तो अति प्रेम, न उपेक्षा--मध्य।
और जो मध्य को खोज लेता है, उसे जीवन की कुंजी मिल जाती है। जैसे नट चलता है रस्सी पर--ठीक मध्य में, सम्हाल कर अपने को! कभी थोड़ा बायें झुकता, कभी थोड़ा दायें; लेकिन दायें झुकता है इसीलिए कि बायें गिर न जाये, बायें झुकता है इसीलिए कि दायें गिर न जाये। बस झुककर अपने संतुलन को बना लेता है और बीच में चलता जाता है। ऐसे ही जीवन में प्रत्येक व्यक्ति को मध्य को सम्हालना चाहिए। बुद्ध ने कहा हैः मज्झिम निकाय। बीच में जो चलना सीख ले, वह सत्य तक पहुंच जाता है।

जीवन की हर प्रक्रिया में बीच में चलना सीखो। ठीक मध्य में होना स्वर्ण-सूत्र है। न तो अति प्रेम में पड़ जाना। क्योंकि अति मिठास सड़ांध पैदा कर देगी। न अति उदास हो जाना, क्योंकि अति कड़वाहट हानिकर हो जायेगी, हिंसा हो जायेगी। और यह संतुलन प्रत्येक व्यक्ति को अपने ही ढंग से खोजना होता है। इसके लिए कोई बंधे हुए सूत्र नहीं दिये जा सकते। मैं नहीं कह सकता कि यह ठीक बंधा हुआ ऐसा सूत्र है, क्योंकि हर स्थिति में यह संतुलन अलग-अलग होगा। किसी दिन बच्चा बीमार है, उस दिन थोड़ा बायें झुकना होगा; किसी दिन बच्चा प्रसन्न है, उस दिन थोड़ा दायें झुकना होगा। किसी दिन बच्चे की जरूरत कुछ और है, किसी दिन जरूरत नहीं है। प्रतिदिन, प्रतिपल जरूरतें बदलती हैं। और जरूरतों के बदलने के साथ व्यक्ति को सम्यकरूपेण बदलते रहना चाहिए। इसको ही मैं सम्यक प्रेम कहता हूं।
इसका ही ध्यान रखो कि बच्चे का हित हो सके, कल्याण हो सके। बच्चा अपने जीवन में अपने पैरों पर खड़ा हो, स्वतंत्र हो, व्यक्तित्ववान हो, आत्मवान हो, शांत हो, मस्त हो, परमात्मा का तलाशी हो। बस इतनी बातें ख्याल में रहें, इन्हीं को सूत्र मानकर चलते-चलते न केवल बच्चों को तुम ठीक राह दे सकोगे, बच्चों को ठीक राह देते-देते तुम्हें भी ठीक राह मिल जायेगी।

तीसरा प्रश्नः भटका बहुत--सत्य की खोज में या सत्य के भ्रम में! नभ-चालक रहा हूं। पृथ्वी, समुद्र और आकाश की सैर की। आकाश की ऊंचाई से पृथ्वी की छोटाई देखी; मानव के अहंकार की व्यर्थता जानी। देश-विदेश के तीर्थ देखे। सत्य मृगतृष्णा बना रहा। ईश्वरीय पुरुषों से कतरा कर चलता रहा-- यहां तक कि आपसे भी! हिंदू, मुसलमान और ईसाईयों की आस्तिकता देखी, कुछ सार नजर नहीं आया। रूस में नास्तिकता देखी; कुछ असार नहीं देखा; बल्कि ज्यादा सरलता नास्तिकता में देखी। एक थकावट महसूस हुई। विश्राम पाया--अज्ञेयवाद में।
फिर आज से दो महीना पहले सत्य का आभास-सा हुआ। प्रकाश की एक किरण दिखाई दी--आपके आश्रम आनंद-नीड़, नैरोबी में। प्रकाश के स्रोत के पास खिंचा आया। ऐसा लगा कि जीवन में कुछ होगा। एक संबंध हुआ आपसे। संन्यास लेने का तय किया। फिर सोचाः संन्यास तो आ ही गया; अब तो प्रयोग करना है; अनुभव करना है, सत्य का। भंवरे की गुंजन के साथ नाद-ब्रह्म ध्यान। सांस के उतार-चढ़ाव में निर्विचार का आभास। अब भौतिक संबंध यानी माला की क्या आवश्यकता? आत्मिक संबंध हो गया, आत्मिक संन्यास हो गया। कृपया समझायें।

किशनसिंह! लिख कर पूछा न? यह तो भौतिक बात हो गयी। उतनी ही भौतिक, जितनी माला। कागज पर लिखा... बिना लिखे रह जाते! जब आत्मिक संन्यास हो गया, तब शब्दों से क्या पूछना? अब तो निःशब्द में ही हो जायेगा! लिखते वक्त नहीं सोचा कि भौतिक कागज पर भौतिक स्याही से भौतिक शब्दों में प्रश्न बना रहे हो! थोड़ा तो सकुचाते, था.ेडा तो लजाते!
लेकिन मन बड़ा बेईमान है, मतलब की बातें निकाल लेता है। इसमें तुम्हें अड़चन न मालूम हुई। संन्यास में भय लगा। भय को सीधा स्वीकार नहीं करना चाहते। उतना साहस भी नहीं है कि सीधा कह सको कि मैं डरता हूं। ये गैरिक वस्त्र पहन कर, माला पहन कर दीवाना बन जाऊंगा! लोग क्या कहेंगे; लोग पागल समझेंगे। लोग हंसेंगे। लोग कहेंगे कि तुम जैसा बुद्धिमान, किशनसिंह! और इस नासमझी में पड़ गया! कभी सोचा न था, कि तुम इतने देश-विदेश गये, इतना सब जाना-समझा--अज्ञेयवादी थे, एग्नास्टिक थे; तुम भी संन्यासी हो गये! तुमने भी गैरिक वस्त्र धारण कर लिये, तुमने भी माला पहन ली! तुम किसी के अनुयायी हो गये! तुम जैसा बुद्धिमान व्यक्ति, अनुभवी, ज्ञानी, पढ़ा-लिखा, सोचा-समझा जिसने खूब, दार्शनिक चिंतन किया!
तो तुम डर रहे हो, लेकिन डर को सीधा स्वीकार भी नहीं करोगे। तो तुमने
एक तरकीब निकाली। रेशनलाइजेशन है वह, सिर्फ तर्काभास है! तुमने एक तरकीब निकाली कि आत्मिक संन्यास तो हो ही गया। मुझे पता ही नहीं है, और तुम्हारा आत्मिक संन्यास हो गया? यह तुम न लिखते तो मुझे पता ही न चलता। यह तुमने भला किया कि लिख दिया।

कैसे हो गया आत्मिक संन्यास? अभी आत्मा का तुम्हें पता भी क्या है? आत्मा का ही पता होता, तो फिर यहां आने की जरूरत ही न थी। फिर मेरे पास बैठने का कोई अर्थ भी न था। क्योंकि ज्यादा से ज्यादा आत्मा का ही पता करना है, और क्या करना है?
तुम कहते हो आत्मिक संन्यास हो गया। तुम्हें शब्दों का अर्थ भी बोध है? साफ-साफ बोध है? आत्मिक का क्या अर्थ होता है? अभी तुम्हें आत्मा का अनुभव है?
कोई आत्मा का अनुभव नहीं है अभी। तो अभी आत्मिक संन्यास कैसे हो जायेगा? आत्मिक संन्यास तो संन्यास की पराकाष्ठा है। अभी तुम पहली सीढ़ी भी नहीं चढ़े और आखिरी सीढ़ी पर पहुंच गये!
शरीर से ही शुरू करना होगा, क्योंकि शरीर में ही तुम हो अभी। और शरीर में कुछ गलती नहीं है; कुछ भ्रांति भी नहीं, कुछ भूल भी नहीं है। श्वास लेते हो न? वह भी भौतिक है। श्वास मत लो, आत्मिक जीयो। तब तुम्हें पता चलेगा कि पांच-सात सेकेण्ड में मुश्किल हो जायेगी। जल्दी से श्वास आ जायेगी! कि छोड़ो भी, तुम कहोगे, ऐसा आत्मिक जीने में तो मौत हो जायेगी! भोजन करते हो न, शारीरिक है। लेकिन जो बाहर है, भोजन के द्वारा पच जाता है और भीतर का अंग हो जाता है, और जो श्वास बाहर से आती है वह भीतर तुम्हारे मांस-मज्जा में समाविष्ट होती है। तुम्हारे भीतर अगर बाहर से ऑक्सीजन न आती रहे तो मस्तिष्क काम करना बंद कर देगा। छः सेकेण्ड मस्तिष्क को ऑक्सीजन न मिले कि मस्तिष्क सदा के लिए खराब हो जायेगा, सिर्फ छः सेकेण्ड! यही बड़ी तकलीफ है। जो लोग हृदय की बीमारी से मर जाते हैं, उनको पुनरुज्जीवित करने का उपाय है; मगर छः सेकेण्ड के भीतर हो जाना चाहिए। पिछले महायुद्ध में कुछ लोग जिलाये गये, जो हृदय के आघात से मरे थे-- जिनकी मौत वास्तविक नहीं थी; बम गिरा और धबड़ाहट में मर गये। उनको चोट नहीं लगी थी लेकिन घबड़ाहट में हृदय की धड़कन बंद हो गयी। उनको पंप के द्वारा हृदय चला दिया गया। वे अभी भी जीवित हैं। मगर यह होना चाहिए छः सेकेण्ड के भीतर। छः सेकेण्ड बहुत थोड़ा समय है। छः सेकेण्ड के बाद क्यों नहीं हो सकता? बस छः सेकेण्ड के बाद मस्तिष्क तो खराब हो गया। फिर हृदय चल भी जाये तो भी वह आदमी मस्तिष्कवान नहीं हो सकेगा। साग-सब्जी की भांति जीएगा। गोभी का फूल होगा। उसके भीतर विचार और चेतना का जन्म नहीं हो सकेगा। सांस चलती रहेगी... पड़ा रहेगा गोभी का फूल! लेकिन बाहर से तुम श्वास लेते हो। तुमने ये जो विचार लिखे--यह जो अज्ञेयवाद, यह जो नाद-ब्रह्म ध्यान तुम
कर रहे हो, कि भंवरे की गुंजन के साथ ब्रह्म-ध्यान--यह सब बंद हो जायेगा, अगर छः सैकेंड के लिए प्राण-वायु बाहर से न मिले। ध्यान भी न कर सकोगे! तो बाहर-भीतर अलग-अलग नहीं हैं; इकट्ठे हैं, संयुक्त हैं, परस्परनिर्भर हैं। शरीर और आत्मा भी परस्परनिर्भर हैं। इस निर्भरता को समझो, पहचानो। तब तुम ऐसा न कह सकोगे कि बाहर का संन्यास और भीतर का संन्यास, शारीरिक संन्यास और आत्मिक संन्यास। ये सब लफ्फाजियां हैं। तब तो तुम शुरुआत से ही शुरुआत करोगे। शरीर से ही संन्यास की शुरुआत होती है; शरीर से ही हो सकती है।
तुम यहां आये नैरोबी से। शरीर को लाना पड़ा यहां, तुम शरीर नैरोबी में नहीं छोड़ आये। हवाई जहाज पर शरीर रखना पड़ा; नाहक ढोया! कपड़े-लत्ते पहनते हो कि नहीं?
जीवन को इस तरह खंडों में बांटने की आदत गलत है। और इसके पीछे हम अपने बड़े भय छिपा लेते हैं। जिंदगी-भर बामुश्किल तो तुम्हें किसी आदमी की बात जमी। तुम कह रहे हो, तुम्हारा हिसाब तो लंबा है... कि तुम सब जगह घूमते रहे, तीर्थ देश-विदेश के सब किये हैं। आस्तिक देशों में ही नहीं, नास्तिक देशों में भी गये। सब जगह असार पाया... । तुम्हें सभी जगह असार मिला, इसीलिए तुम्हें मेरी बातों में थोड़ा सार दिखाई पड़ रहा है।
मेरा संबंध उनसे जल्दी बन जाता है, जिन्होंने काफी खोज की है; जो खोज करके थक गये हैं; जिन्होंने विचारा है, संदेह किया है, जिन्होंने सोचा है; जिन्होंने अंधे विश्वास नहीं किये। उनसे मेरा संबंध जल्दी बन जाता है। मैं उन्हीं के लिए हूं। और वे आज नहीं कल खोजते हुए मेरे पास आ ही जायेंगे, क्योंकि उनकी खोज चल रही है।

झूठे आस्तिकों से मेरा संबंध नहीं जुड़ पाता। क्योंकि वे तो पहले ही
से मान कर बैठे हुए हैं। उन्हें जानने की कोई जरूरत ही नहीं है। उन्हें खोज का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। उन्होंने तो मान ही लिया है कोई हिंदू है, कोई मुसलमान है, कोई ईसाई है, कोई जैन है। हर-एक के पास अपनी किताब है, अपना मंदिर है। मान ही लिया है और उस मान्यता को उखाड़ने में वे डरते भी हैं, कि फिर कौन उपद्रव शुरू करे! फिर पता नहीं इतनी सुरक्षा मिली कि न मिली! उठाओ ही मत, बात ही मत खोलो, प्रश्न ही मत जगाओ; चुपचाप प्रश्न की छाती पर बैठे रहो दबाये हुए उसे। झूठी श्रद्धा बनाये रखो।
श्रद्धा में सुरक्षा है, निश्चिंतता है। एक भाव बना रहता है कि पता है हमें। पता कुछ भी नहीं है। ज्ञान जरा भी नहीं है, ज्ञान की भ्रांति बनी रहती है। तुम सौभाग्यशाली हो कि तुम्हें ऐसी ज्ञान की भ्रांति नहीं थी। इसलिए तुम्हें मेरी बात जमी है। इसलिए तुम्हें मुझमें रस जगा।
अब आ तो गये द्वार तक, अब द्वार से वापिस ही लौट जाओगे--बाहर ही बाहर... ? फिर बहुत पछताओगे, क्योंकि फिर ऐसा द्वार मिले, न मिले। क्योंकि और जो द्वार हैं उनसे तुम्हें तृप्ति नहीं हुई, ख्याल रखना। बहुत द्वार हैं, मगर उनसे तुम्हें तृप्ति नहीं हुई, ख्याल रखना। और तुम्हें ऐसा द्वार शायद ही पृथ्वी पर दोबारा मिले! इसलिए चूकोगे तो जिम्मेवारी तुम्हारी है, उत्तरदायित्व तुम्हारा है।
आत्मिक संन्यास एक दिन घटित होता है, लेकिन वह शारीरिक संन्यास की अंतिम प्रक्रिया है। क्या तुम सोचते हो, मुझे पता नहीं है कि गैरिक वस्त्र पहनने से कोई संन्यासी कैसे हो जायेगा? क्या तुम सोचते हो मुझे इतनी समझ नहीं है कि माला पहनने से कोई कैसे संन्यासी हो जायेगा? इतनी समझ तुम्हें है, तो मुझे भी होगी। इतना तो मुझे भी पता है कि बाहर के वस्त्र बदल लेने से कोई क्या संन्यासी हो जायेगा!
लेकिन मुझे एक बात और भी पता है कि जो बाहर के वस्त्र बदलने को भी राजी नहीं है, वह क्या खाक संन्यासी होगा! बाहर के भी बदलने को राजी नहीं है, तो भीतर के कैसे बदलेगा? भीतर की बदलाहट में तो और भी ज्यादा हमारे स्वार्थ जुड़े हैं। बाहर की बदलाहट तो उतनी मुश्किल है भी नहीं। किसी न किसी रंग के कपड़े पहनते ही हो, और कभी-कभी लोग गैरिक रंग के कपड़े भी पहन लेते हैं। आखिर यह भी रंगों में एक रंग है। यह तो मुझे भी पता है कि सिर्फ गैरिक रंग के वस्त्र पहन लेने से संन्यास नहीं हो जाता है। लेकिन जो गैरिक रंग के वस्त्र पहनने की हिम्मत दिखा रहा है, वह कम-से-कम अपनी तरफ से इंगित कर रहा है कि मैं तैयार हूं। चलो यह पागलपन करने को भी तैयार हूं, मगर मुझे आगे ले चलो; मुझे यात्रा पर आगे ले चलो।
यह तो कसौटी भर है सिर्फ, क्योंकि आगे और-और बड़े पागलपन आयेंगे। अगर तुम इसी पागलपन में न उतरे तो उन पागलपनों का क्या करोगे, फिर और दीवानगियां आयेंगी! तुम तो हर जगह ठिठक-ठिठक जाओगे। तुम कहोगे कि हम तो आत्मिक ही रखेंगे। नाचने का भाव उठेगा, तुम कहोगेः शरीर को क्या नचाना? हम तो आत्मा में ही नाचेंगे! तुम तो हर बात में फिर यही अड़चन खड़ी करोगे। यह तो इंगित है शिष्य की तरफ से। इसमें कुछ और नहीं है, सिर्फ इशारा है कि मैं राजी हूं, कि आप जो कहोगे करने को राजी हूं। अगर आप कोई ऐसी बात भी कहोगे जो मुझे जंचती भी नहीं, बुद्धि को, तो भी करने को राजी हूं। जब किसी को इतना भाव उठता है तो शिष्यत्व पैदा होता है।
अब गोरख ने कल ही कहा न--शीश झुकाते ही... । यह शीश झुकाने का ढंग है। जान कर मैंने यह उपद्रव किया। कोई अड़चन न थी। लाखों लोग मुझे सुनते थे; सब रंगों के कपड़े पहनते थे और सुनते थे। फिर मैंने यह आग्रह किया कि अब जिन्हें और गहरे जाना है, वे गैरिक वस्त्रों को स्वीकार कर लें। बस, लाखों लोगों में से थोड़े-से हजार लोग मेरे साथ चलने को राजी हो सके। बाकी ने सोचाः गैरिक-वस्त्र! हम तो आत्मिक बात को मानते हैं। लेकिन इन आत्मिक बातों को माननेवालों पर मैं वर्षों से मेहनत कर रहा था; वे सिर्फ सुनते थे, सुनना उनका मनोरंजन था। जरा-सा करने का मौका आया, छिटक गये; भाग खड़े हुए! अब यहां आने में उन्हें संकोच भी होता है, क्योंकि यहां वे नंबर दो के आदमी हो गये। यहां नंबर एक का आदमी वह है जो गैरिक है। जो गैरिक है वह अंतरंग है। जो गैरिक वस्त्रों में नहीं है, वह एक बाहरी व्यक्ति है, एक दर्शक है। ठीक

है, आया है, चला जायेगा। और जब तक गैरिक नहीं हो जाता, तब तक इस तीर्थ का हिस्सा नहीं बन पाता। यह तो सिर्फ प्रतीक है।
किशनसिंह, यह प्रतीक अगर पूरा न कर सको, तो जाने रखना कि यह कोई आत्मिक
और गैर-आत्मिक का सवाल न था, यह सिर्फ तुम्हारा भय था।
इब्राहीम सम्राट था। वह अपने गुरु के पास गया और उसने कहा कि मुझे दीक्षा दें। गुरु ने क्या कहा मालूम है? गुरु ने कहाः कपड़े छोड़ दे, इसी वक्त कपड़े छोड़ दे। सम्राट से कहा कपड़े छोड़ दे! और भी शिष्य बैठे थे, सत्संग जमा था, दरबार था फकीर का। किसी से कभी उसने ऐसा न कहा था कि कपड़े छोड़ दे। और इब्राहीम को कहा कपड़े गिरा दे, इसी वक्त गिरा दे! और इब्राहीम ने कपड़े गिरा भी दिये, नग्न खड़ा हो गया। शिष्य तो चौंक गये। और जो बात फकीर ने कही, वह और भी अदभुत थी। अपना जूता उठा कर उसको दे दिया और कहाः यह ले जूता और चला जा बाजार में! नंगा जा और सिर पर जूता मारते जाना और अल्लाह का नाम लेना। लोग हंसें, लोग पत्थर फेंकें, लोग भीड़ लगायें, कोई फिक्र न करना, पूरा गांव का चक्कर लगा कर वापिस आ।
और इब्राहीम चल पड़ा। इब्राहीम के जाते ही और शिष्यों ने पूछा कि ऐसा आपने हम से कभी अपेक्षा नहीं की, यह आपने क्या किया? इसकी क्या जरूरत थी? सिर में जूते मारने से कैसे संन्यास हो जायेगा? गांव में नंगे घूमने से कैसे संन्यास हो जायेगा?
उस फकीर ने कहाः तुमसे मैंने अपेक्षा नहीं की थी, क्योंकि मैंने सोचा नहीं था कि तुम इतनी हिम्मत कर सकोगे। यह सम्राट है, इसकी कूबत है। यह हिम्मत का आदमी है। इसकी हिम्मत की जांच लेनी जरूरी है। जूते मारने से कुछ नहीं होगा, और नंगे जाने से कुछ नहीं होगा; लेकिन बहुत कुछ होगा। यह आदमी जा सका, इसी में हो गया। इस आदमी ने ना-नुच न की। इसने एक बार भी नहीं पूछा कि इसका मतलब? यह किस प्रकार का संन्यास है, यह कैसी दीक्षा! इस तरह आप दीक्षा देते हैं? किस को इस तरह दीक्षा दी? इसने संदेह न उठाया, सवाल न उठाया; इसी में घटना घट गयी। यह आदमी मेरा हो गया। तुम वर्षों से यहां मेरे पास हो और इतने निकट न आये, जितना यह आदमी मेरे निकट आ गया है--चुपचाप वस्त्र गिरा कर, जो जूता लेकर चला गया है और गांव में फजीहत करवा रहा है। अपने अहंकार को मिट्टी में मिलवा रहा है! तुम वर्षों में मेरे करीब न आ सके, यह आदमी मेरे करीब आ गया।
और इब्राहीम जब लौटा, तो उसके चेहरे पर रौनक और थी, आदमी दूसरा था-- दीप्तिवान था! अब जूता तो बाहर की चीज है और कपड़े भी बाहर की चीज हैं। ऐसे तो सभी बाहर है। लेकिन सदगुरु को उपाय करने पड़ते हैं। तुम बाहर हो, तुम्हें भीतर लाने के उपाय करने पड़ते हैं। इब्राहीम अदभुत फकीर हुआ। उसकी गहराइयों का कुछ कहना नहीं! मगर इस छोटी-सी बात में घटना घट गयी! किशनसिंह, द्वार तक आ गये हो, चाहो तो मन की बातें मान कर लौट भी जा सकते हो। लेकिन यह मन तो तुम्हारे साथ सदा रहा है, इस मन ने तुम्हें कहां पहुंचाया है? इसी मन की मान कर फिर चल पड़ोगे? मन बड़ा चालबाज है; सूक्ष्म उसकी कलाएं हैं।
और मैं भी कहता हूं कि कपड़े पहनने से कोई संन्यास नहीं होता और माला पहनने से कोई संन्यास नहीं होता। और फिर भी मैं तुमसे कहता हूं कि अगर असली संन्यास की अपेक्षा है तो बाहर से ही प्रारंभ करना होगा। आत्मिक संन्यास ही की खोज है, लेकिन हम शरीर में जी रहे हैं; और शरीर से ही यात्रा शुरू करनी है। यात्रा तो वहीं से हो सकती है जहां तुम हो। जहां तुम हो ही नहीं, वहां से कैसे यात्रा शुरू करोगे? जो नर्क में पड़ा है, उसे नर्क से ही यात्रा शुरू करनी पड़ेगी।
काफी समय ऐसे ही बीत गया है, और समय न बिताओ!

एक दिवस बीत गया! ऊषा मधुबाला-सी
लाई थी जिसको भर, संध्या के चरणों पर
कुमकुम-घट रीत गया! एक दिवस बीत गया!
झूम उठे थे जिससेमधुवन के कुंज प्रात,
कलिका का हास गया, मधुकर का गीत गया!
एक दिवस बीत गया! मंजिल नित पास दिखी,

फिर भी नित दूर रही, पंथी के पग हारे
निष्ठुर पथ जीत गया! एक दिवस बीत गया!
नयनों के तारे कोबतलाये कौन भला--
नयनों के पथ से बहउर का नवनीत गया!
एक दिवस बीत गया!
प्रतिपल समय बीता जाता है। तुम्हें और मंदिर न जमे, और मस्जिद न जमी। नहीं जमी, तुम वहां से लौट आये, ठीक; लेकिन अब एक मंदिर जमा है--एक मंदिर जो कि मंदिर कम और मधुशाला ज्यादा है। अब तुम्हें एक मधुशाला जमी है, अगर यहां से लौट गये तो कभी अपने को क्षमा कर न पाओगे। क्योंकि और जगह से लौट आये थे तो कोई प्रश्न ही न था; तुम्हारा मन ही न भरा था। मन भर भी न सकता था। जिनका मन भर जाता है उनकी प्यास ही झूठी होगी!
असली प्यास वाले आदमी का मन तथाकथित मंदिर-मस्जिदों से नहीं भरता, जब
तक कि कोई जीवंत मंदिर न मिल जाये, जहां अभी बुद्ध का दीया जल रहा हो। सिर्फ बुझे हुए दीयों से दिल नहीं भरता असली प्यासे का! पानी शब्द से उसकी तृप्ति नहीं हो सकती, तो वेद से, उपनिषद से उसकी तृप्ति कैसे होगी? शब्द ही शब्द हैं! उसे जल का सरोवर चाहिए।
और तुम्हारा अनुभव ठीक था कि तुमने देखा कि आस्तिकों से नास्तिक सरल हैं। यह बात सच है। आस्तिक तो तभी सरल होता है, जब सच्चा आस्तिक हो। और सच्चा आस्तिक मुश्किल से होता है। क्योंकि सच्चा आस्तिक होने का मतलब है जीवन रूपांतरित हो, समाधिस्थ हो, ईश्वर का अनुभव हो। तब सरल होता है आस्तिक। फिर उसकी सरलता बड़ी अदभुत होती है--सागर जैसी गहरी होती है! फिर किसी नास्तिकता में वैसी सरलता नहीं होती, जैसी आस्तिक में होती है। रामकृष्ण की सरलता या रमण की सरलता! लेकिन वैसे व्यक्ति से जब मिलना होगा तब। वैसा व्यक्ति तो विरला है!
जिन आस्तिकों से तुम मिलोगे वे तो झूठे हैं। पैदायशी कोई हिंदू है, पैदायशी कोई मुसलमान है; न तो मुसलमान ने खोज की है, न हिंदू ने खोज की है। जन्म से मिल गयी एक बात वसीयत में। बाप थमा गये एक किताब कि हम भी पूजते रहे; हमारे बाप थमा गये, तुम भी पूजते रहना। सदा इसकी पूजा होती रही, पूजते रहना। शायद कुछ ठीक होता ही होगा, तभी तो इतने दिन से पूजा हो रही है। न हमने खोल कर किताब देखी, न तुम खोल कर देखना। क्योंकि खोलने में लोग झंझट में पड़ जाते हैं। बस पूजा कर देना और सम्हाल कर रख देना।
ऐसे हिंदू हो गये तुम, ऐसे मुसलमान हो गये तुम; यह तुम्हारी खोज नहीं। इसलिए नास्तिक सरल होता है। नास्तिक कम-से-कम इतना तो साहस जुटाता है, इतनी तो ईमानदारी जुटाता है कि कहता है कि मुझे जब तक अनुभव नहीं हुआ, मैं नहीं मानूंगा। नास्तिक ईमानदार होता है। अब यह बड़े मजे की बात है! धार्मिक जिसको हम कहते हैं उसे ईमानदार होना चाहिए; मगर वह ईमानदार कैसे हो, उसकी तो बुनियाद में बेईमानी पड़ी है!
हम लोगों से कहते हैंः भरोसा करो, विश्वास करो। जो देखा नहीं, उस पर भरोसा करो! यह तो बेईमानी पर बुनियाद हो गयी! यह तो झूठ पर आधार रख दिया गया। अब तुम कितना ही बड़ा मंदिर बना लो, मंदिर कितना ही सुंदर हो; सत्य नहीं होगा, क्योंकि बुनियाद में पत्थर झूठ के हैं! सत्य पर भरोसा नहीं किया जाता, सत्य को जाना जाता है; तब भरोसा आता है। किया नहीं जाता, आता है। तो तुमने ठीक ही पाया कि नास्तिक सरल है। लेकिन तुमसे मैं यह बात कह दूं कि दुनिया के और देशों के नास्तिक ज्यादा सरल हैं, रूस के नास्तिकों की बजाय। क्योंकि रूस में नास्तिकता अब पैदायशी है। जैसे हिंदू यहां पैदायशी है, ऐसे रूस का नास्तिक पैदायशी है। रूस में नास्तिकता धर्म है। क्रेमलिन उनका मक्का है और दास-कैपिटल उनकी कुरान है। कम्युनिज्म उनके धर्म का नाम है। अब तो रूस का बच्चा उसी तरह नास्तिक हो रहा है जैसे दूसरे देशों के बच्चे आस्तिक होते हैं; उसमें भेद नहीं रहा। रूस की नास्तिकता लचर है। अब तो रूस में कभी कोई आस्तिक होता है तो सरल होता है। लेकिन अब रूस में आस्तिक को छिप कर होना पड़ता है, बच कर होना पड़ता है। अगर प्रार्थना भी करनी हो तो एकांत में करनी होती है कि कानों-कान किसी को खबर न हो, क्योंकि प्रार्थना स्वीकृत नहीं है। राज्य का सम्मान नहीं है प्रार्थना को। जो चर्च में जाता है, समझा जाता है कि वह एक तरह की गद्दारी कर रहा है

देश के साथ, क्योंकि देश का धर्म नास्तिकता है। इस नास्तिकता में अब कुछ नास्तिक की खूबी न रही।
आस्तिक देशों में जो लोग नास्तिक हैं वे तो खोज की खबर देते हैं।
नास्तिक देशों में जो लोग आस्तिक हैं वे खोज की खबर देते हैं। खोज का मतलब यह होता है कि जो तुम पर थोपा गया है, उसे मत स्वीकार करो; निज की तलाश करो। वह तो ठीक था कि तुम उन मंदिरों से लौट आये।

सच कह दूं ऐ बिरहमन! गर तू बुरा न माने
तेरे सनमकदों के बुत हो गये पुराने
अपनों से बैर रखना तूने बुतों से सीखा
जंगो-जदल सिखाया वाइज को भी खुदा ने
तंग आके मैंने आखिर दैरो-हरम को छोड़ा
वाइज का वाज छोड़ा, छोड़े तेरे फसाने
पत्थर की मूरतों में समझा है तू खुदा है खाके-वतन का मुझको हर जर्रा देवता है
आ गैरियत के पर्दे इक बार फिर उठा दें बिछड़ों को फिर मिला दें, नक्शे-दुई मिटा दें
सूनी पड़ी हुई है मुद्दत से दिल की बस्तीआ
इक नया शिवाला इस देश में बना दें
दुनिया के तीर्थों से ऊंचा हो अपना तीरथ
दामाने-आस्मां से इसका कलश मिला दें
हर सुबह उठके गाएं मंतर वो मीठे-मीठे
सारे पुजारियों को मय मीत की पिला दें
शक्ति भी शांति भी भक्तों के गीत में है
धरती के वासियों की मुक्ति परीत में है।
प्रेम असली धर्म है। ईश्वर को मानना न मानना गौण बात है। प्रेम असली धर्म है। संन्यास में दीक्षा प्रेम में दीक्षा है।
एक नया तीर्थ यहां हम बना रहे हैं--प्रेम का तीर्थ--जहां आस्तिक भी अंगीकार हैं, नास्तिक भी अंगीकार हैं। हिंदू भी, ईसाई भी, मुसलमान, बौद्ध-- सारी दुनिया के धर्मों के मानने वाले लोग यहां मौजूद हैं। शायद कोई ऐसी दूसरी स्थली नहीं है दुनिया में जहां सारे धर्मों के, सारी जातियों के लोग मौजूद हों। एक नये ही ढंग का मंदिर उठ रहा है। एक प्रेम का मंदिर उठ रहा है।
संन्यास तो उस प्रेम के मंदिर में प्रवेश के लिए तुम्हारी प्रार्थना है, और कुछ भी नहीं। तुम्हारी अर्जी है, तुम्हारा निवेदन है कि मुझे भी इस मंदिर के रंग में रंग लो। और रंगना पहले बाहर से होगा, फिर भीतर भी रंग पहुंचेगा। बाहर से ही बच गये तो भीतर से भी बच जाओगे।
आ गये हो, सम्हलो। भाग सकते हो। भागना सदा आसान है, जागना कठिन है।

चौथा प्रश्नः परमात्मा की तलाश है, लेकिन प्रकृति का आकर्षण नहीं छोड़ पाता हूं। क्या करूं?

मैंने तुमसे कहा कब कि तुम प्रकृति का आकर्षण छोड़ो? तुम पुरानी बातें मुझ पर आरोपित कर देते हो। जो मैं नहीं कह रहा हूं वह तुम सुन लेते हो। मैं यही तो कह रहा हूं कि प्रकृति ही परमात्मा है, कुछ आकर्षण छोड़ना नहीं है। मगर तुम अपने दोहराये जाते हो गीत, जो तुमने रट लिये हैं, जो तुम्हें कंठस्थ हो गये हैं। तुम्हें सदियों-सदियों समझाया गया है कि प्रकृति के खिलाफ है परमात्मा। प्रकृति को छोड़ो तो परमात्मा मिलेगा, प्रकृति का निषेध करो तो परमात्मा मिलेगा। तुम्हें इतनी बार ये बातें कही गयी हैं कि अब ये तुम्हारे भीतर जड़ हो गयी हैं। बिना सोचे-समझे तुम्हारे भीतर ये गूंजती रहती हैं।
मैं तो यही कह रहा हूं कि प्रकृति ही परमात्मा है। सृष्टि और स्रष्टा भिन्न-भिन्न नहीं हैं, यही मेरी उदघोषणा है। दोनों एक ही हैं। स्रष्टा ही सृष्टि हो गया है। फूल-फूल में पत्ते-पत्ते में वही है। पशुओं में,

पक्षियों में, लोगों में वही है। प्रकृति से भागना नहीं है, प्रकृति में जागना है। स्वभाव के विपरीत नहीं जाना है, स्वभाव में थिर होना है। और जो प्रकृति में जाग कर देखेगा, उसे परमात्मा के अतिरिक्त और कुछ भी न मिलेगा। ऐसा समझो कि जो सो कर परमात्मा को देखता है उसे प्रकृति दिखाई पड़ती है, और जो जाग कर प्रकृति को देखता है उसे परमात्मा दिखाई पड़ता है।
प्रकृति और परमात्मा दो नहीं हैं; सोये और जागे हुए आदमी के अनुभव हैं। सोये हुए आदमी का अनुभव प्रकृति, जागे हुए आदमी का अनुभव परमात्मा। लेकिन जो है, वह तो एक ही है।

रूप की आसक्ति मुझसे तो न छोड़ी जा सकेगी!
सिंधु से आकाश बोला चांद को घन में छिपाकर--
"चांद है मेरी धरोहर, मत मचल तू व्यर्थ सागर।"
मत्त लहरों के करोड़ों कर उठा कर सिंधु बोला--
"चांद की अनुरक्ति मुझसे तो न छोड़ी जा सकेगी!
रूप की आसक्ति मुझसे तो न छोड़ी जा सकेगी!"
फूल कांटों में छिपाकर के भ्रमर से डाल बोली-- "फूल है मेरी धरोहर, मत बढ़ा तू व्यर्थ झोली।" गुनगुनाकर, पंख कांटों में बिंधाकर, भृंग बोला-- "गंध-मधु की भक्ति मुझसे तो न छोड़ी जा सकेगी! रूप की आसक्ति मुझसे तो न छोड़ी जा सकेगी!
"देख निर्झर को निकट आते, नदी के कूल बोले--
"व्यर्थ आया तू यहां तक, बावले, भुजपाश खोले!
"काट करके कूल की चट्टान निर्झर ने कहा यह--
"प्यार की सौगंध मुझसे तो न तोड़ी जा सकेगी!
रूप की आसक्ति मुझसे तो न छोड़ी जा सकेगी!
लेकिन मैं तुमसे कहता ही नहीं कि आसक्ति छोड़ो। मैं तुमसे कहता ही नहीं, तुम कुछ छोड़ो।
छोड़ने-पकड़ने की बात ही नहीं कर रहा हूं, सिर्फ जागो। और जागते ही, जो नहीं है वह छूट जायेगा। क्योंकि जागते ही, जो नहीं है उसको पकड़ना भी चाहोगे तो कैसे पकड़ोगे? और जो है उसे छोड़ना भी चाहोगे तो कैसे छोड़ोगे? रात सोये, सपने में देखा कि तुम सम्राट हो। पुरानी परंपराएं कहती हैं
कि छोड़ दो यह सम्राट होना। यह सब माया है। त्याग कर दो ये महल। और समझ लो कि सपने में तुमने मान भी लिया इस बात को और तुमने महल का त्याग कर दिया, तो तुम्हारा त्याग भी सपना है। जब महल ही सपना है तो उसका त्याग कैसे सच हो जायेगा, थोड़ा सोचो तो! झूठ का त्याग कैसे सच हो सकता है? झूठ का त्याग झूठ ही होगा। अगर महल ही झूठ था, तो महल का त्याग कैसे सच हो जायेगा! और तुम जब कहते फिरोगे लोगों से कि मैंने महल छोड़ दिया, कि मैंने महल का त्याग कर दिया, कि साम्राज्य छोड़ दिया, तो तुम जाहिर करते रहोगे कि तुम महल को अभी भी मानते हो, महल अभी भी तुम्हें झूठ नहीं है। पहले महल को पकड़े थे, अब छोड़ दिया है; मगर महल की सचाई कायम है!
मैं तुम से नहीं कहता महल छोड़ो। मैं तुम्हें झकझोरना चाहता हूं। मैं कहता हूंः जागो! आंख खोल कर देखो। आंख खोलते ही जो है वह बच रहेगा, जो नहीं है वह छूट गया। जो नहीं है उसे छोड़ना पड़ता है? छोड़ना पड़े तो फिर अभी तुमने जाना नहीं। छोड़ना पड़े तो अभी तुम जानते हो कि है।
सच्चा ज्ञानी न तो कुछ छोड़ता है न कुछ पकड़ता है। महल में हो तो महल में होता है, झोपड़े में हो तो झोपड़े में होता है। न उसका आग्रह महल से होता है न झोपड़े से होता है। झूठा ज्ञानी या तो महल से आग्रह करता है या झोपड़े से आग्रह करता है, मगर आग्रह करता है।
ख्याल करना, जितना आग्रह महल का होता है उतना ही झोपड़े का भी हो सकता है। आग्रह को कोई भेद नहीं पड़ता कि बड़ी चीज चाहिए; लंगोटी का आग्रह काफी हो सकता है। लोग संसार को छोड़ देते हैं और त्याग को पकड़ लेते हैं। जब संसार ही झूठ हो गया, तो त्याग भी झूठ हो गया। तुम दो और दो पांच जोड़ रहे थे, फिर किसी ने तुम्हें चेताया; कोई सदगुरु मिला और उसने कहा दो और दो पांच होते ही नहीं, दो और दो चार होते हैं। और तुम्हें जाग आयी और तुमने दो और दो चार

किये। क्या तुम यह कहोगे कि अब मैंने पांच छोड़ दिये हैं; त्याग कर दिया पांच का? कि देखो मेरा त्याग! घंटा-नाद करोगे, डुंडी पीटोगे, ढोल बजाते फिरोगे कि देखो मैंने पांच का त्याग कर दिया? ऐसा करोगे तो लोग तुम्हें पागल कहेंगे। पांच था ही नहीं; भ्रांति थी तुम्हारी। तुम जोड़ते थे वह तुम्हारी भूल थी, गणित की भूल थी। और जब तुम जोड़ रहे थे पांच, तब भी पांच तुम्हारे जोड़ने के कारण हो नहीं गया था, सिर्फ भ्रांति ही थी, चार तो चार ही था।
दो और दो चार ही होते हैं, तुम चाहे पांच जोड़ो, चाहे छह, चाहे सात, चाहे तीन, तुम्हारी मर्जी है, जो मौज; मगर दो और दो चार होते हैं और चार ही होते हैं। अब तुमने जान लिया कि दो और दो चार हैं, बात खत्म हो गयी; छोड़ना क्या है, पकड़ना क्या है?
जीवन सिर्फ ठीक गणित को समझ लेने की बात है।

जल ज्यों-ज्यों गहरा होता है,
लहरें होती हैं गंभीर।
अंतर सहनशील बनता है
ज्यों-ज्यों गहरी होती पीर!
बात प्रणय की कुछ मत पूछो,
सौ-सौ संघर्षों के बीच--
सह-सह वज्र सुदृढ़ होती है
यह फूलों वाली जंजीर!
हर आने वाले की आहट
पहले तो चौंकाती है,
ज्यों-ज्यों होती दीर्घ प्रतीक्षा, चितवन हो जाती है धीर!
ज्यों-ज्यों दिवस बीतते जाते,
धुंध समय की छाती है,
अधिकाधिक उजली होती है
बिछुड़े प्रियतम की तसवीर!
जल ज्यों-ज्यों गहरा होता है
लहरें होती है गंभीर।
जल ज्यों-ज्यों गहरा होता है... जैसे-जैसे तुम्हारे जागरण की गहराई बढ़ेगी, जैसे-जैसे होश सघन होगा, वैसे-वैसे तुम चौंकोगे--खिलौने गिर गये! झूठ खो गये, सपने विदा हो गये। और तब जो शेष रह जाता है वही परमात्मा है, वही प्रीतम है। मैंने तो तुम से कभी कहा नहीं कि तुम संसार छोड़ो, कि तुम प्रकृति छोड़ो, कि तुम देह छोड़ो। मुझे तो सब अंगीकार है, सर्व स्वीकार है। मैं तुम्हें सर्व स्वीकार का धर्म दे रहा हूं। मैं तुम्हें जीवन-विधायक धर्म दे रहा हूं। निषेध की बातें मनुष्य को खूब भटकाईं--यह छोड़ो वह छोड़ो, यह तोड़ो वह तोड़ो। उससे एक तरह का धर्म पैदा हुआ जो बहुत विध्वंसक था।
मैं तुम्हें एक सृजनात्मक धर्म दे रहा हूं, जिसमें छोड़ना कुछ भी नहीं;
जो है, उसे रूपांतरित करना है। और रूपांतरण की कीमिया एक ही है। अभी तुम बेहोशी से जी रहे हो; अब ध्यान की प्रक्रिया समझो और होश से जीने लगो। ध्यान की आग तुम्हारे भीतर जल जाये, शेष सब अपने-आप हो जायेगा। शेष सब अपने-आप हो ही जाता है।

आखिरी प्रश्नः आपके प्रवचनों से अंतर में सवाल उठा है कि क्या आप धर्मयुद्ध की तैयारी कर रहे हैं? यदि यह सच हो तो आपके महाकार्य के लिए मैं तैयार हूं।

तरु, तुझे अब पता चला? यह धर्मयुद्ध चल ही रहा है, और तू युद्ध में अग्रपंक्ति में ही खड़ी है। मगर यह बड़े प्रेम का युद्ध है, इसलिए शायद पता नहीं चलता है। और यह बड़ा शीतल युद्ध है।
धर्म का युद्ध शीतल ही हो सकता है। यह आग ठंडी आग है; जो रोशनी तो देगी, लेकिन जलायेगी नहीं! आग को ही देखकर जो भाग खड़े होंगे, वे समझ ही न पाये।

उन्होंने आग देखी, उन्होंने समझा कि जल जायेंगे, इसलिए भाग गये। यह आग ठंडी आग है! यह जलाती नहीं। इसके तुम जितने करीब आओगे, उतना ही शीतल करेगी। मूसा के जीवन में उल्लेख है, जब मूसा ने पहली दफा ईश्वर का दर्शन किया
तो बहुत चौंके। चौंकाने वाली बात क्या थी? चौंकाने वाली बात थी कि ईश्वर प्रगट हुआ था एक लपट की भांति। एक हरी झाड़ी में एक लपट जल रही थी और झाड़ी हरी की हरी थी और झाड़ी जल नहीं रही थी! आग देखी झाड़ी में जलती; आग जैसी आग थी--निर्धूम अग्नि थी, शुद्ध अग्नि थी! मगर झाड़ी हरी थी! न फूल कुम्हलाये थे, न पत्ते कुम्हलाये थे।
यह बड़ा प्यारा प्रतीक है। धर्म की आग ठंडी आग है! फूल इसमें कुम्हलाते नहीं, और निखर जाते हैं! पत्ते सूख नहीं जाते, और हरे हो जाते हैं। धर्म की आग जीवन की आग है, मृत्यु की नहीं।
युद्ध तो चल ही रहा है। जब भी कोई बुद्ध होता है, तो युद्ध होता है! वह बुद्ध के होने में ही शुरू हो जाता है, करना नहीं पड़ता। ऐसा मत सोचना कि मैं कोई युद्ध का व्यूह रच रहा हूं। यहां है कौन, जो व्यूह रचे? लड़ना किससे है? लड़नेवाला कौन है? मैं कोई युद्ध का व्यूह नहीं रच रहा हूं।
लेकिन जब भी कोई बुद्ध होता है तो युद्ध होता ही है। बुद्ध के होने में युद्ध शुरू हो जाता है। वह रोशनी तुम्हारे अंधेरे को तोड़ने लगती है; वही युद्ध है। वह ज्योति तुम्हारी धारणाओं को खंडित करने लगती है, वही युद्ध है। वह तलवार चैतन्य की तुम्हारी मूर्तियों को खंडित करने लगती है। यही युद्ध है। तुम्हारे मंदिर गिरने लगते हैं। तुम्हारी मस्जिदें नाराज होने लगती हैं। तुम्हारे गिरजे क्रुद्ध होने लगते हैं। और ऐसा नहीं है कि बुद्ध कोई चेष्टा करके किसी के युद्ध में संलग्न होता है; बुद्ध के होने में ही युद्ध है। मगर युद्ध बड़ा शीतल है।
कुछ मेरे बाद और भी आयेंगे काफिले
कांटे यह रास्ते से हटा लूं तो चैन लूं।
बुद्धों का आना रास्ते से कांटे हटाने के लिए है। जब भी कोई जाग जाता
है, फिर जितने दिन जीता है एक ही काम करता है कि रास्तों से कांटे हटाता है। हालांकि, तुम्हें वे कांटे कांटे नहीं मालूम होते, तुम्हें फूल मालूम होते हैं। तुम उन्हें छोड़ना भी नहीं चाहते। तुम जद्दोजहद करते हो। तुम्हें तो जंजीरें आभूषण मालूम होती हैं।
और जब तुमसे कोई तुम्हारे आभूषण छीनने लगे, तो तुम नाराज होओगे ही स्वभावतः। छीननेवाले को तुम्हारी जंजीरें दिखाई पड़ रही हैं, तुम उन्हें आभूषण मान रहे हो। और यह भी हो सकता है, तुम्हारी जंजीरें सोने की हों; फिर भी क्या फर्क पड़ता है, सोने भर से कोई जंजीरें आभूषण नहीं हो जातीं। इलाही दुनिया में अभी कुछ दिन कयामत न आने पाये!
तेरे बनाये हुए बशर को अभी मैं इन्सां बना रहा हूं
तूने जो आदमी बनाया था। बुद्धपुरुष परमात्मा के बनाये हुए आदमी को इनसान बनाने की चेष्टा में संलग्न होते हैं। मगर भारी युद्ध है! वैसा ही जैसे कि कोई पत्थर को तोड़ कर मूर्ति बनाता है, तो छैनी-हथौड़ी उठानी पड़ती है। पत्थर नाराज भी होता होगा। चोट भी पड़ती है, तो पीड़ा भी होती होगी। मगर पत्थर को क्या पता, अभागे पत्थर को क्या पता कि यह दुर्भाग्य नहीं है, सौभाग्य है। लेकिन यह पता तो अंत में चलेगा। यह तो तब पता चलेगा, जब पत्थर कट कर मूर्ति बन जायेगा! एक सुंदर मूर्ति प्रगट होगी तब पता चलेगा। तब पत्थर धन्यवाद देगा। मगर यह तो अंतिम बात है। रास्ता तो कठिन होने वाला है।
"असद" चलो कि बदल दें हयात की तस्वीर
हमारे साथ जमाने का फैसला होगा
यह घटना कुछ छोटी घटना नहीं है। यह मेरे साथ तुम्हारा होना, तुम्हारा मेरे साथ होना कोई छोटी घटना नहीं है! जीसस के साथ कितने लोग थे? दस-बारह लोग थे। जो निकटतम शिष्य थे, बारह थे। उनमें से भी एक दगा दे गया। और जो श्रावक थे, सुननेवाले थे, वे भी सौ-दो-सौ से ज्यादा नहीं थे। और जब जीसस को सूली लगी तो दुश्मन कितने थे मालूम है? एक लाख लोग देखने इकट्ठे हुए थे-- पत्थर फेंकने, गालियां देने!

यही बुद्ध के साथ हुआ, यही सुकरात के साथ हुआ। साथ-संग तो कम लोग देंगे, क्योंकि सत्य के साथ होने की क्षमता ही दुर्लभ है, उतना साहस दुर्लभ है। जब तक तुम्हें याद न आ जाये कि तुम्हारे भीतर कितना बड़ा खजाना छिपा पड़ा है, तुम हिम्मत न जुटा पाओगे।
अपना अदाशनास बन अपना जमाल भी तो देख
तुझ में कमी है कौन-सी, तुझ में कमी कोई नहीं
जब तुम्हें यह भरोसा आ जायेगा।
तुझ में कमी है कौन-सी, तुझ में कमी कोई नहीं
अपना अदाशनास बन अपना जमाल भी तो देख
जब तुम अपना गौरव देखोगे तो साथ हो पाओगे किसी बुद्ध के पास। थोड़े से
ही लोग अपने गौरव को देख पाते हैं, नहीं तो लोग कीड़े-मकोड़ों की तरह ही सरकते रहते हैं। उन्हें याद ही नहीं आती कि परमात्मा को छिपाये बैठे थे। उन्हें पता ही नहीं चलता कि भीतर एक ज्योति दबी थी, जो प्रगट हो जाती तो जीवन आनंद ही आनंद हो जाता।
थोड़े-से लोग साथ होंगे, बड़ी संख्या विरोध में होगी। और इसलिए अनायास युद्ध शुरू हो जाता है।

एक लम्हे को भी वक्त की गर्दिश न थमी
हस्वे-दस्तूर महो-साल बदलते ही रहे
एक लौ, एक लगन, एक लहक दिल में लिये
हम मुहब्बत की कठिन राह पै चलते ही रहे।
कितने पुरपेच मराहिल को किया तै हमने
वादियां कितनी मिलीं बीच में दुश्वार-गुजार सैकड़ों संगे-गिरां राह में हाइल थे मगर
एक लम्हे को भी टूटी न जुनूं की रफ्तार
आज छाये हैं वो घनघोर अंधेरे लेकिन
जिनमें ढूंढे से भी मिलते नहीं राहों के सुराग वो अंधेरे, कि निकलते हुए डरती हो निगा हसामने हो तो नजर आये न मंजिल का चिराग
इन धुआंधार अंधेरों से गुजरने के लिए
खूने-दिल से कोई मशअल तो जलानी होगी
इश्क के रफ्ता-ओ-सरगश्ता जुनूं को ऐ दोस्त!
जिंदगानी की अदा आज सिखानी होगी।
अंधेरा बहुत है!
आज छाये हैं वो घनघोर अंधेरे लेकिनजिनमें ढूंढे से भी मिलते नहीं राहों के सुरागवो अंधेरे, कि निकलते हुए डरती हो निगाहसामने हो तो नजर आये न मंजिल का चिराग
लेकिन फिर भी कुछ करना तो होगा।

इन धुआंधार अंधेरों से गुजरने के लिए
खूने-दिल से कोई मशअल तो जलानी होगी
फिर चाहे दिल का खून ही डाल कर क्यों न मशाल जलानी पड़े,
मशाल तो जलानी होगी... !

इन धुआंधार अंधेरों से गुजरने के लिए खूने-दिल से
कोई मशअल तो जलानी होगी
इश्क के रफ्ता-ओ-सरगश्ता जुनूं को ऐ दोस्त!
जिंदगानी की अदा आज सिखानी होगी।
कुछ थोड़े पागलों की जरूरत है, कुछ जुनूनवालों की जरूरत है। उन्हीं को इकट्ठा करने में लगा हूं। उन्हीं को मैं संन्यासी कह रहा हूं--वे जो मेरे साथ दीवाने होने को राजी हैं।
युद्ध तो शुरू हो गया है, तरु! युद्ध तो चल ही रहा है! जिस दिन मैं जागा
उस दिन शुरू हो गया। और इतने लोगों को जगाकर छोड़ जाना है कि युद्ध जारी रहे, कि युद्ध कभी समाप्त न हो सके। और तू इसमें सम्मिलित है। और बहुत

इसमें सम्मिलित हैं। और उन्हें भी शायद पता न हो, क्योंकि प्रेम की मस्ती ऐसी है! और युद्ध का रंग-ढंग प्रेम का रंग-ढंग है। और यह आग शीतल है, ठंडी है!

इन धुआंधार अंधेरों से गुजरने के लिए
खूने-दिल से कोई मशअल तो जलानी होगी
इश्क के रफ्ता-ओ-सरगश्ता जुनूं को ऐ दोस्त!
जिंदगानी की अदा आज सिखानी होगी।
आज इतना ही।